सम्युत्त निकया

संपादन करने के लिए लॉग इन करें
विकिपीडिया

सहायता
मदद

शब्दकोष

शब्दकोष

त्रिपिटक की संरचना

करने के लिए

त्रिपिटक

विनय पिटक

सुत्त पिटक

दीघा निकया

मज्झिमा निकया

सम्युत्त निकया
अंगुत्तरा निकया

खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय

पाली संस्करण : नए संस्करण 2 के ग्रंथों के प्रत्येक खंड (सेक्शन) और प्रत्येक संयुत्त में पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी संस्करण उपलब्ध कराए गए हैं।

सम्युत्त निकाय ("प्रवचनों का समूह") सुत्त पिटक के पाँच निकायों (संग्रहों) में से तीसरा है। यह संग्रह विषयवस्तु के आधार पर एक विशेष क्रम में व्यवस्थित है। प्रत्येक समूह एक विशिष्ट सिद्धांत या व्यक्तित्व से संबंधित है।
इस निकाय में भगवान बुद्ध ने ध्यान और ध्यान/समाधि की अंतिम उपलब्धियों के संदर्भ में धम्म (मार्ग) के विस्तृत विवरण का भी वर्णन किया है। कुछ उल्लेखनीय सूत्र हैं: एसएन 47.6 शकुनाग्घी सूत्र , एसएन 36.19 पंचकंग सूत्र और 4.25 मराधितु सूत्र । 15.14-15.19 (माता सूत्र , पिता सूत्र , भात सूत्र , भगिनी सूत्र , पुत्तो सूत्र , धित सूत्र
) में बुद्ध पुनर्जन्म की पुष्टि करते हैं और बताते हैं कि प्रत्येक प्राणी का इतनी बार पुनर्जन्म हुआ है कि वे सभी एक दूसरे से संबंधित हैं, प्रत्येक प्राणी अतीत में या तो माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र या पुत्री था (इसलिए यह भी संकेत मिलता है कि हमें एक दूसरे के प्रति करुणा रखनी चाहिए, अर्थात् अहिंसा)। एसएन 22:58 बुद्ध क्या हैं? तथागत क्या हैं? एसएन 22.43 अत्तदीपा: स्वयं अपना द्वीप बनो (आत्मनिर्भर) सत्ती - भूत-प्रेत के प्रभाव को कैसे रोकें? एसएन 35.115 मरपासा - मारा (राक्षस, शैतान, मृत्यु, धन, रोग, दुःख, बुराई आदि का स्वामी) की शक्तियाँ क्या हैं? एसएन 36.4 पाताल सूत्र: अथाह खाई क्या है? एसएन 36.1 समाधि क्या है? एसएन 47.41

आमत सूत्र: अमर आनंद; अमरता SN 56.11 धम्मचक्कप्पवत्तना सूत्र: धम्म के चक्र को गतिमान करना SN 56.46 अंधकार सूत्र: अंधकार क्या है SN 51.20 इद्धिपाद-विभंग सूत्र: इद्धि (सिद्धि; आध्यात्मिक शक्तियाँ) का विश्लेषण 22.76 अरहंत (बुद्ध के समान पूर्णतः प्रबुद्ध) क्या हैं ? संयुत्त निकाय कैसे पढ़ें? एक बार में एक ही निकाय को पूरी तरह से पढ़ना बेहतर है क्योंकि इसका विषय और विवरण निरंतरता में है

वग्गास
संयुत्त निकाय में 2,889 प्रवचन हैं, जिन्हें 5 वर्गों (खंडों) और 56 संयुत्तों (समूहों) में वर्गीकृत किया गया है:

अंतर्वस्तु

संयुक्त निकाय संस्करण 2- नया और पूर्ण
भिक्खु बोधि संस्करण से रूपांतरित और मूल पाली से तुलना करते हुए निकटतम अर्थ तक संशोधित, यह सभी के लिए है, विशेष रूप से ध्यान के लिए उपयोगी है।

SN1.सगाथा-वग्गा - श्लोकों का खंड-श्लोक 2 - 5
अध्याय 1: देवताओं/देवदूतों के साथ संवाद (देवतासम्युत्त) {सम्युत्त1}
अध्याय 2: युवा देवताओं के साथ संवाद (देवपुत्तसम्युत्त) {सम्युत्त2}
अध्याय 3: कोसलों के साथ संवाद (कोसलसम्युत्त) {सम्युत्त3}
अध्याय 4: मृत्यु के देवता मार के साथ संवाद (मारसम्युत्त) {सम्युत्त4}
अध्याय 5: भिक्षुणियों के साथ संवाद (भिक्खुनीसम्युत्त) {सम्युत्त5}
अध्याय 6: ब्रह्माओं/प्रधानदेवों के साथ संवाद (ब्रह्मसम्युत्त) {सम्युत्त6}
अध्याय 7: ब्राह्मणों/पुजारियों के साथ संवाद (ब्राह्मणसम्युत्त) {सम्युत्त7}
अध्याय 8: वंगीसा के साथ संवाद (वंगीसासम्युत्त) {संयुत्त8}
अध्याय9: जंगल में जुड़े हुए प्रवचन (वनसंयुत्त) {संयुत्त9}
अध्याय10: यक्खों/आत्माओं के साथ जुड़े हुए प्रवचन (यक्खासंयुत्त) {संयुत्त10}
अध्याय11: देवताओं/स्वर्गदूतों के राजा सक्क[इंद्र] के साथ जुड़े हुए प्रवचन (सक्कसमुत्त) {संयुत्त11}

SN2.निदाना-वग्गा - कारण-क्रिया पर अनुभाग 224
अध्याय 1: कार्य-कारण पर जुड़े हुए प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}
अध्याय 2: निर्णायक पर जुड़े हुए प्रवचन (अभिसमयसंयुत्त) {संयुत्त-13}
अध्याय 3: तत्वों पर जुड़े हुए प्रवचन (धातुसंयुत्त) {संयुत्त-14}
अध्याय 4: खोजे जाने योग्य शुरुआत के बिना (अनामतग्गससंयुत्त) {संयुत्त-15}
अध्याय5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-16}
अध्याय6: लाभ और सम्मान पर जुड़े हुए प्रवचन (लाभसक्करासंयुत्त सं. लाभ-सत्कर-संयुत्त) {संयुत्त-17}
अध्याय7: राहुल (राहुलसमुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-18}
अध्याय8 जुड़े हुए लक्खना के साथ प्रवचन (लक्खनसमुत्त) {संयुत्त-19}

{विकिपिटक}} टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन1-सगाथवग्गा-वेर2
SN1-श्लोकों वाली पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय (संबद्ध प्रवचन) का पहला खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, दूसरा संस्करण है।)
इस खंड में विभिन्न दिव्य एवं अन्य प्राणियों के साथ हुई चर्चाओं का विवरण है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
12,196: प्राप्ति
41: दान
102: शिव देव भगवान बुद्ध से परामर्श करते हैं
124: भोजन में संयम
155: कस्सक - बुराई दुनिया को नियंत्रित करती है
159: गोधिका - निर्वाण बुराई और पुनर्जन्म से सच्ची मुक्ति है
161: मराधितु - बुद्ध ने कामुकता के प्रलोभन पर कैसे विजय प्राप्त की
181: कोकालिका - बुद्धिमानों को आध्यात्मिक लोगों का अपमान नहीं करना चाहिए
212: यौन वासना को कैसे नियंत्रित करें
213: सुभाषित - किस प्रकार की वाणी बोलनी चाहिए
251: सुभाषितजय - देवताओं और राक्षसों के बीच शब्दों का युद्ध
252: कुलवक - धम्म द्वारा देवताओं की विजय
269: संबरिमाय - बुरी जादू/तंत्र नरक की ओर ले जाता है

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

अगला (SN2) >>>>

अंतर्वस्तु

1.1.2.212. आनंद (नंदती)
1.1.2.313. पुत्र के समान कोई नहीं (नथिपुत्तसमा)
1.1.2.414. शासक (खट्टिया सं. क्षत्रिय)
1.1.2.515. बड़ाबड़ाना (सनमाना)
1.1.2.616. उनिंदापन और सुस्ती (निद्दा-तांडी सं. निद्रा-तंद्रा)
1.1.2.717. अभ्यास करना कठिन (दुक्कारा सं. दुष्कर)
1.1.2.818. शर्म की भावना (हिरी)
1.1.2.919. एक छोटा सी पौधा (कुटिका)
1.1.2.1020. समिद्धि
1.1.3(iii) तलवार की धारा (सत्तीवागो)
1.1.3.121. एक तलवार (सत्ती)
1.1.3.222. यह छूता है (फूसती)
1.1.3.323. उछाला हुआ (जाट)
1.1.3.424. मन को वश में करना (मनो-निवारन)
1.1.3.525 अरहंत
1.1.3.626. प्रकाश के स्रोत (पज्ज़ोटा सं. विध्वंस)
1.1.3.727 धाराएँ (सारा)
1.1.3.828. महाधनवान
1.1.3.929. चार पाहि (कटुकक्का)
1.1.3.1030 हिरण के बच्चे (निजंघा)
1.1.4(iv) सतुलपा कार्यस्थल
1.1.4.131. अच्छे (सभी) के साथ
1.1.4.232. कंजूसी (मछरी)
1.1.4.333 अच्छा (साधु)
1.1.4.434 कोई नहीं हैं (नसंती)
1.1.4.535. उज्जहनसन्नी
1.1.4.636 आस्था (सद्ध बिना श्रद्धा)
1.1.4.737 समाया (कॉनकोर्स)
1.1.4.838. पत्थर का टुकड़ा
1.1.4.939 पज्जुन्ना की पुत्री (1) (पज्जुन्नाधितु1)
1.1.4.1040 पज्जुन्ना की बेटी (2)
1.1.5(v) जलता हुआ भाग (अदित्तवग्गो)
1.1.5.141 धधकती हुई (अदित्ता)
1.1.5.242. दान क्या है? (किमदादा)
1.1.5.343 (3) भोजन/अनाज (अन्ना)
1.1.5.444. एक मूल
1.1.5.545 प्रभाव (अनोमा)
1.1.5.646 अप्सराएं (अचरा सं. अप्सरा)
1.1.5.747 वनरोपा बाग मालिक
1.1.5.848. जेतवन
1.1.5.949 कंजूस (मछरी)
1.1.5.1050 घटिकारा
1.1.6(vi) वृद्धावस्था खंड (जारवाग्गो)
1.1.6.151 वृद्धावस्था (जरा)
1.1.6.252 अजरसा (अजरासा)
1.1.6.353 मित्र (मित्र सं. मित्र)
1.1.6.454 समर्थन (वथु)
1.1.6.555. व्यक्ति (1) (1 जनवरी)

1.11.3.2268. कुरूप (दुब्बानिया सं. दुर्वर्न्या)
1.11.3.3269. सांबरी जादू (सांबरिमया)
1.11.3.4270. अतिक्रमण (अक्काया)
1.11.3.5271. नॉनएंगर (अकोढ़ा सं. अक्रोधा)
संयुक्त निकाय:आई.सगाथवग्गा- छंद के साथ

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

सम्युत्त 1: दिव्य प्राणियों/देवदूतों के साथ संवाद (देवतासम्युत्त)
(i) रीड सेक्शन (नाला वग्गा)
1. बाढ़ पार करना (ओघतरना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहा था, भगवान (बुद्ध) के पास आया। पास आकर उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और उनसे कहा,

"हे प्रभु, आपने बाढ़ कैसे पार की?" 1

[बुद्धः]
"हे मित्र, बिना रुके और बिना ज़ोर लगाए मैंने बाढ़ पार की।" 2

[देवता:]
"परन्तु हे प्रभु, आपने बिना रुके और बिना ज़ोर लगाए बाढ़ कैसे पार की?"

[बुद्धः]
“हे मित्र, जब मैं स्थिर हो गया, तब मैं डूब गया; परन्तु जब मैंने संघर्ष किया, तब मैं बह गया। हे मित्र, इसी प्रकार बिना रुके और बिना प्रयास किए मैंने बाढ़ पार की।” 3

[देवता:]
“अंततः बहुत समय बाद मुझे एक ऐसा ब्राह्मण दिखाई दिया जो पूर्णतः तृप्त है। जिसने बिना रुके, बिना प्रयास किए संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।” 4

यही उस देवता ने कहा। 5 गुरु ने स्वीकृति दी। तब उस देवता ने यह सोचकर कि “गुरु ने मुझे स्वीकृति दी है,” भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर वहीं अंतर्धान हो गए।

---

2. मुक्ति (निमोक्खा)
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत), जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा,

"हे प्रभु, क्या आप प्राणियों के लिए मोक्ष, मुक्ति और एकांत जानते हैं?" 6

[बुद्ध:]
"हे मित्र, मैं प्राणियों के लिए मोक्ष, मुक्ति और एकांत जानता हूँ।"

[देवता:]
"पर हे प्रभु, आप प्राणियों के लिए मोक्ष, मुक्ति और एकांत किस प्रकार जानते हैं?"

[बुद्ध:]
"अस्तित्व में आनंद (नंदी/आनंद) के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) द्वारा;
बोध (संज्ञा/संज्ञा) और चेतना (विन्नान/विज्ञान) के विलुप्त होने द्वारा;
संवेदनाओं (वेदना) के निरोध और शमन (उपासमन) द्वारा;
इस प्रकार, हे मित्र, मैं प्राणियों के लिए मुक्ति, मोक्ष और एकांत जानता/जानती हूँ।" 8

---

3. पहुंचना (उपनिया)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखकर,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख प्रदान करें।" 9

[भगवान (बुद्ध):]
"जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखकर,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।" 10

---

4. समय तेजी से बीतता है (Accenti)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"समय उड़ जाता है, रातें तेजी से बीत जाती हैं;
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं। 11
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख लाते हैं।"

[भगवान (बुद्ध):]

"समय उड़ जाता है, रातें तेजी से बीत जाती हैं;
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।"

---

5. कितने काटने चाहिए? (कटिचिंडा)
श्रावस्ती में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"कितने बंधन काटने चाहिए, कितने त्यागने चाहिए; और कितने और विकसित करने चाहिए?
जब कोई भिक्षु कितने बंधन तोड़ देता है; क्या उसे बाढ़ पार करने वाला कहा जाता है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"पाँच बंधन काटने चाहिए, पाँच त्यागने चाहिए; और पाँच और विकसित करने चाहिए।
जो भिक्षु पाँच बंधन तोड़ देता है; उसे बाढ़ पार करने वाला कहा जाता है।" 12

---

6. जागृत (जगरा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"कितने सोते हैं जब दूसरे जागते हैं? कितने जागते हैं जब दूसरे सोते हैं?
कितने से मनुष्य धूल इकट्ठा करता है? कितने से मनुष्य पवित्र होता है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"पांच सोते हैं जब दूसरे जागते हैं; पांच जागते हैं जब दूसरे सोते हैं।
पांच चीजों से मनुष्य धूल इकट्ठा करता है; पांच चीजों से मनुष्य पवित्र होता है।" 13

---

7. प्रवेशित नहीं (अप्पतिविदिता)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जिन्होंने धर्मों (नियमों, मार्ग) को भलीभांति नहीं समझा है; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक सकते हैं;
वे गहरी नींद में सो रहे हैं, अभी तक जागे नहीं हैं; उनके जागने का समय आ गया है।" 14

[भगवान (बुद्ध):]

"जिन्होंने धर्मों को भलीभांति समझा है; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक नहीं सकते,
वे जागृत जन, सही ज्ञान प्राप्त करके; विषम में समरूप बने रहते हैं।" 15

---

8. पूरी तरह से उलझा हुआ (सुसमुत्था)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जो धर्मों (नियमों, मार्ग) के बारे में पूरी तरह से भ्रमित हैं; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक सकते हैं,
वे गहरी नींद में सो रहे हैं, अभी तक जागे नहीं हैं; उनके जागने का समय आ गया है।"

[भगवान (बुद्ध):
"जो धर्मों के बारे में भ्रमित नहीं हैं; जो दूसरों के सिद्धांतों में बहक नहीं सकते,
वे जागृत लोग, सही ढंग से जानकर, विषम में भी समरूप रहते हैं।"

---

9. अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति (मनकामा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"यहाँ अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति को वश में करना संभव नहीं है।
न ही समाधि अवस्था में न रहने वालों के लिए ऋषित्व है।
यद्यपि वन में अकेले रहकर, आलसी (पामदा) अवस्था में,
कोई मृत्युलोक से परे नहीं जा सकता।" 16

[भगवान (बुद्ध):]
"अहंकार का त्याग करके, समाधि अवस्था में रहकर,
उच्च मन से, सर्वत्र मुक्त (मोक्ष/मोक्ष) अवस्था में,
वन में अकेले रहकर, सजग (पामदा) अवस्था में,
कोई मृत्युलोक से परे जा सकता है।" 17

---

10. वन (अरन्ना सं. अरण्य)
श्रावस्ती में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जो घने जंगल में निवास करते हैं; शांत, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं;
दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं; उनका रंग इतना शांत क्यों है?" 18

[भगवान (बुद्ध):]
"वे अतीत पर शोक नहीं करते; न ही वे भविष्य की लालसा करते हैं।
वे वर्तमान में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं; इसलिए उनका रंग इतना शांत है।

भविष्य की लालसा से; अतीत पर शोक करने से,
मूर्ख (बल) सूख जाते हैं और मुरझा जाते हैं; जैसे कटी हुई हरी घास।"

(ii) नंदनावग्गो (स्वर्गीय उद्यान खंड)
11. नंदना (स्वर्गीय उद्यान)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:
"एक बार, भिक्षुओं, तावतिंसा स्वर्ग के एक देवता (देवदूत) नंदनवन में आनंद मना रहे थे, जो दिव्य इंद्रिय सुख के पाँच डोरों से सुसज्जित थे और अप्सराओं के एक दल के साथ थे। उस अवसर पर उन्होंने यह श्लोक कहा:

'वे सुख को नहीं जानते; जिन्होंने नंदनवन को नहीं देखा है,
जो तीस के स्वर्ग से संबंधित, महिमावान देवताओं का निवास स्थान है।'" 19

"जब यह कहा गया, हे भिक्षुओं, तो एक देवता ने दूसरे देवता को श्लोकों में उत्तर दिया:

'क्या तुम नहीं जानते, हे मूर्ख; अरहंतों का वह सिद्धांत?
सभी संस्कार अनित्य हैं; उनका स्वभाव उत्पन्न होना और नष्ट होना है।
उत्पन्न होने के बाद वे समाप्त हो जाते हैं, उनका शमन (उपासमन) आनंदमय है।" 20

---

12. आनंद (नंदती)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों में प्रसन्न होता है।
जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं में प्रसन्न होता है।
प्राप्ति (उपाधि) वास्तव में मनुष्य का आनंद है;
प्राप्ति के बिना मनुष्य को आनंद नहीं मिलता।" 21

[भगवान (बुद्ध):

"जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों के लिए शोक करता है।
जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं के लिए शोक करता है।
प्राप्ति (उपाधि) वास्तव में मनुष्य का शोक है;
प्राप्ति के बिना मनुष्य को शोक नहीं होता।"

---

13. पुत्र के समान कोई नहीं (नत्थिपुत्तसमा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक कहा:

“पुत्र के प्रेम के समान कोई प्रेम नहीं; पशुओं के समान कोई धन नहीं।
सूर्य के समान कोई प्रकाश नहीं; जल में सागर सर्वोपरि है।” 22

[भगवान (बुद्ध):]
“स्वयं के प्रेम के समान कोई प्रेम नहीं; अन्न के समान कोई धन नहीं।
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न संस्कृत प्रज्ञा) के समान कोई प्रकाश नहीं; जल में वर्षा सर्वोपरि है।”

---

14. शासक (खट्टिया सं. क्षत्रिय)
(देवता:)
"दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में क्षत्रिय (शासक/योद्धा) श्रेष्ठ है; चौपायों में बैल श्रेष्ठ है;
कुंवारी कन्या (कुंवारी) पत्नियों में श्रेष्ठ है; और प्रथम पुत्र पुत्रों में श्रेष्ठ है।" 23

(बुद्ध:)
"दो पैरों पर चलने वाले प्राणियों में बुद्ध श्रेष्ठ हैं; चौपायों में घोड़ा श्रेष्ठ है;
आज्ञाकारी स्त्री पत्नियों में श्रेष्ठ है; और कर्तव्यनिष्ठ बालक पुत्रों में श्रेष्ठ है।"

---

15. बड़बड़ाना (सनमाना)
(देवता:)
"जब दोपहर होती है और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल वन भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना भयानक लगता है!" 24

(बुद्ध:)
"जब दोपहर होती है और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल वन भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना आनंददायक लगता है!"

---

16. उनींदापन और सुस्ती (निद्दा-तांडी सं. निद्रा-तंद्रा)
(देवता)
"नींद आना, सुस्ती, आलस्य; भोजन के बाद असंतोष, आलस्य;
इसी कारण प्राणियों के बीच; श्रेष्ठ मार्ग प्रकट नहीं होता।"

(बुद्ध)
"नींद आना, सुस्ती, आलस्य; भोजन के बाद असंतोष, आलस्य;
ऊर्जा (वीर्य) से इन्हें दूर किया जा सकता है; तब श्रेष्ठ मार्ग स्पष्ट हो जाता है।" 25

---

17. अभ्यास करना कठिन (दुक्कारा सं. दुष्कर)

(देवता)
"तपस्वी जीवन का अभ्यास करना कठिन है
और अयोग्य व्यक्ति के लिए इसे सहन करना भी कठिन है।
क्योंकि इसमें अनेक बाधाएँ हैं
जिनमें मूर्ख (बल) व्यक्ति विफल हो जाता है।"

(बुद्ध) " यदि कोई अपने मन को वश में न रखे तो
वह कितने दिन तपस्वी जीवन का अभ्यास कर सकता है ? वह अपने इरादों के वश में रहकर हर कदम पर असफल होगा । 26 जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को अपने खोल में समेट लेता है, स्वतंत्र, दूसरों को परेशान न करते हुए, पूरी तरह से तृप्त, एक भिक्षु किसी को दोष नहीं देता।" 27

---

18. शर्म की भावना (हिरी)
(देवता:)
"क्या संसार में कोई ऐसा व्यक्ति है; जो लज्जा की भावना से विवश हो;
जो निंदा से दूर रहता हो; जैसे एक अच्छा घोड़ा चाबुक से दूर रहता है?" 28

(बुद्ध:)
"बहुत कम हैं वे जो लज्जा की भावना से विवश हैं; जो सदा ध्यानमग्न रहते हैं;
बहुत कम हैं, जो दुखों के अंत तक पहुँचकर विषम में समभाव बनाए रखते हैं।"

---

19. एक छोटी सी झोपड़ी (कुटिका)
(देवता:)
"क्या तुम्हारे पास कोई छोटी सी कुटिया नहीं है? क्या तुम्हारे पास कोई छोटा सा घोंसला नहीं है?
क्या तुम किसी बंधन में नहीं फंसे हो? क्या तुम बंधन से मुक्त हो?"

(बुद्ध:)
"निश्चित रूप से मेरे पास कोई छोटी सी कुटिया नहीं है; निश्चित रूप से मेरे पास कोई छोटा सा घोंसला नहीं है,
निश्चित रूप से मेरे किसी बंधन में नहीं फंसे हैं; निश्चित रूप से मैं बंधन से मुक्त हूँ।" 29

"तुम्हें क्या लगता है मैं छोटी सी कुटिया किसे कहता हूँ? तुम्हें क्या
लगता है मैं छोटे से घोंसले को किसे कहता हूँ? तुम्हें क्या लगता है मैं बंधन किसे कहता हूँ?" 30

"तुम माँ को छोटी सी कुटिया कहते हो; पत्नी को छोटा सा घोंसला कहते हो,
पुत्रों को बंधन कहते हो; तृष्णा को तुम बंधन कहते हो।"

"अच्छा है कि तुम्हारे पास कोई छोटी सी कुटिया नहीं है; अच्छा है कि तुम्हारे पास कोई छोटा सा घोंसला नहीं है,
अच्छा है कि तुम्हारे किसी बंधन में नहीं फंसे हैं; अच्छा है कि तुम बंधन से मुक्त हो।"

---

20. समिद्धि

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में गर्म झरनों के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य समिद्धि भोर होते ही उठकर गर्म झरनों में स्नान करने गए। गर्म झरनों में स्नान करके वापस आने पर वे एक वस्त्र धारण किए अपने अंगों को सुखा रहे थे।

फिर, जब रात हो गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवी (देवदूत), जो पूरे गर्म झरनों को प्रकाशित कर रही थीं, पूज्य समिद्धि के पास आईं। पास आकर वे हवा में खड़ी हो गईं और पूज्य समिद्धि को श्लोक में संबोधित किया: 31

"बिना भोग किए भिक्षा मांगते हो; भिक्षु, भोग करने के बाद भिक्षा मत मांगो;
पहले भोग करो, भिक्षु, फिर भिक्षा मांगो; समय को यूं ही बीतने मत दो!"

(समद्धि:)
"मुझे नहीं पता कि समय क्या होगा; समय छिपा हुआ है और दिखाई नहीं देता।
इसलिए, भोग-विलास किए बिना, मैं भिक्षा मांगता हूँ; समय को यूँ ही बीतने न दो!" 32

तब उस देवता ने पृथ्वी पर अवतरित होकर पूज्य समद्धि से कहा: "हे भिक्षु, तुम युवावस्था में ही दीक्षा प्राप्त कर चुके हो, काले बालों वाले बालक, यौवन के वरदान से परिपूर्ण, जीवन के सर्वोपरि काल में, इंद्रिय सुखों में लिप्त हुए बिना। हे भिक्षु, मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद लो; जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, उसे त्याग कर समय लेने वाली चीजों की खोज में मत लगो।"

(समद्धि:)
"हे मित्र, मैंने प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली चीज़ों का त्याग समय लेने वाली चीज़ों के अनुसरण में नहीं किया है। मैंने समय लेने वाली चीज़ों का त्याग प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली चीज़ों के अनुसरण में किया है। क्योंकि हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख काल-क्षय के अधीन हैं, दुख और निराशा से भरे हैं, और उनमें खतरा कहीं अधिक है, जबकि यह धम्म (मार्ग) प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।" 33

(देवता:)
"परन्तु हे भिक्षु, यह कैसे संभव है कि भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख काल-क्षय के अधीन हैं, दुख और निराशा से भरे हैं, और उनमें खतरा कहीं अधिक है? यह कैसे संभव है कि यह धम्म प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है?"

(समद्धि:)
“हे मित्र, मैं नवदीक्षित हूँ, अभी हाल ही में इस धम्म और अनुशासन में आया हूँ। मैं इसका विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता। परन्तु वह भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, राजगृह में गर्म झरनों के उद्यान में निवास कर रहे हैं। उस भगवान (बुद्ध) के पास जाओ और उनसे इस विषय में पूछो। जैसे वे तुम्हें समझाएँ, वैसे ही तुम्हें याद रखना।”

(देवता:)
“हे भिक्षु, उस भगवान (बुद्ध) के पास जाना हमारे लिए आसान नहीं है, क्योंकि वे अन्य प्रभावशाली देवताओं (देवदूतों) से घिरे हुए हैं। 34
यदि तुम उनके पास जाकर उनसे इस विषय में पूछोगे, हम भी धम्म सुनने के लिए साथ आएंगे।

हम भी धम्म सुनने के लिए साथ आएंगे। (समधि:)
“बहुत खूब, मित्र,” पूज्य समिद्धि ने उत्तर दिया। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उस देवता के साथ हुई अपनी पूरी बातचीत बताई (पहले के श्लोक दोहराए गए), और आगे कहा: “यदि उस देवता का कथन सत्य है, पूज्यवर, तो वह देवता निकट ही होंगे।”

यह सुनकर उस देवता ने पूज्य समिद्धि से कहा: “पूछो, भिक्षु! पूछो, भिक्षु! क्योंकि मैं आ गया हूँ।”

तब भगवान (बुद्ध) ने उस देवता को श्लोक में संबोधित किया:

“जो प्राणी व्यक्त की जा सकने वाली बातों को समझते हैं; वे व्यक्त की जा सकने वाली बातों में स्थिर हो जाते हैं।
व्यक्त की जा सकने वाली बातों को पूरी तरह न समझने पर; वे मृत्यु के बंधन में आ जाते हैं। 35

“परन्तु व्यक्त की जा सकने वाली बातों को पूरी तरह समझ लेने पर; वे ‘व्यक्त करने वाले’ की कल्पना नहीं करते।
क्योंकि उनके लिए वह अस्तित्व ही नहीं है; जिससे उनका वर्णन किया जा सके। 36
“यदि तुम समझते हो, हे आत्मा, बोलो।”

(देवता:)
"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ मुझे विस्तार से समझ नहीं आया। कृपया, हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं उनके द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझ सकूँ।"

[भगवान (बुद्ध):]
48 "जो यह सोचता है कि 'मैं बराबर, श्रेष्ठ या बदतर हूँ,' वह
इस कारण विवादों में पड़ सकता है।
परन्तु जो तीनों भेदों में स्थिर है, वह
यह नहीं सोचता कि 'मैं बराबर या श्रेष्ठ हूँ।' 37

"हे आत्मा, यदि तुम समझते हो, तो बोलो।"

(देवता:)
"इस मामले में भी, हे पूज्यवर, मुझे विस्तार से समझ नहीं आया... कृपया, भगवान (बुद्ध) मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं उनके द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझ सकूँ।"

[भगवान (बुद्ध):]
"उन्होंने हिसाब-किताब का त्याग किया, अहंकार नहीं किया; 38
उन्होंने यहाँ मन-शरीर रूप (नामरूप) के लिए तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का नाश किया।
यद्यपि देव और मनुष्य उन्हें
यहाँ और परे, स्वर्गों और सभी लोकों में खोजते हैं,
वे उस एक को नहीं पाते जिसकी तृष्णाएँ कटी हुई हैं, जो
विक्षिप्त है, जो लालसा से मुक्त है।

"यदि तुम समझते हो, आत्मा, बोलो।" (

देवता:) "हे आदरणीय, मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए
इस अर्थ को विस्तार से समझता हूँ : "संपूर्ण संसार में किसी को भी बुराई नहीं करनी चाहिए, न वाणी से, न मन से, न शरीर से। इंद्रिय सुखों का त्याग करके, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) होकर, किसी भी ऐसे मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहिए जो कष्टदायी और हानिकारक हो।" 39

(iii) तलवार अनुभाग (सत्तीवागो)
21. एक तलवार (सत्ती)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती अवस्था में रहना चाहिए; कामुक वासना (राग) का त्याग करना चाहिए।"

[भगवान (बुद्ध):]
"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती अवस्था में रहना चाहिए; शरीर-पहचान के दृष्टिकोण (सक्कया-दित्थी) का त्याग करना चाहिए।" 40

---

22. यह छूता है (फुसती)
(देवता:)
"जो स्पर्श नहीं करता, उसे यह स्पर्श नहीं करता; परन्तु जो स्पर्श करता है, उसे स्पर्श करता है।
अतः यह स्पर्श करने वाले को स्पर्श करता है; उस व्यक्ति को जो किसी निर्दोष व्यक्ति पर अत्याचार करता है।" 41

(बुद्ध:)
"यदि कोई किसी निर्दोष व्यक्ति,
किसी पवित्र और निष्कलंक व्यक्ति पर अत्याचार करे, तो
बुराई उसी मूर्ख पर वापस आ पड़ती है,
जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।" 42

---

23. उलझा हुआ (जाट)
(देवता:)
"अंदर भी उलझन, बाहर भी उलझन; यह पीढ़ी उलझन में फंसी हुई है।
हे गौतम, मैं आपसे यह पूछता हूँ; इस उलझन को कौन सुलझा सकता है?" 43

(बुद्ध:)
"शील में स्थिर, बुद्धिमान, चित्त विकसित करने वाला और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला,
उत्साही और विवेकशील भिक्षु; वही इस उलझन को सुलझा सकता है। 44

"जिनके लिए राग और द्वेष, अज्ञान सहित, दूर हो गए हैं।
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं; उनके लिए यह उलझन सुलझ गई है।" 45

"जहाँ मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है (समाधि/सम्मोहन अवस्था में);
वहाँ उसका कार्य बिना किसी अवशेष के रुक जाता है। और न ही स्वरूप का आक्षेप (पतिघा) और बोध (सन्ना संस. संग्या); यहीं यह उलझन टूट जाती है।" 46

नोट: ध्यान में रहते हुए आनंदमय पारलौकिक अवस्थाओं का अनुभव होता है जिन्हें समाधि/झान/ज़ेन/सम्मोहन कहते हैं। उच्चतर अवस्थाओं में, तीव्र आनंद के कारण, व्यक्ति शरीर के बोध का अनुभव करना बंद कर देता है। इसके अलावा, जब व्यक्ति इस आंतरिक आनंद में रहना सीख जाता है, तो वह स्वरूपों (लिंग आदि) पर आधारित आकर्षणों की इच्छा नहीं रखता।

---

24. मन को वश में करना (मनो-निवारण)
(देवता):
"मन को जिस भी चीज से वश में कर लिया जाए,
उससे कोई दुख नहीं होता।

मन को हर चीज से वश में कर लेने से
सभी दुखों से मुक्ति मिल जाती है।"

(बुद्ध): " मन को वश में करने पर
उसे हर चीज से वश में करने की आवश्यकता नहीं होती । जिस भी चीज से बुराई उत्पन्न होती है, उसी से मन को वश में कर लेना चाहिए।" 47

---

25 अरहंत
(देवता:)
"यदि कोई भिक्षु अरहंत हो,
और उसके सारे दोष दूर हो गए हों, और वह अंतिम शरीर धारण करे,
तो क्या वह फिर भी कहेगा, 'मैं बोलता हूँ'?
और क्या वह कहेगा, 'वे मुझसे बोलते हैं'?" 48

(बुद्ध:)
"यदि कोई भिक्षु अरहंत हो,
और उसके सारे दोष दूर हो गए हों, और वह अंतिम शरीर धारण करे, तो
वह फिर भी कह सकता है, 'मैं बोलता हूँ',
और वह कह सकता है, 'वे मुझसे बोलते हैं'।
कुशल, संसार की भाषा का ज्ञाता,
वह ऐसे शब्दों का प्रयोग मात्र भावार्थ के रूप में करता है।" 49

"जब कोई भिक्षु अरहंत हो,
और उसके सारे दोष दूर हो गए हों, और वह अंतिम शरीर धारण करे,
तो क्या यह अहंकार के कारण है
कि वह कहेगा, 'मैं बोलता हूँ',
या कहेगा, 'वे मुझसे बोलते हैं'?" 50

"जिसने अहंकार का त्याग कर दिया है, उसके लिए कोई गाँठ नहीं रहती;
उसके लिए अहंकार की सभी गाँठें नष्ट हो जाती हैं।
यद्यपि ज्ञानी ने कल्पना को पार कर लिया है, [15]
फिर भी वह कह सकता है, 'मैं बोलता हूँ,'
वह यह भी कह सकता है, 'वे मुझसे बोलते हैं।'
कुशल, संसार की भाषा का ज्ञाता,
वह ऐसे शब्दों का प्रयोग मात्र भाव-भंगिमाओं के रूप में करता है।" 51

टिप्पणी: अरहंत अवस्था समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन की उच्चतम (9वीं) अवस्था में प्राप्त होती है और यह बुद्ध के समतुल्य अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति 'मैं' की भावना खो देता है क्योंकि यह सार्वभौमिक, अनंत और पारलौकिक हो जाती है (संभवतः विज्ञान की 'अंधकारमय ऊर्जा' अवधारणा की अवस्था के समतुल्य)।

---

26. प्रकाश के स्रोत (पज्जोटा सं. प्रज्वलित)
(देवता:)

65 "संसार में प्रकाश के कितने स्रोत हैं; जिनसे संसार प्रकाशित होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

(बुद्ध:)
"संसार में प्रकाश के चार स्रोत हैं; पाँचवाँ यहाँ नहीं पाया जाता।
सूर्य दिन में चमकता है; चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है,

और आग जगह-जगह भड़कती है; दिन और रात दोनों समय।
परन्तु बुद्ध प्रकाशमानों में श्रेष्ठ हैं; वे अतुलनीय प्रकाश हैं।"

नोट: यहाँ बुद्ध से संबंधित प्रकाश दिव्य, पारलौकिक और जागृत लोगों द्वारा अनुभव किया जाने वाला है, अर्थात् समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन का अनुभव करने वाले।

---

27 धाराएँ (सारा)
(देवता:)
"धाराएँ कहाँ से वापस मुड़ जाती हैं? चक्र कहाँ घूमना बंद कर देता है?
मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) कहाँ समाप्त हो जाता है; कहाँ शेष नहीं रहता?"

(बुद्ध:)
"जहाँ जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु; जड़ नहीं पकड़ पाते;
यहीं से धाराएँ वापस मुड़ जाती हैं; यहीं चक्र घूमना बंद कर देता है;
यहीं मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है; शेष नहीं रहता।" 52

नोट: यहाँ धारा का तात्पर्य जीवन धारा से है और जागृत लोगों द्वारा इसे निलंबित/पार किया जाता है, अर्थात् वे लोग जो समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन का अनुभव करते हैं, जो कि अतिचेतना की अवस्था है।

---

28. अत्यधिक धनवान (महाद्धान)
(देवता:)
"अत्यधिक धनवान और संपत्ति वाले; यहाँ तक कि देश पर शासन करने वाले क्षत्रिय भी
एक-दूसरे को लालच भरी निगाहों से देखते हैं; इंद्रिय सुखों में तृप्त नहीं होते।

(बुद्ध:)
इन सब में से जो इतने व्यस्त हो गए हैं, जो
जीवन की धारा (भावो) में बहते जा रहे हैं,
उनमें से किसने तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का त्याग कर दिया है?
संसार में कौन व्यस्त नहीं है?"

"अपने घर छोड़कर प्रस्थान कर चुके (दीक्षित, पबज्जित); अपने प्रिय पुत्रों और पशुओं को छोड़कर;
कामवासना (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) को त्यागकर; अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) का निवारण करके
, वे अरहंत जिनके दोष नष्ट हो गए हैं; क्या संसार में वे व्यस्त नहीं हैं?"

नोट: यह अरहंतों, अर्थात् जागृत लोगों के बारे में है।

---

29. चार पहिए (कटुकक्का)
(देवता:)
"चार चक्र और नौ द्वारों वाला; लोभ से भरा और बंधा हुआ।
हे महावीर, दलदल से जन्मा! इससे कैसे बचा जा सकता है?" 55

(बुद्ध:)
"पट्टा और पट्टा काटकर; बुरी इच्छा और लोभ को काटकर;
तृष्णा को जड़ से उखाड़कर; इस प्रकार इससे मुक्ति मिलती है।" 56

नोट: दो हाथ और दो पैर चार चक्र हैं; नौ द्वार शरीर के छिद्र हैं, अर्थात् आंखें, कान, नाक, मुंह और दो निचले छिद्र; मुक्ति पुनर्जन्म से है; और केवल संसार के आकर्षणों की तृष्णा को दूर करके ही इससे मुक्ति मिल सकती है।

---

30 हिरण के बच्चे (एनिजंग्हा)
(देवता:)
"आपके पास आकर हम एक प्रश्न पूछते हैं; उस दुबले-पतले वीर के बारे में जो हिरण के बच्चों के साथ रहता है,
लालच रहित है, कम भोजन पर जीवन यापन करता है; सिंह या नाग की तरह अकेला घूमता है,
इंद्रिय सुखों की चिंता किए बिना; दुखों से मुक्ति कैसे प्राप्त होती है?" 57

(बुद्ध:)
"संसार में इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ हैं; मन को छठी डोरी घोषित किया गया है;
यहाँ इच्छा का त्याग करके; व्यक्ति दुखों से मुक्त हो जाता है।" 58

नोट: पाँच डोरियाँ हैं आँखें, कान, नाक, जीभ और स्पर्श।

(iv) सतुलपा मेजबान
31. अच्छे (सब्भी) के साथ
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो सतुलपा समूह के कई देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। 59 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने एक तरफ खड़े होकर भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध रखना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) को जानने से; मनुष्य बेहतर होता है, कभी बुरा नहीं।"

फिर पांच अन्य देवताओं ने बारी-बारी से भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अपने श्लोक पढ़े:

(देवता 1:)
"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, परन्तु किसी और से नहीं।"

(देवता 2:)
"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से दुःख के बीच दुःख नहीं होता।"

(देवता 3:)
"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से अपने सगे-संबंधियों में प्रकाशमान होता है।"

(देवता 4:)

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से प्राणी अच्छे गंतव्य (सुगति, स्वर्ग आदि) की ओर (पुनर्जन्म) अग्रसर होते हैं।"

(देवता 5:)
"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से प्राणी सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।" 61

तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे
भगवान (बुद्ध), किसने सही कहा है?"

(बुद्ध:)
"तुम सबने एक तरह से सही कहा है। 62 परन्तु मेरी बात भी सुनो:

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर उन देवताओं (देवदूतों) ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखकर वे वहीं अंतर्धान हो गए।

ध्यान दें: यहाँ दुखों से मुक्त होने का अर्थ है निर्वाण, अर्थात् पुनर्जन्मों से मुक्ति और शाश्वत अवस्था।

---

32. कंजूसी (मच्छरी)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। रात होने पर, सतुलपा समूह के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने एक तरफ खड़े होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष यह श्लोक पढ़ा:

"कंजूसी और आलस्य के कारण दान नहीं दिया जाता।
जो जानता है और पुण्य की इच्छा रखता है, उसे अवश्य दान देना चाहिए।" फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध)

की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े : "जिस बात से कंजूस दान न देने पर भयभीत होता है, वही भय दान न देने वाले पर आता है। जिस भूख और प्यास से कंजूस भयभीत होता है, वही नासमझ को इस लोक और परलोक में कष्ट देती है। अतः, कंजूसी दूर करके, इस कलंक पर विजय प्राप्त करने वाले को दान देना चाहिए। 63 पुण्य कर्म ही प्राणियों का सहारा होते हैं, जब वे परलोक में जाते हैं।" फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े : "वे मृतकों में नहीं मरते, जो मार्ग में सहयात्रियों की तरह, अपने पास थोड़ा सा होते हुए भी दान करते हैं; यह एक प्राचीन सिद्धांत है। 64 कुछ लोग अपने पास थोड़े से में से दान करते हैं; अन्य जो धनी होते हैं, वे दान देना पसंद नहीं करते। अपने पास जो थोड़ा सा है, उसमें से दिया गया दान अपने मूल्य से हजार गुना अधिक मूल्यवान होता है।" फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े : "बुरे लोग अच्छे लोगों का अनुकरण नहीं करते; जो कठिन दान करते हैं और कठिन कर्म करते हैं; अच्छे लोगों का धर्म (मार्ग, नियम) पालन करना कठिन है । इसलिए मृत्यु के बाद उनका गंतव्य; अच्छे और बुरे लोगों के लिए भिन्न होता है; बुरे लोग नरक में जाते हैं; अच्छे लोग स्वर्ग के लिए बाध्य होते हैं।" फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे भगवान (बुद्ध), किसने सही कहा?" "आप सभी ने एक तरह से सही कहा है। लेकिन मेरी बात भी सुनिए: (बुद्ध): "यदि कोई धर्म का पालन करता है; गरीबी में रहते हुए भी, यदि वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण करते हुए; अपने पास जो थोड़ा बहुत है उसमें से दान करता है, तो एक लाख दान; हजार दान करने वालों के एक अंश के बराबर भी नहीं हैं।" (उसके जैसे दान का) एक अंश भी नहीं।" 65 तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में पूछा: "

“उनका विशाल और भव्य दान,
क्या धर्मी व्यक्ति के दान के मूल्य को साझा नहीं किया जाता?
एक लाख दान करने वालों में से हज़ार दान करने वालों का क्या?
क्या वे उसके समान दान के अंश के भी बराबर नहीं हैं?

तब भगवान (बुद्ध) ने उस देवता को श्लोक में उत्तर दिया:

(बुद्ध:)
"क्योंकि वे अधर्म में लिप्त होकर दान देते हैं,
वध और हत्या करके, दुःख उत्पन्न करते हैं।

उनका आंसुओं से भरा, हिंसा से लथपथ दान
धर्मात्मा के दान के मूल्य के बराबर नहीं है।

इसीलिए एक लाख दान भी, जो हजार दान देते हैं
, उसके अंश के भी बराबर नहीं हैं।"

---

33 अच्छा (साधु)
श्रावस्ती में। जब रात ढलने लगी, तो सतुलपा समूह के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने, जो एक तरफ खड़ा था, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वचन कहा:

“हे प्रभु, दान देना अच्छा है!
कंजूसी और आलस्य के कारण दान नहीं दिया जाता।
जो जानता है और पुण्य की इच्छा रखता है, उसे अवश्य दान देना चाहिए।” तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति

में यह प्रेरणादायक वचन कहा : “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! और आगे: जब थोड़ा ही हो, तब भी दान देना अच्छा है। कुछ लोग अपने थोड़े से धन से दान देते हैं। कुछ धनी लोग दान देना पसंद नहीं करते।” अपने पास जो थोड़ा-बहुत है, उसमें से दिया गया दान उसके मूल्य से हज़ार गुना अधिक मूल्यवान होता है।” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वचन कहा: “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! चाहे थोड़ा ही क्यों न हो, दान देना अच्छा है। और तो और, श्रद्धा के साथ दिया जाए तो दान देना भी अच्छा है। कहते हैं कि दान देना और युद्ध एक समान हैं। कुछ अच्छे लोग बहुतों पर विजय प्राप्त करते हैं। यदि कोई श्रद्धा के साथ थोड़ा सा भी दान देता है, तो वह परलोक में सुखी हो जाता है।” 66 तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही : “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! भले ही थोड़ा हो, दान देना अच्छा है। श्रद्धा के साथ दान देना भी अच्छा है। और आगे: धार्मिक लाभ का दान भी अच्छा है। जब कोई व्यक्ति परिश्रम और बल से प्राप्त धार्मिक लाभ (वीर्य) का दान देता है , और यम की वेतरानी नदी को पार कर जाता है, तो वह दिव्य अवस्थाओं को प्राप्त करता है।” 67 तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही : “हे प्रभु, दान देना अच्छा है! भले ही थोड़ा हो, दान देना अच्छा है। श्रद्धा के साथ दान देना भी अच्छा है; धार्मिक लाभ का दान भी अच्छा है। और आगे: विवेकपूर्ण दान देना भी अच्छा है। 68 “सद्गुणी (सुगतो) द्वारा विवेकपूर्ण दान की प्रशंसा की जाती है - उन लोगों के लिए जो इस सजीव जगत में दान के योग्य हैं

दिया गया दान बहुत फलदायी होता है ।
जैसे उपजाऊ खेत में बोए गए बीज।

तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वचन कहा :

“हे प्रभु, दान देना अच्छा है!
भले ही थोड़ा हो, दान देना अच्छा है।
श्रद्धापूर्वक दान देना भी अच्छा है;
धार्मिक लाभ का दान भी अच्छा है।
विवेकपूर्वक दान देना भी अच्छा है।

और आगे:

जीवों के प्रति संयम भी अच्छा है।
जो जीव को हानि नहीं पहुँचाता, वह

दूसरों के तिरस्कार के भय से बुराई नहीं करता।
इस कारण वे डरपोक की प्रशंसा करते हैं, बहादुर की नहीं,
क्योंकि भय के कारण अच्छे लोग बुराई नहीं करते।"

तब एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे भगवान, किसने अच्छा कहा?"

"आप सभी ने एक तरह से अच्छा कहा है। लेकिन मेरी बात भी सुनिए:

"निःसंदेह दान की अनेक प्रकार से प्रशंसा की जाती है।
लेकिन धम्म (नियम, सत्य) का मार्ग दान देने से कहीं बढ़कर है।
क्योंकि अतीत में और बहुत पहले भी,
अच्छे और बुद्धिमान लोगों ने निर्वाण प्राप्त किया।" 69

---

34 कोई नहीं हैं (नसंती)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो सतुलपा सेना के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत), एक तरफ खड़े होकर, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"मनुष्यों में कोई स्थायी इंद्रिय सुख नहीं है;
यहाँ केवल वांछनीय वस्तुएँ हैं; जब कोई व्यक्ति इनसे बंधा होता है, तो इनके बीच आलसी (पमादा) हो जाता है; वह मृत्यु के लोक से पुनर्जन्म रहित अवस्था (निर्वाण)
तक नहीं पहुँच पाता। " 70 [एक अन्य देवता:] "दुःख इच्छा से उत्पन्न होता है; पीड़ा इच्छा से उत्पन्न होती है । इच्छा के दूर होने से दुःख दूर हो जाता है; दुःख के दूर होने से पीड़ा दूर हो जाती है।" 71 (बुद्ध:) "वे इंद्रिय सुख नहीं हैं, संसार की सुंदर वस्तुएँ, मनुष्य की कामुकता कामवासना का इरादा है। सुंदर वस्तुएँ संसार में जैसी हैं वैसी ही रहती हैं, परन्तु बुद्धिमान उनके प्रति इच्छा को त्याग देते हैं। 72 "क्रोध का त्याग करना चाहिए, अहंकार को छोड़ देना चाहिए। सभी बंधनों से ऊपर उठना चाहिए। जिसके पास कुछ नहीं है, उसे कोई पीड़ा नहीं सताती। " जो मन-शरीर रूप (नामरूप) का पालन नहीं करता। 73 "उन्होंने हिसाब-किताब का त्याग किया, अहंकार नहीं अपनाया; उन्होंने मन-शरीर रूप (नामरूप) के लिए यहाँ तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) काट डाली। यद्यपि देवता और मनुष्य उन्हें यहाँ और उससे परे, स्वर्गों और सभी लोकों में खोजते हैं, वे उन्हें नहीं पाते जिनकी गांठें कटी हुई हैं, जो विचलित नहीं हैं, जो लालसा से मुक्त हैं।" (आदरणीय मोगराज:) "यदि देवताओं और मनुष्यों ने इस प्रकार मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) को यहाँ या उससे परे नहीं देखा है ," "तो क्या उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए जो उनका आदर करते हैं, मनुष्यों के कल्याण के लिए जीने वाले श्रेष्ठ मनुष्य?" 74 ("मोगराज," भगवान (बुद्ध) ने कहा:) "वे भिक्षु भी प्रशंसा के योग्य हो जाते हैं, "जो उनका आदर करते हैं, जो इस प्रकार मुक्त (विमुक्त) हैं।" परन्तु धम्म (मार्ग, नियम) को जानकर और संशय का त्याग करके, वे भिक्षु बंधनों को तोड़ने वाले भी बन जाते हैं। 75

---

35. फाल्टफाइंडर (उज्जहनसन्नी)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर अनेक "दोषी" देवता (देवदूत), जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए और हवा में खड़े हो गए। [24] तब

एक देवता (देवदूत), हवा में खड़े होकर, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"यदि कोई व्यक्ति स्वयं को एक प्रकार से प्रकट करता है; जबकि वास्तव में वह कुछ और होता है,
तो उसे जो आनंद मिलता है वह चोरी से प्राप्त होता है; जैसे किसी धोखेबाज जुआरी का लाभ।" [24]

(एक अन्य देवता:)
"जैसा करोगे वैसा बोलो; जैसा न करोगे वैसा मत बोलो।
बुद्धिमान व्यक्ति उस व्यक्ति को भली-भांति पहचान लेता है; जो अपने उपदेशों का पालन नहीं करता।"

(बुद्ध:)
"केवल बोलने से नहीं, न ही केवल सुनने से,
इस दृढ़ अभ्यास मार्ग पर प्रगति हो सकती है,
जिसके द्वारा ज्ञानी, ध्यानी, मार (शैतान) के बंधन से मुक्त होते हैं।

वास्तव में, ज्ञानी लोग दिखावा नहीं करते; क्योंकि वे संसार के मार्ग को समझ चुके हैं।
ज्ञान से ज्ञानी लोग निर्वाण प्राप्त करते हैं; वे संसार से आसक्ति को पार कर चुके हैं।"

तब वे देवता (देवदूत) पृथ्वी पर उतरकर भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्यवर, हमसे एक अपराध हो गया, क्योंकि हम इतने नासमझ, इतने मूर्ख और इतने अकुशल थे कि हमने सोचा कि हम भगवान (बुद्ध) पर आक्रमण कर सकते हैं।" "भगवान (बुद्ध) हमें हमारे इस अपराध के लिए क्षमा करें, ताकि भविष्य में हम संयम बरतें।"

तब भगवान (बुद्ध) मुस्कुराए। 78 वे देवता और भी अधिक दोष पाते हुए वायु में उड़ गए। एक देवता (देवदूत) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"यदि कोई क्षमा न करे; उन लोगों को जो अपराध स्वीकार करते हैं,
क्रोधित हृदय से, घृणा से ग्रस्त होकर; तो वह गहरी शत्रुता पालता है।"

(बुद्ध:)
"यदि कोई अपराध न होता; यदि यहाँ कोई भटकना न होता।
और यदि शत्रुता समाप्त हो जाती; तो यहाँ कोई निर्दोष होता।" 79

(एक देवता:)
"किसके लिए कोई अपराध नहीं हैं? किसके लिए कोई भटकना नहीं है?
कौन भ्रम में नहीं पड़ा है?" और वह ज्ञानी कौन है जो सदा ध्यानमग्न रहता है?

(भगवान (बुद्ध):)
"तथागत, जो प्रबुद्ध हैं, समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से परिपूर्ण हैं:
उनके लिए कोई पाप नहीं है, उनके लिए कोई भटकाव नहीं है;
वे भ्रम में नहीं पड़े हैं, और वे ही ज्ञानी हैं, जो सदा ध्यानमग्न रहते हैं।

यदि कोई पाप स्वीकार करने वालों को क्षमा नहीं करता, तो
क्रोधित हृदय से, घृणा से ग्रस्त होकर, वह प्रबल शत्रुता पालता है। "
मैं उस शत्रुता में प्रसन्न नहीं होता; अतः मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा करता हूँ।

---

36 आस्था (सद्ध बिना श्रद्धा)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। रात होने पर, सतुलपा सेना के अनेक देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और जिनसे पूरा जेतवन प्रकाशित हो रहा था, भगवान (बुद्ध) के पास आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तभी एक देवता (देवदूत) ने एक तरफ खड़े होकर
भगवान (बुद्ध) के समक्ष यह श्लोक पढ़ा:

"विश्वास मनुष्य का साथी है;
यदि अविश्वास बना न रहे,
तो यश और यश प्राप्त होता है,
और वह शरीर त्यागकर स्वर्ग जाता है।" फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध)

की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया : 80 "क्रोध का त्याग करो, अहंकार को छोड़ दो। सभी बंधनों से मुक्त हो जाओ। जो कुछ भी नहीं रखता, जो मन-शरीर रूप (नामरूप) से आसक्त नहीं है, उसे कोई बंधन परेशान नहीं करता।" 81 (एक अन्य देवता:) "बचकाना (नासमझ) लोग, जिनमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) नहीं होती, आलस्य (पमदा) में लिप्त रहते हैं। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति सतर्कता (पप्पमदा) को अपना सर्वोपरि खजाना मानता है। आलस्य के आगे मत झुको; इंद्रिय सुख (नंदी/आनंद) से अंतरंग मत रहो। सचेत रहने वाले, ध्यान करके, परम सुख (सुख) प्राप्त करते हैं।"

---

37 समाया (कॉन्कोर्स)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच कपिलवस्तु के विशाल वन में, पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिनमें से सभी अरहंत थे। 82 और दस लोकों (दशलोक-धातु) के अधिकांश देवता भगवान (बुद्ध) और भिक्षु संघ के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए थे। तब शुद्ध लोकों (शुद्धवास) के चार देवदूतों के मन में यह विचार आया: 83
"भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के विशाल वन में शाक्यों के बीच एक बड़े भिक्षु संघ के साथ निवास कर रहे हैं, जिसमें पाँच सौ अर्हंत भिक्षु हैं। दस लोकों के अधिकांश देवता भगवान (बुद्ध) और भिक्षु संघ के दर्शन करने के लिए एकत्रित हुए हैं। आइए हम भी भगवान (बुद्ध) के पास जाएँ और उनकी उपस्थिति में अपना-अपना श्लोक बोलें।"

फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही वे देवता शुद्ध लोकों (शुद्धवास) के देवदूतों के बीच से लुप्त हो गए और भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। तब उन देवताओं ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर, एक देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जंगल में एक विशाल सभा हो रही है; देवों का समूह एकत्रित हुआ है।
हम इस धर्म सभा में आए हैं; अजेय संघ के दर्शन करने के लिए।"

फिर दूसरे देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"वहाँ भिक्षु समाधि अवस्था में हैं; उन्होंने अपने मन को स्थिर कर लिया है।
सारथी की तरह जो लगाम थामे रहता है; ज्ञानी अपनी इंद्रियों की रक्षा करते हैं।" फिर तीसरे देवता ने भगवान (बुद्ध)

की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा : "बंजरता को चीरकर, चौखट को काटकर; इंद्रियों के स्तंभ को उखाड़कर, अविचलित। वे शुद्ध और निर्मल विचरण करते हैं; युवा नागों को दूरदर्शी ने भली-भांति वश में कर लिया है।" 84 फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा : "जो बुद्ध की शरण में गए हैं; वे दुख के लोक में नहीं जाएंगे। मानव शरीर त्यागने पर; वे देवताओं की सेना को भर देंगे।" 85

---

38. पत्थर का टुकड़ा (सकालिका)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में मद्दकुच्ची हिरण उद्यान (मिगदाये) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) के पैर में पत्थर का टुकड़ा लग गया। 86 भगवान (बुद्ध) को तीव्र पीड़ा हुई - शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) जो कष्टदायक, कष्टदायी, तीखी, चुभने वाली, पीड़ादायक और अप्रिय थीं। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए, बिना विचलित हुए उन्हें सहन किया। फिर भगवान (बुद्ध) ने अपने बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़ा और एक पैर को दूसरे पर रखकर सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए।

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो सतुलपा सेना के सात सौ देवता (देवदूत), जो अत्यंत सुंदर थे और पूरे मद्दकुच्ची हिरण उद्यान (मिगदाये) को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए।

तब एक देवता (देवदूत) ने, एक तरफ खड़े होकर,
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही: “हे प्रभु, तपस्वी गौतम वास्तव में एक नाग हैं! और जब वेदनाएँ पीड़ादायक, कष्टदायक, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक और अप्रिय
शारीरिक संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं , तो वे नागों के समान भाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोधगम्य होकर, बिना विचलित हुए उन्हें सहन करते हैं।” 87 फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणाप्रद वाणी कही: “सन्यासी गौतम वास्तव में सिंह के समान हैं , हे प्रभु ! और जब पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, कष्टदायक और अप्रिय शारीरिक संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं, तो वे अपने सिंह समान स्वभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर, बिना विचलित हुए उन्हें सहन करते हैं। ” फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरणादायक वाणी कही : "सन्यासी गौतम वास्तव में एक श्रेष्ठ बैल हैं, हे प्रभु! और जब कष्टदायी... अप्रिय शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होती हैं, तो वे अपने श्रेष्ठ बैल के स्वभाव से उन्हें ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) रखते हुए, बिना विचलित हुए सहन करते हैं।" फिर एक अन्य देवता ने यह प्रेरणादायक वाणी कही...
सहन करते हैं।”

हे प्रभु, बोझ ढोने वाले पशु! और जब कष्टदायी... अप्रिय शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होती हैं, तो वे अपने बोझ ढोने वाले पशु के स्वभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) रखते हुए, बिना विचलित हुए उन्हें सहन करते हैं। फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति

में यह प्रेरित वाणी कही : " हे प्रभु, तपस्वी गौतम वास्तव में वश में हैं!" और जब शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होती हैं जो पीड़ादायक, कष्टदायक, तीखी, चुभने वाली, कष्टदायी और अप्रिय होती हैं, तो वे अपने संयमित स्वभाव से उन्हें ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोधगम्य (संपजानो) रहते हुए बिना विचलित हुए सहन करते हैं। फिर एक अन्य देवता ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह प्रेरित वाणी कही: "देखो, उनकी समाधि (सम्मोहन) अवस्था कितनी सुविकसित है और उनका मन कितना मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) है - न आगे झुका है, न पीछे झुका है, और न ही किसी बलपूर्वक दमन से अवरुद्ध या नियंत्रित है!88 यदि कोई यह सोचे कि ऐसे नाग पुरुष, ऐसे सिंह पुरुष, ऐसे श्रेष्ठ नस्ल के पुरुष, ऐसे श्रेष्ठ बैल, ऐसे बोझ ढोने वाले जानवर , ऐसे संयमित पुरुष का अपमान किया जा सकता है - तो यह दृष्टिहीनता के अलावा और क्या कारण हो सकता है ?" यद्यपि ब्राह्मण पाँच वेदों में पारंगत हैं; सौ वर्षों तक तपस्या करते हैं, फिर भी उनका मन नहीं सही मायने में मुक्त; नीच स्वभाव वाले पार तट तक नहीं पहुँच पाते। 89 वे भोग-विलास (तन्हा संस्कृत) के वश में रहते हैं, व्रतों और नियमों से बंधे होते हैं; सौ वर्षों तक कठोर तपस्या करते हैं। परन्तु उनका मन सही मायने में मुक्त नहीं होता; नीच स्वभाव वाले पार तट तक नहीं पहुँच पाते। यहाँ अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति को वश में करना संभव नहीं; समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाले के लिए ऋषित्व भी नहीं: यद्यपि वन में अकेले रहते हुए, आलसी (पमादा) हो; फिर भी मृत्युलोक पार नहीं कर सकता। अहंकार का त्याग करके, समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से लीन होकर; उच्च मन से, सर्वत्र मुक्त (मोक्ष/मोक्ष) होकर, वन में अकेले रहते हुए, सजग (पमादा) होकर; मृत्युलोक पार कर सकता है।

---

39 पज्जुन्ना की पुत्री (1) (पज्जुन्नाधितु1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो पज्जुन्न की पुत्री कोकनादा, जो अत्यंत सुंदर थी और पूरे वन को प्रकाशित कर रही थी, भगवान (बुद्ध) के पास आई। 90 पास आकर, उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ी हुई, और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया: 91

"वैशाली के वनों में निवास करते हुए; मैं बुद्ध, जो प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, की पूजा करती हूँ;

मैं कोकनादा हूँ, कोकनादा, पज्जुन्न की पुत्री। 92

"पहले मैंने केवल यही सुना था कि धम्म (मार्ग, नियम); दूरदर्शी द्वारा प्राप्त किया गया है;
लेकिन अब मैं इसे प्रत्यक्षदर्शी के रूप में जानती हूँ; जब ऋषि, सौभाग्यशाली (सुगतो), उपदेश देते हैं।"

"वे अज्ञानी लोग जो धर्म की निंदा करते फिरते हैं,
वे भयानक रोरुवा नरक में जाते हैं और लंबे समय तक कष्ट भोगते हैं। 93

परन्तु वे लोग जो धर्म के प्रति शांति और स्वीकृति रखते हैं,
शरीर त्यागने पर देवदूतों की सेना में विलीन हो जाते हैं।" 94

---

40 पज्जुन्ना की बेटी (2)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में, नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो पज्जुन्न की (छोटी) पुत्री, कोकनादा, जो अत्यंत सुंदर थी और पूरे वन को प्रकाशित कर रही थी, भगवान (बुद्ध) के पास आई। पास आकर उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ी हुई और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े:

"देखो, पज्जुन्न की पुत्री कोकनादा आई।
बिजली की चमक के समान सुंदर।
बुद्ध और धर्म (मार्ग, नियम) का आदर करते हुए,
उसने ये अर्थपूर्ण श्लोक कहे।

यद्यपि धर्म ऐसा है
कि मैं इसका अनेक प्रकार से विश्लेषण कर सकता हूँ,
मैं इसका अर्थ संक्षेप में बताऊँगा,
जितना मैंने इसे याद किया है।" 95 "मनुष्य को समस्त संसार में

किसी भी प्रकार की बुराई नहीं करनी चाहिए, न वाणी से, न मन से, न शरीर से; इंद्रिय सुखों का त्याग करके, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर। उसे ऐसा मार्ग नहीं अपनाना चाहिए जो कष्टदायी और हानिकारक हो।"

(v) जलता हुआ भाग (अदित्तवग्गो)
41 धधकती हुई (अदित्ता)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो एक अत्यंत सुंदर देवता (देवदूत) ने, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहा था, भगवान (बुद्ध) के पास आ पहुँचा। पास आकर, उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ, और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

“जब किसी का घर जल रहा हो; तो जो बर्तन निकाला जाए
वही उपयोगी होता है; वह नहीं जो अंदर जलकर रह जाए।

“इसी प्रकार जब संसार बुढ़ापे और मृत्यु की आग से जल रहा हो;
तो दान देकर अपनी संपत्ति निकाल लेनी चाहिए; दान की गई संपत्ति का सदुपयोग होता है।”

दान से सुखद फल मिलता है; परन्तु जो दान नहीं किया जाता, उससे नहीं।
चोर उसे चुरा ले जाते हैं, या राजा; वह आग में जल जाता है या खो जाता है।

अंत में मनुष्य अपने शरीर को, अपनी संपत्ति के साथ, त्याग देता है।
यह जानकर, बुद्धिमान व्यक्ति को आनंद लेना चाहिए और दान भी देना चाहिए।
दान देने और अपनी सामर्थ्य के अनुसार आनंद लेने के बाद,
वह निर्दोष होकर स्वर्गलोक जाता है।

---

42. क्या देना है (दान)? (किमदादा)
[एक देवता:]

141 “दान करने से क्या शक्ति मिलती है? क्या दान करने से सौंदर्य मिलता है?
क्या दान करने से आराम मिलता है? क्या दान करने से दृष्टि मिलती है?
इन सबका दाता कौन है? पूछे जाने पर, कृपया मुझे समझाएँ।”

[भगवान (बुद्ध):]
“भोजन दान करने से शक्ति मिलती है; वस्त्र दान करने से सौंदर्य मिलता है;
वाहन दान करने से आराम मिलता है; दीपक दान करने से दृष्टि मिलती है।

निवास दान करने वाला ही सब कुछ का दाता है।
परन्तु धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देने वाला ही अमरता/अमृत का दाता है।”

नोट: धर्म का दान नैतिकता और ध्यान का मार्ग है जो दिव्य ज्ञान और शाश्वत जीवन अर्थात् निर्वाण/मोक्ष की ओर ले जाता है।

---

43 (3) खाद्य/अनाज (अन्ना)
(देवता)
"वे सदा भोजन में आनंद लेते हैं; देव और मनुष्य दोनों।
तो भला कौन सी आत्मा ऐसी हो सकती है जो भोजन में आनंद न ले?" 97

(बुद्ध)
"जब वे विश्वास से दान करते हैं; दृढ़ विश्वास के साथ, तो
दानकर्ता को स्वयं इस लोक और परलोक दोनों में भोजन प्राप्त होता है।

अतः, कंजूसी दूर करके; इस कलंक पर विजय प्राप्त करने वाले को दान करना चाहिए।
पुण्य ही प्राणियों का सहारा होते हैं; परलोक में।"

---

44. एक मूल (एकमूल)
[एक देवता:]
"संत ने उस खाई को पार कर लिया है; जिसकी एक ही जड़ में दो भंवर हैं।
तीन दाग, पाँच विस्तार; बारह भंवरों वाला एक सागर।" 98

---

45 परफेक्ट (अनोमा)
[एक देवता:]
148 "उन्हें देखो जिनका नाम परिपूर्ण है; सूक्ष्म लक्ष्य के द्रष्टा;
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के दाता, इंद्रिय सुखों के आश्रय से अनासक्त।
उस ज्ञानी, सर्वज्ञ को देखो; महान संत को देखो जो श्रेष्ठ मार्ग पर विचरण कर रहे हैं।" 99

---

46 अप्सराएँ (अचरा सं. अप्सरा)
(देवता:)
"अप्सराओं के समूह से गूंजता हुआ; राक्षसों के समूह से प्रेतवाधित!
इस उपवन को 'भ्रमित करने वाला' कहा जाता है, इससे कैसे बचा जा सकता है?" 100

(बुद्ध:)
"उस मार्ग को 'सीधा मार्ग' कहा जाता है; और उसका गंतव्य 'निर्भीक' है।
रथ को निर्भय कहा जाता है; लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं के पहियों से सुसज्जित।

"लज्जा की भावना उसका सहारा है; ध्यान (सती) उसका आवरण है;
मैं धर्म (मार्ग, नियम) को सारथी कहता हूँ; सही दृष्टि आगे बढ़ती हुई। 101

"जिसके पास ऐसा वाहन है; चाहे वह स्त्री हो या पुरुष
, इस वाहन के माध्यम से; निर्वाण के निकट पहुँच जाता है।" 102

नोट: देवता/देवदूत संसार का उल्लेख कर रहे हैं।

---

47 वनरोपा बागान मालिक
(देवता:)
"दिन-रात किसके पुण्य में वृद्धि होती है? वे
कौन हैं जो धर्म में स्थापित और सद्‌गुणों से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाएंगे?"

(बुद्ध:)
"जो उद्यान या उपवन स्थापित करते हैं; जो पुल,
पीने का स्थान और कुआँ बनवाते हैं; जो निवास दान करते हैं...

" उनके पुण्य में दिन-रात वृद्धि होती है;
वे ही स्वर्ग जाएंगे; धर्म में स्थापित और सद्‌गुणों से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाएंगे।"

---

48. जेतवन (जेतवन)
[देवता अनाथपिंडिका:]
"यह वास्तव में जेतवन है; संतों (ऋषियों) का आश्रय स्थल;
धम्म (मार्ग) के राजा द्वारा बसाया गया स्थान; एक ऐसा स्थान जो मुझे आनंद देता है। 104

"कर्म, ज्ञान, धर्म; शील, उत्तम जीवन,
इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं; वंश या धन से नहीं।

"इसलिए जो बुद्धिमान है; अपने हित का ध्यान रखते हुए; उसे
ध्यानपूर्वक (योनिसो) धम्म (मार्ग, नियम) का अध्ययन करना चाहिए; इस प्रकार वह उसमें शुद्ध हो जाता है।

"सारिपुत्त वास्तव में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से संपन्न हैं; सद्‌गुण और आंतरिक शांति से।
यहां तक कि जो भिक्षु पार हो चुके हैं; वे भी अधिकतम उनके समर्थ ही हो सकते हैं।" 105

---

49 कंजूस (मच्छरी)
[एक देवता:]
160 “जो लोग इस संसार में कंजूस हैं; लालची लोग, निंदा करने वाले लोग।
जो लोग दान देने में लगे दूसरों के लिए बाधाएँ उत्पन्न करते हैं,

उन्हें कैसा फल मिलता है? उनका भविष्य कैसा होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?”

[भगवान (बुद्ध):]
162 “जो लोग इस संसार में कंजूस हैं; लालची लोग, निंदा करने वाले लोग।
जो लोग दान देने में लगे दूसरों के लिए बाधाएँ उत्पन्न करते हैं,

वे नरक में, पशुलोक में या यमलोक में पुनर्जन्म ले सकते हैं। 106
“यदि वे मनुष्य रूप में लौटते हैं; तो वे एक गरीब परिवार में जन्म लेते हैं

जहाँ वस्त्र, भोजन, सुख और खेल; बड़ी मुश्किल से प्राप्त होते हैं।
“नासमझ लोग दूसरों से जो भी अपेक्षा करते हैं; वह भी उन्हें नहीं मिलता।
यही इस जीवन का परिणाम है; और भविष्य में एक बुरा भाग्य।”

[एक देवता:]
"हमने आपका कथन इस प्रकार समझा है; हे गौतम, हम एक और प्रश्न पूछते हैं,
जो मनुष्य जन्म लेकर; सौम्य और उदार होते हैं;

बुद्ध और धर्म (मार्ग, नियम) में विश्वास रखते हैं; और संघ के प्रति गहरा आदर रखते हैं,
उन्हें किस प्रकार का फल प्राप्त होता है? उनका भविष्य कैसा होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

[भगवान (बुद्ध):]
"जो मनुष्य जन्म लेकर; सौम्य और उदार होते हैं;
बुद्ध और धर्म में विश्वास रखते हैं; और संघ के प्रति गहरा आदर रखते हैं,
वे स्वर्ग को प्रकाशित करते हैं; जहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ है। 107

"यदि वे मनुष्य जन्म लेते हैं; तो उनका पुनर्जन्म एक समृद्ध परिवार में होता है
जहाँ वस्त्र, भोजन, सुख और खेल; बिना किसी कठिनाई के प्राप्त होते हैं।"

वे उन देवदूतों की तरह आनंदित होते हैं जो दूसरों द्वारा संचित वस्तुओं को नियंत्रित करते हैं। 108
यही इस जीवन का परिणाम है; और भविष्य में एक शुभ गंतव्य (सुगति) है।

---

50 घटिकारा
(पूर्व जन्म में बुद्ध के एक मित्र, जो अब ब्रह्मलोक में अनागामी (पुनर्जन्म न लेने वाले) हैं)

[देवता घटिकारा:]
"सात भिक्षु अविहा (नरक) में पुनर्जन्म लेकर पूर्णतः मुक्त हो गए हैं।
कामवासना (राग) और द्वेष (दोष/द्वेष) का पूर्णतः नाश हो जाने से वे संसार से आसक्ति को पार कर चुके हैं।" 109

[भगवान (बुद्ध):]
"और वे कौन हैं जिन्होंने दलदल पार किया; मृत्युलोक को पार करना इतना कठिन है?
वे कौन हैं जिन्होंने मानव शरीर त्यागकर दिव्य बंधन को पार किया है?" 110

[घटिकारा:]
"उपक और पलगंडा; पुक्कुसती के साथ - ये तीन हैं।
फिर भद्दिया और खंडदेव, और बहुद्रग्गी और सिंहिया।

इन्होंने मानव शरीर त्यागकर दिव्य बंधन को पार किया है।" 111

[भगवान (बुद्ध):]
"तुम उनके बारे में जो शब्द कहते हो, वह अच्छा है; उन लोगों के बारे में जिन्होंने मार (शैतान) के फंदों को त्याग दिया है।
किसका धर्म (मार्ग, नियम) था जिसे समझकर उन्होंने अस्तित्व के बंधन (भावो) को काट डाला?" 112

[घटिकार:]
"यह भगवान (बुद्ध) से अलग नहीं था! यह आपकी शिक्षा से अलग नहीं था!
आपके धर्म को समझकर, उन्होंने अस्तित्व के बंधन (भावो) को काट डाला।

जहाँ मन-शरीर रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है; बिना किसी अवशेष के रुक जाता है,
वहाँ उस धर्म को समझकर, उन्होंने अस्तित्व के बंधन (भावो) को काट डाला।" 113

[भगवान (बुद्ध):]
"तुम जो वाणी बोलते हो, वह गहरी है; समझना कठिन है, ग्रहण करना बहुत कठिन है।
किसका धर्म समझकर, तुम ऐसी वाणी बोलते हो?"

[घटिकार:]
"पूर्व में मैं कुम्हार था; वेकलिंग में घटिकार।
तब मैं अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता था; बुद्ध कश्यप के एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में,

"मैंने यौन संबंध से परहेज किया; मैं ब्रह्मचारी था, कामुक बंधनों से मुक्त था।
मैं तुम्हारा सहपाठी था; अतीत में मैं तुम्हारा मित्र था।

मैं ही वह हूं जो जानता है; ये सात मुक्त भिक्षु,
जिन्होंने कामवासना और द्वेष को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है; संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।"

[भगवान (बुद्ध):]
"ठीक ऐसा ही उस समय था।

[घटिकारा:]
जैसा आप कहते हैं, हे भगवान

[बुद्धः]
अतीत में तुम वेकलिंग में कुम्हार घटिकारा थे।
तब तुम अपने माता-पिता का भरण-पोषण करते थे; बुद्ध कश्यप के एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में,

जिन्होंने यौन संबंध से परहेज किया; तुम ब्रह्मचारी थे, कामुक बंधनों से मुक्त थे।
तुम मेरे सहपाठी थे; "पहले तुम मेरे दोस्त थे।"

ऐसी ही मुलाकात हुई; अतीत के उन दोस्तों के बीच।
दोनों अब आंतरिक रूप से विकसित हो चुके थे; अपने अंतिम शरीर धारण करने वाले। 115

(vi) वृद्धावस्था अनुभाग (जारवाग्गो)
51 वृद्धावस्था (जरा)
[एक देवता:]
"बुढ़ापे के लिए क्या अच्छा है? स्थापित होने पर क्या अच्छा है?

मनुष्य का अनमोल रत्न क्या है? चोरों के लिए क्या चुराना मुश्किल है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"पुण्य (शील) बुढ़ापे के लिए अच्छा है; आस्था (स्थापित होने पर) अच्छी है;
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) मनुष्य का अनमोल रत्न है; दिव्य पुण्य (पुण्य) चोरों के लिए चुराना मुश्किल है।"

---

52 अविनाशी (अजरसा)
[देवता:]
185 "वह क्या है जो क्षय नहीं होता? वह क्या है जो सुरक्षित रहता है?
मनुष्य का अनमोल रत्न क्या है? वह क्या है जिसे चोर नहीं चुरा सकते?" 116

[बुद्ध:]
"शील (पुण्य) क्षय न होने के कारण अच्छा है; आस्था सुरक्षित रहने पर अच्छी है;
प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) मनुष्य का अनमोल रत्न है; दिव्य पुण्य (पुण्य) चोरों द्वारा नहीं चुराया जा सकता।"

---

53 मित्र (मित्र सं. मित्र)
[देवता:]
187 "यात्रा में साथी का मित्र कौन होता है? घर में साथी कौन होता है?
संकट में साथी कौन होता है? भविष्य में साथी कौन होता है?" 117

[बुद्ध:]
188 "यात्रा में साथी का मित्र कारवां होता है; घर में मित्र माता होती है;
जरूरत पड़ने पर साथी बार-बार साथ देता है।
पुण्य कर्म जो किए गए हों; वही भविष्य में मित्र होता है।"

---

54 समर्थन (वत्थु)
[देवता:]
"मनुष्यों का सहारा क्या है? यहाँ सबसे अच्छा साथी कौन है?
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वे अपना जीवन कैसे जीते हैं?"

[बुद्ध:]
"पुत्र मनुष्यों का सहारा हैं; पत्नी सबसे अच्छी साथी है;
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वर्षा से अपना जीवन जीते हैं।" 118

---

55. व्यक्ति (1) (जनवरी 1)
[देवता:]
191 "मनुष्य का निर्माण किससे होता है? उसके भीतर ऐसा क्या है जो उसे विचलित करता रहता है?
संसार में प्रवेश का कारण क्या है? उसका सबसे बड़ा भय क्या है?"

[बुद्ध:]
"मनुष्य की उत्पत्ति तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से होती है; उसका मन ही उसे विचलित करता रहता है;
मनुष्य संसार में प्रवेश करता है; दुख ही उसका सबसे बड़ा भय है।"

---

56. व्यक्ति (2) (जना2)
[देवता:]
"मनुष्य का जन्म किस कारण होता है? उसके पास ऐसा क्या है जो उसके चारों ओर घूमता रहता है?
संसार में प्रवेश का कारण क्या है? वह किससे अभी तक मुक्त नहीं हुआ है?"

[बुद्ध:]
"लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) ही मनुष्य का जन्म है; उसका मन ही उसके चारों ओर घूमता रहता है;
प्राणी संसार में प्रवेश करता है; वह दुख से मुक्त नहीं होता।" [38]

---

57. व्यक्ति (3) (जना3)
[देवता:]
"मनुष्य का निर्माण किससे होता है? उसके भीतर ऐसा क्या है जो उसे त्रस्त करता रहता है?
संसार में प्रवेश किससे होता है? उसका भाग्य किससे निर्धारित होता है?"

[बुद्ध:]
"लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) ही मनुष्य का निर्माण करती है; उसका मन ही उसे त्रस्त करता रहता है;
प्राणी संसार में प्रवेश करता है; कर्म ही उसके भाग्य का निर्धारण करता है।"

---

58. पथभ्रष्ट मार्ग (उपपथ)
[देवता:]
"भटका हुआ मार्ग किसे कहा जाता है? दिन-रात किसका विनाश होता है?
ब्रह्मचर्य का कलंक क्या है? बिना जल का स्नान क्या है?"

[बुद्ध:]
"कामवासना को भटका हुआ मार्ग कहा जाता है; जीवन दिन-रात विनाश की प्रक्रिया से गुजरता है;
स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य का कलंक हैं; यहाँ पुरुष उलझे हुए हैं।
तपस्या और ब्रह्मचर्य; वही बिना जल का स्नान है।" 119

---

59. साझेदार (दुतिया)
[देवता:]
"मनुष्य का साथी क्या है? उसे कौन सिखाता है?
नश्वर प्राणी में आनंद लेने से, सभी दुखों से मुक्ति मिलती है?"

[बुद्ध:]
"विश्वास मनुष्य का साथी है, और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि उसे सिखाती है।
निर्वाण में आनंद लेने से, नश्वर प्राणी सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।"

---

60 कवि
[देवता:]
"श्लोकों का आधार क्या है? उनकी रचना किससे होती है?
श्लोक किस आधार पर टिके होते हैं? श्लोकों का निवास स्थान क्या है?"

[बुद्ध:]
"छंद श्लोकों का आधार है; अक्षर उनकी रचना करते हैं;
श्लोक नामों के आधार पर टिके होते हैं; कवि श्लोकों का निवास स्थान है।" 120

(vii) भारित (अद्धावग्गो)
61 नाम (मन)
[देवता:]
"किस चीज़ ने सब कुछ भारित कर रखा है? सबसे व्यापक क्या है?
वह कौन सा एक धर्म (गुण, नियम) है जो सब कुछ अपने अधीन रखता है?"

[बुद्ध:]
"नाम (मन) ने सब कुछ भारित कर रखा है; नाम (मन) से अधिक व्यापक कुछ भी नहीं है।
नाम (मन) ही वह एक धर्म है जो सब कुछ अपने अधीन रखता है।" 121

---

62 मन (चित्त/चेतना)
[देवता:]
"यह संसार किसके द्वारा चलाया जाता है? किसके द्वारा इधर-उधर घसीटा जाता है?
वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है जो सब कुछ अपने वश में रखता है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार मन द्वारा चलाया जाता है; मन ही इसे इधर-उधर घसीटता है।
मन ही वह एक धर्म है जो सब कुछ अपने वश में रखता है।" 122

---

63 लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
[देवता:]
"यह संसार किसके द्वारा चलाया जाता है? किसके द्वारा इधर-उधर घसीटा जाता है? <88>
वह कौन सा एक धर्म (गुण, नियम) है जो सब कुछ अपने वश में रखता है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) द्वारा चलाया जाता है; तृष्णा के कारण ही यह इधर-उधर घसीटा जाता है।
तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ही वह एक धर्म है जो सब कुछ अपने वश में रखता है।"

---

64 बंधन (संयोजन)
[देवता:]
"यह संसार किस बंधन में जकड़ा हुआ है? इसके आवागमन का साधन क्या है? निर्वाण प्राप्त
करने के लिए हमें किसका त्याग करना चाहिए?"

[बुद्ध:]
210 "यह संसार आनंद से जकड़ा हुआ है; विचार इसके आवागमन का साधन है।
तृष्णा का त्याग करना आवश्यक है; निर्वाण प्राप्त करने के लिए।" 123

---

65 बंधन
[देवता:]
"यह संसार किस बंधन में बंधा है? इसके आवागमन का साधन क्या है?
वह क्या है जिसका त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधनों से मुक्ति मिल सके?" [40]

[बुद्ध:]
"यह संसार आनंद के बंधन में बंधा है; विचार इसके आवागमन का साधन है।
तृष्णा का त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधनों से मुक्ति मिल सके।"

---

66 पीड़ित (अत्तहता)
[देवता:]
"यह संसार किस बात से ग्रस्त है? यह किस चीज़ से घिरा हुआ है?
इसे किस बाण से चोट लगी है? यह सदा किस बात से जलता रहता है?" 124

[बुद्ध:]
214 "यह संसार मृत्यु से ग्रस्त है; वृद्धावस्था से घिरा हुआ है;
तृष्णा के बाण से घायल है; यह सदा इच्छा से जलता रहता है।"

---

67 फँसा हुआ (उदित्त)
[देवता:]
"यह संसार किससे जकड़ा हुआ है? यह किससे घिरा हुआ है? यह
संसार किसमें बंद है? यह संसार किस पर स्थापित है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से जकड़ा हुआ है; यह वृद्धावस्था से घिरा हुआ है; यह
संसार मृत्यु से घिरा हुआ है; यह संसार दुख पर स्थापित है।" 125

---

68 बंद (पिहिता)
[देवता:]
"यह संसार किससे घिरा है? यह संसार किस पर स्थापित है?
यह संसार किसमें फँसा है? यह किससे लिपटा हुआ है?"

[बुद्ध:]
"यह संसार मृत्यु से घिरा है; यह संसार दुख पर स्थापित है;
यह संसार तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) में फँसा है; यह वृद्धावस्था से लिपटा हुआ है।"

---

69 इच्छा (इच्छा)
[देवता:]
"यह संसार किससे बंधा है? किसके दूर होने से यह मुक्त होता है?
वह क्या है जिसका त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधन टूट जाएं?"

[बुद्ध:]
"यह संसार इच्छा से बंधा है; इच्छा के दूर होने से यह मुक्त होता है।
इच्छा ही वह है जिसका त्याग करना चाहिए; ताकि समस्त बंधन टूट जाएं।" [41]

---

70 विश्व (लोका)
[देवता:]
"संसार की उत्पत्ति किससे हुई है? यह किससे घनिष्ठता स्थापित करता है?
(उपदान संस्कृत: आसक्ति) इसी से आसक्त होकर संसार किस बात से व्याकुल होता है?"

[बुद्ध:]
"संसार की उत्पत्ति छह से हुई है (आँखें, कान, नाक, स्वाद, स्पर्श और मन)।
छह से ही यह घनिष्ठता स्थापित करता है;
छह से आसक्त होकर संसार छह बातों से व्याकुल होता है।" 126

(viii) हत्या (चेतवग्गो)
71 हत्या (चेत्वा)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, उस देवता ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा,

"किसे मारकर कोई चैन से सो सकता है? किसे मारकर कोई शोक नहीं करता?
हे गौतम, वह कौन सा धर्म है जिसका वध आप स्वीकृत करते हैं?" 127

[बुद्ध:]
"क्रोध का वध करके व्यक्ति चैन से सो सकता है; क्रोध का वध करके कोई शोक नहीं करता;

हे देवता, क्रोध का वध, जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है;
यही वह वध है जिसकी श्रेष्ठ लोग प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उसका वध करके कोई शोक नहीं करता।" 128

---

72 रथ
[देवता:]
"रथ का प्रतीक क्या है? अग्नि का प्रतीक क्या है?
देश का प्रतीक क्या है? स्त्री का प्रतीक क्या है?" 129 [42]

[बुद्ध:]
"एक ध्वज रथ का प्रतीक है; धुआँ अग्नि का प्रतीक है;
राजा देश का प्रतीक है; पति स्त्री का प्रतीक है।"

---

73 (3) धन (वित्त)
[देवता:]
"मनुष्य का सबसे बड़ा धन क्या है? किसका सही अभ्यास सुख देता है?
वास्तव में सबसे मधुर स्वाद क्या है? जिसे सर्वश्रेष्ठ जीवन जीने वाला कहा जाता है, उसका जीवन कैसा होता है?"

[बुद्ध:]
"यहाँ विश्वास ही मनुष्य का सबसे बड़ा धन है; धर्म (मार्ग, नियम) का सही अभ्यास सुख देता है;
सत्य ही वास्तव में सबसे मधुर स्वाद है; जिसे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से जीवन जीने वाला कहा जाता है, उसका जीवन सर्वश्रेष्ठ होता है।" 130

---

74 वर्षा (वुट्ठी, सं. वृष्टि)
[एक देवता:]
"उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में श्रेष्ठ क्या है? नष्ट होने वाली वस्तुओं में श्रेष्ठ क्या है?
प्रवाहित होने वाली वस्तुओं में श्रेष्ठ क्या है? वक्ताओं में श्रेष्ठ कौन है?"

[एक अन्य देवता:]
"उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में बीज श्रेष्ठ है; नष्ट होने वाली वस्तुओं में वर्षा श्रेष्ठ है; प्रवाहित
होने वाली वस्तुओं में पशु श्रेष्ठ हैं; वक्ताओं में पुत्र श्रेष्ठ है।" 131

[बुद्ध:]
"उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में ज्ञान श्रेष्ठ है; नष्ट होने वाली वस्तुओं में अज्ञान श्रेष्ठ है;
प्रवाहित होने वाली वस्तुओं में संघ श्रेष्ठ है; वक्ताओं में श्रेष्ठ बुद्ध हैं।" 132

---

75 भयभीत (भीता)
[देवता:]
"यहाँ इतने लोग क्यों भयभीत हैं
जबकि मार्ग का उपदेश अनेक अंगों द्वारा दिया जा चुका है? 133
हे गौतम, व्यापक अंतर्दृष्टि वाले, मैं आपसे पूछता हूँ;
किस बात पर दृढ़ रहना चाहिए; ताकि परलोक का भय न रहे?"

[बुद्ध:]
"जिसने वाणी और मन को सही दिशा में निर्देशित किया हो;
शरीर से कोई बुरा कर्म न किया हो ;
पर्याप्त भोजन और पेय के साथ घर में निवास किया हो;
निष्ठावान, सौम्य, उदार और सौम्य हो;
जब कोई इन चार धर्मों पर दृढ़ रहता है;

धर्म (मार्ग, नियम) पर दृढ़ता से दृढ़ रहता है; तो उसे परलोक का भय नहीं रहता।" 134

---

76 क्षय नहीं होता (नजीरति सं. नजीरनति)
[देवता:]
"क्या नष्ट होता है, क्या नहीं नष्ट होता? किसे पथभ्रष्ट मार्ग घोषित किया गया है?
लाभकारी अवस्थाओं में बाधा क्या है? दिन-रात किसका विनाश होता है?
ब्रह्मचर्य का कलंक क्या है? बिना जल का स्नान क्या है?

संसार में कितनी दरारें हैं, जिनमें मन स्थिर नहीं रह पाता?
हम भगवान (बुद्ध) से यही पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

[बुद्ध:]
"मनुष्यों का शरीर नष्ट हो जाता है; उनका नाम और कुल नष्ट नहीं होता।
कामवासना को पथभ्रष्ट मार्ग घोषित किया गया है;

लोभ लाभकारी अवस्थाओं में बाधा है; जीवन दिन-रात नष्ट होता है;
स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य का कलंक हैं; यहीं मनुष्य उलझे रहते हैं।
तपस्या और ब्रह्मचर्य; यही बिना जल का स्नान है।"

संसार में छह प्रकार की कमियाँ हैं; जिनमें मन स्थिर नहीं रह पाता:
आलस्य और सुस्ती (पमादा); आत्मसंयम का अभाव;
उनींदापन और आलस्य; इन कमियों से पूर्णतः बचें।

---

77 संप्रभुता (इस्सरिया)
[देवता:]
"संसार में प्रभुत्व क्या है? सर्वश्रेष्ठ वस्तु कौन सी है?
संसार में जंग लगी तलवार क्या है? संसार में महामारी किसे माना जाता है?

240 "चोरी करने पर किसे गिरफ्तार किया जाता है? और चोरी करने पर किसे प्रिय माना जाता है?
ज्ञानी किसमें आनंदित होते हैं (नंदी/आनंद); जब वह बार-बार जन्म लेता है?"

[बुद्ध:]
"संसार में प्रभुत्व ही प्रभुत्व है 136; स्त्री सर्वश्रेष्ठ वस्तु है;
संसार में क्रोध जंग लगी तलवार के समान है; संसार में चोरों को महामारी माना जाता है। 137

"चोर को चोरी करने पर गिरफ्तार किया जाता है; लेकिन चोरी करने वाला तपस्वी प्रिय होता है।
ज्ञानी तपस्वी में आनंदित होते हैं (नंदी/आनंद); जब वह बार-बार जन्म लेता है।"

---

78 प्रेम (काम)
[देवता:]
"जो अच्छाई से प्रेम करता है, उसे क्या नहीं देना चाहिए? मनुष्य को क्या नहीं त्यागना चाहिए?
जब मोक्ष अच्छा हो तो क्या त्यागना चाहिए; लेकिन जब मोक्ष बुरा हो तो क्या नहीं त्यागना चाहिए?"

[बुद्ध:]
"मनुष्य को स्वयं को नहीं देना चाहिए; उसे स्वयं को नहीं त्यागना चाहिए। 138
मनुष्य को अच्छी वाणी बोलनी चाहिए; बुरी वाणी नहीं बोलनी चाहिए।"

यात्रा के लिए 79 प्रावधान (पाथेय)

[देवता:]
"यात्रा के लिए रसद की व्यवस्था कौन करता है? धन का स्रोत क्या है?
मनुष्य को कौन सी चीज़ इधर-उधर घसीटती है? संसार में ऐसी कौन सी चीज़ है जिसे त्यागना कठिन है?
अनेक प्राणी किस बात से बंधे हैं; जैसे पक्षी फंदे में फंस जाते हैं?"

[बुद्धः]
"विश्वास यात्रा के लिए रसद की व्यवस्था करता है; भाग्य धन का स्रोत है;
इच्छा मनुष्य को इधर-उधर घसीटती है; इच्छा को संसार में त्यागना कठिन है।
इच्छा से अनेक प्राणी बंधे हैं; जैसे पक्षी फंदे में फंस जाते हैं।"

---

80 प्रकाश का स्रोत (पज्जोत संस्कृत: प्रज्योत)
[देवता:]
"संसार में प्रकाश का स्रोत क्या है? संसार में जागृत कौन है?
कर्म से जीवन यापन करने वालों के सहकर्मी कौन हैं? जीवन यापन का मार्ग क्या है?

आलसी और सक्रिय दोनों का पोषण कौन करता है; जैसे एक माँ अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है?
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वे अपना जीवन यापन कैसे करते हैं?"

[बुद्धः]
"प्रकाशित अंतर्दृष्टि (पन्ना) संसार में प्रकाश है; ध्यान (सती) संसार में जागरूकता है;
कर्म से जीवन यापन करने वालों के लिए गायें हैं; जीवन यापन का मार्ग हल है। 139

"वर्षा आलसी और सक्रिय दोनों का पोषण करती है; जैसे एक माँ अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है।
पृथ्वी पर रहने वाले जीव; वर्षा से अपना जीवन यापन करते हैं।"

---

81 बिना संघर्ष के (अराना)
[देवता:]
"इस संसार में कौन शांत है? किसका जीवन व्यर्थ नहीं जाता?
कौन इच्छा को पूर्णतः समझता है? कौन शाश्वत स्वतंत्रता का आनंद लेता है?

माता-पिता और भाई किसकी पूजा करते हैं; जब वह दृढ़ता से स्थापित होता है?
वह कौन है जो नीच कुल का है; जिसे यहाँ क्षत्रिय भी प्रणाम करते हैं?"

[बुद्धः]
"संन्यासी संसार में शांत रहते हैं; तपस्वी जीवन व्यर्थ नहीं जाता;
तपस्वी इच्छा को पूर्णतः समझते हैं; वे शाश्वत स्वतंत्रता का आनंद लेते हैं।

माता-पिता और भाई तपस्वी की पूजा करते हैं; जब वह दृढ़ता से स्थापित होता है। 140
यद्यपि तपस्वी नीच कुल का हो; यहाँ क्षत्रिय भी उसे प्रणाम करते हैं।"

सम्युत्त 2: युवा देवताओं के साथ संबंधित प्रवचन (देवपुत्तसम्युत्त)
(i) प्रथम उप-अध्याय (सूरिया)
82. कस्सपा(1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) कस्सपा, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। 141 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु को ज्ञान तो दिया है, लेकिन
भिक्षु को उपदेश नहीं दिया है।" 142

[बुद्ध:]
"तो कस्सपा, इस बात को स्वयं स्पष्ट करो।" 143

[देवता:]
"उसे सुविचारित परामर्श का अभ्यास करना चाहिए,
और तपस्वी के अभ्यास में,
एकांत में बैठकर,
और मन को शांत करने का अभ्यास करना चाहिए।" 144

युवा देव कस्सपा ने यही कहा। गुरु ने इसे स्वीकार किया। तब युवा देव कस्सपा ने यह सोचकर कि "गुरु ने मुझे स्वीकार कर लिया है," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

---

83. कस्सपा (2)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े होकर, युवा देव कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इस श्लोक का पाठ किया:

"एक भिक्षु को ध्यानमग्न होना चाहिए, जिसका मन मुक्त हो,
यदि वह हृदय की प्राप्ति चाहता है, तो उसे
उसी पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए; संसार और उदय-पतन को जानकर,
उसे मन से उदात्त और अनासक्त होना चाहिए।" 145

---

84. माघ
[देवता:]
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) माघा, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) से श्लोक 146 में कहा:

"किसका वध करके कोई चैन से सोता है? किसका वध करके कोई शोक नहीं करता?
हे गौतम, वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? आप किसका वध करने को उचित मानते हैं?"

[बुद्ध:]
"क्रोध का वध करके व्यक्ति चैन से सोता है; क्रोध का वध करके कोई शोक नहीं करता;
हे वत्रभु (इंद्र), क्रोध का वध; जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है;
यही वह वध है जिसकी श्रेष्ठ जन प्रशंसा करते हैं; क्योंकि उसका वध करके कोई शोक नहीं करता।"

---

85. मगध
श्रावस्ती में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) मगध ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में पूछा,

"संसार में प्रकाश के कितने स्रोत हैं; जिनसे संसार प्रकाशित होता है?
हम भगवान (बुद्ध) से यह पूछने आए हैं; हम इसे कैसे समझें?"

[बुद्ध:]
"संसार में प्रकाश के चार स्रोत हैं; पाँचवाँ यहाँ नहीं पाया जाता।
सूर्य दिन में चमकता है; चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है,

और आग जगह-जगह भड़कती है; दिन और रात दोनों समय।

लेकिन बुद्ध प्रकाशमानों में श्रेष्ठ हैं; वे अतुलनीय प्रकाश हैं।"

---

86. दमाली

श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देवदूत दमाली, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

[देवता:]
"ब्राह्मण को यही करना चाहिए; बिना थके प्रयास करते हुए,
अपनी इंद्रिय-सुखों का त्याग करके; वह अस्तित्व के लिए तरसता नहीं है।" 147

[बुद्ध:]
"हे दमाली, ब्राह्मण के लिए कोई कार्य नहीं है,
क्योंकि ब्राह्मण ने वह कर लिया है जो करना चाहिए।

नदी में पैर जमाने के लिए
मनुष्य को अपने सभी अंगों से बल लगाना पड़ता है;
परन्तु पैर जमाने के बाद, जमीन पर खड़े होने पर
उसे बल लगाने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह पार जा चुका होता है।

" हे दमाली, यह ब्राह्मण के लिए एक उपमा है,
जो दोषमुक्त, विवेकशील ध्यान करने वाला है।
जन्म और मृत्यु के अंत तक पहुँचकर,
उसे बल लगाने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह पार जा चुका होता है। 148

---

87. कामाडा

सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) कामदा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "यह करना कठिन है, हे भगवान! यह करना बहुत कठिन है, हे भगवान!"

[बुद्ध:]
"वे कठिन कार्य भी कर लेते हैं, [हे कामदा,] भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"वे साधक जो सद्गुणों से परिपूर्ण और स्थिर हैं।
जो संन्यासी जीवन में प्रवेश कर लेता है,
उसे सुख मिलता है।"

[देवता:]
"वह प्राप्त करना कठिन है, हे भगवान, अर्थात् संतोष।"

[बुद्ध:]
"वे कठिन कार्य भी प्राप्त कर लेते हैं,
[हे कामदा,] भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"जो मन को शांत करने में आनंदित होते हैं।
जिनका मन दिन-रात
विकास में आनंदित रहता है।"

[देवता:]
"समाधि में जाना कठिन है, हे भगवान, अर्थात् मन।"

[बुद्ध:]
"हे कामदा," भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"जो इंद्रियों को शांत करने में आनंदित होते हैं, वे कठिन समाधि में भी समाधि बना लेते हैं।
मृत्यु के जाल को काटकर,
हे कामदा, श्रेष्ठ जन अपने मार्ग पर चल पड़ते हैं।"

[देवता:]
"हे भगवान (बुद्ध) यह मार्ग अगम्य और ऊबड़-खाबड़ है।" 150

[बुद्ध:]
"यद्यपि मार्ग अगम्य और ऊबड़-खाबड़ है, फिर भी हे कामदा, श्रेष्ठ जन इस पर चलते हैं।
नीच जन ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर सिर के बल गिर पड़ते हैं।
परन्तु श्रेष्ठ जनों का मार्ग समतल है; क्योंकि श्रेष्ठ जन ऊबड़-खाबड़ में भी समरूप होते हैं।"

---

88. पंचलाकंडा
सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) पंचलचंद ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"विस्तृत अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले ने वास्तव में पाया है; कारावास के बीच में द्वार;
ध्यान की खोज करने वाले बुद्ध।
एकांतप्रिय प्रमुख बैल, ऋषि।" 151

[बुद्ध:]
"कैद के बीच में भी वे इसे पाते हैं, [हे पंचलचंद," भगवान (बुद्ध) ने कहा,]
"निर्वाण प्राप्ति के लिए धम्म (मार्ग, नियम)।
जिन्होंने ध्यान (सती) प्राप्त कर लिया है।
वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था में पूर्णतः स्थिर रहते हैं।" 152

---

89. तयाना
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो युवा देव (देवदूत) तायना, जो पूर्व में एक धार्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे, अत्यंत सुंदर थे और संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित करते थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 153 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए, और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"प्रयास लगाकर, धारा को काट दो! हे ब्राह्मण, कामुक इच्छाओं का निवारण करो!
कामुक इच्छाओं का त्याग किए बिना; एक ऋषि एकात्मता प्राप्त नहीं करता। 154

"यदि कोई वह करना चाहता है जो किया जाना चाहिए; तो उसे दृढ़ता से प्रयास करना चाहिए। <112>
क्योंकि एक शिथिल तपस्वी का जीवन; केवल अधिक धूल बिखेरता है।"

"दुराचार को न करना ही बेहतर है; वह कर्म जिसके लिए बाद में पश्चाताप करना पड़ता है।
अच्छा कर्म करना ही बेहतर है; जिसके किए जाने पर पश्चाताप नहीं होता।

जैसे कुश घास को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट जाता है,
वैसे ही गलत तरीके से अपनाया गया तपस्वी जीवन नरक की ओर खींचता है।

लापरवाही से किया गया कोई भी कर्म; कोई भी भ्रष्ट प्रतिज्ञा;
कोई भी ब्रह्मचर्य जीवन जो संदेह पैदा करता है; अच्छा फल नहीं देता।" 155

यह युवा देव तयाना ने कहा। यह कहकर उन्होंने

भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखते हुए
वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने
भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, पिछली रात, जब रात
आगे बढ़ रही थी, युवा देव तयान, जो पूर्व में एक
धार्मिक संप्रदाय के संस्थापक थे... मेरे पास आए... और मेरी उपस्थिति में
उन्होंने ये श्लोक पढ़े:

"प्रयास करके धारा को काट दो!... इससे अधिक फल नहीं मिलता।"

युवा देव तयान ने यही कहा। यह कहकर
उन्होंने मुझे प्रणाम किया और मुझे दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए। भिक्षुओं, तयान के श्लोकों को सीखो।
भिक्षुओं, तयान के श्लोकों में महारत हासिल करो। भिक्षुओं, तयान के श्लोकों को याद रखो
। भिक्षुओं, तयान के श्लोक लाभकारी हैं, वे
ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित हैं।"

---

90. कैंडिमा
श्रावस्ती में। उस समय युवा देव (देवदूत) चंदीमा को असुरों के स्वामी राहु ने पकड़ लिया था। 156 तब, भगवान (बुद्ध) का स्मरण करते हुए, युवा देव चंदीमा ने उस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा:

"हे बुद्ध, आपको प्रणाम! हे वीर, आप सर्वत्र मोक्ष प्राप्त हैं।
मैं बंदी बन गया हूँ; इसलिए कृपया मेरी शरण बनें।"

तब, युवा देव चंदीमा का उल्लेख करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने असुरों के स्वामी राहु को श्लोक में संबोधित किया:

"चंदीमा शरण लेने गया है; तथागत, अरहंत के पास।
हे राहु, चंदीमा को मोक्ष प्रदान करें; बुद्धों को संसार पर दया आती है।"

तब असुरों के स्वामी राहु ने युवा देव चंदीमा को मोक्ष प्रदान किया और शीघ्रता से असुरों के स्वामी वेपचित्ति के पास गए। 157 पास आकर, स्तब्ध और भयभीत होकर, वह एक तरफ खड़ा हो गया। फिर, जब वह वहाँ खड़ा था, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने उसे श्लोक में संबोधित किया:

"हे राहु, तुम इतनी जल्दी क्यों आए? तुमने चंडीमा को क्यों छोड़ा (मोक्ष)?
मानो सदमे में आकर, तुम वहाँ भयभीत क्यों खड़े हो?"

"मेरा सिर सात भागों में फट जाता; जीवित रहते मुझे चैन नहीं मिलता।
यदि बुद्ध के श्लोक का जाप होने पर भी मैं चंडीमा को न छोड़ता।" [51]

---

91. सूर्या
श्रावस्ती पर्व पर, उस अवसर पर युवा देव (देवदूत) सूर्य को असुरों के स्वामी राहु ने बंदी बना लिया था। 158 तब, भगवान (बुद्ध) का स्मरण करते हुए, युवा देव सूर्य ने उस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा:

"हे बुद्ध, आपको प्रणाम! हे वीर, आप सर्वत्र मोक्ष में मुक्त हैं।
मैं बंदी बन गया हूँ; इसलिए कृपया मेरी शरण बनें।"

तब, युवा देव सूर्य का उल्लेख करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने असुरों के स्वामी राहु को श्लोक में संबोधित किया:

"सूर्य शरण लेने गया है; तथागत, अरहंत के पास।
हे राहु, सूर्य को मोक्ष मुक्त करो; बुद्ध संसार के प्रति करुणा रखते हैं।

हे राहु, आकाश में विचरण करते समय;
प्रकाशमान को मत निगलना;
अंधकार में प्रकाश उत्पन्न करने वाले को;
अंधकार में अग्नि शक्ति के चक्र को।"
राहु, मेरे बालक सूर्य को मुक्त करो (मोक्ष प्रदान करो)। 159

तब असुरों के स्वामी राहु ने बालक सूर्य को मुक्त किया और शीघ्रता से असुरों के स्वामी वेपचित्ति के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वेपचित्ति भयभीत होकर एक तरफ खड़े हो गए। तब वेपचित्ति ने उनसे श्लोकों में कहा,

"राहु, तुम इतनी जल्दी क्यों आए? तुमने सूर्य को मुक्त क्यों किया?
तुम जैसे स्तब्ध होकर आए हो, वैसे ही भयभीत होकर क्यों खड़े हो?"

"मेरा सिर सात टुकड़ों में फट जाता; जीवित रहते मुझे शांति नहीं मिलती,
यदि बुद्ध के श्लोकों का जाप करते हुए भी मैंने सूर्य को मुक्त न किया होता।"

(ii) अनाथपिंडिका
92. कैंडिमासा
श्रावस्ती में। फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) चंदीमासा, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"वे निश्चय ही सुरक्षित स्थान पर पहुँचेंगे; जैसे हिरण मच्छर रहित दलदल में।
जिन्होंने ध्यान प्राप्त कर लिया है; जो एकाग्र, विवेकशील और ध्यानमग्न (सतिमा) हैं।" 160

[भगवान (बुद्ध):]
"वे निश्चय ही दूर तट पर पहुँचेंगे; जैसे मछली जाल कटने पर पहुँचती है।
जिन्होंने ध्यान प्राप्त कर लिया है; जो सचेत (अप्पमदा) हैं, जिनके दोष त्याग दिए गए हैं।" 161

---

93. वेंदु (विष्णु के बिना)
सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देवता वेंदु (विष्णु) ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 162

"वे मनुष्य वास्तव में धन्य हैं; जो शुभ पुरुष (सुगतो) की सेवा करते हैं,
गौतम की शिक्षाओं का पालन करते हैं; और उनमें सजगतापूर्वक अभ्यास करते हैं।" 163

[बुद्धः]
"जब मैं शिक्षा का मार्ग घोषित करता हूँ, [हे वेंदु,] भगवान (बुद्ध) ने कहा,
"वे ध्यानी जो उसमें अभ्यास करते हैं,
उचित समय पर सजग रहते हैं,
मृत्यु के वश में नहीं आते।"

---

94. दिघलत्थी
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) दिघलत्थी, जो पूरे बाँस के वन

(वेलुवन) को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"एक भिक्षु को ध्यानमग्न होना चाहिए; मन से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त),
यदि वह हृदय की प्राप्ति चाहता है; उसे उसी में तल्लीन रहना चाहिए।
संसार और उदय-अवनय को जानकर,
उसे मन से उदात्त और अनासक्त होना चाहिए।"

---

95. नंदना
एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) नंदना ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"हे गौतम, व्यापक अंतर्दृष्टि वाले,
भगवान (बुद्ध) का ज्ञान और दृष्टि अबाधित है;
वह कैसा है जिसे लोग गुणी कहते हैं? वह कैसा है जिसे लोग
बुद्धिमान कहते हैं? वह कैसा है जो
दुखों से परे हो गया है? वह कैसा
है जिसकी देवता (देवदूत) पूजा करते हैं?"

[बुद्ध:]
"वह गुणी, बुद्धिमान, विकसित मन वाला,
समाधि अवस्था में, ध्यानमग्न, ध्यान का आनंद लेने वाला,
जिसके सभी दुख दूर हो गए हैं, जिसने त्याग दिया है, जो
अपने अंतिम शरीर को धारण करने वाला, विकारों का नाश करने वाला है;

ऐसे ही व्यक्ति को लोग गुणी कहते हैं,
ऐसे ही व्यक्ति को लोग बुद्धिमान कहते हैं।
ऐसे ही व्यक्ति ने दुखों से परे हो गया है।
ऐसे ही व्यक्ति की देवता पूजा करते हैं।"

---

96. कनाडा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) चंदन ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक में संबोधित किया:

"यहाँ कौन बाढ़ पार करता है; दिन-रात बिना थके?
कौन गहराई में नहीं डूबता; बिना सहारे, बिना किसी पकड़ के?" 164

[बुद्ध:]
"जो सदा सद्‌गुणों में परिपूर्ण है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से संपन्न, समाधि की अवस्था में परिपूर्ण।
जो ऊर्जावान और दृढ़ है; वह बाढ़ को पार करता है जो पार करना इतना कठिन है।
जो इंद्रिय-बोध से विरक्त है; जिसने रूप के बंधन को पार कर लिया है,
जिसने अस्तित्व में आनंद का नाश कर लिया है; वह गहराई में नहीं डूबता।" 165

---

97. वसुदत्ता
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) वसुदत्त ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती भाव में रहना चाहिए; कामुक (राग) काम (राग) का त्याग करना चाहिए।"

[बुद्ध:]

"जैसे किसी को तलवार से चोट लगी हो; जैसे उसका सिर आग से जल रहा हो,
एक भिक्षु को सती भाव में रहना चाहिए; शरीर-पहचान के दृष्टिकोण (सक्कया-दित्थी) का त्याग करना चाहिए।"

---

98. सुब्रह्मा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) सुब्रह्म ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक 166 में संबोधित किया:

"यह मन सदा भयभीत रहता है; यह मन सदा
अविभाजित समस्याओं और उत्पन्न समस्याओं के बारे में व्याकुल रहता है।
यदि भय से मुक्ति (मोक्ष) संभव है, तो कृपया मुझे बताएँ।" 167

[बुद्धः]
"ज्ञान और तप (तप) के बिना नहीं; इंद्रियों के संयम के बिना नहीं;
सब कुछ त्यागने के बिना नहीं; मुझे जीवों के लिए कोई सुरक्षा दिखाई देती है।" 168

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... वह [युवा देव] वहीं अंतर्धान हो गए।

---

99. काकुधा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध)
साकेत में अंजनवन (हिरण उद्यान) में निवास कर रहे थे। तब,
जब रात हो गई, तो
अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) काकुधा, जो पूरे अंजनवन को प्रकाशित कर रहे थे,
भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया
, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा,

"क्या आप प्रसन्न हैं (नंदी आनंद), हे तपस्वी?"

[बुद्धः] "
क्या प्राप्त हुआ, मित्र?"

[देवता:]
"तो, हे तपस्वी, क्या आप दुखी हैं?"

[बुद्धः]
"क्या खोया है, मित्र?"

[देवता:]
"तो, हे तपस्वी, क्या आप न प्रसन्न हैं (नंदी आनंद) और न दुखी?"

[बुद्धः]
"जी, मित्र।"

[देवता:]
"मुझे आशा है कि आप शांत हैं, भिक्षु।
मुझे आशा है कि आपमें कोई आनंद नहीं है।
मुझे आशा है कि जब आप एकांत में बैठते हैं तो
आपमें असंतोष नहीं फैलता।" 169

[बुद्धः]

"सचमुच, मैं शांत हूँ, आत्मा।
फिर भी मुझमें कोई आनंद नहीं है।
और जब मैं एकांत में बैठता हूँ तो
मुझमें असंतोष नहीं फैलता।"

[देवता:]
"आप शांत कैसे हैं, भिक्षु?
आपमें आनंद क्यों नहीं है?
ऐसा कैसे है कि जब आप एकांत में बैठते हैं तो
आपमें असंतोष नहीं फैलता?"

[बुद्ध:]
"आनंद दुखी व्यक्ति को प्राप्त होता है।
दुख आनंद से भरे व्यक्ति को।
एक भिक्षु के रूप में जो शांत और निर्धन है;
इसी प्रकार आपको मुझे जानना चाहिए, मित्र।"

[देवता:]
"अंततः लंबे समय बाद मुझे
एक पूर्णतः तृप्त ब्राह्मण,
एक निर्विरोध भिक्षु, एक
संसार से मोहभंग हुआ भिक्षु दिखाई दिया।" 170

---

100. उत्तरा
राजगृह में, एक तरफ खड़ी युवा देवदूत उत्तरा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

“जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख लाते हैं।”

[बुद्ध:]
“जीवन बहता चला जाता है, जीवनकाल छोटा है;
वृद्धावस्था में पहुँच चुके व्यक्ति के लिए कोई आश्रय नहीं है।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।”

---

101. अनाथपिंडिका
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) अनाथपिंडिका ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"यह वास्तव में जेतवन है; संतों (ऋषियों) का आश्रय स्थल,
जहाँ धम्म राजा निवास करते हैं; एक ऐसा स्थान जो मुझे आनंद देता है।

कर्म, ज्ञान, धर्म; शील; उत्तम जीवन;
इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं; वंश या धन से नहीं।

इसलिए जो बुद्धिमान है; अपने हित का ध्यान रखते हुए,

उसे ध्यानपूर्वक धम्म (मार्ग, नियम) का अध्ययन करना चाहिए; इस प्रकार वह उसमें शुद्ध हो जाता है।

सारिपुत्त वास्तव में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न); शील और आंतरिक शांति से संपन्न हैं।
यहाँ तक कि एक भिक्षु जो पार हो चुका है; "अधिकतम तो मैं उनके बराबर ही हो सकता हूँ।"

यह युवा देव अनाथपिंडिका ने कहा।
यह कहकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें
दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात्रि बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने
भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, पिछली रात जब रात्रि
आगे बढ़ी, तो एक युवा देव मेरे पास आए और मेरी
उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"यह वास्तव में जेतवन है, ...
अधिकतम तो मैं उनके बराबर ही हो सकता हूँ।"

"यह उस युवा देव ने कहा। यह कहकर उन्होंने
मुझे प्रणाम किया और मुझे दाहिनी ओर रखते हुए
वहीं अंतर्धान हो गए।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"पूज्यवर, वह युवा देव अवश्य ही अनाथपिंडिका रहे होंगे । क्योंकि गृहस्थ अनाथपिंडिका को पूज्य सारिपुत्त पर
पूर्ण विश्वास था ।" "शाबाश, शाबाश, आनंद! तुमने तर्क से सही निष्कर्ष निकाला है । 171 वह युवा देव अनाथपिंडिका थे।"

(iii) विभिन्न संप्रदाय
102 शिव (शिव के बिना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर युवा देव (देवदूत) शिव, जो पूरे जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया: 172 “मनुष्य को

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) को जानने से मनुष्य बेहतर बनता है, कभी बुरा नहीं।

मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे लोगों के सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) को जानने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, लेकिन किसी और से नहीं।”

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, दुख के बीच भी मनुष्य दुखी नहीं होता।

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।

अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, मनुष्य अपने सगे-संबंधियों के बीच प्रकाशमान होता है।

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, प्राणी अच्छे गंतव्य (सुगति, स्वर्ग आदि) की ओर पुनर्जन्म लेते हैं।

केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, प्राणी सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने युवा देव शिव को श्लोकों में उत्तर दिया:

"मनुष्य को केवल अच्छे लोगों के साथ ही रहना चाहिए; अच्छे लोगों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहिए।
अच्छे धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, मनुष्य सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।"

---

103. खेमा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) खेमा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों का पाठ किया:

"अज्ञानी (बल) लोग, जो प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्न) से रहित हैं, स्वयं के शत्रु के समान व्यवहार करते हैं।
वे बुरे कर्म करते हैं, जिनका फल केवल कड़वा ही मिलता है।

"वह कर्म जो ठीक से नहीं किया गया है, जिसके किए जाने के बाद पश्चाताप किया जाता है,
उसका परिणाम रोते हुए चेहरे के साथ अनुभव होता है।

"परन्तु वह कर्म जो ठीक से किया गया है, जिसके किए जाने के बाद पश्चाताप नहीं किया जाता है,
उसका परिणाम प्रसन्न मन के साथ आनंदित होकर अनुभव होता है।" 173

[भगवान (बुद्ध):]

"मनुष्य को वह कर्म तुरंत करना चाहिए, जो स्वयं के कल्याण की ओर ले जाता है;
विचारक, बुद्धिमान व्यक्ति को गाड़ीवान के उदाहरण से आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

"जैसे गाड़ीवान ने समतल सड़क छोड़कर
ऊबड़-खाबड़ पगडंडी पर चलना शुरू कर दिया; टूटे हुए धुरी के साथ शोक में डूबा हुआ

"इसलिए जो बचकाना (नासमझ) धम्म (मार्ग, नियम) को छोड़कर, धम्म के विपरीत मार्ग का अनुसरण करता है,
जब वह मृत्यु के मुँह में गिरता है; तो टूटे हुए धुरी वाले गाड़ीवान की तरह शोक में डूबा रहता है।" 174

---

104 सीरी
एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) सेरी ने भगवान (बुद्ध) को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"वे सदा भोजन में आनंद लेते हैं; देव और मनुष्य दोनों।
तो भला कौन सी आत्मा हो सकती है; जो भोजन में आनंद न ले?"

[बुद्ध:]
"जब वे श्रद्धा से दान करते हैं; विश्वास के साथ, तो
दानकर्ता को स्वयं ही भोजन प्राप्त होता है; इस लोक में भी और परलोक में भी।

इसलिए, कंजूसी दूर करके; इस कलंक पर विजय प्राप्त करने वाले को दान करना चाहिए।
पुण्य ही प्राणियों का सहारा है; [जब वे परलोक में जाते हैं]।"

[देवता:]
"यह अद्‌भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर!
भगवान (बुद्ध) ने कितनी अच्छी तरह से यह कहा है:

"जब वे श्रद्धा से दान करते हैं ... [जब वे परलोक में जाते हैं]।"

"एक समय की बात है, आदरणीय महोदय, मैं सेरी नाम का राजा था, दानदाता, परोपकारी और दान देने की प्रशंसा करने वाला। मेरे चारों द्वारों पर मैं तपस्वियों, ब्राह्मणों, गरीबों, यात्रियों, भिक्षुओं और भिखारियों को दान देता था। तब, आदरणीय महोदय, हरम की स्त्रियाँ मेरे पास आईं और बोलीं, 'महाराज, आप दान देते हैं, पर हम दान नहीं देते। यदि महाराज की सहायता से हम भी दान दें और पुण्य कर्म करें तो अच्छा होगा।' तब मेरे मन में विचार आया, 'मैं स्वयं दानदाता, परोपकारी और दान देने की प्रशंसा करने वाला हूँ। तो जब वे कहती हैं, 'आइए दान दें,' तो मैं उन्हें क्या कहूँ?' इसलिए, आदरणीय महोदय, मैंने पहला द्वार हरम की स्त्रियों को दे दिया। वहाँ हरम की स्त्रियों ने दान दिया और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।"

फिर, आदरणीय महाराज, मेरे क्षत्रिय सामंत मेरे पास आए और बोले:
'महाराज दान देते हैं, हरम की स्त्रियाँ दान देती हैं, परन्तु हम दान नहीं देते। यदि महाराज की सहायता से हम भी दान दें और पुण्य कर्म करें तो अच्छा होगा।' मुझे यह विचार आया: 'मैं स्वयं दानदाता हूँ...' अतः, आदरणीय महाराज, मैंने दूसरा द्वार क्षत्रिय सामंतों को दे दिया। वहाँ क्षत्रिय सामंतों ने दान दिया और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।

फिर, आदरणीय महाराज, मेरी सेना मेरे पास आई... अतः, आदरणीय महाराज, मैंने तीसरा द्वार सेना को दे दिया। वहाँ सेना ने दान दिया और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।

"फिर, हे पूज्यवर, ब्राह्मण और गृहस्थ मेरे पास आए... अतः, हे पूज्यवर, मैंने चौथा द्वार ब्राह्मणों और गृहस्थों को दे दिया। वहाँ ब्राह्मणों और गृहस्थों ने दान दिया, और मेरा दान मुझे वापस मिल गया।

फिर, हे पूज्यवर, मेरे सेवक मेरे पास आए और बोले: 'अब महाराज, आप कहीं भी दान नहीं दे रहे हैं।' 175 यह सुनकर मैंने उन सेवकों से कहा: 'तो फिर, मैं कहता हूँ, वहाँ से दूरदराज के प्रांतों में उत्पन्न राजस्व का आधा हिस्सा महल में भेज दो।'" वहीं से आधा भाग तपस्वियों, ब्राह्मणों, गरीबों, यात्रियों, भिक्षुओं और भिखारियों को दान कर दो।

हे पूज्यवर, मैंने इतने लंबे समय तक जो पुण्य कर्म किए हैं, जो लाभकारी कर्म किए हैं, उनकी कोई सीमा नहीं है, जिससे मैं कह सकूँ: ' इतना ही पुण्य है' या 'इतना ही पुण्य का फल है' या 'मुझे स्वर्ग में इतने ही समय तक रहना है'। हे पूज्यवर, यह कितना अद्‌भुत है! हे पूज्यवर, यह कितना आश्चर्यजनक है! भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह कहा है:

"जब वे विश्वास से दान करते हैं; विश्वास के साथ;
दानकर्ता को स्वयं ही इस लोक और परलोक दोनों में भोजन प्राप्त होता है।

इसलिए, कंजूसी दूर करके; कंजूसी पर विजय प्राप्त करने वाले को दान करना चाहिए।
पुण्य कर्म परलोक में जीवों का सहारा होते हैं।"

---

105. घटिकारा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) घटिकारा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"सात भिक्षु अविहा (नरक) में पुनर्जन्म लेकर
पूर्णतः मुक्त हो चुके हैं (विमुक्त संस्कृत में)..." (श्लोक 1:50 के समान हैं)
अब दोनों आंतरिक रूप से विकसित हो चुके हैं; अपने अंतिम शरीर धारण कर चुके हैं।

---

106. जंतु

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार कई भिक्षु हिमालय की ढलान पर एक छोटी सी वन कुटिया में कोसलों के बीच रह रहे थे - बेचैन, अहंकारी, आत्ममुग्ध, कर्कश वाणी वाले, बेतरतीब बातों वाले, भ्रमित मन वाले, पूर्ण समझ से रहित (संपजन्न), समाधि अवस्था में नहीं, बिखरे हुए दिमाग वाले, अपनी इंद्रियों में शिथिल। 176

फिर, पंद्रहवें उपोसथ के दिन, युवा देव (देवदूत) जंतु उन भिक्षुओं के पास आए और उन्हें श्लोकों में संबोधित किया: 177

"पहले भिक्षु सुखी जीवन व्यतीत करते थे; गौतम के शिष्य।
वे इच्छाहीन होकर भिक्षा मांगते थे; वे इच्छाहीन होकर अपने आवासों का उपयोग करते थे।
संसार की अनित्यता को जानकर; उन्होंने दुखों का अंत किया।

"परन्तु अब गाँव के मुखियाओं की तरह; वे अपना भरण-पोषण कठिन बना लेते हैं।
वे खाते-पीते फिर लेट जाते हैं; दूसरों के घरों में मोह में डूबे रहते हैं। 178

"संघ (भाईचारे) को आदरपूर्वक प्रणाम करके, मैं यहाँ केवल कुछ के बारे में बात कर रहा हूँ;
वे त्यागे हुए हैं, बिना रक्षक के; मृतकों के समान हो गए हैं। 179

"मेरा कथन आलस्य (पमादा) में रहने वालों के संदर्भ में है।
जहाँ तक सजगता (अप्पमादा) में रहने वालों की बात है; मैं उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।"

---

107. रोहितास्सा
सावत्थी में, एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) रोहितासा ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, क्या यात्रा करके
संसार के उस छोर को जानना, देखना या वहाँ पहुँचना संभव है, जहाँ न जन्म होता है, न
बुढ़ापा आता है, न मृत्यु होती है, न पुनर्जन्म होता है?" <143>

[बुद्ध:]
"हे मित्र, संसार के उस छोर के विषय में, जहाँ न जन्म होता है,
न बुढ़ापा आता है, न मृत्यु होती है, न पुनर्जन्म होता है
- मैं कहता हूँ कि यात्रा करके उसे जानना, देखना या वहाँ पहुँचना असंभव है।" 1811

[देवता:]
"हे पूज्यवर, यह अद्‌भुत है! हे पूज्यवर, यह आश्चर्यजनक है!
भगवान (बुद्ध) ने यह कितना सही कहा है: 'हे मित्र, संसार के उस छोर के विषय में ... मैं कहता हूँ कि यात्रा करके
उसे जानना, देखना या वहाँ पहुँचना असंभव है ।'" हे पूज्यवर, एक समय की बात है, मैं भोज का पुत्र रोहितास्सा नामक एक ऋषि था, जो आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) से परिपूर्ण था और आकाश में यात्रा करने में सक्षम था। हे पूज्यवर, मेरी गति इतनी तीव्र थी कि मैं एक प्रशिक्षित, कुशल, अनुभवी धनुर्धर की तरह ही तंदूर की छाया को पार करते हुए हल्के बाण से आसानी से तीर चला सकता था। हे पूज्यवर, मेरे कदम इतने विशाल थे कि ऐसा लगता था मानो मैं पूर्वी सागर से पश्चिमी सागर तक पहुँच गया हूँ। तब हे पूज्यवर, मेरे मन में यह इच्छा जागी: 'मैं यात्रा करके संसार के अंत तक पहुँचूँगा।' ऐसी गति और ऐसे विशाल कदमों के साथ, और सौ वर्ष की आयु होने के कारण, मैंने सौ वर्ष तक यात्रा की, केवल खाने-पीने, भोजन और नाश्ता करने, शौच और मूत्र त्याग करने, सोने और थकान दूर करने के लिए ही विश्राम किया; फिर भी मैं संसार के अंत तक पहुँचे बिना ही मार्ग में ही मर गया। "यह अद्‌भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है: 'मित्र, संसार के उस अंतिम छोर (निर्वाण) के विषय में, जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता, मरता नहीं, नष्ट नहीं होता और पुनर्जन्म नहीं लेता - मैं कहता हूँ कि इसे न तो जाना जा सकता है, न देखा जा सकता है और न ही यात्रा द्वारा पहुँचा जा सकता है।'" [बुद्ध:] “हे मित्र, मैं कहता हूँ कि संसार के अंत (निर्वाण) तक पहुँचे बिना दुखों का अंत संभव नहीं है। हे मित्र, इसी असीम ऊँचाई वाले शरीर (ज्ञान, संज्ञा और मन) में मैं संसार, संसार की उत्पत्ति, संसार के निरोध (निर्वाण) और संसार के निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान देता हूँ। (नोट: यहाँ निरोध ध्यान की अवस्था है) “संसार के भ्रमण से

संसार के अंत तक कभी नहीं पहुँचा जा सकता; फिर भी संसार के अंत तक पहुंचे बिना दुखों से मुक्ति (मोक्ष) नहीं है। इसलिए, वास्तव में, संसार के ज्ञाता, ज्ञानी, संसार के अंत तक पहुँचे हुए, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले।" दुनिया के अंत को जानकर, शांति में,

उसे न तो इस दुनिया की और न ही किसी और दुनिया की लालसा है।

---

108. नंदा
एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) नंदा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"समय तेजी से बीतता है, रातें जल्दी से गुजर जाती हैं,
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं;
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
व्यक्ति को पुण्य कर्म करने चाहिए जो सुख लाते हैं।" [

बुद्ध:]
"समय तेजी से बीतता है, रातें जल्दी से गुजर जाती हैं;
जीवन के चरण एक-एक करके हमें छोड़ देते हैं।
मृत्यु के इस खतरे को स्पष्ट रूप से देखते हुए,
शांति के साधक को संसार के प्रलोभन को छोड़ देना चाहिए।"

---

109. नंदीविसाला
एक तरफ खड़े युवा देव (देवदूत) नंदीविसाला ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा,

"चार पहियों और नौ द्वारों वाले; लोभ से भरे और बंधे हुए;
दलदल से जन्मे, हे महावीर! इससे कैसे बचा जा सकता है?"

[बुद्ध:]
"रस्सी और पट्टा काटकर; बुरी इच्छा और लोभ को
जड़ से उखाड़कर; इस प्रकार इससे बचा जा सकता है।"

---

110. सुसीमा
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "हे आनंद, क्या तुम भी सारिपुत्त को स्वीकार करते हो?" 183

[आनंद:]
"हे पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा, सिवाय इसके कि वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त हो? हे पूज्यवर, पूज्यवर सारिपुत्त बुद्धिमान हैं, महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न संस्कृत प्रज्ञा) वाले, व्यापक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले, आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले, तीव्र प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले, तीक्ष्ण प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले और भेदक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हैं। 184 हे पूज्यवर, पूज्यवर, पूज्यवर सारिपुत्त की इच्छाएँ कम हैं; वे संतुष्ट, एकांतप्रिय, उदासीन और ऊर्जावान हैं। हे पूज्यवर, पूज्यवर, पूज्यवर सारिपुत्त सलाह देने वाले, सलाह लेने वाले, निंदा करने वाले और बुराई की निंदा करने वाले हैं। हे पूज्यवर, भला कौन उन्हें अस्वीकार करेगा..." हे पूज्य सारिपुत्त, क्या वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा हुआ (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त है?

[बुद्ध:]
"हाँ, आनंद, ऐसा ही है! वास्तव में, आनंद, सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा, जब तक कि वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा हुआ (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो? सारिपुत्त, आनंद, बुद्धिमान है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब तक कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो?"

फिर, जब हे पूज्य सारिपुत्त की यह प्रशंसा की जा रही थी, तभी युवा देव (देवदूत) सुसीमा, युवा देव (देवदूतों) के एक बड़े समूह के साथ, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 185 पास आकर उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और उनसे कहा: "ऐसा ही है, भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है, सौभाग्यशाली (सुगतो)! वास्तव में, पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा... (जैसा ऊपर बताया गया है)... जब तक कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो? मेरे मामले में भी, पूज्यवर, मैंने युवा देवताओं की जिस भी सभा में भाग लिया है, मैंने अक्सर यही बात सुनी है: पूज्य सारिपुत्त बुद्धिमान हैं... बुराई की निंदा करने वाले हैं। वास्तव में, पूज्य सारिपुत्त को कौन अस्वीकार करेगा, जब तक कि वह बचकाना (नासमझ), द्वेष से भरा (दोष/द्वेष), भ्रमित या मानसिक रूप से विक्षिप्त न हो?"

फिर, जब पूज्य सारिपुत्त की यह प्रशंसा की जा रही थी, सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवता - प्रफुल्लित, प्रसन्न, आनंद से परिपूर्ण (पीति/प्रीति) और हर्षोल्लास से भरे हुए - विभिन्न प्रकार के चमकीले रंग प्रदर्शित कर रहे थे। 186 जिस प्रकार सुंदर, उत्तम गुणवत्ता वाला, आठ फलकों वाला, उत्कृष्ट कारीगरी का बना बेरिल रत्न जब सूती कपड़े पर रखा जाता है, तो चमकता है, दमकता है और प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवता भी अनेक प्रकार के चमकीले रंगों से परिपूर्ण थे।

और जिस प्रकार उत्तम सोने का आभूषण, जिसे एक कुशल सुनार ने भट्टी में बड़ी कुशलता से चमकाया हो, जब सूती कपड़े पर रखा जाता है, तो चमकता है, दमकता है और प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवता भी अनेक प्रकार के चमकीले रंगों से परिपूर्ण थे।

और जैसे रात ढलने पर सुबह का तारा चमकता है, प्रकाश बिखेरता है और प्रकाश फैलाता है, वैसे ही सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देवों ने भी अनेक प्रकार के तेजस्वी रंग प्रदर्शित किए। 187

और जैसे शरद ऋतु में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में आरोहण करते हुए अपने प्रकाश से समस्त अंधकार को दूर कर देता है, 188 वैसे ही सुसीमा की सभा में उपस्थित युवा देव - प्रसन्न, आनंदित, परमानंद और हर्ष से परिपूर्ण - अनेक प्रकार के तेजस्वी रंग प्रदर्शित किए।

फिर, पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में, युवा देव सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक सुनाया:

"वह सर्वविदित बुद्धिमान पुरुष हैं; सारिपुत्त, जो क्रोध रहित हैं;
कम इच्छाओं वाले, सौम्य, संयमित; गुरु की स्तुति से सुशोभित संन्यासी।"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त का उल्लेख करते हुए
युवा देव सुसीमा को श्लोकों में उत्तर दिया:

"सारिपुत्त एक बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में सर्वविदित हैं; क्रोध से मुक्त,
कम इच्छाओं वाले, सौम्य, संयमित; विकसित, अच्छी तरह से संयमित (मन वाले), वे समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" 189

---

111. विभिन्न संप्रदाय (नानतिथ्य)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो कई युवा देव (देवदूत), विभिन्न संप्रदायों के गुरुओं - असमा, सहाली, निंका, अकोटक, वेतांबरी और मानवगमिया - के शिष्य, अत्यंत सुंदर थे और उन्होंने पूरे बाँस के वन (वेलुवन) को प्रकाशित कर दिया। वे भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। 190

फिर एक तरफ खड़े होकर, युवा देव (देवदूत) असमा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में पुराण कस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा:

"यहाँ चोट पहुँचाते और मारते हुए; कस्सपा ने
बुराई को नहीं पहचाना; न ही अपने लिए कोई पुण्य देखा।
उसने वास्तव में विश्वास के योग्य शिक्षा दी; वह गुरु आदर के योग्य है।" 191

फिर युवा देव सहली ने
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मक्खली गोसला के संदर्भ में यह श्लोक कहा: 192

"तप और विवेक से; उन्होंने पूर्ण आत्मसंयम प्राप्त किया।
उन्होंने लोगों से विवादपूर्ण बातें करना छोड़ दिया;
झूठ से दूर रहे, सत्य के वक्ता रहे।
निश्चय ही ऐसा व्यक्ति कोई बुराई नहीं करता।" 193

तब युवा देव निंका ने
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में निगंथ नटपुत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा:

"एक विवेकशील और विवेकशील भिक्षु; चारों नियंत्रणों से भलीभांति संयमित।
जो देखा और सुना जाता है, उसकी व्याख्या करने वाला; निश्चय ही वह पापी नहीं हो सकता।" 194

तब युवा देव अकोतक ने
भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में विभिन्न संप्रदायों के शिक्षकों के संदर्भ में यह श्लोक कहा:

"पकुधक कटियाना और निगंथ;
मक्खली और पुराण के साथ;
अनेकों के शिक्षक, तपस्वी अवस्था को प्राप्त करने वाले;
वे निश्चय ही श्रेष्ठ पुरुषों से कम नहीं थे।" 195

तब युवा देव वेतांबरी ने युवा देव अकोतक को श्लोक में उत्तर दिया: " और वे जो आकाश में प्रकाशमान हैं। हे नमुचि, तुम इन सबकी प्रशंसा करते हो, जैसे मछली पकड़ने के लिए चारा फेंका जाता है।" 198

"यद्यपि सियार भी रोता हुआ नीच
प्राणी ही रहता है, कभी सिंह के समर्थ नहीं;
इसलिए यद्यपि वह समूह का गुरु हो;
वह नग्न तपस्वी, असत्य का वक्ता;
अपने आचरण से संदेह उत्पन्न करता है;
श्रेष्ठ पुरुषों के समान नहीं है।" 196

तब दुष्ट मार (शैतान) ने युवा देव वेतांबरी को अपने वश में कर लिया और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक सुनाया: 197

"तप और संयम में लीन रहने वाले; अपने एकांत की रक्षा करने वाले;
और स्वरूप में स्थिर रहने वाले; देवलोक में आनंदित रहने वाले;
वास्तव में, ये मनुष्य परलोक के विषय में सही शिक्षा देते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने समझकर कहा, "यह दुष्ट मार है
।" "उसने दुष्ट मारा को पद्य में उत्तर दिया:

"यहाँ और उससे परे जो भी रूप विद्यमान हैं; फिर, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, युवा देव मानवगमिया ने भगवान (बुद्ध) के संदर्भ में ये श्लोक पढ़े: "विपुल को पर्वतों में श्रेष्ठ कहा जाता है; राजगृह की पहाड़ियों में, सेता हिम-वस्त्रों (हिमालय) में श्रेष्ठ है; सूर्य आकाश में यात्रियों में श्रेष्ठ है। सागर जल का सबसे श्रेष्ठ स्रोत है; चंद्रमा रात्रि के प्रकाश में श्रेष्ठ है, परन्तु इस संसार में अपने देवताओं के साथ; बुद्ध को सर्वोच्च घोषित किया गया है।"

संयुक्त 3: कोसलन के साथ जुड़े हुए प्रवचन (कोसलसंयुत्त)
(i) प्रथम उपधारा ((बंधन)
112. युवा (दहारा)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब कोसल के राजा प्रसेनजीत भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा, "क्या गुरु गौतम भी यह दावा करते हैं, 'मैंने अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है?'" 199 [बुद्ध

:]
"हे महाराज, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है, 'उसने अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है', तो यह बात मेरे बारे में सही ढंग से कही जा सकती है। क्योंकि हे महाराज, मैंने अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।"

[राजा पसेनदी (प्रसेनजीत):]
"हे गौतम जी, यहाँ तक कि वे तपस्वी और ब्राह्मण जो संप्रदायों और समूहों के प्रमुख हैं, समूहों के शिक्षक हैं, और जिन्हें जनमानस पवित्र पुरुष मानता है, जैसे पुराण कस्सपा, मक्खली गोसला, निगंथ नटपुत्त, संजय बेलत्थिपुत्त, पकुधा कच्चयन, अजित केशकंबली - इनसे भी जब मैंने पूछा कि क्या उन्हें अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो उन्होंने ऐसा दावा नहीं किया। 200 तो फिर गौतम जी को ऐसा दावा क्यों करना चाहिए, जबकि वे इतने युवा हैं और अभी-अभी दीक्षित हुए हैं?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, चार ऐसी बातें हैं जिन्हें 'युवा' कहकर तुच्छ नहीं समझना चाहिए।" 201 वे चार कौन से हैं? एक क्षत्रिय, महान राजा को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए; एक सर्प को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए; एक अग्नि को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए; और एक भिक्षु (साधु) को 'युवा' कहकर तिरस्कृत और अपमानित नहीं किया जाना चाहिए। ये चार हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर,
सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"किसी कुलीन क्षत्रिय या
यशस्वी राजकुमार को 'युवा' समझकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए;

क्योंकि ऐसा हो सकता है कि मनुष्यों का यह स्वामी, यह क्षत्रिय, सिंहासन ग्रहण कर ले
और क्रोध में आकर किसी को कठोर दंड दे; शाही दंड से।
इसलिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए, उससे बचना चाहिए। किसी गांव या जंगल में

संयोग से दिखाई देने वाले सर्प को 'युवा' समझकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए; क्योंकि वह भयंकर सर्प अनेक रूपों में प्रकट होकर रेंगता है और मूर्ख (बल) पर हमला करके उसे काट सकता है, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। इसलिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए, उससे बचना चाहिए। किसी भयंकर आग को, जो बहुत कुछ भस्म कर देती है, 'युवा' समझकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए।" काली लकीरों वाली भीषण आग; मनुष्य को इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। क्योंकि यदि इसमें ईंधन का भंडार जमा हो जाए, तो यह एक भीषण आग में बदल जाएगी।

यह मूर्खों (बल) पर आक्रमण करके उन्हें जला सकता है; चाहे वह पुरुष हो या स्त्री।
इसलिए अपने जीवन की रक्षा करते हुए इससे बचना चाहिए।

"जब आग जंगल को जला देती है; वह काली लकीरों वाली ज्वाला,
तो दिन-रात बीतने के साथ-साथ उसमें अंकुर फिर से जीवित हो उठते हैं।

लेकिन यदि कोई पूर्ण सद्गुणी भिक्षु (शील) किसी को अपने सद्गुण की अग्नि से जला दे, तो
उसे पुत्र और पशु प्राप्त नहीं होते; न ही उसके वंशज धनवान होते हैं।
वे निःसंतान और वारिसहीन हो जाते हैं; ताड़ के पेड़ों के ठूंठों के समान। 203

"इसलिए जो बुद्धिमान है; अपने भले के लिए,

उसे हमेशा इन सभी के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए: भयंकर सर्प, धधकती आग, प्रसिद्ध क्षत्रिय,
और पूर्ण सद्गुणी भिक्षु।

जब यह कहा गया..." कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे महान, आदरणीय गुरुदेव! हे महान, आदरणीय गुरुदेव! भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधकार में दीपक जला दिया हो। मैं भगवान (बुद्ध), धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से भगवान (बुद्ध) मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

---

113 एक व्यक्ति (पुरिसा बिना पुरुष)
सावत्थी में। तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर, ऐसे कितने धर्म (गुण, नियम) हैं जो किसी व्यक्ति में उत्पन्न होने पर उसे हानि, पीड़ा और कष्ट पहुंचाते हैं?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, तीन धर्म हैं जो किसी व्यक्ति में उत्पन्न होने पर उसे हानि, पीड़ा और कष्ट पहुंचाते हैं। वे तीन क्या हैं? लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह)। ये तीन धर्म हैं जो किसी व्यक्ति में उत्पन्न होने पर उसे हानि, पीड़ा और कष्ट पहुंचाते हैं।

लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह); दुष्ट मन वाले व्यक्ति में
स्वयं से उत्पन्न होते हैं; हानि पहुंचाते हैं, जैसे उनका फल ही सरकंडे को नष्ट कर देता है।" 204 [71]

---

114 वृद्धावस्था और मृत्यु (जरामरण)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जन्म लेने वाले के लिए बुढ़ापा और मृत्यु के अलावा और क्या अपेक्षा की जा सकती है?" 205

[बुद्ध:]
"हे महाराज, जिसने जन्म लिया है, उसके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु के सिवा कुछ और अपेक्षित नहीं है। यहाँ तक कि उन धनी क्षत्रियों के लिए भी - जो धनवान हैं, अपार संपत्ति और सामर्थ्य से संपन्न हैं, जिनके पास प्रचुर मात्रा में सोना-चांदी, खजाने और वस्तुएँ, धन और अनाज है - जन्म लेने के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु के सिवा कुछ और अपेक्षित नहीं है। यहाँ तक कि उन धनी ब्राह्मणों के लिए भी... धनी गृहस्थों के लिए - जो धनवान हैं... जिनके पास प्रचुर मात्रा में धन और अनाज है - जन्म लेने के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु के सिवा कुछ और अपेक्षित नहीं है। यहाँ तक कि उन अरहंत भिक्षुओं के लिए भी, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है, और ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गए हैं: उनके लिए भी यह शरीर वृद्धावस्था और मृत्यु के अधीन है।" टूटना, निर्धारित किए जाने के अधीन। 206

"राजाओं के सुंदर रथ घिस जाते हैं।
यह शरीर भी क्षय होता है।
परन्तु अच्छे लोगों का धर्म (मार्ग, नियम) क्षय नहीं होता;
इसलिए अच्छे लोग अच्छे लोगों के साथ इसका प्रचार करते हैं।" 207

---

115 प्रिय (पिया, प्रिया के बजाय)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'कौन स्वयं को प्रिय मानता है और कौन स्वयं को शत्रु मानता है?'" तब, आदरणीय महोदय, मेरे मन में यह विचार आया: जो लोग शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, वे स्वयं को शत्रु समझते हैं। भले ही वे कहें, "हम स्वयं को प्रिय मानते हैं," फिर भी वे स्वयं को शत्रु ही मानते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे अपनी इच्छा से स्वयं के प्रति वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा कोई शत्रु किसी शत्रु के प्रति करता है; इसलिए वे स्वयं को शत्रु मानते हैं। परन्तु जो लोग शरीर, वाणी और मन से सलीके से व्यवहार

करते हैं, वे स्वयं को प्रिय मानते हैं। भले ही वे कहें, "हम स्वयं को शत्रु मानते हैं," फिर भी वे स्वयं को प्रिय मानते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे अपनी इच्छा से स्वयं के प्रति वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा कोई प्रिय व्यक्ति किसी प्रिय व्यक्ति के प्रति करता है; इसलिए वे स्वयं को प्रिय मानते हैं। "

जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज!"

(बुद्ध फिर राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के पूरे कथन को दोहराते हैं और निम्नलिखित श्लोक जोड़ते हैं:

"यदि कोई स्वयं को प्रिय समझता है; तो उसे बुराई से नहीं जुड़ना चाहिए।
क्योंकि सुख आसानी से प्राप्त नहीं होता; उस व्यक्ति को जो कुकर्म करता है।

"जब अंत-निर्माता उसे पकड़ लेता है; जब वह मानव अवस्था को त्याग देता है।
वास्तव में अपना क्या कह सकता है? जाते समय वह क्या ले जाता है? वह
क्या है जो उसके साथ चलता है; एक ऐसी छाया की तरह जो कभी नहीं छूटती? 208

"दैवीय पुण्य और बुराई दोनों; जो मनुष्य इस जीवन में करता है:
यही वास्तव में अपना है; यही वह है जो जाते समय ले जाता है;
यही वह है जो उसके साथ चलता है; एक ऐसी छाया की तरह जो कभी नहीं छूटती।

"इसलिए अच्छे कर्म करने चाहिए; भविष्य के जीवन के लिए संचय के रूप में।
दिव्य पुण्य जीवों का आधार हैं; [जब वे] परलोक में उत्पन्न होते हैं।"

---

116. आत्म-रक्षित (अत्तारक्खिता सं. आत्म-रक्षित)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अब कौन अपनी रक्षा करता है और कौन खुद को असुरक्षित छोड़ देता है?'" तब, हे पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आया: 'जो लोग शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, वे स्वयं को असुरक्षित छोड़ देते हैं। चाहे हाथियों की टुकड़ी, घुड़सवारों की टुकड़ी, रथों की टुकड़ी या पैदल सेना की टुकड़ी ही क्यों न उनकी रक्षा करे, फिर भी वे स्वयं को असुरक्षित छोड़ देते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह सुरक्षा बाह्य है, आंतरिक नहीं; इसलिए वे स्वयं को असुरक्षित छोड़ देते हैं। परन्तु जो लोग शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण में लगे रहते हैं, वे स्वयं को सुरक्षित रखते हैं। चाहे हाथियों की टुकड़ी, घुड़सवारों की टुकड़ी, रथों की टुकड़ी या पैदल सेना की टुकड़ी ही क्यों न उनकी रक्षा करे, फिर भी वे स्वयं को सुरक्षित रखते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह सुरक्षा आंतरिक है, बाह्य नहीं; इसलिए वे स्वयं को सुरक्षित रखते हैं।'

[बुद्धः]
"ऐसा ही है, महाराज! ऐसा ही है, महाराज!"

(बुद्ध ने राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संपूर्ण कथन को दोहराया और उसमें निम्नलिखित श्लोक जोड़ा:)

"शरीर पर संयम अच्छा है; वाणी पर संयम भी अच्छा है;
मन पर संयम अच्छा है; हर जगह संयम अच्छा है।
विवेकशील, हर जगह संयमी; ऐसा व्यक्ति सुरक्षित कहलाता है।"

---

117. कुछ (अप्पक संस्कृत अल्पा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'संसार में वे लोग बहुत कम हैं जो श्रेष्ठ संपत्ति प्राप्त करने पर भी नशे में चूर और आलसी नहीं हो जाते, इंद्रिय सुखों के लोभ में लिप्त नहीं हो जाते और अन्य प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं करते। संसार में वे लोग कहीं अधिक हैं जो श्रेष्ठ संपत्ति प्राप्त करने पर भी नशे में चूर और आलसी हो जाते हैं, इंद्रिय सुखों के लोभ में लिप्त हो जाते हैं और अन्य प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं।'

"जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज!"

(बुद्ध ने राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के पूरे कथन को दोहराया और उसमें निम्नलिखित श्लोक जोड़ा:)

"वे अपने सुखों और धन के मोह में डूबे हुए हैं; लालची, इंद्रिय सुखों में मदहोश।
उन्हें एहसास नहीं है कि वे हद से आगे बढ़ गए हैं; जैसे हिरण जाल में फंस जाते हैं।
अंत में उन्हें कड़वा फल मिलता है; क्योंकि परिणाम वास्तव में बुरा होता है।" 209

---

118. जजमेंट हॉल (अड्डाकरण)
सावत्थी में। एक तरफ बैठे हुए। कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं न्याय कक्ष में बैठा हूँ, 210 तो मैं देखता हूँ कि धनी क्षत्रिय, धनी ब्राह्मण और धनी गृहस्थ - जिनके पास अपार धन-संपत्ति, सोना-चांदी, खजाने और वस्तुएँ, अनाज आदि हैं - भी इंद्रिय सुखों के लिए जानबूझकर झूठ बोलते हैं, और इसका कारण भी इंद्रिय सुख ही हैं। तब, हे पूज्यवर, मुझे यह विचार आता है: 'अब मेरा न्याय कक्ष से मन भर गया है! अब तो शुभ मुख वाले बुद्ध ही अपने निर्णयों से जाने जाएँगे।'" 211

"जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज! धनी क्षत्रिय, धनी ब्राह्मण और धनी गृहस्थ भी... इंद्रिय सुखों के लिए जानबूझकर झूठ बोलते हैं, और इसका कारण भी इंद्रिय सुख ही हैं।" इंद्रिय सुखों के कारण। इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा। वे

अपने सुखों और धन के मोह में डूबे हुए हैं; लालची, इंद्रिय सुखों में मदहोश।
उन्हें एहसास नहीं है कि वे हद से आगे बढ़ गए हैं; जैसे मछली जाल में फंस जाती है।
अंत में उन्हें कड़वा फल मिलता है; क्योंकि पाप का परिणाम वास्तव में बुरा होता है।

---

119. मल्लिका
श्रावस्ती के दिन, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) अपनी रानी मल्लिका के साथ महल के ऊपरी चबूतरे पर गए। तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने रानी मल्लिका से कहा, "मल्लिका, क्या कोई ऐसा है जो तुम्हें अपने से अधिक प्रिय हो?" 212
"हे महाराज, मुझे अपने से अधिक प्रिय कोई नहीं है। लेकिन क्या कोई ऐसा है, हे महाराज, जो आपको अपने से अधिक प्रिय हो?"
"मेरे लिए भी, मल्लिका, कोई ऐसा नहीं है जो मुझे अपने से अधिक प्रिय हो।"

तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) महल से नीचे उतरे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को रानी मल्लिका के साथ हुई अपनी बातचीत सुनाई।

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर यह श्लोक सुनाया:

"मन से सभी दिशाओं का भ्रमण करने पर,
व्यक्ति को अपने से बढ़कर कोई प्रिय नहीं मिलता।
इसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को ही सबसे प्रिय मानता है;
अतः जो स्वयं से प्रेम करता है, उसे दूसरों को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।"

---

120. बलिदान समारोह (यान्ना संस्कृत: यज्ञ)
सावत्थी में। उस अवसर पर कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के लिए एक महान यज्ञ का आयोजन किया गया था। यज्ञ के लिए पाँच सौ बैल, पाँच सौ बछड़े, पाँच सौ बछिया, पाँच सौ बकरियाँ और पाँच सौ मेढ़े स्तंभ के पास लाए गए थे। उनके दास, सेवक और कर्मचारी, दंड और भय से प्रेरित होकर, आँसू भरी आँखों से विलाप करते हुए, तैयारियों में व्यस्त थे। 213

फिर, सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले:
"हे पूज्यवर, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के लिए एक महान यज्ञ का आयोजन किया गया है। यज्ञ के लिए पांच सौ बैल ... स्तंभ के पास लाए गए हैं। और उनके दास ... विलाप करते हुए तैयारी में व्यस्त हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर
उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

"घोड़े का यज्ञ (अश्वमेध), मानव यज्ञ,
सम्मपासा, वाजपेय्य, निरग्गला;
ये महान यज्ञ, हिंसा से भरे हुए,
महान फल नहीं देते। 214

"सही आचरण वाले महान संत (ऋषि)
उस यज्ञ में शामिल नहीं होते जहाँ विभिन्न प्रकार के
बकरे, भेड़ और मवेशी मारे जाते हैं।" लेकिन जब पारिवारिक परंपरा के अनुसार हिंसा रहित यज्ञ किए जाते हैं, 215 जिनमें किसी भी प्रकार की बकरी, भेड़ या मवेशी की हत्या नहीं की जाती; तो सही आचरण वाले महान संत (ऋषि-मुनि) ऐसे यज्ञ में शामिल होते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा यज्ञ करना चाहिए, जो महान फलदायी हो। ऐसे यज्ञ करने वाले के लिए यह वास्तव में बेहतर है, कभी बुरा नहीं। ऐसा यज्ञ वास्तव में महान है और देवता भी प्रसन्न होते हैं।

---

121 बंधन (बंधन)
उस समय कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने बड़ी संख्या में लोगों को बंधुआ बना रखा था - कुछ को रस्सियों से, कुछ को लकड़ी के जूतों से और कुछ को जंजीरों से। 216

फिर सुबह, कई भिक्षु सज-धज कर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी नगर गए। सावत्थी नगर से भिक्षा एकत्र करके लौटते समय उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्यवर, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने बड़ी संख्या में लोगों को बंधुआ बना रखा है, कुछ को रस्सियों से, कुछ को लकड़ी के जूतों से और कुछ को जंजीरों से।"

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

“ज्ञानी कहते हैं कि वह बंधन
लोहे, लकड़ी या रस्सी का बना हुआ मजबूत नहीं है;
बल्कि आभूषणों और बालियों के प्रति आसक्ति है।
पत्नियों और बच्चों के लिए चिंता है।

ज्ञानी कहते हैं कि यही मजबूत बंधन है।
अपमानजनक, लचीला, जिससे निकलना कठिन है।
परन्तु वे इसे भी काट कर निकल जाते हैं,
उदासीन होकर, इंद्रिय सुखों का त्याग कर।” 217

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (निःसंतान)
122. सात जटिलला (सत्तजतिला)
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित श्रावस्ती में मिगारा की माता के महल में निवास कर रहे थे। 218 उस समय, संध्याकाल में, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और बाहरी द्वार के पास बैठे थे। तभी कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।
उसी समय सात जातिल, सात निगंथ, सात नग्न तपस्वी, सात एक वस्त्रधारी तपस्वी और सात ऐसे तपस्वी जिनके बगल में बाल थे, नाखून लंबे थे और शरीर पर लंबे बाल थे, वे अपनी आवश्यक वस्तुओं की गठरियाँ लिए हुए भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर से गुजरे। 219 तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, दाहिना घुटना जमीन पर रखकर बैठ गए और सात जातिलाओं, सात निगंथों, सात नग्न तपस्वियों, सात एक वस्त्रधारी तपस्वियों और सात तपस्वियों की ओर

श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए तीन बार अपना नाम घोषित किया: "हे पूज्यवरों, मैं कोसल का राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) हूँ!... हे पूज्यवरों, मैं कोसल का राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) हूँ!"

फिर, कुछ ही समय बाद वे सात जातिला और सात तपस्वी चले गए। कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, संसार में जो लोग अरहंत हैं या जिन्होंने अरहंतत्व के मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है, उनमें ये लोग शामिल हैं।" 220

[बुद्ध:]
"हे महाराज, आप गृहस्थ हैं, इंद्रिय सुखों में लिप्त रहते हैं, बच्चों से भरे घर में रहते हैं, काशियन चंदन का उपयोग करते हैं, मालाएँ, सुगंध और लेप लगाते हैं, सोना-चाँदी प्राप्त करते हैं, इसलिए आपके लिए यह जानना कठिन है कि 'ये अरहंत हैं या इन्होंने अरहंतत्व के मार्ग पर चलना शुरू कर दिया है।'

हे महाराज, किसी के साथ रहने से ही उसके
सद्गुण (शील) का पता चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े
समय में नहीं; सचेत व्यक्ति द्वारा, न कि असावधान व्यक्ति द्वारा;
बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि दुष्ट व्यक्ति द्वारा।"
"हे महाराज, किसी व्यक्ति की ईमानदारी का
पता उससे व्यवहार करने से ही चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े समय में नहीं;
सचेत व्यक्ति से, न कि असावधान व्यक्ति से;
बुद्धिमान व्यक्ति से, दुष्ट व्यक्ति से नहीं।
हे महाराज, विपत्तियों में ही किसी व्यक्ति की सामर्थ्य का
पता चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े समय में नहीं;
सचेत व्यक्ति से, न कि असावधान व्यक्ति से;
बुद्धिमान व्यक्ति से, दुष्ट व्यक्ति से नहीं।
हे महाराज, किसी व्यक्ति से चर्चा करने से ही उसकी अंतर्दृष्टि का
पता चलता है, और वह भी लंबे समय बाद, थोड़े समय में नहीं;
सचेत व्यक्ति से, न कि असावधान व्यक्ति से;
बुद्धिमान व्यक्ति से, दुष्ट व्यक्ति से नहीं।" 221

[राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) (प्रसेनजीत नहीं):]
"हे पूज्यवर! यह अद्भुत है, हे पूज्यवर! भगवान (बुद्ध) ने इसे कितनी अच्छी तरह कहा है: 'हे महाराज, गृहस्थ होकर... आपके लिए यह जानना कठिन है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, दुष्ट द्वारा नहीं।'

"हे पूज्यवर, ये मेरे जासूस हैं, गुप्त एजेंट हैं, जो देश की जासूसी करके लौट रहे हैं। 222 पहले वे जानकारी एकत्र करते हैं और उसके बाद मैं उनसे उसे प्रकट करवाऊंगा।" 223 हे पूज्यवर, जब वे धूल और मैल धोकर, स्नान करके और सज-संवरकर, बाल और दाढ़ी संवारकर, सफेद वस्त्र पहनकर, पांचों इंद्रिय सुखों का आनंद लेंगे।

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

“मनुष्य को उसके बाहरी रूप से आसानी से नहीं पहचाना जा सकता,
न ही किसी को उसकी शीघ्रता से पहचान पर भरोसा करना चाहिए।
क्योंकि संयमित दिखने वाले के वेश में
अनियंत्रित मनुष्य इस संसार में विचरण करते हैं।

जैसे मिट्टी से बनी नकली बाली,
जैसे सोने से मढ़ा हुआ पीतल का सिक्का।
कुछ लोग भेस बदलकर घूमते हैं;

भीतर से अशुद्ध, बाहर से सुंदर।"

---

123. पांच राजा (पंचराज)
सावत्थी में। उस अवसर पर, राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के नेतृत्व में पाँच राजा पाँच इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद ले रहे थे, तभी उनके बीच यह चर्चा हुई: "इंद्रिय सुखों में सबसे प्रमुख क्या है?" 224 उनमें से कुछ ने कहा: "रूप सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "ध्वनियाँ सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "गंध सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "स्वाद सबसे प्रमुख हैं।" कुछ ने कहा: "स्पर्श से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ सबसे प्रमुख हैं।" 225

क्योंकि वे राजा एक-दूसरे को समझाने में असमर्थ थे, इसलिए कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने उनसे कहा: "हे सज्जनों, आइए हम भगवान (बुद्ध) के पास जाकर इस विषय में उनसे प्रश्न करें। जैसा भगवान (बुद्ध) हमें उत्तर देंगे, वैसा ही हमें याद रखना चाहिए।"

"ठीक है, महोदय," उन राजाओं ने उत्तर दिया। तब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के नेतृत्व में वे पाँच राजा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने अपनी सारी चर्चा भगवान (बुद्ध) को बताई और पूछा,
"हे पूज्यवर, इंद्रिय सुखों में सबसे श्रेष्ठ क्या है, चाहे रूप हों, सुगंध हों, ध्वनि हों, स्वाद हों या स्पर्श हों?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, मैं कहता हूँ कि पाँचों इंद्रिय सुखों में सबसे श्रेष्ठ वही है जो सबसे अधिक सुखद हो। 226 हे महाराज, जो रूप एक व्यक्ति को सुखद लगते हैं, वही रूप दूसरे को अप्रिय लग सकते हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ रूपों से प्रसन्न और पूर्णतः संतुष्ट हो जाता है, तो वह उन रूपों से ऊँचे या अधिक श्रेष्ठ किसी अन्य रूप की लालसा नहीं करता। उसके लिए वे रूप सर्वोच्च हैं; उसके लिए वे रूप अतुलनीय हैं।

"वही ध्वनियाँ... उसके लिए वे ध्वनियाँ अतुलनीय हैं।"

वही सुगंधें... उनके लिए वे सुगंधें अतुलनीय हैं।

वही स्वाद... उनके लिए वे स्वाद अतुलनीय हैं।

वही स्पर्शनीय वस्तुएँ जो एक व्यक्ति को सुखद लगती हैं, हे महाराज, दूसरे को अप्रिय लग सकती हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ स्पर्शनीय वस्तुओं से प्रसन्न और पूर्णतः संतुष्ट हो जाता है, तब वह उनसे उच्चतर या अधिक श्रेष्ठ किसी अन्य स्पर्शनीय वस्तु की लालसा नहीं करता। तब उनके लिए वे स्पर्शनीय वस्तुएँ सर्वोच्च होती हैं; उनके लिए वे स्पर्शनीय वस्तुएँ अतुलनीय होती हैं।

उस समय चंदनंगलिका नामक एक गृहस्थ अनुयायी उस सभा में बैठा था। तब चंदनंगलिका अपने आसन से उठा, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, "हे भगवान (बुद्ध) मुझे प्रेरणा मिली है! मुझे प्रेरणा मिली है।" हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त करो, चंदनंगलिका," भगवान (बुद्ध) ने कहा। 227

तब गृहस्थ अनुयायी चंदनंगलिका ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, एक उपयुक्त श्लोक से उनकी प्रशंसा की गई:

"सुगंधित लाल कमल कोकनाडा की तरह
सुबह खिलता है, उसकी सुगंध अभी भी बरकरार है।
अंगिरसा (बुद्ध) को देखो, वह तेजस्वी हैं,
आकाश में चमकते सूर्य के समान। 228

तब उन पाँच राजाओं ने गृहस्थ शिष्य चंदनंगलिका को पाँच वस्त्र भेंट किए
। परन्तु गृहस्थ शिष्य चंदनंगलिका
ने वे पाँच वस्त्र भगवान (बुद्ध) को भेंट किए।

124 भोजन की बाल्टी माप (डोनापाका)
सावत्थी के पर्व पर, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने एक बाल्टी भर चावल और करी खाई। 229 फिर भी तृप्त होकर, हांफते हुए राजा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह जानकर कि राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) तृप्त हैं और हांफ रहे हैं, इस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा:

"जब मनुष्य सदा ध्यानमग्न रहता है,
अपने भोजन में संयम रखता है,
तो उसके रोग कम हो जाते हैं;
वह अपने जीवन की रक्षा करते हुए धीरे-धीरे बूढ़ा होता है।"

उस समय ब्राह्मण युवक सुदस्सन कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के पीछे खड़े थे। तब राजा ने उससे कहा, "हे प्रिय सुदस्सन, आओ, भगवान (बुद्ध) से यह श्लोक सीख लो और जब भी मैं भोजन करूँ, मुझे सुनाओ। तब मैं तुम्हें प्रतिदिन सौ कहपना सदादान के रूप में दूंगा।" 230
"जी, प्रभु," ब्राह्मण युवक सुदस्सन ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) से यह श्लोक सीखने के बाद, जब भी राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) भोजन करते थे, ब्राह्मण युवक सुदस्सन यह श्लोक सुनाता था:

"जब मनुष्य सदा ध्यानमग्न रहता है,
भोजन में संयम रखता है,
तो उसके रोग कम हो जाते हैं;
वह धीरे-धीरे बूढ़ा होता है, अपने जीवन की रक्षा करता है।"

तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने धीरे-धीरे अपने भोजन का सेवन कम कर दिया और अधिकतम एक पिंट उबले हुए चावल तक सीमित कर दिया। 231 कुछ समय बाद, जब उनका शरीर काफी दुबला हो गया। कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने अपने अंगों को हाथ से सहलाया और उस अवसर पर यह प्रेरणादायक वाणी बोली: "भगवान (बुद्ध) ने मुझ पर दोनों प्रकार के अच्छे कर्मों के प्रति दया दिखाई - वर्तमान जीवन से संबंधित अच्छे कर्म और भविष्य के जीवन से संबंधित अच्छे कर्म।" 232

125 युद्ध (1) (संगम1 सं. संग्राम)
सावत्थी में। तब मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेह वंश के पुत्र थे, ने चार भागों (पैदल सैनिक, घुड़सवार, रथ और हाथी) की सेना जुटाकर कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के विरुद्ध काशी की ओर कूच किया। 233 राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने यह सूचना सुनी, तो उन्होंने भी चार भागों की सेना जुटाकर राजा अजातसत्तु के विरुद्ध काशी की ओर जवाबी कूच किया। तब मगध के राजा अजातसत्तु और कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के बीच युद्ध हुआ। उस युद्ध में राजा अजातसत्तु ने राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) को पराजित किया और पराजित होकर राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) अपनी राजधानी सावत्थी लौट गए।

फिर सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था, वह बताया। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, मगध के राजा अजातसत्तु के बुरे मित्र, बुरे
साथी और बुरे सहचर हैं। कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के अच्छे
मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहचर हैं। फिर भी,
भिक्षुओं, आज के दिन राजा पसेनदी (प्रसेनजीत), पराजित होकर,
आज रात चैन से सोएंगे। 234

"विजय शत्रुता को जन्म देती है; पराजित व्यक्ति को नींद नहीं आती।
शांतिप्रिय व्यक्ति चैन से सोता है; क्योंकि उसने विजय और पराजय को त्याग दिया है।" 235

---

126 युद्ध (2) (संगम2 सं. संग्राम)
(पिछली सूत्र के अनुसार आरंभ)

उस युद्ध में राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने राजा अजातसत्तु को परास्त किया और उसे जीवित ही बंदी बना लिया। तब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के मन में यह विचार आया: "यद्यपि मगध के राजा अजातसत्तु ने मेरे विरुद्ध अपराध किया है, जबकि मैंने उसके विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी वह मेरा भतीजा है। अब मैं उसके सभी हाथी सैनिकों, सभी घुड़सवार सैनिकों, सभी रथ सैनिकों और सभी पैदल सैनिकों को जब्त कर लूँ और उसे केवल उसके प्राणों के साथ जाने दूँ।"

तब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने राजा अजातसत्तु के सभी हाथी सैनिकों, सभी घुड़सवार सैनिकों, सभी रथ सैनिकों और सभी पैदल सैनिकों को जब्त कर लिया और उसे केवल उसके प्राणों के साथ जाने दिया।

फिर सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था वह बताया। तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

“मनुष्य तब तक लूटता रहेगा जब तक उसका उद्देश्य पूरा होता रहेगा,
परन्तु जब दूसरे उसे लूटते हैं, तो लुटेरा स्वयं लूटा जाता है। 236

“नासमझ (नासमझ) सोचता है कि भाग्य उसके पक्ष में है; जब तक उसका पाप फलता-फूलता नहीं।
परन्तु जब पाप फलता-फूलता है, तो नासमझ (नासमझ) को कष्ट भोगना पड़ता है।

“हत्यारा हत्यारे को जन्म देता है; जो जीतता है, वह विजेता को जन्म देता है।”
गाली देने वाला गाली को जन्म देता है; निंदा करने वाला निंदा करने वाले को।
इस प्रकार कर्म के फल से लुटेरा स्वयं लूटा जाता है।” 237

---

127 मल्लिका
सावत्थी में, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत के बिना) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तभी एक व्यक्ति राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) के पास आया और फुसफुसाकर उन्हें बताया, “हे भगवान, रानी मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है।” यह सुनकर राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) अप्रसन्न हो गए। 238

तब भगवान (बुद्ध) ने राजा
पसेनादि (प्रसेनजीत) के अप्रसन्न होने को समझकर उस अवसर पर ये श्लोक कहे:

“हे जनमानस के स्वामी, स्त्री पुरुष से भी श्रेष्ठ हो सकती है;
वह बुद्धिमान और गुणी हो सकती है; एक समर्पित पत्नी, जो अपनी सास का आदर करती है। 239

“जिस पुत्र को वह जन्म देती है; हे देश के स्वामी, वह वीर हो सकता है।
ऐसी धन्य स्त्री का पुत्र; राज्य पर शासन भी कर सकता है।” 240

---

128 सतर्कता (1) (अप्पमदा सं. अप्रमाद)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा धर्म (गुण, नियम) है जो वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों के लिए लाभकारी हो?"

[बुद्ध:]
"हे महाराज, एक ऐसा धर्म है जो वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों के लिए लाभकारी है।"

[राजा:]
"पर हे पूज्यवर, वह एक धर्म क्या है?"

[बुद्ध:]
“हे महाराज, सजगता। जिस प्रकार सभी प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समा जाते हैं और हाथी का पदचिह्न अपने आकार के कारण उनका प्रमुख पदचिह्न कहलाता है, उसी प्रकार सजगता ही वह धर्म है जो दोनों प्रकार के लाभों को सुरक्षित करता है, वर्तमान जीवन के लाभ और भविष्य के लाभ। 241

“जो व्यक्ति दीर्घायु और स्वास्थ्य, सौंदर्य, स्वर्ग और कुलीन जन्म,
अनेक प्रकार के उच्च सुखों की प्राप्ति चाहता है, वह सजग रहता है।

बुद्धिमान लोग सजगता की प्रशंसा करते हैं; पुण्य कर्म करने में।
“जो बुद्धिमान सजग रहता है,

वह दोनों प्रकार के लाभों को सुरक्षित करता है: इस जीवन में प्रत्यक्ष लाभ और भविष्य के लाभ।”
जो दृढ़ रहता है, वह लाभ प्राप्त करके प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति कहलाता है।" 242

---

129 परोपकारी मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याणमित्र)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) का भली-भांति वर्णन किया है, और यह अच्छे मित्रों, अच्छे साथियों, अच्छे सहचरों के लिए है, बुरे मित्रों, बुरे साथियों, बुरे सहचरों के लिए नहीं।'" 243

[बुद्ध:]
"जी हाँ, महाराज! जी हाँ, महाराज! मैंने धर्म का भली-भांति वर्णन किया है, और यह अच्छे मित्रों, अच्छे साथियों, अच्छे सहचरों के लिए है, बुरे मित्रों, बुरे साथियों, बुरे सहचरों के लिए नहीं।

"एक बार, महाराज, मैं शाक्यों के बीच रह रहा था, जहाँ नागरक नामक शाक्यों का एक नगर है। 244 तब भिक्षु आनंद मेरे पास आए, मुझे प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले: 'आदरणीय महोदय, यह ब्रह्मचर्य जीवन का आधा भाग है, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छी सहचर्या।'

"जब यह कहा गया, हे महाराज, मैंने भिक्षु आनंद से कहा:
'ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, आनंद, अर्थात् अच्छा मित्र, अच्छा साथ, अच्छा सहचर्य। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा। और आनंद, एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। वह सही इरादे... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही ध्यान... सही सती... विकसित करता है। समाधि (सम्मोहन) की अवस्था, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसके पास एक अच्छा मित्र, एक अच्छा साथी, एक अच्छा सहचर है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

“हे आनंद, निम्नलिखित विधि से भी यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन किस प्रकार अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छा साथी है: हे आनंद, मुझ पर एक अच्छे मित्र के रूप में भरोसा करने से, पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त हो जाते हैं; रोग के अधीन प्राणी रोग से मुक्त हो जाते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अधीन प्राणी शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाते हैं। इस विधि से, आनंद, यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन ही उत्तम मित्रता, उत्तम संगति और उत्तम भाईचारा है।

अत: हे महाराज, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहचरों वाला व्यक्ति बनूंगा।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। हे

महाराज, जब आपके अच्छे मित्र, अच्छे साथी और अच्छे सहचर हों, तो आपको एक ही धर्म (गुण, नियम) का सहारा लेकर रहना चाहिए: लाभकारी धर्म अवस्थाओं में सतर्कता (अप्पमदा)।

हे महाराज, जब आप सतर्कता
का सहारा लेकर रह रहे हों, तो आपके हरम की स्त्रियाँ सोचेंगी: '
राजा सतर्कता का सहारा लेकर रह रहे हैं। अब
हम भी सतर्कता का सहारा लेकर रहें।'

हे महाराज, जब आप सतर्कता
का सहारा लेकर रह रहे हों, तो आपके क्षत्रिय सामंत सोचेंगे...

आपकी सेना सोचेगी...

नगर और ग्रामीण क्षेत्रों में आपकी प्रजा सोचेगी:
'राजा सतर्कता
का सहारा लेकर रह रहे हैं।' अब आओ, हम भी सजग रहें,
सजगता ही हमारा सहारा हो।

"हे महाराज, जब आप सजग रहेंगे, सजगता ही
आपका सहारा होगी, तो आप स्वयं सुरक्षित रहेंगे, आपके
हरम की स्त्रियाँ सुरक्षित रहेंगी, आपका
खजाना और भंडार सुरक्षित रहेगा।

जो उच्च धन की कामना करता है; वह निरंतर प्रयास करता है।
बुद्धिमान लोग सजगता की प्रशंसा करते हैं, पुण्य कर्म करने में,

सजग व्यक्ति ही बुद्धिमान होता है; वह दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त करता है;
इस जीवन में प्रत्यक्ष लाभ; और भविष्य के जीवन का लाभ;
दृढ़ रहने वाला व्यक्ति, लाभ प्राप्त करके; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति कहलाता है।"

---

130 निःसंतान (1) (संस्कृत अपुत्तक1)
सावत्थी में। तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आ रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, सावत्थी में एक धनवान गृहस्थ का निधन हो गया है। मैं उनकी निःसंतान संपत्ति को महल में पहुँचाने के बाद आया हूँ, क्योंकि उनका कोई वसीयतनामा नहीं था। 245 उनके पास अस्सी लाख सोने के सिक्के थे, चाँदी की तो बात ही छोड़िए, फिर भी, हे पूज्यवर, उस धनवान गृहस्थ का भोजन ऐसा था: वह खट्टी दलिया के साथ लाल चावल खाते थे। उनके वस्त्र ऐसे थे: वे तीन टुकड़ों वाला सूती वस्त्र पहनते थे। उनका वाहन ऐसा था: वे पत्तों की छत वाली एक जर्जर छोटी गाड़ी में घूमते थे।" 246

"ऐसा ही है, हे महाराज! ऐसा ही है, हे महाराज! जब कोई नीच व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है, तो वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट नहीं करता, न ही अपने माता-पिता को, न ही अपनी पत्नी और बच्चों को, न ही अपने दासों, श्रमिकों और सेवकों को, न ही अपने मित्रों और सहकर्मियों को; न ही वह तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए कोई अर्पण स्थापित करता है, जो ऊपर की ओर ले जाने वाला, स्वर्गिक फल देने वाला, सुख (सुख) प्रदान करने वाला और स्वर्ग की ओर ले जाने वाला हो। क्योंकि उसके धन का उचित उपयोग नहीं हो रहा है, इसलिए राजा उसे ले जाते हैं, या चोर उसे ले जाते हैं, या आग उसे जला देती है, या पानी उसे बहा ले जाता है, या अवांछित उत्तराधिकारी उसे ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में, हे महाराज, वह धन, जिसका उचित उपयोग नहीं हो रहा है, व्यर्थ जाता है, उपयोग में नहीं आता।

"मान लीजिए, हे महाराज, किसी ऐसे स्थान पर जहाँ मनुष्य नहीं रहते, वहाँ एक कमल का तालाब हो, जिसका पानी निर्मल, शीतल, मीठा और साफ हो, और जिसमें अच्छे घाट हों, जो रमणीय हो; परन्तु कोई भी उस जल को न तो ग्रहण करेगा, न उसमें स्नान करेगा, न ही किसी अन्य प्रयोजन के लिए उसका उपयोग करेगा। हे महाराज, ऐसे में वह जल उचित उपयोग न होने पर व्यर्थ ही चला जाएगा, न कि किसी काम का। इसी प्रकार, हे महाराज, जब कोई निम्न व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है... तो वह धन उचित उपयोग न होने पर व्यर्थ ही चला जाता है, न कि किसी काम का।

परन्तु, हे महाराज, जब कोई श्रेष्ठ व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है, तो वह स्वयं को प्रसन्न और आनंदित करता है, अपने माता-पिता को, अपनी पत्नी और बच्चों को, अपने दासों, श्रमिकों और सेवकों को, अपने मित्रों और सहकर्मियों को प्रसन्न और आनंदित करता है; और वह तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए एक अर्पण स्थापित करता है, जो स्वर्ग की ओर ले जाने वाला, सुखदायी और स्वर्ग की ओर अग्रसर करने वाला होता है। क्योंकि उसका धन उचित उपयोग में लाया जाता है, इसलिए राजा उसे छीन नहीं लेते, चोर उसे छीन नहीं लेते, अग्नि उसे जला नहीं देती, जल उसे बहा नहीं ले जाता, और अवांछित उत्तराधिकारी उसे नहीं ले जाते। ऐसी स्थिति में, हे महाराज, वह धन उचित उपयोग होने पर व्यर्थ ही चला जाता है, न कि किसी काम का।

"मान लीजिए, महाराज, किसी गाँव या कस्बे से कुछ ही दूरी पर एक कमल का तालाब है, जिसका पानी साफ, ठंडा, मीठा और स्वच्छ है, और उसमें अच्छे घाट हैं, जो देखने में रमणीय हैं; और लोग उस पानी को लेते हैं, पीते हैं, स्नान करते हैं और अपने कामों में इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में, महाराज, वह पानी उचित उपयोग से उपयोगी होगा, व्यर्थ नहीं जाएगा। ठीक वैसे ही, महाराज, जब कोई श्रेष्ठ व्यक्ति प्रचुर धन प्राप्त करता है... वह धन उचित उपयोग से उपयोगी होता है, व्यर्थ नहीं जाएगा।

"जैसे किसी सुनसान जगह का ठंडा पानी
बिना पिए ही वाष्पित हो जाता है।
वैसे ही जब कोई दुष्ट धन प्राप्त करता है,
तो वह न तो आनंद लेता है और न ही दान करता है।

"परन्तु जब बुद्धिमान व्यक्ति धन प्राप्त करता है,
तो वह आनंद लेता है और अपने कर्तव्य का पालन करता है।
अपने कुल का भरण-पोषण करके, दोषमुक्त होकर,
वह श्रेष्ठ व्यक्ति स्वर्गलोक प्राप्त करता है।"

---

131. निःसंतान (2) (संस्कृत अपुत्तक2)
तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आ रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, सावत्थी में एक धनवान गृहस्थ का निधन हो गया है। मैं उनकी निःसंतान संपत्ति को महल में पहुँचाने के बाद आया हूँ, क्योंकि उनका कोई वसीयतनामा नहीं था। उनके पास करोड़ों का सोना था, चाँदी की तो बात ही छोड़िए, फिर भी, हे पूज्यवर, उस धनवान गृहस्थ का भोजन ऐसा था: वे लाल चावल के साथ खट्टी दलिया खाते थे। उनके वस्त्र ऐसे थे: वे तीन टुकड़ों वाला सूती वस्त्र पहनते थे। उनका वाहन ऐसा था: वे पत्तों की छत वाली एक जर्जर छोटी गाड़ी में घूमते थे।"

"ऐसा ही है, महाराज! ऐसा ही है, महाराज! एक बार, महाराज, उस धनवान गृहस्थ ने तगरसिखी नामक एक पच्चेकबुद्ध को भिक्षा दी। 'संन्यासी को भिक्षा दो' कहकर वह अपने आसन से उठा और चला गया। परन्तु भिक्षा देने के बाद उसे पश्चात् पश्चाताप हुआ और उसने सोचा: 'यह अच्छा होता कि दास या मजदूर इसे खा लेते!' इतना ही नहीं, उसने अपने धन के लिए अपने भाई के इकलौते पुत्र की हत्या कर दी। 247

"क्योंकि उस धनवान गृहस्थ ने पच्चेकबुद्ध तगरसिखी को भिक्षा दी थी, उस कर्म के फलस्वरूप वह सात बार शुभ स्थान (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। उसी कर्म के फलस्वरूप, उसने सात बार इसी श्रावस्ती नगर में धनवान का पद प्राप्त किया।" लेकिन क्योंकि उस गृहस्थ को दान देने पर पछतावा हुआ, उस कर्म के फलस्वरूप उसका मन उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र और उत्तम वाहनों के भोग में नहीं लगा, न ही पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के उत्तम योगों के भोग में। और क्योंकि उस गृहस्थ ने अपने भाई के इकलौते पुत्र की

हत्या धन-संपत्ति के लिए कर दी, उस कर्म के फलस्वरूप उसे कई वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगना पड़ा। उसी कर्म के फलस्वरूप उसने राजकोष को यह सातवाँ निःसंतान धन-संपत्ति प्रदान की है।

उस गृहस्थ के पुराने पुण्य पूरी तरह समाप्त हो चुके हैं, और उसने कोई नया पुण्य अर्जित नहीं किया है। लेकिन आज, हे महाराज, वह गृहस्थ महान रोरुवा नरक में जल रहा है। 248

[राजा:] "तो, आदरणीय महाराज, क्या वह गृहस्थ धनवान रोरुवा नरक में पुनर्जन्म ले चुका है?"

[बुद्ध:] "जी हाँ, महाराज, वह गृहस्थ धनवान रोरुवा नरक में पुनर्जन्म ले चुका है।

अनाज, धन, चाँदी, सोना; या जो भी अन्य संपत्ति हो,
दास, मजदूर, संदेशवाहक, और वे जो किसी के आश्रित के रूप में रहते हैं:

बिना कुछ लिए ही जाना होगा; सब कुछ पीछे छोड़ना होगा
, सिवाय उसके जो शरीर से, वाणी से या मन से किया गया हो।

यही वास्तव में अपना है; यही साथ लेकर चलते हैं;
यही साथ-साथ चलते हैं; उस परछाई की तरह जो कभी नहीं छूटती।

इसलिए अच्छे कर्म करने चाहिए; भविष्य के लिए पुण्य संचय के रूप में।
परलोक में जीवों के पुण्य ही उनका सहारा होते हैं।

(iii) तीसरा उप-अध्याय (कोसलान पंचक)

132. व्यक्ति (पुग्गला)

सावत्थी में, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

“हे महाराज, संसार में चार प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं। वे कौन से चार हैं? अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाला, अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाला, प्रकाश से अंधकार की ओर जाने वाला, प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाला। 249

“और हे महाराज, अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाला मनुष्य कैसे होता है? यहाँ किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म एक निम्न कुल में हुआ है - चांडलाओं, बांस श्रमिकों, शिकारियों, गाड़ी बनाने वालों या फूल बीनने वालों के कुल में - एक गरीब कुल में जहाँ भोजन और पेय कम है और जीवन यापन मुश्किल से होता है, जहाँ भोजन और वस्त्र मुश्किल से प्राप्त होते हैं; और वह कुरूप, बदसूरत, विकृत, जीर्ण रोग से ग्रसित है - अंधा, लंगड़ा या लकवाग्रस्त है। 250 वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जो भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन, मालाएँ, सुगंध और लेप, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्राप्त करता हो। वह शरीर, वाणी और मन के दुराचार में लिप्त रहता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

“मान लीजिए, हे महाराज, कोई व्यक्ति अंधकार से अंधकार की ओर, या उदासी से उदासी की ओर, या कलंक से कलंक की ओर जाता है: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल वैसा ही है। हे महाराज, इसी प्रकार एक व्यक्ति अंधकार से अंधकार की ओर बढ़ता है।

“और हे महाराज, कोई व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर कैसे बढ़ता है? यहाँ किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म एक नीच परिवार में हुआ है... जहाँ भोजन और वस्त्र मुश्किल से प्राप्त होते हैं; और वह कुरूप है... या लकवाग्रस्त है। वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जो भोजन... और प्रकाश प्राप्त करता हो। वह शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण में लिप्त रहता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है।

"मान लीजिए, महाराज, कोई व्यक्ति जमीन से पालकी पर चढ़े, या पालकी से घोड़े पर, या घोड़े से हाथी पर, या हाथी से महल पर: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल ऐसा ही है। महाराज, इसी तरह मनुष्य अंधकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होता है।"

"हे महाराज, कोई व्यक्ति प्रकाश से अंधकार की ओर कैसे अग्रसर होता है? यहाँ किसी व्यक्ति का पुनर्जन्म उच्च कुल में, समृद्ध क्षत्रिय कुल में, समृद्ध ब्राह्मण कुल में, या समृद्ध गृहस्थ कुल में हुआ है - ऐसा कुल जो धनवान है, अपार संपत्ति से संपन्न है, [95] प्रचुर मात्रा में सोने-चांदी, खजाने और वस्तुओं, धन और अनाज से युक्त है; और वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित और अत्यंत सुंदर रंग का है। वह भोजन, पेय, वस्त्र और वाहन प्राप्त करता है; मालाएँ, सुगंध और लेप; बिस्तर, आवास और प्रकाश प्राप्त करता है। वह शरीर, वाणी और मन के दुराचार में लिप्त रहता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

"मान लीजिए, हे महाराज, कोई व्यक्ति महल से हाथी पर सवार हो, या हाथी से घोड़े पर, या घोड़े से पालकी पर, या पालकी से... जमीन से, या जमीन से पाताल लोक के अंधकार में: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल वैसा ही है। हे महाराज, इसी तरह एक व्यक्ति प्रकाश से अंधकार की ओर बढ़ता है।

और हे महाराज, एक व्यक्ति प्रकाश से प्रकाश की ओर कैसे बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति उच्च कुल में पुनर्जन्म लेता है... प्रचुर धन और अनाज के साथ; और वह सुंदर, आकर्षक, सुशोभित, अत्यंत सुंदर रंग का है। वह भोजन... और प्रकाश प्राप्त करता है। वह शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण में लगा रहता है। ऐसा करने के बाद, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह एक अच्छे गंतव्य (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है।

मान लीजिए, हे महाराज, एक व्यक्ति पालकी से पालकी, या घोड़े से घोड़े, या हाथी से हाथी, या महल से महल जाता है: मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति बिल्कुल वैसा ही है। हे महाराज, इसी तरह एक व्यक्ति प्रकाश से प्रकाश की ओर बढ़ता है।
"हे महाराज, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

(i) हे महाराज, जो व्यक्ति गरीब है; आस्थाहीन, कंजूस, कृपण,
बुरे इरादों वाला; गलत विचारों वाला, अनादर करने वाला,

जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का अपमान करता है;
नास्तिक, उपहास करने वाला, जो भिखारियों को भोजन दान करने से रोकता है: हे जनस्वामी,

जब ऐसा व्यक्ति मरता है, तो वह भयानक नरक में जाता है; अंधकार से अंधकार की ओर बढ़ता है। (ii) हे महाराज, जो व्यक्ति गरीब है; आस्थावान, उदार, अच्छे इरादों से दान करने वाला, एकाग्र मन वाला, जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का आदर करता है; जो धार्मिक आचरण का प्रशिक्षण लेता है; जो भिखारियों को भोजन दान करने से किसी को नहीं रोकता है। हे महाराज, जब ऐसा व्यक्ति मरता है, तो वह त्रिस्वर्ग में जाता है ; अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ता है।"

(iii) "हे राजा, जो धनी है; आस्थाहीन, कंजूस,
पापी इरादों वाला, गलत विचारों वाला, अनादर करने वाला,

जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का अपमान करता है;
नास्तिक, उपहास करने वाला, जो दूसरों को भोजन दान करने से रोकता है;

हे राजा, जब ऐसा व्यक्ति मरता है, तो
वह
भयानक नरक में जाता है; प्रकाश से अंधकार की ओर।

(iv) "हे राजा, जो धनी है; आस्थावान, उदार,
अच्छे इरादों से दान करने वाला, एकाग्र मन वाला,

जो तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य भिक्षुओं का आदर करता है;
जो धार्मिक आचरण में प्रशिक्षित होता है; जो किसी को भोजन दान करने से नहीं रोकता;

हे राजा, जब ऐसा व्यक्ति मरता है,
तो वह
त्रिस्वर में जाता है; प्रकाश से प्रकाश की ओर।"

133. दादी (अय्यिका)
श्रावस्ती में। फिर, दोपहर के समय, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। जब वे एक तरफ बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आए हैं?"

"आदरणीय महोदय, मेरी दादी का निधन हो गया है। वे वृद्ध, उम्रदराज, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुकी थीं, जन्म से 120 वर्ष की थीं। आदरणीय महोदय, मेरी दादी मुझे प्रिय और प्रिय थीं। हे आदरणीय महोदय, यदि हाथी रत्न के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता, तो मैं हाथी रत्न भी दान कर देता ताकि उनकी मृत्यु न हो। 251 यदि अश्व रत्न के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता... यदि किसी पुरस्कारित गाँव के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता... यदि देश के द्वारा मैं उन्हें मृत्यु से बचा सकता, तो मैं देश भी दान कर देता ताकि उनकी मृत्यु न हो।" [बुद्ध:] "हे महाराज, सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु में ही उनका अंत होता है और वे मृत्यु से बच नहीं सकते।" [राजा:] "हे पूज्यवर, यह अद्भुत है! हे पूज्यवर, यह आश्चर्यजनक है! भगवान (बुद्ध) ने कितनी अच्छी तरह से यह कहा है: 'हे महाराज, सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु में ही उनका अंत होता है और वे मृत्यु से बच नहीं सकते।'

[बुद्ध:]
"यही सच है, महाराज! यही सच है, महाराज! हे महाराज, सभी प्राणी
मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु में ही उनका अंत होता है और वे
मृत्यु से बच नहीं सकते। जिस प्रकार कुम्हार के सभी बर्तन, चाहे कच्चे हों या
पके हुए, टूट जाते हैं, टूट जाते हैं और टूट जाते हैं,
उसी प्रकार सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु
में ही उनका अंत होता है और वे मृत्यु से बच नहीं सकते।

सभी प्राणियों की मृत्यु होगी; क्योंकि जीवन का अंत मृत्यु में होता है।"
वे अपने कर्मों के अनुसार ही फल भोगेंगे; अपने पुण्य और बुरे कर्मों का फल भोगेंगे।
बुरे कर्म करने वाले नरक में जाएंगे; और पुण्य करने वाले सुखमय लोक में।

अतः मनुष्य को अच्छे कर्म करने चाहिए; भविष्य के लिए संचय के रूप में।
पुण्य ही प्राणियों का सहारा है; जब वे परलोक में जाते हैं।

134 विश्व (लोका)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, संसार में ऐसे कितने धर्म (गुण, नियम) हैं जो उत्पन्न होने पर हानि, पीड़ा और कष्ट का कारण बनते हैं?" 252 [बुद्ध:] "हे महाराज, संसार में तीन धर्म हैं जो उत्पन्न होने पर हानि, पीड़ा और कष्ट का कारण बनते हैं। वे तीन क्या हैं? लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह)। ये संसार के तीन धर्म हैं जो उत्पन्न होने पर हानि, पीड़ा और कष्ट का कारण बनते हैं।

लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह); ये भीतर से उत्पन्न होते हैं।
ये दुष्ट मन वाले व्यक्ति को हानि पहुंचाते हैं; जैसे इसका फल ही सरकंडे को नष्ट कर देता है।"

135 तीरंदाजी (इस्सट्टा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे हुए, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, दान कहाँ देना चाहिए?" 253
[बुद्ध:] "जहाँ मन को विश्वास हो, वहीं दान दें, महाराज।" 254
[राजा:] "परन्तु, हे पूज्यवर, दान कहाँ फलदायी होता है?"
[बुद्ध:] "यह एक प्रश्न है, महाराज, 'दान कहाँ देना चाहिए?' और यह दूसरा, 'दान कहाँ फलदायी होता है?'" हे महाराज, जो गुणवान है उसे जो मिलता है वह महान फलदायी होता है, न कि अनैतिक व्यक्ति को। अब, हे महाराज, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। हे महाराज, आपका क्या विचार है? मान लीजिए आप युद्ध में हैं और युद्ध होने वाला है। तभी एक

क्षत्रिय युवक आता है, जो अप्रशिक्षित, अकुशल, अनुभवहीन, डरपोक, भयभीत और भागने में प्रखर है। क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी? [राजा:] "बिल्कुल नहीं, आदरणीय।"
[बुद्ध:] "फिर एक ब्राह्मण युवक आता है... एक वेस युवक... एक शुद्ध युवक... जो अप्रशिक्षित है... भागने में प्रखर है। क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी?"
[राजा:] "बिल्कुल नहीं, आदरणीय।"
[बुद्ध:] "हे महाराज, आपका क्या विचार है? मान लीजिए आप युद्ध में हैं और लड़ाई होने वाली है। तभी एक क्षत्रिय युवक आता है, जो प्रशिक्षित, कुशल, अनुभवी, वीर, साहसी और निडर है, और अपने स्थान पर डटे रहने के लिए तैयार है। क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी?"
[राजा:] "निश्चित रूप से, आदरणीय।"
[बुद्ध:] "तब एक ब्राह्मण युवक आता है... एक वेस युवक... एक
शुद्ध युवक... जो प्रशिक्षित है... अपने स्थान पर डटे रहने के लिए तैयार है।
क्या आप उसे नियुक्त करेंगे, और क्या आपको
ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता होगी?"
[राजा:] "निश्चित रूप से, आदरणीय।"
[बुद्ध:] “इसी प्रकार, हे महाराज, जब कोई व्यक्ति गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है, चाहे वह किसी भी कुल का हो, यदि उसने पाँच गुणों का त्याग कर दिया है और पाँच गुणों को धारण करता है, तो उसे जो प्राप्त होता है वह अत्यंत फलदायी होता है। उसने किन पाँच गुणों का त्याग किया है? उसने इंद्रिय सुख का त्याग किया है; उसने द्वेष का त्याग किया है; उसने आलस्य और सुस्ती का त्याग किया है; उसने बेचैनी और पश्चाताप का त्याग किया है; उसने संशय का त्याग किया है। उसके पास कौन से पाँच गुण होते हैं? उसके पास प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के गुणों का समूह (स्कंध संस्कृत), प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की समाधि अवस्था का समूह (सम्मोहन) का समूह (सम्मोहन) का समूह (सम्मोहन से परे व्यक्ति की प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि का समूह) (पन्ना) का समूह (100], प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की मुक्ति का समूह (विमुक्ति संस्कृत संस्कृत) का समूह (सम्मोहन से परे व्यक्ति की मुक्ति का समूह) और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का समूह होता है। उसके पास ये पाँच गुण होते हैं। इस प्रकार, जिसने पाँच गुणों का त्याग कर दिया है और जिसके पास पाँच गुण हैं, उसे जो प्राप्त होता है वह अत्यंत फलदायी होता है। कारक बहुत फलदायी होते हैं। 255

"जैसे कोई राजा युद्ध छेड़ने के लिए उत्सुक हो; वह धनुष चलाने में कुशल युवक को नियुक्त करेगा।
बलवान और जोशीला; जन्म से कायर नहीं।

इसलिए चाहे वह निम्न कुल का ही क्यों न हो, नेक आचरण वाले व्यक्ति का सम्मान करना चाहिए,
उस ज्ञानी व्यक्ति का जिसमें धैर्य और कोमलता के गुण विद्यमान हों। 256

"मनमोहक आश्रम बनाने चाहिए; और विद्वानों को उनमें निवास करने के लिए आमंत्रित करना चाहिए;
जंगल में जलकुंड बनाने चाहिए; और ऊबड़-खाबड़ इलाकों पर पुल बनाने चाहिए।

"भोजन, पेय पदार्थ और खाने की वस्तुएँ, वस्त्र, बिस्तर और आसन दान करें।
विश्वास के साथ दान करें; विपश्यना ध्यान से जागृत लोगों के लिए

: "जैसे वर्षा का बादल गरजता हुआ, बिजली से घिरा हुआ, सौ चोटियों वाला,
पृथ्वी पर अपनी वर्षा बरसाता है, मैदान और घाटी दोनों को जलमग्न कर देता है,

वैसे ही ज्ञानी, निष्ठावान, विद्वान व्यक्ति भोजन तैयार होने पर
तृप्त होता है; भिक्षा पर जीवन यापन करने वाले भिक्षु

प्रसन्न होकर दान बांटते हैं; और घोषणा करते हैं, 'दान दो, दान दो।'
क्योंकि यही उसका गर्जन है; जैसे आकाश वर्षा करता है,
वैसे ही पुण्य की वह विशाल वर्षा दान देने वाले पर बरसती है।"

---

136 पर्वतीय (पब्बतुपमा)

सावत्थी में। फिर, दोपहर के समय, कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... जब वे एक तरफ बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे महाराज, आप दोपहर के समय कहाँ से आ रहे हैं?"
[राजा:] "हे पूज्यवर, अभी मैं उन राज-प्रबंधों में लगा हुआ था जो शीर्ष-अभिषिक्त क्षत्रिय राजाओं के लिए विशिष्ट हैं, जो संप्रभुता के नशे में चूर हैं, जो इंद्रिय सुखों के लोभ में लिप्त हैं, जिन्होंने अपने देश में स्थिर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है, और जिन्होंने पृथ्वी पर एक विशाल क्षेत्र पर विजय प्राप्त करके शासन किया है।" 257
[बुद्ध:] "हे महाराज, आप क्या सोचते हैं? देखिए, पूर्व से एक व्यक्ति आपके पास आएगा, जो भरोसेमंद और विश्वसनीय है; पास आकर वह आपसे कहेगा: 'हे महाराज, आपको यह अवश्य जानना चाहिए: मैं पूर्व से आ रहा हूँ, और मैंने वहाँ बादलों के समान ऊँचा एक विशाल पर्वत देखा जो इस ओर आ रहा है और सभी जीवित प्राणियों को कुचल रहा है। हे महाराज, जो उचित लगे वही कीजिए।'" फिर पश्चिम से एक दूसरा व्यक्ति आपके पास आएगा... फिर उत्तर से एक तीसरा व्यक्ति आपके पास आएगा... फिर दक्षिण से एक चौथा व्यक्ति आएगा, जो भरोसेमंद और विश्वसनीय होगा; पास आकर वह आपसे कहेगा: 'हे महाराज, आपको यह अवश्य जानना चाहिए: मैं दक्षिण से आ रहा हूँ, और वहाँ मैंने बादलों के समान ऊँचा एक विशाल पर्वत देखा जो इस ओर आ रहा है और सभी जीवित प्राणियों को कुचल रहा है। हे महाराज, जो उचित लगे वही करें। हे महाराज, यदि ऐसा बड़ा संकट उत्पन्न हो जाए, मानव जीवन का ऐसा भयानक विनाश हो जाए, और मानव अवस्था इतनी कठिन हो, तो क्या किया जाना चाहिए?'

[राजा:] "हे पूज्यवर, यदि ऐसा बड़ा संकट आ पड़े, मानव जीवन का इतना भयानक विनाश हो जाए, और मानव अवस्था प्राप्त करना इतना कठिन हो, तो धम्म (मार्ग, नियम) का पालन करने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या किया जाना चाहिए?" 258

[बुद्ध:] "हे महाराज, मैं आपको सूचित करता हूँ, हे महाराज: वृद्धावस्था और मृत्यु आपके निकट आ रही है। हे महाराज, जब वृद्धावस्था और मृत्यु आपके निकट आ रही हो, तो क्या किया जाना चाहिए?"
[राजा:] "हे पूज्यवर, जब वृद्धावस्था और मृत्यु मेरे निकट आ रही हो, तो धम्म का पालन करने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या किया जाना चाहिए?"
हे पूज्यवर, ऐसे हाथी-युद्ध होते हैं जो राजत्व के नशे में चूर, इंद्रिय सुखों के लोभ में डूबे, अपने देश पर स्थिर नियंत्रण प्राप्त कर चुके और पृथ्वी पर विशाल भूभाग पर विजय प्राप्त कर शासन करने वाले शीर्ष अभिषिक्त खत्तीय राजाओं द्वारा लड़े जाते हैं; परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तो ऐसे हाथी-युद्धों के लिए कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। 259 हे पूज्यवर, ऐसे घुड़सवार-युद्ध होते हैं जो शीर्ष अभिषिक्त खत्तीय राजाओं द्वारा लड़े जाते हैं... रथ-युद्ध होते हैं... पैदल सेना के युद्ध होते हैं... परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तो ऐसे पैदल सेना के युद्धों के लिए कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। हे पूज्यवर, इस राज दरबार में ऐसे सलाहकार हैं जो शत्रुओं के आने पर उन्हें छल-कपट से विभाजित करने में सक्षम हैं; परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तो ऐसे छल-कपट के युद्धों के लिए कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। इस राज दरबार में, हे पूज्यवर, तिजोरियों और भंडारगृहों में प्रचुर मात्रा में सोना और सोने का भंडार है, और इस धन से हम शत्रुओं के आने पर उन्हें शांत कर सकते हैं; परन्तु जब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही हो, तब धन-दौलत की इन लड़ाइयों का कोई स्थान नहीं, कोई गुंजाइश नहीं। हे पूज्यवर, जैसे-जैसे वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही है, मुझे धम्म के मार्ग पर चलने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या करना चाहिए?

[बुद्ध:] "जी, महाराज! जी, महाराज! जैसे-जैसे वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही है, मुझे धम्म के मार्ग पर चलने, धार्मिक जीवन जीने और लाभकारी एवं पुण्य कर्म करने के सिवा और क्या करना चाहिए?" भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे ठोस चट्टानों के विशाल पर्वत, आकाश तक पहुँचते हुए,
चारों ओर से घेरकर सबको कुचल देते हैं, वैसे ही वृद्धावस्था और मृत्यु आती हैं; क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस, शुद्ध, चांडाल और सफाई करने वाले

जीवों को रौंदती हुई , वे रास्ते में किसी को नहीं छोड़तीं; बल्कि सबको कुचल देती हैं। वहाँ हाथियों के लिए कोई जगह नहीं है; रथों और पैदल सेना के लिए भी नहीं। उन्हें छल से नहीं हराया जा सकता; न ही धन से। इसलिए, यहाँ एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने हित को ध्यान में रखते हुए , दृढ़ रहना चाहिए; बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भिक्षुओं का समुदाय) में। जब कोई धम्म के अनुसार आचरण करता है; शरीर, वाणी और मन से, तो इस जीवन में उसकी प्रशंसा होती है; और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।"

सम्युत्त 4: मृत्यु के देवता मारा के साथ संबंधित प्रवचन (मारासम्युत्त)
(i) पहला उप-अध्याय (जीवनकाल)
137. तपस्वी साधना (तपोकम्मा संस्कृत: तपो-कर्म)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। 260 तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "मैं सचमुच उस कठोर तपस्या से मुक्त हो गया हूँ! यह सचमुच अच्छा है कि मैं उस व्यर्थ कठोर तपस्या से मुक्त हो गया हूँ! यह अच्छा है कि स्थिर और ध्यानमग्न (सतिमा) होकर मैंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है!" 261

तब दुष्ट मारा (शैतान), अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जानकर, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उन्हें श्लोकों में संबोधित किया:

"तुम तप साधना से भटक गए हो; जिससे मनुष्य स्वयं को शुद्ध करते हैं।
अपवित्र होकर तुम स्वयं को शुद्ध समझते हो; तुमने पवित्रता का मार्ग खो दिया है।" 262

तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"मैंने अमरता की प्राप्ति के उद्देश्य से की गई किसी भी कठोर तपस्या को व्यर्थ समझा है; 263
क्योंकि ऐसी सभी तपस्याएँ व्यर्थ हैं; सूखी भूमि पर चप्पू और पतवार की तरह, 264

सद्गुण (शील), समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न);
मैंने ज्ञान के मार्ग का विकास करके परम पवित्रता प्राप्त की है; तुम पराजित हो। अंत-निर्माता!" 265

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

138. राजा हाथी (हथिराजवन्ना सं. हस्ति-राज-वर्ण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। 266 तब दुष्ट मारा (शैतान) ने भगवान (बुद्ध) में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से एक विशाल हाथी के रूप में प्रकट होकर भगवान (बुद्ध) के पास आया। उसका सिर स्टीटाइट के एक विशाल टुकड़े जैसा था; उसके दांत शुद्ध चांदी जैसे थे; उसकी सूंड एक विशाल हल के डंडे जैसी थी। तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोक में संबोधित किया:

"तूने लंबी यात्रा की है; सुंदर और बदसूरत आकृतियाँ बनाई हैं।
हे दुष्ट, अपनी इस चालबाज़ी को बंद करो; तू पराजित हो गया है। अंत करने वाले!" 267

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध)

मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर
वहीं से गायब हो गया।

---

3 (3) सुन्दर (शुभ बिना शुभ)
उरुवेला में निवास करते समय, उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। तभी दुष्ट मारा (शैतान), भगवान (बुद्ध) में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उनके पास आया और उनसे कुछ ही दूरी पर, सुंदर और भयानक, अनेक प्रकार की चमकदार आकृतियाँ प्रकट कीं। तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"तूने बहुत लंबा सफर तय किया है; सुंदर और भयानक आकृतियाँ बनाई हैं।
हे दुष्ट, अपनी इस चालबाज़ी को बंद करो; तू पराजित हो गया। अंत करने वाले!

जो शरीर, वाणी और मन से संयमित हैं, वे
मारा के वश में न आएं; और न ही मारा के चेले बनें।" 268

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया। [105]

---

140 मारा का जाल (1) (मारपसा1 सं. मार-पाश)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" 269
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) द्वारा, ध्यानमग्नता (सही प्रयास) द्वारा, मैंने अतुलनीय मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त की है, मैंने अतुलनीय मुक्ति का अनुभव किया है। आप भी, भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) द्वारा, ध्यानमग्नता (सही प्रयास) द्वारा, अतुलनीय मुक्ति को प्राप्त करें, अतुलनीय मुक्ति का अनुभव करें।" 270 तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा: 271

“तुम मारा के फंदे में फँसे हो; हे देव और मनुष्य,
तुम मारा के बंधन में फँसे हो; हे तपस्वी, तुम मुझसे बच नहीं पाओगे!” 272

[भगवान (बुद्ध):]
“मैं मारा के फंदे से मुक्त हो गया हूँ; हे देव और मनुष्य,
मैं मारा के बंधन से मुक्त हो गया हूँ; तुम पराजित हो गए। अंत करने वाले!”

तब दुष्ट मारा... वहीं से गायब हो गया।

---

141. मारा का फंदा (2) (मारपासा2 सं. मार-पाश)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बनारसी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, मैं सभी दिव्य और मानवीय बंधनों से मुक्त हूँ। हे भिक्षुओं, तुम भी सभी दिव्य और मानवीय बंधनों से मुक्त हो। हे भिक्षुओं, जन कल्याण के लिए, जन सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवों और मनुष्यों के कल्याण, सुख और भलाई के लिए विचरण करो। कोई भी दो एक ही मार्ग पर न चलें। हे भिक्षुओं, उस धम्म का उपदेश दो जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ। पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करो। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में थोड़ी सी भी धूल है और वे धर्म (मार्ग, नियम) को न सुनने के कारण पथभ्रष्ट हो रहे हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो धर्म को समझेंगे। हे भिक्षुओं, मैं भी

जाऊँगा..." धम्म का उपदेश देने के लिए उरुवेला में सेनानिगामा गए। 273 तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा: 274

“तुम सभी फंदों से बंधे हो; दिव्य और मानवीय दोनों;
तुम महान बंधन से बंधे हो; हे तपस्वी, तुम मुझसे बच नहीं पाओगे!”

[भगवान (बुद्ध):]
“मैं सभी फंदों से मुक्त हूँ; दिव्य और मानवीय दोनों;
मैं महान बंधन से मुक्त हूँ; तुम पराजित हो। अंत करने वाले!”

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

---

142. सर्प (सप्पा संस सर्प)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में खुले में बैठे थे, जब हल्की बारिश हो रही थी।

तभी दुष्ट मारा (शैतान) ने एक विशाल नाग का रूप धारण किया और भगवान (बुद्ध) के पास आया। उसका शरीर एक ही पेड़ के तने से बनी विशाल नाव के समान था; उसका फन एक बड़ी शराब बनाने वाली छलनी के समान था; उसकी आंखें कोसल के बड़े पीतल के बर्तनों के समान थीं; उसकी जीभ मुंह से ऐसे निकली हुई थी जैसे आकाश में गरजते समय बिजली चमकती है; उसके सांस लेने और छोड़ने की आवाज एक लोहार की धौंकनी में हवा भरने की आवाज के समान थी।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"जो निर्जन कुटियाओं में निवास करता है ,
वही संयमी ऋषि है।
उसे वहाँ सब कुछ त्यागकर रहना चाहिए;
यही उसके समान उचित है। 275

"यद्यपि अनेक जीव रेंगते हैं,
अनेक भय, मक्खियाँ, सर्प होते हैं, फिर भी
वह उनके कारण जरा भी विचलित नहीं होता।
अपनी निर्जन कुटिया में जाकर वह महान ऋषि

[बुद्ध] है:
"यद्यपि आकाश फट जाए, पृथ्वी कांप उठे,
और समस्त जीव भयभीत हो जाएँ, और
मनुष्य अपनी छाती पर बाण लहराएँ, फिर भी
प्रबुद्ध व्यक्ति किसी भी प्रकार की संपत्ति (उपाधि) में शरण नहीं लेता।" 276

तब दुष्ट मारा . . . वहीं लुप्त हो गया।

---

143. निद्रा (सुपति सं. सुषुप्ति)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। रात ढलने लगी, तब भगवान (बुद्ध) ने रात का अधिकांश समय खुले में इधर-उधर घूमते हुए बिताया, अपने पैर धोए, अपने निवास में प्रवेश किया और सिंह की मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) में लीन होकर, उठने के विचार में मग्न हो गए।
तभी दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा,

"क्या, तुम सो रहे हो? क्यों सो रहे हो?
यह क्या है, तुम अभागे की तरह सो रहे हो? 277
तुम खाली झोपड़ी में सो रहे हो ?
यह क्या है, तुम सूरज उगने पर सो रहे हो?"

[भगवान (बुद्ध):]
"उसके भीतर तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का वास नहीं रहा।
जो उसे कहीं भी ले जाने के लिए उलझाती और बांधती थी;
समस्त उपलब्धियों (उपाधि) के विनाश (खया/क्षय) के साथ
, प्रबुद्ध व्यक्ति सो रहा है। हे
मारा, तुम्हें इससे क्या लेना-देना है?" 278

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

---

144. प्रसन्नता (नंदति सं. आनंदति)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब दुष्ट मारा भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनके समक्ष यह श्लोक बोला:

“जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों में प्रसन्न होता है; जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं में प्रसन्न होता है।
प्राप्ति ही मनुष्य का आनंद है; प्राप्ति के बिना मनुष्य को आनंद नहीं मिलता।”

[भगवान (बुद्ध):
“जिसके पुत्र होते हैं, वह पुत्रों के लिए दुखी होता है; जिसके पास पशु होते हैं, वह पशुओं के लिए दुखी होता है।
प्राप्ति ही मनुष्य का दुख है; प्राप्ति के बिना मनुष्य को दुख नहीं मिलता।”

तब दुष्ट मारा वहीं से गायब हो गया।

---

145 जीवनकाल (1) (आयु1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,

"भिक्षुओं, मनुष्य का यह जीवनकाल अल्प है। उसे
भविष्य में जाना है। उसे लाभकारी कर्म करने चाहिए और
ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहिए; क्योंकि एक जन्म लेने वाले के लिए मृत्यु से बचना संभव नहीं है
। भिक्षुओं, जो दीर्घ जीवन जीता है, वह सौ वर्ष
या उससे थोड़ा अधिक जीता है।"

तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा,

"मनुष्यों का जीवनकाल लंबा होता है; भले मनुष्य को इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए।
उसे दूध पीते बच्चे की तरह जीना चाहिए; जब तक मृत्यु न आ जाए।" 279

[भगवान (बुद्ध):]
"मनुष्यों का जीवनकाल छोटा होता है; भले मनुष्य को इसका तिरस्कार करना चाहिए।
उसे ऐसे जीना चाहिए जैसे उसका सिर जल रहा हो; मृत्यु के आगमन से बचना असंभव है।"

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

---

146 जीवनकाल (2) (आयु2)
(पिछली सूत्र की तरह आरंभ:)

तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा:

"दिन और रातें उड़कर नहीं गुजरते; जीवन रुकता नहीं।
मनुष्यों का जीवनकाल चलता रहता है; जैसे रथ का पहिया धुरी पर घूमता है।" 280 <243>

[भगवान (बुद्ध):]
"दिन और रातें उड़कर गुजर जाते हैं; जीवन रुक जाता है।
मनुष्यों का जीवनकाल समाप्त हो जाता है; जैसे छोटी नदियों का पानी।"

तब दुष्ट मारा... वहीं गायब हो गया।

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (शासन)
147. बोल्डर (पसाना बिना पाशान)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। तभी दुष्ट मार (शैतान) ने भगवान (बुद्ध) के मन में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उनसे कुछ ही दूरी पर कई बड़े-बड़े पत्थरों को चकनाचूर कर दिया।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मार है
", श्लोक

467 में उससे कहा, "यदि तू इस गिद्ध शिखर को पूरी तरह से हिला भी दे, तो भी
ज्ञानी विचलित नहीं होते; क्योंकि वे पूर्णतः मुक्त हैं।"

तब दुष्ट मार ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध)
मुझे जानते हैं, शुभ (शुगत) मुझे जानते हैं", दुखी और निराश होकर
वहीं से विमुख हो गया।

---

148. सिंह (किन्नुसिहा)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) एक विशाल सभा से घिरे हुए धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में यह विचार आया, “यह तपस्वी गौतम एक विशाल सभा से घिरे हुए धर्म का उपदेश दे रहे हैं। मैं इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित कर दूं।” 281 तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचा और उनसे श्लोकों में कहा,

“अब तुम सभा में सिंह की तरह क्यों दहाड़ रहे हो?
क्योंकि तुम्हारे बराबर का एक है; तो तुम स्वयं को विजेता क्यों समझते हो?”

[भगवान (बुद्ध):]
“महावीर अपने सिंह की दहाड़ में दहाड़ते हैं;
तथागत, जो शक्तियों से संपन्न हैं, सभाओं में आत्मविश्वास से दहाड़ते हैं; उन्होंने संसार से आसक्ति को पार कर लिया है।” 282

तब दुष्ट मारा को यह एहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वह वहीं गायब हो गया।

---

149. सकलिका (स्प्लिंटर)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में मद्दकुच्ची हिरण उद्यान (मिगदाये) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान बुद्ध के पैर में पत्थर का टुकड़ा लग गया। उन्हें तीव्र पीड़ा हुई - वेदनाएँ कष्टदायी, कष्टदायक, तीखी, चुभने वाली, पीड़ादायक और अप्रिय थीं। परन्तु भगवान बुद्ध ने ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर, बिना विचलित हुए, उन्हें सहन किया। तब भगवान बुद्ध ने अपने बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़ा और एक पैर दूसरे पर रखकर सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर। 283 तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे काव्यात्मक शब्दों में बोला,

“क्या आप स्तब्ध हैं या काव्य के नशे में चूर हैं?
क्या आपके पास पूरे करने के लिए पर्याप्त लक्ष्य नहीं हैं?
एकांत में अकेले रहकर
आप ऊंघते हुए क्यों सो रहे हैं?” 284

[भगवान (बुद्ध):]
“मैं स्तब्ध या काव्य के नशे में चूर नहीं हूँ;
लक्ष्य प्राप्त कर लेने के बाद मैं दुःख से मुक्त हो गया हूँ।
एकांत में अकेले रहकर
मैं समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से परिपूर्ण होकर लेटा हूँ। यहाँ

तक कि जिनके सीने में तीर चुभा हुआ है
और पल-पल उनके हृदय को भेद रहा है
, वे भी सो जाते हैं;
तो मैं क्यों न सोऊँ; जब मेरा तीर निकाल लिया गया है? 285

“मैं भय से जागता नहीं हूँ; न ही मुझे सोने से डर लगता है।
रातें और दिन मुझे कष्ट नहीं देते,
मुझे संसार में कोई हानि नहीं दिखती।
इसलिए मैं शांति से सो सकता हूँ।
समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से परिपूर्ण।”

तब दुष्ट मारा को यह अहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," और वह दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

---

14 (4) उपयुक्त (पतिरूपा)
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच एकासला नामक ब्राह्मण गाँव में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) बड़ी संख्या में गृहस्थों से घिरे हुए धर्म का उपदेश दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में यह विचार आया, "यह तपस्वी गौतम गृहस्थों की बड़ी सभा से घिरे हुए धर्म का उपदेश दे रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित कर दूँ।"
तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा और उनसे श्लोकों में कहा,

"यह आपके लिए उचित नहीं है कि आप दूसरों को उपदेश दें।
इस कार्य में लगे रहने पर संसार के आकर्षण और विकर्षण में न फँसें।" 286

[भगवान (बुद्ध):]
"उनके कल्याण के प्रति करुणा से भरे बुद्ध दूसरों को उपदेश देते हैं।
तथागत संसार के आकर्षण और विकर्षण से पूर्णतः मुक्त हैं।"

तब दुष्ट मारा को यह अहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," और वह दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

---

151. मानसिक (मानस)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब दुष्ट मारा (शैतान) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा: 287

"आकाश में एक जाल चल रहा है; कोई मानसिक चीज जो घूम रही है 288
जिसके द्वारा मैं तुम्हें पकड़ लूंगा; तुम मुझसे बच नहीं पाओगे, तपस्वी!"

[भगवान (बुद्ध):]
"रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध; और आनंददायक स्पर्शनीय वस्तुएं;
इन सब की इच्छा मुझमें विलीन हो गई है; तुम पराजित हो, अंत-निर्माता!"

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

152. भिक्षापात्र (पट्टा संस्कृत: पत्रा)
श्रावस्ती पर्व पर, भगवान बुद्ध पाँच आसक्त स्कंधों के विषय में भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और आनंदित कर रहे थे। वे भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों के विषय में धर्म प्रवचन दे रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म को सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर पूर्ण ध्यान दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार के मन में विचार आया, "यह तपस्वी गौतम भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं, उन्हें प्रेरित कर रहे हैं और आनंदित कर रहे हैं... जो अपना पूरा ध्यान इस पर लगा रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित करूँ।"
उस समय अनेक भिक्षापात्र खुले में रखे हुए थे। तभी दुष्ट मार ने बैल का रूप धारण किया और उन भिक्षापात्रों के पास पहुँचा। तब एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से कहा: "भिक्षु, भिक्षु! वह बैल भिक्षापात्र तोड़ सकता है।" यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु से कहा: "वह बैल नहीं है, भिक्षु। वह तो दुष्ट मार है, जो तुम्हें भ्रमित करने के लिए यहाँ आया है।" तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मार है," दुष्ट मार को श्लोकों में संबोधित किया:

"रूप, वेदना और बोध; चेतना और संस्कार,
'मैं यह नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है'; इस प्रकार व्यक्ति इससे विरक्त हो जाता है। 289

"यद्यपि वे उसे हर जगह खोजते हैं; मार और उसकी सेना उसे नहीं पाते।
इस प्रकार विरक्त, सुरक्षित; जो सभी बंधनों से परे चला गया है।" 290

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

153. संपर्क के लिए छह क्षेत्र
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में स्थित शिखरनुमा छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को छह लोकों (इंद्रियों का वस्तुओं से संपर्क; स्पर्श/पृथ्वी संपर्क) के विषय में धर्म प्रवचन दे रहे थे, जिससे वे उपदेशित, प्रेरित और प्रसन्न हो रहे थे। भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग, नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर पूर्ण ध्यान दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में विचार आया, "यह तपस्वी गौतम भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं, उपदेश दे रहे हैं, प्रेरित कर रहे हैं और प्रसन्न कर रहे हैं... जो अपना पूर्ण ध्यान इस पर लगा रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित करूँ।" तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा और उनसे कुछ ही दूरी पर एक भयानक और डरावनी आवाज निकाली, मानो धरती फट रही हो। 291 तब एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से कहा, “भिक्षु, भिक्षु! ऐसा लगता है जैसे पृथ्वी फट रही हो।” यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु से कहा, “भिक्षु, पृथ्वी नहीं फट रही है। यह तो दुष्ट मारा है, जो तुम्हें भ्रमित करने के लिए यहाँ आया है।” तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि “यह दुष्ट मारा है,” दुष्ट मारा को श्लोकों में संबोधित किया,

“रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध; स्पर्श और सभी मानसिक वस्तुएँ;
यह संसार का भयानक प्रलोभन है; जिससे संसार मोहित है।

परन्तु जब वह इसे सही ढंग से पार कर लेता है; बुद्ध का ध्यानमग्न शिष्य
मारा के क्षेत्र को पार कर लेता है; सूर्य की तरह दीप्तिमान है।" 292

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगातो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

154. भिक्षा (पिंड)
एक बार भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच पंचशाला नामक ब्राह्मण गाँव में निवास कर रहे थे। उस समय पंचशाला में युवाओं का दान उत्सव चल रहा था। 293 फिर सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए पंचशाला में प्रवेश किया। उस समय दुष्ट मार (शैतान) ने पंचशाला के ब्राह्मण गृहस्थों को अपने वश में कर लिया था और उनके मन में यह विचार उत्पन्न कर दिया था, "संन्यासी गौतम को भिक्षा न लेने दें।"

तब भगवान (बुद्ध) अपने भिक्षापात्र को ठीक उसी प्रकार धोकर पंचशाला से निकल गए, जैसा कि भिक्षा मांगने के समय था। तब दुष्ट मार भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,
"हे तपस्वी, क्या आपने भिक्षा प्राप्त कर ली?"
[बुद्ध:] "हे दुष्ट, क्या यह तुमने ही किया था कि मुझे भिक्षा न मिले?"
[मारा:] "तो, आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) को दूसरी बार भिक्षा मांगने के लिए पंचशाला में प्रवेश करने दीजिए। मैं सुनिश्चित करूँगा कि भगवान (बुद्ध) को भिक्षा मिले।" 294

[भगवान (बुद्ध):]
"हे मारा, तुमने तथागत पर आक्रमण करके दोष उत्पन्न किया है।
हे दुष्ट, क्या तुम सचमुच सोचते हो कि 'मेरा दोष फल नहीं देता'?

हम सचमुच सुखी हैं, हम जिनके पास कुछ भी नहीं है।
हम आनंद (पीति/प्रीति) का भोग करते हुए निवास करेंगे; जैसे प्रकाश की धारा के देव (देवदूत)।" 295

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, शुभ (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं अंतर्धान हो गया।

---

155. किसान (कस्साका सं. कृषक)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्म प्रवचन देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उन्हें आनंदित कर रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग, नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर पूर्ण ध्यान दे रहे थे।

तभी दुष्ट मार (शैतान) के मन में विचार आया: "यह तपस्वी गौतम भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं, उन्हें प्रेरित कर रहे हैं और उन्हें आनंदित कर रहे हैं... जो अपना पूरा ध्यान इस पर लगा रहे हैं। मैं भी इस तपस्वी गौतम के पास जाकर उन्हें भ्रमित करूँ।" तब दुष्ट मार ने एक किसान का रूप धारण किया, जिसके कंधे पर एक बड़ा हल था, हाथ में एक लंबी अंकुश की छड़ी थी, उसके बाल बिखरे हुए थे, उसने

चमड़ी के वस्त्र पहने थे और उसके पैर कीचड़ से सने थे। वह भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा और उनसे कहा: "हे तपस्वी, शायद आपने बैल देखे हों?"
[बुद्धः] "हे दुष्ट, बैल तुम्हारे लिए क्या हैं?"
[माराः] "हे तपस्वी, आँख मेरी है, रूप मेरे हैं, दृष्टि संपर्क (वस्तुओं के साथ इंद्रियों का स्पर्श) और उसका
चेतना क्षेत्र (विन्नान संस्कृत विज्ञान) मेरा है। हे तपस्वी, तुम
मुझसे बचकर कहाँ जा सकते हो? हे तपस्वी, कान मेरे हैं, ध्वनियाँ मेरी हैं...
हे तपस्वी, नाक मेरी है, गंध मेरी हैं... हे
तपस्वी, जीभ मेरी है, स्वाद मेरे हैं... हे तपस्वी, शरीर मेरा है, स्पर्शनीय
वस्तुएँ मेरी हैं... हे तपस्वी, मन मेरा है, धम्म
मेरा है, मन संपर्क (स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र
मेरा है। हे तपस्वी, तुम मुझसे बचकर कहाँ जा सकते हो?"

हे दुष्ट, आँख तुम्हारी है। रूप तुम्हारे हैं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और
उसका चेतना क्षेत्र तुम्हारा है; परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ
आँख नहीं है, रूप नहीं हैं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका
चेतना क्षेत्र नहीं है - वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है। हे दुष्ट। 297 कान
तुम्हारे हैं। हे दुष्ट, ध्वनियाँ तुम्हारी हैं, कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका
चेतना क्षेत्र तुम्हारा है; परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ कान नहीं हैं,
ध्वनियाँ नहीं हैं, कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र नहीं है -
वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है। हे दुष्ट। नाक तुम्हारी है। हे दुष्ट,
गंधें तुम्हारी हैं, नाक संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र
तुम्हारा है; परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ नाक नहीं है, गंध नहीं है, नाक नहीं है।
स्पर्श और उसके चेतना क्षेत्र में तुम्हारा कोई स्थान नहीं है
, हे दुष्ट। जीभ तुम्हारी है। हे दुष्ट, स्वाद
तुम्हारे हैं, जीभ का स्पर्श और उसके चेतना क्षेत्र में तुम्हारा कोई स्थान नहीं है;
परन्तु हे दुष्ट, जहाँ जीभ नहीं है, स्वाद नहीं है, जीभ का
स्पर्श और उसके चेतना क्षेत्र में तुम्हारा कोई स्थान नहीं है
, हे दुष्ट। शरीर तुम्हारा है। हे दुष्ट, स्पर्शनीय वस्तुएँ हैं
हे दुष्ट, तुम्हारा शरीर-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र तुम्हारा है; परन्तु,
हे दुष्ट, जहाँ न शरीर है, न स्पर्शनीय वस्तुएँ हैं, न शरीर-
संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र है - वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है
, हे दुष्ट। मन तुम्हारा है, हे दुष्ट, मानसिक घटनाएँ (धम्म)
तुम्हारी हैं, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र तुम्हारा है;
परन्तु, हे दुष्ट, जहाँ न मन है, न मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं,
न मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और उसका चेतना क्षेत्र है -
वहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है। हे दुष्ट।"

[माराः]
"जिसके बारे में वे कहते हैं 'यह मेरा है'; और जो 'मेरा' के शब्दों में बोलते हैं;
यदि तुम्हारा मन इनमें विद्यमान है; तो तुम मुझसे बच नहीं पाओगे, हे तपस्वी।"

[बुद्धः]
"जिसके बारे में वे बात करते हैं वह मेरा नहीं है; मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो [अपने] की बात करते हैं।"
हे दुष्ट, तुम्हें यह जानना चाहिए; तुम मेरा मार्ग भी नहीं देख पाओगे।"

तब दुष्ट मारा को यह अहसास हुआ, "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे जानते हैं," और वह दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

156. शासन (रज्ज बिना राज्य)
एक बार भगवान (बुद्ध) हिमालय क्षेत्र में एक छोटी सी वन कुटिया में कोसलवासियों के बीच निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में थे, उनके मन में यह विचार आया, “क्या धार्मिक रूप से शासन करना संभव है; बिना हत्या किए और दूसरों को हत्या के लिए उकसाए बिना, बिना ज़ब्ती किए और दूसरों को ज़ब्ती के लिए उकसाए बिना, बिना शोक किए और दूसरों को शोक पहुँचाए बिना?” 298

तब दुष्ट मारा (शैतान), जिसने स्वयं भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया था, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, “आदरणीय महोदय, कृपया धार्मिक रूप से शासन करें: बिना हत्या किए और दूसरों को हत्या के लिए उकसाए बिना, बिना ज़ब्ती किए और दूसरों को ज़ब्ती के लिए उकसाए बिना, बिना शोक किए और दूसरों को शोक पहुँचाए बिना।”
[बुद्धः]
“पर तुम क्या देखते हो, दुष्ट, कि तुम मुझसे ऐसा कहते हो?”
[माराः]
"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति की चारों शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और संवर्धन किया है, उन्हें वाहन बनाया है, उन्हें आधार बनाया है, उन्हें स्थिर किया है, स्वयं उनमें अभ्यास किया है और उन्हें पूर्णतः सिद्ध किया है। और, आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) चाहें, तो उन्हें केवल यह संकल्प करना होगा कि पर्वतों का राजा हिमालय स्वर्ण बन जाए, और वह स्वर्ण बन जाएगा।" 299

[बुद्धः]
"यदि कोई पर्वत स्वर्ण का बना हो; पूर्णतः ठोस स्वर्ण का बना हो, तो भी
एक व्यक्ति के लिए इसकी दुगुनी मात्रा भी पर्याप्त नहीं होगी; यह जानकर, समभाव से निवास करें। 300

"जिस व्यक्ति
ने दुख के स्रोत को देख लिया है, वह इंद्रिय सुखों की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकता है?"
संसार में (भौतिक) प्राप्ति (उपाधि) को बंधन मानकर,
व्यक्ति को इससे मुक्ति पाने का अभ्यास करना चाहिए। 301

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भगवान (बुद्ध) मुझे जानते हैं, सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

(iii) तीसरा उप-अध्याय (मारा पंचक)
157. अनेक संख्या (साम्भाहुला)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शिलावती में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय बहुत से भिक्षु भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर निवास कर रहे थे - सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी। तब दुष्ट मार (शैतान) ने एक ब्राह्मण का रूप धारण किया, जिसकी बड़ी जटा थी, हिरण की खाल से बना वस्त्र पहने हुए, वृद्ध, छत के ब्रैकेट की तरह टेढ़ा, हांफता हुआ, और उदुंबर की लकड़ी का डंडा पकड़े हुए था। 302 वह उन भिक्षुओं के पास आया और उनसे कहा: “हे भिक्षुओं, आप युवावस्था में ही दीक्षा प्राप्त कर चुके हैं, काले बालों वाले, यौवन के आशीर्वाद से संपन्न, जीवन के सर्वोपरि, बिना इंद्रिय सुखों में लिप्त हुए। हे भिक्षुओं, मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद लें; जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है उसे त्याग कर समय लेने वाली चीजों का पीछा न करें।” 303
[भिक्षुओं:]
“हे ब्राह्मण, हमने प्रत्यक्ष दृष्टि से दिखने वाली चीजों का त्याग समय लेने वाली चीजों के लिए नहीं किया है। हमने समय लेने वाली चीजों का त्याग प्रत्यक्ष दृष्टि से दिखने वाली चीजों के लिए किया है। क्योंकि हे ब्राह्मण, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि इंद्रिय सुख समय लेने वाले, दुख से भरे, निराशा से भरे और उनसे उत्पन्न होने वाला खतरा कहीं अधिक है, जबकि यह धम्म (मार्ग, नियम) प्रत्यक्ष दृष्टि से दिखने वाला, तात्कालिक, दर्शन करने के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाने वाला है।”
यह सुनकर राक्षस मारा ने अपना सिर हिलाया, जीभ बाहर निकाली, माथे पर तीन झुर्रियाँ बनाईं और अपने डंडे पर झुककर चला गया। 304

तब वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और सब कुछ विस्तार से बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] “वह ब्राह्मण नहीं था, भिक्षुओं। वह दुष्ट मारा था, जो तुम्हें भ्रमित करने आया था।”

तब भगवान (बुद्ध) ने इसका अर्थ समझकर उस अवसर पर यह श्लोक पढ़ा: “ जिसने दुख के स्रोत को देख लिया है,

वह इंद्रिय सुखों की ओर कैसे आकर्षित हो सकता है ? भौतिक प्राप्ति (उपाधि) को संसार में बंधन के रूप में जानकर, व्यक्ति को इससे मुक्ति पाने का अभ्यास करना चाहिए।”

---

158. समिद्धि

एक बार भगवान (बुद्ध) शिलावती में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य समिद्धि भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर रहे थे। 305 तब, जब पूज्य समिद्धि एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "यह मेरे लिए वास्तव में लाभ की बात है, यह मेरे लिए उत्तम लाभ है कि मेरे गुरु अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं! यह मेरे लिए वास्तव में लाभ की बात है, यह मेरे लिए उत्तम लाभ है कि मैंने इस सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षा ली है! यह मेरे लिए वास्तव में लाभ की बात है, यह मेरे लिए उत्तम लाभ है कि ब्रह्मचर्य जीवन में मेरे साथी गुणी और अच्छे चरित्र वाले हैं!"
तब दुष्ट मारा (शैतान) ने पूज्य समिद्धि के मन के विचार को स्वयं जान लिया और उनके पास आकर, उनसे कुछ ही दूरी पर, एक भयानक और डरावनी आवाज निकाली, मानो धरती फट रही हो। 306 तब पूज्य समिद्धि भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था, वह बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] “हे समिद्धि, वह धरती का फटना नहीं था। वह दुष्ट मारा था, जो तुम्हें भ्रमित करने आया था। हे समिद्धि, वापस जाओ और सतर्क, उत्साही और दृढ़ रहो।”
[समिद्धि:]
“जी, पूज्यवर,” पूज्य समिद्धि ने उत्तर दिया।
फिर वे अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।
दूसरी बार, जब पूज्य समिद्धि एकांतवास में अकेले थे, उनके मन में एक विचार आया... और दूसरी बार दुष्ट मारा ने एक भयानक और डरावनी आवाज निकाली, मानो धरती फट रही हो। तब पूज्य समिद्धि ने समझकर, "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"मैंने आस्था से दीक्षा ली है; गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन की ओर।
मेरा ध्यान और अंतर्दृष्टि परिपक्व हैं; और मेरा मन समाधि की अवस्था में है।
आप जो चाहें रूप धारण करें; लेकिन आप मुझे कभी भयभीत नहीं कर सकते।" 307

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षु समिद्धि मुझे जानते हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

159 गोधिका

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य गोधिका इसिगिली ढलान पर स्थित काली चट्टान पर निवास कर रहे थे। तब, पूज्य गोधिका सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर निवास कर रहे थे, तब उन्हें क्षणिक मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त हुई, परन्तु वे उस क्षणिक मुक्ति से विमुख हो गए। 308 दूसरी बार, पूज्य गोधिका सचेत, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर निवास कर रहे थे, तब उन्हें क्षणिक मुक्ति प्राप्त हुई, परन्तु वे उस क्षणिक मुक्ति से विमुख हो गए। तीसरी बार... चौथी बार... पाँचवीं बार... छठी बार, जब पूज्य गोधिका सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान में थे, तब उन्हें क्षणिक मानसिक मुक्ति प्राप्त हुई, परन्तु वे उस क्षणिक मानसिक मुक्ति से विमुख हो गए। सातवीं बार, जब पूज्य गोधिका सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान में थे, तब उन्हें क्षणिक मानसिक मुक्ति प्राप्त हुई।

तब पूज्य गोधिका के मन में यह विचार आया: "मैं छह बार क्षणिक मानसिक मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) से विमुख हो चुका हूँ। मुझे छुरी का प्रयोग करना चाहिए।" 309 तब दुष्ट मारा (शैतान) ने पूज्य गोधिका के मन के विचार को स्वयं जानकर भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इन श्लोकों में कहा: 310

“हे महावीर, महान ज्ञान से परिपूर्ण; शक्ति और महिमा से प्रज्वलित!
समस्त शत्रुता और भय पर विजय प्राप्त करने वाले; मैं आपके चरणों की आराधना करता हूँ, हे दृष्टिवान!

“हे महावीर, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले; आपका शिष्य मृत्यु की कामना कर रहा है।
वह [आत्महत्या करने का] इरादा रखता है; हे प्रकाशमान!

“हे भगवान (बुद्ध), आपका शिष्य; जो शिक्षा में आनंदित है,
अपने मन के आदर्श की खोज में लगा हुआ प्रशिक्षु; हे सर्वप्रसिद्ध, अपना प्राण कैसे ले सकता है?” 311
उस समय पूज्य गोधिका ने चाकू का प्रयोग किया था। 312 तब भगवान (बुद्ध) ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में संबोधित किया:

"सत्यात्मा ऐसे ही कर्म करते हैं; वे प्राणविरक्ति से विरक्त होते हैं।
तृष्णा को जड़ से उखाड़कर, गोधिका ने परम निर्वाण प्राप्त किया है।"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "आओ, भिक्षुओं, हम इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर चलें, जहाँ गोधिका नामक कुल के व्यक्ति ने छुरी का प्रयोग किया है।" फिर भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "क्या तुम देखते हो, भिक्षुओं, वह धुएँ का बादल, वह अंधकार का बवंडर, जो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे और मध्य दिशाओं में गतिमान है?" [भिक्षु:] "जी, आदरणीय।" [बुद्ध:]

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध) अनेक भिक्षुओं के साथ इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर गए। दूर से भगवान (बुद्ध) ने पूज्य गोधिका को पलंग पर कंधे घुमाए लेटे हुए देखा। 313 उस समय धुएं का एक बादल, अंधेरे का एक बवंडर, पूर्व की ओर, फिर पश्चिम की ओर, उत्तर की ओर, दक्षिण की ओर, ऊपर की ओर बढ़ रहा था। नीचे की ओर, और मध्यवर्ती तिमाहियों की ओर।

"हे भिक्षुओं, यह दुष्ट मारा है जो गोधिका नामक कुल के व्यक्ति की चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की खोज कर रहा है, और सोच रहा है: 'अब गोधिका नामक कुल के व्यक्ति की चेतना कहाँ स्थापित हो गई है?' परन्तु हे भिक्षुओं, चेतना स्थापित न होने के कारण गोधिका ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।" 314
तब दुष्ट मारा पीले मखमल की लकड़ी का वीणा लेकर भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा:

"ऊपर, नीचे और चारों ओर; चारों दिशाओं में और बीच में,
मैं खोज रहा हूँ, परन्तु नहीं पा रहा; गोधिका कहाँ चला गया है?"

[बुद्ध:]
"वह स्थिर पुरुष दृढ़ निश्चयी था; एक ध्यानी जो सदा ध्यान में लीन रहता था।
दिन-रात ध्यान में लगा रहता था; जीवन से भी आसक्ति नहीं रखता था।

मृत्यु की सेना पर विजय प्राप्त कर चुका था; पुनर्जन्म नहीं लेता था।"
तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) को जड़ सहित खींचकर, गोधिका ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया। "

वह इतना दुखी हुआ कि उसका वीणा उसके बगल से गिर गया।

तब वह निराश आत्मा वहीं विलीन हो गई।" 315

---

160. सात वर्षों का प्रयास (सत्तवसानुबंध)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, चरवाहे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। उस समय शैतान (मारा) सात वर्षों से भगवान (बुद्ध) का पीछा कर रहा था, उन तक पहुँचने का प्रयास कर रहा था, लेकिन सफल नहीं हो पा रहा था। 316 तब शैतान (मारा) भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोकों में कहा,

"क्या आप दुःख में डूबे हुए हैं, इसलिए वनों में ध्यान करते हैं?
क्या आपने धन खो दिया है या उसके लिए तरस रहे हैं?
या गाँव में कोई अपराध किया है?
आप लोगों से मित्रता क्यों नहीं करते?
आप किसी से घनिष्ठ संबंध क्यों नहीं बनाते?"

[भगवान (बुद्ध):]
"मैंने दुःख की जड़ को पूरी तरह से उखाड़ फेंका है।
मैं निर्दोष होकर दुःख से मुक्त ध्यान करता हूँ।
मैंने अस्तित्व के सभी लालच (भावो) को काट डाला है,
मैं दोषमुक्त होकर ध्यान करता हूँ, हे आलसी (पमादा) के सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे

सगे सगे
सगे सगे
सगे सगे
सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सगे सत्कार के लिए क्या

लाभ है?" [मारा:] "यदि आपने मार्ग खोज लिया है; वह सुरक्षित मार्ग जो अमरता (निर्वाण) की ओर ले जाता है, तो आप अकेले उस मार्ग पर चलें; दूसरों को उपदेश देने का क्या लाभ है?" [भगवान (बुद्ध):] "जो लोग परलोक की ओर जा रहे हैं, वे पूछते हैं कि मृत्यु के पार क्या है। पूछे जाने पर, मैं उन्हें समझाता हूँ; वह सत्य है जो किसी भी प्रकार की प्राप्ति से परे है (उपाधि)।" 318 [मारा:] "मान लीजिए, आदरणीय महोदय, किसी गाँव या कस्बे से कुछ ही दूरी पर एक कमल का तालाब है जिसमें एक केकड़ा रहता है। 319 तब कुछ लड़के-लड़कियाँ गाँव या कस्बे से निकलकर उस तालाब पर जाते। वे केकड़े को पानी से निकालकर ऊँची जगह पर रख देते। फिर, जब भी वह केकड़ा अपना एक पंजा बाहर निकालता, वे लड़के-लड़कियाँ उसे काटकर, तोड़कर और डंडों व पत्थरों से चूर-चूर कर देते। इस प्रकार, जब उसके सारे पंजे कटकर, टूटकर और चूर-चूर हो जाते, तो वह केकड़ा उस तालाब में वापस नहीं लौट पाता। ठीक उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, मेरे ये सारे विकृत, छल-कपट और कुटिल रूप भगवान (बुद्ध) द्वारा काट कर, तोड़ कर और चूर-चूर कर दिए गए हैं। अब, आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) के पास फिर से जाकर उनसे संपर्क करने में असमर्थ हूँ।" तब दुष्ट मारा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में निराशा के ये श्लोक पढ़े: 320 "एक कौआ इधर-उधर घूम रहा था; एक पत्थर जो चर्बी के ढेर जैसा दिखता था। 'चलो यहाँ कुछ नरम चीज़ ढूंढते हैं,' [उसने सोचा]; 'शायद यहाँ कुछ अच्छा और स्वादिष्ट मिल जाए।'

लेकिन क्योंकि उसे वहाँ कुछ भी स्वादिष्ट नहीं मिला, कौआ उस स्थान से चला गया।
ठीक उसी तरह जैसे वह कौआ पत्थर पर झपटा था; हम गौतम को निराश होकर छोड़ देते हैं।

---

161. मारा की बेटियाँ (मराधितु)
तब दुष्ट मारा (शैतान) ने भगवान (बुद्ध) के समक्ष निराशा के ये श्लोक बोलकर उस स्थान से चला गया और भगवान (बुद्ध) से कुछ दूर जमीन पर पालथी मारकर बैठ गया। वह मौन, भयभीत, कंधे झुकाए, उदास, चिंतनशील, बोलने में असमर्थ और एक छड़ी से जमीन को खरोंचता रहा। 321
तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - दुष्ट मारा के पास आईं और उससे श्लोकों में बोलीं: 322

“हे पिता, आप इतने निराश क्यों हैं? वह कौन है जिसके लिए आप शोक मना रहे हैं? हम उसे कामवासना के जाल में फँसा लेंगे; जैसे वे वन के हाथी को फँसाते हैं। हम उसे कसकर बाँधकर वापस लाएँगे; और वह आपके वश में होगा।” 323

[मारा (शैतान):]
"अरहंत, संसार का सौभाग्यशाली (सुगतो) व्यक्ति, कामवासनाओं से आसानी से आकर्षित नहीं होता। वह मारा के क्षेत्र से परे चला गया है; इसलिए मैं इतना दुखी हूँ।"

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - भगवान (बुद्ध) के पास आईं और उनसे कहा: "हे तपस्वी, हम आपके चरणों में सेवा करते हैं।" परन्तु भगवान (बुद्ध) ने कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे उपाधियों के पूर्ण निर्वाह में विमुक्त (विमुक्त) थे। 324

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - एक तरफ चली गईं और आपस में सलाह करने लगीं: "मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। मान लीजिए कि हम प्रत्येक सौ कन्याओं के रूप में प्रकट हों।" तब मारा की तीनों पुत्रियाँ, प्रत्येक सौ कन्याओं के रूप में प्रकट होकर, भगवान (बुद्ध) के पास गईं और उनसे कहा, "हे तपस्वी, हम आपके चरणों में सेवा करते हैं।" परन्तु भगवान (बुद्ध) ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे सभी कर्मों के पूर्ण निर्वाह में विमुक्त (विमुक्त) थे।

तब मारा की पुत्रियाँ एक तरफ चली गईं और फिर सलाह करने लगीं, "मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। मान लीजिए कि हम प्रत्येक सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में प्रकट हों जिन्होंने कभी जन्म नहीं दिया है।" तब मारा की तीनों पुत्रियाँ, प्रत्येक सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में प्रकट हुईं जिन्होंने कभी जन्म नहीं दिया है... सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में जिन्होंने एक बार जन्म दिया है... सौ ऐसी स्त्रियों के रूप में जिन्होंने दो बार जन्म दिया है... सौ मध्यम आयु वर्ग की स्त्रियों के रूप में... सौ वृद्ध स्त्रियों के रूप में, भगवान (बुद्ध) के पास गईं और उनसे कहा, "हे तपस्वी, हम आपके चरणों में सेवा करते हैं।" लेकिन भगवान (बुद्ध) ने इस पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे सभी प्राप्तियों के पूर्ण निर्वाह में विलीन हो चुके थे।

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - एक तरफ जाकर बोलीं: "हमारे पिता ने जो कहा वह सत्य है:

'अरहंत, संसार का सौभाग्यशाली (सुगतो) ...
इसलिए मैं इतना दुखी हूँ।'

यदि हमने ऐसी रणनीति अपनाकर किसी ऐसे तपस्वी या ब्राह्मण पर आक्रमण किया होता
जो कामवासना से मुक्त न हो, तो या तो उसका हृदय फट जाता,
या वह अपने मुँह से गर्म रक्त उगल देता।" या तो वह
पागल हो जाता या मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता; या फिर वह
सूखकर मुरझा जाता और नष्ट हो जाता।
मुरझाया हुआ, ठीक वैसे ही जैसे कटी हुई हरी घास सूखकर
मुरझा जाती है।

फिर मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा - भगवान (बुद्ध) के पास आईं और एक तरफ खड़ी हो गईं। एक तरफ खड़ी होकर, मारा की पुत्री तन्हा ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा:

"क्या आप दुःख में डूबे हुए हैं, इसलिए वनों में ध्यान करते हैं?
क्या आपने धन खो दिया है या उसके लिए तरस रहे हैं?
या गाँव में कोई अपराध किया है?
आप लोगों से मित्रता क्यों नहीं करते?
आप किसी से घनिष्ठ संबंध क्यों नहीं बनाते?"

[भगवान (बुद्ध):]
"सुखद और मनभावन की सेना पर विजय प्राप्त करके
, एकांत ध्यान में रहकर मैंने सुख को पाया।
लक्ष्य की प्राप्ति, हृदय की शांति। 325
इसलिए मैं लोगों से मित्रता नहीं करता।"

और न ही मैं कोई घनिष्ठ संबंध बनाऊँगा।"

तब मारा की पुत्री आरती ने भगवान (बुद्ध) से
श्लोक में कहा:

511 "यहाँ एक भिक्षु अक्सर कैसे निवास करता है
कि पाँच जलप्रपात पार करने के बाद, वह यहाँ छठा जलप्रपात पार कर लेता है?
वह कैसे ध्यान करता है कि इंद्रिय-संबंधी धारणाएँ (सन्ना संस्कृत: संग्या)
दूर रहती हैं और उसे जकड़ नहीं पातीं?" 326

[भगवान (बुद्ध):]
"शरीर से शांत, मन से पूर्णतः मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त)।
सृजन न करने वाला, ध्यानमग्न (सतिमा), संन्यासी,
धर्म (मार्ग, नियम) का ज्ञाता, विचार-मुक्त ध्यान करने वाला।
वह न तो उभयभीत होता है, न विघ्नता में बहता है, न कठोर होता है। 327

"जब एक भिक्षु यहाँ अक्सर इस प्रकार निवास करता है।
पाँच जलप्रपात पार करने के बाद, वह यहाँ छठा जलप्रपात पार कर लेता है।
जब वह इस प्रकार ध्यान करता है, तो इंद्रिय-संबंधी धारणाएँ
दूर रहती हैं और उसे जकड़ नहीं पातीं।"

तब मारा की पुत्री रागा ने भगवान (बुद्ध) को
श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा:

"उन्होंने अपने समूह और व्यवस्था के साथ रहकर तृष्णा (तन्हा संस्कृत) का निवारण किया है;
निश्चय ही कई अन्य प्राणी पार करेंगे।
हाय, यह ऋषि बहुतों को छीन लेंगे
और उन्हें मृत्यु के राजा से परे ले जाएंगे।" 328

[भगवान (बुद्ध):]
"सचमुच तथागत, महान वीर (महावीर); सच्चे धम्म के माध्यम से नेतृत्व करते हैं।
जब वे धम्म के माध्यम से नेतृत्व कर रहे हैं; तो समझने वालों में ईर्ष्या क्या हो सकती है?" 329

तब मारा की पुत्रियाँ - तन्हा, आरती और रागा -
दुष्ट मारा के पास पहुँचीं। मारा ने उन्हें दूर से आते देखा और
उन्हें श्लोकों में संबोधित किया: 330

"नासमझ! तुमने कमल के डंठलों से पर्वत को कुचलने का प्रयास किया;
अपने नाखूनों से पर्वत को खोदने का; अपने दाँतों से लोहे को चबाने का।

मानो, आपने अपने सिर से एक चट्टान उठाई; आपने खाई में पैर जमाने की कोशिश की;
मानो आपने अपनी छाती से किसी ठूंठ पर प्रहार किया हो; आप गौतम से निराश होकर विदा हुए।

वे सभी सौंदर्य से परिपूर्ण होकर उनके पास आए थे; तन्हा, आरती और राग।
लेकिन गुरु ने उन्हें वहीं उड़ा दिया; जैसे हवा, रुई के गिरे हुए गुच्छे को।

संयुक्त 5: भिक्खुनिस/ननों के साथ जुड़े हुए प्रवचन (भिक्खुनिससंयुत्त)
162 अलाविका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, सुबह, भिक्षुणी अलाविका ने वस्त्र धारण किया और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। 331 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वह भिक्षा मांगने लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में एकांतवास के लिए चली गई। 332
तब दुष्ट मारा (शैतान) ने भिक्षुणी अलाविका के मन में भय, डर और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे एकांतवास से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आकर श्लोकों में उससे कहा:

"संसार में कोई मुक्ति नहीं है; तो तुम एकांतवास से क्या करोगी?
इंद्रिय सुखों का आनंद लो; बाद में पश्चाताप मत करो!"

तब भिक्षुणी अलाविका के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक किसने पढ़ा है - किसी मनुष्य ने या किसी अन्य प्राणी ने?" तब उन्हें यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मुझमें भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है, ताकि मैं एकांतवास से विमुख हो जाऊं।" तब भिक्षुणी अलाविका ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"संसार में एक मुक्ति का मार्ग है; जिसे मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से निकट से अनुभव किया है।
हे दुष्ट, आलसी (पमादा) के संबंधी; तुम उस अवस्था को नहीं जानते। 333

"इंद्रिय सुख तलवारों और खूंटियों के समान हैं; स्कंध (संग्रह) उनके काटने के तख्ते के समान हैं।
जिसे तुम इंद्रिय सुख (नंदी/आनंद) कहते हो; यह मेरे लिए आनंदहीन हो गया है।" 334

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी अलाविका मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

163 सोमा
सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी सोम ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। 335 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वह लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में दिनभर विश्राम करने के लिए गई। अंधवन में प्रवेश करके वह एक वृक्ष के नीचे दिनभर विश्राम करने के लिए बैठ गई। तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी सोम के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उन्हें समाधि अवस्था से विमुख करने के उद्देश्य से, उनके पास आया और श्लोक में उनसे कहा:

"वह अवस्था जिसे प्राप्त करना इतना कठिन है; जिसे संत (ऋषि-मुनि) प्राप्त कर सकते हैं
; वह एक स्त्री द्वारा, अपनी दो उंगलियों वाली अंतर्दृष्टि से, प्राप्त नहीं की जा सकती।" 336

तब भिक्षुणी के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक किसने पढ़ा है - मनुष्य ने या अमानव ने?" तब उन्हें यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मेरे मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, मुझे समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से यह श्लोक पढ़ा है।" तब भिक्षुणी ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"नारीत्व का क्या महत्व है; जब मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से हो।
जब ज्ञान निरंतर प्रवाहित होता हो; जब कोई धर्म (मार्ग, नियम) को सही ढंग से देखता है (विपस्सतो, ध्यान में)। 337

"जिसके मन में यह विचार आए कि 'मैं स्त्री हूँ' या 'मैं पुरुष हूँ'
या 'मैं कुछ भी हूँ'; वह मारा के संबोधन के योग्य है।" 338

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भिक्खुनी सोम
मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं से गायब हो गया।

---

164 किसागोतामी

सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी किसागोतमी ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। 339 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वह भिक्षा मांगने लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में दिन बिताने के लिए चली गई। अंधवन में प्रवेश करके वह दिन बिताने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई।
तब शैतान, भिक्षुणी किसागोतमी के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उन्हें समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उनके पास आया और उनसे श्लोक में कहा:

"अब, जब तुम्हारा पुत्र मर गया है; तुम अकेले आँसू भरे चेहरे के साथ क्यों बैठी हो?
अकेले ही जंगल में प्रवेश करके; क्या तुम किसी पुरुष की तलाश में हो?"

तब भिक्षुणी के मन में यह विचार आया: "यह श्लोक किसने पढ़ा है - मनुष्य ने या अमानव ने?" तब उसे यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मुझमें भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है, ताकि मैं समाधि अवस्था से विमुख हो जाऊं।"

तब भिक्षुणी किसागोतमी ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"मैंने पुत्रों की मृत्यु का दुख भोग लिया है; इसके साथ ही मनुष्यों की खोज समाप्त हो गई है।
मैं शोक नहीं करती, मैं रोती नहीं; और न ही मैं तुमसे डरती हूं, मित्र। 340

"हर जगह आनंद (नंदी/आनंद) नष्ट हो गया है; अंधकार का समूह पराजित हो गया है।
मृत्यु की सेना पर विजय प्राप्त कर ली है; मैं अपवित्रता से मुक्त होकर निवास करता हूँ।" 341

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी किसागोतमी
मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

---

165 विजया

सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी विजया ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। 342 तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी विजया के मन में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे समाधि से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आया और छंदों में उससे कहा:

"तुम इतनी युवा और सुंदर हो; और मैं भी अपनी युवावस्था में हूँ।
आओ, हे श्रेष्ठ स्त्री, हम आनंद मनाएँ; पंचांग संगीत के साथ।" 343

तब भिक्षुणी विजया के मन में यह विचार आया: "अब यह कौन है...? यह दुष्ट मारा है... जो मुझे समाधि से विमुख करना चाहता है।"
तब भिक्षुणी विजया ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध; और स्पर्श से आनंदित होने वाली वस्तुएँ
मैं तुम्हें ही अर्पित करती हूँ; क्योंकि हे मारा, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।

मैं इस घृणित, सड़े हुए शरीर से घृणा और अपमानित महसूस करती हूँ।
जो टूटने के अधीन और नाज़ुक है; मैंने इंद्रिय तृष्णा को जड़ से उखाड़ फेंका है। 344

"जो प्राणी सजीव हैं; और जो निराकार में विश्वास रखते हैं;
और वे भी जिन्होंने शांति प्राप्त की है; उन सभी का अंधकार नष्ट हो गया है।" 345

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्खुनी विजया मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

166. उप्पलावन्ना

सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी उप्पलावन्ना ने वस्त्र धारण किए... वह फूलों से लदे साल के वृक्ष के चरणों में खड़ी थीं। 346

तब दुष्ट मारा, भिक्षुणी उप्पलावन्ना के मन में भय, घबराहट और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उन्हें समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उनके पास आया और श्लोक में उनसे कहा:

"हे भिक्षुणी, फूलों से लदे साल के वृक्ष के पास आकर;
तुम उसके चरणों में अकेली खड़ी हो;
तुम्हारी सुंदरता के समान कोई नहीं;
भोली (नासमझ) लड़की, क्या तुम्हें दुष्टों से डर नहीं लगता?" 347

तब भिक्षुणी उप्पलावन्ना के मन में यह विचार आया: "
यह कौन है...? यह दुष्ट मारा है... जो मुझे
समाधि अवस्था से विमुख करना चाहता है।"
तब भिक्षुणी उप्पलावन्ना ने यह समझकर कि "यह
दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"लाखों दुष्टों के बावजूद;
जैसे तुम यहाँ आ जाओ,

मैं जरा भी विचलित नहीं होती, मुझे कोई भय नहीं होता;
हे मारा, अकेले में भी मैं तुमसे नहीं डरती। 348

"मैं स्वयं को विलीन कर सकती हूँ; या मैं तुम्हारे गर्भ में प्रवेश कर सकती हूँ।
मैं तुम्हारी भौहों के बीच खड़ी हो सकती हूँ; फिर भी तुम मुझे देख नहीं पाओगे।

"मैं अपने मन की स्वामी हूँ; आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) अच्छी तरह विकसित है;
मैं सभी बंधनों से मुक्त हूँ; इसलिए मैं तुमसे नहीं डरती, मित्र।" 349

तब दुष्ट मारा, यह जानकर कि "भिक्खुनी उप्पलावन्ना मुझे जानती हैं," दुखी और निराश होकर वहीं विलीन हो गया।

---

167. काला
सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी (नन) चाला ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के चरणों में बैठ गई। 350 तब दुष्ट मारा (शैतान) भिक्षुणी चाला के पास आया और उससे बोला: "भिक्षुणी, तुम्हें क्या नापसंद है?"
[नन:] "मैं पुनर्जन्म को नापसंद करती हूँ, मित्र।"

[मारा:]
"तुम पुनर्जन्म को क्यों नापसंद करती हो? एक बार जन्म लेने पर, व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है।
तुम्हें किसने यह समझाया है; 'भिक्षुणी, पुनर्जन्म को नापसंद करो'?"

[भिक्षुणी चाला:]
537 "क्योंकि जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु होती है; एक बार जन्म लेने पर, व्यक्ति को व्यथाओं का सामना करना पड़ता है;
बंधन, हत्या, पीड़ा; इसलिए पुनर्जन्म को नापसंद करना चाहिए। 351

"बुद्ध ने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दिया है; पुनर्जन्म से मुक्ति;
समस्त दुखों का त्याग; उन्होंने मुझे सत्य में स्थिर कर दिया है।

"जो प्राणी साकार रूप में निवास करते हैं; और जो निराकार में विश्वास रखते हैं
, वे निरोध (निरोध) को न समझ पाने के कारण, पुनर्जन्म लेते हैं।" 352

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी चाला मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं विलीन हो गया।

---

168. उपकला
श्रावस्ती में। फिर, सुबह, भिक्षुणी उपाकला ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। तभी दुष्ट मारा भिक्षुणी उपाकला के पास आया और उससे बोला, "भिक्षुणी, तुम कहाँ पुनर्जन्म लेना चाहती हो?"
[भिक्षुणी:] "मैं कहीं भी पुनर्जन्म नहीं लेना चाहती, मित्र।"

[मारा:]
"तवतिंसा और यम देव हैं; और तुषिता स्वर्ग के देव हैं,
वे देव हैं जो सृष्टि में आनंद लेते हैं; और वे देव हैं जो नियंत्रण रखते हैं।
अपना मन वहीं [उन स्वर्गों की ओर] लगाओ; और तुम्हें आनंद का अनुभव होगा।" 353

[भिक्खुनी उपचल:]
"तवतिंसा और यम देव हैं; और तुषिता स्वर्ग के देवता हैं,
वे देव जो सृष्टि में आनंद लेते हैं; और वे देव जो नियंत्रण रखते हैं।
वे अभी भी कामुक बंधन से बंधे हैं; वे फिर से मार के वश में आ जाते हैं।

"सारा लोक अग्नि में जल रहा है; सारा लोक जल रहा है।
सारा लोक धधक रहा है; सारा लोक कांप रहा है।

"जो कांपता या जलता नहीं; जहाँ सांसारिक लोग नहीं जाते।
जहाँ मार का कोई स्थान नहीं है; वहीं मेरा मन प्रसन्न होता है।" 354

तब दुष्ट मार ने यह जानकर कि "भिक्खुनी उपचल मुझे जानती हैं," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

169. सिसुपाकाला
सावत्थी में, सुबह-सुबह, भिक्षुणी शिशुपकला ने वस्त्र धारण किए... और दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गईं। तभी दुष्ट मारा (शैतान) भिक्षुणी शिशुपकला के पास आया और उनसे बोला, "भिक्षुणी, तुम किस मत को मानती हो?"
[भिक्षुणी:] "मित्र, मैं किसी के मत को नहीं मानती।" [

मारा:]
"तुमने किसके अधीन अपना सिर मुंडवाया है? तुम एक तपस्वी प्रतीत होती हो।
फिर भी तुम किसी मत को नहीं मानती; तो फिर भ्रमित होकर क्यों भटक रही हो?" 355

[भिक्षुणी शिशुपकला:]
"यहाँ बाहर मतों के अनुयायी हैं; वे अपने विचारों पर भरोसा रखते हैं।
मैं उनकी शिक्षाओं को नहीं मानती; वे धर्म (मार्ग, नियम) में कुशल नहीं हैं। [134]

"पर शाक्य वंश में जन्मी एक है; वह प्रबुद्ध, अद्वितीय,
सर्वविजयी, मार का वध करने वाला; जो सर्वत्र अजेय है।

सर्वत्र मुक्त और अनासक्त; वह (दिव्य) दृष्टि वाला जो (ध्यान में) सभी (स्वर्ग, नरक आदि) को देखता है।
"सभी कर्मों के अंत तक पहुँच चुका; उपाधियों के निर्वाह में मुक्त (विमुक्त)।
वह भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं; उनकी शिक्षा मुझे स्वीकार्य है।" 356

तब दुष्ट मार ने यह जानकर कि "भिक्षुणी शिशुपाला मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं से विलीन हो गया।

---

170. सेला

सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी सेला ने वस्त्र धारण किए... वह दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के चरणों में बैठ गई। 357 तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी सेला के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आया और श्लोक में उससे कहा:

"इस कठपुतली को किसने बनाया है? कठपुतली का निर्माता कहाँ है?
कठपुतली कहाँ से उत्पन्न हुई है? कठपुतली का अंत कहाँ होता है?" 358

तब भिक्षुणी सेला के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक पढ़ने वाला कौन है - मनुष्य है या अमानव?" तब उन्हें यह बात समझ में आई: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मेरे मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है, ताकि मैं समाधि अवस्था से विमुख हो जाऊं।"
तब भिक्षुणी सेला ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"यह कठपुतली स्वयं नहीं बनी है; न ही यह दुख किसी और के कारण उत्पन्न हुआ है।
यह किसी कारण पर निर्भर है; कारण के विखंडन से इसका अंत हो जाएगा।

जैसे जब कोई बीज खेत में बोया जाता है; वह दो कारकों पर निर्भर होकर बढ़ता है:
उसे मिट्टी के पोषक तत्वों और नमी की निरंतर आपूर्ति दोनों की आवश्यकता होती है:

ठीक उसी प्रकार स्कंध और धातुएँ; और इंद्रियों के ये छह संपर्क क्षेत्र (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श)
किसी कारण पर निर्भर हैं; कारण के विखंडन से इनका अंत हो जाएगा।" 359

तब दुष्ट मारा को यह एहसास हुआ, "भिक्खुनी सेला मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वह वहीं गायब हो गया।

---

171. वजिरा

सावत्थी में। फिर, सुबह, भिक्षुणी वजिरा ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। 360 सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद [135] जब वह भिक्षा मांगने के बाद लौटी, तो भोजन करने के बाद वह अंधवन में दिन बिताने के लिए चली गई। अंधवन में प्रवेश करके वह दिन बिताने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गई।
तब दुष्ट मारा (शैतान), भिक्षुणी वजिरा के मन में भय, व्याकुलता और आतंक उत्पन्न करने की इच्छा से, उसे समाधि अवस्था से विमुख करने की इच्छा से, उसके पास आया और श्लोकों में उससे कहा:

"इस प्राणी की रचना किसने की है? इस प्राणी का रचयिता कहाँ है? यह
प्राणी कहाँ उत्पन्न हुआ है? यह प्राणी कहाँ समाप्त होता है?"

तब भिक्षुणी वजिरा के मन में यह विचार आया: "अब यह श्लोक किसने पढ़ा है - कोई मनुष्य है या कोई अमानव?" तब उन्हें यह विचार आया: "यह दुष्ट मारा है, जिसने मेरे मन में भय, कंपकंपी और आतंक उत्पन्न करने और मुझे समाधि अवस्था से विमुख करने के उद्देश्य से यह श्लोक पढ़ा है।" तब भिक्षुणी वजिरा ने यह समझकर कि "यह दुष्ट मारा है," उसे श्लोकों में उत्तर दिया:

"अब तुम 'एक प्राणी' क्यों मान रहे हो? मारा, क्या यही तुम्हारा काल्पनिक विचार है?
यह तो केवल कर्म-संस्कारों का ढेर है; यहाँ कोई प्राणी नहीं है।

जैसे भागों के समूह के लिए 'रथ' शब्द का प्रयोग किया जाता है।
वैसे ही जब समूह (खंड संस्कृत स्कंध) विद्यमान होते हैं, तो 'एक प्राणी' की परंपरा होती है।"

"केवल दुख ही आता है; दुख ही रहता है और चला जाता है।
दुख के सिवा कुछ नहीं आता; दुख के सिवा कुछ नहीं जाता।" 361

तब दुष्ट मारा ने यह जानकर कि "भिक्षुणी वजिरा मुझे जानती है," दुखी और निराश होकर वहीं गायब हो गया।

संयुत्त 6: ब्रह्मा/प्रधान देवदूतों के साथ संबंधित प्रवचन (ब्रह्मसंयुत्त)
(i) प्रथम उप-अध्याय (अनुरोध)
172. ब्रह्मा का निवेदन
इस प्रकार मैंने सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 362 एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने के बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरी चराने वाले के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। फिर, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में थे, तो उनके मन में यह विचार आया: "यह धर्म (मार्ग, नियम) जिसे मैंने खोजा है, गहरा, देखना कठिन, समझना कठिन, शांत और उदात्त है, तर्क के दायरे से परे, सूक्ष्म, केवल बुद्धिमानों द्वारा अनुभव किया जा सकता है। परन्तु यह पीढ़ी आसक्ति में आनंदित होती है, आसक्ति में प्रसन्न होती है, आसक्ति में आनंद लेती है। 363 ऐसी पीढ़ी के लिए यह अवस्था देखना कठिन है, अर्थात् विशिष्ट कारण, प्रतीत्यसमुत्पाद। और यह अवस्था भी देखना कठिन है, अर्थात् सभी संस्कारों का शांत होना, सभी उपलब्धियों का त्याग, तृष्णा का विनाश, वैराग्य, निरोध, निर्वाण। 364 यदि मैं धर्म का उपदेश दूं और यदि दूसरे मुझे न समझें, तो यह मेरे लिए कष्टदायक होगा, यह कष्टदायक होगा।"
तब भगवान (बुद्ध) के मन में ये विस्मयकारी श्लोक आए, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे: 365

"मैंने इतनी कठिनाई से जो पाया; अब उपदेश देने का प्रयास बंद करो;
कामवासना (राग) और द्वेष (दोष/द्वेष) से पीड़ित लोगों को; यह धम्म आसानी से समझ में नहीं आ सकता;

धारा के विपरीत जाना; गहरा, देखना कठिन, सूक्ष्म;
कामवासना से प्रज्वलित, अंधकार से ढके हुए लोग; इस गंभीर विषय को कभी नहीं समझ पाएंगे।"

जब भगवान (बुद्ध) ने ऐसा सोचा, तो उनका मन आराम से जीवन जीने की ओर झुक गया, न कि धम्म का उपदेश देने की ओर। 366

तब ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जानकर सोचा: "हाय, संसार नष्ट हो गया!" हाय, संसार का नाश होना तय है, क्योंकि तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष का मन आराम से जीवन जीने की ओर झुका हुआ है, न कि धम्म का उपदेश देने की ओर। 367 फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष शीघ्र ही अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही ब्रह्म सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, दाहिना घुटना जमीन पर रखकर बैठे, अपने जुड़े हुए हाथों से भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) धम्म का उपदेश दें; सौभाग्यशाली (सुगतो) धम्म का उपदेश दें। ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में धूल भी कम है और वे धम्म न सुनने के कारण पथभ्रष्ट हो रहे हैं।" "कुछ लोग धम्म को समझेंगे।"

यह ब्रह्म सहमपति ने कहा। इसके बाद उन्होंने
आगे कहा,

"अतीत में मगधियों के बीच यह प्रकट हुआ। निर्वाण के द्वार खोल दो! उन्हें सुनने दो।"
एक अपवित्र धम्म (मार्ग, नियम) प्रकट हुआ, जिसे अभी भी दूषित लोगों ने गढ़ा था।"

वह धम्म जिसे निष्कलंक ने खोजा। 368

"जैसे कोई पर्वत शिखर पर खड़ा होकर
नीचे चारों ओर के लोगों को देख सकता है।
धम्म से बने महल पर चढ़ो।
वैसे ही, हे ज्ञानी, सर्वव्यापी दृष्टि से, स्वयं दुःख से मुक्त होकर, दुःख में डूबे हुए, पुनर्जन्म और क्षय से पीड़ित
लोगों को देखो । उठो, हे वीर, युद्ध में विजयी! हे कारवां के नेता, ऋणमुक्त, संसार में विचरण करो। " हे भगवान (बुद्ध), धर्म का उपदेश दीजिए: कुछ लोग इसे समझेंगे। 369 तब भगवान (बुद्ध) ने ब्रह्मा के अनुरोध को समझकर, प्राणियों पर दया करते हुए, बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। 370 ऐसा करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में बहुत धूल थी, कुछ तेज बुद्धि वाले थे और कुछ सुस्त बुद्धि वाले, कुछ अच्छे गुण वाले और कुछ बुरे गुण वाले, कुछ आसानी से सीखने वाले और कुछ कठिन सीखने वाले, और कुछ ऐसे प्राणी जो परलोक में निंदा और भय देखते हुए निवास करते थे। 371 जैसे

नीले, लाल या सफेद कमलों के तालाब में, कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी में डूबे रहते हुए फलते-फूलते हैं, बिना पानी से ऊपर उठे; कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी के साथ समतल रहते हैं; कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं और पानी में बढ़ते हैं, लेकिन पानी से ऊपर उठकर बिना मैल लगे खड़े रहते हैं। जल - उसी प्रकार, बुद्ध की दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए, भगवान (बुद्ध) ने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में अधिक धूल थी, तीव्र बुद्धि वाले और मंद बुद्धि वाले, अच्छे गुणों वाले और बुरे गुणों वाले, आसानी से सीखने वाले और कठिन सीखने वाले, और कुछ ऐसे जो परलोक में निंदा और भय देखते हुए निवास करते थे। यह देखकर उन्होंने ब्रह्मा सहमपति को श्लोक में उत्तर दिया: "उनके लिए अमरता (निर्वाण) के द्वार खुले हैं; जिनके कान हैं वे विश्वास का त्याग करें। संकट को भांपते हुए, मैंने मनुष्यों के बीच परिष्कृत, उदात्त धम्म का उपदेश नहीं दिया, हे ब्रह्मा।" तब ब्रह्मा सहमपति ने यह सोचकर कि "भगवान (बुद्ध) ने धम्म (मार्ग, नियम) के उपदेश के संबंध में [मेरी प्रार्थना पर] अपनी सहमति दे दी है," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और वहीं अंतर्धान हो गए। 372

---

173. श्रद्धा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 373 एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरे के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "यदि कोई आदरहीन है तो वह दुख में रहता है। अब मैं किस तपस्वी या ब्राह्मण का आदर और सम्मान करूँ और उस पर निर्भर रहूँ?"

तब भगवान (बुद्ध) के मन में यह विचार आया: "शील गुणों के एक अपूर्ण समूह (खंड संस्कृत: स्कंध) को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर आश्रित होकर निवास करना चाहूंगा। परन्तु इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, मुझे अपने से अधिक गुणों से परिपूर्ण कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता, जिसका मैं आदर, सम्मान कर सकूं और जिस पर आश्रित होकर निवास कर सकूं।

समाधि अवस्था के एक अपूर्ण समूह को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर आश्रित होकर निवास करना चाहूंगा। परन्तु... मुझे अपने से अधिक समाधि अवस्था में परिपूर्ण कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता।..."

"अपूर्ण ज्ञान-प्राप्ति (पन्ना) को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उन पर आश्रित होकर निवास करूंगा। हालांकि... मुझे ज्ञान-प्राप्ति (पन्ना) में मुझसे अधिक परिपूर्ण कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण नहीं दिखता...

" "अपूर्ण मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूरा करने के लिए ही मैं किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उन पर आश्रित होकर निवास करूंगा।" हालांकि... मुझे अपने से अधिक पूर्ण रूप से मुक्त कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता...

"मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि की अपूर्णता को पूरा करने के लिए ही मैं किसी दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहूँगा। हालांकि... मुझे अपने से अधिक पूर्ण रूप से मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि वाला कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण दिखाई नहीं देता, जिसका मैं आदर और सम्मान कर सकूँ और जिस पर मैं निर्भर रह सकूँ। 374
"तो फिर मैं इसी धर्म (मार्ग, नियम) का आदर, सम्मान और उस पर निर्भर रहूँगा, जिसके प्रति मैं पूर्ण रूप से जागृत हो चुका हूँ।"

फिर, भगवान (बुद्ध) के मन में चल रहे विचार को स्वयं अपने मन से जानकर, जिस शीघ्रता से एक बलवान व्यक्ति अपनी सिकुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस समेट लेता है, उसी शीघ्रता से ब्रह्मा सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए अपने हाथ उठाए और उनसे कहा: "ऐसा ही है, हे भगवान! ऐसा ही है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय महोदय, अतीत में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हुए, वे भी भगवान (बुद्ध) केवल धम्म का आदर करते थे, उसका सम्मान करते थे और उसी पर निर्भर रहते थे। भविष्य में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध होंगे, वे भी भगवान (बुद्ध) केवल धम्म का आदर करेंगे, उसका सम्मान करेंगे और उसी पर निर्भर रहेंगे। वर्तमान में जो भगवान (बुद्ध) अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, वे भी केवल धम्म का आदर करें, उसका आदर करें और उसी पर निर्भर रहें।" ये ब्रह्म सहमपति के वचन हैं। यह कहकर उन्होंने आगे कहा:

"अतीत के बुद्ध; भविष्य के बुद्ध,
और जो वर्तमान में बुद्ध हैं; अनेकों के दुःखों को दूर करते हुए -

सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) का गहन आदर करते हुए; सभी
बुद्धों के लिए निवास कर चुके हैं, निवास करेंगे; और निवास करते हैं; यह एक प्राकृतिक नियम है।

इसलिए जो अपना भला चाहता है; आध्यात्मिक महानता की आकांक्षा रखता है, उसे
सच्चे धम्म का गहन आदर करना चाहिए; बुद्धों की शिक्षाओं का स्मरण करना चाहिए।" 375

---

174. ब्रह्मदेव
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक ब्राह्मण स्त्री का पुत्र ब्रह्मदेव था, जिसने गृहस्थ जीवन छोड़कर भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में संन्यासी जीवन व्यतीत किया था।

तब एकांत में निवास करते हुए, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी, पूज्य ब्रह्मदेव ने स्वयं इस ज्ञान को प्राप्त कर, दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण होकर, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और उसमें निवास किया, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।" और पूज्य ब्रह्मदेव अरहंतों में से एक बन गए। 376

फिर, सुबह, पूज्य ब्रह्मदेव ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में निरंतर भिक्षा मांगते हुए वे अपनी माता के निवास पर पहुँचे। 377 उस समय ब्राह्मण स्त्री, पूज्य ब्रह्मदेव की माता, ब्रह्मा को निरंतर भिक्षा दे रही थीं। 378 तब ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति के मन में यह विचार आया:
"यह ब्राह्मण स्त्री, पूज्य ब्रह्मदेव की माता, ब्रह्मा को निरंतर भिक्षा दे रही हैं। मुझे उनके पास जाकर उन्हें भिक्षा देने के लिए प्रेरित करना चाहिए।" फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस समेट लेता है, वैसे ही ब्रह्मा सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और पूज्य ब्रह्मदेव की माता के निवास में पुनः प्रकट हुए। तब, वायु में खड़े होकर, ब्रह्मा सहमपति ने ब्राह्मण स्त्री को श्लोकों में संबोधित किया:

“हे ब्राह्मणी, यहाँ से दूर ब्रह्मलोक है;
जहाँ आप निरंतर आहुति (भोजन) अर्पित करती हैं। हे
देवी, ब्रह्मा ऐसा भोजन नहीं खाते;
तो ब्रह्मा के मार्ग को न जानते हुए क्यों बड़बड़ा रही हैं? 379

“हे ब्राह्मणी, यह ब्रह्मादेव,
बिना किसी प्राप्ति (उपाधि) के, देवताओं (देवदूतों) से भी श्रेष्ठ हैं।
उनके पास कुछ नहीं है, वे किसी और का पोषण नहीं करते।
यह भिक्षु (साधु) भिक्षा मांगने आपके घर आया है।” 380

"दान के योग्य, ज्ञान के स्वामी, अंतर्मुखी,
वे मनुष्यों और देवताओं से दान के पात्र हैं।
समस्त बुराई को त्यागकर, वे निर्मल हैं।
शांत हृदय से वे भिक्षा मांगने आते हैं।

उनके लिए न कुछ पीछे है न आगे।
शांत, निर्मल, अविचलित, इच्छाहीन;
उन्होंने निर्बल और दृढ़ दोनों के प्रति दंड नहीं रखा है;
उन्हें अपना दान (भोजन) ग्रहण करने दें, जो सर्वोत्तम भिक्षा है। 381

"भीड़ से अलग, शांत मन से।
वे नाग के समान, शांत, अविचलित रहते हैं।

शुद्ध गुणों वाले भिक्षु।" मन में अच्छी तरह से मुक्त (विमुत्त सं. विमुक्त);
उसे अपना दान (भोजन) खिलाओ, जो उत्तम दान है। 382

"उन पर विश्वास रखते हुए, बिना किसी संदेह के,
अपनी भेंट उस योग्य व्यक्ति को अर्पित करो।
भविष्य के सुख की ओर ले जाने वाला पुण्य अर्जित करो।"
हे ब्राह्मणी, बाढ़ पार कर चुके ऋषि के दर्शन करके, उन्होंने

उन पर विश्वास रखते हुए, बिना किसी संदेह के,
अपनी भेंट उस योग्य व्यक्ति को अर्पित की।
बाढ़ पार कर चुके ऋषि के दर्शन करके,
उस स्त्री ने भविष्य के सुख की ओर ले जाने वाला पुण्य अर्जित किया। 384

---

175. ब्रह्मा बका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 385 एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) बका के मन में यह दुष्ट विचार उत्पन्न हुआ: "यह स्थायी है, यह स्थिर है, यह शाश्वत है, यह पूर्ण है, यह अविनाशी है। वास्तव में, यह वह स्थान है जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न नष्ट होता है और न पुनर्जन्म लेता है; और इससे बेहतर कोई दूसरा मार्ग नहीं है।" 386

तब, ब्रह्मा बका के मन में उठे विचार को स्वयं जानकर, जिस शीघ्रता से एक बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को वापस समेट लेता है, उसी शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) जेतवन से विलीन हो गए और उस ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। ब्रह्मा बका ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और उनसे कहा, "आह! आपका स्वागत है! बहुत समय हो गया है जब आपने यहाँ आने का अवसर लिया। वास्तव में, यह स्थायी है, यह स्थिर है, यह शाश्वत है, यह पूर्ण है, यह अविनाशी है। वास्तव में, यह वह स्थान है जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न नष्ट होता है और न ही पुनर्जन्म लेता है; और इससे बेहतर कोई दूसरा मार्ग नहीं है।"

यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने ब्रह्मा बक से कहा,
“हे भगवान, ब्रह्मा बक अज्ञान में डूबे हुए हैं! हे भगवान, ब्रह्मा बक अज्ञान में डूबे हुए हैं, क्योंकि वे वास्तव में अनित्य को स्थायी कहते हैं; वास्तव में अस्थिर को स्थिर कहते हैं; वास्तव में अशाब्दिक को शाश्वत कहते हैं; वास्तव में अपूर्ण को पूर्ण कहते हैं; वास्तव में नाशवान को अविनाशी कहते हैं; और उस लोक के संदर्भ में जहाँ जन्म होता है, वृद्ध होते हैं, मरते हैं, देह त्यागते हैं और पुनर्जन्म लेते हैं, वे कहते हैं: 'यद्यपि, यह वह स्थान है जहाँ जन्म नहीं होता, वृद्ध नहीं होते, मरते नहीं, देह त्यागते नहीं और पुनर्जन्म नहीं लेते'; और जब इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा मार्ग होता है, तो वे कहते हैं, 'इससे श्रेष्ठ कोई दूसरा मार्ग नहीं है।'”

[ब्रह्मा बक:]
“हम बहत्तर, गौतम, थे हे दिव्य पुण्य-निर्माता;
अब हम पुनर्जन्म और वृद्धावस्था से परे शक्ति धारण करते हैं।
हे ज्ञान के स्वामी, यही ब्रह्म की हमारी अंतिम प्राप्ति है।
अनेक लोग हमारे लिए तरसते हैं। 387

[भगवान (बुद्ध):]
"यहाँ जीवन काल अल्प है, दीर्घ नहीं।
यद्यपि हे बका, तुम इसे दीर्घ समझते हो।
हे ब्रह्मा, मैं जानता हूँ कि तुम्हारा जीवन काल
एक लाख निरब्बुद है।" 388

[ब्रह्म बका:]
"हे भगवान (बुद्ध), [आप कहते हैं]: 'मैं अनंत दृष्टि वाला हूँ'
जिसने पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और दुःख पर विजय प्राप्त की है,

मेरी प्राचीन व्रत और शील साधना क्या थी?
मुझे यह बताइए ताकि मैं समझ सकूँ।" 389

[भगवान (बुद्ध):]
"आपने बहुतों को पानी पिलाया;
जो प्यासे थे, गर्मी से पीड़ित थे;
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ। 390

"जब एंटेलोप बैंक में लोगों का अपहरण किया गया, तो
आपने ले जाए जा रहे बंदियों को (मोक्ष में) मुक्त कराया।
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ।

"जब गंगा नदी में
एक भयंकर नाग ने मानव मांस की लालसा में एक जहाज को पकड़ लिया,
तो आपने एक वीरतापूर्ण कार्य द्वारा उसे बलपूर्वक मुक्त कराया;
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ। [144]

"मैं आपका शिष्य था जिसका नाम कप्पा था;
आपने उसे बुद्धिमान और धर्मनिष्ठ समझा;
यह आपकी प्राचीन प्रतिज्ञा और सद्गुण की प्रथा थी,
जिसे मैं मानो अभी-अभी जागकर याद कर रहा हूँ।" 391

[ब्रह्म बका:]
"निश्चित रूप से आप मेरी इस जीवन अवधि को जानते हैं;
आप दूसरों को भी जानते हैं, इसलिए आप बुद्ध हैं।
इस प्रकार आपकी यह तेजस्वी महिमा
ब्रह्म जगत को भी प्रकाशित करती है।"

---

176. एक निश्चित ब्रह्मा (अन्नतारब्रह्म)

श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के मन में यह दुष्ट विचार उत्पन्न हुआ: "यहाँ कोई तपस्वी या ब्राह्मण नहीं आ सकता।" तब, ब्रह्मा के मन में उठे इस विचार को स्वयं जानकर, जिस शीघ्रता से कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) जेतवन से विलीन होकर ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। भगवान (बुद्ध) उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पालथी मारकर बैठे थे और अग्नि तत्व (धातु) का ध्यान कर रहे थे। 392

तब पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" परम पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से पूज्य महामोग्गलाना ने भगवान (बुद्ध) को उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पालथी मारकर बैठे हुए और अग्नि तत्व का ध्यान करते हुए देखा। यह देखकर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को शीघ्रता से फैलाता या समेटता है, पूज्य महामोग्गलाना जेतवन से विलीन होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब पूज्य महामोग्गलाना पूर्वी दिशा में विलीन हो गए और भगवान (बुद्ध) से नीचे, ब्रह्मलोक के ऊपर पांव बैठे रहे।

तब पूज्य महाकस्सपा के मन में यह प्रश्न आया: "भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" दिव्य दृष्टि से पूज्य महाकस्सपा ने भगवान (बुद्ध) को ब्रह्मलोक के ऊपर पांव बैठे देखा। यह देखकर पूज्य महाकस्सपा जेतवन से विलीन होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब पूज्य महाकप्पिन दक्षिण दिशा में विराजमान होकर ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव-पांव बैठ गए - यद्यपि वे भगवान (बुद्ध) से नीचे थे - और अग्नि तत्व का ध्यान करने लगे।

तब पूज्य महाकप्पिन के मन में यह विचार आया, "भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" दिव्य दृष्टि से पूज्य महाकप्पिन ने भगवान (बुद्ध) को ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव-पांव बैठे देखा। यह देखकर पूज्य महाकप्पिन जेतवन से अंतर्धान हो गए और ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। तब पूज्य महाकप्पिन पश्चिम दिशा में विराजमान होकर ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव-पांव बैठ गए - यद्यपि वे भगवान (बुद्ध) से नीचे थे - और अग्नि तत्व का ध्यान करने लगे।

तब पूज्य अनुराधा के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" दिव्य दृष्टि से पूज्य अनुराधा ने भगवान (बुद्ध) को उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव बैठे देखा। यह देखकर पूज्य अनुराधा जेतवन से अंतर्धान हो गए और उस ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए। तब पूज्य अनुराधा उत्तर दिशा में विराजमान हुए और उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में पांव बैठ गए - यद्यपि वे भगवान (बुद्ध) से नीचे थे - और अग्नि तत्व का ध्यान करने लगे।

तब पूज्य महामोग्गलाना ने उस ब्रह्मा को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा:

"हे मित्र, क्या आज भी तुम्हारा वही मत है; जो तुम्हारा पहले था?
क्या तुम्हें वह तेज दिखाई देता है; जो ब्रह्मलोक के तेज से भी बढ़कर है?" 393

"हे महोदय, अब मैं वह मत नहीं रखता; वह मत जो मैं पहले रखता था।
वास्तव में, मैं वह तेज देखता हूँ; जो ब्रह्मलोक के तेज से भी बढ़कर है।
आज मैं कैसे कह सकता हूँ कि 'मैं शाश्वत और अमर हूँ'?" 394

तब, उस ब्रह्मा में एक अत्यावश्यकता का भाव उत्पन्न करके, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाई हुई भुजा को समेट लेता है, उसी शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) उस ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और जेतवन में पुनः प्रकट हुए।

तब उस ब्रह्मा ने अपनी सभा के एक सदस्य से इस प्रकार कहा: "हे महोदय, आइए, पूज्य महामोग्गलाना के पास जाइए और उनसे कहिए: 'श्री मोग्गलाना, क्या भगवान (बुद्ध) के कोई अन्य शिष्य हैं जो गुरु मोग्गलाना, कस्सपा, कप्पिना और अनुरुद्ध के समान शक्तिशाली और बलवान हैं?'"

"जी हाँ, महोदय," ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य ने उत्तर दिया। तब वह पूज्य महामोग्गलाना के पास गए और उनसे पूछा: "हे मोग्गलाना, क्या भगवान (बुद्ध) के कोई अन्य शिष्य हैं जो गुरु मोग्गलाना, कस्सपा, कप्पिना और अनुराधा के समान शक्तिशाली और बलवान हों?"

तब पूज्य महामोग्गलाना ने ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा:

"त्रिपज्ञान धारण करने वाले, आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) से युक्त; दूसरों के मन को जानने में निपुण।" 395
बुद्ध के अनेक शिष्य हैं; जो अरहंत हैं और जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।"

तब ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य ने पूज्य महामोग्गलाना के कथन से प्रसन्न होकर ब्रह्मा के पास जाकर कहा: "प्रिय महोदय, पूज्य महामोग्गलाना कहते हैं:

'त्रिपज्ञान धारण करने वाले... जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।'

ब्रह्मा की सभा के उस सदस्य ने यही कहा। ब्रह्मा उनके कथन से प्रसन्न हुए।

---

177. ब्रह्मलोक
(आलस्य पर)

श्रावस्ती के दिन। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) अपने दिन भर के विश्राम के लिए गए हुए थे और एकांतवास में थे। तब स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और शुद्धवास भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए। 396 तब स्वतंत्र ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सुब्रह्म ने स्वतंत्र ब्रह्मा शुद्धवास से कहा,
“हे प्रभु, भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने का यह उचित समय नहीं है। भगवान (बुद्ध) अपने दिन भर के विश्राम के लिए गए हुए हैं और एकांतवास में हैं। फलाँ ब्रह्मा लोक समृद्ध और खुशहाल है, और वहाँ का ब्रह्मा आलसी है। आइए, हे प्रभु, हम उस ब्रह्मा लोक में चलें और उस ब्रह्मा में आलस्य की भावना जगाएँ।”
“जी, हे प्रभु,” स्वतंत्र ब्रह्मा शुद्धवास ने उत्तर दिया।

फिर, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को जल्दी से अंदर खींच लेता है या फिर उसी गति से स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और शुद्धवास भगवान (बुद्ध) के सामने से गायब हो गए और उस ब्रह्मलोक में फिर से प्रकट हो गए। ब्रह्मा ने उन ब्रह्माओं को दूर से आते देखा और उनसे कहा, "हे प्रभु, आप कहाँ से आ रहे हैं?"

"हे प्रभु, हम भगवान (बुद्ध), जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, के सान्निध्य से आए हैं। हे प्रभु, आपको उस भगवान (बुद्ध), जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, की सेवा में जाना चाहिए।"

यह सुनकर ब्रह्मा ने उनकी सलाह मानने से इनकार कर दिया। अपने हजार रूपों का सृजन करके उन्होंने स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म से कहा, "हे प्रभु, क्या आप देख रहे हैं कि मुझमें कितनी शक्ति और सामर्थ्य है?"
[सुब्रह्मः] "मैं देख रहा हूँ, हे प्रभु, कि आपमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य है।"
[ब्रह्मा] "परन्तु, हे प्रभु, जब मैं इतना शक्तिशाली और बलवान हूँ, तो मुझे किस अन्य तपस्वी या ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए?"

तब स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म ने अपने दो हजार रूप बदलकर उस ब्रह्मा से कहा, "हे प्रभु, क्या आप देख रहे हैं कि मुझमें कितनी शक्ति और सामर्थ्य है?"
[ब्रह्मा] "मैं देख रहा हूँ, हे प्रभु, कि आपमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य है।"
[सुब्रह्मा] "हे प्रभु, वह भगवान (बुद्ध) आप और मुझसे भी अधिक शक्तिशाली और बलवान हैं। हे प्रभु, आपको उस भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध की सेवा करनी चाहिए।"
तब उस ब्रह्मा ने स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"तीन सौ सुपन्न, चार सौ हंस
और पाँच सौ बाज़:
हे ब्रह्मा, ध्यान करने वाले का यह महल
उत्तर दिशा को प्रकाशित करते हुए चमक रहा है।" 397

[स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्मः]
"यद्यपि तुम्हारा वह महल
उत्तर दिशा को प्रकाशित करते हुए चमकता है,
रूप की खामी, उसके निरंतर कंपन को देखकर,
ज्ञानी रूप में आनंद नहीं लेता है।" "398

फिर स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और सुधावास,
ब्रह्मा ने उस व्यक्ति में एक अत्यावश्यकता का भाव उत्पन्न कर दिया और
वे वहीं से गायब हो गए। और बाद में एक अवसर पर ब्रह्मा
भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः
प्रबुद्ध व्यक्ति की सेवा करने गए।

---

178. कोकालिका (1)

श्रावस्ती में। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) अपने दिन भर के विश्राम के लिए गए हुए थे और एकांतवास में थे। तब स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म और शुद्धवास भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए। तब, भिक्षु कोकालिका का उल्लेख करते हुए, स्वतंत्र ब्रह्मा सुब्रह्म ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 399

"यहाँ कौन बुद्धिमान व्यक्ति किसी असीम को मापकर परिभाषित करने का प्रयास करेगा?
जो किसी असीम को मापेगा, वह मेरे विचार से एक अवरुद्ध सांसारिक व्यक्ति होगा।" 400

---

179. कटामोडाकतिस्साका
सावत्थी में.... (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... फिर, भिक्षु (भिक्षु) कटामोदकतिस्साका का उल्लेख करते हुए, स्वतंत्र ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सुद्धवास ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 401

"यहाँ कौन सा बुद्धिमान व्यक्ति किसी असीम को उसके माप से परिभाषित करने का प्रयास करेगा?
जो किसी असीम को मापेगा, वह मेरे विचार से एक अवरुद्ध मूर्ख होगा।"

---

180. तुरु ब्रह्मा
श्रावस्ती में। उस अवसर पर भिक्षु कोकालिका (जिन्होंने प्रमुख शिष्यों के विरुद्ध विद्रोह किया था) बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। तब, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर, स्वतंत्र ब्रह्मा तुरु, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भिक्षु कोकालिका के पास आए। 402 पास आकर, वे हवा में खड़े हो गए और भिक्षु कोकालिका से बोले: "कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना पर भरोसा रखो। सारिपुत्त और मोग्गलाना सुसंस्कृत हैं।"
[कोकालिका:]
"आप कौन हैं, मित्र?"
[तुरु ब्रह्मा]:
"मैं स्वतंत्र ब्रह्मा तुडु हूँ।"
[कोकालिका:]
"क्या भगवान (बुद्ध) ने आपको पुनर्जन्म रहित घोषित नहीं किया था,
मित्र? तो फिर आप यहाँ वापस क्यों आए हैं? देखो तुमने कितना
पाप किया है।" 403

[ब्रह्म तुदु:]
"जब कोई व्यक्ति जन्म लेता है, तो उसके मुख में कुल्हाड़ी जन्म लेती है,
जिससे वह बचकाना (नासमझ) निंदात्मक वाणी बोलकर स्वयं को काटता है।

जो निंदा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है;
या प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है, वह
अपने मुख से अशुभ संकेत फेंकता है,
जिससे उसे सुख नहीं मिलता।" 404 "हास- प्यास में धन की हानि लाने वाला

अशुभ संकेत तुच्छ है , स्वयं सहित सब कुछ खो देता है; इससे कहीं बुरा है शुभ (सुगतो) के प्रति द्वेष रखने का अशुभ संकेत।" 405 "एक लाख निरब्बुदों और छत्तीस अन्य, और पाँच अब्बुदों के लिए, श्रेष्ठों की निंदा करने वाला नरक में जाता है, क्योंकि उसने उनके विरुद्ध बुरी वाणी और मन रखा है।" 406

181. कोकालिका (2)
श्रावस्ती, 407 को तब भिक्षु कोकालिका भगवान बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, “हे पूज्यवर, सारिपुत्त और मोग्गलाना के मन में बुरी इच्छाएँ हैं; वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।” यह सुनकर भगवान बुद्ध ने भिक्षु कोकालिका से कहा, “कोकालिका, ऐसा मत कहो! कोकालिका, ऐसा मत कहो! सारिपुत्त और मोग्गलाना पर भरोसा रखो। सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे स्वभाव के हैं।”
दूसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान बुद्ध से कहा,
“हे पूज्यवर, यद्यपि मुझे भगवान बुद्ध पर विश्वास और भरोसा है, फिर भी मैं कहता हूँ कि सारिपुत्त और मोग्गलाना के मन में बुरी इच्छाएँ हैं; वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।” फिर दूसरी बार भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु कोकालिका से कहा, "कोकालिका, ऐसे मत बोलो!... सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे व्यवहार वाले हैं।"
तीसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"आदरणीय महोदय, यद्यपि भगवान (बुद्ध) पर मेरा विश्वास और भरोसा है, फिर भी मैं कहता हूँ कि सारिपुत्त और मोग्गलाना के मन में बुरी इच्छाएँ हैं; वे बुरी इच्छाओं के वश में आ गए हैं।" फिर तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु कोकालिका से कहा, "कोकालिका, ऐसे मत बोलो!... सारिपुत्त और मोग्गलाना अच्छे व्यवहार वाले हैं।"

तब भिक्षु कोकालिका अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए। भिक्षु कोकालिका के जाने के कुछ ही समय बाद, उनका पूरा शरीर सरसों के दाने के आकार के फोड़ों से भर गया। फिर ये मूंग के आकार के हो गए; फिर वे चने के आकार के हो गए; फिर बेर की गुठलियों के आकार के; फिर बेर के फलों के आकार के; फिर मायरोबलन के आकार के; फिर कच्चे बेलुव फलों के आकार के; फिर पके बेलुव फलों के आकार के। जब वे पके बेलुव फलों के आकार के हो गए, तो वे फट गए और उनमें से मवाद और रक्त निकलने लगा। फिर, उस बीमारी के कारण भिक्षु कोकालिका की मृत्यु हो गई, और सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति द्वेष रखने के कारण, उनकी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म पद्मा नरक में हुआ। 408

फिर, जब रात आगे बढ़ गई, तो अत्यंत सुंदर ब्रह्मा सहमपति, जो संपूर्ण जेतवन को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा: "हे आदरणीय, भिक्षु कोकालिका का निधन हो गया है, और सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति द्वेष रखने के कारण, मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म पद्मा नरक में हुआ है।" ब्रह्मा सहमपति ने यही कहा। यह कहकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, पिछली रात, जब रात आगे बढ़ गई, तो ब्रह्मा सहमपति मेरे पास आए और मुझसे कहा: ... (जैसा ऊपर) ... यह कहकर उन्होंने मुझे प्रणाम किया और मुझे अपने दाहिनी ओर रखते हुए, वह वहीं से गायब हो गया।

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा,
“हे पूज्यवर, पद्मासन में जीवन काल कितना होता है?”
[बुद्ध:] "भिक्षु, पद्म नरक में जीवन काल लंबा होता है। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष है, या इतने सौ वर्ष है, या इतने हजार वर्ष है, या इतने लाख वर्ष है।"
[भिक्षु:] "तो क्या इसकी तुलना किसी उपमा से की जा सकती है, आदरणीय गुरुदेव?" [152]

[बुद्ध:] "यह संभव है, भिक्षु। मान लीजिए, भिक्षु, तिल के बीजों से भरी एक कोसल गाड़ी में बीस माप तिल हों। हर सौ साल के अंत में एक व्यक्ति उसमें से एक बीज निकाल ले। इस प्रयास से तिल के बीजों से भरी वह कोसल गाड़ी एक अब्बुद नरक से भी अधिक तेज़ी से समाप्त हो सकती है। बीस अब्बुद नरक एक निरब्बुद नरक के बराबर हैं; बीस निरब्बुद नरक एक अब्बा नरक के बराबर हैं; बीस अब्बा नरक एक अतात नरक के बराबर हैं; बीस अतात नरक एक अहाहा नरक के बराबर हैं; बीस अहाहा नरक एक कुमुद नरक के बराबर हैं; बीस कुमुद नरक एक सोगंधिका नरक के बराबर हैं; बीस सोगंधिका नरक एक उप्पला नरक के बराबर हैं; बीस उप्पला नरक एक पुंडरीका नरक के बराबर हैं; और बीस पुंडरीका नरक एक पद्म नरक के बराबर हैं। अब, भिक्षु, भिक्षु कोकालिका का पद्मा नरक में पुनर्जन्म हुआ है क्योंकि उन्होंने सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति द्वेष रखा था।" 409
यह भगवान (बुद्ध) ने कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"जब कोई व्यक्ति जन्म लेता है, तो उसके मुंह में एक कुल्हाड़ी जन्म लेती है
जिससे वह बचकाना (नासमझ) निंदात्मक वाणी बोलते हुए स्वयं को काटता है।

जो निंदा के योग्य व्यक्ति की प्रशंसा करता है;
या प्रशंसा के योग्य व्यक्ति की निंदा करता है। "
अपने मुख से अशुभ चाल चलता है
जिससे उसे सुख नहीं मिलता। 404

"हास-
प्यास में धन की हानि लाने वाली अशुभ चाल तुच्छ है,
स्वयं सहित सब कुछ खो देती है;
इससे भी कहीं बुरा है
शुभ व्यक्ति (सुगातो) के प्रति द्वेष रखने की अशुभ चाल।" 405

"एक लाख निरब्बुदों
और छत्तीस और पाँच अब्बुदों के लिए,
श्रेष्ठों का अपमान करने वाला नरक में जाता है।
उनके विरुद्ध बुरी वाणी और मन रखने के कारण।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय (ब्रह्म पंचक)

182. सननकुमार

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सप्पिनी नदी के किनारे राजगृह में निवास कर रहे थे। तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सनंकुमार, जो सप्पिनी नदी के पूरे किनारे को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। 410 एक तरफ खड़े होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"क्षुद्र लोगों में श्रेष्ठ है; जिनका चिन्ह कुल है।
परन्तु ज्ञान और आचरण में सिद्ध पुरुष ही देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ है।"

ब्रह्मा सनंकुमार ने यही कहा। गुरु ने इसे स्वीकार किया। तब ब्रह्मा सनंकुमार ने यह सोचकर कि "गुरु ने मुझे स्वीकार कर लिया है," भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

---

183. देवदत्त

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार, देवदत्त के चले जाने के कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। 411 तब, जब रात हो गई, तो अत्यंत सुंदर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति, जो पूरे गिद्ध शिखर को प्रकाशित कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर, देवदत्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"जैसे अपना फल ही विनाश लाता है; केले, बांस और सरकंडे का,
वैसे ही सम्मान बुरे व्यक्ति का नाश करता है; जैसे उसका भ्रूण खच्चर का नाश करता है।" 412

---

184. अंधकविंदा

एक बार भगवान (बुद्ध) अंधकविन्द में मगधियों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) रात के घने अंधेरे में, हल्की बारिश के बीच खुले में बैठे थे। जब रात काफी गहरी हो गई, तो ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में ये श्लोक पढ़े:

“एकांतवास में शरण लेनी चाहिए।

बंधनों से मुक्ति (मोक्ष) के लिए साधना करनी चाहिए।
लेकिन यदि वहां आनंद (नंदी आनंद) न मिले, तो
सतर्क और ध्यानमग्न होकर संघ में निवास करना चाहिए। 413

“परिवार-परिवार भिक्षा मांगते हुए, अपनी इंद्रियों को
सँभाल कर, विवेकपूर्ण और ध्यानमग्न होकर
एकांतवास में शरण लेनी चाहिए। ”
भय से मुक्त, निर्भयता में मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त)। 414

"जहाँ भयानक सर्प रेंगते हैं।
जहाँ बिजली चमकती है और आकाश गरजता है।
रात के घने अंधेरे में
एक भिक्षु निर्भय बैठा है। 415

"क्योंकि यह मैंने स्वयं देखा है; यह केवल सुनी-सुनाई बात नहीं है:
एक ही ब्रह्मचर्य जीवन में; एक हजार [अरिहंतों] ने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है। 416

"पाँच सौ और प्रशिक्षु हैं; और दस गुना दस गुना दस:
सभी [निर्वाण की धारा] में प्रवेश कर चुके हैं; कभी पशुलोक में पुनर्जन्म नहीं लेते।

"जहाँ तक शेष लोगों का सवाल है; जो, मेरी दृष्टि में, दिव्य पुण्य के भागीदार हैं,
मैं उन्हें गिन भी नहीं सकता; झूठ बोलने के डर से।" 417

---

185. अरुणावती
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में निवास कर रहे थे... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, एक समय पहले अरुणावा नाम का एक राजा था जिसकी राजधानी का नाम अरुणावती था। भगवान (बुद्ध) सिखी, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, राजधानी अरुणावती में निवास करते थे। 418 भगवान (बुद्ध) सिखी के दो प्रमुख शिष्य अभिभू और संभव थे, जो एक उत्कृष्ट जोड़ी थे।
तब भगवान (बुद्ध) सिखी ने भिक्षु अभिभू से कहा: 'आओ, ब्राह्मण, हम भोजन के समय तक किसी ब्रह्मलोक में चलें।' -'जी, पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया।
"फिर, भिक्षुओं, जिस प्रकार एक बलवान पुरुष शीघ्र ही अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी प्रकार भगवान (बुद्ध) सिखि, जो पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत हैं, और भिक्षु अभिभू राजधानी अरुणावती से लुप्त होकर ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए।

तब भगवान (बुद्ध) सिखि ने भिक्षु अभिभू को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे ब्राह्मण, ब्रह्मा और उनके अनुयायियों तथा उनकी सभा को धर्म प्रवचन दो।' - 'जी, पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया। तब उन्होंने धर्म प्रवचन के माध्यम से ब्रह्मा और उनके अनुयायियों तथा उनकी सभा को शिक्षा दी, प्रेरित किया और प्रसन्न किया।" तब ब्रह्मा, उनके अनुयायियों और उनकी सभा ने इस पर आपत्ति जताई, शिकायत की और कहा: 'हे प्रभु, यह तो वास्तव में आश्चर्यजनक है! यह तो वास्तव में विस्मयकारी है! एक शिष्य गुरु की उपस्थिति में धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश कैसे दे सकता है?'

तब, हे भिक्षुओं, भगवान (बुद्ध) सिख ने भिक्षु अभिभू को इस प्रकार संबोधित किया: 'ब्राह्मण, ब्रह्मा, उनके अनुयायी और उनकी सभा इस पर खेद व्यक्त करते हुए कहते हैं, "हे प्रभु, यह तो वास्तव में आश्चर्यजनक है! यह तो वास्तव में विस्मयकारी है! एक शिष्य गुरु की उपस्थिति में धम्म का उपदेश कैसे दे सकता है?" तो हे ब्राह्मण, ब्रह्मा, उनके अनुयायियों और उनकी सभा में और भी अधिक तत्परता की भावना जगाइए।' - 'जी, पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने अपने शरीर को दृश्य रूप में, अदृश्य रूप में, शरीर के निचले भाग को दृश्य और ऊपरी भाग को अदृश्य रूप में, और शरीर के ऊपरी भाग को दृश्य और निचले भाग को अदृश्य रूप में धर्म का

उपदेश दिया। 419 इस पर भिक्षु, ब्रह्मा, ब्रह्मा के अनुयायी और ब्रह्मा की सभा आश्चर्यचकित और विस्मयचकित हो गए और कहने लगे: 'यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! तपस्वी के पास इतनी महान शक्ति और सामर्थ्य कैसे है!'

तब, हे भिक्षुओं, भिक्षु अभिभू ने पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत बुद्ध सिखि से कहा: 'हे पूज्यवर, मुझे याद है कि मैंने भिक्षु संघ के बीच ऐसा कहा था: "मित्रों, ब्रह्मलोक में खड़े होकर मैं अपनी वाणी को हजारों संसारों में सुना सकता हूँ।"' - 'अब समय आ गया है, हे ब्राह्मण!
अब समय आ गया है, हे ब्राह्मण! ब्रह्मलोक में खड़े होकर तुम्हें अपनी वाणी को हजारों संसारों में सुनाना चाहिए।' - 'जी, हे पूज्यवर,' भिक्षु अभिभू ने उत्तर दिया। तब, ब्रह्मलोक में खड़े होकर उन्होंने इन श्लोकों का पाठ किया: 420

"'अपनी ऊर्जा (वीर्य) को जगाओ, प्रयास करो! बुद्ध के उपदेशों में स्वयं को लगाओ।
मृत्यु की सेना को नष्ट करो; जैसे हाथी सरकंडों की झोपड़ी को नष्ट कर देता है।'"

"इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में, जो सचेत (अप्पमदा) रहता है, वह
जन्म-जन्म के भटकने का त्याग करके दुखों का अंत करेगा।"

"फिर, भिक्षुओं, ब्रह्मा और ब्रह्मा के अनुयायियों और ब्रह्मा की सभा में तत्परता की भावना उत्पन्न करके, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही शीघ्रता से भगवान (बुद्ध) सिखि, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, और भिक्षु अभिभू उस ब्रह्मलोक से विलीन हो गए और राजधानी अरुणावती में पुनः प्रकट हुए। तब भगवान (बुद्ध) सिखि ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'भिक्षुओं, क्या आपने वे श्लोक सुने जो भिक्षु अभिभू ने ब्रह्मलोक में खड़े होकर पढ़े थे?' - 'जी, जी हाँ।' - 'भिक्षुओं, आपने कौन से श्लोक सुने?'" - 'हमने भिक्षु अभिभू के ये श्लोक सुने:

"अपनी ऊर्जा (वीर्य) को जगाओ, प्रयास करो! बुद्ध की शिक्षा में लग जाओ।
मृत्यु की सेना को ऐसे ही नष्ट कर दो जैसे हाथी सरकंडों की झोपड़ी को उखाड़ फेंकता है।

इस धर्म और अनुशासन में, जो सचेत रहता है, वह
जन्म-जन्म के भटकने का त्याग करके दुखों का अंत करेगा।"

ये वे श्लोक थे जो हमने भिक्षु अभिभू को ब्रह्मलोक में खड़े होकर सुनाते हुए सुना।' [बुद्ध सिख धर्म:] 'अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आपने भिक्षु अभिभू के वे श्लोक सुने जो उन्होंने ब्रह्मलोक में खड़े होकर सुनाए।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर, वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए।

---

186. अंतिम निब्बान (परिनिब्बाना)
एक बार भगवान (बुद्ध) अपने अंतिम निर्वाण के अवसर पर मल्लियों के साल के उपवन (सलवाना) उपवत्तना में कुसिनारा में दो साल के वृक्षों के बीच निवास कर रहे थे। 421 तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "अब मैं आप भिक्षुओं को संबोधित करता हूँ: संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) अवश्य ही नष्ट हो जाएँगे। सजगता (अप्पमदा) द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करो।" यह तथागत का अंतिम वचन था।

तब भगवान (बुद्ध) ने प्रथम ध्यान प्राप्त किया। प्रथम ध्यान से निकलकर उन्होंने द्वितीय ध्यान प्राप्त किया। द्वितीय ध्यान से निकलकर उन्होंने तृतीय ध्यान प्राप्त किया। तृतीय ध्यान से निकलकर उन्होंने चतुर्थ ध्यान प्राप्त किया। चतुर्थ ध्यान से निकलकर उन्होंने अनंत ब्रह्मांड की चेतना प्राप्त की। अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से निकलकर उन्होंने अनंत चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति प्राप्त की। अनंत चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति से निकलकर उन्होंने शून्यता की शक्ति प्राप्त की। शून्यता की शक्ति से निकलकर उन्होंने न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति प्राप्त की। न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति से निकलकर उन्होंने बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (निरोध) को प्राप्त किया।
[उल्टा] बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (निरोध) से निकलकर उन्होंने न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति प्राप्त की। न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति से निकलकर उन्होंने शून्यता की शक्ति प्राप्त की। शून्यता की शक्ति से निकलकर उन्होंने अनंत चेतना की शक्ति प्राप्त की। चेतना की अनंतता की शक्ति से निकलकर उन्होंने अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति प्राप्त की। अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति से निकलकर उन्होंने चौथे ध्यान को प्राप्त किया। चौथे ध्यान से निकलकर उन्होंने तीसरे ध्यान को प्राप्त किया। तीसरे ध्यान से

निकलकर उन्होंने दूसरे ध्यान को प्राप्त किया। दूसरे ध्यान से निकलकर उन्होंने पहले ध्यान को प्राप्त किया। पहले ध्यान से निकलकर उन्होंने दूसरे ध्यान को प्राप्त किया। दूसरे ध्यान से निकलकर उन्होंने तीसरे ध्यान को प्राप्त किया। तीसरे ध्यान से निकलकर उन्होंने चौथे ध्यान को प्राप्त किया। चौथे ध्यान से निकलकर इसके तुरंत बाद भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया। 422 जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, तो उनके अंतिम निर्वाण के साथ ही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहमपति ने यह श्लोक पढ़ा:

"संसार के सभी प्राणी अंततः शरीर त्याग देंगे।
क्योंकि गुरु, संसार के अद्वितीय पुरुष
, शक्तियों से परिपूर्ण तथागत, बुद्ध ने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।" 423

जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, उसी समय
अपने अंतिम निर्वाण के साथ, देवों/देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र) ने यह श्लोक पढ़ा:

"वास्तव में संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) क्षणभंगुर हैं; उनका स्वभाव उत्पन्न होना और लुप्त होना है।
उत्पन्न होने के बाद, वे समाप्त हो जाते हैं: उनका शमन (उपासमन) आनंदमय है।" 424

जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, उसी समय
पूज्य आनंद ने यह
श्लोक पढ़ा: 425

"तब भय और घबराहट हुई।
जब समस्त उत्तम गुणों से परिपूर्ण बुद्ध ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया।"

जब भगवान (बुद्ध) ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, उसी समय
पूज्य अनुराधा ने इन श्लोकों का पाठ किया:

"श्वास का आना-जाना बंद हो गया; स्थिर मन वाले उस स्थिर पुरुष में
, जब वह शांत और एकाग्र था; उस दूरदर्शी ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया। 426

"अविचलित मन से उन्होंने पीड़ा सहन की;
जैसे दीपक बुझ जाता है; मन को मुक्ति (विमोक्ष) प्राप्त हुई।" 427

सम्युत्त 7: ब्राह्मणों/पुजारियों के साथ संबंधित प्रवचन (ब्राह्मणसम्युत्त)
(i) अराहंता खंड (अराहंतावग्गो)
187. धनंजनी
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण की पत्नी, धनंजनी नामक ब्राह्मण महिला, बुद्ध, धर्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) में पूर्ण विश्वास रखती थी। 428 एक बार जब धनंजनी ब्राह्मण को भोजन परोस रही थी, तो वह ठोकर खा गई, जिसके बाद उसने तीन बार यह प्रेरणादायक वाणी कही:

"परमेश्वर (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम! परमेश्वर (
बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम!
परमेश्वर (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध को प्रणाम!" 429

यह सुनकर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने उससे कहा, “यह दुष्ट स्त्री छोटी-छोटी बातों पर उस मुंडेले तपस्वी की प्रशंसा करने लगती है! अब, हे दुष्ट स्त्री, मैं तुम्हारे उस गुरु के उपदेशों का खंडन करने जा रहा हूँ।” 430

“हे ब्राह्मण, इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध के उपदेशों का खंडन कर सके। परन्तु जाओ, ब्राह्मण। जब तुम जाओगे, तब तुम्हें समझ आ जाएगा।”

तब भारद्वाज वंश का ब्राह्मण क्रोधित और असंतुष्ट होकर भगवान (बुद्ध) के पास गया और उन्हें प्रणाम किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से श्लोक 431 में कहा:

"किसका वध करके व्यक्ति चैन से सोता है? किसका वध करके शोक नहीं होता?
हे गौतम, वह कौन सा धर्म (गुण, नियम) है? आप किसका वध करने को उचित मानते हैं?"

[भगवान (बुद्ध):]
"क्रोध का वध करके व्यक्ति चैन से सोता है; क्रोध का वध करके व्यक्ति शोक नहीं करता;
हे ब्राह्मण, क्रोध का वध, जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है:
यही वह वध है जिसकी श्रेष्ठ जन प्रशंसा करते हैं; क्योंकि उसका वध करके व्यक्ति शोक नहीं करता।"

यह सुनकर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! गुरु गौतम ने धर्म (मार्ग, नियम) को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला दिया हो। मैं गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में आता हूँ। क्या मुझे गुरु गौतम के मार्गदर्शन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है, क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है?”

तब भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उच्च दीक्षा प्राप्त की। उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में रहकर, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य भारद्वाज ने स्वयं इस ज्ञान को प्राप्त कर, दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण होकर, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन अपनाते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" 432 और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

188. दुर्व्यवहार (अक्कोसा)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। ब्राह्मण अकोषक भारद्वाज, जो एक गाली देने वाला भारद्वाज था, ने सुना: 433 “कहा जाता है कि भारद्वाज वंश का एक ब्राह्मण गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में संन्यासी बन गया है।” क्रोधित और असंतुष्ट होकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया और उन्हें कठोर शब्दों से अपशब्द कहे।

जब उसने बोलना समाप्त किया, तो भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:
“हे ब्राह्मण, तुम क्या सोचते हो? क्या तुम्हारे मित्र, सहकर्मी, रिश्तेदार और अतिथि तुमसे मिलने आते हैं?”
[भारद्वाज:] “कभी-कभी वे मिलने आते हैं, गुरु गौतम।”
[बुद्ध:] “तो क्या तुम उन्हें कुछ भोजन या नाश्ता देते हो?”
[भारद्वाज] "कभी-कभी मैं करता हूँ, गुरु गौतम।"
[बुद्ध] "पर यदि वे इसे आपसे ग्रहण नहीं करते, तो भोजन किसका है?"
[भारद्वाज] "यदि वे इसे मुझसे ग्रहण नहीं करते, तो भोजन हमारा ही है।"
[बुद्ध] "इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, हम - जो किसी को गाली नहीं देते, किसी को डांटते नहीं, किसी पर क्रोध नहीं करते - आपसे वह गाली, डांट और क्रोध ग्रहण नहीं करते जो आप हम पर बरसाते हैं। यह भोजन आपका ही है, हे ब्राह्मण! यह भोजन आपका ही है, हे ब्राह्मण!
" "हे ब्राह्मण, जो अपने ही गाली देने वाले को गाली देता है, जो डांटने वाले को डांटता है, जो डांटने वाले पर क्रोध करता है - उसे भोजन ग्रहण करने वाला, लेन-देन करने वाला कहा जाता है। परन्तु हम आपके भोजन में भाग नहीं लेते; हम लेन-देन नहीं करते। यह भोजन आपका ही है, हे ब्राह्मण!" यह अब भी तुम्हारा ही है, ब्राह्मण!”

[भारद्वाज:] “राजा और उनके अनुयायी तपस्वी गौतम को अरहंत समझते हैं, फिर भी क्या गुरु गौतम क्रोधित होते हैं?” 434

[भगवान (बुद्ध):]
“जो क्रोधहीन है, उसमें क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता है? धर्मपरायण जीवन जीने वाले,
पूर्ण ज्ञान से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त), शांत रहने वाले स्थिर व्यक्ति में क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता है? 435

“जो क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद देता है, वह अपने लिए स्थिति और खराब कर लेता है। क्रोधित
व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद न देने पर, व्यक्ति कठिन युद्ध भी जीत लेता है।

वह अपने और दूसरे दोनों के कल्याण के लिए साधना करता है।
जब वह जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है, तब वह ध्यानमग्न (सतो) होकर अपनी शांति बनाए रखता है।”

"जब वह स्वयं और दूसरे दोनों के रोगों का निवारण कर देता है, तो
जो लोग उसे बचकाना (नासमझ) समझते हैं, वे धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल होते हैं।" 436

यह सुनकर ब्राह्मण अकोषक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है) मैं गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। मुझे दीक्षा प्राप्त हो।" (पबज्जा) गुरु गौतम के मार्गदर्शन में, क्या मुझे उच्च दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त हो सकती है?

तब भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उच्च दीक्षा प्राप्त की। और शीघ्र ही, उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास करते हुए (जैसा कि 187 में है), पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

189. असुरिंदका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। ब्राह्मण असुरिंदक भारद्वाज ने सुना: 437 “कहा जाता है कि भारद्वाज वंश का एक ब्राह्मण गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में संन्यासी बन गया है।” क्रोधित और असंतुष्ट होकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया और उन्हें कठोर शब्दों से अपशब्द कहे।
जब उसकी बात समाप्त हुई, तो भगवान (बुद्ध) मौन रहे। तब ब्राह्मण असुरिंदक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “हे तपस्वी, आप हार गए! हे तपस्वी, आप हार गए!”

[भगवान (बुद्ध):]
“नासमझ व्यक्ति विजय प्राप्त कर लेता है; जब वह वाणी से कठोर प्रहार करता है;
परन्तु जो समझदार है, उसके लिए धैर्य ही सच्ची विजय है। 438

“जो क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद देता है; वह अपने लिए स्थिति और बिगाड़ लेता है।
क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद न देने से; कठिन युद्ध भी जीता जा सकता है।

“वह अपने और दूसरे के कल्याण के लिए अभ्यास करता है।
जब वह जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है; वह ध्यानमग्न (सतो) होकर शांत रहता है।

“जब वह अपने और दूसरे दोनों का निवारण कर लेता है;
तो जो लोग उसे नासमझ समझते हैं; वे धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल होते हैं।”

यह सुनकर ब्राह्मण असुरिंदक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: “महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)” और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

190 बिलंगिका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। ब्राह्मण बिलंगिका भारद्वाज ने सुना: 439 “कहा जाता है कि भारद्वाज वंश का एक ब्राह्मण गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में संन्यासी बन गया है।” क्रोधित और असंतुष्ट होकर वह भगवान (बुद्ध) के पास आया और चुपचाप एक तरफ खड़ा हो गया। 440 तब भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण बिलंगिका भारद्वाज के मन के विचार को स्वयं जान लिया और श्लोक में उनसे कहा:

“यदि कोई निर्दोष व्यक्ति,
एक पवित्र और निष्कलंक व्यक्ति के साथ अन्याय करता है, तो
वह पाप उसी नासमझ पर वापस आ पड़ता है,
जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।”

जब यह कहा गया, तो ब्राह्मण बिलंगिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)" और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

191. अहिंसक
सावत्थी में, ब्राह्मण अहिंसक भारद्वाज, जो निर्मल भारद्वाज हैं, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। 441 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले: "मैं निर्मल अहिंसक हूँ, गुरु गौतम। मैं निर्मल अहिंसक हूँ, गुरु गौतम।"

[भगवान (बुद्ध):]
"यदि कोई अपने नाम के अनुरूप होता, तो तुम निर्मल होते।
परन्तु जो किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता, शरीर, वाणी या मन से,
वही वास्तव में निर्मल है; क्योंकि वह दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।"

यह सुनकर ब्राह्मण अहिंसक भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)" और पूज्य अहिंसक भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

192. उलझा हुआ (जाटा)
श्रावस्ती में, ब्राह्मण जटा भारद्वाज, जो उलझनों के भारद्वाज हैं, भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा,

"अंदर भी उलझन, बाहर भी उलझन; यह पीढ़ी उलझन में फंसी हुई है।
हे गौतम, मैं आपसे यह पूछता हूँ; इस उलझन को कौन सुलझा सकता है?"

[भगवान (बुद्ध):
"शील में स्थिर, बुद्धिमान, विकसित मन और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाला,
उत्साही और विवेकशील भिक्षु; वही इस उलझन को सुलझा सकता है।

जिनके मन से राग और द्वेष, अज्ञान सहित, दूर हो गए हैं। जिनके
दोष नष्ट हो गए हैं; उनके लिए यह उलझन सुलझ गई है। "

"जहाँ मन और शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है; जहाँ कोई शेष नहीं रहता।
और रूप का आक्षेप (पतिघ) और बोध (सन्ना संस. संग्या) भी समाप्त हो जाता है; यहीं यह उलझन टूट जाती है।"

यह सुनकर ब्राह्मण जटा भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 187 में है)" और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

193. सुद्धिका
श्रावस्ती में, ब्राह्मण सुद्धिका भारद्वाज भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"संसार में कोई भी ब्राह्मण कभी शुद्ध नहीं होता; चाहे वह सदाचारी और तपस्वी क्यों न हो;
ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति ही शुद्ध होता है; अन्य, सामान्य लोग नहीं।" 442

[भगवान (बुद्ध):]
"चाहे कोई कितने भी मंत्रों का जाप करे; वह जन्म से ब्राह्मण नहीं बन जाता;
यदि वह भीतर से भ्रष्ट और दूषित हो; और छल-कपट से अपना जीवन यापन करता हो ।

चाहे क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, वेस हो, शुद्ध हो; चांडाल हो या सफाईकर्मी,
यदि कोई ऊर्जावान और दृढ़ हो; और अपने प्रयासों में सदा दृढ़ रहे,
तो वह परम पवित्रता प्राप्त करता है। " हे ब्राह्मण, जान लो कि यह सत्य है।

यह सुनकर ब्राह्मण सुद्धिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

194. अग्गिका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज के लिए घी सहित दूध-चावल रखे गए थे, जिन्होंने सोचा, "मैं अग्नि अनुष्ठान करूंगा, मैं अग्नि आहुति (यज्ञ और भोजन) दूंगा।" 443 फिर

, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। राजगृह में निरंतर भिक्षा मांगते हुए, भगवान (बुद्ध) ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज के निवास के पास पहुंचे और एक तरफ खड़े हो गए। ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को भिक्षा मांगते हुए देखा और उन्हें श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"त्रिविध ज्ञान से संपन्न; उचित जन्म से, प्रचुर ज्ञान से युक्त;
ज्ञान और आचरण में निपुण; इस दूध-चावल के भोज में भाग लें।" 444

[भगवान (बुद्ध):]
"चाहे कोई अनेक मंत्रों का जाप करे; वह जन्म से ब्राह्मण नहीं बनता
यदि वह भीतर से भ्रष्ट और दूषित हो; छल से अनुयायी प्राप्त किए हों।

"जो अपने पिछले जन्मों को जान चुका हो; जो ध्यान में स्वर्ग और दुख लोक को देखता हो;
जो पुनर्जन्मों के विनाश (खयाल/क्षय) तक पहुँच चुका हो; दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में परिपूर्ण ऋषि।" 445

"इन तीन प्रकार के ज्ञान के माध्यम से; वह त्रिविध ज्ञान से संपन्न ब्राह्मण होता है।
ज्ञान और आचरण में निपुण; इस दूध-चावल के भोज में भाग लें।" <358>

[ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज:] "गुरु गौतम को भोजन करने दीजिए; योग्य ब्राह्मण ही है।"

[भगवान (बुद्ध):]
"जिस भोजन पर श्लोक गाए गए हों, वह मेरे लिए खाने योग्य नहीं है।
हे ब्राह्मण, यह वह सिद्धांत नहीं है जिसका पालन साक्षी करते हैं।
प्रबुद्ध पुरुष ऐसे भोजन को अस्वीकार करते हैं जिस पर श्लोक गाए गए हों।
हे ब्राह्मण, ऐसा सिद्धांत होने के कारण, यही उनका आचरण नियम है।

"पूर्ण पुरुष, महान संत,
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं और पश्चाताप शांत हो गया है, उन्हें
अन्य भोजन और पेय के साथ परोसें,
क्योंकि वे पुण्य की तलाश करने वाले के लिए क्षेत्र हैं।" 446

यह सुनकर ब्राह्मण अग्गिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य अग्गिका भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

195 सुंदरिका

एक बार भगवान (बुद्ध) सुंदरिका नदी के किनारे कोसलवासियों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज सुंदरिका नदी के किनारे अग्नि यज्ञ और अग्निदान कर रहे थे। अग्नि यज्ञ और अग्निदान (यज्ञ एवं भोजन) करने के बाद ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज अपने आसन से उठे और चारों ओर देखते हुए सोचने लगे, "अब इस अग्नि-आराधित रोटी को कौन खाएगा?" 447
ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को एक वृक्ष के नीचे सिर ढके बैठे देखा। उन्हें देखकर उन्होंने अपने बाएं हाथ में अग्नि-आराधित रोटी और दाहिने हाथ में जलपात्र लेकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। जब भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण के कदमों की आहट सुनी, तो उन्होंने अपना सिर खोल दिया। तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने सोचा, "यह योग्य व्यक्ति तो मुंडा हुआ है, यह योग्य व्यक्ति मुंडा हुआ है," और वापस लौटना चाहा; लेकिन उनके मन में यह विचार आया:
"यहाँ कुछ ब्राह्मण भी मुंडाए हुए हैं। मुझे उनके पास जाकर उनके जन्म के बारे में पूछना चाहिए।"

तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज
भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "इस योग्य व्यक्ति का जन्म क्या है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"जन्म के बारे में मत पूछो, आचरण के बारे में पूछो:
आग तो किसी भी लकड़ी से उत्पन्न होती है।
एक दृढ़ निश्चयी ऋषि, भले ही वह निम्न कुल का हो,
लज्जा से संयमित एक शुद्ध कुलीन है। 448

"आराधना करने वाले को इसका आह्वान करना चाहिए:
सत्य द्वारा वश में किया गया, वश में करने से परिपूर्ण।
जिसने ज्ञान की सीमा को प्राप्त कर लिया है,
पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का पालन करने वाला।"

फिर वह उचित दान करता है,
दान के योग्य व्यक्ति को। 449

[ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज:]
"निश्चित रूप से मेरा अनुष्ठान अच्छी तरह संपन्न हुआ है,
क्योंकि मैंने ऐसे ज्ञान-गुरु को देखा है।
क्योंकि मैंने आप जैसे लोगों को नहीं देखा था, इसलिए
अन्य लोगों ने अग्नि-अनुष्ठान का केक खाया।

गुरु गौतम को खाने दीजिए। योग्य व्यक्ति ब्राह्मण है।"

[भगवान (बुद्ध):] (जैसा कि 194 में है)
"जिस भोजन पर श्लोक गाए गए हों, वह मेरे लिए खाने योग्य नहीं है।
हे ब्राह्मण, यह वह सिद्धांत नहीं है जिसका पालन देखने वाले करते हैं।
प्रबुद्ध व्यक्ति ऐसे भोजन को अस्वीकार करते हैं जिस पर श्लोक गाए गए हों।
हे ब्राह्मण, ऐसा सिद्धांत मौजूद है, यही उनका आचरण नियम है।

पूर्ण पुरुष, महान संत,
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं और पश्चाताप शांत हो गया है, उन्हें
भोजन और पेय से सेवा करें,
क्योंकि वह पुण्य की तलाश करने वाले के लिए क्षेत्र हैं।"

[सुंदरिका भारद्वाज:] "तो, गुरु गौतम, क्या मुझे यह अग्नि-आहार की रोटी किसी और को दान कर देनी चाहिए?" "हे ब्राह्मण, इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, तथागत या तथागत के शिष्य के सिवा कोई ऐसा नहीं है जो इस अग्नि-आहार की रोटी को खाकर ठीक से पचा सके। 450 अतः, हे ब्राह्मण, इस अग्नि-आहार की रोटी को किसी ऐसे स्थान पर फेंक दो जहाँ वनस्पति कम हो या इसे ऐसे जल में डाल दो जहाँ कोई जीव-जंतु न हों।"

तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने उस अग्नि-आहार की रोटी को ऐसे जल में डाल दिया जहाँ कोई जीव-जंतु नहीं थे। जल में डालने पर वह रोटी चटकने लगी, फुफकारने लगी और उससे भाप और धुआँ निकलने लगा। 451 जिस प्रकार दिनभर गर्म किया हुआ हल पानी में डालने पर चटकता, फुफकारता और भाप एवं धुआँ छोड़ता है, उसी प्रकार अग्नि-समाधि की रोटी को पानी में डालने पर चटकने, फुफकारने और भाप एवं धुआँ निकला।

तब ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज भयभीत होकर
भगवान (बुद्ध) के पास गए और एक तरफ खड़े हो गए।
तब भगवान (बुद्ध) ने उन्हें श्लोकों से संबोधित करते हुए कहा,

"हे ब्राह्मण, लकड़ी जलाते समय यह मत सोचो कि
यह बाहरी कर्म पवित्रता लाता है; क्योंकि विद्वान कहते हैं कि जो बाहरी रूप से पवित्रता की खोज करता है, उसे
पवित्रता प्राप्त नहीं होती । हे ब्राह्मण, लकड़ी से बनी अग्नि का त्याग करके, मैं केवल आंतरिक प्रकाश को प्रज्वलित करता हूँ। सदा प्रज्वलित, मेरा मन सदा समाधि अवस्था में रहता है, मैं एक अरहंत हूँ जो ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है।" "हे ब्राह्मण, अहंकार तुम्हारा बोझ है, क्रोध धुआँ है, झूठी वाणी राख है; जीभ चम्मच है, हृदय वेदी है, और संयमित आत्मा मनुष्य का प्रकाश है। धम्म (मार्ग, नियम) सद्गुणों के घाटों वाला निर्मल, अच्छे लोगों द्वारा अच्छे लोगों के लिए प्रशंसित, जहाँ ज्ञान के स्वामी स्नान करने जाते हैं। और, निर्मल अंगों वाले, कठोर, दूर किनारे की ओर। 453 "सत्य, धम्म, संयम, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन। मध्य मार्ग पर आधारित ब्रह्म प्राप्ति: हे ब्राह्मण, धर्मी लोगों को प्रणाम करो; मैं उस व्यक्ति को धम्म से प्रेरित कहता हूँ।" 454 यह सुनकर ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य सुंदरिका भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए।

---

196. अनेक बेटियाँ (बहुधिता)
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण के चौदह बैल खो गए थे। भारद्वाज वंश का वह ब्राह्मण उन बैलों की खोज करते हुए उस घने जंगल में गया जहाँ भगवान (बुद्ध) ठहरे हुए थे। वहाँ उसने भगवान (बुद्ध) को पाँवबाँटकर बैठे हुए, शरीर सीधा रखते हुए, अपने मुख के सामने ध्यान (सती) करते हुए देखा। उन्हें देखकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया और उनके समक्ष ये श्लोक पढ़े:

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास चौदह बैल नहीं हैं [जो खो गए हैं]।
पिछले छह दिनों से दिखाई नहीं दिए हैं; इसलिए यह तपस्वी प्रसन्न है। 455

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास मुरझाए हुए तिल के पौधों का खेत नहीं है।"
कुछ के पास एक पत्ता है, कुछ के पास दो, इसलिए यह तपस्वी सुखी है। <366>

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; खाली खलिहान में चूहे
खुशी से नाचते हुए; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; एक कंबल जो सात महीनों से
कीड़ों के झुंड से ढका हुआ है; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; सात बेटियाँ विधवा हो गई हैं,
कुछ के पास एक बेटा है, कुछ के पास दो; इसलिए यह तपस्वी सुखी है। 456

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; एक सांवली पत्नी जिसके चेहरे पर चेचक के निशान हैं,
जो उसे लात मारकर जगाती है; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।

"निश्चित रूप से इस तपस्वी के पास नहीं है; लेनदार जो भोर में फोन करते हैं,
उसे डांटते हुए कहते हैं, 'भुगतान करो! भुगतान करो!'; इसलिए यह तपस्वी सुखी है।"

[भगवान (बुद्ध):]
"हे ब्राह्मण, मेरे पास चौदह बैल नहीं हैं [जो खो गए हैं]।
पिछले छह दिनों से दिखाई नहीं दे रहे हैं; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ। हे

ब्राह्मण, मेरे पास मुरझाए तिल के पौधों का खेत नहीं है।
कुछ पर एक पत्ता है, कुछ पर दो; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ। हे

ब्राह्मण, मेरे पास खाली खलिहान में चूहे नहीं हैं
जो खुशी से नाच रहे हों; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, मेरे पास सात महीने से
कीड़ों से ढका कंबल नहीं है; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, मेरे पास सात विधवा पुत्रियाँ नहीं हैं।
कुछ के साथ एक बेटा है, कुछ के साथ दो; इसलिए, हे ब्राह्मण, मैं प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, मेरे पास सात पुत्रियाँ नहीं हैं; सांवली रंगत वाली, चेचक के दागों से भरी पत्नी
जो मुझे लात मारकर जगाती है; इसीलिए, हे ब्राह्मण, मैं सुखी हूँ।

“निश्चित रूप से, हे ब्राह्मण, मेरे पास भोर होते ही आने वाले कर्जदार नहीं हैं, जो
मुझे डांटते हुए कहते हैं, 'भुगतान करो! भुगतान करो!'; इसीलिए, हे ब्राह्मण, मैं सुखी हूँ।”

जब यह कहा गया, तो भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!"...(जैसा कि 187 में है) और पूज्य भारद्वाज अरहंतों में से एक बन गए। 457 <369>

(ii) उपासकवग्गो (गृहस्थ अनुयायी अनुभाग)

197. काशी भारद्वाज

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 458 एक बार भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच दक्षिणागिरि में, ब्राह्मणों के गाँव एकनाला के पास निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण काशी भारद्वाज, जो हल चलाने वाले भारद्वाज थे, ने बुवाई के समय पाँच सौ हल अपने जोतों में बाँध रखे थे। 459 फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर उस स्थान पर गए जहाँ ब्राह्मण काशी भारद्वाज कार्य कर रहे थे।

उस समय ब्राह्मण काशी भारद्वाज द्वारा भोजन वितरण हो रहा था। 460 तब भगवान (बुद्ध) भोजन वितरण स्थल पर पहुँचे और एक तरफ खड़े हो गए। ब्राह्मण काशी भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को भिक्षा मांगते हुए देखा और उनसे कहा,

"हे संन्यासी, मैं खेत जोतता और बोता हूँ, और बोने के बाद भोजन करता हूँ। हे संन्यासी, तुम्हें भी खेत जोतना और बोना चाहिए; फिर बोने के बाद भोजन करना चाहिए।"

[बुद्ध:] "हे ब्राह्मण, मैं भी खेत जोतता और बोता हूँ, और बोने के बाद भोजन करता हूँ।"

[काशी भारद्वाज] "परन्तु हमें गुरु गौतम का जुआ, हल, हल का फाल, अंकुश या बैल दिखाई नहीं देते; फिर भी गुरु गौतम कहते हैं, 'हे ब्राह्मण, मैं भी हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और जब मैं हल चलाकर बीज बो लेता हूँ, तब मैं भोजन करता हूँ।'"
तब ब्राह्मण काशी भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा:

"आप हल चलाने वाले मनुष्य होने का दावा करते हैं; परन्तु मुझे आपका हल चलाना दिखाई नहीं देता।
यदि आप हल चलाने वाले हैं, तो मुझे उत्तर दीजिए; हम आपके हल चलाने को कैसे समझें?"

[भगवान (बुद्ध):]
"विश्वास बीज है, तप वर्षा है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि मेरा जुआ और हल है;
लज्जा ध्रुव है, मन जुआ-बंधन है; सती मेरा हल का फाल और अंकुश है।" 461

"शरीर से सावधान, वाणी से सावधान; भोजन के प्रति अपनी भूख पर संयम रखते हुए,
मैं सत्य को अपने निराई-गुड़ाई के औजार के रूप में और कोमलता को अपने

बंधनों से मुक्ति दिलाने वाले साधन के रूप में प्रयोग करता हूँ। 462 [173] "वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) मेरा बोझ ढोने वाला जानवर है; जो मुझे बंधनों से मुक्ति दिलाता है।
यह बिना रुके आगे बढ़ता है; जहाँ पहुँचकर कोई दुःख नहीं होता। 463

"इस प्रकार यह जुताई की जाती है; जिसका फल निर्वाण है।
इस जुताई के कार्य को पूरा करने के बाद; व्यक्ति सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।"

"गुरु गौतम को भोजन करने दो! योग्य तो किसान है, क्योंकि गुरु गौतम ऐसी जुताई करते हैं जिसका फल भी अमरता है।"

"जिस भोजन पर श्लोक गाए गए हों; वह मेरे लिए खाने योग्य नहीं है।
हे ब्राह्मण, यह वह सिद्धांत नहीं है जिसका पालन साक्षी करते हैं।
प्रबुद्ध लोग ऐसे भोजन को अस्वीकार करते हैं जिस पर श्लोक गाए गए हों।"
हे ब्राह्मण, ऐसा सिद्धांत विद्यमान है, यही उनका आचरण नियम है।

"पूर्ण पुरुष, महान संत,
जिनके दोष नष्ट हो गए हैं और पश्चाताप शांत हो गया है,"
इसे भोजन और पेय के साथ परोसें।
क्योंकि वह पुण्य की तलाश करने वाले के लिए क्षेत्र है। (जैसा कि 194 में है)

यह सुनकर ब्राह्मण काशी भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! गुरु गौतम ने धर्म को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला दिया हो। मैं गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।”

---

198. उदय

श्रावस्ती में। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण उदय के निवास पर गए। तब ब्राह्मण उदय ने भगवान (बुद्ध) के कटोरे में चावल भर दिए। दूसरी बार सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण उदय के निवास पर गए। तीसरी बार सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण उदय के निवास पर गए। 464 फिर तीसरी बार ब्राह्मण उदय ने भगवान (बुद्ध) के कटोरे में चावल भर दिए, जिसके बाद उन्होंने भगवान (बुद्ध) से कहा: "यह परेशान करने वाला तपस्वी गौतम बार-बार आता रहता है।" 465

[भगवान (बुद्ध):]
"बार-बार बीज बोए जाते हैं; बार-बार आकाशदेव वर्षा बरसाते हैं;

बार-बार किसान खेत जोतते हैं; बार-बार अनाज धरती पर आता है।

बार-बार भिक्षु भीख मांगते हैं; बार-बार दान देते हैं;
जब दानदाता बार-बार दान देते हैं; तो वे बार-बार स्वर्ग जाते हैं।

बार-बार दूध दुहा जाता है; बार-बार बछड़ा अपनी माँ के पास जाता है;
बार-बार कोई थकता और कांपता है; बार-बार मंदबुद्धि गर्भ में प्रवेश करता है;

बार-बार कोई जन्म लेता है और मरता है; बार-बार किसी को श्मशान ले जाया जाता है। बार-
बार पुनर्जन्म से मुक्ति पाने वाला, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) में उज्ज्वल व्यक्ति बार-बार जन्म नहीं लेता!"

यह सुनकर ब्राह्मण उदय ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम!" हे महान गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।

---

199. देवहिता
सावत्थी में। उस समय भगवान (बुद्ध) हवाओं से पीड़ित थे और पूज्य उपवन उनके सेवक थे। 466 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य उपवन से कहा, "उपवन, मेरे लिए कुछ गर्म पानी लाओ।"

"जी, पूज्यवर," पूज्य उपवन ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने वस्त्र धारण किए और कटोरा और वस्त्र लेकर ब्राह्मण देवहित के निवास पर गए, जहाँ वे चुपचाप एक तरफ खड़े हो गए। ब्राह्मण देवहित ने पूज्य उपवन को चुपचाप एक तरफ खड़े देखा और उनसे श्लोक में कहा,

"हे पूजनीय, चुपचाप खड़े हैं; मुंडा सिर वाले, सिले हुए वस्त्र पहने हुए।
आप क्या चाहते हैं, क्या खोज रहे हैं; यहाँ क्या माँगने आए हैं?"

[आदरणीय उपवन:]
"अरहंत, संसार के सौभाग्यशाली (सुगतो), ऋषि, वायु ऋतुओं से पीड़ित हैं। हे
ब्राह्मण, यदि कोई गर्म जल हो तो कृपया ऋषि को अर्पित करें।

वे पूजनीय लोगों द्वारा पूजे जाते हैं; आदरणीय लोगों द्वारा सम्मानित किए जाते हैं।"
आदरणीय लोगों द्वारा आदरणीय; मैं इसे उन्हीं को अर्पित करना चाहता हूँ।"

तब ब्राह्मण देवहित ने एक व्यक्ति को गर्म पानी से भरा डंडा लाने का आदेश दिया और पूज्य उपवन को गुड़ की थैली भेंट की। तब पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को गर्म पानी से स्नान कराया और गुड़ को गर्म पानी में मिलाकर उन्हें अर्पित किया। तब भगवान (बुद्ध) का रोग शांत हो गया।

तब ब्राह्मण देवहित भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से श्लोक में कहा:

"उचित दान कहाँ देना चाहिए? दान कहाँ महान फल देता है?
भिक्षा देने वाले के लिए, भेंट कैसे सफलता लाती है? 467

[भगवान (बुद्ध):]
"वह जिसने अपने पूर्व लोकों को जान लिया है; जो स्वर्ग और नरक लोक को देखता है (ध्यान में)।
जो पुनर्जन्म के विनाश (खयाल/क्षय) तक पहुँच चुके हैं; दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में परिपूर्ण ऋषि:

यहाँ उचित दान देना चाहिए; यहाँ दान देने से महान फल मिलता है।

इसी प्रकार, दान देने वाले को सफलता मिलती है - ठीक वैसे ही!"

यह सुनकर ब्राह्मण देवहित ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।" (जैसा कि 197 में है)

---

200 धनी व्यक्ति (महाशाला)
श्रावस्ती में, 468 तब एक धनी ब्राह्मण, जो मैला-कुचैला वस्त्र पहने हुए था, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा, "हे ब्राह्मण, अब तुम इतने मैला-कुचैले वस्त्र क्यों पहने हो?"
[ब्राह्मण:] "हे गौतम जी, मेरे चारों पुत्रों ने अपनी पत्नियों के उकसावे पर मुझे घर से निकाल दिया है।"
[बुद्ध:] "तो हे ब्राह्मण, इन श्लोकों को याद कर लो और जब सभा भवन में तुम्हारे पुत्रों के साथ भीड़ एकत्रित हो, तब इनका पाठ करो:

"जिनके जन्म से मुझे प्रसन्नता हुई (नंदी/आनंद); और जिनकी सफलता की मैंने बहुत कामना की;
वे अपनी पत्नियों के उकसावे पर मुझे कुत्तों की तरह सूअरों को भगा रहे हैं।"

"ये दुष्ट लोग सचमुच नीच हैं; हालाँकि वे मुझे 'पिताजी, प्रिय पिताजी' कहकर पुकारते हैं।
ये पुत्रों के वेश में राक्षस हैं; बुढ़ापे में मुझे त्यागने के लिए।

"जैसे कोई बूढ़ा घोड़ा, जो अब किसी काम का नहीं, अपने चारे से दूर ले जाया जाता है,
वैसे ही इन लड़कों का बूढ़ा पिता; दूसरों के घरों में भिक्षा माँगता है।

"मेरे लिए वह लाठी बेहतर है जिसका मैं उपयोग करता हूँ; उन अवज्ञाकारी पुत्रों से;
क्योंकि लाठी जंगली बैल को भगा देती है; और जंगली कुत्ते को भी।

"अंधेरे में यह मेरे आगे चलती है; गहरे में यह मुझे सहारा देती है।
लाठी की कृपा शक्ति से; यदि मैं लड़खड़ा जाऊँ तो भी मैं दृढ़ रहता हूँ।"

तब उस धनी ब्राह्मण ने, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में इन श्लोकों को सीखकर, सभा भवन में अपने पुत्रों के साथ उपस्थित लोगों के सामने इनका पाठ किया:

"जिनके जन्म पर मुझे आनंद आया (नंदी/आनंद)..." (पहले की तरह)... यदि मैं लड़खड़ा जाऊं तो भी दृढ़ रहूंगा।"

तब पुत्र उस धनी ब्राह्मण को अपने घर ले गए, उसे स्नान कराया और प्रत्येक ने उसे एक जोड़ी वस्त्र दिए। तब उस धनी ब्राह्मण ने एक जोड़ी वस्त्र लेकर भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा, "गुरु गौतम, हम ब्राह्मण अपने गुरु के लिए गुरु-दावत मांगते हैं। कृपया गुरु गौतम मुझसे गुरु-दावत स्वीकार करें।" भगवान (बुद्ध) ने करुणावश स्वीकार कर लिया।

तब उस धनी ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"महान गुरु गौतम! महान गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) कृपया गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

201. मनत्थद्धा
सावत्थी में। उस समय सावत्थी में मनत्थाधा नामक एक ब्राह्मण निवास कर रहा था, जो अहंकार से भरा हुआ था। 469 वह न तो अपने माता-पिता को, न अपने गुरु को और न ही अपने बड़े भाई को प्रणाम करता था। उस समय भगवान (बुद्ध) एक विशाल सभा के बीच धर्म का उपदेश दे रहे थे। तब ब्राह्मण मनत्थाधा के मन में विचार आया: "यह तपस्वी गौतम एक विशाल सभा के बीच धर्म का उपदेश दे रहे हैं। मुझे उनके पास जाना चाहिए। यदि तपस्वी गौतम मुझसे बात करें, तो मैं भी उनसे बात करूँगा। लेकिन यदि वे मुझसे बात न करें, तो मैं भी उनसे बात नहीं करूँगा।"

तब ब्राह्मण मनत्थाधा भगवान (बुद्ध) के पास गया और चुपचाप एक तरफ खड़ा हो गया, लेकिन भगवान (बुद्ध) ने उससे कोई बात नहीं की। तब ब्राह्मण मनत्थद्धा ने यह सोचकर कि "यह तपस्वी गौतम कुछ नहीं जानते" 470 वापस लौटना चाहा, परन्तु भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण के मन के विचार को स्वयं जानकर ब्राह्मण मनत्थद्धा को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"अहंकार को बढ़ावा देना कभी अच्छा नहीं होता; हे ब्राह्मण, अपने कल्याण के लिए तत्पर रहने वाले
को तो उस उद्देश्य को बढ़ावा देना चाहिए जिसके कारण तुम यहाँ आए हो।" 471

तब ब्राह्मण मनत्थद्धा ने यह सोचकर कि "तपस्वी गौतम मेरे मन को जानते हैं," वहीं भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया। उन्होंने भगवान (बुद्ध) के चरणों को चूमा, अपने हाथों से उन्हें सहलाया और अपना नाम इस प्रकार घोषित किया:
"मैं मनत्थद्धा हूँ, गुरु गौतम! मैं मनत्थद्धा हूँ, गुरु गौतम!"
तब वह सभा विस्मय से भर गई और लोगों ने कहा: "यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज!" यह ब्राह्मण मनत्थद्धा न तो अपने माता-पिता को, न अपने गुरु को, न ही अपने बड़े भाई को प्रणाम करता है, फिर भी वह तपस्वी गौतम के प्रति इतना आदर दिखाता है।" 472
तब भगवान (बुद्ध) ने ब्राह्मण मनत्थद्धा से कहा:
"बस करो, ब्राह्मण! उठो और अपनी सीट पर बैठो, क्योंकि तुम्हारा मन मुझ पर विश्वास रखता है।"
तब ब्राह्मण मनत्थद्धा अपनी सीट पर बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से श्लोक में पूछा:

"किसके प्रति अहंकार से बचना चाहिए? किसके प्रति आदर दिखाना चाहिए? किसका सदा आदर करना चाहिए? किसका गहन आदर करना उचित है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"सर्वोच्च अपने माता-पिता को; फिर अपने बड़े भाई को;
फिर अपने गुरु को, जो चौथे हैं;
इनके प्रति अहंकार से बचना चाहिए;
इनके प्रति आदर दिखाना चाहिए;
इनका आदर करना चाहिए;
इनका गहन आदर करना उचित है।"

"अहंकार को नष्ट करके, विनम्र होकर, अरहंतों को प्रणाम करना चाहिए।
शांत हृदय वाले, अपने कार्य पूर्ण कर चुके; दोषमुक्त, अतुलनीय।"

यह सुनकर ब्राह्मण मनत्थद्धा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... (जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया है।"

---

202. पक्कानिका
सावत्थी में। उस समय विरोधाभासों में आनंद लेने वाला पच्चनिकासता नामक एक ब्राह्मण सावत्थी में निवास कर रहा था। तब ब्राह्मण पच्चनिकासता के मन में यह विचार आया: "मैं तपस्वी गौतम के पास जाऊं और उनकी हर बात का खंडन करूं।" उस समय भगवान (बुद्ध) खुले मैदान में टहल रहे थे। तब ब्राह्मण पच्चनिकासता भगवान (बुद्ध) के पास गए और टहलते हुए उनसे कहा: "हे तपस्वी, धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दीजिए!"

[भगवान (बुद्ध):]
"अच्छी सलाह समझना कठिन है; उस व्यक्ति के लिए जो विरोधाभासों में आनंद लेता है; उस
व्यक्ति के लिए जिसका मन भ्रष्ट है; जो आक्रामकता में लीन है।

"पर यदि किसी ने आक्रामकता को दूर कर दिया है; और अपने हृदय के अविश्वास को त्याग दिया है;
यदि किसी ने घृणा को त्याग दिया है; अच्छी तरह से कही गई सलाह को समझा जा सकता है।"

यह सुनकर ब्राह्मण पच्चनिकसाता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया है।"

---

203. नवकम्मिका

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज उस जंगल में कुछ काम कर रहे थे। 473 ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को एक साल के पेड़ की तलहटी में पांव मोड़े, शरीर सीधा रखते हुए, ध्यान मुद्रा में बैठे देखा। उन्हें देखकर उन्होंने सोचा, "मुझे इस जंगल में काम करने में आनंद आता है। यह तपस्वी गौतम किस काम में आनंद लेते हैं?"

तब ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे श्लोक में कहा,

"हे भिक्षु, आप इस साल के जंगल में किस काम में लगे हैं? किस
काम में आपको आनंद आता है? हे गौतम, अकेले जंगल में?"

[भगवान (बुद्ध):]
"जंगल में मुझे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है;
जड़ से काट दो, मेरा जंगल सूख गया है।
लकड़ी और बाण रहित, असंतोष से मुक्त,
मुझे जंगल में ही आनंद मिलता है।" 474

यह सुनकर ब्राह्मण नवकम्मिका भारद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... (जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

204. लकड़ी इकट्ठा करने वाले (कत्थहारा सं. काष्ठ-हारा)

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण के कुछ शिष्य लकड़ी इकट्ठा करते हुए उस जंगल में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को उस जंगल में पांव जोड़कर, सीधा शरीर धारण किए हुए, ध्यान (सती) करते देखा। उन्हें देखकर वे भारद्वाज वंश के ब्राह्मण के पास गए और उनसे कहा, “हे गुरु, आपको यह जानना चाहिए कि फलाँ जंगल में एक तपस्वी पांव पांव जोड़कर, सीधा शरीर धारण किए हुए, ध्यान (सती) कर रहे हैं।”

तब भारद्वाज वंश के ब्राह्मण उन ब्राह्मण शिष्यों के साथ उस जंगल में गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को वहाँ बैठे हुए देखा... (पहले की तरह)... उनके सामने ध्यान (सती) लगाए हुए। तब वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और उन्हें श्लोक में संबोधित किया:

"एकांत, वीरान जंगल में प्रवेश करके।
घने जंगलों में जहाँ अनेक भय मंडराते हैं,
स्थिर शरीर के साथ, शांत, सुंदर।
हे भिक्षु, आप कितना सुंदर ध्यान लगाते हैं! 475

"जंगल में जहाँ कोई गीत या संगीत नहीं बजता,
एक एकाकी ऋषि ने जंगल का सहारा लिया है!
यह मुझे आश्चर्य होता है - कि आप
आनंदित मन से अकेले जंगल में निवास करते हैं।

"मेरा मानना है कि आप सर्वोच्च त्रिस्वर्ग,
जगत के दिव्य स्वामी की संगति की इच्छा रखते हैं।
इसलिए आप इस वीरान जंगल का सहारा लेते हैं:
आप यहाँ ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) को प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं।" 476

[भगवान (बुद्ध):]
"जो भी अनेक इच्छाएँ और सुख हैं,
जो अनेक तत्वों (धातुओं) से सदा जुड़े रहते हैं।
अज्ञान की जड़ से उत्पन्न सभी लालसाओं को
मैंने उनकी जड़ समेत नष्ट कर दिया है। 477

701 "मैं इच्छा रहित, अनासक्त, विरक्त हूँ;
समस्त धर्मों के प्रति मेरा दर्शन शुद्ध हो गया है।
शुभ - सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करके -
आत्मविश्वासी, ब्राह्मण, मैं एकाकी ध्यान करता हूँ।" 478

यह सुनकर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!...(जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

205. द मदर सपोर्टर (माटुपोसाका)
श्रावस्ती में, एक ब्राह्मण जो अपनी माता का सहारा था, भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "हे गुरु गौतम, मैं विधिपूर्वक भिक्षा मांगता हूँ और इस प्रकार अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता हूँ। क्या ऐसा करके मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ?"

"निःसंदेह, ब्राह्मण, ऐसा करके तुम अपना कर्तव्य निभा रहे हो।
जो विधिपूर्वक भिक्षा मांगता है और इस प्रकार अपने
माता-पिता का भरण-पोषण करता है, वह बहुत पुण्य अर्जित करता है।

जब कोई मनुष्य विधिपूर्वक अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता है, तो
माता-पिता की इस सेवा के कारण
ज्ञानी लोग इस संसार में उसकी प्रशंसा करते हैं; और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में आनंदित होता है।"

यह सुनकर, अपनी माता का सहारा देने वाले ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! (जैसा कि 197 में है)... हे गुरु गौतम, मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जो आज से जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

206. भिक्षु (भिक्खक)
सावत्थी में, एक भिक्षु ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "गुरु गौतम, मैं भी भिक्षु हूँ और आप भी भिक्षु हैं। इस संदर्भ में हम दोनों में क्या अंतर है?" 479

[भगवान (बुद्ध):]
"ऐसा नहीं है कि कोई
भिक्षा मांगने मात्र से भिक्षु बन जाता है।
यदि कोई गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है,
तो भी वह भिक्षु नहीं बन जाता। 480

"परन्तु जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है,
पुण्य संपन्न है और बुराई से मुक्त है,
जो संसार में विवेक के साथ निवास करता है,
वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।"

यह सुनकर भिक्षु ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "महान गुरु गौतम!" हे महान गुरु गौतम! (जैसा कि 197 में है) गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।

---

207. संगरवा

सावत्थी में। उस समय सावत्थी में संगरवा नामक एक ब्राह्मण निवास कर रहे थे। वे जल-शुद्धि के अनुयायी थे, जल द्वारा शुद्धि में विश्वास रखते थे और संध्या-रात्रि जल में स्नान करने के अभ्यास में लीन रहते थे।
फिर, सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, सावत्थी में संगरवा नामक एक ब्राह्मण निवास कर रहे हैं। वे जल-शुद्धि के अनुयायी हैं और संध्या-रात्रि जल में स्नान करने के अभ्यास में लीन रहते हैं। हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश ब्राह्मण संगरवा के निवास पर दर्शन करें तो यह अच्छा होगा।"
भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर ब्राह्मण संगरव के निवास पर गए, जहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "क्या यह सच है, ब्राह्मण, कि आप जल-शुद्धि के साधक हैं, जो जल द्वारा शुद्धि में विश्वास रखते हैं, और जो संध्या और सूर्योदय के समय जल में स्नान करते हैं?"
[संगरव:] "जी, गुरु गौतम।"
[बुद्ध:] "यह सोचकर कि आपको इससे क्या लाभ होता है, ब्राह्मण?"
[संगरव:] "जी, गुरु गौतम, दिन में किए गए सभी बुरे कर्म सूर्यास्त के समय स्नान करके धुल जाते हैं। रात में किए गए सभी बुरे कर्म सूर्योदय के समय स्नान करके धुल जाते हैं।"

[भगवान (बुद्ध):]
"हे ब्राह्मण, धम्म (मार्ग, नियम) पुण्य (शील) के घाटों वाला
एक निर्मल झील है
, जहाँ ज्ञान के स्वामी स्नान करने जाते हैं
और निर्जलित होकर दूर तट पर पहुँचते हैं।" 481

यह सुनकर ब्राह्मण संगरव ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! (जैसा कि 197 में है) ... गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जो आज से जीवन भर के लिए शरण लेने गया है।"

---

208. खोमादुस्सा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शाक्यों का एक नगर था जिसका नाम खोमदुस्सा था। 482 तब भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए खोमदुस्सा में प्रवेश किया।
उस समय खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थ किसी कार्य के लिए सभा में एकत्रित थे और हल्की बारिश हो रही थी। तब भगवान (बुद्ध) सभा के पास पहुँचे। खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थों ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और कहा, "ये मुंडे हुए तपस्वी कौन हैं? क्या इन्हें नियमों का ज्ञान नहीं है?" 483

तब भगवान (बुद्ध) ने खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थों को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"वह सभा अच्छी नहीं जहाँ अच्छे लोग अनुपस्थित हों;
जो धर्म का वचन नहीं देते वे अच्छे नहीं हैं।
परन्तु जिन्होंने कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और
धर्म (मार्ग/नियम) का त्याग कर रखा है, वे ही अच्छे हैं।"

यह सुनकर खोमदुस्सा के ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हे महान गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो उन्होंने उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दिया हो, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दिया हो, भटके हुए को रास्ता दिखा दिया हो, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधकार में दीपक जला दिया हो। हम गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाते हैं। हे गुरु गौतम, हमें उन गृहस्थ अनुयायियों के रूप में याद रखें जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए शरण ली है।”

संयुत्त 8: वांगिसा के साथ जुड़े हुए प्रवचन (वांगीसासंयुत्त)
209. निक्खंत त्याग दिया
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 484 एक बार पूज्य वंगीसा अपने गुरु, पूज्य निग्रोधकप्पा के साथ अलावी में अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे। 485 उस समय पूज्य वंगीसा, जो नवदीक्षित थे और हाल ही में दीक्षा लेकर निकले थे, उन्हें उस निवास स्थान की देखभाल के लिए वहीं छोड़ दिया गया था। तभी कई सुंदर वस्त्र पहने महिलाएं उस निवास स्थान को देखने के लिए अग्गलावा पार्क में आईं। जब पूज्य वंगीसा ने उन महिलाओं को देखा, तो उनके मन में असंतोष उत्पन्न हुआ; उनके मन में वासना का प्रकोप छा गया। 486 तब उन्हें यह विचार आया: "यह तो मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं! यह तो मेरे लिए विपत्ति है, मुझे कोई लाभ नहीं हुआ कि मुझमें असंतोष उत्पन्न हो गया है, वासना ने मेरे मन को ग्रस्त कर लिया है। भला कोई और मेरे असंतोष को कैसे दूर कर सकता है और आनंद (नंदी/आनंद) कैसे उत्पन्न कर सकता है? मैं स्वयं ही अपने असंतोष को दूर कर आनंद उत्पन्न करूँ।"
तब पूज्य वंगीसा ने अपने असंतोष को दूर करके स्वयं ही आनंद उत्पन्न किया और उस अवसर पर इन श्लोकों का पाठ किया:

"हाय, यद्यपि मैं संन्यासी हूँ; घर छोड़कर संन्यासी जीवन में चला गया हूँ।
ये विचार अब भी मुझ पर हावी हैं; अंधकार के निर्लज्ज विचार। 487

"यद्यपि बलिष्ठ युवक, महान धनुर्धर; प्रशिक्षित पुरुष, धनुष के उस्ताद,
ऐसे हज़ार पुरुष जो भागते नहीं; मुझे चारों ओर से घेर लें, 488

और यदि स्त्रियाँ यहाँ आ जाएँ; तो भी इनकी संख्या इससे कहीं अधिक होगी।"
वे मुझे कभी विचलित नहीं कर सकते; क्योंकि मैं धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ता से खड़ा हूँ। 489

"मैंने यह प्रत्यक्षदर्शी के रूप में सुना है; सूर्य के सगे बुद्ध से,
निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग; वहीं मेरा मन प्रसन्न होता है। 490

"यदि, जब मैं इस प्रकार निवास कर रहा हूँ; तुम मेरे पास आओगे, हे दुष्ट,
मैं ऐसा कार्य करूँगा, हे मृत्यु, कि तुम मेरा मार्ग भी नहीं देख पाओगे।" 491

---

210. असंतोष (आरती)
एक बार पूज्य वांगिसा अपने गुरु पूज्य निग्रोधकप्पा के साथ अलावी में अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे। उस समय, जब पूज्य निग्रोधकप्पा भिक्षा मांगने के बाद लौटते, भोजन करने के बाद वे मंदिर में प्रवेश करते और या तो शाम को या अगले दिन बाहर निकलते। उस समय पूज्य
वांगिसा के मन में असंतोष उत्पन्न हो गया था; उनके मन में कामवासना घर कर गई थी। तब पूज्य वांगिसा को यह विचार आया: "यह मेरे लिए वास्तव में हानि है, लाभ नहीं! यह मेरे लिए वास्तव में दुर्भाग्य है, मुझे इससे कोई लाभ नहीं हुआ है कि मेरे मन में असंतोष उत्पन्न हो गया है, कामवासना ने मुझे ग्रसित कर लिया है। भला कोई और मेरे असंतोष को कैसे दूर कर सकता है और मुझे आनंदित कर सकता है? मुझे स्वयं ही अपने असंतोष को दूर करना चाहिए और आनंद उत्पन्न करना चाहिए।"
तब पूज्य वंगीसा ने अपनी असंतुष्टि दूर करके और आनंद उत्पन्न करके उस अवसर पर इन श्लोकों का पाठ किया:

"असंतोष और आनंद (नंदी/आनंद) का त्याग करके; और गृहस्थ विचारों को पूरी तरह से त्यागकर;
किसी भी चीज़ के प्रति कामवासना नहीं पालनी चाहिए; कामवासना रहित, आनंद रहित व्यक्ति ही वास्तव में भिक्षु है। 492

"पृथ्वी और अंतरिक्ष में जो कुछ भी विद्यमान है; रूप से निर्मित, संसार में समाहित,
सब कुछ क्षणभंगुर है, क्षय होता है; ऋषि इस सत्य को जानकर निवास करते हैं। 493;

"मनुष्य अपनी उपलब्धियों (उपाधि) से बंधे हुए हैं; जो देखा, सुना, महसूस किया और अनुभव किया जाता है;
इसके प्रति इच्छा का त्याग करो, अविचलित रहो; जो यहाँ किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं है, उसे ऋषि कहते हैं।" 494

"जो अपने ही विचारों में उलझे हुए हैं; लोगों में से बहुत से लोग गलत धर्म (मार्ग, नियम) पर स्थिर हैं:
जो कहीं भी उनके गुट में शामिल नहीं होता; और न ही भ्रष्ट वाणी बोलता है, वही भिक्षु है। 495

"समाधि में निपुण, लंबे समय से प्रशिक्षित; ईमानदार, विवेकशील, लालसा रहित।
शांति की अवस्था प्राप्त करने वाला ऋषि; परिनिर्वाण में लीन रहता है। 496

---

211. सुसंस्कृत (पेसला)

एक बार पूज्य वंगीसा अपने गुरु, पूज्य निग्रोधकप्पा के साथ अलावी में अग्गलावा मंदिर में रह रहे थे। उस समय, पूज्य वंगीसा अपनी चतुराई के कारण अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं को नीचा समझते थे। 497 तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "यह मेरे लिए वास्तव में हानि है, लाभ नहीं! यह मेरे लिए वास्तव में विपत्ति है, मुझे इससे कोई लाभ नहीं हुआ कि मैं अपनी चतुराई के कारण अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं को नीचा समझता हूँ।" तब पूज्य वंगीसा ने पश्चाताप
करते हुए उस समय ये श्लोक पढ़े:

"हे गौतम, अहंकार का त्याग करो; और अहंकार के मार्ग को पूरी तरह छोड़ दो।
अहंकार के मार्ग से आसक्त होकर; तुम लंबे समय से पश्चाताप कर रहे हो। 498

"अपमान से कलंकित लोग; अहंकार से मारे गए, नरक में गिरते हैं।
लोग लंबे समय तक शोक करते हैं; अहंकार से मारे गए, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"परन्तु भिक्षु कभी शोक नहीं करता; मार्ग का ज्ञाता सही ढंग से अभ्यास करता है।
वह प्रशंसा और सुख का अनुभव करता है; वास्तव में लोग उसे धर्म का द्रष्टा कहते हैं। 499

"इसलिए यहाँ नम्र और परिश्रमी बनो; बाधाओं को त्यागकर शुद्ध बनो।
अहंकार को पूरी तरह त्यागकर; ज्ञान से अंत-निर्धारक बनो, शांत बनो।" 500

---

212. आनंद

एक बार पूज्य आनंद सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं वस्त्र लेकर पूज्य वंगीसा के साथ भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। उस समय पूज्य वंगीसा के मन में असंतोष उत्पन्न हो गया था; उनके मन में कामवासना व्याप्त हो गई थी। 501 तब पूज्य वंगीसा ने पूज्य आनंद को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"मैं कामवासना से जल रहा हूँ; मेरा मन अग्नि से घिरा हुआ है।
कृपया मुझे इसे बुझाने का तरीका बताइए; हे गौतम, दया करके।" 502

[आदरणीय आनंद:]
"यह धारणा के उलटफेर (सन्ना संस. संग्या) के कारण है; कि आपका मन इसकी अग्नि में घिर जाता है।
सौंदर्य के कारण (निमित्त) से विमुख हो जाओ; जो कामुक (काम/यौन) वासना (राग) को उत्तेजित करता है। 503

"संस्कार ([कर्म] संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार-आदत) को पराया समझो; दुख समझो, स्वयं नहीं।
कामवासना की भीषण अग्नि बुझाओ; बार-बार मत जलो। 504

"शरीर की गंदगी पर मन को केंद्रित करो; एकाग्र (केंद्रित), समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से;
अपने ध्यान (सती) को शरीर पर लगाओ; घृणा (निबिद्दा) में लीन रहो। 505

"अकारण (अनिमित्त) पर ध्यान विकसित करो; और अहंकार की प्रवृत्ति का त्याग करो।
फिर, अहंकार को तोड़कर; तुम शांति में रहने वालों में से एक होगे।" 506

---

213. सुभाषित वक्ता (सुभाषिता)

श्रावस्ती में, 507 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को
इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जब वाणी में चार गुण होते हैं, तब वह अच्छी वाणी होती है, बुरी नहीं, और बुद्धिमानों के बीच वह निंदनीय नहीं होती। वे चार गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु केवल अच्छी वाणी बोलता है, बुरी नहीं। वह केवल धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलता है, अधर्म पर नहीं। वह केवल सुखद वाणी बोलता है, अप्रिय नहीं। वह केवल सत्य वाणी बोलता है, असत्य नहीं। जब वाणी में ये चार गुण होते हैं, तब वह अच्छी वाणी होती है, बुरी नहीं, और बुद्धिमानों के बीच वह निंदनीय नहीं होती।" 508 भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"सर्वोत्तम वचन, अच्छे लोगों का वचन, सर्वोपरि है; द्वितीय, धर्म का वचन बोलो, अधर्म का नहीं;
तृतीय, सुखद वचन बोलो, अप्रिय नहीं; चतुर्थ, सत्य बोलो, असत्य नहीं।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है, सौभाग्यशाली (सुगतो)!" 509
भगवान (बुद्ध) ने कहा: "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त करो, वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति की:

"मनुष्य को केवल ऐसा वचन बोलना चाहिए; जिससे वह स्वयं को कष्ट न दे
और न ही दूसरों को हानि पहुंचाए; ऐसा वचन ही वास्तव में अच्छा वचन है।"

"मनुष्य को केवल मधुर वाणी ही बोलनी चाहिए; ऐसी वाणी जिसका सहर्ष स्वागत हो।
जब उससे कोई हानि न हो; और जो वाणी बोली जाए वह दूसरों को भी प्रसन्न करे।

सत्य वास्तव में अमर वाणी है; यह एक प्राचीन सिद्धांत है।
अच्छे लोग कहते हैं कि लक्ष्य और धर्म सत्य पर आधारित हैं। 510

"बुद्ध द्वारा निर्वाण प्राप्ति और
दुखों के अंत के लिए बोली गई निश्चयात्मक वाणी ही सर्वोत्कृष्ट वाणी है।" 511

---

214. सारिपुत्त
एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे। उनका प्रवचन परिष्कृत, धाराप्रवाह और स्पष्ट था, जिसमें अर्थ भली-भांति व्यक्त हो रहा था। भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग/नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित कर रहे थे।
तब पूज्य वाग्गीसा के मन में यह विचार आया: "यह पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे हैं, उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट और भली-भांति व्यक्त हो रहा है, जिसमें अर्थ भली-भांति व्यक्त हो रहा है। और भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म सुन रहे हैं... मैं पूज्य सारिपुत्त की उनके समक्ष उपयुक्त श्लोकों से प्रशंसा करूं।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और पूज्य सारिपुत्त की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, "मुझे प्रेरणा मिली है, मित्र सारिपुत्त! मुझे प्रेरणा मिली है, मित्र सारिपुत्त!"
[सारिपुत्त:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, मित्र वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोकों से पूज्य सारिपुत्त की उनके सामने प्रशंसा की:

"गहन ज्ञान से परिपूर्ण, बुद्धिमान; सच्चे और असत्य मार्ग में निपुण,
महान ज्ञान से परिपूर्ण सारिपुत्त; भिक्षुओं को धम्म का उपदेश देते हैं।

वे संक्षेप में उपदेश देते हैं; वे विस्तार से बोलते हैं।
उनकी वाणी मैना पक्षी के समान है; प्रेरणापूर्ण प्रवचन देती है। " 512

"जब वह उन्हें शिक्षा देता है, तो वे सुनते हैं; उसकी मधुर वाणी को।
मन में उत्थान पाकर, आनंदित होकर; उसकी मनमोहक,
सुरीली और प्यारी आवाज से; भिक्षु अपने कान झुकाते हैं।"

---

215. पवाराना
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित सावत्थी में मिगारा की माता के भवन में पाँच सौ भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिनमें से सभी अरहंत थे। उस अवसर पर - पंद्रहवें उपोसथ दिवस पर - भगवान (बुद्ध) पवारना करने के लिए भिक्षु संघ से घिरे खुले में बैठे थे। 513 तब, मौन भिक्षु संघ का अवलोकन करने के बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "अब आओ, भिक्षुओं, मैं तुम्हें आमंत्रित करता हूँ: क्या मेरा कोई ऐसा कर्म है, चाहे शारीरिक हो या वाणी से, जिसे तुम अस्वीकार करोगे?"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, “पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) का कोई भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या वाणी से, हम अस्वीकार नहीं करते। क्योंकि, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) उस मार्ग के प्रवर्तक हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के निर्माता हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के उद्घोषक हैं जो पहले कभी घोषित नहीं किया गया। वे मार्ग के ज्ञाता हैं, मार्ग के खोजकर्ता हैं, मार्ग में निपुण हैं। और उनके शिष्य अब उस मार्ग का अनुसरण करते हुए निवास करते हैं और बाद में उस मार्ग के स्वामी बन जाते हैं। 514 और मैं, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) से निवेदन करता हूँ: क्या मेरा कोई भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या वाणी से, ऐसा है जिसे भगवान (बुद्ध) अस्वीकार करेंगे?”

"हे सारिपुत्त, तुम्हारा कोई भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या मौखिक, मैं अस्वीकार नहीं करता। क्योंकि हे सारिपुत्त, तुम ज्ञानी हो, महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, व्यापक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, तीव्र प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो, तीक्ष्ण प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो और भेदक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले हो। जिस प्रकार एक चक्र चलाने वाले राजा का सबसे बड़ा पुत्र अपने पिता द्वारा चलाए गए (संप्रभुता के) चक्र को उचित रूप से गतिमान रखता है, उसी प्रकार हे सारिपुत्त, तुम मेरे द्वारा चलाए गए धर्म (मार्ग, नियम) के चक्र को उचित रूप से गतिमान रखते हो।" 515

"हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मेरे किसी भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या मौखिक, को अस्वीकार नहीं करते, तो क्या वे इन पांच सौ भिक्षुओं के किसी भी कर्म, चाहे शारीरिक हो या मौखिक, को अस्वीकार करते हैं?"

"हे सारिपुत्त, इन पाँच सौ भिक्षुओं का कोई भी कर्म, शारीरिक या वाणी से, मैं अस्वीकार नहीं करता। क्योंकि इन पाँच सौ भिक्षुओं में से, हे सारिपुत्त, साठ भिक्षु त्रिगुण ज्ञान के धारक हैं, साठ भिक्षु छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियों के धारक हैं, साठ भिक्षु दोनों प्रकार से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हैं, जबकि शेष प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से मुक्त हैं।" 516

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "मुझे प्रेरणा मिली है, हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
भगवान (बुद्ध) ने कहा: "तो फिर अपनी प्रेरणा को व्यक्त करो, वांगिसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की उनके सामने स्तुति की।

आज पाँच सौ भिक्षु एकत्रित हुए हैं; पंद्रहवें दिन, शुद्धि के लिए,
जिन्होंने सभी बंधनों और बेड़ियों को काट डाला है; निर्मल संत (ऋषि-मुनि) जिन्होंने पुनर्जन्म के कारण को समाप्त कर दिया है,

“जैसे एक राजा, एक चक्र-घुमाने वाला सम्राट; अपने मंत्रियों के साथ,
इस विशाल पृथ्वी पर विचरण करता है; गहरे अंधकारमय सागर से घिरा हुआ,

वैसे ही वे युद्ध में विजयी की सेवा करते हैं; अद्वितीय कारवां नेता,
त्रिगुण ज्ञान धारण करने वाले शिष्य; जिन्होंने मृत्यु को बहुत पीछे छोड़ दिया है। 517

“सभी भगवान (बुद्ध) के सच्चे पुत्र हैं; यहाँ कोई व्यर्थ भूसा नहीं पाया जाता।

मैं सूर्य के सगे-संबंधी की पूजा करता हूँ; तृष्णा के बाण का नाश करने वाले।"

---

216. एक हजार से अधिक (पारोसहासा सं. पारो-सहस्त्र)

एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में, 1250 भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्मोपदेश देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उनका उत्साह बढ़ा रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग, नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित कर रहे थे।

तब पूज्य वाग्गीसा के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्मोपदेश देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं। और वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म सुन रहे हैं... मैं उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति करूँ।"

तब पूज्य वागीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा, "मुझे प्रेरणा मिली है, हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, वागीसा।"
तब पूज्य वागीसा ने उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति की:

"यहाँ एक हजार से अधिक भिक्षु हैं; सौभाग्यशाली (सुगतो) की सेवा में,
क्योंकि वे निर्मल धर्म का उपदेश देते हैं; निर्वाण भय से परे है। 518

वे निष्कलंक धर्म सुनते हैं; पूर्णतः प्रबुद्ध द्वारा उपदेशित।
प्रबुद्ध वास्तव में प्रकाशमान हैं; भिक्षु संघ द्वारा सम्मानित।"

"हे भगवान (बुद्ध), आपका नाम 'नाग' है; आप ऋषियों में श्रेष्ठ ऋषि हैं।
वर्षा लाने वाले विशाल बादल की तरह, आप शिष्यों पर वर्षा बरसाते हैं। 519

"दिन के समय अपने निवास स्थान से निकलकर, गुरु के दर्शन की इच्छा से,
आपके शिष्य वंगीसा, हे महावीर, आपके चरणों में प्रणाम करते हैं।"

[बुद्ध:] "क्या तुमने ये श्लोक पहले से सोच रखे थे, वंगीसा, या ये तुम्हें अनायास ही सूझे?" 520
[वंगीसा:] "मैंने ये श्लोक पहले से नहीं सोच रखे थे, आदरणीय महोदय; ये मुझे अनायास ही सूझे।"
[बुद्ध:] "तो फिर, वंगीसा, कुछ और श्लोकों को अपने मन में आने दो, जो पहले से सोचे-समझे न हों।"
[वंगीसा:] "जी, पूज्यवर," पूज्य वंगीसा ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने कुछ और श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति की, जो पहले से सोचे-समझे नहीं थे:

"मारा के पथ के भटकाव को पार करके; आप मन की बंजरता को नष्ट करके जी रहे हैं।
उसे देखो, जो बंधन से मुक्त (मोक्ष में) है; अनासक्त, भागों में विभाजित। 521

"हमें बाढ़ के पार ले जाने के लिए; आपने अनेक पहलुओं सहित मार्ग प्रकट किया।"
धम्म के ऋषि अविचल खड़े हैं; उस अमर अवस्था (निर्वाण) में, जिसकी घोषणा आपने की है। 522

"प्रकाश उत्पन्न करने वाले ने सभी अवस्थाओं के पार जाकर, सभी अवस्थाओं की श्रेष्ठता को देखा;
स्वयं उसे जानकर और अनुभव करके, उन्होंने पाँचों को मुख्य विषय की शिक्षा दी। 523

"जब धम्म की इतनी अच्छी शिक्षा दी गई है,
तो इसे समझने वालों के लिए आलस्य (पमादा) क्या हो सकता है?
इसलिए, भगवान (बुद्ध) की शिक्षा में सजग रहते हुए,
सदा श्रद्धापूर्वक उसका अभ्यास करना चाहिए।"

---

217. कोंडन्ना

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य अन्ना कोंडन्ना, बहुत लंबे समय बाद, भगवान (बुद्ध) के पास आए, उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया, उनके चरणों को चूमा, हाथों से उन्हें सहलाया और अपना नाम इस प्रकार घोषित किया: "मैं कोंडन्ना हूँ, भगवान (बुद्ध)! मैं कोंडन्ना हूँ, सौभाग्यशाली (सुगतो)!" 524
तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "यह पूज्य अन्ना कोंडन्ना, बहुत लंबे समय बाद भगवान (बुद्ध) के पास आए हैं... भगवान (बुद्ध) के चरणों को चूमते हैं, उन्हें अपने हाथों से सहलाते हैं और उनके नाम का उच्चारण करते हैं... मैं उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में पूज्य अन्ना कोंडन्ना की स्तुति करूँ।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है! हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त करो, वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में पूज्य अन्ना कोंडन्ना की उपयुक्त छंदों से प्रशंसा की:

"बुद्ध के वंशज, वरिष्ठ कोंडन्ना, जो अत्यंत परिश्रमी हैं,
सुखी निवास प्राप्त करते हैं; जो अक्सर एकांतवास में जाते हैं। 525

"शिष्य जो कुछ भी प्राप्त कर सकता है; जो गुरु की शिक्षाओं का अभ्यास करता है,
वह सब कुछ उसने प्राप्त किया है; जो सचेत रूप से अभ्यास करता है (अप्पमदा)।

"महान शक्ति वाले, त्रिगुण ज्ञान से परिपूर्ण; दूसरों के मन को समझने में कुशल
कोंडन्ना, बुद्ध के सच्चे उत्तराधिकारी; गुरु के चरणों में प्रणाम करते हैं।" 526

---

218. मोग्गलाना

एक बार भगवान (बुद्ध) इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर राजगृह में, पाँच सौ भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिनमें से सभी अर्हंत थे। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनके मन का अध्ययन किया और पाया कि वे मोक्ष प्राप्त कर चुके थे और किसी भी प्रकार की उपाधि धारण नहीं कर सकते थे।
तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "भगवान (बुद्ध) इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर राजगृह में निवास कर रहे हैं... तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनके मन का अध्ययन किया और पाया कि वे मोक्ष प्राप्त कर चुके थे और किसी भी प्रकार की उपाधि धारण नहीं कर सकते थे। मैं भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में उपयुक्त श्लोकों से पूज्य महामोग्गलाना की स्तुति करता हूँ।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा,
"हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, वंगीसा।"
तब पूज्य वंगीसा ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में उपयुक्त श्लोकों से पूज्य महामोग्गलाना की प्रशंसा की:

"जब ऋषि पर्वत की ढलान पर विराजमान हैं; दुख के पराकाष्ठा पर चले गए हैं।
उनके शिष्य उनकी सेवा में बैठे हैं; त्रिगुण ज्ञान से परिपूर्ण, जिन्होंने मृत्यु को पीछे छोड़ दिया है।

मोग्गलाना, आध्यात्मिक शक्ति में महान; ने उनके मन को अपने भीतर समाहित कर लिया।
और उनके मन को खोजते हुए; पूर्णतः मोक्ष में लीन, बिना किसी प्राप्ति के!"

"इस प्रकार अनेक गुणों से परिपूर्ण वे समस्त गुणों से परिपूर्ण गौतम की सेवा करते हैं;
जो समस्त गुणों से परिपूर्ण ऋषि हैं; और दुख के सुदूर तट पर चले गए हैं।" 527

---

219 गग्गारा

एक बार भगवान (बुद्ध) चंपा में गग्गर कमल सरोवर के किनारे एक विशाल भिक्षु संघ के साथ निवास कर रहे थे, जिसमें पाँच सौ भिक्षु, सात सौ पुरुष अनुयायी, सात सौ स्त्री अनुयायी और हजारों देवता (देवदूत) शामिल थे। भगवान (बुद्ध) सौंदर्य और महिमा में उन सभी से कहीं अधिक तेजस्वी थे।

तब पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया: "यह भगवान (बुद्ध) चंपा में निवास कर रहे हैं... और हजारों देवता भी उनके साथ हैं। भगवान (बुद्ध) सौंदर्य और महिमा में उन सभी से कहीं अधिक तेजस्वी हैं। मैं उपयुक्त श्लोकों से भगवान (बुद्ध) की स्तुति उनके समक्ष करूं।"

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उनसे कहा: "मुझे प्रेरणा मिली है। हे भगवान (बुद्ध)! मुझे प्रेरणा मिली है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)!"
[बुद्ध:] "तो अपनी प्रेरणा व्यक्त कीजिए, वंगीसा।" तब पूज्य वंगीसा ने उपयुक्त श्लोक से
भगवान (बुद्ध) की स्तुति की : "जैसे चंद्रमा निर्मल आकाश में चमकता है; जैसे सूर्य निर्मल चमकता है। वैसे ही, हे अंगिरसा, हे महान ऋषि; अपनी महिमा से समस्त संसार को प्रकाशित कीजिए।"

---

220. वांगिसा
एक बार पूज्य वंगीसा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य वंगीसा ने हाल ही में अरहंत पद प्राप्त किया था और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) के सुख का अनुभव करते हुए उन्होंने ये श्लोक पढ़े: 528

“कविता में मग्न होकर मैं विचरण करता था; गाँव-गाँव, नगर-नगर।
तब मैंने बुद्ध के दर्शन किए; और मेरे भीतर आस्था जागृत हुई। 529

“उन्होंने मुझे धम्म (मार्ग, नियम); स्कंध (संस्कृत संस्कृत संस्कृत संस्कृत संस्कृत संस्कृत स्कंध), इंद्रिय क्षेत्र और धातु (धातु) का उपदेश दिया।
उनसे धम्म सुनकर मैं संन्यासी जीवन में चला गया।”

"सचमुच, अनेकों के कल्याण के लिए; ऋषि ने ज्ञान प्राप्त किया।
भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए; जिन्होंने निश्चित मार्ग को पा लिया है और देख लिया है। 530

"मेरे लिए सचमुच स्वागत योग्य रहा है; बुद्ध की उपस्थिति में मेरा आना।
तीनों ज्ञान प्राप्त हो गए हैं; बुद्ध की शिक्षा पूरी हो गई है।

अब मैं अपने पिछले निवासों को जानता हूँ; दिव्य दृष्टि शुद्ध हो गई है।
त्रिविध ज्ञान और आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) से युक्त; दूसरों के मन को जानने में कुशल।" 531

सम्युत्त 9: वनों में जुड़े प्रवचन (वनसम्युत्त)
221. एकांतवास (विवेक)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। उस समय, जब वह भिक्षु दिन भर के विश्राम के लिए गया, तो वह गृहस्थ जीवन से संबंधित बुरे (अकुशल, संस्कृत में अकुशल) विचारों में डूबा रहा। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने उस भिक्षु पर दया करते हुए, उसका भला चाहते हुए, और उसमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से, उसके पास जाकर श्लोकों में उससे कहा:

"एकांत की इच्छा से तुम जंगल में आए;
फिर भी तुम्हारा मन बाहरी विचारों से भरा है।
हे मनुष्य, लोगों के प्रति अपनी इच्छा को दूर करो;
तब तुम सुखी और कामवासना से मुक्त हो जाओगे। 532

तुम्हें असंतोष का त्याग करना होगा, ध्यानमग्न होना होगा; हम तुम्हें अच्छे मार्ग की याद दिलाते हैं।
धूल भरी खाई को पार करना वास्तव में कठिन है; कामुक धूल को अपने ऊपर हावी न होने दें। 533

"जैसे कोई पक्षी मिट्टी से लथपथ होकर अपने
ऊपर चिपकी धूल झाड़ देता है,
वैसे ही एक भिक्षु, परिश्रमी और ध्यानमग्न होकर, अपने ऊपर चिपकी धूल झाड़ देता है।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर उस भिक्षु में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न हुआ।

---

222. उत्तेजन (उपथाना)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहा था। उस समय जब वह भिक्षु दिनभर विश्राम करने के बाद सो गया। 534 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें परिश्रम की भावना जगाने के लिए वह उसके पास आया और श्लोकों में उससे कहा,

"उठो, भिक्षु, क्यों लेटे हो? तुम्हें नींद की क्या आवश्यकता है?
पीड़ित, दुखी, बाण से ग्रस्त व्यक्ति को भला नींद कैसे आ सकती है?

अपने भीतर उस विश्वास को पोषित करो, जिसके साथ तुमने गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यास लिया था
; आलस्य के वश में मत आओ।"

[भिक्षु:] 535
"इंद्रिय सुख क्षणभंगुर और अस्थिर होते हैं; यद्यपि मंदबुद्धि व्यक्ति उनमें लीन रहता है।"
जब वह मुक्त है, बंधनों में विरक्त है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें?

जब इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) के निवारण से; और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) के पारगमन से,
वह ज्ञान शुद्ध हो गया है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें? 536

जब अज्ञान को ज्ञान से तोड़कर; और विकारों के नाश (खयाय/क्षय) से,
वह दुःख रहित, निराशा से परे है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें?

जब वह ऊर्जावान और दृढ़ है, अपने प्रयासों में हमेशा दृढ़ है,
निर्वाण प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है; तो दीक्षित को क्यों परेशान करें? 537

---

223. कस्सपगोट्टा
एक बार पूज्य कस्सपगोत्ता कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय, जब वे दिन भर के विश्राम के लिए चले गए, तो उन्होंने एक शिकारी को उपदेश दिया। 538 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता (देवदूत) को पूज्य कस्सपगोत्ता पर दया आई, उनका भला चाहा और उनमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से वे उनके पास गए और छंदों में उनसे कहा:

"यह भिक्षु मुझे मंदबुद्धि लगता है; जो समय से पहले
ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों में भटकते हुए शिकारी को उपदेश दे रहा है; वह अल्प ज्ञान से रहित है, समझ से खाली है।

वह सुनता तो है पर समझता नहीं; देखता तो है पर ध्यान नहीं देता;
यद्यपि धम्म (धर्म, मार्ग) का उपदेश दिया जा रहा है; वह नासमझ है, अर्थ नहीं समझ पाता।"

"हे कस्सपा, यदि तुम दस दीपक भी उसके समक्ष ले आओ,
तब भी वह रूप-रूप नहीं देख पाएगा; क्योंकि उसके पास देखने की आंखें नहीं हैं।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर पूज्य कस्सपागोत्ता को एक अत्यावश्यक कार्य करने की आवश्यकता महसूस हुई।

---

224. एक संख्या (साम्बाहुला)
एक बार कई भिक्षु कोसलवासियों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। वर्षा ऋतु समाप्त होने के बाद, तीन माह बीत जाने पर वे भिक्षु भ्रमण पर निकल पड़े। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने उन भिक्षुओं को न देखकर विलाप करते हुए यह श्लोक पढ़ा:

"आज मुझे असंतोष दिखाई देता है;
जब मैं यहाँ इतने सारे रिक्त स्थान देखता हूँ।
गौतम के शिष्य कहाँ चले गए;
वे ज्ञान से परिपूर्ण प्रतिभाशाली वक्ता?" 539

यह सुनकर एक अन्य देवता ने श्लोक में उत्तर दिया:

"वे मगध गए हैं, कोसल गए हैं, और कुछ वज्जीय भूमि में हैं।
बंधनों से मुक्त हिरणों की तरह; भिक्षु बिना निवास के निवास करते हैं।" 540

---

225. आनंद
एक बार पूज्य आनंद कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद गृहस्थों को उपदेश देने में अत्यधिक व्यस्त थे। 541 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता (देवदूत) को पूज्य आनंद पर दया आई, उनका भला चाहा और उनमें तत्परता की भावना जगाने के लिए वे उनके पास आए और श्लोक में उनसे कहा,

"वृक्ष की तलहटी में जंगल में प्रवेश करके, आपने अपने हृदय में निर्वाण प्राप्त कर लिया है।
हे गौतम, ध्यान कीजिए और आलसी मत बनिए! इस शोर-शराबे से आपको क्या लाभ होगा?" 542

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर पूज्य आनंद में तत्परता की भावना उत्पन्न हुई।

नोट: आनंद भी बुद्ध की तरह गौतम वंश से संबंधित थे।

---

226. अनुराधा
एक बार पूज्य अनुराधा कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहे थे। तभी तावतिंसा स्वर्ग की एक देवी (देवदूत), जलिनी, जो पूज्य अनुराधा की पूर्व संगिनी थीं, उनके पास आईं और उनसे श्लोक में कहा: 543

"अपना ध्यान उस लोक की ओर लगाओ; जहाँ तुम अतीत में
तावतिंसा देवों (देवदूतों) के बीच निवास करते थे; जिनके लिए सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं।"

---

227. नागदत्ता
(भिक्खुनी उप्पलावन्ना द्वारा अनुवादित)

मैंने ऐसा सुना। एक समय पूज्य नागदत्त कोसल देश के एक वन क्षेत्र में रहते थे।
उस समय, पूज्य नागदत्त गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश करते थे और बहुत देर से लौटते थे।
तब उस वन क्षेत्र में रहने वाले एक देवता ने करुणावश, पश्चाताप जगाने की इच्छा से, पूज्य नागदत्त के पास
जाकर ये श्लोक कहे:

"नागदत्त, गाँव में प्रवेश करो; सही समय पर और जल्दी लौट आओ।
गृहस्थों के साथ अधिक समय तक संगति मत करो; मुझे खेद है, नागदत्त, सुख-दुख के भावों को साझा मत करो

; परिवारों के साथ संगति एक बंधन है
; मृत्यु का राजा शक्तिशाली है; उसके क्षेत्र में प्रवेश मत करो।"

तब देवता द्वारा पश्चाताप जगाए जाने पर पूज्य नागदत्त चिंतित हो गए।

---

228. कुलाघरानी
(भिक्खुनी उप्पलावन्ना द्वारा अनुवादित)

मैंने ऐसा सुना। एक समय कोसल देश के एक वन क्षेत्र में एक भिक्षु रहते थे।
उस समय वे अपना बहुत सारा समय एक परिवार के पास जाने में व्यतीत करते थे।
तब उस वन क्षेत्र में रहने वाली एक देवी ने करुणावश, पश्चाताप जगाने की इच्छा से, उस कुख्यात परिवार की स्त्री का रूप धारण किया और उस भिक्षु के पास गईं।
पास आकर उन्होंने उस भिक्षु से ये श्लोक कहे:

"सारी रात नदी के किनारे का चिंतन करो। लोग कहते हैं,
वह नदी के किनारे क्यों ऊपर-नीचे जा रहा है?

अनेक बाधक ध्वनियाँ हैं
जिन्हें तपस्वी को सहन करना चाहिए।
उन ध्वनियों से विचलित या थकना मत।

वन के जंगली जानवर ध्वनियों से कांपते हैं।
उन ध्वनियों को अनदेखा करो, वे तुम्हारे दायरे में नहीं आतीं।"

---

229. वज्जिअन राजकुमार (वज्जिपुत्त)
एक बार एक भिक्षु, जो वज्जी वंश का राजकुमार था, वैशाली के एक घने जंगल में निवास कर रहा था। उस समय वैशाली में रात भर चलने वाला एक उत्सव चल रहा था। वैशाली से आती वाद्ययंत्रों, घंटों और संगीत की कर्कश ध्वनि सुनकर वह भिक्षु विलाप करने लगा। 549 उस अवसर पर उसने यह श्लोक पढ़ा:

"हम जंगल में अकेले रहते हैं;
जंगल में त्यागे गए लट्ठे के समान।
इस तेजस्वी रात्रि में;
हमसे बदतर स्थिति में कौन है?"

तब उस घने जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें तत्परता की भावना जगाने के लिए वह उसके पास आया और श्लोक में उससे कहा:

"जैसे तुम जंगल में अकेले रहते हो; जंगल में त्यागे गए लट्ठे के समान।
बहुत से लोग तुमसे ईर्ष्या करते हैं; जैसे नरकवासी स्वर्ग जाने वालों से ईर्ष्या करते हैं।" 550

तब उस भिक्षु ने, उस देवता द्वारा प्रेरित होकर, एक तात्कालिकता का भाव प्राप्त किया।

---

230 सज्जया पाठ करना
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। उस समय वह भिक्षु पाठ में अत्यधिक तल्लीन था, लेकिन बाद में उसने विश्राम किया और मौन धारण किया। 551 तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने, उस भिक्षु को धम्म का पाठ करते हुए न सुनकर, उसके पास जाकर श्लोकों में उससे कहा,

"भिक्षु, आप अन्य भिक्षुओं के साथ संगति में रहकर धम्म-श्लोकों का पाठ क्यों नहीं करते?
धम्म का पाठ करने से आत्मविश्वास बढ़ता है; इसी जीवन में पाठ करने वाले को स्तुति प्राप्त होती है।"

[भिक्षु:]
"पूर्व में मुझे धम्म-श्लोकों का प्रेम था; जब तक मैंने वैराग्य प्राप्त नहीं किया था।
परन्तु जब से मैंने वैराग्य प्राप्त किया है; [मैं उसमें लीन रहता हूँ] जिसे भले लोग
'अंतिम ज्ञान द्वारा सब कुछ त्याग देना' कहते हैं; जो कुछ भी देखा, सुना या अनुभव किया जाता है।" 552

---

231. हानिकारक विचार (अकुसलवित्तक सं. अकुशल-वितर्क)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में निवास कर रहा था। उस समय जब वह भिक्षु दिनभर के विश्राम के लिए चला गया, तो वह लगातार बुरे और हानिकारक विचारों में उलझा रहा, अर्थात् कामुकता, द्वेष और हानि पहुँचाने के विचार। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से वह उसके पास आया और श्लोकों में उससे कहा:

"ध्यानहीन मन लगाने के कारण, हे महोदय, आप अपने विचारों से ग्रस्त हैं। ध्यानहीन
मार्ग को त्यागकर, आपको ध्यानपूर्वक सोचना चाहिए।

अपने विचारों को गुरु पर आधारित करके।" धम्म (मार्ग, नियम), संघ (भाईचारा) और अपने सद्गुणों पर चलकर,
आप निश्चय ही आनंद की प्राप्ति करेंगे; तथा परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) भी प्राप्त करेंगे।
फिर जब आप आनंद से परिपूर्ण हो जाएंगे; तो आप दुखों का अंत कर देंगे।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर उस भिक्षु में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न हुआ।

---

232. मध्याह्न (मज्झान्हिका सं. मध्यानिका)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। तभी उस जंगल में निवास करने वाला देवदूत उस भिक्षु के पास आया और उसके सामने यह श्लोक बोला:

"जब दोपहर होती है, और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल जंगल भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना भयानक लगता है!"

[भिक्षु:]
790 "जब दोपहर होती है; और पक्षी बैठ जाते हैं, तब
विशाल जंगल भी गुनगुनाता है; यह मुझे कितना आनंददायक लगता है!"

---

233. इंद्रियों में शिथिल (पकतिन्द्रिय)
एक बार कोसलों के बीच एक घने जंगल में कई भिक्षु निवास कर रहे थे। वे बेचैन, अहंकारी, आत्ममुग्ध, कठोर वाणी वाले, बेतरतीब बातों वाले, भ्रमित, अपूर्ण समझ वाले (संपजन्न), समाधि अवस्था में नहीं, विचलित और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण खो चुके थे। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता ने उन भिक्षुओं पर दया करते हुए, उनका भला चाहते हुए और उनमें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से उनके पास जाकर श्लोकों से उन्हें संबोधित किया:

"पहले भिक्षु सुखी जीवन व्यतीत करते थे; गौतम के शिष्य।
वे इच्छाहीन होकर भिक्षा मांगते थे; वे इच्छाहीन होकर अपने आवासों का उपयोग करते थे।
संसार की अनित्यता को जानकर; उन्होंने दुखों का अंत किया।

परन्तु अब वे गाँव के मुखियाओं की तरह; अपने भरण-पोषण को कठिन बना लेते हैं।
वे खाते हैं, खाते हैं और फिर लेट जाते हैं; दूसरों के घरों में आसक्त।

"संघ को आदरपूर्वक प्रणाम करने के बाद, मैं यहाँ केवल कुछ के बारे में बात कर रहा हूँ:
वे त्यागे हुए हैं, बिना रक्षक के; वे मृतकों के समान हो गए हैं।

मेरा कथन आलस्य में रहने वालों (पमादा) के संदर्भ में है।

जहाँ तक सजगता में रहने वालों (अपमादा) की बात है; मैं उन्हें विनम्रतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।"

तब उस देवता द्वारा प्रेरित होकर उन भिक्षुओं में तत्परता की भावना उत्पन्न हुई। <440>

---

234. गंध का चोर (गंधत्थेना)
एक बार एक भिक्षु कोसलों के बीच एक घने जंगल में रह रहा था। उस समय, भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर वह भिक्षु एक तालाब में उतरकर लाल कमल को सूंघता था। तब उस जंगल में निवास करने वाले देवता को उस भिक्षु पर दया आई, उसका भला चाहा और उसमें कुछ करने की प्रेरणा जगाने के लिए वह उसके पास गया और उससे श्लोक में कहा: 554

"जब तुम इस कमल को सूंघते हो; यह वस्तु तुम्हें नहीं दी गई है।
यह चोरी का एक कारण है; हे महोदय, तुम गंध के चोर हो।"

[भिक्षु:]
"मैं न लेता हूँ, न नुकसान पहुँचाता हूँ; मैं कमल को दूर से सूंघता हूँ;
तो आप किस कारण से कहते हैं; कि मैं गंध का चोर हूँ? 555

"जो कमल की डंठलों को उखाड़ता है; जो फूलों को नुकसान पहुँचाता है,
जिसका व्यवहार इतना कठोर है; उससे बात क्यों नहीं की जाती?" 556 [205]

[देवता:]
"जब कोई व्यक्ति कठोर और उग्र होता है; किसी दुपट्टे की तरह बुरी तरह मैला होता है, तो
मुझे उससे कुछ नहीं कहना होता; परन्तु मुझे तुमसे ही बात करनी चाहिए।

क्योंकि जो व्यक्ति निष्कलंक होता है; जो सदा पवित्रता की खोज में रहता है। उसके लिए
बुराई का एक बाल बराबर अंश भी बादल के समान बड़ा प्रतीत होता है।"

[भिक्षु:]
"हे आत्मा, निश्चय ही तुम मुझे समझते हो; और मुझ पर दया करते हो।
हे आत्मा, जब भी तुम ऐसा कोई कर्म देखो, मुझसे फिर बात करना।"

[देवता:]
"हम तुम्हारे सहारे नहीं रहते; न ही तुम्हारे किराए के सेवक हैं।
हे भिक्षु, तुम्हें स्वयं जानना चाहिए; अच्छे मार्ग (सुगति) का मार्ग।" 557

तब उस भिक्षु को, उस देवता द्वारा प्रेरित होकर, एक तात्कालिकता का भाव प्राप्त हुआ।

सम्युत्त 10: यक्षों/आत्माओं के साथ संबंधित प्रवचन (यक्षसम्युत्त)
235. इंदका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इन्द पर्वत की चोटी पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे, जो यक्ष इन्दक का निवास स्थान था। 558 तब यक्ष इन्दक भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोकों में पूछा,

“जैसा कि बुद्ध कहते हैं कि रूप आत्मा नहीं है; तो फिर यह शरीर कैसे प्राप्त होता है?
हड्डियाँ और जिगर कहाँ से आते हैं? गर्भ में जन्म कैसे होता है?” 559

[भगवान (बुद्ध):]
“पहले कलला होता है; कलला से अब्बुद उत्पन्न होता है;

अब्बुद से पेसी उत्पन्न होता है; पेसी से घन उत्पन्न होता है; घन
से अंग निकलते हैं; सिर के बाल, शरीर के बाल और नाखून।

और जो कुछ भी माता खाती है; जो भोजन और पेय वह ग्रहण करती है,
उसी से गर्भ में पलने वाले जीव का पालन-पोषण होता है; माता के गर्भ में पलने वाले जीव का।" 560

---

236. सक्कनामाका
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। तब यक्ष सक्कनामक भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे श्लोक में कहा,

"सभी बंधनों को त्यागकर, पूर्णतः मोक्ष प्राप्त कर चुके व्यक्ति के समान ,
हे तपस्वी, तुम्हारे लिए यह उचित नहीं है कि तुम दूसरों को उपदेश दो।" 561

[भगवान (बुद्ध):]
"हे सक्क, यदि किसी कारणवश किसी से घनिष्ठता उत्पन्न हो जाए, तो
बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के प्रति करुणा से अपना मन विचलित नहीं करना चाहिए।

परन्तु यदि वह निर्मल और शुद्ध मन से दूसरों को उपदेश दे, तो
वह अपनी करुणा और सहानुभूति से बंध नहीं जाता।" 562

---

237. सुसिलोमा
एक बार भगवान (बुद्ध) गया में तंकिता शय्या पर निवास कर रहे थे, जो यक्ष सुसिलोमा का निवास स्थान था। 563 उस समय यक्ष खरा और यक्ष सुसिलोमा भगवान (बुद्ध) से कुछ दूरी पर से गुजर रहे थे। यक्ष खरा ने यक्ष सुसिलोमा से कहा, "वह एक तपस्वी है।" सुसिलोमा ने कहा,
"वह तपस्वी नहीं है; वह पाखंडी तपस्वी है। 564 मैं शीघ्र ही पता लगा लूंगा कि वह तपस्वी है या पाखंडी तपस्वी।"

तब यक्ष सुसिलोमा भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनके ऊपर झुक गया। भगवान (बुद्ध) पीछे हट गए। तब यक्ष सुसिलोमा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "क्या आप मुझसे डरते हैं, तपस्वी?" सुसिलोमा ने कहा,
"मैं तुमसे नहीं डरता, मित्र। बस तुम्हारा स्पर्श अशुभ है।" 565
"मैं तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ, हे तपस्वी। यदि तुम उत्तर नहीं दोगे, तो मैं तुम्हें पागल कर दूँगा या तुम्हारा हृदय चीर दूँगा या तुम्हारे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक दूँगा।"
"हे मित्र, इस संसार में, इसके देवों, शैतान और ब्रह्मा सहित, इस पीढ़ी में, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवों और मनुष्यों सहित, मुझे कोई ऐसा नहीं दिखता जो मुझे पागल कर सके या मेरा हृदय चीर सके या मेरे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक सके। परन्तु जो चाहो पूछ लो, मित्र।" "

काम (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) का स्रोत क्या है?
असंतोष (नंदी/आनंद) और भय कहाँ से उत्पन्न होते हैं?
किससे उत्पन्न होकर मन के विचार
[किसी को इधर-उधर उछालते हैं] जैसे लड़के कौवे को उछालते हैं?" 566

[भगवान (बुद्ध):]
809 "काम (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) का स्रोत यहीं है;
इसी से असंतोष, आनंद (नंदी/आनंद) और भय उत्पन्न होते हैं;
इसी से उत्पन्न होकर मन के विचार
[मन को इधर-उधर उछालते हैं] जैसे लड़के कौवे को उछालते हैं। 567

"स्नेह से उत्पन्न, स्वयं से उत्पन्न, बरगद के वृक्ष की तने से निकली शाखाओं के समान;
अनेक प्रकार से, इंद्रिय सुखों से चिपके हुए (उपादान संस्कृत: आसक्ति), जैसे मालुवा लता जंगल में फैली होती है। 568

"जो इनके स्रोत को समझते हैं,
वे इसे दूर करते हैं - हे यक्ष, सुनो!
वे इस बाढ़ को पार कर लेते हैं, जिसे पार करना इतना कठिन है
, क्योंकि इससे पहले कोई नया जन्म नहीं हुआ है।" 569

---

238. मणिभद्दा
एक बार भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच मणिमलका मंदिर में निवास कर रहे थे, जो यक्ष मणिभद्ध का निवास स्थान था। तब यक्ष मणिभद्ध भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनकी उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए सदा अच्छा होता है, ध्यानमग्न व्यक्ति सुख में समृद्ध होता है।
ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए प्रतिदिन बेहतर होता जाता है, और वह शत्रुता से मुक्त हो जाता है।" 570

[भगवान (बुद्ध):]
"ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए सदा अच्छा होता है, ध्यानमग्न व्यक्ति सुख में समृद्ध होता है।
ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए प्रतिदिन बेहतर होता जाता है, परन्तु वह शत्रुता से मुक्त नहीं होता।

जिसका मन दिन-रात अहिंसा में आनंदित रहता है,
जो सभी प्राणियों के प्रति प्रेम रखता है, उसका किसी से कोई शत्रुता नहीं होती।" 571

---

239. सानू
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक महिला अनुयायी का पुत्र सानु था, जिस पर यक्ष का साया था। 572 तब उस महिला अनुयायी ने विलाप करते हुए ये श्लोक पढ़े:

“जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, 573 जो उपोसथ पर्व के
आठों दिन पूर्ण रूप से मनाते हैं; चौदहवें या पंद्रहवें दिन,

पखवाड़े के आठवें दिन और विशेष तिथियों के दौरान, उनके
आसपास यक्ष क्रीड़ा नहीं करते; मैंने अरहंतों से यही सुना है।
परन्तु आज मैं स्वयं देख रही हूँ; यक्ष सानु को परेशान कर रहे हैं।”

[सानू में प्रवेश करने वाला यक्ष:]
"उन लोगों के साथ जो पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं; जो उपोसथ दिनों का पालन करते हैं,
आठों कारकों में पूर्ण; चौदहवें या पंद्रहवें दिन,
और पखवाड़े के आठवें दिन; और विशेष अवधियों के दौरान।
यक्ष इधर-उधर क्रीड़ा नहीं करते; तुमने अरहंतों से जो सुना है वह अच्छा है।

"जब सानू जाग जाए तो उसे बताओ; यक्षों का यह आदेश;
कोई बुरा कर्म मत करो; चाहे खुलेआम हो या गुप्त रूप से।

यदि तुम कोई बुरा कर्म करो; या यदि तुम अभी कर रहे हो।
तुम कष्टों से मुक्त नहीं होगे; चाहे तुम उड़कर भाग जाओ।" 574

[सानू:] 575
"वे रोते हैं, माँ, मृतकों के लिए; या किसी ऐसे जीवित व्यक्ति के लिए जो दिखाई नहीं देता।
जब तुम देखती हो, माँ, कि मैं जीवित हूँ; हे माँ, तुम मेरे लिए क्यों रोती हो?"

[सानू की माँ:]
"वे रोते हैं, हे पुत्र, मृतकों के लिए; या किसी ऐसे जीवित व्यक्ति के लिए जो दिखाई नहीं देता;
लेकिन जब कोई घर लौटता है; इंद्रिय सुखों का त्याग करने के बाद;
वे इसके लिए भी रोते हैं, मेरे बेटे; क्योंकि जीवित होते हुए भी वह वास्तव में मर चुका है। 576

"मेरे प्रिय, धधकते अंगारों से निकाला गया, तुम धधकते अंगारों में डूबना चाहते हो;
मेरे प्रिय, नरक से निकाला गया, तुम नरक में डूबना चाहते हो।" 577

"आगे बढ़ो, तुम्हारा भाग्य अच्छा हो! हम अपना शोक किससे व्यक्त करें?
आग से बचाई गई वस्तु होने के बावजूद; तुम फिर से जलना चाहते हो।" 578

---

240. पियांकरा (सं. प्रियंकारा)
एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य अनुराधा भोर होते ही उठकर धर्म के श्लोकों का पाठ कर रहे थे। तभी यक्षिणी पियांकरा की माता ने अपने छोटे बच्चे को चुप कराते हुए कहा: 579

826 "पियांकर, कोई आवाज मत करो। एक भिक्षु धर्म के श्लोकों का पाठ कर रहा है।
धर्म के श्लोक को समझकर हम अपने कल्याण के लिए अभ्यास कर सकते हैं।

हमें जीवों को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए; हमें जानबूझकर झूठ नहीं बोलना चाहिए।
हमें शील में स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए; शायद हम पिशाच लोक से मुक्त हो जाएंगे।"

---

241. पुनाबासु
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) निर्वाण के विषय में धर्म प्रवचन देकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और उन्हें आनंदित कर रहे थे। वे भिक्षु उत्सुकतापूर्वक धर्म (मार्ग/नियम) सुन रहे थे, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान लगा रहे थे। तभी पुणब्बासु की माता ने अपने छोटे बच्चों को चुप कराते हुए कहा: 580

"शांत रहो, उत्तरिका, शांत रहो, पुणब्बासु!
मैं धर्म सुनना चाहती हूँ; परम बुद्ध के धर्म का।

जब भगवान (बुद्ध) निर्वाण, सभी बंधनों से मुक्ति (मोक्ष) की बात करते हैं, तो
मेरे भीतर इस धर्म के प्रति गहरा स्नेह उत्पन्न हो गया है।"

"संसार में अपना पुत्र प्रिय है; संसार में अपना पति प्रिय है;
परन्तु मेरे लिए इस धम्म की खोज; इन सबसे भी अधिक प्रिय हो गई है।

क्योंकि न तो अपना पुत्र और न ही पति; चाहे प्रिय ही क्यों न हों, दुखों से मुक्ति दिला सकते हैं,
जैसे सच्चे धम्म को सुनने से जीवात्माओं के दुखों से मुक्ति मिलती है। 581

"दुखों से भरे इस संसार में, वृद्धावस्था और मृत्यु के बंधनों में जकड़े हुए,
मैं उस धम्म को सुनना चाहता हूँ; जिसे बुद्ध ने पूर्णतः ग्रहण किया था।
वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति के लिए; इसलिए चुप रहो, पुनाबासु!" 582

[पुनाबासु:]
"प्रिय माता, मैं कुछ नहीं बोल रहा हूँ; यह उत्तर भी मौन है।
केवल धम्म पर ध्यान दो; क्योंकि सच्चे धम्म को सुनना सुखद है।
क्योंकि हमने सच्चे धम्म को नहीं जाना है; इसलिए हम दुखी जीवन जी रहे हैं, माता।

"वह प्रकाश के निर्माता हैं; भ्रमित देवों और मनुष्यों के लिए;
प्रबुद्ध होकर, अपना अंतिम शरीर धारण किए हुए; दृष्टिवान ही धम्म का उपदेश देते हैं।

[पुनब्बासु की माता:]
"यह सौभाग्य है कि मेरा पुत्र इतना बुद्धिमान हो गया है; जिसे मैंने जन्म दिया और अपनी गोद में पाला-पोसा।
मेरा पुत्र परम प्रबुद्ध व्यक्ति के शुद्ध धम्म से प्रेम करता है।

पुनब्बासु, प्रसन्न रहो! आज मैं अंततः प्रकट हुई हूँ।
हे उत्तरा, मेरी बात भी सुनो; महान सत्य प्रकट होते हैं!" 583

---

242. सुदत्ता
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह के शीतल वन में निवास कर रहे थे। उस समय गृहस्थ अनाथपिंडिका किसी कार्य से राजगृह आए थे। 584 उन्होंने सुना,
“कहा जाता है कि संसार में एक बुद्ध प्रकट हुए हैं!” वे तुरंत भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने जाना चाहते थे, लेकिन उनके मन में यह विचार आया, “आज भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने का उचित समय नहीं है। मैं कल सुबह जल्दी भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने जाऊंगा।” वे बुद्ध का ध्यान लगाकर लेट गए और रात में तीन बार सुबह समझकर उठे। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका श्मशान घाट के द्वार के पास पहुँचे। किसी अमानव ने द्वार खोला। फिर, जब गृहस्थ अनाथपिंडिका नगर से निकल रहे थे, तभी प्रकाश गायब हो गया और अंधेरा छा गया। उनके मन में भय, कंपकंपी और आतंक उत्पन्न हुआ और वे वापस लौटना चाहते थे। लेकिन अदृश्य यक्ष शिवक ने घोषणा की: 585

"एक लाख हाथी, एक लाख घोड़े, एक लाख खच्चर-चालित रथ,
एक लाख कन्याएँ; आभूषणों और कानों की बालियों से सजी हुई;
एक कदम आगे बढ़ने के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं हैं। 586 "

आगे बढ़ो, गृहस्थ! आगे बढ़ो, गृहस्थ!
आगे बढ़ना तुम्हारे लिए बेहतर है, पीछे मुड़ना नहीं।"

तब अंधकार छंट गया और गृहस्थ अनाथपिंडिका के सामने प्रकाश प्रकट हुआ, और उसके मन में उत्पन्न भय, कंपकंपी और आतंक शांत हो गया।

दूसरी बार... (इस पुनरावृति में पहले के श्लोक शामिल हैं)
... तीसरी बार गृहस्थ अनाथपिंडिका के सामने प्रकाश छंट गया और अंधकार छा गया। उसके मन में भय, कंपकंपी और आतंक उत्पन्न हुआ और वह पीछे मुड़ना चाहता था। लेकिन तीसरी बार अदृश्य यक्ष शिवक ने घोषणा की:

"एक लाख हाथियों के बराबर... एक कदम आगे बढ़ने से।"

"आगे बढ़ो, गृहस्थ! आगे बढ़ो, गृहस्थ! आगे बढ़ना
तुम्हारे लिए बेहतर है, पीछे मुड़ना नहीं।"

तब अंधकार छंट गया और गृहस्थ अनाथपिंडिका को प्रकाश दिखाई दिया, और उसके मन में उत्पन्न भय, कंपकंपी और आतंक शांत हो गया।

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका शीतल वन में भगवान (बुद्ध) के पास गए। उस समय भगवान (बुद्ध) भोर के समय उठकर खुले में टहल रहे थे। भगवान (बुद्ध) ने दूर से गृहस्थ अनाथपिंडिका को आते देखा। वे चबूतरे से नीचे उतरे, तैयार आसन पर बैठ गए और गृहस्थ अनाथपिंडिका से कहा: "आओ, सुदत्त।" 587

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका ने यह सोचकर कि "भगवान (बुद्ध) ने मुझे मेरे नाम से पुकारा है," [उत्साहित और प्रसन्न होकर], 588 वहीं पर भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, मुझे आशा है, कि भगवान (बुद्ध) ने अच्छी नींद ली।

कि भगवान (बुद्ध) ने अच्छी नींद ली। [भगवान (बुद्ध):]
"वह ब्राह्मण जो पूरी तरह तृप्त हो चुका है, वह सदा ही चैन से सोता है।
जो इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं रहता; जिसका हृदय शांत है, जो किसी भी प्रकार की प्राप्ति से रहित है (उपाधि)।

सभी आसक्तियों को त्यागकर, हृदय से चिंताओं को दूर करके,
वह शांत मन से सोता है; उसे मन की शांति प्राप्त हो जाती है।" 589

---

243. सुक्का (1)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भिक्षुणी सुक्का, एक विशाल सभा से घिरी हुई, धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दे रही थीं। तब एक यक्ष, जिसे भिक्षुणी सुक्का पर पूर्ण विश्वास था, राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक घूमकर इन श्लोकों का पाठ करने लगा:

“राजगृह में इन लोगों को क्या हो गया है? ये ऐसे सो रहे हैं मानो इन्होंने मदिरा पी ली हो।
ये सुक्का की शरण में क्यों नहीं आते; जब वह अमरता (निर्वाण) का उपदेश देती हैं? 590

“परन्तु ज्ञानी तो मानो उसे पी जाते हैं; वह [धर्म] अप्रतिरोध्य है।
अमृतमय, पौष्टिक; जैसे यात्री बादल को पीते हैं।” 591

---

244. सुक्का (2)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय एक गृहस्थ अनुयायी ने भिक्षुणी सुक्का को भोजन कराया। तब एक यक्ष, जिसे भिक्षुणी सुक्का पर पूर्ण विश्वास था, राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक घूमकर यह श्लोक बोला:

"उसने बहुत पुण्य अर्जित किया है; वास्तव में यह गृहस्थ अनुयायी बुद्धिमान है।
जिसने सुक्का को भोजन कराया, वह सभी बंधनों से मुक्त हो गया।" 592

---

245. सिरा
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय एक गृहस्थ अनुयायी ने भिक्षुणी चिरा को एक वस्त्र भेंट किया। तब एक यक्ष, जिसे चिरा पर पूर्ण विश्वास था, राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक घूमकर यह श्लोक बोला:

"इसने बहुत पुण्य अर्जित किया है। वास्तव में यह गृहस्थ अनुयायी बुद्धिमान है।
जिसने चिरा को वस्त्र भेंट किया, वह सभी बंधनों से मुक्त हो गया है।"

---

246. अलावाका
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) अलवी में निवास कर रहे थे, जो यक्ष अलवक का निवास स्थान था। 593 तब यक्ष अलवक भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:
"निकल जाओ, तपस्वी!"
"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह निकल गया। 594
"अंदर आ जाओ, तपस्वी।"
"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह अंदर आ गया।
दूसरी बार... तीसरी बार यक्ष अलवक ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "निकल जाओ, तपस्वी!"
"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह निकल गया। "अंदर आ जाओ, तपस्वी।"

"ठीक है, मित्र," भगवान (बुद्ध) ने कहा और वह अंदर आ गया।
चौथी बार यक्ष अलवक ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"निकल जाओ, तपस्वी।"
"मैं बाहर नहीं जाऊँगा, मित्र। जो करना है करो।"
"मैं तुमसे एक प्रश्न पूछूँगा, तपस्वी। यदि तुम उत्तर नहीं दोगे, तो मैं तुम्हें पागल कर दूँगा या तुम्हारा हृदय चीर दूँगा या तुम्हारे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक दूँगा।" 595
"मित्र, इस संसार में, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी में, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुझे कोई ऐसा नहीं दिखता जो मुझे पागल कर सके या मेरा हृदय चीर सके या मेरे पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक सके। परन्तु जो चाहो पूछो, मित्र।" 596

[अलावक:]
"यहाँ मनुष्य का सबसे बड़ा खजाना क्या है? किसका सही अभ्यास सुख देता है?
वास्तव में सबसे मधुर स्वाद क्या है? वह व्यक्ति कैसे जीता है जिसे सर्वश्रेष्ठ जीवन जीने वाला कहा जाता है?"

[भगवान (बुद्ध):]
"यहाँ आस्था ही मनुष्य का सबसे बड़ा खजाना है; धर्म (मार्ग, नियम) का सही पालन सुख लाता है;
सत्य वास्तव में सबसे मधुर स्वाद है; कहते हैं कि प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से जीने वाला ही सर्वश्रेष्ठ जीवन जीता है।" 597

[अलवक:]
"बाढ़ को कैसे पार किया जाए? उबड़-खाबड़ समुद्र को कैसे पार किया जाए?
दुख पर कैसे विजय प्राप्त की जाए? पवित्रता कैसे प्राप्त की जाए?"

[भगवान (बुद्ध):]
"आस्था से बाढ़ पार की जाती है; सजगता (अप्पमदा) से उबड़-खाबड़ समुद्र को।
ऊर्जा (वीर्य) से दुख पर विजय प्राप्त की जाती है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पवित्रता प्राप्त की जाती है।" 598

[अलवक:]
"प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) कैसे प्राप्त की जाए? 599 धन कैसे पाया जाए?
ख्याति कैसे प्राप्त की जाए? मित्रों को अपने साथ कैसे बांधा जाए?
इस लोक से परलोक जाते समय शोक कैसे न किया जाए?"

[भगवान (बुद्ध):]
"अरहंतों के धर्म में आस्था रखने से; निर्वाण की प्राप्ति के लिए,
सीखने की इच्छा से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) प्राप्त होती है; यदि कोई सजग और चतुर हो। 600

"उचित कार्य करने से, कर्तव्यनिष्ठ; पहल करने वाला धनवान बनता है।
सत्यनिष्ठा से प्रशंसा मिलती है; उपहार देने से मित्रता बढ़ती है।
इस प्रकार मनुष्य शोक नहीं करता; इस लोक से परलोक में जाते समय। 601

"गृहस्थ जीवन का निष्ठावान साधक, जिसमें ये चार गुण निवास करते हैं -
सत्य, धर्म, दृढ़ता, उदारता, वह अपने प्राण त्यागते समय शोक नहीं करता।

अब, दूसरों से भी पूछो; अनेक तपस्वियों और ब्राह्मणों से।
क्या यहाँ सत्य, आत्मसंयम, उदारता और धैर्य से बढ़कर कुछ है?" 602

[अलावक:]
"अब मुझे यह प्रश्न अनेक तपस्वियों और ब्राह्मणों से क्यों पूछना चाहिए?
आज मैं समझ गया हूँ; भविष्य के जीवन से संबंधित अच्छाई को। 603

"वास्तव में, मेरे लिए ही बुद्ध आए थे; अलवी में निवास करने के लिए।
आज मैं समझ गया हूँ; जहाँ दान का बहुत फल मिलता है।

मैं स्वयं यात्रा करूँगा; गाँव-गाँव, नगर-नगर जाकर।
प्रबुद्ध पुरुष को और धर्म की उत्कृष्टता को प्रणाम करूँगा।" 604

संयुत्त 11: देवताओं/स्वर्गदूतों के राजा सक्क[इंद्र] के साथ जुड़े हुए प्रवचन (सक्कसमुत्त)
(i) प्रथम उप-अध्याय (सुवीरा)
247 सुविरा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने
आगे कहा:

"भिक्षुओं, एक बार अतीत में असुरों ने देवताओं पर आक्रमण किया। 605 तब देवताओं के स्वामी सक्का (इंद्र) ने युवा देव सुवीर को संबोधित करते हुए कहा: 'प्रिय सुवीर, ये असुर देवताओं पर आक्रमण कर रहे हैं। हे प्रिय सुवीर, जाओ और असुरों के विरुद्ध जवाबी आक्रमण करो।'" - 'जी, महाराज,' सुवीरा ने उत्तर दिया, परन्तु वह आलसी (पमादा) हो गया। 606 दूसरी बार सक्का ने सुवीरा को संबोधित किया...
परन्तु दूसरी बार सुवीरा आलसी हो गया। तीसरी बार सक्का ने सुवीरा को संबोधित किया... परन्तु तीसरी बार सुवीरा आलसी हो गया। तब, भिक्षुओं, सक्का ने सुवीरा को श्लोक में संबोधित किया:

"'जहाँ परिश्रम और प्रयास न करना पड़े; फिर भी सुख प्राप्त हो सके:
वहाँ जाओ, सुवीरा, और मुझे भी अपने साथ ले चलो।'

[सुवीरा:]
"'वह आलसी मनुष्य जो परिश्रम नहीं करता; और अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता,
फिर भी उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँ; मुझे यह वरदान दो, सक्का।' 607

[सक्का:]
"'वह जगह जहाँ आलसी मनुष्य जो परिश्रम नहीं करता; अनंत सुख प्राप्त कर सके:
वहाँ जाओ, सुवीरा, और मुझे भी अपने साथ ले चलो।'

[सुविरा:]
"हे परम देव, हमें सुख मिल सकता है; हे सक्का, बिना कर्म किए,
दुख रहित, निराशा रहित अवस्था; हे सक्का, मुझे यह वरदान प्रदान कीजिए।"

[सक्का:]
"यदि कहीं कोई ऐसा स्थान है; जहाँ बिना कर्म किए हानि न हो,
तो वही निर्वाण का मार्ग है; हे सुविरा, वहाँ जाइए
और मुझे भी अपने साथ ले जाइए।" 608

"इसलिए, भिक्षुओं, यदि देवों के स्वामी सक्का, अपने स्वयं के दिव्य पुण्य के फल पर विद्यमान, तावतिंसा देवों पर सर्वोच्च संप्रभुता और शासन का प्रयोग करते हुए, पहल और ऊर्जा शक्ति की प्रशंसा करने वाले हैं, तो आप लोगों के लिए, 609 जो इस सुस्पष्ट धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में दीक्षित (प्रविष्ट) हुए हैं, यहाँ कितना अधिक उपयुक्त होगा कि आप अभी तक अप्राप्त, अभी तक अप्राप्य, अभी तक अप्राप्त की गई उपलब्धि और अभी तक अप्राप्त की गई अनुभूति के लिए परिश्रम, संघर्ष और प्रयास करें।"

---

248. सुसीमा
(यह सूत्र पिछले सूत्र 247 के समान है, सिवाय इसके कि इसमें एक युवा देव (देवदूत) का नाम सुसीमा है।)

---

249. ध्वज का शिखर (धजग्गा सं. ध्वज-अग्र)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं!" 610
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, एक बार अतीत में देव और असुर युद्ध के लिए तैयार थे। तब देवों के स्वामी इंद्र ने तावतिंसा देवों को इस प्रकार संबोधित किया:

'प्रियजनों, जब देव युद्ध में लगे हों, यदि भय, घबराहट या आतंक उत्पन्न हो, तो उस समय मेरे ध्वज के शिखर की ओर देखना। क्योंकि जब आप मेरे ध्वज के शिखर की ओर देखेंगे, तो आपका सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो जाएगा। 611

"'यदि आप मेरे ध्वज के शिखर की ओर नहीं देख सकते, तो आपको देव-राजा प्रजापति के ध्वज के शिखर की ओर देखना चाहिए। जब तुम उसके ध्वज के शिखर को देखोगे, तो तुम्हारा सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो जाएगा।

"यदि तुम देवराज प्रजापति के ध्वज के शिखर को नहीं देख सकते, तो तुम्हें देवराज वरुण के ध्वज के शिखर को देखना चाहिए... यदि तुम देवराज वरुण के ध्वज के शिखर को नहीं देख सकते, तो तुम्हें देवराज ईशान के ध्वज के शिखर को देखना चाहिए... क्योंकि जब तुम उसके ध्वज के शिखर को देखोगे, तो तुम्हारा सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो जाएगा।" 612

"भिक्षुओं, जो लोग देवों के स्वामी सक्का, या देवराज प्रजापति, या देवराज वरुण, या देवराज ईशान के ध्वज के शिखर को देखते हैं, उनका सारा भय, घबराहट या आतंक दूर हो भी सकता है और नहीं भी। इसका क्या कारण है?" क्योंकि देवताओं के स्वामी सक्का, कामवासना (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह से रहित नहीं हैं; वे भयभीत, सजग, डरपोक और भागने में भी सक्षम हो सकते हैं।

"परन्तु, भिक्षुओं, मैं यह कहता हूँ: यदि तुम किसी वन में, किसी वृक्ष की तलहटी में, या किसी निर्जन कुटिया में गए हो और तुम्हारे मन में भय, घबराहट या आतंक उत्पन्न हो, तो उस समय मेरा स्मरण करना: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' भिक्षुओं, जब तुम मेरा स्मरण करोगे, तो तुम्हारे मन में जो भी भय, घबराहट या आतंक होगा, वह दूर हो जाएगा।

यदि तुम मेरा स्मरण नहीं कर सकते, तो तुम्हें धम्म (मार्ग, नियम) का इस प्रकार स्मरण करना चाहिए: धम्म का भगवान (बुद्ध) द्वारा भली-भांति वर्णन किया गया है, यह प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानी लोगों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाना है। भिक्षुओं, जब तुम धम्म का स्मरण करोगे, तो तुम्हारे मन में जो भी भय, घबराहट या आतंक होगा, वह दूर हो जाएगा।

यदि तुम धम्म (मार्ग, नियम) का स्मरण नहीं कर सकते, तो संघ (भाईचारे) का इस प्रकार स्मरण करो: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग, सीधे मार्ग, सच्चे मार्ग और उचित मार्ग का अनुसरण करता है; अर्थात्, चार युग्मों, आठ प्रकार के व्यक्तियों का यह संघ - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अद्वितीय पुण्य क्षेत्र है। क्योंकि जब तुम संघ का स्मरण करोगे, भिक्षुओं, तो तुम्हारे भीतर जो भी भय, झिझक या आतंक होगा, वह दूर हो जाएगा।

इसका क्या कारण है? क्योंकि, भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष कामवासना (राग) से रहित, द्वेष (दोष/मोह) से रहित, मोह (मोह) से रहित हैं; वे साहसी, निडर, निर्भीक और अपने स्थान पर दृढ़ रहने वाले हैं।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

“जंगल में, वृक्ष की तलहटी में; या किसी खाली कुटिया में, हे भिक्षुओं,
आपको बुद्ध का स्मरण करना चाहिए; तब आप में कोई भय उत्पन्न नहीं होगा।

“पर यदि आप बुद्ध का स्मरण नहीं कर सकते; संसार में श्रेष्ठ, पुरुषों में श्रेष्ठ,
तो आपको धर्म का स्मरण करना चाहिए; जो मुक्तिदायक और सुस्पष्ट है।

“पर यदि आप धर्म का स्मरण नहीं कर सकते; जो मुक्तिदायक और सुस्पष्ट है,
तो आपको संघ का स्मरण करना चाहिए, जो दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।”

जो भिक्षु बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) का स्मरण करते हैं, उनके मन में
न तो कोई भय उत्पन्न होगा और न ही कोई भयानक आतंक।

---

250. वेपचिट्टी (राक्षसों का स्वामी)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"एक बार अतीत में, भिक्षु, देव (देवदूत) और असुर (राक्षस) युद्ध के लिए तैयार थे। तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने असुरों को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे सज्जनों, देवों और असुरों के बीच होने वाले युद्ध में, यदि असुर जीतें और देव पराजित हों, तो देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर असुरों के नगर में मेरे पास ले आओ।' और देवों के स्वामी सक्का ने तावतिंसा देवों को इस प्रकार संबोधित किया:
'हे सज्जनों, देवों और असुरों के बीच होने वाले युद्ध में, यदि देव जीतें और असुर पराजित हों, तो असुरों के स्वामी वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म सभा भवन में मेरे पास ले आओ।'
भिक्षुओं, उस युद्ध में देवताओं की विजय हुई और असुर पराजित हुए। तब तावतिंसा देवताओं ने वेपचित्ति को उसके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म सभा भवन में सक्का के पास ले आए। 614 जब सक्का सुधम्म सभा भवन में प्रवेश कर रहे थे और बाहर जा रहे थे, तब वेपचित्ति, अपने चारों अंगों और गर्दन से बंधे हुए, उन्हें अभद्र और कठोर शब्दों से अपशब्द कहने लगे।
तब भिक्षुओं, सारथी मतली ने देवताओं के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"'वेपचित्ति के सामने, हे मगह, क्या यह भय या कमजोरी के कारण है
कि आप इतनी धीरज से उसके कठोर शब्दों को सहन करते हैं?'

[सक्का:]
'यह न तो भय के कारण है और न ही कमजोरी के कारण; कि मैं वेपचित्ति के प्रति धीरज रखता हूँ।
मुझ जैसा बुद्धिमान व्यक्ति भला कैसे बचकाने (नासमझ) से युद्ध कर सकता है?'"

[मटाली:]
"बचकाना (नासमझ) अपना क्रोध और भी अधिक प्रकट करेगा; यदि कोई उन्हें नियंत्रित न करे।
इसलिए कठोर दंड द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति को बचकाने (नासमझ) को रोकना चाहिए।" 615

[सक्का:]
"मैं स्वयं यही सोचता हूँ; बचकाने (नासमझ) को नियंत्रित करने का यही तरीका है:
जब कोई जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है; तो वह ध्यानमग्न (सतो) होकर अपनी शांति बनाए रखता है।"

[मटाली:]
"हे वासव, मैं यह दोष देखता हूँ; धैर्यपूर्वक सहन करने के अभ्यास में:
जब बचकाना (नासमझ) आपके बारे में इस प्रकार सोचता है; "वह भय के कारण मुझे सहन करता है," तो
वह मूर्ख आपका और भी अधिक पीछा करेगा; जैसे बैल भागने वाले का पीछा करता है।"

[सक्का:]
"चाहे वह सोचे या न सोचे; "वह भय के कारण मुझे सहन करता है,"

अपने स्वयं के हित में परिणत होने वाले लक्ष्यों में; धैर्य से बेहतर कोई नहीं है।" 616

"'जब कोई बलवान व्यक्ति धैर्यपूर्वक किसी दुर्बल व्यक्ति को सहन करता है,
तो उसे परम धैर्य कहते हैं; दुर्बल व्यक्ति को सदा धैर्यवान रहना चाहिए। 617

"'वे उसे बल कहते ही नहीं; वह मूर्खता का बल है -
परन्तु कोई भी उस व्यक्ति की निंदा नहीं कर सकता; जो धर्म द्वारा संरक्षित होने के कारण बलवान है। 618 क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से प्रतिसाद न देना; कठिन लड़ाई जीतने वाला व्यक्ति होता है।

618 "'जो व्यक्ति क्रोधित व्यक्ति को क्रोध से जवाब देता है; वह अपने लिए स्थिति और खराब कर लेता है।

"वह अपने और दूसरों दोनों के कल्याण के लिए अभ्यास करता है।
जब वह जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है, तो वह ध्यानमग्न (सतो) होकर शांत रहता है।

जब वह अपने और दूसरों दोनों का निवारण कर देता है, तो
जो लोग उसे बचकाना (नासमझ) समझते हैं, वे धर्म में अकुशल हैं।"

"इसलिए, भिक्षुओं, यदि देवताओं के स्वामी सक्का, अपने दैवीय पुण्य के फल पर निर्वाह करते हुए, तावतिंसा देवताओं पर सर्वोच्च प्रभुत्व और शासन का प्रयोग करते हुए, धैर्य और कोमलता की प्रशंसा करते हैं, तो आप जैसे लोगों के लिए, जो इतने सुस्पष्ट धर्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में दीक्षित (पबज्जित) हो चुके हैं, धैर्यवान और कोमल होना कितना अधिक उचित होगा।"

---

251. सुविचारित परामर्श से विजय (सुभाषितजय)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, एक बार अतीत में देव और असुर युद्ध के लिए तैयार हुए थे। तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने देवों के स्वामी इंद्र से कहा, 'देवताओं के स्वामी, सुविचारित परामर्श से विजय हो।' [और इंद्र ने उत्तर दिया,] 'वेपचित्ति, सुविचारित परामर्श से विजय हो।' " तब भिक्षुओं, देवों और असुरों ने न्यायाधीशों का एक समूह नियुक्त किया और कहा, 'ये हमारे द्वारा कही गई अच्छी और बुरी बातों का पता लगाएंगे।'
"तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने देवों के स्वामी इंद्र से कहा, 'देवताओं के स्वामी, एक श्लोक बोलिए।' यह सुनकर इंद्र ने वेपचित्ति से कहा, 'आप, वेपचित्ति, यहाँ के वरिष्ठ देव होने के नाते, एक श्लोक बोलिए।'" 619 जब यह कहा गया, तो असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक सुनाया: 620

"'नासमझ (बचकाना) अपना क्रोध और भी अधिक प्रकट करेंगे; यदि कोई उन्हें नियंत्रित न करे।
इसलिए कठोर दंड द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति को नासमझ (बचकाना) को रोकना चाहिए।'

"हे भिक्षुओं, जब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह
श्लोक बोला, तो असुरों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु देवता मौन रहे। तब
वेपचित्ति ने सक्का से कहा: 'देवताओं के स्वामी, एक श्लोक बोलिए।' जब
यह कहा गया, तो देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने यह श्लोक सुनाया:

"'मैं स्वयं यही सोचता हूँ; नासमझ (बचकाना) को नियंत्रित करने का यही तरीका है,
जब कोई जानता है कि उसका शत्रु क्रोधित है; तो ध्यानमग्न (सतो) व्यक्ति अपनी शांति बनाए रखता है।'

भिक्षुओं, जब देवताओं के स्वामी सक्का ने यह श्लोक कहा, तो देवताओं ने तालियाँ बजाईं, परन्तु असुर मौन रहे। तब सक्का ने वेपचित्ति से कहा, 'वेपचित्ति, एक श्लोक कहिए।' यह सुनकर असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक सुनाया: '

हे वासव, मुझे यह दोष दिखाई देता है; धैर्यपूर्वक सहन करने में:
जब कोई नासमझ (बौद्धिक) आपके बारे में इस प्रकार सोचता है; 'वह भय के कारण मुझे सहन करता है,'
तो वह मूर्ख आपका और भी पीछा करेगा; जैसे बैल भागने वाले का पीछा करता है।'

भिक्षुओं, जब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने यह श्लोक कहा, तो असुरों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु देवता मौन रहे। तब वेपचित्ति ने सक्का से कहा, 'देवों के स्वामी, एक श्लोक कहिए।' जब यह कहा गया, तो देवताओं के स्वामी सक्का ने ये श्लोक पढ़े:

"चाहे वह सोचे कि मैं भय के कारण धैर्य रख रहा हूँ या नहीं,
बड़ी विपत्ति में धैर्य प्रकट नहीं होता।

यदि कोई शक्तिशाली व्यक्ति शांत रहता है और कमजोर के लिए सहन करता है,
तो उसे सर्वोच्च धैर्य कहा जाता है; कमजोर व्यक्ति हर समय सहन करता है।

कमजोरी को शक्ति कहा जाता है, जब वह बचकाना (नासमझ) होकर अपनी शक्ति दिखाता है।
धर्म द्वारा संरक्षित बलवान व्यक्ति अपना मार्ग नहीं बदलता।

इसलिए किसी को क्रोधित करना पाप है।"
जिसने किसी को क्रोधित किया, उसे क्रोधित न करने वाला व्यक्ति ही युद्ध जीतता है।

वह अपने और दूसरों दोनों के कल्याण के लिए व्यवहार करता है।
यदि कोई व्यक्ति स्वयं शांत (सतो) रहता है और ध्यानमग्न रहता है; यह जानते हुए कि दूसरा क्रोधित है,

तो वह अपने और दूसरे दोनों के घावों को भर देता है।
कहा जाता है, 'वे बचकाने (नासमझ) हैं; वे लोग धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल हैं।'

"हे भिक्षुओं, जब देवताओं के स्वामी सक्का ने ये श्लोक कहे, तो देवताओं ने तालियाँ बजाईं, परन्तु असुर मौन रहे। तब देवताओं और असुरों द्वारा नियुक्त न्यायाधीशों के समूह ने यह कहा: 'असुरों के स्वामी वेपचित्ति द्वारा कहे गए श्लोक दंड और हिंसा के क्षेत्र में हैं; अतः उनमें संघर्ष, विवाद और कलह निहित है। परन्तु देवताओं के स्वामी सक्का द्वारा कहे गए श्लोक दंडहीनता और अहिंसा के क्षेत्र में हैं; अतः उनमें संघर्ष से मुक्ति, विवाद से मुक्ति और कलह से मुक्ति निहित है। देवताओं के स्वामी सक्का ने सुविचारित परामर्श से विजय प्राप्त की है।'

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का ने सुविचारित परामर्श से विजय प्राप्त की।"

---

252. पक्षियों के घोंसले (कुलवका)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, एक बार अतीत में देव और असुर युद्ध के लिए तैयार हुए थे। उस युद्ध में असुरों की जीत हुई और देव पराजित हुए। हार के बाद देव उत्तर की ओर पीछे हट गए जबकि असुर उनका पीछा करते रहे। तब देवों के स्वामी इंद्र ने अपने सारथी मतली को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

'हे मतली, अपने रथ के डंडे से दूर रहो;
रेशम-कपास के जंगलों में पक्षी घोंसला बनाते हैं; इन पक्षियों को घोंसलाहीन करने के बजाय
हम असुरों को अपने प्राण त्याग दें ।' 621 'जी, महाराज,' सारथी मतली ने उत्तर दिया और उसने अपने हजार घोड़ों के दल सहित रथ को वापस मोड़ दिया। तब, भिक्षुओं, असुरों के मन में यह विचार आया: 'अब इंद्र का रथ अपने हजार घोड़ों के दल सहित वापस मुड़ गया है। देव दूसरी बार असुरों से युद्ध करेंगे।' भय से व्याकुल होकर वे असुरों के नगर में प्रवेश कर गए। इस प्रकार भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का ने धर्म (धम्म) के बल पर विजय प्राप्त की।

---

253. किसी को भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए (नादुभिया)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, एक बार अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) एकांतवास में थे, तो उनके मन में यह विचार आया: 'चाहे कोई मेरा कट्टर शत्रु ही क्यों न हो, मुझे उसके विरुद्ध भी अपराध नहीं करना चाहिए।'
तब, भिक्षुओं, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने सक्का के मन के विचार को स्वयं जान लिया और उनके पास गए। सक्का ने दूर से वेपचित्ति को आते देखा और उनसे कहा: 'रुको, वेपचित्ति, तुम पकड़े गए!' 622

[वेपचित्ति:] 'हे महोदय, जो विचार अभी आपके मन में आया है, उसे मत छोड़िए।' 623

[सक्का:] 'वेपचित्ति, शपथ लो कि तुम मेरे विरुद्ध अपराध नहीं करोगे।'

[वेपसिट्टी:]
"झूठे को जो भी बुराई मिलती है; नेक लोगों की निंदा करने वाले को जो भी बुराई मिलती है;
मित्रों के विश्वासघाती को जो भी बुराई मिलती है; कृतघ्न व्यक्ति को जो भी बुराई मिलती है,
वही बुराई उस व्यक्ति को भी लगती है; जो तुम्हारे विरुद्ध अपराध करता है, हे सुजा के पति।" 624

---

254. वेरोचना, असुरों के स्वामी (वेरोचना-असुरिंदा)
श्रावस्ती में जेतवन में। उस समय भगवान (बुद्ध) एक दिन के लिए विश्राम करने गए थे और एकांत में थे। तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) और असुरों के स्वामी वेरोचना भगवान (बुद्ध) के पास आए और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए।
तब असुरों के स्वामी वेरोचना ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा: 625

"मनुष्य को प्रयास करना चाहिए; जब तक उसका लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।
लक्ष्य प्राप्त होने पर चमकते हैं; यह वेरोचना का वचन है।"

[सक्का:]
"मनुष्य को प्रयास करना चाहिए; जब तक उसका लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।
प्राप्त होने पर चमकने वाले लक्ष्यों में; धैर्य से बढ़कर कोई नहीं है।" 626

[वेरोचना:]
"सभी प्राणी किसी न किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होते हैं; चाहे वह यहाँ हो या वहाँ, जैसा भी परिस्थिति अनुकूल हो।
परन्तु सभी प्राणियों के लिए संगति परम सुख है।
लक्ष्य प्राप्ति पर प्रकाशमान होते हैं; यही वेरोचना का वचन है।" 627

[सक्का:]
"सभी प्राणी किसी न किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होते हैं; चाहे वह यहाँ हो या वहाँ, जैसा भी परिस्थिति अनुकूल हो।
परन्तु सभी प्राणियों के लिए संगति परम सुख है।
प्राप्ति पर प्रकाशमान लक्ष्यों में धैर्य से बढ़कर कोई नहीं है।"

---

255. एक जंगल में संत (ऋषि संस ऋषि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (सन्यासियों), एक समय की बात है, कई गुणी और अच्छे चरित्र वाले संत (ऋषि-मुनि) जंगल के एक हिस्से में पत्तों की कुटियाओं में बस गए थे। तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) और असुरों के स्वामी वेपचित्ति उन संतों (ऋषियों-मुनि) के पास पहुँचे।
असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने अपने जूते पहने, अपनी तलवार कसकर बाँधी और छत्र ऊँचा करके मुख्य द्वार से आश्रम में प्रवेश किया; फिर उनकी ओर बाएँ मुड़कर वे उन गुणी और अच्छे चरित्र वाले संतों (ऋषियों-मुनि) के पास से गुजरे। परन्तु देवों के स्वामी सक्का ने अपने जूते उतारे, अपनी तलवार दूसरों को सौंप दी, अपना छत्र नीचे किया और एक साधारण द्वार से आश्रम में प्रवेश किया; फिर वह हवा से सुरक्षित किनारे पर खड़े होकर, अपने जुड़े हुए हाथों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए, उन संतों (ऋषियों सहित) को नमन अर्पित करने लगे जो गुणी और अच्छे चरित्र के थे।
"फिर, भिक्षुओं, उन संतों (ऋषियों सहित) ने सक्का को श्लोक में संबोधित किया:

'अपने व्रतों से बंधे हुए संतों (ऋषियों सहित) की सुगंध,

उनके शरीर से निकलती हुई, हवा के साथ उड़ जाती है।
हे हजार नेत्रों वाले देवता, यहाँ से दूर हो जाओ।
क्योंकि हे देव-राजा, संतों (ऋषियों सहित) की सुगंध दुर्गंधयुक्त है।' 629

[सक्का:]
"'अपने व्रतों से बंधे हुए संतों (ऋषियों) की सुगंध
, उनके शरीरों से निकलकर हवा के साथ प्रवाहित हो;
हे पूज्यवरों, हम इस सुगंध के लिए तरसते हैं,
जैसे सिर पर फूलों की माला के लिए।
देवता इसे अप्रिय नहीं मानते।'" 630

---

256. समुद्र के निकट (समुद्दक)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, एक समय की बात है, बहुत से सदाचारी और अच्छे चरित्र वाले संत (ऋषि-मुनि) समुद्र तट पर पत्तों की कुटियाओं में बस गए थे। उस समय देव और असुर युद्ध के लिए तैयार थे। तब उन सदाचारी और अच्छे चरित्र वाले संतों (ऋषि-मुनि) के मन में यह विचार आया: 'देव धर्मात्मा हैं, असुर अधर्मी। हमें असुरों से खतरा हो सकता है। हमें असुरों के स्वामी संबारा के पास जाकर अपनी सुरक्षा की गारंटी मांगनी चाहिए।' 631
"फिर, हे भिक्षुओं, जिस शीघ्रता से एक बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से वे सद्‌गुणी और अच्छे चरित्र वाले संत (ऋषि रहित संत) समुद्र तट पर स्थित अपनी ऋषि-मरुस्थलों से लुप्त हो गए और असुरों के स्वामी संबारा के समक्ष प्रकट हुए। तब उन संतों (ऋषि रहित संत) ने संबारा को श्लोकों में संबोधित करते हुए कहा,

"संबारा के पास आए संतों (ऋषि रहित संत) से सुरक्षा की गारंटी मांगिए।
क्योंकि आप उन्हें जो चाहें दे सकते हैं; चाहे वह खतरा हो या सुरक्षा।" 632

[संबारा:]
"मैं संतों (ऋषि रहित संत) को सुरक्षा प्रदान नहीं करूंगा; क्योंकि वे सक्का (देवदूतों के राजा इंद्र) के घृणित भक्त हैं;
यद्यपि आप मुझसे सुरक्षा की विनती करते हैं; मैं आपको केवल खतरा ही दूंगा।"

[संत (ऋषि):]
"यद्यपि हमने सुरक्षा माँगी है; आप हमें केवल संकट देते हैं।
यह हमें आपके हाथों से प्राप्त होता है; आप पर निरंतर संकट आए!

"जिस प्रकार का बीज बोया जाता है; उसी प्रकार का फल मिलता है।
अच्छा करने वाला अच्छा ही पाता है; बुराई का द्वार बुराई ही पाता है।
हे प्रिय, आपके द्वारा ही बीज बोया गया है; इस प्रकार आप फल का अनुभव करेंगे।"

"तब, भिक्षुओं ने असुरों के स्वामी संबारा को शाप दिया, और जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही वे गुणी और नेक संत संबारा के समक्ष से लुप्त हो गए और समुद्र तट पर स्थित अपनी पत्तियाँ की झोपड़ियों में पुनः प्रकट हो गए। परन्तु उन गुणी और नेक संतों द्वारा शाप दिए जाने के बाद, असुरों के स्वामी संबारा रात भर में तीन बार भयभीत हुए।" 633

(ii) दूसरा उप-अध्याय (सात व्रत)
257. व्रत (वातापदा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (सन्यासियों), अतीत में, जब देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) मनुष्य थे, तो उन्होंने सात व्रत लिए और उनका पालन करके सक्का का दर्जा प्राप्त किया। 634 वे सात व्रत क्या थे?

(1) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं अपने माता-पिता का भरण-पोषण करूँ।"
(2) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं परिवार के बड़ों का आदर करूँ।"

(3) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं विनम्रता से बोलूँ।"
(4) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं विभाजनकारी बातें न करूँ।"
(5) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं कंजूसी के दाग से रहित मन से घर में रहूँ, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति सर्मपित, 635 दान देने और साझा करने में आनंदित रहूँ।" (
6) "जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं सत्य बोलूँ।"
(7) “जब तक मैं जीवित रहूँ, क्रोध से मुक्त रहूँ, और यदि मुझमें क्रोध उत्पन्न हो, तो उसे शीघ्र ही दूर कर दूँ।”

“भिक्षुओं, अतीत में, जब देवताओं के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब उन्होंने इन सात व्रतों को ग्रहण किया और उनका पालन करके सक्का का दर्जा प्राप्त किया।

“जब कोई व्यक्ति अपने माता-पिता का सहारा बनता है; और परिवार के बड़ों का आदर करता है;
जब उसकी वाणी सौम्य और विनम्र होती है; और वह विभाजनकारी शब्दों से विरक्त रहता है;

जब वह नीचता को दूर करने का प्रयास करता है; सत्यवादी होता है, और क्रोध पर विजय प्राप्त करता है, तब
तावतिंसा देवता उसे “वास्तव में श्रेष्ठ व्यक्ति” कहते हैं।”

---

258. सक्का के नाम (सक्कानामा)
सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा:

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) मनुष्य रूप में थे, तब वे माघ नामक एक ब्राह्मण युवक थे; इसलिए उन्हें माघवा कहा जाता है। 636

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब वे नगर-नगर दान करते थे; इसलिए उन्हें पुरिन्ददा, शहरी दाता कहा जाता है। 637

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब वे उदारतापूर्वक दान करते थे; इसलिए उन्हें सक्का कहा जाता है। 638

"भिक्षुओं, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य रूप में थे, तब उन्होंने विश्राम गृह (अवस्थम) बनवाया था; इसलिए उन्हें वासव कहा जाता है। 639

"भिक्षुओं, देवों के स्वामी सक्का..." हे भिक्षु, एक क्षण में हजार बातों (सहस्स) का चिंतन करते हैं; इसलिए उन्हें सहस्सक्खा, हजार नेत्रों वाला कहा जाता है। 640

“भिक्षुओं, सक्का की पत्नी सूजा नामक असुर कन्या है; इसलिए उन्हें सूजा का पति, सुजामपति कहा जाता है। 641

“भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का, तावतिंसा देवताओं पर सर्वोच्च प्रभुत्व और शासन रखते हैं; इसलिए उन्हें देवताओं का स्वामी कहा जाता है।

“भिक्षुओं, अतीत में, जब देवताओं के स्वामी सक्का मनुष्य थे, तब उन्होंने सात व्रत लिए और उनका पालन किया, जिससे उन्हें सक्का का दर्जा प्राप्त हुआ....”

(इस सूत्र का शेष भाग पूर्ववर्ती सूत्र 257 के समान है; भिक्षुओं, अतीत में, जब सक्का.......एक श्रेष्ठ व्यक्ति थे)

---

259. महाली

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवी महाली भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, क्या भगवान (बुद्ध) ने देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) को देखा है?"

"मैंने देवों के स्वामी सक्का को देखा है, महाली।" "

निश्चित रूप से, आदरणीय महोदय, वह कोई ऐसा ही रहा होगा जो देवों के स्वामी सक्का जैसा दिखता होगा; क्योंकि देवों के स्वामी सक्का को देखना कठिन है।"

"मैं सक्का को जानता हूँ, महाली, और मैं उन गुणों को भी जानता हूँ जो सक्का के लिए आवश्यक हैं, जिनके द्वारा सक्का ने सक्का का दर्जा प्राप्त किया।

महाली, अतीत में, जब देवों के स्वामी सक्का मनुष्य थे, तब वे माघा नाम के एक ब्राह्मण युवक थे।" इसलिए उन्हें मग़वा कहा जाता है..."

(यहाँ पिछले सूत्र 258 के अनुसार सक्का के नाम और सात व्रत आदि दिए गए हैं, अर्थात् 'भिक्षुओं, अतीत में, जब देवताओं के स्वामी सक्का मनुष्य थे ....एक श्रेष्ठ व्यक्ति')

---

260. गरीब (दलिद्दा सं. दरिद्र)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, अतीत में इसी राजगृह में एक गरीब, कृपण और निर्धन व्यक्ति रहता था। उसने तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म और अनुशासन में आस्था, शील, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि धारण की। ऐसा करने के बाद, शरीर के क्षोभ के साथ, मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में, तावतिंसा देवों की संगति में हुआ, जहाँ वह सौंदर्य और महिमा में अन्य देवों से भी अधिक तेजस्वी था। 642

"इस पर तावतिंसा देवों ने इस पर आपत्ति जताई, बड़बड़ाए और शिकायत करते हुए कहा: 'यह वास्तव में अद्‌भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! क्योंकि पहले, जब यह युवा देव मनुष्य था, तब वह एक गरीब, कृपण और निर्धन व्यक्ति था। फिर भी, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगती) में, स्वर्गलोक में, तावतिंसा देवताओं की संगति में हुआ है, जहाँ वे सौंदर्य और महिमा के मामले में अन्य देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।'

"तब, भिक्षुओं, देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र) ने तावतिंसा देवताओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'प्रियजनों, इस युवा देवता में दोष न निकालें। पूर्व में, जब यह युवा देवता मनुष्य थे, तब उन्होंने तथागत द्वारा घोषित धर्म और अनुशासन में आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबोधन (ज्ञान) का पालन किया। ऐसा करने के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगती) में, स्वर्गलोक में, तावतिंसा देवताओं की संगति में हुआ है, जहाँ वे सौंदर्य और महिमा के मामले में अन्य देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।'

तब भिक्षुओं ने तावतिंसा देवताओं को उपदेश देते हुए, देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने उस अवसर पर इन श्लोकों का पाठ किया:

"जब किसी को तथागत में अटूट और दृढ़ विश्वास होता है,
और सद्‌गुणों पर आधारित अच्छा आचरण होता है; तो वह श्रेष्ठों का प्रिय और प्रशंसित होता है; 644

"जब किसी को संघ (भाईचारे) में विश्वास होता है; और उसका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है, तो
वे कहते हैं कि वह गरीब नहीं है; उसका जीवन व्यर्थ नहीं जाता।

इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति, बुद्ध की शिक्षाओं को याद करते हुए,
विश्वास और सद्‌गुण के प्रति समर्पित होना चाहिए, धम्म के प्रति विश्वास और दृष्टि के प्रति समर्पित होना चाहिए।"

---

261. एक रमणीय स्थान (रामनेयका सं. रमणीक)
श्रावस्ती में जेतवन में। तब देवों के स्वामी इंद्र (सक्का) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, रमणीय स्थान क्या है?" [233]

[भगवान (बुद्ध):]

"पार्कों और वनों में स्थित मंदिर; सुनिर्मित कमल के तालाब,
ये एक रमणीय मनुष्य के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं हैं।

चाहे गाँव हो या जंगल; घाटी हो या मैदान,
जहाँ कहीं भी अरहंत निवास करते हैं; वही वास्तव में रमणीय स्थान है।"

---

262. दान देना (यजमान)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। तब देवों के स्वामी, सक्का (इंद्र), भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को इन श्लोकों में संबोधित किया: 645

"उन लोगों के लिए जो दान देते हैं; उन जीवों के लिए जो पुण्य की खोज में लगे हैं;
सांसारिक प्रकार के पुण्य कर्म करने वाले; दान कहाँ महान फल देता है?" 646

[भगवान (बुद्ध):]
"चार मार्ग का अभ्यास करने वाले; और चार जो फल में स्थापित हैं,
यही सीधे आचरण का संघ है; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि और सद्‌गुण से संपन्न। 647

"उन लोगों के लिए जो दान देते हैं; पुण्य की खोज में लगे प्राणियों के लिए,
सांसारिक प्रकार के पुण्य कर्म करते हुए, संघ को दान देना बहुत फलदायी होता है।

---

263. बुद्ध की पूजा (बुद्धवन्दना)
श्रावस्ती में जेतवन में। उस अवसर पर भगवान (बुद्ध) एक दिन के विश्राम के लिए गए हुए थे और एकांतवास में थे। तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) और प्रधान देवदूत ब्रह्मा सहमपति भगवान (बुद्ध) के पास आए और दोनों द्वारों पर एक-एक करके खड़े हो गए। तब देवों के स्वामी सक्का ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह श्लोक पढ़ा:

"उठो, हे वीर, युद्ध में विजयी!
तुम्हारा बोझ हल्का हो गया है, हे ऋण मुक्त, संसार में विचरण करो।
तुम्हारा मन पूर्णतः मुक्त है (विमुक्त संस्कृत);
पंद्रहवीं रात के चंद्रमा के समान।" 648

[ब्रह्म सहमपति:] "हे देवों के स्वामी, तथागतों की पूजा इस प्रकार नहीं की
जानी चाहिए। तथागतों की
पूजा इस प्रकार की जानी चाहिए:

'उठो, हे वीर, युद्ध में विजयी!'"
हे कारवां के नेता, ऋणमुक्त, संसार में विचरण करो।
हे भगवान (बुद्ध), धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दो,
वहाँ ऐसे लोग होंगे जो समझेंगे।

264. गृहस्थों की पूजा (गृहवंदना सं. गृहस्थ-वंदना)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक बार अतीत में, देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने अपने सारथी मतली से कहा: 'हे मित्र मतली, रथ को उसके हजार घोड़ों के साथ जोत दो। चलो सुंदर दृश्य देखने के लिए उद्यान चलते हैं।' - 'जी, महाराज,' सारथी मतली ने उत्तर दिया। तब उसने रथ को उसके हजार घोड़ों के साथ जोता और देवों के स्वामी सक्का को घोषणा की: 'हे महोदय, रथ जोत दिया गया है। आप अपनी सुविधानुसार आ सकते हैं।' 650
"तब, भिक्षुओं, देवों के स्वामी सक्का, वेजयंत महल से उतरकर, आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विभिन्न दिशाओं को प्रणाम किया।" तब सारथी मतली ने सक्का को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा,

"'त्रिवेद जानने वाले आपकी पूजा करते हैं, और पृथ्वी पर राज करने वाले सभी क्षत्रिय।
और चारों दिशाओं के महान राजा और तीस तेजस्वी;
तो हे सक्का, वह कौन सी आत्मा है; जिसे आप प्रणाम करते हैं?' 651

[सक्का:]
"त्रिवेद जानने वाले मेरी पूजा करते हैं, और पृथ्वी पर राज करने वाले सभी क्षत्रिय
और चारों दिशाओं के महान राजा और तीस तेजस्वी;

"पर मैं उनकी पूजा करता हूँ जो सद्गुणों से परिपूर्ण हैं; और जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लंबे समय से प्रशिक्षित हैं,
जो विधिवत दीक्षा प्राप्त कर चुके हैं; जिनका गंतव्य ब्रह्मचर्य है। 652

"'और वे गृहस्थ जो पुण्य कमाते हैं; सद्गुणों से परिपूर्ण गृहस्थ अनुयायी
जो विधिपूर्वक पत्नी का भरण-पोषण करते हैं; मैं इनकी भी पूजा करता हूँ, हे मतली;

[मातली:]
"'वे वास्तव में संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं; हे मेरे स्वामी सक्का, जिनकी आप पूजा करते हैं;
मैं भी उनकी पूजा करूँगा; हे वासव, जिनकी आप पूजा करते हैं।'

[भगवान (बुद्ध):]
"यह व्याख्या देने के बाद; विभिन्न दिशाओं की पूजा करने के बाद,
देवराज मगहव, सूजा के पति; प्रधान, अपने रथ पर सवार हो गए।"

265. गुरु की पूजा (सत्थरवन्दना)
(जैसा कि ऊपर 264 से नीचे तक:)
"तब, भिक्षुओं, देवों/देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र), वेजयंत महल से अवतरित होकर, अपने हाथ जोड़कर आदरपूर्वक भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया। तब सारथी मतली ने देवों के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित किया:

"'देव और मनुष्य दोनों; आपको विनम्रतापूर्वक प्रणाम करते हैं, वासव।
तो हे सक्का, वह कौन सा प्राण है; जिसे आप प्रणाम करते हैं?'

[सक्का:]
"'पूर्ण रूप से प्रबुद्ध, इस संसार में, अपने देवों के साथ,
पूर्ण नाम वाले गुरु; वही हैं जिनकी मैं पूजा करता हूँ, मतली। 653

"'जिनके लिए कामवासना (राग) और घृणा (दोष/द्वेष); और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत/अविद्या) का निवारण हो गया है।
वे अरहंत जिनके दोष नष्ट हो गए हैं; वही हैं जिनकी मैं पूजा करता हूँ, मतली।"

"'जो प्रशिक्षु विघटन में आनंदित होते हैं; जो
राग और द्वेष को दूर करने के लिए, अज्ञान से ऊपर उठने के लिए लगन से प्रशिक्षण लेते हैं:

मैं इन्हीं की पूजा करता हूँ, मताली।' 654

[मताली:]
"'जिनकी आप पूजा करते हैं, मेरे स्वामी सक्का; वे वास्तव में संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं।
मैं भी उनकी पूजा करूँगा; जिनकी आप पूजा करते हैं, वासव।'

[भगवान (बुद्ध):]
"यह व्याख्या देने के बाद; भगवान (बुद्ध) की पूजा करने के बाद,
देवराज मगव, सूजा के पति; प्रधान, अपने रथ पर सवार हो गए।"

---

266. संघ की उपासना (संघवन्दन)
(ऊपर से नीचे तक:)

"तब, भिक्षुओं, देवों के स्वामी सक्का (इंद्र), वेजयंत महल से अवतरित होकर, अपने जुड़े हुए हाथों से आदरपूर्वक अभिवादन करते हुए भिक्षुओं के संघ (भाईचारे) की पूजा की। तब सारथी मतली ने देवों के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित किया:

"'ये ही हैं जिन्हें आपकी पूजा करनी चाहिए; वे मनुष्य जो सड़े हुए शरीर में फंसे हैं।
वे जो शव के भीतर डूबे हुए हैं; भूख और प्यास से पीड़ित हैं। 655

तो फिर आप उनसे ईर्ष्या क्यों करते हैं; वे जो तपस्वी के रूप में निवास करते हैं, वासव?
हमें संतों (ऋषियों के आचरण के बारे में बताइए; हमें सुनने दीजिए कि आप क्या कहना चाहते हैं।'

[सक्का:]
"'इसीलिए मैं उनसे ईर्ष्या करता हूँ; वे जो तपस्वी के रूप में निवास करते हैं, मतली;
वे जिस भी गाँव से प्रस्थान करते हैं; वे उसे बिना किसी चिंता के छोड़ देते हैं।

"'वे अपना सामान भंडार में नहीं रखते; न तो बर्तन में और न ही डिब्बे में।
दूसरों द्वारा तैयार की गई चीजों की तलाश करते हैं; वे प्रतिज्ञाओं में दृढ़ रहकर इसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं:

"वे बुद्धिमान जो अच्छी सलाह देते हैं; मौन धारण करते हैं, समभाव बनाए रखते हैं।
जब देवता असुरों से लड़ते हैं; और मनुष्य आपस में लड़ते हैं।

लड़ने वालों में वे नहीं लड़ते; हिंसक लोगों में वे शांत हो जाते हैं;
लालच करने वालों में वे नहीं लालच करते: मैं इन्हीं की पूजा करता हूँ, मताली।"

[मताली:]
"वे वास्तव में संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं; हे मेरे स्वामी सक्का, जिनकी आप पूजा करते हैं,
मैं भी उनकी पूजा करूँगा; हे वासव, जिनकी आप पूजा करते हैं।"

[भगवान (बुद्ध):]
"यह व्याख्या देने के बाद, देव-राजा मगव, सूजा के पति, ने
भिक्षु संघ के मुखिया की पूजा करके अपने रथ पर सवार हो गए।"

(iii) तीसरा उपअध्याय (सक्का पेंटाड)
267. हत्या (चेत्वा)
श्रावस्ती में जेतवन में, देवों के स्वामी इंद्र, भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। एक तरफ खड़े होकर, देवों के स्वामी इंद्र ने भगवान बुद्ध से कहा,

“किसे मारकर चैन की नींद आती है? किसे मारकर शोक नहीं होता?
हे गौतम, वह कौन सा धर्म है? आप किसके वध को स्वीकार करते हैं?”

[भगवान बुद्ध ने कहा:]
“क्रोध को मारकर चैन की नींद आती है; क्रोध को मारकर शोक नहीं होता;
हे वासव, क्रोध का वध, जिसकी जड़ विषैली और नोक मधुर है,
वही वध है जिसकी श्रेष्ठ लोग प्रशंसा करते हैं; क्योंकि उसे मारकर शोक नहीं होता।”

---

268. कुरूप (दुब्बानिया सं. दुर्वन्र्या)
श्रावस्ती में जेतवन में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, एक बार एक कुरूप और विकृत यक्ष देवों के स्वामी सक्का के आसन पर बैठ गया। 658 तब तावतिंसा देवताओं ने इस पर आपत्ति जताई, बड़बड़ाए और शिकायत की, और कहा: 'हे भगवान! यह तो वाकई आश्चर्यजनक है! हे भगवान! यह कुरूप और विकृत यक्ष देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) के आसन पर बैठ गया है!' लेकिन तावतिंसा देवताओं ने जितनी आपत्ति जताई, बड़बड़ाए और शिकायत की, उतना ही वह यक्ष अधिक से अधिक सुंदर, अधिक से अधिक आकर्षक और अधिक से अधिक सुंदर होता गया।

तब, भिक्षुओं, तावतिंसा देवता सक्का के पास गए और उनसे कहा: 'हे भगवान, एक कुरूप और विकृत यक्ष आपके आसन पर बैठ गया है। ... लेकिन देवताओं को इसमें जो भी दोष लगा हो... वह यक्ष और भी अधिक सुंदर, और भी अधिक आकर्षक, और भी अधिक सुंदर होता गया।'

[सक्का:] 'वह क्रोध भक्षण करने वाला यक्ष ही होगा।'

"तब, भिक्षुओं, देवताओं के स्वामी सक्का उस क्रोध भक्षण करने वाले यक्ष के पास पहुँचे। 659 पास पहुँचकर उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, दाहिना घुटना जमीन पर रखकर बैठ गए, और अपने जुड़े हुए हाथों को उस यक्ष की ओर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए तीन बार अपना नाम पुकारा: 'हे प्रभु, मैं सक्का, देवताओं का स्वामी हूँ! हे प्रभु, मैं सक्का, देवताओं का स्वामी हूँ!' जिस हद तक सक्का ने अपना नाम घोषित किया, उसी हद तक यक्ष और भी बदसूरत और विकृत होता चला गया, यहाँ तक कि वह वहीं गायब हो गया।

"तब, भिक्षुओं, अपने आसन पर बैठकर, तावतिंसा देवताओं को उपदेश देते हुए, देवताओं के स्वामी सक्का ने उस अवसर पर ये श्लोक पढ़े:

'मैं व्यथित मन वाला नहीं हूँ; न ही क्रोध के भंवर में आसानी से बह जाता हूँ।
मैं कभी लंबे समय तक क्रोधित नहीं होता; न ही क्रोध मुझमें बना रहता है। 660

'जब मैं क्रोधित होता हूँ तो मैं कठोर शब्द नहीं बोलता; और मैं अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करता।
मैं अपने आप को अच्छी तरह से संयमित रखता हूँ; अपने भले के लिए।" 661

---

269. सांबरी जादू (सांबरिमया)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक बार असुरों के स्वामी वेपचित्ति बीमार थे, बहुत कष्ट में थे। 662 तब देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) वेपचित्ति के पास उनकी बीमारी के बारे में पूछने आए। वेपचित्ति ने दूर से सक्का को आते देखा और उनसे कहा, 'हे देवों के स्वामी, मुझे ठीक कर दीजिए।'
[सक्का:] 'हे वेपचित्ति, मुझे संबरी जादू (शत्रु को मारने की विधि) सिखाइए।' 663
[वेपचित्ति:] 'हे महोदय, मैं असुरों से अनुमति लिए बिना यह नहीं सिखाऊंगा।'
"तब, भिक्षुओं, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने असुरों से पूछा,
'क्या मैं देवों के स्वामी सक्का को संबरी जादू सिखा सकता हूँ?' 'हे महोदय, उन्हें संबरी जादू न सिखाएं।'" 664

"तब, हे भिक्षुओं, असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने
देवों के स्वामी सक्का को श्लोक में संबोधित करते हुए कहा:

'हे मगहव, सक्का; देवों के राजा, सूजा के पति एक जादूगर को
भयानक नरक में भेजा जाता है; संबारा की तरह, सौ वर्षों के लिए।'" 665

---

270. अतिक्रमण (अक्काया)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर दो भिक्षुओं में झगड़ा हो गया और एक भिक्षु ने दूसरे के विरुद्ध अपराध किया। तब पहले भिक्षु ने दूसरे भिक्षु के समक्ष अपना अपराध स्वीकार किया, परन्तु दूसरे ने उसे क्षमा नहीं किया।
तब अनेक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक ओर बैठ गए और उन्हें सारी घटना बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, दो प्रकार के अपरिपक्व (नासमझ) होते हैं: एक वह जो अपराध को अपराध नहीं मानता; और दूसरा वह जो दूसरे के अपराध स्वीकार करने पर धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार उसे क्षमा नहीं करता। ये दो प्रकार के अपरिपक्व (नासमझ) हैं।
"भिक्षुओं, दो प्रकार के बुद्धिमान लोग होते हैं: एक वह जो अपराध को अपराध मानता है; और वह जो दूसरे के पाप स्वीकार करने पर, धर्म के अनुसार उसे क्षमा कर देता है। ये दो प्रकार के बुद्धिमान व्यक्ति हैं।

"एक बार अतीत में, भिक्षुओं, सक्का (इंद्र), देवों के स्वामी, सुधम्म सभा भवन में तावतिंसा देवों को उपदेश देते हुए, उस अवसर पर इस श्लोक का पाठ किया:

'क्रोध को अपने वश में रखो; अपनी मित्रता को भंग न होने दो।
निर्दोष व्यक्ति पर दोषारोपण न करो; फूट डालने वाली बातें न बोलो।
जैसे पर्वत हिमस्खलन; क्रोध दुष्ट लोगों को कुचल देता है।'" 667

---

271. नॉनएंगर (अकोढ़ा सं. अक्रोधा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, एक बार अतीत में देवों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने सुधम्म सभा भवन में तावतिंसा देवों को उपदेश देते हुए यह श्लोक पढ़ा:

'क्रोध को अपने ऊपर हावी न होने दो; जो क्रोधित हैं उन पर क्रोधित मत हो।
क्रोधहीनता और अहिंसा सदा निवास करती है; श्रेष्ठ जनों के हृदय में।
जैसे हिमस्खलन पर्वत को कुचल देता है; क्रोध दुष्टों को कुचल देता है।'" 668

संयुत्त निकाय का श्लोकों सहित ग्रंथ (सगथवग्ग) समाप्त हो गया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन2-निदानवग्गा-वेर2

SN2-कारण-कारण की पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का दूसरा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)
इस खंड में भगवान बुद्ध जन्म से मृत्यु और फिर पुनर्जन्म के जीवन चक्र के कारण-कार्य का वर्णन करते हैं। वे यहाँ पहले दो सूत्रों में कारण-कार्य को प्रतीत्यसमुत्पाद (आश्रित उत्पत्ति) के रूप में वर्णित करते हैं और फिर शेष सूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन करते हैं। आश्रित उत्पत्ति का विचार यह है कि कैसे एक चीज दूसरी चीज को जन्म देती है, जिससे पुनर्जन्म का अंतहीन चक्र चलता रहता है। लेकिन ध्यान विधि का उपयोग करके कोई भी व्यक्ति समाधि/ध्यान/ध्यान/ज़ेन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है और फिर आश्रित उत्पत्ति का अंत अनुभव कर सकता है, जो मोक्ष/मुक्ति/निर्वाण/मोक्ष का मार्ग है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
37: कुछ भी तुम्हारा नहीं है, शरीर भी नहीं; यह केवल पुराना कर्म है।
41: नरक और पुनर्जन्म के अन्य बुरे गंतव्यों से कैसे बचें और ज्ञानोदय की ओर सहज मार्ग कैसे सुनिश्चित करें।
63, 64: खाद्य पदार्थ, स्पर्श, चेतना और विज्ञान जैसे सांसारिक खतरे, अपने पुत्र का मांस खाने, खुले घाव, कोयले की खान और भाले से दंडित डाकू के समान हैं।

65: बुद्ध का मार्ग प्राचीन मुक्ति का मार्ग है। 66: बुद्ध
का मार्ग आंतरिक अन्वेषण का मार्ग है। 67:
मन, शरीर और चेतना एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, जैसे सरकंडों के दो ढेर एक दूसरे के सहारे खड़े हों।
95: बुद्ध द्वारा समाधि/ध्यान अवस्थाओं के संदर्भ में सात दिव्य तत्वों की व्याख्या की गई है।
100: सफलता के लिए ऊर्जा को जागृत रखें।
124-127: ब्रह्मांड का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है और यह युगों-युगों तक फैलता और सिकुड़ता रहता है।
128-131: एक युग अत्यंत लंबा होता है (विस्तार और फिर सिकुड़न का चक्र) और ऐसे अनेक युग घटित हो चुके हैं।
133: एक युग में किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म होते हैं कि उसकी हड्डियों से पर्वत बन सकता है।
137-142: पुनर्जन्म सत्य है; किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म हुए हैं कि सभी प्राणी एक दूसरे के माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री रहे हैं।
152: महत्वपूर्ण - 9 समाधि/ध्यान/सम्मोहन अवस्थाओं और 6 दिव्य शक्तियों के ज्ञान (अभिन) का वर्णन।
157-187: खतरे लाभ, सम्मान और प्रशंसा हैं
188-201: पुत्र राहुल को प्रवचन
202-222: अध्याय 8 से उन लोगों का वर्णन है जो अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण व्यथा भोगते हुए प्रेतों या भूतों (संस्कृत प्रेत) के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN1)   अगला (SN3) >>>>

अंतर्वस्तु

नमो तस्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही (सम्मा) और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: कार्य-कारण पर संबंधित प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}
(i) बुद्ध
1. आश्रित उत्पत्ति (Paticcasamuppada sans. Pratitya-samutpad)
(पतीच्चसमुत्पाद का संक्षिप्त रूप)

मैंने (भगवान बुद्ध से) ऐसा सुना है, आनंद कहते हैं। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"
"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का उपदेश दूंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं आगे बोलता हूँ।" - "जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
आश्रित उत्पत्ति
"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या)
के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है; स्पर्श (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; उपदान (संस्कृत: तृष्णा) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण दु:ख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दु:ख का मूल है । भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। निरोध: "परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है; चेतना समाप्त होने से मन-शरीर (नामरूप) समाप्त हो जाता है; मन-शरीर (नामरूप) समाप्त होने से छह इंद्रिय शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं।" छह इंद्रियों के निष्क्रिय होने के साथ, संपर्क का अंत (फस्सा/स्पर्श);

स्पर्श के समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है;
वेदना समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है; तृष्णा समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है;
आसक्ति समाप्त होने पर भाव समाप्त हो जाता है; भाव समाप्त होने पर पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है;
पुनर्जन्म
समाप्त
होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए।

नोट: (क) इसे समझने के लिए, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों को मान प्रदान करने के रूप में माना जा सकता है। और प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक स्पष्टीकरण दिया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञानोदय के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ के साथ-साथ दिव्य आनंद के कारण, जो कि सच्चा सुख है, उससे संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है।
(ग) (घ) विश्राम एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान/ज़ेन की दिव्य या अति-अवस्था के दौरान घटित होती है, जिसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरान 'सामान्य' गतिविधियों के निलंबन के रूप में समझा जा सकता है।
(घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/ध्यान) के दौरान एक व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से विश्राम की एक नई उन्नत अति-अवस्था में रूपांतरित हो सकता है और अति-अवस्था में होने पर, व्यक्ति इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है।
(ङ) भौतिक जगत में अति-अवस्था के सादृश्य के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन-कंडेनसेट से की जा सकती है जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है जब कुछ परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धाराएं संचारित कर सकते हैं और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है जब लेजर माध्यम में रूपांतरण (जनसंख्या व्युत्क्रमण) होता है, जिससे पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है, लेकिन इन्हें केवल सादृश्य के रूप में ही माना जाना चाहिए। यह विचार कि मनुष्य भी चेतना की कुछ अति-अवस्थाओं में रूपांतरित हो सकता है।
(f) अज्ञान को अति-अवस्था (अर्थात् गैर-निरस्ति या गैर-समाधि/ज्ञान/ज़ेन/सम्मोहन) को न जानने और अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है, दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है।
(जी) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-और-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख किया गया है।

---

2. आश्रित उत्पत्ति (विभंग) का विश्लेषण
(पटिच्चसमुत्पाद का विस्तृत विवरण; SN3-79 में और भी विस्तृत जानकारी)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत सिखाऊंगा और उसका विश्लेषण करूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और मनसिकारो, मैं बोलूंगा।" "
जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या)

के कारण संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) उत्पन्न होते हैं।" तृष्णा (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था और मृत्यु, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है । हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न कोटि के प्राणियों की वृद्धावस्था, उनका बूढ़ा होना, दांतों का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा का झुर्रीदार होना, शक्ति का क्षय होना, इंद्रियों का क्षय होना: यही वृद्धावस्था कहलाता है। विभिन्न प्रकार के प्राणियों का एकाकी होना, उनका नाश होना, विखंडन होना, लुप्त हो जाना, नश्वरता, मृत्यु, काल की समाप्ति, स्कंधों का विखंडन, शव का देह त्यागना: यही मृत्यु कहलाता है। 2 अतः इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था-मृत्यु कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, जन्म क्या है? विभिन्न प्राणियों का विभिन्न रूपों में जन्म, उनका जन्म होना, गर्भ में उतरना, उत्पत्ति, स्कंधों का प्रकटीकरण, इंद्रियों का प्राप्त होना। यही जन्म कहलाता है। 3

"और हे भिक्षुओं, अस्तित्व (भावो) क्या है? तीन प्रकार के अस्तित्व (भावो) हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, रूप-क्षेत्र का अस्तित्व, निराकार-क्षेत्र का अस्तित्व। यही अस्तित्व (भावो) कहलाता है। 4 "और हे भिक्षुओं

, आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) क्या है? चार प्रकार की आसक्ति हैं: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और प्रतिज्ञाओं से आसक्ति, आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। यही आसक्ति कहलाता है। 5

"और हे भिक्षुओं, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्या है?" भोग की ये छह श्रेणियाँ हैं: रूपों के प्रति भोग, ध्वनियों के प्रति भोग, गंधों के प्रति भोग, स्वादों के प्रति भोग, स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति भोग और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति भोग। इसे भोग (तन्हा संश्लेष) कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना, कान संपर्क (कान संपर्क) से उत्पन्न वेदना, नाक संपर्क (नाक संपर्क) से उत्पन्न वेदना, जीभ संपर्क (जीभ संपर्क) से उत्पन्न वेदना, शरीर संपर्क (शरीर संपर्क) से उत्पन्न वेदना और मन संपर्क (मन संपर्क) से उत्पन्न वेदना। इसे वेदना कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, संपर्क क्या है? संपर्क की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क और मन संपर्क। इसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कहते हैं।

"भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय शक्तियाँ क्या हैं? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। इन्हें छह इंद्रिय शक्तियाँ कहते हैं। और भिक्षुओं,

मनरूप क्या है? वेदना, अनुभूति, चेतना, संपर्क, मानसिक जागरूकता: इसे मन कहते हैं। चार महातत्व (पृथ्वी, वायु, जल और ऊष्मा) और इन चार महातत्वों से उत्पन्न रूप (धातु): इसे रूप कहते हैं। इस प्रकार, इस मन और इस रूप को एक साथ मनरूप कहते हैं।" 6.

भिक्षुओं, चेतना क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र-चेतना, कान-चेतना, नाक-चेतना, जीभ-चेतना, शरीर-चेतना और मन-चेतना। इसे चेतना कहते हैं।

भिक्षुओं, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) क्या हैं? संस्कार (व्यवहार) तीन प्रकार के होते हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार) , मौखिक संस्कार (व्यवहार) और मानसिक संस्कार (व्यवहार) । इन्हें संस्कार कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, अज्ञान क्या है? दुख को न जानना, दुख के कारण को न जानना, दुख के निवारण (निरोध) को न जानना, दुख के निवारण के मार्ग को न जानना। यही अज्ञान कहलाता है। 8 आश्रित

उत्पत्ति

"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के
कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-स्थिति) उत्पन्न होते हैं ; संस्कार (व्यवहार-स्थिति) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण भाव उत्पन्न होता है; जन्म (पुनर्जन्म) होता है ; जन्म (पुनर्जन्म) के कारण दुःख , वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है। भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। निरोध : लेकिन अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है। चेतना के समाप्त होने पर, मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का अंत हो जाता है; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने पर, छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने पर, स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है; स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, वेदना (संवेदना) का अंत हो जाता है; वेदना (वेदना) के समाप्त होने पर, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का अंत हो जाता है; तृष्णा (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के समाप्त होने पर, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का अंत हो जाता है; आसक्ति (भावो) के समाप्त होने पर, पुनर्जन्म (जन्म) का अंत हो जाता है।

पुनर्जन्म का चक्र समाप्त होने के साथ ही, वृद्धावस्था और मृत्यु का चक्र समाप्त होने पर, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का जन्म होता है।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।" 9

नोट: (क) इसे समझने के लिए, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों को मान प्रदान करने के रूप में माना जा सकता है। और प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो एआई तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक स्पष्टीकरण दिया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञानोदय के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो स्पष्ट अनुभव आधारित समझ के साथ-साथ दिव्य आनंद के कारण, जो भीतर सच्चा सुख (सुख) है, उसका संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है।
(ग) समाप्ति एक ऐसी घटना है जो दिव्य या अति-अवस्था समाधि/ध्यान अवस्था/ज़ेन के दौरान घटित होती है, जिसे इस प्रकार माना जा सकता है (घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/झान) के दौरान व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से एक नई उन्नत परम अवस्था
में परिवर्तित हो सकता है, और जब वह परम अवस्था में होता है, तो वह इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है। (ङ
) भौतिक जगत में परम अवस्था के सादृश्य के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन-कंडेनसेट से की जा सकती है जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है जब कुछ परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धाराएं संचारित कर सकते हैं और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है जब लेजर माध्यम में परिवर्तन (जनसंख्या व्युत्क्रमण) होता है, जिससे पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल इस विचार के सादृश्य के रूप में माना जाना चाहिए कि मनुष्य भी चेतना की कुछ परम अवस्थाओं में परिवर्तित हो सकते हैं।

(च) अज्ञान को न जानने और न अनुभव करने के रूप में समझा जा सकता है। अति अवस्था (अर्थात् गैर-निरस्ति या गैर-समाधि/झान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में अज्ञान की अवस्था, वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है।
(जी) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख है।

---

3. दो मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत और सही मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, गलत मार्ग क्या है?
अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं;
संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है;
चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं;
मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं;
छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है ;
स्पर्श (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है ;
वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है।" [उत्पन्न होता है];
आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) [उत्पन्न होता है];
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म [होता है];
पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है।

भिक्षुओं, इसे ही कुमार्ग कहते हैं।

"और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? अज्ञान के पूर्णतः क्षीण होने और
निरोध के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार
(अनिच्छुक-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है;
चेतना के अंत के साथ मन-शरीर-रूप (नामरूप) का अंत होता है;
मन-शरीर-रूप (नामरूप) के अंत के साथ छह इंद्रियों का अंत होता है;
छह इंद्रियों के समाप्त होने पर स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त हो जाता है;
स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है;
वेदना समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है;
तृष्णा समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है;
आसक्ति समाप्त होने पर भाव समाप्त हो जाता है; जन्म
समाप्त
होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है।
यही समस्त दुःख का निरोध है। हे

भिक्षुओं, यही सही मार्ग कहलाता है।

---

4. विपस्सी (प्रारंभिक बुद्ध)
सावत्थी में। [बुद्ध:]
(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, विपस्सी बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब वे अभी भी एक बोधिसत्व थे और पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुए थे, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब प्राप्त होगी?'

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है (पच्चय सं. प्रत्यय)।' 14

"तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किसके कारण होता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब अस्तित्व का कारक होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व है।'

"फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका अस्तित्व (भावो) कैसे उत्पन्न होता है? अस्तित्व (भावो) किसके कारण होता है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' फिर, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब आसक्ति (उपदान संस्कृत आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका आसक्ति कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण होती है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब तृष्णा होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब वेदना होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा का कारण वेदना है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना (संवेदना) कैसे उत्पन्न होती है? वेदना (संवेदना) किस कारण उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है, तो वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) का कारण संपर्क (फस्सा/स्पर्श) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कैसे उत्पन्न होता है (पच्चया)? संपर्क (फस्सा/स्पर्श) किस कारण उत्पन्न होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक गहन अंतर्दृष्टि (मंसिकारा) प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब छह इंद्रियां अस्तित्व में आती हैं? छह इंद्रियों का कारण (पच्चया) क्या है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; इन छह इंद्रिय शक्तियों का कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब चेतना होती है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' फिर, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-स्थिति) होते हैं, तो चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-स्थिति) है।' 15

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संस्कार (व्यवहार-स्थिति) कैसे उत्पन्न होते हैं? संस्कार (व्यवहार-स्थिति) किसके कारण उत्पन्न होते हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व

में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त की: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) का कारण अज्ञान है।

इस प्रकार अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) को कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है) "

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व में पहले कभी न सुने गए धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निवारण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती; पुनर्जन्म के रुकने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व ही नहीं है तो पुनर्जन्म क्यों नहीं होता? किसके रुकने से पुनर्जन्म रुकता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ:
'जब अस्तित्व का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व के कारण (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व के कारण (भावो) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब आसक्ति नहीं होती (उपदान संस. आसक्ति), तो अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या आसक्ति उत्पन्न नहीं होती?' किस चीज के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है? तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब तृष्णा नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से तृष्णा का निरोध होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वेदना कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से वेदना का निरोध होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी निरोध हो जाता है।"

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में ही नहीं है, उससे संपर्क कैसे नहीं होता? किसके समाप्त होने से संपर्क समाप्त होता है?" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के निष्क्रिय होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) भी समाप्त हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्व में नहीं होती, तो छह इंद्रियां कैसे अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके निष्क्रिय होने से छह इंद्रियों का निष्क्रिय होना संभव होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान

कार्य का रुक जाना), तब छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।

" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) कैसे अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?" तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से विपस्सी बोधिसत्व में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व उपलब्धि प्राप्त की:
... 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने के साथ ही मन-शरीर रूप (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या (साधारण) चेतना उत्पन्न नहीं होती? किसके निरासण से चेतना का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना उत्पन्न नहीं होती; संस्कार (व्यवहार-आदत) के निरासण से (साधारण) चेतना का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? किसके निरासण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि (पन्ना) उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है।'

"इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के निवारण से चेतना का निवारण होता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का निवारण होता है।
" "'निराशा, निराशा' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

---

5. सिखी (एक और पूर्व बुद्ध)
सिख धर्म में बुद्ध के ज्ञानोदय और अरहत के प्रति सही जागृति से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

6 (6) वेसभु (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
वेस्साभू बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

7 (7) काकुसंध (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
काकुसंध बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

8 (8) कोनागमना (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
कोनागमना बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के रूप में सही ढंग से जागृत होने से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

9 (9) कस्पा (एक और पूर्व बुद्ध)
कश्यप बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के सही ज्ञानोदय से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

10 (10) गौतम महान शाक्य ऋषि (वर्तमान बुद्ध)

(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, मुझे, अपने ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब मैं अभी भी एक बोधिसत्व था और पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट हो जाता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?'

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न होती है? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त हुई: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' 14

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब अस्तित्व (भावो) होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व (भावो) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो अस्तित्व (भावो) कैसे होता है? अस्तित्व (भावो) किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब आसक्ति (उपदान संस. आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब वेदना (संवेदना) होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; " लालसा का कारण वेदना है।

" तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना कैसे उत्पन्न होती है? वेदना किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से यह ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क होता है, तब वेदना उत्पन्न होती है; वेदना का कारण संपर्क है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क कैसे उत्पन्न होता है? संपर्क किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो छह इंद्रियां कैसे उत्पन्न होती हैं? छह इंद्रियां किसके द्वारा उत्पन्न होती हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं; छहों इंद्रियों का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो मन और शरीर (नामरूप) कैसे उत्पन्न होता है? मन और शरीर (नामरूप) का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब चेतना होती है, तो मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) है।' 15

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब कुछ विद्यमान होता है, तब संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं? संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) का कारण अज्ञान ही है।'

"इस प्रकार अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) के कारण चेतना... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है)

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है? किसके निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है; पुनर्जन्म के निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या होता है? किसके निरासण से पुनर्जन्म का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
'जब अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व (भावो) के कारण के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब आसक्ति नहीं होती, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से तृष्णा का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के समाप्त होने से तृष्णा का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो वेदना क्यों नहीं उत्पन्न होती? किसके समाप्त होने से वेदना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या संपर्क स्थापित नहीं होता? किसके विलुप्त होने से संपर्क का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) की चेतना (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के विलुप्त होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का विलुप्त होना संभव हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके विलुप्त होने से छह इंद्रियों का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य का रुक जाना), तो छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) नहीं होती, तो मन-शरीर (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या (साधारण) चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना अस्तित्व में नहीं आती; संस्कार (व्यवहार-आधार) के समाप्त होने से (सामान्य) चेतना का भी अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो संस्कार (व्यवहार-आधार) कैसे उत्पन्न नहीं होते? किसके समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) द्वारा मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत हो जाता है।'

इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के समाप्त होने के साथ ही चेतना का अंत हो जाता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।
'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के विषय में, जो पहले कभी सुने नहीं गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

(ii) पोषण अनुभाग (अहरवग्गो)
11. पोषण (आहार)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। 17 वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए हैं। 18

"भिक्षुओं, इन चार प्रकार के पोषणों का स्रोत क्या है, इनका उद्गम क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं?" इन चारों प्रकार के पोषक तत्वों का स्रोत तृष्णा है; इनका जन्म और उत्पत्ति तृष्णा से ही होती है। 19

"और इस तृष्णा का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति किससे होती है? इस तृष्णा का स्रोत वेदना है; इसकी उत्पत्ति वेदना से ही होती है।

और इस वेदना का स्रोत क्या है...? वेदना का स्रोत स्पर्श है... और इस स्पर्श का स्रोत क्या है...? स्पर्श का स्रोत छह इंद्रियां हैं... और इन छह इंद्रियों का स्रोत क्या है...? छह इंद्रियों का स्रोत नामरूप है... और इस नामरूप का स्रोत क्या है...? मन और शरीर (नामरूप) का

स्रोत चेतना है... और इस चेतना का स्रोत क्या है...? चेतना का स्रोत संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) है... और इन संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत क्या है, इनकी उत्पत्ति क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं? संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत अज्ञान है, इनकी उत्पत्ति अज्ञान से होती है; ये अज्ञान से ही उत्पन्न और निर्मित होते हैं।

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आदत) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का भी अंत हो जाता है... यही इस समस्त दुख का अंत है। (1 और 2 के समान)

---

12. मोलियाफगना
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, चेतना। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए आवश्यक हैं।" 20

यह सुनकर पूज्य मोलियाफग्गुण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "पूज्यवर, चेतना नामक पोषण का सेवन कौन करता है?" 21

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "मैं यह नहीं कहता कि 'कोई सेवन करता है।'" 22 यदि मैं कहूँ, 'कोई उपभोग करता है,' तो उस स्थिति में यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन उपभोग करता है?' परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, पोषण चेतना [एक कारण] क्या है?' 23 तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है: 'पोषण चेतना भविष्य के नवगठित अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) के उत्पादन का कारण है। 24 जब जो अस्तित्व में आया है वह विद्यमान होता है, तो छह इंद्रियाँ [अस्तित्व में आती हैं]; 25 छह इंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है।'

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन संपर्क करता है?"
"यह एक वैध प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया।
"मैं यह नहीं कहता, 'कोई संपर्क करता है।'" यदि मैं कहूँ, 'संपर्क स्थापित होता है,' तो यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कौन स्थापित करता है?' परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, संपर्क किस कारण से होता है?' तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है: 'छह इंद्रियों के कारण संपर्क स्थापित होता है; संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है।'

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन अनुभव करता है?"
"यह वैध प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'अनुभूति स्थापित होती है।' यदि मैं कहूँ, 'अनुभूति स्थापित होती है,' तो यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन अनुभव करता है?' परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, वेदना किस कारण से उत्पन्न होती है?'" यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है: "संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है।"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन तृष्णा करता है?"
“यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है,” भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। “मैं यह नहीं कहता, ‘कोई तृष्णा करता है।’ यदि मैं कहूँ, ‘कोई तृष्णा करता है,’ तो यह एक मान्य प्रश्न होगा: ‘हे प्रभु, कौन तृष्णा करता है?’ परन्तु मैं ऐसा नहीं कहता। चूँकि मैं ऐसा नहीं कहता, यदि कोई मुझसे पूछे, ‘हे प्रभु, तृष्णा किस कारण से उत्पन्न होती है?’ तो यह एक मान्य प्रश्न होगा। इसका मान्य उत्तर यह है:
‘संवेदना (वेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है।’”

[मोलियाफाग्गुण:] “हे प्रभु, कौन आसक्ति करता है?”
“यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है,” भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। “मैं यह नहीं कहता, ‘कोई आसक्ति करता है।’ यदि मैं कहूँ, ‘कोई आसक्ति करता है,’ तो यह एक मान्य प्रश्न होगा: ‘हे प्रभु, कौन आसक्ति करता है?’” लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। चूंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, इसलिए यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, आसक्ति किस कारण से उत्पन्न होती है?' तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर यह है:
'लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;

आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है।'......
यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"लेकिन, फाग्गुणा, छह इंद्रियों के संपर्क के लिए शेषफल के साथ लुप्त होने और निरोध (निरोध) होने से संपर्क का अंत होता है; संपर्क (फस/स्पर्श) के अंत से संवेदना (वेदना) का अंत होता है; संवेदना (वेदना) के अंत से लालसा का अंत होता है; लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के अंत से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का अंत होता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व (भावो) का अंत होता है।" अस्तित्व (भावो) के समाप्त होने के साथ ही पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के समाप्त होने के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। इस प्रकार इस समस्त दु:ख का अंत (निरोध) हो जाता है। (1 और 2 के समान)

---

13. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्राह्मण)
सावत्थी में। भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते; 27 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (वेदना)... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर रूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या मोक्ष के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। ब्राह्मणत्व। 28

"परन्तु, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

14. तपस्वी और ब्राह्मण (2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के बारे में जो इन धम्मों (धर्म, मार्ग), इनके उद्गम, इनके निरोध और इनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: वे कौन से धम्म (मार्ग, नियम) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निरोध को वे नहीं समझते और जिनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को वे नहीं समझते?

वे वृद्धावस्था और मृत्यु को नहीं समझते, न ही इसके उद्गम को, न इसके निरोध को और न इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को।" वे पुनर्जन्म, अस्तित्व (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन-शरीर (नामरूप), चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उनके उद्गम, उनके निवारण और निवारण के मार्ग को नहीं समझते। ये वे धर्म (नियम, मार्ग) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निवारण को वे नहीं समझते और जिनके निवारण के मार्ग को वे नहीं समझते।

"मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी या ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों, इनके उद्गम, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं; वे कौन से धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्गम को वे समझते हैं, जिनके निवारण को वे समझते हैं और जिनके निवारण के मार्ग को वे समझते हैं?"

वे वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। ये वे धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्भव, निवारण और निवारण के मार्ग को वे समझते हैं।

मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिनय) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

15. कच्चनागोट्टा
सावत्थी में, पूज्य कच्चनगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहते हैं, 'सही दृष्टि, सही दृष्टि।' पूज्यवर, सही दृष्टि किस प्रकार है?"

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर द्वैत पर निर्भर है - अस्तित्व (भावो) और गैर-अस्तित्व की धारणा पर। 29 परन्तु जो ध्यान में संसार की उत्पत्ति को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में गैर-अस्तित्व की कोई धारणा नहीं होती। और जो ध्यान में निरोध को सही अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में अस्तित्व (भावो) की कोई धारणा नहीं होती। 30

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर आसक्ति, व्यथा (उपादान सं. आसक्ति) और निष्ठा से जकड़ा हुआ है। 31 परन्तु यह (सही दृष्टि वाला) व्यक्ति उस आसक्ति, मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठा और अंतर्निहित प्रवृत्ति के कारण न तो संलग्न होता है और न ही उससे आसक्त होता है; वह 'मैं स्वयं' के बारे में कोई रुख नहीं अपनाता।" 32 उसे इस बात में कोई दुविधा या संदेह नहीं है कि जो कुछ उत्पन्न होता है वह केवल दुख का उत्पन्न होना है, और जो कुछ समाप्त होता है वह केवल दुख का समाप्त होना है। इस विषय में उसका ज्ञान दूसरों से स्वतंत्र है। कच्चना, सही दृष्टिकोण इसी प्रकार है। 33

"'सब कुछ विद्यमान है': कच्चाना, यह एक चरम सीमा है। 'सब कुछ विद्यमान नहीं है': यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं:
'अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' (जैसा कि 1 और 2 में है)

---

16. धर्म/मार्ग पर वक्ता (धम्मकथिका)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:
"हे पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) का वक्ता, धर्म का वक्ता।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म का वक्ता होता है?"

"भिक्षु, यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निबिद्दा) और उसके निवारण (निरोध) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो वह धम्म का वक्ता भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 34 यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त हो जाती है, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 35

"भिक्षु, यदि कोई पुनर्जन्म के प्रति घृणा (निबिद्दा) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है... अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के निवारण और समाप्ति के लिए अभ्यास करने वाला भिक्षु धम्म का वक्ता कहलाने योग्य है। यदि कोई अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से अभ्यास कर रहा है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त कर ली जाए, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है।

---

17. नग्न तपस्वी कस्सपा (असेलकस्सपा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। नग्न तपस्वी कश्यप ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा। उन्हें देखकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा: "हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, क्या वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेंगे?"

[बुद्ध:] "यह प्रश्न पूछने का सही समय नहीं है, कश्यप। हम घरों के बीच प्रवेश कर चुके हैं।" 36
नग्न तपस्वी कस्सपा ने दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) से कहा, "हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, यदि वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।"
[बुद्ध:] "कस्सापा, यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। हम घरों में प्रवेश कर चुके हैं।"

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हम गुरु गौतम से अधिक प्रश्न नहीं पूछना चाहते।”
[बुद्ध:] “तो कस्सपा, जो चाहो पूछो।”
[अचेलकस्सापा:] “गुरु गौतम, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?”
[बुद्ध:] “नहीं कस्सपा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकस्सापा:] “तो, गुरु गौतम, क्या दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होता है?”
[बुद्ध:] “नहीं कस्सपा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख स्वयं और परावर्तित दोनों होते हैं?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर, गुरु गौतम, क्या दुख संयोगवश उत्पन्न होता है, न तो स्वयं और न ही परावर्तित?" 37
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सप; दुख है।"
[अचेलकसप:] "तो क्या गुरु गौतम दुख को नहीं जानते और नहीं देखते?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं दुख को नहीं जानता और नहीं देखता, कस्सप। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।"

[अचेलकस्सापा:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'हे गौतम गुरु, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी और द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह दोनों द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी के द्वारा भी उत्पन्न नहीं होता?' प्रत्येक स्थिति में आप यही कहेंगे:
'ऐसा नहीं है, कस्सपा।' जब आपसे पूछा जाए: 'तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सपा; दुख है।' जब पूछा जाए: 'तो क्या गुरु गौतम दुख को जानते और देखते नहीं हैं?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं दुख को जानता और देखता नहीं हूँ, कस्सपा। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मुझे दुख का अर्थ समझाएँ। भगवान (बुद्ध) मुझे दुख के बारे में सिखाएँ। 38

[बुद्ध:] कस्सपा, [यदि कोई सोचे,] 'कर्म करने वाला वही है जो [परिणाम] भोगता है' [तो वह कहता है] आदि से विद्यमान एक के संदर्भ में: 'दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है।' जब कोई इस प्रकार कहता है, तो यह शाश्वतवाद के समान है। 39 परन्तु, कस्सपा, [यदि कोई यह सोचे,] कि कर्म करने वाला एक है, परिणाम भोगने वाला दूसरा है, [तो वह कहता है] वेदना से ग्रस्त व्यक्ति के संदर्भ में: 'दु:ख किसी और के द्वारा उत्पन्न होता है।' जब कोई इस प्रकार कहता है, तो यह विनाशवाद के समान है। 40 इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धर्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 41 'अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दु:ख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णत: मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के निवारण से, चेतना के निवारण से... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का निवारण होता है।" (जैसा कि 1 और 2 में है)

यह सुनकर नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय गुरुदेव! महान, आदरणीय गुरुदेव! भगवान (बुद्ध) ने धर्म को अनेक प्रकार से स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को मार्ग दिखा रहे हों, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधकार में दीपक जला रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ।" क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है, क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है? 42

[बुद्ध:] "कस्सपा, जो पहले किसी अन्य संप्रदाय का था और इस धम्म और अनुशासन में दीक्षा (पबज्जा) और उच्चतर दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, चार महीने की परिवीक्षा पर रहता है। चार महीने के अंत में, यदि भिक्षु उससे संतुष्ट हों, तो वे चाहें तो उसे दीक्षा (पबज्जा) और भिक्षु की अवस्था में उच्चतर दीक्षा दे सकते हैं। लेकिन मैं व्यक्तिगत भिन्नताओं को मान्यता देता हूँ।" 43

[अचेलकस्सापा:] "हे पूज्यवर, यदि कोई पूर्व में किसी अन्य संप्रदाय का सदस्य, जो इस धर्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में दीक्षा और उच्चतर दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, चार महीने की परिवीक्षा पर रहे, और यदि चार महीने के अंत में भिक्षु उससे संतुष्ट हों, तो वे चाहें तो उसे दीक्षा और उच्चतर दीक्षा देकर भिक्षु का दर्जा प्रदान करें, तो मैं चार साल की परिवीक्षा पर रहूंगा। चार साल के अंत में, यदि भिक्षु मुझसे संतुष्ट हों, तो वे चाहें तो मुझे दीक्षा और उच्चतर दीक्षा देकर भिक्षु का दर्जा प्रदान करें।"

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा प्राप्त की और उपसंपदा प्राप्त की। और शीघ्र ही, उच्च दीक्षा प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य कस्सपा ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य कस्सपा अरहंतों में से एक बन गए। 44

---

18 (8) टिंबारुका

श्रावस्ती में, तपस्वी तिंबरुक भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले:

[तिंबरुक:] "हे गौतम जी, क्या सुख और दुख स्वयं उत्पन्न होते हैं?" 45

[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [

तिंबरुक:] "तो हे गौतम जी, क्या सुख और दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होते हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिंबरुक:] "तो फिर, हे गौतम जी, क्या सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिम्बारुका," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिम्बारुका:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख नहीं हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि सुख और दुख नहीं हैं, तिम्बारुका; सुख और दुख हैं।" [तिम्बारुका:] "तो क्या गुरु गौतम सुख और दुख को जानते और देखते नहीं हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुख को जानता और देखता नहीं हूँ, तिम्बारुका। मैं सुख और दुख को जानता हूँ, मैं सुख और दुख को देखता हूँ।" [तिम्बारुका:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'ऐसा कैसे है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख स्वयं उत्पन्न होते हैं?' या 'क्या वे किसी और द्वारा उत्पन्न होते हैं?' [23] या 'क्या वे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं?' या 'क्या वे किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं होते?' हर बार आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है, तिम्बारुका।' जब आपसे पूछा जाए: 'तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख नहीं हैं?'" आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि सुख और दुख का कोई अस्तित्व नहीं है, तिंबारुका; सुख और दुख दोनों हैं।' जब पूछा जाता है: 'तो क्या गुरु गौतम सुख और दुख को नहीं जानते और न ही देखते हैं?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुख को नहीं जानता और न ही देखता हूँ, तिंबारुका। मैं सुख और दुख को जानता हूँ, मैं सुख और दुख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुख का अर्थ समझाएँ। कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुख के बारे में सिखाएँ।

[बुद्ध:] "तिम्बारुका, [यदि कोई यह सोचे,] 'संवेदना और उसे महसूस करने वाला एक ही हैं,' [तो वह] आदि से विद्यमान एक के संदर्भ में कहता है: 'सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं।' मैं ऐसा नहीं कहता। 46 परन्तु, तिम्बारुका, [यदि कोई यह सोचे,] 'संवेदना एक है, उसे महसूस करने वाला दूसरा है,' [तो वह] संवेदना से ग्रस्त एक के संदर्भ में कहता है: 'सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं।'" मैं भी ऐसा नहीं कहता। 47 इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत होता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।' (जैसा कि 1 और 2 में है)

यह सुनकर, नग्न तपस्वी तिंबरुक ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम!... मैं मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।

19. बुद्धिमान और मूर्ख (बालपंडित)
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए अपरिष्कृत लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है। केवल छह इंद्रियां हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - अपरिष्कृत व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। 48

"भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए बुद्धिमान लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है।" केवल छह इंद्रियाँ हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - ज्ञानी व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। हे भिक्षुओं, यहाँ क्या अंतर है, क्या भेद है, ज्ञानी व्यक्ति और अपरिष्कृत (नासमझ) व्यक्ति में क्या अंतर है? "

हे पूज्यवर, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। 49 उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

[बुद्ध:] "तो सुनो और ध्यान रखो, हे भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"
"जी हे पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अज्ञान से अवरुद्ध और तृष्णा से जकड़े अपरिष्कृत (नासमझ) लोगों के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। अज्ञानी व्यक्ति के लिए अज्ञान का त्याग नहीं हुआ है और उसकी व्यथा पूर्णतः नष्ट नहीं हुई है। इसका कारण क्या है? क्योंकि अज्ञानी व्यक्ति ने दुखों के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है। इसलिए, शरीर के टूटने पर अज्ञानी व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है। नया शरीर धारण करने पर भी वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होता; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होता; दुखों से मुक्त नहीं होता, मैं कहता हूँ।

भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए ज्ञानी पुरुष के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। ज्ञानी पुरुष ने उस अज्ञान का त्याग कर दिया है और उस तृष्णा का पूर्णतः नाश कर दिया है। इसका कारण क्या है? क्योंकि ज्ञानी पुरुष ने दुख के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है। इसलिए, शरीर के विखंडन के साथ, ज्ञानी पुरुष नया शरीर धारण नहीं करता। नया शरीर धारण न करने के कारण वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह दुख से मुक्त हो जाता है।
"हे भिक्षुओं, यही ज्ञानी और अपरिष्कृत व्यक्ति के बीच का भेद, यही अंतर, यही अंतर है, अर्थात् ब्रह्मचर्य का जीवन जीना।" 50

20. कारण (पक्काय सं. प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) और उससे उत्पन्न होने वाली घटनाओं (धम्म) का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, यह प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है? 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है': तथागतों का उद्भव हो या न हो, वह तत्व (धातु) फिर भी विद्यमान रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित मार्ग, विशिष्ट कारण। 51 तथागत इसे जागृत करते हैं और इसे पार कर लेते हैं। 52 ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसे सिखाते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसे प्रकट करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसे स्पष्ट करते हैं। और वे कहते हैं: 'देखो! हे भिक्षुओं, पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'" 53

"'अस्तित्व (भावो) को कारण मानकर, पुनर्जन्म'... 'चिपकने (उपादान सं. असक्ति) को कारण मानकर, अस्तित्व(भावो)'... 'तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) को कारण मानकर, चिपटना'... 'संवेदना (वेदना) को कारण मानकर, तृष्णा'... 'संवेदना के संपर्क (वस्तु से इंद्रियों का संपर्क; फस्सा/स्पर्श) के कारण, संवेदना (वेदना)' ... 'छह इंद्रियों के संपर्क के कारण' ... 'नामरूप (मन और शरीर का रूप) के कारण, छह इंद्रियां' ... 'चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण, मन और शरीर का रूप (नामरूप)' ... 'संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) के कारण, चेतना' ... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण, संस्कार (व्यवहार)': तथागतों का उद्भव हो या न हो, वह तत्व फिर भी बना रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित मार्ग, विशिष्ट कारण। तथागत इसे जागृत करते हैं और [26] इसे पार कर जाते हैं। ऐसा

करने के बाद, वह इसकी व्याख्या करते हैं, इसे सिखाते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसे स्पष्ट करते हैं। और वे कहते हैं: 'देखो! अज्ञान को कारण मानकर, भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आधार) (उत्पन्न होते हैं)।' (जैसा कि 1 और 2 में है)
"इस प्रकार, भिक्षुओं, इसमें जो वास्तविकता है, जो त्रुटिहीनता है, जो अन्यथा नहीं है, जो विशिष्ट कारण है: इसे प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) कहा जाता है। 54

भिक्षुओं, ये आश्रित उत्पत्ति वाली घटनाएँ (धम्म) क्या हैं? भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु अनित्य, संखतो (अस्थायी), आश्रित उत्पत्ति वाली, विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होने और निरोध के अधीन हैं। जन्म अनित्य है... अस्तित्व (भावो) अनित्य है... आसक्ति अनित्य है... तृष्णा (तन्हा संस/तृष्णा) अनित्य है... वेदना (संवेदना) अनित्य है... स्पर्श (संपर्क) अनित्य है... छह इंद्रियाँ अनित्य हैं... मन और शरीर (नामरूप) अनित्य हैं... चेतना (अस्थायी) अनित्य है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) अनित्य हैं... अज्ञान अनित्य, संखतो (अस्थायी), आश्रित उत्पत्ति वाली और निरोध के अधीन है। विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होना और समाप्ति। हे भिक्षुओं, इन्हें आश्रित उत्पत्ति (धम्म) कहा जाता है।

"हे भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इस आश्रित उत्पत्ति और इन आश्रित उत्पत्ति (धम्म) को स्पष्ट रूप से देख लेता है, तो यह असंभव है कि वह अतीत में वापस जाकर सोचे: 'क्या मैं अतीत में विद्यमान था? क्या मैं अतीत में विद्यमान नहीं था? मैं अतीत में क्या था? मैं अतीत में कैसा था? अतीत में मैं क्या था और क्या बन गया?' या यह कि वह भविष्य में आगे बढ़कर सोचे: 'क्या मैं भविष्य में विद्यमान रहूंगा? क्या मैं भविष्य में विद्यमान नहीं रहूंगा? मैं भविष्य में क्या होऊंगा? मैं भविष्य में कैसा होऊंगा? मैं क्या था और क्या बन जाऊंगा?' या यह कि वह वर्तमान के बारे में आंतरिक रूप से भ्रमित हो जाए: 'क्या मैं विद्यमान हूं? क्या मैं विद्यमान नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं?' यह प्राणी कहाँ से आया है और कहाँ जाएगा?' 56

"इसका क्या कारण है [कि यह असंभव है]? क्योंकि, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य ने सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुत्पाद) और इन आश्रित उत्पत्ति (धम्म) को स्पष्ट रूप से देखा है।"

(iii) दस शक्तियां अनुभाग (दसबालावग्गो)
21. दस शक्तियाँ (1) (दासबाला1)
सावत्थी में। [बुद्ध:] "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान धारण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 57 'ऐसा है रूप, ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है संवेदना (वेदना), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है अनुभूति (संज्ञा), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसे हैं संस्कार (आक्रामक व्यवहार), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय। 58 अतः जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान हो जाता है। 59 अर्थात्, इसके विद्यमान होने पर अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आधारभूतता) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)। इसी प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 और 2 में है)।

---

22. दस शक्तियाँ (2) (दासबाला2)
सावत्थी में, "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान ग्रहण करते हुए सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 'ऐसा है रूप... (जैसा कि 21 में है)... इस समस्त दुख का यही निवारण (निरोध) है।' भिक्षुओं

, इस प्रकार मैंने धर्म (मार्ग, नियम) की अच्छी तरह व्याख्या की है, उसे स्पष्ट किया है, प्रकट किया है, प्रकट किया है, और उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं।" 60 हे भिक्षुओं, जब मैंने इस प्रकार धम्म की अच्छी तरह व्याख्या कर दी है, उसे स्पष्ट कर दिया है, प्रकट कर दिया है, उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं, तो यह उस कुल के अनुयायी के लिए पर्याप्त है जिसने विश्वास से दीक्षा ली है, ताकि वह अपनी ऊर्जा (वीर्य) को इस प्रकार जागृत कर सके: 'इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, और मेरे शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जा को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति से, पुरुष ऊर्जा शक्ति से, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।' 61

भिक्षुओं, आलसी व्यक्ति दुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से दूषित रहता है, और वह बड़े पुण्य का उपेक्षित रहता है। 62 परन्तु ऊर्जावान व्यक्ति सुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से विरक्त रहता है, और वह बड़े पुण्य को प्राप्त करता है। निम्नतर के द्वारा परम को प्राप्त नहीं किया जाता, बल्कि परम के द्वारा ही परम को प्राप्त किया जाता है। 63 भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन मलाई के पेय के समान है; गुरु उपस्थित हैं। 64 अतः, भिक्षुओं, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक असिद्ध को सिद्ध करने के लिए अपनी ऊर्जा को जागृत करो, [इस विचार के साथ]: 'इस प्रकार हमारा यह दीक्षा संस्कार निष्फल नहीं, बल्कि फलदायी और उपजाऊ होगा; और जब हम दूसरों द्वारा दिए गए वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री का उपयोग करते हैं, तो उनके द्वारा हमारे लिए की गई ये सेवाएँ उनके लिए बहुत फलदायी और लाभकारी होंगी। 65 इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए:

"हे भिक्षुओं, अपने हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; दूसरों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; और दोनों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है।" 66

---

23. निकटवर्ती कारण (उपनिषद)
सावत्थी, 67 पर: "भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खया/क्षय) उसे होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति, विपश्यना ध्यान का संदर्भ), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में), उसके लिए विकारों का नाश होता है? 'ऐसा रूप है, ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा (सन्ना, संज्ञा) है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदतियाँ) हैं... ऐसी चेतना (विन्नान, संस्कृत विज्ञान), ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है': जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसके लिए विकारों का नाश होता है।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि नाश के संबंध में नाश (खया/क्षय) के ज्ञान का एक निकटवर्ती कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और विनाश के ज्ञान का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)। 68

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस मुक्ति का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और मुक्ति का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वैराग्य।

मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस वैराग्य का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और वैराग्य का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: घृणा (निब्बिदा)।"

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि घृणा का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और घृणा का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: धम्मों (नियम, मार्ग और अनुभव) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि धम्मों का वास्तविक ज्ञान और दर्शन का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और धम्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि समाधि (सम्मोहन) अवस्था का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और समाधि (सम्मोहन) अवस्था का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: सुख।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि सुख का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और सुख का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: शांति।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और शांति का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: परमानंद (पीति/प्रीति)।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि परमानंद (पीति/प्रीति) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और परमानंद का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: प्रसन्नता।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि प्रसन्नता का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और प्रसन्नता का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विश्वास।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आस्था का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और आस्था का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: दुख। 69

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दुख का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और दुख का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पुनर्जन्म।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पुनर्जन्म का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और पुनर्जन्म का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अस्तित्व का कारक (भाव)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अस्तित्व के कारक (भाव) का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और अस्तित्व के कारक (भाव) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आसक्ति का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और आसक्ति का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा) का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और तृष्णा का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वेदना (संवेदना)।

"वेदना के लिए, यह कहना चाहिए: इंद्रियों का विषय से संपर्क। संपर्क के लिए: छह इंद्रिय शक्तियाँ। छह इंद्रिय शक्तियों के लिए: मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)। मन और शरीर के स्वरूप के लिए: चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। चेतना के लिए: संस्कार (आक्रामक व्यवहार)।

" "मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि संस्कार (व्यवहार) का भी एक निकटवर्ती कारण है; उनमें निकटवर्ती कारण का अभाव नहीं है। और संस्कार (व्यवहार) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहना चाहिए: अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)।"

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है; चेतना को मुख्य कारण मानकर मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) को मुख्य कारण मानकर छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों को मुख्य कारण मानकर स्पर्श उत्पन्न होता है; स्पर्श (फस/स्पर्श) को मुख्य कारण मानकर संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) को मुख्य कारण मानकर तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; तृष्णा को मुख्य कारण मानकर आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति को मुख्य कारण मानकर अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) को मुख्य कारण मानकर पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म को मुख्य कारण मानकर दुख उत्पन्न होता है; दुख को मुख्य कारण मानकर विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास को मुख्य कारण मानकर प्रसन्नता उत्पन्न होती है; प्रसन्नता को मुख्य कारण मानकर निकटवर्ती कारण, आनंद (पीति/प्रीति); आनंद को निकटवर्ती कारण मानकर, शांति (पसद्धि/प्रशब्धि); शांति को निकटवर्ती कारण मानकर, सुख (सुख); सुख को निकटवर्ती कारण मानकर, समाधि (सम्मोहन) अवस्था; समाधि (सम्मोहन) अवस्था को निकटवर्ती कारण मानकर, धर्मों (नियम, मार्ग) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन; धर्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन को निकटवर्ती कारण मानकर, घृणा (निब्बिद); घृणा को निकटवर्ती कारण मानकर, वैराग्य; वैराग्य को निकटवर्ती कारण मानकर, मुक्ति (विमुक्ति/विमुक्ति); मुक्ति को निकटवर्ती कारण मानकर, विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय)।

"जैसे, भिक्षुओं, जब पर्वत की चोटी पर भारी मात्रा में वर्षा होती है, तो पानी ढलान के साथ बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; इनके भर जाने से तालाब भर जाते हैं; ये सब भर जाने पर झीलें भर जाती हैं; ये सब भर जाने पर नदियाँ भर जाती हैं; और ये सब भर जाने पर विशाल सागर भर जाता है; 70

इसी प्रकार, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... मुक्ति को मुख्य कारण मानकर विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय) उत्पन्न होता है।

24. अन्य संप्रदायों के संन्यासी (अन्नातिथिया सं. अन्या-तेत्रैया)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन) में।
(i)

फिर, सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।"

तब पूज्य सारिपुत्त अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उससे कहा:

“मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 71 अब, मित्र सारिपुत्त, तपस्वी गौतम इस विषय में क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें तपस्वी गौतम द्वारा कही गई बात को ही बताना है और तथ्यों के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं करनी है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?” 72

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (विषय से स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। 73 इसी प्रकार, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण होता है। [34] इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं और न ही दूसरे के द्वारा, वह भी संपर्क (पच्चाय) के कारण होता है।

"मित्रों, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा, उनके लिए संपर्क (फस/स्पर्श) के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है।"

(ii)

पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के बीच यह वार्तालाप सुना। फिर, जब वे राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों के बीच हुई पूरी बातचीत बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि दुख आश्रितता से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा, वह भी स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा, उनके लिए बिना संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करना असंभव है।"

"एक बार, आनंद, मैं यहीं राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहा था। फिर सुबह, मैंने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तभी मेरे मन में विचार आया: 'राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।' तब मैं दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गया। मैंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर मैं एक तरफ बैठ गया। तब तपस्वियों ने मुझसे कहा, जब मैं एक तरफ बैठा था: ... (तपस्वियों ने वही प्रश्न पूछा जो उन्होंने सारिपुत्त से पूछा था और उन्हें वही उत्तर मिला) ... बिना स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के उनका अनुभव करना असंभव है।"

"यह अद्भुत है, आदरणीय महोदय! यह आश्चर्यजनक है, आदरणीय महोदय! कैसे संपूर्ण अर्थ एक ही वाक्य में व्यक्त किया जा सकता है! क्या इसी अर्थ को विस्तार से, गहन और निहितार्थों से भरपूर तरीके से व्यक्त किया जा सकता है?" 74

"तो फिर, आनंद, आप स्वयं ही इस विषय को स्पष्ट करें।"

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा:
'मित्रों, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत पुनर्जन्म है, पुनर्जन्म ही इसकी उत्पत्ति है; यह पुनर्जन्म से जन्म लेता है और उत्पन्न होता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। [37]

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, पुनर्जन्म का स्रोत और मूल तत्व अस्तित्व का कारक (भावो) है; यह अस्तित्व के कारक (भावो) से ही उत्पन्न होता है... अस्तित्व के कारक (भावो) का स्रोत आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) है... आसक्ति का स्रोत तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) है... तृष्णा का स्रोत वेदना (संवेदना) है... वेदना का स्रोत स्पर्श (संपर्क) है... संपर्क का स्रोत और मूल तत्व छह इंद्रिय शक्तियां हैं; यह छह इंद्रिय शक्तियों से ही उत्पन्न होता है। लेकिन छह इंद्रिय शक्तियों के अंत (निरोध) से संपर्क का भी अंत हो जाता है; स्पर्श के समाप्त होने पर, वेदना समाप्त हो जाती है; वेदना समाप्त होने पर, तृष्णा समाप्त हो जाती है; तृष्णा समाप्त होने पर, आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने पर, भाव समाप्त हो जाता है; भाव समाप्त होने पर, पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने पर, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार इस समस्त दुःख का अंत हो जाता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। (प्रश्न 1 और 2 के समान)

25.भूमिजा
सावत्थी में।
(i)

फिर, शाम को, पूज्य भूमिजा एकांतवास से बाहर निकले और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। 75 उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 76 हे मित्र सारिपुत्त, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या शिक्षा देते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्यों के विपरीत गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना

है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए?" और हमें धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन के किसी भी तर्कसंगत परिणाम से आलोचना का कोई आधार न मिले?

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (फस/स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्र, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह संपर्क के कारण (पच्चय) होता है।"

"इसमें, हे मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो यह मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

(ii)

आदरणीय आनंद ने आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच यह बातचीत सुनी। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच हुई पूरी बातचीत बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए वचन को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे बिना संपर्क (फस/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।

(iii)

"आनंद, जब शरीर होता है, तो शारीरिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब वाणी होती है, तो वाणी संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब मन होता है, तो मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं - और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत. अविद्या) इसका कारण है।" 77

"आनंद, या तो स्वयं की पहल पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दुःख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के उकसावे पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दुःख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। 78

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं।

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

"अज्ञान इन अवस्थाओं में समाहित है। 80 परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, वह शरीर (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है; वह वाणी (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करती है, अस्तित्वहीन हो जाती है; वह मन (मन) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है। 81 वह क्षेत्र (क्षेत्र) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह स्थान (स्थान) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह इंद्रिय (इंद्रिय) अस्तित्वहीन हो जाती है, वह आधार (आधार) अस्तित्वहीन हो जाता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।" 82

---

26. उपवन
सावत्थी में, पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 83

"पूज्यवर, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख दूसरे के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न होता है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा। अब, पूज्यवर, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी भी बात से गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे व्याख्या करनी चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?"

[बुद्धः] "उपवन, मैंने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"उपवन, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"उपवन में, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

---

27. कारण (पक्काया सं. प्रत्यय)
सावत्थी में [बुद्धः] "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... (जैसा कि 1 में है)। यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न प्राणियों की वृद्धावस्था... (जैसा कि 2 में है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। पुनर्जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; पुनर्जन्म के निवारण (निरोध) के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले

जाता है।" अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... संवेदना (वेदना)?... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)?... चेतना?... संस्कार (व्यवहार-आधार)? ये तीन प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार)। अज्ञान के उत्पन्न होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं। अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) समाप्त हो जाते हैं। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग मोक्ष की ओर ले जाता है। संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निवारण; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सत्त्व) अवस्था (देखें SN5.8)।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार कारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के उद्‌गम को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, 84 तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को (ध्यान, पस्सति में, विपश्यना ध्यान में) देखने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, जो अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा है, कहलाता है।" 85

---

28. भिक्खु (सं. भिक्षु, साधु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "यहाँ, भिक्षु (भिक्षु) वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्‌भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (जैसा कि पिछले सूत्र 27 में) ... केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) की समाप्ति की ओर ले जाता है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें एसएन 5.8)।

जब, भिक्षुओं, कोई भिक्षु इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है; जब वह पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति... तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस्सा/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर के स्वरूप (नामरूप)... चेतना... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार)... इनके उद्‌भव, इनके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध भिक्षु कहलाता है, जो इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका है, जो (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान में) इस सच्चे धम्म को देखता है, जो प्रशिक्षु का ज्ञान, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखता है, जो ज्ञान की धारा में प्रवेश कर चुका है। धम्म, एक महान व्यक्ति है जो गहन प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण है, जो अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा है।

---

29. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते; 86 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रिय शक्तियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्‌भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते: ये मैं इन पूजनीय भिक्षुओं को तपस्वियों में श्रेष्ठ या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ नहीं मानता, और न ही ये पूज्य भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्‌भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उसके उद्‌भव, निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं: मैं इन्हें

तपस्वियों में श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मानता हूँ, और न ही ये पूजनीय भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

---

30. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं (सन्यासियों), उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... नामरूप... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है।" संस्कार (व्यवहार-आधार)।

"परन्तु, भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करेंगे। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... संस्कार (व्यवहार-आधार), उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार) से परे जाकर निवास करेंगे।"

(iv) कलारा खटिया धारा (सं. कलारा-क्षत्रिय)
31. जो कुछ हुआ है (भूता)
एक बार भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे...
वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,
"सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: '87

जिन्होंने धम्म (मार्ग, नियम) को समझ लिया है; और यहाँ उपस्थित अनेक प्रशिक्षुओं से
उनके आचरण के बारे में पूछा गया है; विवेकशील होकर मुझे बताइए, हे महोदय।' 88

संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: 'जिन्होंने... मुझे बताइए, हे महोदय; ... संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?" दूसरी और तीसरी बार पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। 89

"सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'? सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'?"

[सारिपुत्त:] "आदरणीय महोदय, ध्यान में (पस्साति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है:
'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसे जैसा है वैसा देखकर; 'यह अस्तित्व में आया है', व्यक्ति अस्तित्व में आई चीज़ के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के लिए अभ्यास कर रहा है। 90 ध्यान में सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' 91 सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से होती है,' व्यक्ति इसके पोषण से उत्पन्न होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। व्यक्ति (ध्यान में) सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है,' व्यक्ति समाप्त होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। इसी प्रकार व्यक्ति एक प्रशिक्षु होता है।

"और हे पूज्यवर, आपने धम्म (मार्ग, नियम) को कैसे समझा है? हे पूज्यवर, व्यक्ति (ध्यान में) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है:

'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'यह अस्तित्व में आया है', जो अस्तित्व में आया है उसके प्रति घृणा (निब्बिद) के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है,' पोषण से इसकी उत्पत्ति के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण की समाप्ति के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्ति के अधीन है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से वास्तविकता को देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने से, जो कुछ अस्तित्व में आया है, वह समाप्त हो जाएगा', जो समाप्त होने वाला है उसके प्रति घृणा के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के माध्यम से, अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है। 92 इसी प्रकार धम्म को समझा जाता है।

"इस प्रकार, आदरणीय महोदय, जब परायण के 'अजिता के प्रश्न' में कहा गया है:

'जिन्होंने धम्म को समझा है; और यहाँ उपस्थित अनेक प्रशिक्षुओं से उनके आचरण के बारे में पूछा गया है; विवेकशील होकर, मुझे बताइए, प्रिय महोदय।'
तो इसी प्रकार मैं संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझता हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त!... (बुद्ध यहाँ आदरणीय सारिपुत्त के पूरे कथन को पहले की तरह दोहराते हैं)
इसी प्रकार संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझा जाना चाहिए।"

---

32. कलारा
सावत्थी में।

(i)

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु मोलियाफग्गुण ने साधना त्याग दी है और निम्न लोक में लौट गए हैं।" 93
"तो निश्चय ही उस पूज्य भिक्षु को इस धर्म और अनुशासन में शांति नहीं मिली।"
"तो क्या पूज्य सारिपुत्त को इस धर्म और अनुशासन में शांति मिली है?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई दुविधा नहीं है, मित्र।"

[कालरा:] "परन्तु भविष्य के बारे में, मित्र?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई संदेह नहीं है, मित्र।"

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने अंतिम ज्ञान इस प्रकार प्रकट किया है: 'मैं समझ गया हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'" 94

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु, सारिपुत्त को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

"जी, आदरणीय महोदय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और आदरणीय सारिपुत्त के पास जाकर उनसे कहा, "गुरु आपको बुला रहे हैं, मित्र सारिपुत्त।"

"जी, मित्र," आदरणीय सारिपुत्त ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "क्या यह सच है, सारिपुत्त, कि तुमने अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की है: 'मैं समझ गया हूँ: पुनर्जन्म

नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, मैंने इस विषय को इन शब्दों में नहीं कहा।"

"सारिपुत्त, एक कुलवासी होने के नाते, चाहे जिस प्रकार से अंतिम ज्ञान की घोषणा करे, उसे उसी रूप में समझा जाना चाहिए।"

"आदरणीय महोदय, क्या मैंने भी ऐसा ही नहीं कहा था: 'आदरणीय महोदय, मैंने इस विषय को इन शब्दों में नहीं कहा'?"

"यदि हे सारिपुत्त, आपसे पूछा जाए: 'मित्र सारिपुत्त, आपने कैसे जाना, कैसे देखा कि आपने इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, हे पूज्यवर, [52] तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'पुनर्जन्म के स्रोत के विनाश (खया/क्षय) के साथ, मैंने यह समझा है: "जब [कारण] नष्ट हो जाता है, तो [परिणाम] नष्ट हो जाता है।" यह समझकर, मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।" 96

"परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'मित्रों, पुनर्जन्म का स्रोत (भाव) ही है; यह अस्तित्व के स्रोत (भाव) से ही उत्पन्न होता है।' आदरणीय महोदय, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।" "

परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, अस्तित्व के स्रोत (भाव) का क्या अर्थ है...?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?"

"हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, अस्तित्व का मूल (भावो) आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) है...'" "

परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, आसक्ति का स्रोत क्या है...? तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न होती है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?"

"हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत (वेदना) है, इसकी उत्पत्ति (वेदना) है; यह संवेदना (वेदना) से उत्पन्न होती है।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।"

"परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे तुमसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, तुम्हें कैसे पता चला, तुमने कैसे देखा कि वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) अब तुममें नहीं रहता?' - इस प्रकार पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे?" 97

"यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, न दुखदायी न सुखद वेदना। मित्रों, ये तीनों वेदनाएँ क्षणभंगुर हैं; जो क्षणभंगुर है वही दुख है। जब यह समझ में आया, तो वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) मुझमें नहीं रहा।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।"

"बहुत खूब, सारिपुत्त! यह उसी बात को संक्षेप में समझाने का एक और तरीका है: 'जो कुछ भी महसूस किया जाता है, वह दुख में समाहित है।' 98 लेकिन, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, आपने किस प्रकार के उद्धार (विमोक्ष/विमोक्ष) से इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: "मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है"?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: [54] 'मित्रों, आंतरिक उद्धार के माध्यम से, सभी आसक्ति (उपादान संस. आसक्ति) के विनाश (खया/क्षय) के माध्यम से, मैं इस प्रकार ध्यान (सतो) में रहता हूँ कि मेरे भीतर दोष प्रवाहित नहीं होते और मैं स्वयं को तुच्छ नहीं समझता।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। 99

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! उसी बात को संक्षेप में समझाने का यह एक और तरीका है: 'मुझे तपस्वी द्वारा बताए गए दोषों के बारे में कोई दुविधा नहीं है; मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि मैंने उन्हें त्याग दिया है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, परम पूज्य अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए।

(ii)

फिर, भगवान (बुद्ध) के चले जाने के तुरंत बाद, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था: 100 इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरे दिन प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें पूरे दिन विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा। यदि वे मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरी रात, एक दिन और रात, [55] दो दिन और रात, तीन, चार, पाँच, छह या सात दिन और रात - सात दिन और रात प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'"

तब भिक्षु कालरा (खत्तिया) अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने सिंह की गर्जना करते हुए कहा है: 'मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था, इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर सात दिन और सात रात तक प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'"

"भिक्षु, पूज्य सारिपुत्त ने धर्म (मार्ग, नियम) के उस तत्व (धातु) में पूर्णतः प्रवेश कर लिया है, जिसके पूर्णतः प्रवेश के कारण यदि मैं उनसे उस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से सात दिन और सात रात तक प्रश्न पूछूं, तो वे भी मुझे विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकेंगे।" 101

---

33. ज्ञान के मामले (1) (नानवत्थु1 सं. ज्ञान-वस्तु)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान के चौवालीस मामलों का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और एकाग्र रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, ज्ञान के चौवालीस प्रकार क्या हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान, इसके उद्भव का ज्ञान, इसके निवारण का ज्ञान, इसके निवारण के मार्ग का ज्ञान। पुनर्जन्म का ज्ञान... अस्तित्व के कारक (भावो) का ज्ञान... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का ज्ञान... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का ज्ञान... वेदना (संवेदना) का ज्ञान... स्पर्श (फस/स्पर्श) का ज्ञान... छह इंद्रियों का ज्ञान... नामरूप (मन-शरीर) का ज्ञान... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) का ज्ञान... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) का ज्ञान, इनके उद्भव का ज्ञान, इनके निवारण का ज्ञान, इनके निवारण के मार्ग का ज्ञान। हे भिक्षुओं, ये चौवालीस प्रकार हैं।" ज्ञान का।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (परिभाषा 2 में दी गई है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है। पुनर्जन्म के समाप्त होने के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाता है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।"

"हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। 102 इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, तत्काल प्राप्त और ज्ञात सिद्धांत के माध्यम से, 103 वह अतीत और भविष्य पर इस प्रकार विधि का प्रयोग करता है: 'अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके

निवारण और निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ। भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों को वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ।' यह उसका निहितार्थ का ज्ञान है। 104

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और निहितार्थ का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि मंत्र सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को जानने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा रहने वाला श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है।"

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... संस्कार (व्यवहार-आदत) क्या हैं?... (परिभाषाएँ 2 में दी गई हैं)... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (व्यवहार-आदत) के निवारण का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत), उनके उद्गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, प्राप्त और गूढ़ सिद्धांत के माध्यम से वह भूतकाल और भविष्यकाल पर विधि का प्रयोग करता है... यही उसका परिणाम का ज्ञान है।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और परिणाम का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है... वह जो अमरता के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा होता है।"

---

34. ज्ञान के मामले (2) (नानवत्थु2)
श्रावस्ती में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सत्तरह ज्ञान के विषय सिखाऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, वे सत्तरह ज्ञान के विषय क्या हैं? ज्ञान: 'वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' ज्ञान: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म था।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी, यदि पुनर्जन्म न होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होती।' ज्ञान: 'भविष्य में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि पुनर्जन्म न हो, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होगी।'" यह ज्ञान: 'धर्म (मार्ग, नियम) की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होने और निरोध के अधीन है।' 105

"यह ज्ञान: 'पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व का कारक (भावो) है।' ... यह ज्ञान: 'संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का कारण अज्ञान (अविज्ज सं. अविद्या) है।' यह ज्ञान: 'जब अज्ञान नहीं होता, तब संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान था।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी, यदि अज्ञान न होता, तो संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'भविष्य में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि अज्ञान न हो, तो संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) न होंगे।' ज्ञान: 'धम्म की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), क्षय, लुप्त होने और समाप्ति के अधीन है।'

"भिक्षुओं, इन्हें ज्ञान के सतहत्तर कारक कहा जाता है।"

नोट: यह एक अत्यंत गहन अर्थ वाला सूत्र है। सारतः इसका अर्थ यह है कि पिछले सूत्र 33 के अतिरिक्त, यदि सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त भी हो जाए, तो यह 'ज्ञान' स्वयं क्षय और विनाश (खया/क्षय) के अधीन है। इसलिए व्यक्ति को इस प्राप्त ज्ञान का 'उपयोग' करके बंधनों और बेड़ियों को तोड़ना चाहिए और अस्तित्व के कारक (भावो) से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए ताकि वह पुनः जन्म न ले, दूसरे शब्दों में, शाश्वत आनंद की निर्वाण अवस्था प्राप्त कर सके।

---

35. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (1) (अविज्जापच्चया1 सं. अविद्या-प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

जब उन्होंने यह कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। 106
"भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु एक ही बात है, और जिसके लिए यह वृषण और मृत्यु है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; केवल शब्दों में अंतर है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक ही हैं', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है। 107 इन दोनों अतिवादों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में धम्म (मार्ग, नियम) की शिक्षा देते हैं: 'पुनर्जन्म को कारण मानते हुए, वृषण और मृत्यु।' "आदरणीय महोदय

, पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' या चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म एक बात है, जिसके लिए यह जन्म है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें केवल शब्दों का अंतर है... इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर जन्म होता है।'

"आदरणीय महोदय, अब अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?"

"यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई यह कहे कि 'अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'अस्तित्व का कारक (भावो) एक चीज है, जिसके लिए यह अस्तित्व का कारक (भावो) है वह दूसरी चीज है' - ये दोनों कथन अर्थ में समान हैं; इनमें केवल शब्दों के प्रयोग में अंतर है... इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) को कारण मानकर, अस्तित्व का कारक (भावो)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) को कारण मानकर, आसक्ति... वेदना (संवेदना) को कारण मानकर, तृष्णा... इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रिय का स्पर्श) को कारण मानकर, संवेदना (वेदना)... छह इंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क (संवेदना)... मन और शरीर के रूप (नामरूप) को कारण मानकर, छह इंद्रियां... [62] चेतना को कारण मानकर, मन-शरीर रूप (नामरूप)... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को कारण मानकर चेतना। "

आदरणीय महोदय, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?" "

यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई पूछे, 'संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?'" चाहे कोई कहे, 'संस्कार (व्यवहार-आधार) एक चीज है, जिसके लिए ये संस्कार (व्यवहार-आधार) मौजूद हैं वह दूसरी चीज है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें अंतर केवल शब्दों के प्रयोग में है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक हैं', तो ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक चीज है, शरीर दूसरी चीज है', तो भी ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है। इन दोनों अतिवादी विचारों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) का पालन किया जाता है।'

लेकिन अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, चाहे कितने ही प्रकार के दुष्प्रचार, चालबाज़ी और दुविधाएँ क्यों न हों - 'वृषण-मृत्यु क्या है, और किसके लिए है?' या 'वृषण-मृत्यु एक बात है, जिसके लिए यह है वह दूसरी बात है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी बात है' - ये सब त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों।

"अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और उसके समाप्त हो जाने के साथ ही, चाहे कितने भी प्रकार के दुष्प्रचार, युक्ति और दुविधाएँ हों - 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' ... 'संस्कार क्या हैं, और ये संस्कार किसके लिए हैं?' या 'संस्कार एक ही बात है, जिसके लिए ये संस्कार हैं वह दूसरा है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है' - ये सभी त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं ताकि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहें।"

---

36. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (2) (अविज्जापच्चया2 सं. अविद्या-प्रत्यय)
(यह सूत्र पिछले 35 सूत्रों के समान ही है, केवल इतना अंतर है कि इसमें भिक्षुओं को सामूहिक रूप से संबोधित किया गया है, और कोई भी ऐसा वार्ताकार नहीं है जो अनुचित प्रश्न पूछता हो। बुद्ध ने स्वयं ही अमान्य कथनों के प्रकारों का उल्लेख किया है।)

---

37. तुम्हारा नहीं (नटुम्हा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह शरीर न तो तुम्हारा है और न ही दूसरों का। 110 यह पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और निर्मित माना जाता है, जिसे अनुभव किया जा सकता है। 111 इसमें, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य ध्यानपूर्वक और निकटता से प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर ध्यान केंद्रित करते हैं, इस प्रकार: 'जब यह अस्तित्व में आता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। जब यह अस्तित्व में नहीं आता, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके निरोध के साथ वह समाप्त हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। लेकिन शेषफल के साथ यह लुप्त हो जाता है।" और अज्ञान के अंत से संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के अंत से चेतना का अंत होता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

38. जागरूकता के साथ (1) (चेतना1)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, और जो भी योजना बनाई जाती है, और जिस भी ओर झुकाव होता है: यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस. विज्ञान)। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो भविष्य के नए जीवन की उत्पत्ति होती है (पुनर्जन्म का कारण)। जब भविष्य के नए जीवन की उत्पत्ति होती है, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था-मृत्यु, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस संपूर्ण दु:ख का मूल है। 112

"यदि, भिक्षुओं, कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, फिर भी किसी चीज की ओर झुकाव हो, तो यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है... यही इस संपूर्ण दु:ख का मूल है।" 113

"लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो भविष्य में पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं होता। जब भविष्य में पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं होता, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था-मृत्यु, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। यही इस संपूर्ण दु:ख का निरोध है।" 114

---

39. जागरूकता के साथ (2) (चेतना2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, अपनी योजनाओं और अपनी प्रवृत्तियों के साथ, यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। 115 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है; संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना ... तृष्णा ... आसक्ति ... अस्तित्व का कारक (भावो) ... पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

"हे भिक्षुओं, यदि कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, परन्तु किसी ओर झुकाव रखे, तो यह चेतना के बने रहने का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन-शरीर रूप (नामरूप) के निरोधन के साथ ही छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

40. जागरूकता के साथ (3) (चेतना3)
श्रावस्ती में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, जो भी व्यक्ति इरादा करता है, जो भी योजना बनाता है, और जिस भी ओर उसका झुकाव होता है, वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो झुकाव उत्पन्न होता है। जब झुकाव होता है, तो आना-जाना होता है। जब आना-जाना होता है, तो मृत्यु और पुनर्जन्म होता है। 116 मृत्यु और पुनर्जन्म होने पर, भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।

"यदि, भिक्षुओं, कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, फिर भी किसी चीज़ की ओर झुकाव हो, तो वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है... यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो कोई झुकाव नहीं होता। जब कोई झुकाव नहीं होता, तो आना-जाना नहीं होता। जब आना-जाना नहीं होता, तो मरना-मरना नहीं होता। जब मरना-मरना नहीं होता, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। यही इस संपूर्ण दुःख का निरोध है।

(v) गृहस्थ अनुभाग (गहपतिवाग्गो सं. गृहपति-वर्ग)
41. पाँच भयानक शत्रुताएँ (1) (पंचवरभय1)
सावत्थी में। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्न के चार गुण आ जाते हैं, और उसने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देख लिया है और उसमें पूर्णतः प्रवेश कर लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो गया हूँ, पशु जगत से मुक्त हो गया हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो गया हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो गया हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो गया हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो गया हूँ। मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।' 118

"वे पाँच भयानक शत्रुताएँ कौन सी हैं जो शांत हो गई हैं?" गृहस्थ, जो जीवन का विनाश करता है, ऐसे आचरण के कारण वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयंकर द्वेष उत्पन्न करता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। 119 इस प्रकार, जो जीवन का विनाश करने से परहेज करता है, उसके लिए यह भयंकर द्वेष शांत हो जाता है।

जो व्यक्ति बिना दिए वस्तुएँ ग्रहण करता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है... जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है जो आलस्य (पमादा) का आधार हैं, ऐसे आचरण के कारण उसे वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयानक शत्रुता का सामना करना पड़ता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। अतः जो व्यक्ति शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है जो आलस्य का आधार हैं, उसके लिए यह भयानक शत्रुता शांत हो जाती है।

ये पाँच भयानक शत्रुताएँ हैं जो शांत हो जाती हैं।

"उसमें सोतापन्ना (धारा-प्रवेश) के चार कारक कौन से हैं? 120 हे गृहस्थ, इस प्रकार श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

"वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।"

"संघ (भाईचारे) में उनका दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सीधे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सच्चे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, उचित मार्ग का अनुसरण कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, विश्व के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।" '

"उसमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं - अटूट, अक्षुण्ण, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाला। 121

"ये वे चार कारक हैं जो उसमें सोतापन्ना (प्रवाह-प्रवेश) के रूप में मौजूद हैं।"

और वह श्रेष्ठ विधि क्या है जिसे उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूरी तरह से समझ लिया है? 122 हे गृहस्थ, श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर इस प्रकार विचार करते हैं: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके निरोध के साथ वह विद्यमान हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को कारण मानकर चेतना (विन्नान विज्ञान) विद्यमान होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और विद्यमान होने से संस्कार (आक्रामक व्यवहार) विद्यमान हो जाते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के विद्यमान होने से चेतना विद्यमान हो जाती है। ... यही है। "इस संपूर्ण दुख के अंत का हल।"
"यह वह श्रेष्ठ विधि है जिसे उसने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है।

" "हे गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में ये पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्ना के ये चार गुण आ जाते हैं, और उसने इस श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ, पशु जगत से मुक्त हो चुका हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो चुका हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो चुका हूँ। मैं सोतापन्ना हूँ, अब पाताल लोक से बंधा हुआ नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।"

---

42. पाँच भयानक शत्रुताएँ (2) (पंचावेरभय2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि यह "कई भिक्षुओं" को संबोधित है।)

---

43. दुःख (दुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुख की उत्पत्ति और उसके निवारण के बारे में बताऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 123

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, दुख की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण, तृष्णा उत्पन्न होती है। यही दुख की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... नाक और गंधों पर निर्भरता से... जीभ और स्वादों पर निर्भरता से... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है।" स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... यही दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, दुख का निवारण क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर रहने से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क (फस/स्पर्श) होता है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और निरोध से आसक्ति समाप्त होती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का निवारण होता है; भाव के निवारण से पुनर्जन्म समाप्त होता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का निवारण होता है। यही इस समस्त दुख का निवारण है। यही दुख का निवारण है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर रहने से... मन और मानसिक चेतना पर निर्भर रहने से... जब धम्म (प्रघटनाएं) उत्पन्न होती हैं, तो मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और मिट जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। यही दुःख का देहांत है।

---

44. लोक (विश्व)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें संसार की उत्पत्ति और उसके अंत के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 124

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, संसार की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर होकर, नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा; तृष्णा के कारण आसक्ति; आसक्ति के कारण भाव; भाव के कारण पुनर्जन्म; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। हे भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर होकर... नाक और गंधों पर निर्भर होकर... जीभ और स्वादों पर निर्भर होकर... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भर होकर... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन को संपर्क कहते हैं। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति... अस्तित्व का कारक (भाव)... पुनर्जन्म उत्पन्न होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

और भिक्षुओं, संसार का नश्वर होना क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का अंत हो जाता है; भाव का अंत होने से पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही समस्त दुःख का अंत है। भिक्षुओं, यही संसार का नश्वर होना है। दुनिया का अंत।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और समाप्त हो जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भाव) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। हे भिक्षुओं, यही संसार का क्षय है।"

---

45. नाटिका में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंट के हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उन्होंने यह धम्म (मार्ग, नियम) व्याख्या दी: 125

"आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) के कारण, तृष्णा (तन्हा संस्कृतः तृष्णा); तृष्णा के कारण, आसक्ति (उपादान संस्कृतः आसक्ति)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"दृष्टि और रूपों पर निर्भरता से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध (निरोध) से आसक्ति का अंत होता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत होता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। लेकिन उस तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और तृप्त होने से आसक्ति का भी अंत हो जाता है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... इस प्रकार इस समस्त दुख का अंत हो जाता है।
उसी समय एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) की बातें सुन रहा था। भगवान (बुद्ध) ने उसे वहाँ सुनते हुए देखा और उससे कहा, "क्या तुमने धम्म प्रवचन सुना, भिक्षु?"

"जी, पूज्यवर।"

"उस धम्म प्रवचन को सीखो, उसमें पारंगत हो जाओ और उसे याद रखो। वह धम्म प्रवचन ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों के लिए लाभकारी और प्रासंगिक है।"

---

46. एक निश्चित ब्राह्मण (अन्नतारब्राह्मण)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला,

"हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं?" 126

"'कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं': हे ब्राह्मण, यह एक चरम है।" [76]

"तो, हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला एक है और फल भोगने वाला दूसरा?"

"'कर्म करने वाला एक है, और परिणाम भोगने वाला दूसरा': हे ब्राह्मण, यही दूसरा चरम है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धर्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान (अविद्या संस्कृत) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विज्ञान संस्कृत) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार) का अंत होता है; संस्कार (व्यवहार) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।'

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान गुरु गौतम!... मैं गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

---

47. जानूसोनी
सावत्थी में, ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले: 127

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?"

"'सब कुछ विद्यमान है': हे ब्राह्मण, यह एक चरम सीमा है।"

"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?"

"'सब कुछ विद्यमान नहीं है': हे ब्राह्मण, यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं...(जैसा कि 46 में है)।"

यह सुनकर ब्राह्मण जनुस्सोनी ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
“महान, हे गुरु गौतम! ... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।”

---

48. लोकायटिक (विश्व-अस्तित्ववादी)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण, जो विश्व-अस्तित्ववादी था, 128 भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?"

"सब कुछ विद्यमान है: हे ब्राह्मण, यही सबसे प्राचीन ब्रह्मांड विज्ञान है।" 129
"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?"

"सब कुछ विद्यमान नहीं है: हे ब्राह्मण, यही दूसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ एक है?" 130

"सब कुछ एक है: हे ब्राह्मण, यही तीसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ अनेकता है?" 131

"सब कुछ अनेकता है: हे ब्राह्मण, यही चौथा ब्रह्मांड विज्ञान है।" इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य (मार्ग, चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं..."

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा;
"महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

49. महान शिष्य (1) (अरियासवका सं. आर्य-श्रावक)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एक ज्ञानवान शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो वह कैसे अस्तित्व में आती है? जिसके उत्पन्न होने से वह कैसे उत्पन्न होती है? [जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या चेतना (विन्नन संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है?] 132 जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं?... जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है?'

"बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानवान शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। [जब अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न होते हैं। जब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना होती है, तब मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है... जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।' वे इस प्रकार समझते हैं: 'इस प्रकार संसार की उत्पत्ति होती है।'

भिक्षुओं, एक ज्ञानी शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वह अस्तित्व में नहीं आता? जिसके निरोध के समाप्त होने से क्या समाप्त हो जाता है? [जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या चेतना उत्पन्न नहीं होती?] जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न नहीं होते?... जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'

बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह अस्तित्व में नहीं है, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके समाप्त होने से वह समाप्त हो जाता है। [जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ध्यान में), तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते। जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो (सामान्य) चेतना उत्पन्न नहीं होती।] जब कोई चेतना, मन-शरीर (नामरूप) का अस्तित्व नहीं होता... जब जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती। वह इस प्रकार समझता है: 'इस प्रकार संसार का अंत हो जाता है।'

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संसार की उत्पत्ति और उसके अंत को यथावत समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म का ज्ञाता, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, और अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ निश्चय पर खड़ा शिष्य कहलाता है।

---

50 महान शिष्य (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि कोष्ठकों में दिए गए वे अंश जो कुछ संस्करणों में अनुपस्थित हैं, यहाँ सभी संस्करणों में स्पष्ट रूप से शामिल हैं।)

(vi) पीड़ा धारा 133 (दुक्खावाग्गो सं. दुक्खा-वर्ग)
51. गहन जांच (परिविमांसा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु गहन शोध कर रहा हो, तो उसे दुखों के पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए किस प्रकार गहन शोध करना चाहिए?" 134

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान दो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"देखो, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु गहन अध्ययन करता है, तो वह इस प्रकार गहन अध्ययन करता है: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत क्या है, इसका उद्गम क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न होती है? जब कोई चीज विद्यमान नहीं होती तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न नहीं होती?'

"गहन अध्ययन करने पर वह इस प्रकार समझता है: संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत पुनर्जन्म है, इसका उद्गम पुनर्जन्म है; यह पुनर्जन्म से उत्पन्न और पैदा होता है। जब पुनर्जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो बुढ़ापा और मृत्यु जैसी चीजें भी नहीं होतीं।

वह वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। 135 वह उस मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है। फिर

, आगे की खोज करते हुए, वह इस प्रकार गहनता से जांच करता है:
'इस पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसका उद्भव क्या है, यह किससे उत्पन्न और निर्मित होता है?... इस अस्तित्व के कारक (भावो) का स्रोत क्या है?... इस आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का स्रोत क्या है?... इस लालसा (वेदना) का स्रोत क्या है?... इस स्पर्श (फस/स्पर्श) का स्रोत क्या है?... इन छह इंद्रियों (ज्ञान) का स्रोत क्या है?... इस मन-शरीर (नामरूप) का स्रोत क्या है?... इस चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) का स्रोत क्या है?' इन संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार संबंधी आदतों) का स्रोत क्या है, इनकी उत्पत्ति क्या है? वे किससे जन्म लेते हैं और उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज विद्यमान नहीं होती तो संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न नहीं होते?'

"गहन जांच करने पर वह इस प्रकार समझता है:
'संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का स्रोत अज्ञान है; अज्ञान ही उनका मूल है; वे अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं। जब अज्ञान होता है, तब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ध्यान में), तब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न नहीं होते।'

वह संस्कार (व्यवहार-आदत), उनके उद्गम, उनके निवारण (निरोध) और निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। वह उस मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहते हैं जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और संस्कार (व्यवहार-आदत) के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

भिक्षुओं, यदि कोई अज्ञान में डूबा हुआ व्यक्ति पुण्य संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न करता है, तो चेतना पुण्य संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अपराधी संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न करता है, तो चेतना अपराधी संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अविचलित संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न करता है, तो चेतना अविचलित संस्कार की ओर अग्रसर होती है। 136 परन्तु जब कोई भिक्षु अज्ञान का त्याग करके सच्चे ज्ञान को जागृत कर लेता है, तब अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय होने पर वह न तो पुण्य कर्म उत्पन्न करता है, न ही अपराधी, और न ही अविचलित कर्म। क्योंकि वह कर्म उत्पन्न नहीं करता, इसलिए वह संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। आसक्त न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। 137 विचलित न होने के कारण वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेता है। वह समझता है:
'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए।' यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है:
'इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है:
'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए।'

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है।

जब उसे शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तब वह समझ जाता है:
'मुझे एक ऐसी अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है जो शरीर के साथ समाप्त हो रही है।' जब उसे जीवन के साथ समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे एक ऐसी अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है जो जीवन के साथ समाप्त हो रही है।' 139 वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के टूटने के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, जिसमें आनंद नहीं लिया जाता, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 140

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति कुम्हार के भट्ठे से एक गर्म मिट्टी का बर्तन निकालकर उसे समतल जमीन पर रख दे: उसकी ऊष्मा वहीं समाप्त हो जाएगी और मिट्टी के टुकड़े शेष रह जाएंगे। उसी प्रकार, जब उसे शरीर के साथ समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है... जीवन के साथ समाप्त होने वाली... तो वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के टूटने के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, जिसमें आनंद नहीं लिया जाता, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 141

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो गए हों, पुण्य कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) उत्पन्न कर सकता है, या दोषपूर्ण कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) या अविचलित कर्म (अनिच्छुक व्यवहार)?" "

नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) न हों, तो क्या कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) के निरोध से चेतना (विन्नान विज्ञान) का अनुभव किया जा सकता है?" 142

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी चेतना न हो, तो क्या चेतना के निरोध से मन और शरीर (नामरूप) का अनुभव किया जा सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी मन और शरीर (नामरूप) न हों... तो छह इंद्रियां भी नहीं होतीं।" ..... कोई संपर्क नहीं (फस्सा/स्पर्श) ... कोई संवेदना नहीं (वेदना) ... कोई लालसा नहीं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ... कोई आसक्ति नहीं (उपादान संस्कृत: आसक्ति) ... कोई अस्तित्व का कारक नहीं (भावो) ... कोई जन्म नहीं, पुनर्जन्म के समाप्त होने पर क्या वृद्धावस्था और मृत्यु का बोध होगा?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षुओं! यह बिल्कुल ऐसा ही है, अन्यथा नहीं! मुझ पर विश्वास रखो, भिक्षुओं, इस पर दृढ़ संकल्प करो। इस विषय में भ्रम और संदेह से मुक्त रहो। यही दुख का अंत है।" 143

---

52. आसक्ति (उपादान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे चिपका जा सकता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: असक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जिसमें दस, बीस, तीस या चालीस लट्ठे लकड़ी जल रही है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डालता है। इस प्रकार, उस पदार्थ से पोषित होकर, उससे प्रेरित होकर, वह विशाल अग्नि बहुत लंबे समय तक जलती रहेगी। ठीक उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे लगाव रखा जा सकता है, तो उसकी तृप्ति बढ़ती जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है... वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख का अंत हो जाता है। 145

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जो दस, बीस, तीस या चालीस भार लकड़ी को भस्म कर रही है, और कोई व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर या सूखी लकड़ी नहीं डालता है। इस प्रकार, जब ईंधन की पूर्व आपूर्ति समाप्त हो जाती है, तो वह बड़ी अग्नि, और अधिक ईंधन न मिलने के कारण, पोषण से रहित होकर बुझ जाएगी। इसी प्रकार, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, जिनसे जुड़ाव रखा जा सकता है, तो व्यथा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।" 146

---

53. बेड़ियाँ (1) (संयोजन1)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों (नियम, मार्ग) में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए रहता है, जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा है, और एक व्यक्ति उसमें तेल डालता है और समय-समय पर बाती को समायोजित करता है। इस प्रकार, उस तेल से पोषित होकर, उससे ऊर्जा प्राप्त करते हुए, वह तेल का दीपक बहुत लंबे समय तक जलता रहेगा।" इसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो तृष्णा बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

"भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है... वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुख का अंत है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा था, और वह व्यक्ति उसमें तेल नहीं डालता था और न ही समय-समय पर बाती को समायोजित करता था। इस प्रकार, जब ईंधन का पूर्व भंडार समाप्त हो जाता है, तो वह तेल का दीपक, ईंधन न मिलने के कारण, निर्वाह के अभाव में बुझ जाता है। ठीक इसी प्रकार, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनव) को देखकर जीवन व्यतीत करता है, तो भोग-विलास समाप्त हो जाता है... इस प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है।

---

54. बेड़ियाँ (2) (संयोजन2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

55. महान वृक्ष (1) (महारुक्ख1 सं. महा-वृक्ष)
सावत्थी में
[बुद्धः] “भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।” 148

"हे भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भय (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति भी समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता, उसे खोदकर निकाल लेता और उसकी जड़ों को, यहाँ तक कि उसकी छोटी जड़ों और रेशों को भी, उखाड़ लेता। वह वृक्ष को टुकड़ों में काटता, टुकड़ों को फाड़ता और उन्हें पतले-पतले टुकड़ों में बदल देता। फिर वह उन टुकड़ों को हवा और धूप में सुखाता, आग में जलाता और राख इकट्ठा करता। ऐसा करने के बाद, वह राख को तेज हवा में छानता या नदी की तेज धारा में बहा देता।" इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से काट दिया जाएगा, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया जाएगा, मिटा दिया जाएगा ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृप्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।" 149

---

56. महान वृक्ष (2) (महारुक्ख2 सं. महा-वृक्ष)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

57. वृक्ष का पौधा (तरुणरुक्खा सं. तरूण-वृक्ष)
सावत्थी में

[बुद्ध:] “भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पौधा है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसकी जड़ों के आसपास की जगह साफ करता है, समय-समय पर उसे अच्छी मिट्टी देता है, समय-समय पर उसे पानी देता है। उस देखभाल और पोषण से पोषित होकर, वह पौधा बढ़ता और फैलता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।”

"हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक पौधा था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह पौधे को जड़ से काट देता... (जैसा कि 55 में है)... वह राख को तेज हवा में उड़ा देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह पौधा जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।"

---

58. मन-और-शरीररूप(नामरूप)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है। 150 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो मन और शरीर (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन और शरीर (नामरूप) के निरोधन से छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो मन और शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।"

---

59. चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है। 151 चेतना के कारण मन और शरीर का रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, और उसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाकर रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता। चेतना के निरोध (निरोध) के साथ ही मन और शरीर (नामरूप) का भी निरोध हो जाता है... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को उसके आधार से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

---

60. कारण (निदान)
एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर! यह अद्भुत है! यह प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) इतना गहरा और इतने अर्थपूर्ण है, फिर भी मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है।"

"ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यह प्रतीत्यसमुत्पाद गहरा और अर्थपूर्ण है। आनंद, इस धर्म (मार्ग, नियम) को न समझने और उसमें प्रवेश न करने के कारण ही यह पीढ़ी उलझे हुए धागे के गुच्छे, उलझी हुई घास-फूस के समान हो गई है और दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, संसार के अधोलोक से परे नहीं जा पाती।

आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भोग (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

हे आनंद, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हुई रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उसी से जीवन यापन करते हुए, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहेगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा बढ़ती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

हे आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरा (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... यही इस समस्त दुख का अंत है।

"मान लीजिए, आनंद, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)। वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है।" इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

(vii) महान उप-अध्याय (महावग्गो संस्कृत महावर्ग)
61. अशिक्षित (1) (असुतव1 सं. अश्रुतव्य)
मैंने ऐसा ही सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है।

" "परन्तु, भिक्षुओं, जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' (विन्नान संस्कृत विज्ञान) कहा जाता है, उसके प्रति अज्ञानी सांसारिक मनुष्य घृणा का अनुभव नहीं कर सकता, वह इसके प्रति वैराग्यवान नहीं हो सकता।" इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त हो जाना। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस प्रकार धारण किया है, अपना लिया है और ग्रहण किया है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' 155 अतः अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति इसके प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करने में असमर्थ है, इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त होने में असमर्थ है।

"हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए मन के बजाय चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना प्राण मानना बेहतर होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बना यह शरीर एक वर्ष, दो वर्ष, तीन, चार, पाँच या दस वर्ष, बीस, तीस, चालीस या पचास वर्ष, सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक स्थिर रहता है। 156 परन्तु जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। जैसे कोई बंदर जंगल में घूमते हुए एक शाखा को पकड़ता है, उसे छोड़ता है और दूसरी को पकड़ता है, फिर उसे छोड़ता है और तीसरी को पकड़ता है, उसी प्रकार जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। 157

"हे भिक्षुओं, इसमें ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक (योनिसो) चिंतन करता है।" आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) के लिए स्वयं इस प्रकार: 158 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से, वह उत्पन्न होता है।

जब इसका अस्तित्व नहीं रहता, तो उसका भी अस्तित्व नहीं होता; इसके निरोध के साथ उसका भी निरोध हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निरोध हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के निरोध के साथ चेतना का निरोध हो जाता है। इसी प्रकार इस समस्त दुख का निरोध हो जाता है।

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा (सन्ना संस्कृत: संज्ञा), संस्कार (व्यवहार-आदत) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। जब वह मुक्त (विमुक्त) हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

62. अशिक्षित (2) (असुतव2 सं. अश्रुतव्य)
(यह सूत्र पूर्व सूत्र के समान है, आरंभ से लेकर बंदर की उपमा तक। इसके बाद बंदर की उपमा को छोड़ दिया गया है और आगे इस प्रकार है:)

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त (विमुक्त) हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है।

"परन्तु, भिक्षुओं, जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)' कहा जाता है, उसके प्रति अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति घृणा का अनुभव नहीं कर सकता, वह इससे मुक्त नहीं हो सकता। इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो जाओ। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस प्रकार धारण किया है, अपना लिया है और ग्रहण किया है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' 155 अतः अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति इसके प्रति घृणा का अनुभव करने में असमर्थ है, इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त होने में असमर्थ है।

"हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए मन के बजाय चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना स्वरूप मानना बेहतर होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बना यह शरीर एक वर्ष, दो वर्ष, तीन, चार, पाँच या दस वर्ष, बीस, तीस, चालीस या पचास वर्ष, सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक स्थिर रहता है। परन्तु जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है।"

[बुद्ध:] "उसमें, हे भिक्षुओं, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य स्वयं प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) का ध्यान और चेतना बनाए रखता है, इस प्रकार: 'जब यह अस्तित्व में आता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने पर वह उत्पन्न होता है। जब यह अस्तित्व में नहीं आता, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके समाप्त होने पर वह समाप्त हो जाता है।'" भिक्षुओं, इंद्रियों के किसी वस्तु से स्पर्श (फस/स्पर्श) के अनुभव से सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। उस सुखद स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित अनुभूति (वेदना) - जो उस सुखद स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई थी - समाप्त हो जाती है। कष्टदायक स्पर्श के अनुभव से कष्टदायक अनुभूति उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित अनुभूति (वेदना) - जो उस कष्टदायक स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई थी - समाप्त हो जाती है। न कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के अनुभव से न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभूति उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित अनुभूति (वेदना) - जो उस कष्टदायक और न सुखदायक है - समाप्त हो जाती है। उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली वेदना (संवेदना) जो न तो कष्टदायक है और न ही सुखदायक, समाप्त हो जाती है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के आपस में टकराने और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और आग निकलती है, परन्तु लकड़ियों को अलग करने और रख देने पर वह ऊष्मा समाप्त हो जाती है; उसी प्रकार, किसी स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण जो सुखदायक है, किसी स्पर्श (संवेदना) के कारण जो कष्टदायक है, किसी स्पर्श (संवेदना) के समाप्त होने पर जो कष्टदायक है और न ही सुखदायक, वह संवेदना (वेदना) भी समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य स्पर्श के प्रति घृणा (निब्बिदा), वेदना के प्रति घृणा, संज्ञा के प्रति घृणा, संशय के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य का अनुभव करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

63. पुत्र का मांस रूपक (पुत्तममसुपमा सं. पुत्र-मान्स-उपमा)
(यह एक महत्वपूर्ण सूत्र है जहाँ बुद्ध ने इस रूपक के माध्यम से अनेक घटनाओं की व्याख्या की है।)

श्रावस्ती, 160 में भगवान बुद्ध कहते हैं: "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, स्थूल या सूक्ष्म; दूसरा, स्पर्श; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, विज्ञान। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए आवश्यक हैं।

(1) भोजन

"और हे भिक्षुओं, भोजन को किस प्रकार देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक पति-पत्नी सीमित भोजन लेकर रेगिस्तान से गुजर रहे हैं। उनके साथ उनका इकलौता पुत्र है, जो उन्हें प्रिय और प्यारा है। रेगिस्तान के बीच में ही उनका सीमित भोजन समाप्त हो जाएगा, जबकि रेगिस्तान का शेष भाग पार करना बाकी रहेगा। पति-पत्नी सोचते: 'हमारा सीमित राशन खत्म हो चुका है, और इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा अभी पार करना बाकी है। चलो अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ा दें और उसका सूखा और मसालेदार मांस तैयार करें। अपने बेटे का मांस खाकर हम इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेंगे। हम तीनों न मरें!'

"तब, भिक्षुओं, पति-पत्नी अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ाते, सूखा और भुना हुआ मांस तैयार करते, और अपने बेटे का मांस खाकर वे रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेते। अपने बेटे का मांस खाते हुए वे अपनी छाती पीटते और रोते: 'हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो? हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो?'

"हे भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं?" क्या वे उस भोजन को मनोरंजन, आनंद या शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए खाएंगे? "

नहीं, पूज्यवर।"

"क्या वे उस भोजन को केवल रेगिस्तान पार करने के लिए नहीं खाएंगे?"

"जी हाँ, पूज्यवर।" "

भिक्षुओं, मैं इसी प्रकार कहता हूँ कि पौष्टिक भोजन को देखना चाहिए। 161 जब पौष्टिक भोजन को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना (राग) को पूरी तरह समझ लिया जाता है। 162 जब पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो कोई बंधन नहीं रहता जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य इस संसार में वापस आ सके। 163

(टिप्पणी 1: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि भोजन की कमी इच्छाओं को शांत करने के लिए है, [मुझे अच्छा भोजन चाहिए], परन्तु बुद्ध के मार्ग में यह भोग के लिए नहीं है, बल्कि इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाना चाहिए और केवल शरीर को जीवित रखने के लिए पोषण के साधन के रूप में देखा जाना चाहिए, जबकि शरीर दुखों से भरे संसार, रेगिस्तान को पार करने का साधन है। इसमें एक छुपा हुआ अर्थ भी प्रतीत होता है। जीवन देने वाला भोजन भी किसी जीव से ही आता है। अतः जब कोई ध्यानमग्न व्यक्ति ज्ञानोदय की अवस्था में समस्त जीवन के स्रोत के साथ एकात्मता का अनुभव करता है, तो वह जो भोजन ग्रहण करता है, वह भी उसी जीवन स्रोत से आता हुआ प्रतीत होता है, जो पुत्र के मांस के रूप में एक रूपक के रूप में प्रकट होता है।)

(2) संपर्क (फस्सो संस्कृत स्पर्श)

"और हे भिक्षुओं, पोषण संपर्क को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक छिलका उतरी हुई गाय (घावों वाली) है। यदि वह किसी दीवार के सामने खड़ी हो, तो दीवार में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह किसी पेड़ के सामने खड़ी हो, तो पेड़ में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।" उस पर। यदि वह पानी में खड़ी रहती है, तो पानी में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह खुली हवा में खड़ी रहती है, तो खुली हवा में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। वह छिलका उतरी हुई गाय (जिसके शरीर पर घाव हैं) जिस भी स्थिति में खड़ी रहती है, वहाँ रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।

"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषण संपर्क को इसी प्रकार देखना चाहिए। 164 जब पोषण संपर्क पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं। जब तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं, तो मैं कहता हूँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती है। 165

(टिप्पणी 2: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि इंद्रियों का संसार की वस्तुओं से संपर्क तीन प्रकार की संवेदनाओं को जन्म देता है: 1. सुखद, 2. अप्रिय और 3. न सुखद न अप्रिय, जिससे 'मैं अनुभव' होता है, लेकिन ये आनंद के लिए नहीं हैं; यह समाधि/सम्मोहन अवस्था से दूर, भीतर ध्यान की उपलब्धि के क्षय और हानि का कारण है, इसलिए संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और परिणामी संवेदनाओं को वैराग्य/समभाव से समझना चाहिए। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि संसार का इंद्रियों से संपर्क तंत्रिकाओं में संवेदनाओं या धाराओं को जन्म देता है जो बाहर से भीतर की ओर प्रवाहित होती हैं और ध्यान की जागृत अति-अवस्था में व्यवधान उत्पन्न करती हैं।)

(3) मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता (मनोसंचेतना)

भिक्षुओं, पोषक तत्व मानसिक चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से गहरा है, और उसमें बिना लौ या धुएँ के सुलगते हुए कोयले भरे हैं। एक व्यक्ति वहाँ आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख की कामना करता है और दुख से विमुख है। तभी दो बलवान पुरुष उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर कोयले के गड्ढे की ओर घसीटते हैं। उस व्यक्ति की चेतना दूर जाने की होती है, उसकी तमन्ना दूर जाने की होती है, उसकी इच्छा दूर जाने की होती है (कोयले के गड्ढे से)। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह जानता है: 'मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा और इसी कारण मेरी मृत्यु होगी या मुझे घातक कष्ट सहना पड़ेगा।'

भिक्षुओं, मैं इसी प्रकार कहता हूँ कि पोषक तत्व मानसिक चेतना को देखा जाना चाहिए। 166 जब पोषण संबंधी मानसिक संज्ञानात्मक जागरूकता को पूर्णतः समझ लिया जाता है, तो तीनों प्रकार की तृष्णाओं (सुखद, अप्रिय और न सुखद न अप्रिय) को भी पूर्णतः समझ लिया जाता है। मैं कहता हूँ, जब तीनों प्रकार की तृष्णाओं को पूर्णतः समझ लिया जाता है, तो एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। 167

(टिप्पणी 3: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि सांसारिक मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता की प्रवृत्ति 'लालसा' की उत्पत्ति की ओर ले जाती है, अर्थात् 'मैं यह करना चाहता हूँ'। यह लालसा संतुष्टि के लिए नहीं है, बल्कि विपत्ति का कारण है, इसलिए इससे बचना/दूर करना आवश्यक है क्योंकि यह समाधि/सम्मोहन अवस्था से दूर, भीतर ध्यान की उपलब्धि के क्षय और हानि का भी कारण है। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के दौरान तंत्रिकाओं में धारा का प्रवाह भीतर से बाहर की ओर होता है, जिसकी तीव्रता अतीत में बनी लालसा और वर्तमान में इरादे के अनुसार होती है।)

(4) चेतना (विन्नानम संस्कृत विज्ञान)

"और हे भिक्षुओं, पोषण चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए कि वे एक डाकू, एक अपराधी को गिरफ्तार करके राजा के समक्ष लाते हैं और कहते हैं: 'हे प्रभु, यह व्यक्ति एक डाकू, एक अपराधी है। आप इसे जो भी दंड देना चाहें, दे दीजिए।'" राजा ने उनसे कहा: 'जाओ, सुबह इस आदमी पर सौ भाले चलाओ।' सुबह उन्होंने उस पर सौ भाले चलाए। फिर दोपहर को राजा ने पूछा: 'हे लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी जीवित है, प्रभु।' - 'तो जाओ, और दोपहर को उस पर सौ भाले चलाओ।' दोपहर को उन्होंने उस पर सौ भाले चलाए। फिर शाम को राजा ने पूछा: 'हे लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी जीवित है, प्रभु।' - 'तो जाओ, और शाम को उस पर सौ भाले चलाओ।' शाम को उन्होंने उस पर सौ भाले चलाए।

"हे भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या वह आदमी तीन सौ भालों से घायल होने पर भी पीड़ा और कष्ट का अनुभव करेगा?"

"हे पूज्यवर, यदि उसे एक भाला भी मारा जाए तो भी वह पीड़ा और कष्ट का अनुभव करेगा, तीन सौ भालों की तो बात ही क्या है।"

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषण चेतना को इसी प्रकार देखना चाहिए। 168 जब पोषण चेतना पूरी तरह समझ ली जाती है, तो मन और शरीर पूरी तरह समझ में आ जाते हैं। जब मन और शरीर पूरी तरह समझ लिए जाते हैं, तो मैं कहता हूँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रहती। 169

(टिप्पणी 4: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि सांसारिक (साधारण) चेतना 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ, मैं विद्यमान हूँ] की ओर ले जाती है। यह साधारण 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ] पुनर्जन्म से शुरू होती है और मृत्यु की ओर बढ़ती है जहाँ यह समाप्त होती है। इसलिए इसे ऐसा ही समझना चाहिए, ताकि इससे आसक्ति न हो, बल्कि बुद्ध के धम्म [मार्ग] का अनुसरण करते हुए, सद्गुण [शील], ध्यान/समाधि का उपयोग करते हुए दिव्य चेतना प्राप्त करने का प्रयास करें, जिससे दिव्य प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, जो भीतर निर्वाण/मुक्ति/मोक्ष की अवस्था की ओर ले जाती है, जो अविनाशी, सदा विद्यमान और शुद्ध आनंद है। इस सूत्र की विस्तृत व्याख्या अगले सूत्र 64 में की गई है। अत्तिरागा)

---

64. यदि कामवासना विद्यमान हो (अत्थिरग संस्कृत अस्थि-राग)
(यह सूत्र पिछले सूत्र 63 की आगे की व्याख्या है। इसे व्यक्ति की दो प्रकार की अवस्थाओं से समझा जाना चाहिए, अर्थात् सांसारिक या ध्यानमग्न समाधि/समाधि)

एट सावत्थी।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से ही अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, सांसारिक चेतना (विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से ही अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और पुनर्जन्म की तलाश करने वालों की सहायता के लिए हैं।

"हे भिक्षुओं, यदि भोजन के प्रति राग (कामना) हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। 170 जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है, वहाँ मन और शरीर का अवतरण होता है (नामरूप)। 171 जहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का रूप (नामरूप) अवतरित होता है, वहाँ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का विकास होता है। 172 जहाँ संस्कार (व्यवहार) का विकास होता है, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म का कारण बनता है। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म होता है, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से भरी होती है।

भिक्षुओं, यदि पोषण संबंधी स्पर्श, या पोषण संबंधी मानसिक चेतना, या पोषण संबंधी चेतना की लालसा हो, यदि आनंद (नंदी/आनंद) हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित होकर विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होकर विकसित होती है, वहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का नामरूप उतरता है। 171 जहाँ मन और शरीर का नामरूप उतरता है, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है, वहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है। जहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है, वहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से भरा होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई कलाकार या चित्रकार, रंग, लाख, हल्दी, नील या लाल रंग का उपयोग करके, एक पॉलिश किए हुए तख्ते, दीवार या कैनवास पर किसी पुरुष या स्त्री की आकृति को उसके सभी लक्षणों के साथ पूर्ण रूप से चित्रित करता है। उसी प्रकार, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है... मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से युक्त होती है। 173

भिक्षुओं, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा न हो, यदि आनंद न हो, यदि तृष्णा न हो, तो चेतना स्थापित नहीं होती। वहाँ चेतना स्थापित होकर विकसित नहीं होती। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म का कारण) नहीं होता। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) नहीं होता, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती, मैं कहता हूँ कि वह स्थान दुःख, पीड़ा और निराशा से रहित है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक घर या हॉल है जिसकी छत नुकीली है और उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशाओं में खिड़कियाँ हैं। जब सूर्योदय होता है और प्रकाश की किरण किसी खिड़की से प्रवेश करती है, तो वह कहाँ स्थापित होगी?" "

पश्चिमी दीवार पर, आदरणीय।"

"यदि पश्चिमी दीवार न हो, तो वह कहाँ स्थापित होगी?"

"पृथ्वी पर, आदरणीय।"

"अगर धरती न होती, तो यह कहाँ स्थापित होता?"

"जल पर, आदरणीय महोदय।"

"अगर जल न होता, तो यह कहाँ स्थापित होता?"

"यह कहीं भी स्थापित नहीं होता, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, यदि पौष्टिक भोजन, पौष्टिक स्पर्श, पौष्टिक मानसिक जागरूकता, पौष्टिक चेतना के प्रति राग न हो, यदि सांसारिक सुख न हो, यदि तृष्णा न हो, तो सांसारिक चेतना वहाँ स्थापित होकर विकसित नहीं होती। जहाँ सांसारिक चेतना स्थापित होकर विकसित नहीं होती, वहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का अवतरण नहीं होता। जहाँ मन और शरीर का अवतरण नहीं होता, वहाँ संस्कार का विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार का विकास नहीं होता, वहाँ पुनर्जन्म नहीं होता। जहाँ पुनर्जन्म नहीं होता, वहाँ वृद्धावस्था नहीं आती। और मृत्यु। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कोई भविष्य नहीं है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से रहित है। 174

(नोट: यहाँ भगवान बुद्ध सूर्य और उसकी किरणों का एक घर में प्रवेश करने का उपमा देते हैं। इसी प्रकार चेतना की परम अवस्था का अनुभव तब होता है जब व्यक्ति का ध्यान सांसारिक चीजों जैसे इंद्रिय-संपर्क (फस्सा/स्पर्श), मानसिक बोध, सामान्य चेतना, पसंद और इच्छाओं में उलझा नहीं होता है। तब वह समाधि अवस्था में आत्म-नियंत्रित और निर्मल होकर स्वयं-प्रकाशित रहता है और इस प्रकार मोक्ष/निर्वाण के योग्य होता है।)

65. नगर (नागरा)
(बुद्ध का मार्ग मुक्ति की ओर ले जाने वाला प्राचीन मार्ग है (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)।) सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अफ़सोस, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?' 175

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?'" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब पुनर्जन्म होता है? ... अस्तित्व का कारक (भावो)? ... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)? ... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)? ... संवेदना (वेदना)? ... स्पर्श (फस/स्पर्श)? ... छह इंद्रियां? ... मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
'जब चेतना (विन्नान सं. विज्ञान) होती है, तब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना का अस्तित्व कैसे होता है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है, तब चेतना का अस्तित्व होता है; चेतना का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।' 176

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'यह चेतना पीछे मुड़ जाती है; यह मन-शरीर रूप (नामरूप) से आगे नहीं बढ़ती। 177 इसी सीमा तक कोई जन्म लेता है, वृद्ध होता है, मरता है, मर जाता है और पुनर्जन्म लेता है, अर्थात् जब चेतना का कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) होता है, और मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना होती है। 178 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।"

"'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है? किसके निरोध के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है।'

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या अर्थ है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... वेदना (संवेदना)?'" संपर्क (फस्सा/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर रूप (नामरूप)? किसके समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है? तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है।'

मुझे यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता, तब चेतना का अस्तित्व नहीं होता; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'मैंने ज्ञानोदय का यह मार्ग खोज लिया है, अर्थात् मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का अंत हो जाता है; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' 179

"'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, उन चीजों के संबंध में जो पहले कभी नहीं सुनी गई थीं, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति जंगल में घूमते हुए एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखता है जिस पर अतीत में लोग चलते थे। वह उस मार्ग का अनुसरण करता है और उसे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई देती है जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। तब वह व्यक्ति राजा या किसी राजमंत्री को सूचित करता है: 'हे प्रभु, जान लीजिए कि जंगल में घूमते हुए मैंने एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखी जिस पर अतीत में लोग चलते थे। मैंने उसका अनुसरण किया और मुझे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई दी जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। हे प्रभु, उस नगर का जीर्णोद्धार कीजिए!' फिर राजा या राजमंत्री नगर का जीर्णोद्धार करते, और कुछ समय बाद वह नगर सफल और समृद्ध हो जाता, घनी आबादी वाला, लोगों से भरा हुआ, विकास और विस्तार प्राप्त कर लेता।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने अतीत के पूर्णतः प्रबुद्धों द्वारा अपनाए गए प्राचीन मार्ग, प्राचीन राह को देखा। 180 और वह प्राचीन मार्ग, वह प्राचीन राह क्या है? वह केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। मैंने उस मार्ग का अनुसरण किया और ऐसा करने से मुझे वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और उसके निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ। मैंने जन्म, अस्तित्व का कारक (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप), चेतना, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), उनके उद्गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना है। 181 इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जानकर, मैंने भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को इनकी व्याख्या की है। हे भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल और समृद्ध हुआ है, विस्तारित हुआ है, लोकप्रिय हुआ है, व्यापक हुआ है और देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित हुआ है। 182

---

66. अन्वेषण (सम्मासा)
(बुद्ध का मार्ग अंतर्मुखी अन्वेषण का मार्ग है, जो चेतना की सर्वोच्च अवस्था (विन्नान संस्कृत विज्ञान) की खोज है।) मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" 183

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"क्या तुम अंतर्मुखी अन्वेषण में लगे हो, भिक्षुओं?" 184

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, मैं अंतर्मुखी अन्वेषण में लगा हुआ हूँ।"

"तुम अंतर्मुखी अन्वेषण कैसे करते हो, भिक्षु?"

तब भिक्षु ने व्याख्या की, परन्तु उसकी व्याख्या से भगवान (बुद्ध) संतुष्ट नहीं हुए। 185 तब पूज्य आनंद ने कहा:
"अब यही समय है, हे भगवान! अब यही समय है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भगवान (बुद्ध) अंतर्मुखी अन्वेषण का उपदेश दें। भगवान (बुद्ध) से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो सुनो और ध्यान करो (मानसिकरो), आनंद, मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अंतर्मुखी अन्वेषण में लीन रहते हुए भिक्षु इस प्रकार अन्वेषण करते हैं: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब विद्यमान होता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है? जब विद्यमान नहीं होता तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'" 186

"जैसे-जैसे वह अन्वेषण करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत (उपधि) है, इसका उद्‌गम है; यह अधिग्रहण से उत्पन्न होता है। 187 जब अधिग्रहण होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; जब अधिग्रहण नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती।'

"वह वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। 188 वह इसी प्रकार अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

"फिर, अंतर्मुखी अन्वेषण में संलग्न होकर, वह इस प्रकार खोज करता है: 'इस प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत क्या है, इसका उद्‌भव क्या है, यह किससे उत्पन्न और निर्मित होती है? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो क्या प्राप्ति होती है? जब कोई चीज अनुपस्थित होती है तो क्या प्राप्ति नहीं होती?'

"जैसे-जैसे वह खोज करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत (तन्हा सं. तृष्णा) है, इसका उद्‌भव है; यह लालसा से उत्पन्न और निर्मित होती है। जब लालसा होती है, जब लालसा नहीं होती, तब प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होती है।

वह प्राप्ति, उसके उद्‌गम, उसके निवारण और निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। वह उसी मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहते हैं जो दुखों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और प्राप्ति के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

फिर, अंतर्मुखी होकर वह यह खोज करता है: 'जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो कहाँ से उत्पन्न होती है? जब यह स्थिर होती है, तो किस पर स्थिर होती है?'

खोज करते हुए वह यह समझता है: 'संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, यहीं से यह लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; यहीं पर स्थिर होती है।' 189 और संसार में कौन सी वस्तु सुखद और मनभावन है? संसार में आँख सुखद और मनभावन है: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है। इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, शरीर और मन सुखद और मनभावन हैं: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है।

"भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखद और मनभावन प्रकृति वाली वस्तुओं को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित माना, उन्होंने लालसा का पोषण किया। लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) का पोषण करने में उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का पोषण किया। प्राप्ति (उपाधि) का पोषण करने में उन्होंने दुख का पोषण किया। दुख का पोषण करने में वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं हुए; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं हुए।

भविष्य में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित करेंगे। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित करेंगे। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित करेंगे। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होंगे; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होंगे; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं होंगे।

वर्तमान में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित कर रहे हैं। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित कर रहे हैं। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से व्याकुल, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं: 'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी लें। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।' अचानक, बिना सोचे-समझे, वह पेय पी लेता है - वह उसे अस्वीकार नहीं करता - और इस प्रकार उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घातक कष्ट सहना पड़ता है। 190

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण हैं... भविष्य में... वर्तमान में जो भी संसार में सुखद और मनभावन है, उसे स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानते हैं: वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं। तृप्ति को पोषित करने से... वे कष्टों से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।" 191

"भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, उन्होंने तृष्णा का त्याग किया। तृष्णा का त्याग करके उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का त्याग किया। प्राप्ति का त्याग करके उन्होंने दुख का त्याग किया। दुख का त्याग करके वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हुए; वे दुख से मुक्त हुए," मैं कहता हूँ।

"भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, वे तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का त्याग करेंगे। तृष्णा का त्याग करके वे दुख से मुक्त होंगे," मैं कहता हूँ।

"संन्यासी और ब्राह्मण वर्तमान में संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग या भययोग्य मानते हैं: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से वे दुखों से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से पीड़ित, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं:
'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी सकते हैं। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।'" तब वह व्यक्ति सोचेगा: 'मैं पानी, मट्ठा, दलिया या सूप से अपनी प्यास बुझा सकता हूँ, लेकिन मुझे वह पेय नहीं पीना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मुझे हानि होगी और लंबे समय तक कष्ट सहना पड़ेगा।' ऐसा सोचने के बाद, वह पेय नहीं पिएगा बल्कि उसे अस्वीकार कर देगा, और इस प्रकार वह मृत्यु या जानलेवा पीड़ा से बच जाएगा।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण रहे हों... भविष्य में... वर्तमान में संसार में जो भी सुखदायक और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्मदायी, रोगदायी, भयभीत करने वाला मानते हों: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से... वे दुख से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।" 192

---

67 नरकट के ढेर (नलकलापी)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। 193 फिर, शाम को, पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, क्या ऐसा है: क्या वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न होती है, या किसी और द्वारा, या स्वयं और किसी और दोनों द्वारा, या यह संयोगवश उत्पन्न हुई है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" 194

"मित्र कोत्थिता, वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न नहीं होती, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती। बल्कि, जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है।"

"मित्र सारिपुत्त, यह कैसे होता है: क्या जन्म स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... क्या अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... मन और शरीर (नामरूप) स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, या किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या संयोगवश उत्पन्न होते हैं, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती?"

"हे मित्र कोत्थिता, मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) न तो स्वयं द्वारा सृजित होता है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होता है; बल्कि चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है।" "हे

मित्र सारिपुत्त, यह कैसे संभव है: क्या चेतना स्वयं द्वारा सृजित होती है, या किसी अन्य द्वारा, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा, या संयोगवश उत्पन्न होती है, न स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा?"

"हे मित्र कोत्थिता, चेतना न तो स्वयं द्वारा सृजित होती है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है; बल्कि मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है।" 195

"अब हम पूज्य सारिपुत्त के कथन को इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, मन-शरीर रूप (नामरूप) स्वयं द्वारा सृजित नहीं होता... बल्कि चेतना के कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है।' अब हम पूज्य सारिपुत्त के [दूसरे] कथन को भी इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, चेतना स्वयं द्वारा सृजित नहीं होती... बल्कि मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण चेतना अस्तित्व में आती है।' परन्तु हे मित्र सारिपुत्त, इस कथन का अर्थ कैसे समझा जाए?"

"तो फिर, मित्र, मैं तुम्हारे लिए एक उपमा बनाता हूँ, क्योंकि यहाँ कुछ बुद्धिमान लोग उपमा के माध्यम से कथन का अर्थ समझते हैं। जैसे दो सरकंडों के गट्ठे एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, वैसे ही, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर के रूप (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) उत्पन्न होते हैं। ... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"मित्र, यदि कोई सरकंडों के उन गट्ठों में से एक को हटा दे, तो दूसरा गिर जाएगा, और यदि कोई दूसरे गट्ठे को हटा दे, तो पहला गिर जाएगा। ठीक उसी प्रकार, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के समाप्त होने (निरोध) से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर (नामरूप) का अंत हो जाता है। मन और शरीर (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है। "

यह अद्भुत है, मित्र सारिपुत्त! यह आश्चर्यजनक है, मित्र सारिपुत्त! पूज्य सारिपुत्त ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है। हम पूज्य सारिपुत्त के इन छत्तीस आधारों पर दिए गए कथन से प्रसन्न हैं; 196 यदि, मित्र, कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निब्बिद) उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के उद्देश्य से धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से साधना कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार साधना करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा, कोई भिक्षु अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

हे मित्र, यदि कोई भिक्षु पुनर्जन्म, अस्तित्व के कारक (भावो), आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्स/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन-शरीर रूप (नामरूप), चेतना, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के प्रति घृणा (निब्बिद) उत्पन्न करने और उनके निवारण के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई भिक्षु अज्ञान के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि अज्ञान के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के माध्यम से, जो भिक्षु अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

---

68. कोसंबी

एक बार पूज्य मुसिला, पूज्य पवित्रा, पूज्य नारद और पूज्य आनंद, घोसीता उद्यान के कोसंबी में रह रहे थे। 197

तब पूज्य पवित्रा ने पूज्य मुसिला से कहा:
“मित्र मुसिला, आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने के अलावा, 198 क्या पूज्य मुसिला को यह व्यक्तिगत ज्ञान है कि ‘जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है’?”

"मित्र पवित्रा, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'जन्म को कारण मानकर, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'

"मित्र मुसिला, आस्था से परे... किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, क्या पूज्य मुसिला को इस प्रकार व्यक्तिगत ज्ञान है: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर, जन्म होता है'?... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) होता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) उत्पन्न होते हैं।' "

मित्र मुसिला, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को यह प्रत्यक्ष ज्ञान है: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) का भी अंत हो जाता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'... 'अज्ञान के अंत के साथ ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है।' "

"मित्र मुसिला, आस्था के अलावा, व्यक्तिगत पसंद के अलावा, मौखिक परंपरा के अलावा, तर्कपूर्ण विचार के अलावा, किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को व्यक्तिगत रूप से यह ज्ञान है कि: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है'?" 199

“मित्र पवित्र, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है।'” “

तब पूज्य मुसिला एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो गए हैं।”

यह सुनकर पूज्य मुसिला चुप रहे। 200

तब पूज्य नारद ने पूज्य पवित्र से कहा:
“मित्र पवित्र, अच्छा होगा यदि मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछी जाए। मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछिए और मैं आपको उत्तर दूंगा। 201

"तो फिर पूज्य नारद को उन प्रश्नों की श्रृंखला का उत्तर देने दीजिए। मैं पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछूंगा, और वे मुझे उत्तर देंगे।"

(यहाँ पूज्य पवित्र, पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछते हैं जो पूज्य मुसिला से पूछे गए थे, और वे ठीक उसी तरह उत्तर देते हैं।)

"तो पूज्य नारद एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।"

"मित्र, यद्यपि मैंने सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, पुनर्जन्म के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है,' फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं। 202 मान लीजिए, मित्र, किसी रेगिस्तानी सड़क पर एक कुआँ है, लेकिन उसमें न तो रस्सी है और न ही बाल्टी। फिर एक आदमी आता है, जो गर्मी से परेशान, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वह कुएँ में देखता है और उसे यह ज्ञान होता है कि 'पानी है,' लेकिन वह उससे शारीरिक संपर्क (फस/स्पर्श) नहीं कर पाता। 203 इसी प्रकार, मित्र, यद्यपि मैंने

सही अंतर्दृष्टि (भावो) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, भावो के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है, फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं।" 204

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य पवित्र से पूछा: "हे मित्र पवित्र, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो आप पूज्य नारद के बारे में क्या कहेंगे?"

"हे मित्र आनंद, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो मैं पूज्य नारद के बारे में केवल अच्छी और अनुकूल बातें ही कहूंगा।" 205

---

69. द सर्ज (उपायंती)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, सागर के उफान से नदियाँ उफान पर आती हैं; नदियों के उफान से धाराएँ उफान पर आती हैं; धाराओं के उफान से झीलें उफान पर आती हैं; झीलों के उफान से तालाब उफान पर आते हैं। उसी प्रकार, अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के उफान से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उफान पर आता है; संस्कार (व्यवहार) के उफान से चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उफान पर आती है; चेतना के उफान से मन और शरीर (नामरूप) उफान पर आता है; मन और शरीर (नामरूप) के उफान से छह इंद्रियाँ उफान पर आती हैं; छह इंद्रियाँ उफान पर आने से संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) उफान पर आता है; संपर्क (स्पर्श) उफान पर आने से संवेदना (वेदना) उफान पर आती है; संवेदना (वेदना) उफान पर आने से लालसा (तन्हा) उत्पन्न होती है। संस्कृत: तृष्णा का बढ़ना; तृष्णा का बढ़ना आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) को बढ़ाता है; आसक्ति का बढ़ना अस्तित्व के कारक (भावो) को बढ़ाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) का बढ़ना जन्म को बढ़ाता है; जन्म का बढ़ना वृद्धावस्था और मृत्यु को बढ़ाता है।

"भिक्षुओं, सागर के पीछे हटने से नदियाँ पीछे हटती हैं; नदियों के पीछे हटने से धाराएँ पीछे हटती हैं; धाराओं के पीछे हटने से झीलें पीछे हटती हैं; झीलों के पीछे हटने से तालाब पीछे हटते हैं। उसी प्रकार, समाधि की अवस्था के अनुभव से अज्ञान का पीछे हटना संस्कार (व्यवहार-आदत) को पीछे हटाता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के पीछे हटने से चेतना पीछे हटती है... पुनर्जन्म के पीछे हटने से वृद्धावस्था और मृत्यु पीछे हटती है।"

---

70. सुसीमा
मैंने भगवान बुद्ध से यही सुना है (आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे।

(i)
उस समय भगवान (बुद्ध) का आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। भिक्षु संघ का भी आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और भिक्षुओं को भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। परन्तु अन्य संप्रदायों के तपस्वियों का आदर, सम्मान, आदर, श्रद्धा और श्रद्धा नहीं की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं हुईं।
उस समय तपस्वी सुसीमा राजगृह में कई तपस्वियों के साथ निवास कर रहे थे। उनके साथियों ने सुसीमा से कहा, "हे मित्र सुसीमा, आओ और तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करो। उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करो और हमें सिखाओ। हम भी उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करेंगे और उसका प्रचार करेंगे। इस प्रकार हम भी आदरणीय, सम्मानित और पूजनीय होंगे, और हमें भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त होंगी।"

"ठीक है मित्रों," तपस्वी सुसीमा ने उत्तर दिया। फिर वे पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "मित्र आनंद, मैं इस धर्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।"

तब पूज्य आनंद ने तपस्वी सुसीमा को अपने साथ लिया और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, यह तपस्वी सुसीमा कहते हैं कि वे इस धम्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।"

"तो फिर, आनंद, उन्हें दीक्षा दीजिए।" तब तपस्वी सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा और उपसंपदा प्राप्त की। 206

(ii)
उस अवसर पर कई भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा, "हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" पूज्य सुसीमा ने यह सुनकर उन भिक्षुओं के पास जाकर उनसे अभिवादन किया और फिर एक तरफ बैठकर उनसे कहा: "क्या यह सच है कि आप पूज्य भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा है: 'हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है'?" 207

"हाँ, मित्र।"

तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का प्रयोग कर सकते हैं, जैसे कि: एक होकर आप अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर आप एक हो जाते हैं; आप प्रकट होते हैं और विलीन हो जाते हैं; आप बिना किसी अवरोध के दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार ऐसे चले जाते हैं मानो अंतरिक्ष में; आप पृथ्वी में ऐसे समा जाते हैं मानो वह जल हो; आप जल पर ऐसे चलते हैं मानो वह पृथ्वी हो, बिना डूबे; पालथी मारकर आप पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; आप अपने हाथों से इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करते हैं और सहलाते हैं; आप ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक तक शरीर पर महारत हासिल कर लेते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप, शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकते हैं?"

"नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप आदरणीय लोग अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को, उन्हें अपने मन से घेरकर, समझ पाते हैं? क्या आप कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; कामवासना रहित मन को कामवासना रहित मन के रूप में समझते हैं; घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में समझते हैं; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में समझते हैं; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझते हैं; उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न समझते हैं; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अतुलनीय मन को अतुलनीय समझते हैं; समाधि अवस्था में स्थित मन को समाधि अवस्था में और एक समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाले मन को समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाला मन; मुक्त (विमुक्त संस्कृत विमुक्त) मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त? "

नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, हे पूजनीय, क्या आप अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन, अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के क्रम में: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म कहीं और हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म हुआ। क्या तुम यहाँ पुनर्जन्म लेकर आए हो? क्या तुम्हें अपने अनेक अतीत के निवास स्थान, उनके तौर-तरीके और विवरण याद हैं? "

नहीं, मित्र।"

तो फिर, हे पूजनीय, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, इस प्रकार देखते और समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं: 'वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर

आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से अच्छा आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं? इस प्रकार, हे पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को देखते हैं? क्या आप पुनर्जन्म, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के बारे में जानते हैं, और समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे चलते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप पूज्यवर उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में निवास करते हैं जो रूपों से परे हैं, उन निराकार उपलब्धियों में, जिन्हें आपने शरीर से स्पर्श किया है?" 208

"नहीं, मित्र।"

"अब सुनिए, पूज्यवर: यह उत्तर और उन अवस्थाओं की अप्राप्ति, यह कैसे हो सकता है, मित्रों?" 209

"हम प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हैं, मित्र सुसीमा।" 210

"मित्रों, मैं पूज्यवरों द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से नहीं समझ पा रहा हूँ। अच्छा होगा यदि पूज्यवर मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं संक्षेप में कही गई बातों को विस्तार से समझ सकूँ।"

"हे सुसीमा, चाहे तुम समझो या न समझो, हम प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से मुक्त (विमुत्त) होते हैं।"

(iii)

तब पूज्य सुसीमा अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन भिक्षुओं के साथ हुई अपनी सारी बातचीत भगवान (बुद्ध) को बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"हे सुसीमा, पहले धम्म (मार्ग, नियम) की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निर्वाण का ज्ञान।" 211

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का अर्थ मुझे विस्तार से समझ नहीं आया। अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे इस प्रकार समझाएँ कि मैं संक्षेप में कही गई बात को विस्तार से समझ सकूँ।"

"हे सुसीमा, चाहे तुम समझो या न समझो, पहले धम्म की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निर्वाण का ज्ञान। 212

"सुसीमा, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" 213 - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।"
"क्या जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"क्या वेदना स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इसलिए, सुसीमा, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट, सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की अनुभूति... किसी भी प्रकार का संस्कार (व्यवहार-आधार)... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट, सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर, सुसीमा, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (व्यवहार-आधार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है'?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'भाव के कारण ही जन्म होता है'?... 'आसक्ति के कारण ही भाव होता है'?... 'तृष्णा के कारण ही आसक्ति होती है'?... 'वेदना के कारण ही तृष्णा होती है'?...

'क्या इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रियों का स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है?'... 'क्या छह इंद्रियों के संपर्क (स्पर्श) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या चेतना नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण होती है?'... 'क्या व्यवहार (आचरण-निर्धारण) के कारण चेतना उत्पन्न होती है?' ... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं'? "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'भाव के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत हो जाता है'?... 'आसक्ति के अंत के साथ भाव का अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है'?" "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या तुम विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का उपयोग करती हो, इस प्रकार कि: एक होकर तुम अनेक बन जाती हो ... और उसका अभ्यास करती हो क्या आप ब्रह्म जगत तक शारीरिक प्रभुत्व रखती हैं? 214

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य श्रवण शक्ति से, दिव्य और मानवीय दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकती हैं, जो दूर और पास से आती हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को समझ सकती हैं, उन्हें अपने मन से समाहित करके?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आपको अपने अनेक पूर्व जन्मों की विधियाँ और विवरण याद हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य दृष्टि से प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देख सकती हैं और समझ सकती हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो फिर, सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप क्या शरीर से स्पर्श करके उन निराकार उपलब्धियों, उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में निवास करना संभव है जो रूपों से परे हैं? "

नहीं, पूज्यवर।"

"सुसीमा, अब सुनो: यह उत्तर और उन अवस्थाओं की अप्राप्यता, यह कैसे संभव है, सुसीमा?"

(iv)

तब पूज्यवर सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा: "पूज्यवरवर, मैंने यह अपराध किया है कि मैं इतना बचकाना (नासमझ), इतना भ्रमित, इतना अयोग्य था कि मैं धम्म (मार्ग) का चोर बनकर निकल पड़ा।" इस सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में (कानून) का वर्णन किया गया है। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मुझे मेरे इस अपराध के लिए क्षमा करें, जिसे भविष्य में संयम के लिए एक अपराध माना जाता है।

"सुसीमा, तुमने निश्चित रूप से एक अपराध किया है क्योंकि तुम इतने बचकाने (नासमझ), इतने भ्रमित और इतने अयोग्य थे कि तुमने इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में धम्म की चोरी की। 215 मान लो, सुसीमा, कि वे एक डाकू, एक अपराधी को गिरफ्तार करके राजा के सामने लाते हैं और कहते हैं: 'हे प्रभु, यह व्यक्ति एक डाकू, एक अपराधी है। आप इसे जो भी दंड देना चाहें, दे दीजिए।' राजा उनसे कहता: 'आओ, पुरुषों, इस आदमी के हाथों को एक मजबूत रस्सी से उसकी पीठ के पीछे कसकर बांध दो, उसका सिर मुंडवा दो और ढोल बजाते हुए उसे गली-गली और चौक-चौक घुमाओ। फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाओ और शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दो।' सुसीमा, तुम क्या सोचते हो, क्या उस व्यक्ति को इस कारण कोई पीड़ा और कष्ट सहना पड़ेगा?"

"जी, आदरणीय।"

"यद्यपि उस व्यक्ति को इस कारण पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होगा, परन्तु इस सुस्पष्ट धम्म एवं अनुशासन में धम्म चोर बनकर दीक्षा लेना कहीं अधिक कष्टदायी, कहीं अधिक कड़वे परिणाम देता है और अंत में पाताल लोक की ओर ले जाता है। परन्तु क्योंकि तुम अपने अपराध को अपराध समझते हो और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हो, इसलिए हम तुम्हें क्षमा करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने अपराध को अपराध समझता है, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करता है और भविष्य में संयम बरतता है, तभी वह श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।"

(viii) तपस्वी और ब्राह्मण (समनाब्रह्मण)

71. वृद्धावस्था और मृत्यु (जरमरणा)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण (निरोध) और उसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर सकते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्‌भव, उसके निवारण और उसके निवारण के मार्ग को समझते हैं: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य में प्रवेश कर सकते हैं और उसमें निवास कर सकते हैं।" और ब्राह्मणत्व का लक्ष्य।"

---

72 जन्म, इत्यादि (जाति आदि)
भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो (जैसा कि पहले अनुच्छेद 71 में प्रत्येक के लिए और 1 और 2 के समान)
जन्म...
अस्तित्व का कारक (भावो)...
आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (
तन्हा संस्कृत: तृष्णा)...
संवेदना (वेदना)...
स्पर्श (फस/स्पर्श)...
छह इंद्रियां...
मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)...
चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)...
संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), उनकी उत्पत्ति, उनका निवारण (निरोध), और उनके निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या मोक्ष के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। "परन्तु, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं, मैं उन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व

के लक्ष्य में प्रवेश कर जाते हैं और निवास करते हैं।"

(ix) अंतर्निर्मित पुनरावृत्ति श्रृंखला (अंतरापेय्यलम) के साथ
73. एक शिक्षक (सत्थु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को यथावत नहीं जानते और नहीं देखते, उन्हें इसे यथावत जानने के लिए एक गुरु की खोज करनी चाहिए। 217

"भिक्षुओं, जो
जन्म...
अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)...
तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)...
संवेदना (वेदना)
...
स्पर्श (फस/स्पर्श)...
छह इंद्रियां...
नामरूप...
चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)...
संशय (बाध्यकारी व्यवहार),
इनके उद्‌भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को यथावत जानने और देखने वाले नहीं
हैं, उन्हें एक गुरु की खोज करनी चाहिए।" इसे
यथार्थ रूप में जानने के लिए।

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें इसे यथार्थ रूप में जानने के लिए प्रशिक्षण का अभ्यास करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें प्रयास करना चाहिए... इच्छा जागृत करनी चाहिए... उत्साह जगाना चाहिए... निरंतर प्रयास करना चाहिए... जोश जगाना चाहिए... ऊर्जा (वीर्य) का प्रयोग करना चाहिए... दृढ़ता का अभ्यास करना चाहिए... ध्यान (सती) का अभ्यास करना चाहिए... पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास करना चाहिए... जागरूकता (अप्पमदा) का अभ्यास करना चाहिए ताकि इसे यथार्थ रूप में जान सकें।"

अध्याय 2: सफलता पर संबंधित प्रवचन (अभिसामयसाम्युत्त) {साम्युत्त-13}

74. नाखून (नखसिखा)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन अधिक है: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या यह विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह नगण्य है। यह विशाल पृथ्वी का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, जो दुख नष्ट और समाप्त हो गया है वह कहीं अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। 218 बाद वाला दुख नष्ट और समाप्त हुए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। हे भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है।" 219

---

75. तालाब (पोखरानी)

सावत्थी में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक तालाब है जो पचास योजन लंबा, पचास योजन चौड़ा और पचास योजन गहरा है, पानी से भरा हुआ है, इतना कि एक कौआ भी उसमें से पानी पी सकता है, और एक आदमी कुश घास की नोक पर उसमें से थोड़ा पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी या तालाब का पानी?" 220

"आदरणीय महोदय, तालाब का पानी अधिक है। कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है। यह तालाब के पानी का सौवां हिस्सा, हजारवां हिस्सा या एक लाखवां हिस्सा भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, एक सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है (जैसा कि 74 में है)। भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

76. संगम पर जल (1) (संभेज्जाउदक1)

सावत्थी में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ से कोई व्यक्ति दो या तीन बूँद पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: निकाली गई ये दो या तीन बूँदें या संगम का जल?"

"आदरणीय, संगम का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे संगम के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

77. संगम पर जल (2) (संभेज्जाउदक2)
श्रावस्ती में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ उनका सारा जल नष्ट होकर समाप्त हो जाए, सिवाय दो या तीन बूंदों के। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल या शेष बची दो या तीन बूंदें?"

"आदरणीय महोदय, संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल अधिक है। शेष बची दो या तीन बूंदें नगण्य हैं। वे नष्ट होकर समाप्त हुए जल का सौवाँ भाग, हज़ारवाँ भाग या एक लाखवाँ भाग भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

78. पृथ्वी (1) (पथवी1)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति विशाल पृथ्वी पर बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: वहाँ रखी गई बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें या विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें तुच्छ हैं। वे विशाल पृथ्वी के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

79. पृथ्वी (2) (पथवी2)
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियों को छोड़कर, पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी या शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी का सौवां, हजारवां या एक लाखवां भाग भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

80. महासागर (1) (समुद्दा1 सं. समुद्र)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति विशाल सागर से दो या तीन बूँदें पानी निकालता है। आप क्या सोचते हैं, भिक्षुओं, कौन अधिक है: निकाली गई दो या तीन बूँदें या विशाल सागर का जल?"
"आदरणीय महोदय, विशाल सागर का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे विशाल सागर के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

81. महासागर (2) (समुद्दा2 सं. समुद्र)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि विशाल सागर नष्ट हो जाए और उसमें से दो-तीन बूँदें ही शेष रह जाएँ। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: नष्ट हो चुके विशाल सागर का जल या शेष बची दो-तीन बूँदें?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट हो चुके विशाल सागर का जल अधिक है। शेष बची दो-तीन बूँदें नगण्य हैं। वे नष्ट हो चुके विशाल सागर के जल का सौवाँ भाग, हज़ारवाँ भाग या एक लाखवाँ भाग भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

82. पर्वत (1) (पब्बाटा1 सं. पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन बड़ा है: वहाँ रखे गए सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ या हिमालय, जो पर्वतों का राजा है?"

"आदरणीय महोदय, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, बड़ा है। सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।

" "इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

83. पर्वत (2) (पब्बाटा2 सं. पर्वत)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ को छोड़कर नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग या शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग अधिक है। शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय के भाग के सौवें, हजारवें या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। बाद वाला दुख, नाश और निवारण किए गए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं होता, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म होते हैं। हे भिक्षुओं, धर्म के मार्ग में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

84. पर्वत (3) (पब्बाटा3 सं. पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति पर्वतों के राजा सिनेरु पर मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन बड़ा है: वहाँ रखे गए मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ या पर्वतों के राजा सिनेरु?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु बड़े हैं। मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे पर्वतों के राजा सिनेरु के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों की उपलब्धियाँ एक श्रेष्ठ शिष्य, एक सिद्ध दृष्टि वाले और पारलौकिक व्यक्ति की उपलब्धियों के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। भिक्षुओं, सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपनी उपलब्धियों में इतना महान है, दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में इतना महान है।"

अध्याय 3: तत्वों पर संबंधित प्रवचन (धातुसाम्युत्त) {साम्युत्त-14}
(i) विविधता अनुभाग (नानात्तवग्गो सं. नानात्व-वर्ग)
(आंतरिक पंचक)
85. तत्वों की विविधता (धातुनानत्त सं. धातु-नानत्व)
(18 धातु/तत्व)
श्रावस्ती में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (आंतरिक) तत्वों की विविधता सिखाऊंगा। 223 इसे सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है?
आँख तत्व (धातु), रूप तत्व, आँख-चेतना तत्व;
कान तत्व, ध्वनि तत्व, कान-चेतना तत्व;
नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना तत्व;
जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना तत्व;
शरीर तत्व, स्पर्श-वस्तु तत्व, शरीर-चेतना तत्व;
मन तत्व, मानसिक-घटना तत्व, मन-चेतना तत्व।
हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।" 224

---

86. संपर्कों की विविधता
(6 प्रकार के संपर्क (फस्सा/स्पर्श; इंद्रियों का वस्तु से संपर्क))

श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है। और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख (धातु), कान (नाक), जीभ (जीभ), शरीर (शरीर), मन (मन)। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

" और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता कैसे उत्पन्न होती है? आँख के कारण आँख का संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; कान के कारण कान का संपर्क होता है; नाक के कारण नाक का संपर्क होता है; जीभ के कारण जीभ का संपर्क होता है; शरीर के कारण शरीर का संपर्क होता है; मन के कारण मन का संपर्क होता है। 225 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है।

---

87. संपर्कों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है। तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती।

और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे तत्वों की विविधता कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, यह कैसे होता है कि तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; कि तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती?

आँख तत्व के कारण आँख संपर्क (स्पर्श) उत्पन्न होता है; आँख तत्व आँख संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के कारण मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन तत्व मन संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता।" 226 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती।

---

88. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (1) (वेदनाननतत्त्व बिना वेदनानातव)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदना की विविधता उत्पन्न होती है।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि अनुच्छेद 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदनाओं) की विविधता उत्पन्न होती है? नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। कान तत्व के आधार पर कान संपर्क उत्पन्न होता है; कान संपर्क के आधार पर कान संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नाक तत्व के आधार पर नाक संपर्क उत्पन्न होता है; नाक संपर्क के आधार पर नाक संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। जीभ तत्व के आधार पर जीभ संपर्क उत्पन्न होता है; जीभ संपर्क के आधार पर जीभ संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। शरीर तत्व के आधार पर शरीर संपर्क उत्पन्न होता है; शरीर संपर्क के आधार पर शरीर संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व पर निर्भरता से मन-संपर्क उत्पन्न होता है; मन-संपर्क पर निर्भरता से मन-संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भरता से संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता पर निर्भरता से संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

89. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (2) (वेदनाननट्ट2 बिना वेदाना-नानतव)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है। संपर्क की विविधता वेदनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता संपर्क की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है? क्या संपर्कों की विविधता संवेदनाओं (वेदना) की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; क्या तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नेत्र संपर्क नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; नेत्र तत्व नेत्र संपर्क के आधार पर उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के आधार पर मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन संपर्क के आधार पर मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन संपर्क मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; मन का तत्व मन के संपर्क पर निर्भर नहीं होता।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है... तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(बाह्य पंचक)

---

90. बाह्य तत्वों की विविधता
सावत्थी में।
[बुद्धः] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (बाहरी) तत्वों की विविधता सिखाऊंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा...

और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु), ध्वनि तत्व, गंध तत्व, स्वाद तत्व, स्पर्श तत्व, मानसिक घटना तत्व (धम्म)। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

---

91. धारणाओं की विविधता
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है; धारणाओं की विविधता के कारण ही इरादों की विविधता उत्पन्न होती है; इरादों की विविधता के कारण ही इच्छाओं की विविधता उत्पन्न होती है; इच्छाओं की विविधता के कारण ही भावनाओं की विविधता उत्पन्न होती है; भावनाओं की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु) ... (जैसा कि 90 में है) ... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

" "और हे भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है ... कि भावनाओं की विविधता के कारण खोजों की विविधता उत्पन्न होती है?

" "रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा उत्पन्न होती है; रूप की धारणा के आधार पर रूप के संबंध में इरादा उत्पन्न होता है।" रूप के संबंध में इरादे पर निर्भर करते हुए रूप की इच्छा उत्पन्न होती है; रूप की इच्छा पर निर्भर करते हुए रूप के प्रति जुनून उत्पन्न होता है; रूप के प्रति जुनून पर निर्भर करते हुए रूप की खोज उत्पन्न होती है... 227

"मानसिक घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादा उत्पन्न होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादे पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा उत्पन्न होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जुनून उत्पन्न होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जुनून पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज उत्पन्न होती है।

" "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... जुनूनों की विविधता पर निर्भर करते हुए खोजों की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

92. खोजों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... भावनाओं की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इच्छाओं की विविधता भावनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इरादों की विविधता इच्छाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; धारणाओं की विविधता इरादों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती। 228

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 90 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि तत्वों की विविधता पर निर्भरता से धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि 91 में है)... कि भावनाओं की विविधता पर निर्भरता से खोजों की विविधता उत्पन्न होती है? क्या भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती... क्या तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व पर निर्भरता से रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है; [...रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से रूप की खोज उत्पन्न होती है। रूप के प्रति जुनून रूप की खोज पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की इच्छा रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप के संबंध में इरादा रूप की इच्छा पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की धारणा रूप के संबंध में इरादे पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप तत्व रूप की धारणा पर निर्भर नहीं होता।] ...229

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है; ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज उत्पन्न होती है। मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... मानसिक-घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होता।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर होकर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है ... आसक्ति की विविधता पर निर्भर होकर खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। आसक्ति की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती।"

---

93. बाह्य संपर्कों की विविधता (1)

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है; धारणाओं की विविधता के कारण ही इरादों की विविधता उत्पन्न होती है; इरादों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों के साथ संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के कारण ही वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है; संवेदनाओं की विविधता के कारण ही इच्छाओं की विविधता उत्पन्न होती है; इच्छाओं की विविधता के कारण ही जुनूनों की विविधता उत्पन्न होती है; जुनूनों की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है; खोजों की विविधता के कारण ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है। 230

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु) (जैसा कि 90 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व।" भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

"और भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... कि खोजों की विविधता के आधार पर ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है?

रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा उत्पन्न होती है; रूप की धारणा के आधार पर रूप के प्रति आशय उत्पन्न होता है; रूप के प्रति आशय के आधार पर रूप से संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श) उत्पन्न होता है; रूप से संपर्क के आधार पर रूप से संपर्क से उत्पन्न वेदना उत्पन्न होती है; रूप से संपर्क से उत्पन्न वेदना के आधार पर रूप की इच्छा उत्पन्न होती है; रूप की इच्छा के आधार पर रूप के प्रति जुनून उत्पन्न होता है; रूप के प्रति जुनून के आधार पर रूप की खोज उत्पन्न होती है।" रूप की खोज पर निर्भर करते हुए रूप का लाभ प्राप्त होता है...

"मनोवैज्ञानिक घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति उत्पन्न होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति अभिलाषा उत्पन्न होती है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के साथ संपर्क (फस्सा/स्पर्श)... मानसिक घटनाओं (धम्म) के साथ संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना)... मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जुनून... मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज; मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ प्राप्त होता है।

" भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए अनुभूतियों की विविधता उत्पन्न होती है... और खोजों की विविधता पर निर्भर करते हुए लाभों की विविधता उत्पन्न होती है।

---

94. बाह्य संपर्कों की विविधता (2)

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों (धातु) की विविधता के कारण ही धारणाओं (सन्न संस. संज्ञा) की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... खोजों की विविधता के कारण ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है। खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; मनोभावों की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि अनुच्छेद 91 में है)... कि खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है? कि खोजों की विविधता लाभों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती... कि तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है... धम्म तत्व के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है... धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ उत्पन्न होता है। धम्म की खोज मानसिक घटनाओं (धम्म) के लाभ के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; धम्म की इच्छा मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क से उत्पन्न वेदना (संवेदना) पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादा मानसिक घटनाओं (धम्म) के

संपर्क पर निर्भर नहीं होता; मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादे पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति पर निर्भर नहीं होता।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के आधार पर अनुभूतियों की विविधता उत्पन्न होती है... खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है; खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं होती... तत्वों की विविधता अनुभूतियों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय
95. सात तत्व
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये सात तत्व (धातु) हैं। कौन से सात? आभा तत्व (धातु), पवित्र तत्व (शुभ तत्व), अनंत आकाश का बोध, चेतना का बोध (विन्नान संस्कृत विज्ञान) तत्व, शून्यता का बोध, न-बोध-न-बोध का बोध, और बोध-संवेदना का अंत। ये सात तत्व हैं।" 231

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"हे आदरणीय महोदय, आभा तत्व और बोध-संवेदना के अंत (वेदना) के बारे में: ये तत्व किसके आधार पर ज्ञात किए जाते हैं?"

"भिक्षु, अंधकार पर निर्भर होकर आभा तत्व (धातु) का ज्ञान होता है। अपवित्रता पर निर्भर होकर पवित्र तत्व का ज्ञान होता है। रूप पर निर्भर होकर अनंत आकाश तत्व का ज्ञान होता है। अनंत चेतना तत्व का ज्ञान अनंत आकाश तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। शून्यता तत्व का ज्ञान अनंत चेतना तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। न-बोध-न-बोध तत्व का ज्ञान शून्यता के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। वेदना और बोध के निरोध का ज्ञान निरोध पर निर्भर होकर होता है।" 232

"परन्तु, आभा तत्व... बोध (संज्ञा) और वेदना के निरोध के विषय में: इन तत्वों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है?"

"आभा तत्व, पवित्र तत्व, अनंत अंतरिक्ष का बोध, अनंत चेतना का बोध और शून्यता का बोध: इन तत्वों को बोध सहित प्राप्त करना है। न बोध और न अबोध का बोध: इस तत्व को संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के अवशेष सहित प्राप्त करना है। 233 बोध और संवेदना का अंत: इस तत्व को अंत की प्राप्ति के रूप में प्राप्त करना है।"

96. स्रोत के साथ (सा-निदान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, कामुक विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; दुर्भावना के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; हानि पहुँचाने के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं। और ऐसा क्यों है?

"धातु (इंद्रिय तत्व) पर निर्भर होकर कामुक बोध (सन्ना संस. संज्ञा) उत्पन्न होता है; 234 कामुक बोध पर निर्भर होकर कामुक अभिलाषा उत्पन्न होती है; कामुक अभिलाषा पर निर्भर होकर कामुक वासना उत्पन्न होती है; कामुक वासना पर निर्भर होकर कामुक खोज उत्पन्न होती है। कामुक खोज में लगे अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति तीन प्रकार से गलत आचरण करता है - शरीर, वाणी और मन से।"

द्वेष तत्व के आधार पर द्वेष की अनुभूति उत्पन्न होती है; द्वेष की अनुभूति के आधार पर द्वेष का इरादा उत्पन्न होता है; द्वेष के इरादे के आधार पर द्वेष से प्रेरित इच्छा उत्पन्न होती है; द्वेष से प्रेरित इच्छा के आधार पर द्वेष से प्रेरित जुनून उत्पन्न होता है; द्वेष से प्रेरित जुनून के आधार पर द्वेष से प्रेरित खोज उत्पन्न होती है। द्वेष से प्रेरित खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है। हानि

पहुँचाने के तत्व के आधार पर हानि पहुँचाने की अनुभूति उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की अनुभूति के आधार पर हानि पहुँचाने का इरादा उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के इरादे के आधार पर हानि पहुँचाने की इच्छा उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की इच्छा के आधार पर हानि पहुँचाने का जुनून उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के जुनून के आधार पर हानि पहुँचाने की खोज उत्पन्न होती है। हानि पहुँचाने की खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के घने जंगल में गिरा दे। यदि वह उसे तुरंत अपने हाथों और पैरों से न बुझाए, तो घास और जंगल में रहने वाले जीव विपत्ति और आपदा का शिकार हो जाएँगे। ठीक इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न अधार्मिक धारणाओं को शीघ्रता से त्यागकर, दूर करके, मिटाकर और नष्ट न कर दे, तो वह इसी जीवन में कष्ट, व्यथा, निराशा और बुखार में लीन रहता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसका बुरा अंजाम निश्चित है।

भिक्षुओं, त्याग का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; द्वेष न करने का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; अहिंसा का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं। और ऐसा क्यों है?

"त्याग तत्व (धातु) पर निर्भर होकर त्याग की अनुभूति (सन्ना संस. संग्य) उत्पन्न होती है; 237 त्याग की अनुभूति पर निर्भर होकर त्याग का इरादा उत्पन्न होता है; त्याग के इरादे पर निर्भर होकर त्याग की इच्छा उत्पन्न होती है; त्याग की इच्छा पर निर्भर होकर त्याग की अभिलाषा उत्पन्न होती है; त्याग की अभिलाषा पर निर्भर होकर त्याग की खोज उत्पन्न होती है। त्याग की खोज में लगे हुए, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; 238 अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित अभिलाषा उत्पन्न होती है; अहित की भावना से प्रेरित होकर, अहित की भावना से प्रेरित होकर एक खोज उत्पन्न होती है। अहित की भावना से प्रेरित होकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा के तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा की इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा की इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा की भावना उत्पन्न होती है; अहिंसा की भावना पर निर्भर होकर अहिंसा की खोज उत्पन्न होती है। अहिंसा की खोज में लगे रहकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के झुरमुट में गिरा दे। यदि वह उसे अपने हाथों और पैरों से तुरंत बुझा दे, तो घास और लकड़ी में रहने वाले प्राणियों पर कोई विपत्ति या विपत्ति नहीं आएगी। इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न हुई अधार्मिक धारणाओं को शीघ्र ही त्याग दे, उनका निवारण कर, उन्हें मिटा दे और उनका नाश कर दे, तो वह इसी जीवन में सुखपूर्वक, बिना किसी कष्ट, निराशा और व्याकुलता के निवास करता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसके लिए एक शुभ गंतव्य (सुगति) की अपेक्षा की जा सकती है।

---

97. ईंटों का हॉल (गिंजकवासथा)
एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंटों से बने हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,

"भिक्षुओं, किसी तत्व (धातु) पर निर्भर होकर एक बोध (संज्ञा) उत्पन्न होता है, एक दृष्टि उत्पन्न होती है, एक विचार उत्पन्न होता है।" 240

यह सुनकर आदरणीय सद्ध कच्चायन ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, जो पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हैं, उनके संबंध में यह दृष्टि कब उत्पन्न होती है? ये पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, यह दृष्टि किस पर निर्भर होकर प्रकट होती है?" 241

"हे कच्चयन, यह तत्व, अज्ञान का तत्व (अविज संस्कृत: अविद्या), शक्तिशाली है। कच्चयन, निम्न तत्व पर निर्भर होने से निम्न बोध, निम्न दृष्टि, निम्न विचार, निम्न संज्ञानात्मक जागरूकता, निम्न लालसा, निम्न इच्छा, निम्न व्यक्तित्व और निम्न वाणी उत्पन्न होती है। वह निम्न तत्वों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण करता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म निम्न है।

" कच्चयन, मध्यम तत्व पर निर्भर होने से मध्यम बोध, मध्यम दृष्टि, मध्यम विचार, मध्यम संज्ञानात्मक जागरूकता, मध्यम लालसा, मध्यम इच्छा, मध्यम व्यक्तित्व और मध्यम वाणी उत्पन्न होती है। वह मध्यम तत्वों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण करता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म मध्यम है।

"श्रेष्ठ तत्व कच्चयन पर निर्भर रहते हुए, श्रेष्ठ बोध, श्रेष्ठ दृष्टि, श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ संज्ञानात्मक जागरूकता, श्रेष्ठ लालसा, श्रेष्ठ इच्छा, श्रेष्ठ व्यक्तित्व और श्रेष्ठ वाणी का उद्भव होता है। वह श्रेष्ठता की व्याख्या, शिक्षा, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण करते हैं। उनका पुनर्जन्म, मैं कहता हूँ, श्रेष्ठ है।"

---

98. हीन प्रवृत्ति (हिनाधिमुक्तिका)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। 242 अतीत में, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते थे और एक होते थे... भविष्य में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं... वर्तमान में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं।"

---

99. आगे-पीछे चलना (Cankama sans. Cankraman)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय, भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, पूज्य सारिपुत्त कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे; पूज्य महामोग्गलाना, पूज्य महाकस्सपा, पूज्य अनुरुद्ध, पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त, पूज्य उपली और पूज्य आनंद भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे। और भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, देवदत्त भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा,
"भिक्षुओं, क्या आप सारिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ टहलते हुए देख रहे हैं?" 243

"जी, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण हैं। क्या आप मोग्गलाना को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं में महान आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) है। क्या आप कस्सपा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु तपस्वी प्रथाओं के समर्थक हैं। क्या आप अनुराधा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के पास दिव्य दृष्टि है। क्या आप पूर्ण मंतानिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु धर्म (मार्ग, नियम) के वक्ता हैं। क्या आप उपली को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अनुशासन के पालनकर्ता हैं। क्या आप आनंद को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अत्यंत विद्वान हैं। क्या आप देवदत्त को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के मन में बुरी इच्छाएं हैं।

" "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। निम्न स्वभाव वाले निम्न स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं; अच्छे स्वभाव वाले अच्छे स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

---

100. श्लोकों सहित सूत्र

सावत्थी, 244 में लिखा है, "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जिस प्रकार मल मल से, मूत्र मूत्र से, थूक थूक से, मवाद मवाद से और रक्त रक्त से जुड़ता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, यह तत्वों के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जैसे दूध दूध से, तेल तेल से, घी घी से, शहद शहद से और गुड़ गुड़ से मिलता है, वैसे ही, भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"संगति से कामवासना का जंगल (राग) उत्पन्न होता है, 245 अनासक्ति से जंगल कट जाता है।"

जैसे कोई लकड़ी के तख्ते पर चढ़कर
विशाल समुद्र में डूब जाता है, वैसे

ही सद्गुणी व्यक्ति
आलसी व्यक्ति की संगति में रहने से डूब जाता है।

इसलिए ऐसे व्यक्ति से बचना चाहिए -

जो आलसी हो, ऊर्जाहीन हो (वीर्य से रहित हो)।

बुद्धिमानों की संगति में रहो।

दृढ़ ध्यानियों के साथ रहो,

एकांत में रहने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के साथ रहो।

उनकी ऊर्जा निरंतर जागृत रहती है।

---

101. विश्वास की कमी
सावत्थी में
[बुद्ध:] “भिक्षुओं, तत्व (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीनों के साथ एकत्रित होते हैं, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, जो कर्म से नहीं डरते, वे कर्म से नहीं डरते, अज्ञानी अज्ञानीीं के साथ, आलसी आलसीओं के साथ, भ्रमित मन भ्रमितों के साथ, अज्ञानी अज्ञानियों के साथ, नासमझ आलसीओं के साथ, अज्ञानी आलसीओं के साथ, अज्ञानी भ्रमित मन के साथ, और अज्ञानी अज्ञानी के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

“भिक्षुओं, तत्व (धार्मिक) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। आस्थावान आस्थावानों के साथ एकत्रित होते हैं, लज्जावान लज्जावानों के साथ, कर्म से डरने वाले कर्म से डरने वालों के साथ, विद्वान विद्वानों के साथ, ऊर्जावान ऊर्जावानों के साथ, ध्यानमग्न सतिमा ध्यानमग्नों के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी यही स्थिति है।"

---

102. विश्वास की कमी वाले लोगों में निहित (असद्ध-मूलक सं. अश्रद्ध-मूलक)
(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीन लोगों के साथ, निर्लज्ज लोगों के साथ, मूर्ख लोगों के साथ। जिनमें आस्था होती है, वे आस्थावान लोगों के साथ, लज्जावान लोगों के साथ, और बुद्धिमान लोगों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले चार भागों में "निर्लज्ज" और "लज्जावान" के स्थान पर दूसरे स्थान पर निम्नलिखित शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं:)

(ii) कुकर्म से निर्भीक, कुकर्म से भयभीत;...

(iii) अनपढ़, विद्वान; ...

(iv) आलसी, ऊर्जावान;...

(v) भ्रमित मन, ध्यानमग्न (सतिमा)...

---

103. बेशर्म में निहित (अहिरिका-मुलाका)
(i)
भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, कुकर्म से निर्भय कुकर्म से, मूर्ख मूर्खों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग कुकर्म से भयभीत लोगों के साथ, बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। [अतीत में ऐसा था; भविष्य में ऐसा होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।]

(इस सूत्र के अगले तीन भागों में, दूसरे स्थान पर "कुकर्म से निर्भय" और "कुकर्म से भयभीत" के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) अनपढ़, विद्वान;...

(iii) आलसी, ऊर्जावान;...

(iv) भ्रमित मन, ध्यानमग्न (सतिमा)...

---

104. जो लोग अन्याय से भयभीत नहीं होते (अनोत्तप्पा-मूलक)

(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत नहीं होते, वे कुकर्म से भयभीत न होने वालों के साथ, अज्ञानी अज्ञानी के साथ, और मूर्ख मूर्ख के साथ एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत होते हैं, वे कुकर्म से भयभीत होने वालों के साथ, विद्वान विद्वान के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमान के साथ एकजुट होते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले दो भागों में "अज्ञानी" और "विद्वान" के स्थान पर निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) आलसी, ऊर्जावान;

(iii) भ्रमित, ध्यानमग्न (सतिमा)।

---

105. अनसीखे में निहित (अप्पासुता-मुलाका)
(i)

भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अज्ञानी अज्ञानी से, आलसी आलसी से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ऊर्जावान ऊर्जावान से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(ii)

अज्ञानी अज्ञानी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ध्यानमग्न ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

---

106. आलस्य में निहित (कुसितामूलका)
भिक्षुओं, हे तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। आलसी आलसी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। ऊर्जावान ऊर्जावान से, ध्यानमग्न सतीम ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(iii) कम्मा खंड के पाठ्यक्रम (कम्मापथवग्गो सं. कर्म-पथ-वर्ग)
107. समाधि में न होना (असमहिता)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती वे आस्थाहीन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, निर्लज्ज लोग निर्लज्ज लोगों के साथ, जो कुकर्म से नहीं डरते वे कुकर्म से नहीं डरते, जो समाधि अवस्था में नहीं होते वे समाधि अवस्था में नहीं होते, और जो अज्ञानी होते हैं वे अज्ञानी लोगों के साथ

एकत्रित और एकजुट होते हैं। आस्थावान लोग आस्थावान लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, लज्जा का भाव रखने वाले लोग लज्जा का भाव रखने वालों के साथ, कुकर्म से डरने वाले लोग कुकर्म से डरने वालों के साथ, समाधि अवस्था में रहने वाले समाधि अवस्था में रहने वालों के साथ, और बुद्धिमान लोग बुद्धिमानों के साथ।"

---

108. अनैतिक
(ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार, सिवाय इसके कि "समाधि अवस्था में न होने वाली अवस्था" और "समाधि अवस्था में होने वाली अवस्था" को क्रमशः "अनैतिक" और "सद्गुणी" से प्रतिस्थापित किया गया है।)

---

109. पाँच प्रशिक्षण नियम (पंचसिक्खपाद सं. पंच-शिक्षा-पाद)
श्रावस्ती में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का नाश करने वाले जीवन का नाश करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दी हुई वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो शराब, मदिरा और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पदार्थों का सेवन करते हैं,

वे उन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं जो ऐसा करते हैं। जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल) से दूर रहने वाले जीवन ...

---

110. कम्म के सात पाठ्यक्रम (सत्तकमपथ बिना सप्त-कर्म-पथ)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दिए वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो फूट डालने वाली बातें करते हैं... जो कठोर बातें करते हैं... जो व्यर्थ की बातों में लिप्त होते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं... बिना दिए वस्तुएँ लेने से... यौन दुराचार से... झूठे वाणी से... फूट डालने वाली वाणी से... कठोर वाणी से... व्यर्थ की बातों से दूर रहते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

111. कर्म के दस पाठ्यक्रम (दशकम्मपथ संस्कृत: दश-कर्म-पथ)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; वे ... (जैसा कि ऊपर 110 में जारी है:) ... जो लोभी हैं ... जो द्वेष रखते हैं ... गलत दृष्टिकोण वाले हैं, वे गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं ... (जैसा कि ऊपर है) जो लोभी नहीं हैं ... द्वेष रहित हैं ... सही दृष्टिकोण वाले हैं, वे सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

112. अष्टांगिक मार्ग (अत्थांगिक संस्कृत)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; गलत इरादे वाले... गलत वाणी वाले... गलत कर्म करने वाले... गलत आजीविका वाले... गलत प्रयास करने वाले... गलत ध्यान (सती) वाले... गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; सही इरादे वाले... सही वाणी वाले... सही कर्म करने वाले... सही आजीविका वाले... सही प्रयास करने वाले... सही ध्यान (सती) वाले... सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।"

---

113. दस कारक (दसंग सं. दश-अंग)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए 8 + 2) गलत समाधि अवस्था ... गलत ज्ञान ... गलत मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) गलत मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए अनुसार) सही समाधि अवस्था ... सही ज्ञान ... सही मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) सही मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।" 246

(iv) चार तत्वों पर चौथा खंड (कैटुथावागो संस। कैटुरथा-वर्ग)

114. चार तत्व (चतुधातु)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), वायु तत्व (धातु)। ये चार तत्व हैं।" 247

---

115. मेरे ज्ञानोदय से पहले (पुब्बेसंबोध सं. पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'पृथ्वी तत्व (धातु) के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है? जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व के संदर्भ में सांसारिक सुख

(असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?' "तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: पृथ्वी तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख (सुख) और सोमनस्सा: यही पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख है। पृथ्वी तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही पृथ्वी तत्व में खतरा है। पृथ्वी तत्व के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही पृथ्वी तत्व से मुक्ति है।" 248

"जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद: यही वायु तत्व में सांसारिक सुख है। वायु तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वायु तत्व में खतरा है। वायु तत्व के प्रति इच्छा और कामवासना का त्याग करना ही वायु तत्व से मुक्ति है।" 249

"हे भिक्षुओं, जब तक मैं इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया।" लेकिन जब मुझे इन सब बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया, तब मैंने दावा किया कि मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा।'"

---

116. मैं निकल पड़ा (अकारिम)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी सांसारिक सुख है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में खतरे की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी खतरा है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में खतरा कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व से मुक्ति की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व से जो भी मुक्ति है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख की खोज में निकला..." जल तत्व से मुक्ति, ऊष्मा तत्व से मुक्ति, वायु तत्व से मुक्ति का खतरा। वायु तत्व से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

"अब तक, भिक्षुओं, क्योंकि मैं इन चार तत्वों (जैसा कि ऊपर बताया गया है) के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता था... देवों और मनुष्यों के मामले में।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

---

117. यदि कोई (नोसेडम) नहीं होता

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व में सांसारिक भोग होने के कारण प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि पृथ्वी तत्व में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा (निब्बिद) न करते; परन्तु पृथ्वी तत्व में भय होने के कारण प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि पृथ्वी तत्व से कोई मुक्ति न होती, तो प्राणी उससे मुक्त न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि जल तत्व में सांसारिक भोग न होता... ऊष्मा तत्व में... वायु तत्व में, तो प्राणी उससे मोहित न होते... परन्तु वायु तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।"

"हे भिक्षुओं, जब तक प्राणी इन चारों तत्वों के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) को सांसारिक सुख के रूप में, संकट को संकट के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, इससे मुक्त नहीं हो पाते, और न ही वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त हो जाते हैं... वे इससे विरक्त हो जाते हैं, इससे मुक्त हो जाते हैं, और वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं।" 251

---

118. विशेष रूप से पीड़ित (एकांतदुक्खा)

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व (धातु) केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

"भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह वायु तत्व केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि वायु तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा (निब्बिद) नहीं होती। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह वायु तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा नहीं होती। परन्तु क्योंकि वायु तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

---

119. डिलाईट (अभिनन्द बिना अभिनन्दन)

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो पृथ्वी तत्व (धातु) में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता। जो जल तत्व... ऊष्मा तत्व... वायु तत्व में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता।

जो पृथ्वी तत्व... वायु तत्व में आनंद नहीं लेता, वह दुख में आनंद नहीं लेता। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद नहीं लेता, वह दुख से मुक्त होता है।"

---

120. उदय (उप्पदा सं. उत्पद)

सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। 253 जल तत्व (धातु) ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है।

पृथ्वी तत्व ... वायु तत्व का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

121. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व, जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व।

जो तपस्वी या ब्राह्मण भिक्षु इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।"

लेकिन, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन चारों तत्वों के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के तरीके को यथार्थ रूप से समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय योग्य व्यक्ति, दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

122. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व।

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन चार तत्वों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख, संकट और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझते; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी नहीं मानता...

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन चारों तत्वों के उद्भव और अपव्यय, सांसारिक भोग, भय और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी और ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर जाते हैं और निवास करते हैं।

---

123. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो पृथ्वी तत्व (धातु), उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी नहीं मानता।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

अध्याय 4: खोजे जाने योग्य आरंभ के बिना (अनामतग्गसमुत्त) {संयुत्त-15}
(i) पहला उप-अध्याय (घास और लकड़ी)
124. घास और लकड़ी (तिनकत्था सं. तृण-काष्ठा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। 254 अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति इस जंबूद्वीप में जो भी घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्ते हैं, उन्हें काटकर एक ढेर में इकट्ठा कर ले। ऐसा करने के बाद, वह उन्हें नीचे रखते हुए (प्रत्येक के लिए) कहे: 'यह मेरी माता है, यह मेरी माता की माता है।' उस व्यक्ति की माता-पिता और दादी-नानी का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी इस जंबूद्वीप की घास, लकड़ी, शाखाएँ और पत्तियाँ सब समाप्त हो जाएँगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, इतने लंबे समय से आपने दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना, उनके प्रति वैराग्य होना और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

125. पृथ्वी (पथवी सं. पृथ्वी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई मनुष्य इस विशाल पृथ्वी को बेर के बीज के आकार की मिट्टी की गेंदों में तोड़कर नीचे रख दे और प्रत्येक गेंद के लिए कहे: 'यह मेरे पिता हैं, यह मेरे दादा हैं।' उस व्यक्ति के पूर्वजों और दादाओं का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी यह विशाल पृथ्वी समाप्त हो जाएगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा का भाव रखना, उनके प्रति वैराग्य का भाव रखना और उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

126. आँसू (अस्सु संस्कृत अशरु)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन सा अधिक है: इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - यह या चारों महामहासागरों का जल?" 255

"हे पूज्यवर, जैसा कि हम भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) को समझते हैं, इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - केवल यही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबे मार्ग पर विचरण करते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक माता की मृत्यु का अनुभव किया है; अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।

भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक पिता की मृत्यु... भाई की मृत्यु... बहन की मृत्यु... पुत्र की मृत्यु... पुत्री की मृत्यु... रिश्तेदारों की हानि... धन की हानि... बीमारी से हानि का अनुभव किया है; जैसा कि आपने अनुभव किया है, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोने-धोने से, आपके द्वारा बहाए गए आँसुओं की धारा चारों महामहासागरों के जल से भी अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है) है... सभी संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्त (विमुक्त) होना ही पर्याप्त है।

---

127. माँ का दूध (खिरा बिना क्षीरा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपके विचार में क्या श्रेष्ठ है: वह माता का दूध जो आपने इस दीर्घकालीन यात्रा में पान किया है - यह या चारों महामहासागरों का जल?"

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार, इस दीर्घकालीन यात्रा में हमने जो माता का दूध पान किया है - वह अकेले ही चारों महामहाराजों के जल से श्रेष्ठ है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छी बात है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबी यात्रा में आपने जो माता का दूध पिया है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से कहीं अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि 124 में है)... इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

128. पर्वत (पब्बाता सं. पर्वत)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय गुरुदेव, एक युग (कप्प/कल्प) कितना लंबा होता है?" 256

"एक युग (कप्प/कल्प) लंबा होता है, भिक्षु। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष है, या इतने सौ वर्ष है, या इतने हजार वर्ष है, या इतने लाख वर्ष है।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, आदरणीय गुरुदेव?"

"हाँ, भिक्षु," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक विशाल पत्थर का पर्वत है जो एक योजन लंबा, एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊंचा है, जिसमें कोई छेद या दरार नहीं है, वह चट्टान का एक ठोस पिंड है। हर सौ वर्ष के अंत में एक मनुष्य उसे कशम के कपड़े से एक बार रगड़ता है। 257 इस प्रयास से वह विशाल पत्थर का पर्वत घिसकर नष्ट हो सकता है, परन्तु युग का अंत नहीं होगा। हे भिक्षु, युग इतना लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सैकड़ों युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाखों युगों में भटक चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

129. सरसों का बीज (सासापा)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, एक युग (कप्प कल्प) कितना लंबा होता है?"

"भिक्षु, एक युग लंबा होता है। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष हैं, या इतने सौ वर्ष हैं, या इतने हजार वर्ष हैं, या इतने लाख वर्ष हैं।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, संभव है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक नगर है जिसकी लोहे की दीवारें एक योजन लंबी, एक योजन चौड़ी और एक योजन ऊंची हैं, और वह सरसों के दानों से भरा हुआ है जो चोटी के समान घने हैं। हर सौ वर्ष के अंत में एक व्यक्ति वहां से एक सरसों का दाना निकालता है। इस प्रयास से सरसों के दानों का विशाल ढेर भले ही समाप्त हो जाए, परन्तु युग का अंत न हो। हे भिक्षु, युग इतना ही लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सौ युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाख युगों तक विचरण कर चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

130. शिष्य (सावक सं. श्रावक)
सावत्थी में। [183] तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कितने युग (कल्प/कल्प) बीत चुके हैं?"

"भिक्षुओं, कई युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।" "

परन्तु क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, भिक्षुओं," भगवान (बुद्ध) ने कहा। भिक्षुओं, मान लीजिए कि यहाँ चार शिष्य हैं, जिनमें से प्रत्येक का जीवनकाल सौ वर्ष है, और वे सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं, और प्रत्येक दिन उन्हें एक लाख युगों का स्मरण करना है। सौ वर्ष पूरे होने पर जब वे चारों शिष्य, जिनका जीवनकाल सौ वर्ष है, इस जीवन के अंत में इस दुनिया से विदा हो जाएँगे, तब भी उनके द्वारा स्मरण न किए गए युग शेष रहेंगे। 258 उनका गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

131. गंगा नदी

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तभी एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला, "गुरु गौतम, कितने युग बीत चुके हैं?"

"ब्राह्मण, अनेक युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।" "

परन्तु क्या इसकी कोई उपमा दी जा सकती है, गुरु गौतम?"

"हाँ, संभव है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। "मान लीजिए, ब्राह्मण, गंगा नदी के उद्गम स्थल और सागर में उसके प्रवेश स्थल के बीच रेत के कण हैं: इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने कण हैं, या इतने सौ कण हैं, या इतने हज़ार कण हैं, या इतने लाख कण हैं। ब्राह्मण, बीते हुए युग तो इससे भी कहीं अधिक हैं। इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि, ब्राह्मण, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

132. डंडा

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। जैसे हवा में उछाली गई छड़ी कभी अपने तल पर, कभी अपने किनारे पर और कभी अपने शीर्ष पर गिरती है, वैसे ही प्राणी अज्ञान (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों की तरह ही इस लोक से परलोक जाते हैं, कभी परलोक से इस लोक में आते हैं। 259 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

133. व्यक्ति (पुग्गला)

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!" 260

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। यदि कोई उन्हें एकत्रित करे, तो एक व्यक्ति जो अज्ञान (संज्ञान) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकता रहे, वह अपने पीछे वेपुल्ला पर्वत के समान अस्थि-ढेर छोड़ जाएगा, और एकत्रित अस्थि-ढेर नष्ट नहीं होगा। 261 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"एक व्यक्ति द्वारा छोड़ी गई हड्डियों का ढेर; एक युग (कप्प/कल्प) बीतने पर
पर्वत के समान ऊँचा ढेर बन जाएगा; ऐसा महान ऋषि ने कहा है।

यह इतना विशाल है; जितना
मगध पर्वत श्रृंखला में गिद्ध शिखर के उत्तर में स्थित ऊँचा वेपुल्ला पर्वत।

परन्तु जब कोई सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से (ध्यान में, पस्सति) देखता है; तो वह व्यक्ति, अधिक से अधिक सात बार और विचरण करके; सभी बंधनों को तोड़कर
दुख का अंत करता है।"

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुर्भाग्यपूर्ण)
134. अभागा (दुग्गता सं. दुर्गति)
एक बार, जब वे सावत्थी में निवास कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यह संसार अनादि है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभ बिंदु ज्ञात नहीं है। जब भी आप किसी को दुर्भाग्य या कष्ट में देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

135. सुखी (सुखिता सं. सुखी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... जब भी आप किसी को सुखी और भाग्यशाली देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

136. तीस भिक्षु (तिम्सामत्ता)
राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन) में, पावा से तीस भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए - सभी वनवासी, भिक्षापान करने वाले, वस्त्रधारी, त्रिगुण वस्त्र धारण करने वाले, फिर भी सभी बंधनों में जकड़े हुए थे। 262 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) के मन में यह विचार आया:
"पावा से आए ये तीस भिक्षु सभी वनवासी, भिक्षापान करने वाले, वस्त्रधारी, त्रिगुण वस्त्र धारण करने वाले हैं, फिर भी सभी बंधनों में जकड़े हुए हैं। मैं इन्हें धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाऊँ कि जब वे इन्हीं स्थानों पर बैठे हों, तो अनासक्ति के कारण उनका मन विमुक्त हो जाए।"

तब भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपके विचार में कौन सा अधिक श्रेष्ठ है: वह रक्तधारा जो आपने इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए अपने सिर काटे जाने पर बहाई - यह या चारों महामहासागरों का जल?" "हे

पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, वह रक्तधारा जो हमने इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए अपने सिर काटे जाने पर बहाई - वह अकेले ही चारों महामहाराजों के जल से अधिक श्रेष्ठ है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबी यात्रा में भटकते हुए आपने जो रक्त बहाया है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। हे भिक्षुओं, आप लंबे समय तक गाय रहे, और जब गाय के रूप में आपका सिर काट दिया गया, तो आपका बहाया गया रक्त चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। लंबे समय तक आप भैंस, भेड़, बकरी, हिरण, मुर्गी और सूअर रहे... लंबे समय तक आप चोर, लुटेरे और व्यभिचारी के रूप में गिरफ्तार हुए, और जब आपका सिर काट दिया गया, तो आपका बहाया गया रक्त चारों महामहासागरों के जल से अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)... इनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। वे भिक्षु प्रसन्न होकर भगवान (बुद्ध) के कथन से आनंदित हुए। और जब यह व्याख्या हो रही थी, पावा के उन तीस भिक्षुओं के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

137-142.माता, पिता, भाई, बहन, बेटा, बेटी (मातु, पितु, भातु, भगिनी, पुत्त, धितु)
मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में जेतवन (जेतवन) में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में रह रहे थे।

वहीं से भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, संसार (पुनर्जन्म का चक्र) का कोई अंत नहीं है, अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) में डूबे और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से बंधे प्राणियों का कोई आरंभ नहीं बताया जा सकता, जो एक जन्म से दूसरे जन्म तक दौड़ते रहते हैं।

भिक्षुओं, इस लंबे पुनर्जन्म के चक्र में आपको ऐसा कोई प्राणी नहीं मिलेगा जो पहले आपकी माता...आपके पिता...आपके भाई...आपकी बहन...आपका पुत्र...आपकी पुत्री न रहा हो।"

इसका कारण क्या है? हे भिक्षुओं, पुनर्जन्मों का यह चक्र अंतहीन है, इसका कोई आरंभिक बिंदु नहीं बताया जा सकता। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु नहीं देखा जा सकता। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी
संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

143. वेपुल्ला पर्वत (वेपुल्लापबट्टा सं. वेपुल्ला-पर्वत)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, अतीत में इस वेपुल्ला पर्वत को पचिनवंश कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को तिवर कहा जाता था। तिवरों का जीवनकाल 40,000 वर्ष था। वे चार दिनों में पचिनवंश पर्वत पर चढ़ सकते थे और चार दिनों में उतर सकते थे। उस समय पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत भगवान (बुद्ध) ककुसंध संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य विदुर और संजीव थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (पूर्व बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। भिक्षुओं, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) क्षणभंगुर होते हैं, वे इतने अस्थिर और अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

"[एक अन्य समय में] अतीत में, भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को वंकाका कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को रोहितास कहा जाता था। रोहितासों का जीवनकाल 30,000 वर्ष था। 264 वे तीन दिनों में वंकाका पर्वत पर चढ़ सकते थे और तीन दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कोनागमना, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्यों के नाम भिय्योसा और उत्तरा थे, जो एक उत्कृष्ट जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार संबंधी आदतें) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। इनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

"[एक और समय पहले], हे भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को सुपस्सा कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को सुप्पिया कहा जाता था। सुप्पियों का जीवनकाल 20,000 वर्ष था। वे दो दिनों में सुपस्सा पर्वत पर चढ़ सकते थे और दो दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कस्सपा, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य तिस्सा और भारद्वाज थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, हे भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार-आदतों) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।"

भिक्षुओं, वर्तमान में इस वेपुल्ला पर्वत को वेपुल्ला कहा जाता है, और वर्तमान में इन लोगों को मगधवासी कहा जाता है। मगधवासियों का जीवनकाल अल्प, सीमित और क्षणभंगुर होता है; जो दीर्घ जीवन जीता है वह सौ वर्ष या उससे थोड़ा अधिक जीता है। मगधवासी एक घंटे में वेपुल्ला पर्वत पर चढ़ते हैं और एक घंटे में उतर जाते हैं। वर्तमान में मैं संसार में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के रूप में अवतरित हुआ हूँ।
मेरे दो प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और मोग्गलाना हैं, जो एक उत्तम जोड़ी हैं। भिक्षुओं, एक समय आएगा जब इस पर्वत का नाम लुप्त हो जाएगा, जब ये लोग मर जाएंगे, और मैं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लूंगा। भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आदतें) इतने क्षणभंगुर, इतने अस्थिर, इतने अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार-आदतों) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्यवान होना ही पर्याप्त है, और उनके प्रति उदासीन रहना ही पर्याप्त है। उनसे मुक्त हो जाओ।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"तिवारों ने इसे पचिनवंस कहा; रोहितासों ने वंकाका,
सुप्पिया लोगों ने सुपस्सा और मगध के लोगों ने वेपुल्ला कहा।

"अफ़सोस, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) अनित्य हैं; वे उत्पन्न और नष्ट होते हैं।
एक बार उत्पन्न होने पर वे समाप्त हो जाते हैं; उनका निवारण आनंददायक है।" 265

अध्याय 5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-16}
144. संतोष
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहता है, और वह किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और वह वस्त्र के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होता। 266 यदि उसे वस्त्र न मिले तो वह विचलित नहीं होता, और यदि उसे वस्त्र मिल जाए तो वह उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसका उपयोग करता है, उसमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है। 267

"भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहता है... और यदि उसे ये सब मिल जाएं तो वह उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनका उपयोग करता है, उनमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है।"

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहेंगे, और किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करेंगे, और वस्त्र की प्राप्ति के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होंगे। यदि हमें वस्त्र न मिले तो हम विचलित नहीं होंगे, और यदि हमें वस्त्र मिल जाए तो हम उसका उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।

' 'हम किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहेंगे... और यदि हमें वे प्राप्त हों तो हम उनका उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से शिक्षा दूंगा। 268 शिक्षा प्राप्त करके, तुम तदनुसार अभ्यास करो।" 269

---

145. गलत काम करने से बेखौफ (अनोट्टापी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बनारसी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा को प्रणाम किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"मित्र, ऐसा कहा जाता है कि जो उत्साही नहीं है और जो कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है; परन्तु जो उत्साही है और कुकर्म से भयभीत है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य है, निर्वाण के योग्य है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य है। 270 यह किस प्रकार सच है, मित्र?"

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न नहीं करता:
'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए बुरे और हानिकारक भावों का त्याग न किया जाए, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत) भाव उत्पन्न न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही नहीं होता। 271

"और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत नहीं होता? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर भयभीत नहीं होता: 'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है' ... न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इस प्रकार वह कुकर्म से भयभीत नहीं होता।

"मित्र, इसी प्रकार जो उत्साही नहीं है और कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है।

" "और मित्र, उत्साही कैसे होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न करता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक बुरे भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है"... और यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही होता है।

" "और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु इस विचार से भयभीत हो जाता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; और इस विचार से: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इसलिए वह कुकर्म से डरता है।

"हे मित्र, इसी प्रकार जो व्यक्ति कुकर्म से डरता है और उसके प्रति सजग रहता है, वह ज्ञान प्राप्त करने, निर्वाण प्राप्त करने और बंधन से अद्वितीय मुक्ति प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

---

146. चंद्रमा के समान (चंद्रउपमा संस्कृत: चंद्र-उपमा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाना चाहिए - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। 272 जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी पुराने कुएँ, खाई या नदी के किनारे को देखते समय अपने शरीर और मन को समेट लेता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास जाना चाहिए।

" "भिक्षुओं, कस्सपा परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाते हैं - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। भिक्षुओं, आपके विचार में किस प्रकार का भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा।" उससे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

फिर भगवान (बुद्ध) ने अंतरिक्ष में अपना हाथ हिलाया और कहा:

"भिक्षुओं, जिस प्रकार यह हाथ अंतरिक्ष में नहीं फंसता, न ही उससे बंधा रहता है, न ही उससे बंधता है, उसी प्रकार जब कोई भिक्षु परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि 'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' 274 वह दूसरों के लाभों पर उतना ही प्रसन्न और आनंदित होता है जितना अपने लाभों पर। ऐसा भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है।

"भिक्षुओं, जब कस्सपा परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि 'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' वह दूसरों की उपलब्धियों पर उतना ही प्रसन्न और प्रसन्न होता है जितना अपनी उपलब्धियों पर।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि भिक्षु द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देना अशुद्ध कैसे है और धम्म का उपदेश देना शुद्ध कैसे है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है:
'हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर, वे धम्म में विश्वास प्राप्त करें! विश्वास प्राप्त करके, वे अपना विश्वास मुझ पर प्रकट करें!' 275 ऐसे भिक्षु द्वारा धम्म का उपदेश देना अशुद्ध है।"

लेकिन एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है। हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' इस प्रकार वह धम्म की अंतर्निहित उत्कृष्टता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देता है; वह करुणा और सहानुभूति से, कोमल चिंता से दूसरों को धम्म का उपदेश देता है। 276 ऐसे भिक्षु का धम्म का उपदेश शुद्ध है।

भिक्षुओं, कस्सपा दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) की अच्छी व्याख्या की गई है... हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' वह धम्म की अंतर्निहित श्रेष्ठता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं; वे करुणा और सहानुभूति से, कोमल प्रेम से दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं।

"भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।"

---

147. परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपका)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य है, और किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य नहीं है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक भिक्षु को परिवारों के पास इस विचार के साथ जाना चाहिए: 'वे मुझे दान दें, संकोच न करें! वे मुझे भरपूर दान दें, थोड़ा नहीं! वे मुझे उत्तम वस्तुएँ दान करें, घटिया वस्तुएँ नहीं! वे मुझे शीघ्र दान दें, विलंब न करें! वे मुझे विचारपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। यदि वे अधिक के बजाय थोड़ा दान देते हैं... यदि वे उत्तम वस्तुओं के बजाय पुरानी वस्तुओं का दान देते हैं... यदि वे शीघ्रता के बजाय विलंब से दान देते हैं... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य नहीं है।

"भिक्षुओं, एक भिक्षु परिवारों के पास इस विचार से जा सकता है:
'जब मैं दूसरों के परिवारों के बीच होता हूँ, तो मैं यह कैसे सोच सकता हूँ: "वे मुझे दान दें, संकोच न करें! ... वे मुझे आदरपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!"?' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख नहीं होता; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव नहीं होता। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य है।

भिक्षुओं, कश्यप परिवारों के पास इसी विचार के साथ जाते हैं... इसलिए यदि वे दान न दें... यदि वे विचारपूर्वक नहीं बल्कि लापरवाही से दान दें, तो उन्हें इससे कोई हानि नहीं होती; उन्हें इससे कोई पीड़ा या अप्रसन्नता नहीं होती।

भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।

---

148. पुराना (जिन्ना संस्कृत जीर्ण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, अब तुम बूढ़े हो गए हो, और तुम्हारे ये पुराने चमड़े के वस्त्र तुम्हारे लिए बोझिल होंगे। इसलिए, हे कस्सपा, गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र पहनो, निमंत्रण पर भोजन ग्रहण करो और मेरे निकट निवास करो।" 278

"हे पूज्यवर, मैं बहुत समय से वनवासी रहा हूँ और वनवास की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं भिक्षाभोजन करता रहा हूँ और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं चिथड़े वस्त्र पहनता रहा हूँ और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं तीन वस्त्र धारण करता रहा हूँ और तीन वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मेरी इच्छाएँ कम रही हैं और इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं संतुष्ट रहा हूँ और संतोष की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं एकांत में रहा हूँ और एकांत की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं समाज से विरक्त रहा हूँ और समाज से विरक्त रहने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं ऊर्जावान रहा हूँ और ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।" 279

"हे कस्सपा, आप किस लाभ को ध्यान में रखते हुए इतने समय से वनवासी रहे हैं... (जैसा ऊपर वर्णित है)... और ऊर्जा उत्पन्न करने की प्रशंसा करते रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, दो लाभों पर विचार करते हुए। मैं अपने लिए इसी जीवन में एक सुखमय निवास देखता हूँ, और आने वाली पीढ़ियों के लिए करुणा रखता हूँ, यह सोचते हुए कि 'आने वाली पीढ़ियाँ मेरे उदाहरण का अनुसरण करें!' 280 क्योंकि जब वे सुनेंगे, 'बुद्ध के प्रबुद्ध शिष्य लंबे समय तक वनवासी रहे और वनवास की प्रशंसा करते रहे... वे ऊर्जावान थे और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा करते रहे,' तो वे तदनुसार अभ्यास करेंगे, और इससे उन्हें लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। हे पूज्यवर, इन दो लाभों पर विचार करते हुए, मैं लंबे समय से वनवासी रहा हूँ... और ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।"

"शाबाश, शाबाश, कस्सपा! तुम संसार के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए साधना कर रहे हो। इसलिए, कस्सपा, पुराने चमड़े के वस्त्र पहनकर भिक्षा मांगने के लिए वन में निवास करो।"

---

149. निर्देश (1) (ओवादा1)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।" 281

“हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। 28 वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। हे पूज्यवर, मैंने यहाँ आनंद के शिष्य भंडा नामक भिक्षु और अनुराधा के शिष्य अभिंजिका नामक भिक्षु को अपने ज्ञान के विषय में आपस में प्रतिस्पर्धा करते हुए देखा, वे कह रहे थे:
'आओ, भिक्षु, कौन अधिक बोल सकता है? कौन बेहतर बोल सकता है? कौन अधिक देर तक बोल सकता है?'”

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा:
“आओ, भिक्षु, भंडा और अभिंजिका को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।”

"जी, हे पूज्यवर," उस भिक्षु ने उत्तर दिया, और वह उन भिक्षुओं के पास गया और उनसे कहा: "गुरु पूज्य भिक्षुओं को बुला रहे हैं।"

"जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि तुम अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा कर रहे हो, कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है?"

"जी, पूज्यवर।"

"क्या तुमने मुझे कभी धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हुए देखा है: 'आओ, भिक्षुओं, अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा करो और देखो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"यदि तुमने मुझे इस प्रकार धम्म का उपदेश देते हुए कभी नहीं देखा, तो तुम जैसे नासमझों को क्या पता है कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर तुम आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन कर रहे हो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है?"

तब उन भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा: "आदरणीय गुरुदेव, हमने पाप किया है - हम इतने नासमझ, इतने भ्रमित और इतने अयोग्य थे कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर हमने आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन किया कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है। आदरणीय गुरुदेव, भविष्य में संयम के लिए हमारे इस पाप को क्षमा करें।"

"निःसंदेह, भिक्षुओं, आपने एक अपराध किया है - आप कितने बचकाने (नासमझ), कितने भ्रमित और कितने अयोग्य) थे - कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षा प्राप्त करने के बाद भी आप अपने ज्ञान के मामले में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे... लेकिन चूंकि आप अपने अपराध को अपराध मानते हैं और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हैं, इसलिए हम आपको क्षमा करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने अपराध को अपराध मानता है, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करता है और भविष्य में संयम बरतता है, तो यही गुरु के अनुशासन में वृद्धि है।"

150.निर्देश (2) (ओवादा2)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ, या तुम दो।"

आदरणीय महोदय, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। आदरणीय महोदय, 283 जो लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है, वृद्धि नहीं। जैसे कृष्ण पक्ष के दौरान, चाहे दिन हो या रात, चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि घटती जाती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जो लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न रखता हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है। अवस्थाएँ, विकास नहीं।

"हे आदरणीय महोदय, आस्थाहीन व्यक्ति के लिए हानि का मामला है। लज्जाहीन व्यक्ति... जो कुकर्म से भयभीत नहीं होता... जो आलसी... नासमझ... क्रोधित... द्वेषपूर्ण होता है: उसके लिए हानि का मामला है। जब कोई भिक्षु प्रशिक्षक नहीं होते, तब भी हानि का मामला है।"

आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में, चाहे दिन हो या रात,

चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि बढ़ती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं।

आदरणीय महोदय, विश्वास रखने वाले व्यक्ति के लिए यह हानि का मामला नहीं है। लज्जा रखने वाले व्यक्ति के लिए... जो पाप से भयभीत है... ऊर्जावान है... बुद्धिमान है... क्रोध रहित है... द्वेष रहित है: यह हानि का मामला नहीं है। जब भिक्षुओं में से कुछ गुरु भी हों, तो उसे कोई हानि नहीं होगी। "

बहुत खूब, कस्सपा!"

(बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के पूरे कथन को दोहराया।)

---

151. निर्देश (3) (ओवादा3)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।"

"हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देना कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और उपदेश को आदरपूर्वक ग्रहण नहीं करते।"

"ठीक इसी प्रकार, कस्सपा, अतीत में वरिष्ठ भिक्षु वनवासी थे और वनवास की प्रशंसा करते थे; वे भिक्षाभोजन करते थे और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करते थे; वे चिथड़े वस्त्र पहनते थे और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करते थे; वे त्रिव वस्त्र धारण करते थे और त्रिव वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करते थे; उनकी इच्छाएँ कम थीं और वे इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करते थे; वे संतुष्ट थे और वे संतोष की प्रशंसा करते थे; वे एकांतवासी थे और वे एकांत की प्रशंसा करते थे; वे समाज से विरक्त थे और वे समाज से विरक्तता की प्रशंसा करते थे; वे ऊर्जावान थे और वे ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करते थे।

फिर, जब कोई भिक्षु वनवासी होता था और वनवास की प्रशंसा करता था..." जब वे ऊर्जावान होते और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलते, तो वरिष्ठ भिक्षु उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करते हुए कहते: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु साधना में तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ एक आसन है, बैठ जाओ।' तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु वनवासी होता है और वनवास की प्रशंसा में बोलता है... जब वह ऊर्जावान होता है और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलता है, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे तदनुसार अभ्यास करते, और इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होता।

"परन्तु अब, कस्सपा, वरिष्ठ भिक्षु वनवासी नहीं रहे और वनवास की प्रशंसा नहीं करते... वे ऊर्जावान नहीं रहे और वीर शक्ति (वीर्य) जगाने की प्रशंसा नहीं करते। अब वरिष्ठ भिक्षु उस भिक्षु को अपने आसन पर आमंत्रित करते हैं जो सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध है, जो वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता है, और कहते हैं: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु ब्रह्मचर्य जीवन में अपने भाइयों की संगति के लिए तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ आसन है, बैठो।'" तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु प्रसिद्ध और विख्यात हो जाता है, जिसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हो जाती हैं, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे अपने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे इसी प्रकार अभ्यास करते हैं, और यही उनके लिए लंबे समय तक हानि और कष्ट का कारण बनता है।

"यदि, कस्सपा, सही ढंग से बोलते हुए यह कह सकता है: 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है; पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है,' 284 तो ठीक इसी प्रकार यह कहना उचित है।"

---

152. झाना (आत्म-अवशोषित ट्रान्स) और दिव्य-शक्तियों का ज्ञान (झानाभिन्न संस। ध्यान-अभि-ज्ञान)
(महत्वपूर्ण: नौ झाना [ध्यानसमाधि] अवस्थाएं और छह दिव्य-ज्ञान(अभिन्न)\जादुई शक्तियां)

(1) पहला झाना (सांस ध्यान समाधि 1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(2) द्वितीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 2)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) से युक्त है, चिंतन और परीक्षण से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(3) तृतीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 3)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होते हुए भी, समभाव में, ध्यान (सतिमा) करते हुए और पूर्णतः संबोध (संपजनो) करते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करता हूँ; मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में, ध्यानमग्न और सुखी है।' कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, तृतीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(4) चतुर्थ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 4)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख का त्याग करते हुए, और पहले से ही सुख और दुःख के लुप्त होते हुए, चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सति) की शुद्धि को समाहित करता है।" कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चौथे ध्यान में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(5) पाँचवाँ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 5)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, रूप की अनुभूति (सन्ना संस्कृत: संज्ञा) से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) से मुक्त होकर, विभिन्न अनुभूतियों में विलीन न होकर, यह जानकर कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैं अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(6) छठा ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 6)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से पूर्ण रूप से परे जाकर, यह जानकर कि 'चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) अनंत है', मैं अनंत चेतना की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चेतना की अनंतता की क्षमता में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(7) सातवां ध्यान (संस्कृत)ध्यान समाधि 7)
भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चेतना की अनंतता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, शून्यता की शक्ति में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(8) आठवाँ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 8)
भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(9) नौवां ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 9)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, न-बोध-न-बोध की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी अपनी इच्छा अनुसार, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश करता है और निवास करता है।"

छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियाँ

1. जादू का दिव्य ज्ञान (इद्धि और रिद्धि)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता हूँ: एक होकर मैं अनेक हो जाता हूँ; अनेक होकर मैं एक हो जाता हूँ; मैं प्रकट और लुप्त हो जाता हूँ; मैं दीवार, प्राचीर, पर्वत को अंतरिक्ष की तरह पार कर जाता हूँ; मैं पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता और बाहर निकलता हूँ जैसे वह जल हो; मैं जल पर बिना डूबे ऐसे चलता हूँ जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर मैं पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करता हूँ; मैं अपने हाथों से शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श और सहलाता हूँ; मैं ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर महारत हासिल करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

2. दिव्य श्रवण

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार मेरी इच्छा है कि मैं शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकूँ, चाहे वो दिव्य हों या मानवीय, दूर की हों या पास की। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकते हैं।

3. दूसरों के मन को जानना:
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझता हूँ। मैं राग से ग्रस्त मन को राग से ग्रस्त मन के रूप में, राग रहित मन को राग रहित मन के रूप में, दोष से ग्रस्त मन को दोष रहित मन के रूप में, मोह से ग्रस्त मन को मोह रहित मन के रूप में, मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में, संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित मन के रूप में, उदात्त मन को उदात्त और अधोमुखी मन को अधोमुखी मन के रूप में, पार करने योग्य मन को पार करने योग्य और पार न करने योग्य मन को पार न करने योग्य मन के रूप में, और समाधि अवस्था में स्थित मन को भी उसी रूप में समझता हूँ।" समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से इतर मन को समाधि अवस्था से इतर ही माना जाता है; मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त ही माना जाता है। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझते हैं।

4. पूर्व जन्मों का ज्ञान
भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता हूँ, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन, अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के दौरान: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मैंने कहीं और पुनर्जन्म लिया, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से दूर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार मैं अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करते हैं।

5. दिव्य दृष्टि
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ एक अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मैं दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, (ध्यान में, पस्सतो) प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।

6. मुक्ति का ज्ञान (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)
"भिक्षुओं, इसी जीवन में मैं विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता हूँ, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करता हूँ।" 285 कस्सपा भी विकारों के नाश (खयाल) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करता है।

---

153. भिक्षुणियों का निवास स्थान (उपासया)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे।

फिर, सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य महाकस्सपा के पास गए और कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।" 286

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

दूसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।"

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

तीसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "आओ, पूज्य कस्सपा, हम भिक्षुणियों के आश्रम चलें।"

तब, सुबह पूज्य महाकस्सपा ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य आनंद के साथ भिक्षुणियों के आश्रम गए। वहाँ पहुँचकर वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब कई भिक्षुणियाँ पूज्य महाकस्सपा के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। जब वे वहाँ बैठी थीं, पूज्य महाकस्सपा ने धर्म प्रवचन देकर उन भिक्षुणियों को उपदेश दिया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए।

तब भिक्षुणी थुल्लतिस्सा नाराज़ होकर इस प्रकार अपनी नाराज़गी व्यक्त करने लगीं: "महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात कैसे कर सकते हैं? महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात करना तो ऐसा ही है जैसे कोई सुई बेचने वाला सुई बनाने वाले को सुई बेच दे!" पूज्य

महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुल्लतिस्सा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"हे मित्र आनंद, क्या मैं सुई बेचने वाला हूँ और आप सुई बनाने वाले, या मैं सुई बनाने वाला हूँ और आप सुई बेचने वाले?"

"धैर्य रखिए, पूज्य कस्सपा, स्त्रियाँ बचकानी (नासमझ) होती हैं।" 289

"रुको, मित्र आनंद! संघ को तुम्हारे बारे में और पूछताछ करने का अवसर मत दो। 290 हे मित्र आनंद, क्या तुम यह सोचते हो कि क्या भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष तुम्हें आगे लाकर कहा था: 'भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। आनंद भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"हे मित्र, मैं ही वह व्यक्ति था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, मैं जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... कस्सपा भी, जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है।'

(यही आदान-प्रदान शेष ध्यान संबंधी उपलब्धियों और छह दिव्य ज्ञान (अभिन)/जादुई शक्तियों के लिए भी दोहराया जाता है, जैसा कि पिछले सूत्र [2.152] में है।)

"हे मित्र, मैं ही वह था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, इसी जीवन में मैं विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे मैंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से अनुभव किया है। कस्सपा भी विकारों के नाश (करश) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे उसने स्वयं दिव्य ज्ञान से अनुभव किया है।'

"मित्र, यह सोचना उतना ही असंभव है जितना कि यह सोचना कि सात या साढ़े सात हाथ ऊँचे हाथी को ताड़ के पत्ते से छिपाया जा सकता है, जितना कि यह सोचना कि मेरे छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न) को छिपाया जा सकता है।" 291

परन्तु भिक्षुणी थुलतस्सा ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख हो गईं। 292

---

154. वस्त्र (सिवारा)
एक बार पूज्य महाकस्सपा राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ दक्षिणागिरि में भ्रमण कर रहे थे। 293 उस समय पूज्य आनंद के तीस शिष्य, जिनमें से अधिकतर युवा थे, ने प्रशिक्षण त्याग दिया था और सांसारिक जीवन में लौट गए थे।

जब पूज्य आनंद ने दक्षिणागिरि में अपने इच्छित समय तक भ्रमण कर लिया, तो वे राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) लौट आए। वह पूज्य महाकस्सपा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य महाकस्सपा ने उनसे कहा, "मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम किन कारणों से बनाया कि भिक्षुओं को परिवारों के साथ तीन से अधिक के समूह में भोजन नहीं करना चाहिए?" 294

"हे पूज्य महाकस्सपा, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम तीन कारणों से बनाया: दुराचारी व्यक्तियों को रोकने और सुचारु भिक्षुओं की सुविधा के लिए, [इस उद्देश्य से कि] 'बुरे इरादों वाले लोग गुट बनाकर संघ में फूट न डालें!'; और परिवारों के प्रति सहानुभूति के कारण। 295 हे पूज्य महाकस्सपा, इन्हीं तीन कारणों से भगवान (बुद्ध) ने यह नियम बनाया।"

"तो फिर, हे मित्र आनंद, तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ क्यों भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं, अत्यधिक भोजन करते हैं और जागृति के प्रति समर्पित नहीं हैं? ऐसा लगता है मानो तुम फसलों को रौंदते हुए भटक रहे हो; ऐसा लगता है मानो तुम परिवारों को नष्ट करते हुए भटक रहे हो। हे मित्र आनंद, तुम्हारा दल बिखर रहा है, तुम्हारे युवा अनुयायी तुमसे दूर होते जा रहे हैं। लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

"मेरे सिर पर सफेद बाल उग रहे हैं। आदरणीय कस्सपा। क्या हम आदरणीय महाकस्सपा द्वारा युवक कहे जाने से बच नहीं सकते?" 296 [219]

"हे मित्र आनंद, यह केवल इसलिए है क्योंकि तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं... लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

भिक्षुणी थुलनंदा ने सुना: 297 "महाकस्सपा ने विदेह ऋषि, महाकस्सापा, को युवक कहकर उनका अपमान किया है।" तब, इससे नाराज़ होकर, उसने अपनी नाराज़गी इस प्रकार व्यक्त की: "महाकस्सपा, जो पहले एक अन्य संप्रदाय के सदस्य थे, वे विदेहन ऋषि आनंद को एक युवक कहकर उनका अपमान कैसे कर सकते हैं?"

पूज्य महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुलनंदा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"निश्चित रूप से, मित्र आनंद, भिक्षुणी थुलानंद ने वह कथन जल्दबाजी में, बिना सोचे-समझे कहा था। क्योंकि जब से मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, तब से मुझे भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध के अलावा किसी अन्य गुरु को स्वीकार करने का स्मरण नहीं है।

"मित्र, अतीत में, जब मैं गृहस्थ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल का मार्ग है, दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। गृहस्थ जीवन जीने वाले के लिए पूर्णतः शुद्ध, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जीना आसान नहीं है, जो पॉलिश किए हुए शंख के समान है। इसलिए मुझे अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करना चाहिए।' कुछ समय बाद मैंने कपड़े के टुकड़ों से एक बाहरी वस्त्र बनवाया; 299 तब, संसार में जो अरहंत थे, उन्हें आदर्श मानकर, मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, भगवा वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया।

"जब मैंने इस प्रकार संन्यास लिया (दीक्षित हुआ), तो मैं एक सड़क पर यात्रा कर रहा था, तभी मैंने भगवान (बुद्ध) को राजगृह और नालंदा के बीच बहुपुत्त मंदिर के पास बैठे हुए देखा। 300 उन्हें देखकर मैंने सोचा:
'यदि मुझे कभी गुरु के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी सौभाग्यशाली (सुगतो) के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी पूर्णतः प्रबुद्ध के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना

चाहूँगा।' तब मैंने वहीं भगवान (बुद्ध) के चरणों में प्रणाम किया और उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।' 301

"जब मैंने यह कहा, तो भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'कस्सपा, यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो न जानता हो और न देखता हो, तुम्हारे जैसे एकाग्रचित्त शिष्य से कहे: "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ," तो उसका सिर फट जाएगा। परन्तु कस्सपा, मैं जानता हूँ, "मैं जानता हूँ"; देखता हूँ, मैं कहता हूँ, "मैं देखता हूँ।" 302

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं बड़ों, नवदीक्षितों और मध्यम वर्ग के लोगों के प्रति लज्जा और कुकर्म के भय की तीव्र भावना उत्पन्न करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए:
"जब भी मैं लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) से संबंधित किसी धर्म (मार्ग, नियम) को सुनूँ, तो मैं उसे उत्सुकतापूर्वक सुनूँगा, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान लगाऊँगा।" 303 तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं आनंद से संबंधित शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) का कभी त्याग नहीं करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए। 304

"तब, मुझे यह निर्देश देकर, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और चले गए। [221] हे मित्र, मैंने सात दिनों तक देश का भिक्षाभोजन ऋणी के रूप में खाया, परन्तु आठवें दिन मुझे अंतिम ज्ञान प्राप्त हुआ। 305

"तब, हे मित्र, भगवान (बुद्ध) सड़क से नीचे उतरे और एक वृक्ष के चरणों में गए। मैंने अपने चिथड़ों के बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) यहाँ बैठें। इससे मुझे दीर्घकालिक सुख और सुख प्राप्त होगा।' भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और मुझसे कहा: 'हे कस्सपा, तुम्हारा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र कोमल है।' - 'आदरणीय महोदय, कृपया दयावश मेरा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र स्वीकार करें।' - 'तो क्या तुम मेरे पुराने चमड़े के वस्त्र पहनोगे?' - 'हाँ, आदरणीय महोदय।' इस प्रकार मैंने भगवान (बुद्ध) को अपना चिथड़े-चिथड़े का बाहरी वस्त्र अर्पित किया और उनसे उनका पुराना, फटा हुआ चमड़ा का वस्त्र ग्रहण किया। 307

"हे मित्र, यदि कोई सही ढंग से किसी के विषय में कह सकता है: 'वह भगवान (बुद्ध) का पुत्र है, उनकी छाती से जन्मा है, उनके मुख से जन्मा है, धम्म से जन्मा है, धम्म द्वारा सृजित है, धम्म का उत्तराधिकारी है, फटे-पुराने चमड़े के वस्त्र धारण करने वाला है,' तो यह बात मेरे विषय में ही सही ढंग से कही जा सकती है। 308

"मित्र, मैं जहाँ तक चाहूँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो विचार और परीक्षा से युक्त है, [222] एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से युक्त.... (जैसा कि 9 में है)

"मित्र, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मैं मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करते हुए।"

"मित्र, यह सोचना उतना ही उचित है जितना कि यह सोचना कि सात या साढ़े सात हाथ ऊँचे एक हाथी को ताड़ के पत्ते से छिपाया जा सकता है, जितना कि यह सोचना कि मेरे छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न) को छिपाया जा सकता है।" 309

परन्तु भिक्षुणी थुलनंदा ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख हो गईं।

---

155. मृत्यु के बाद (परम्मारन)
एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा का अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे मित्र कस्सपा, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?” 310

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं’ ।” “

तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?”

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते’ ।” [223]

“तो फिर, मित्र, तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते?”

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और विद्यमान नहीं भी होते हैं।'"

"तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद

न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं?" "हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं।'"

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह क्यों नहीं कहा है?"

"क्योंकि यह लाभहीन है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है।"

"और फिर, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने क्या कहा है?"

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है: ‘यह दुख है,’ ‘यह दुख का कारण है,’ ‘यह दुख का निवारण है,’ और ‘यह दुख निवारण का मार्ग है।’” “

और हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा क्यों कहा है?”

“क्योंकि हे मित्र, यह लाभकारी है, ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे वैराग्य, वैराग्य, निवारण, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण प्राप्त होता है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा है।”

---

156. सच्चे धम्म का मिथ्याकरण (सद्धम्मप्पतिरूपक सं. सत्-धर्मप्य-अतिरूपा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, इसका क्या कारण है कि पहले प्रशिक्षण के नियम कम थे और अधिक भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते थे, जबकि अब प्रशिक्षण के नियम अधिक हैं और कम भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते हैं?" 311
“यही बात है, कस्सपा। जब प्राणी पतित हो रहे होते हैं और सच्चा धम्म (मार्ग, नियम) लुप्त हो रहा होता है, तब प्रशिक्षण नियम तो अधिक होते हैं, लेकिन अंतिम ज्ञान में स्थापित भिक्षुओं की संख्या कम होती है। कस्सपा, सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए। परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है। 312

“जैसे, कस्सपा, सोना तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में नकली सोना उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब नकली सोना उत्पन्न हो जाता है, तब सच्चा सोना लुप्त हो जाता है, वैसे ही सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है।”

"हे कस्सपा, सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), या वायु तत्व (धातु) नहीं है। यहाँ उत्पन्न होने वाले मूर्ख लोग ही सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण हैं।

सच्चा धम्म एक जहाज के डूबने की तरह अचानक लुप्त नहीं हो जाता। 313 हे कस्सपा, पाँच हानिकारक बातें हैं 314 जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे पाँच क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे संघ (भाईचारे) के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धाहीन भाव से निवास करते हैं। 315 हे कस्सपा, ये पाँच हानिकारक बातें हैं जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं।

“हे कस्सपा, पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे संघ के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं। हे कस्सपा, ये पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं।”

अध्याय 6: लाभ और सम्मान पर संबंधित प्रवचन (लाभसक्करासंयुत्त सं. लाभ-सत्कार-संयुत्त) {संयुत्त-17}

(i) पहला उप-अध्याय (भयानक)

157. भयानक (दारुना)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:
"भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। 316 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

158. हुक (बालिसा)

श्रावस्ती में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। मान लीजिए एक मछुआरा गहरे तालाब में चारा लगा हुआ कांटा डालता है, और भोजन की तलाश में कोई मछली उसे निगल लेती है। मछुआरे का कांटा निगलने के कारण उस मछली पर विपत्ति और विपत्ति आएगी, और मछुआरा उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

'मछुआरा,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान का नाम है। 'चारा लगा हुआ कांटा': यह लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे चारा लगा हुआ कांटा निगलने वाला भिक्षु कहा जाता है, जिस पर विपत्ति और विपत्ति आई है, और दुष्ट उसके साथ जो चाहे कर सकता है।" हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा अत्यंत घृणित, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

---

159. कछुआ (कुम्मा)

श्रावस्ती में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक समय की बात है, एक झील में कछुओं का एक बड़ा परिवार लंबे समय से रहता था। 317 तब एक कछुए ने दूसरे से कहा: 'प्रिय कछुए, फलाँ-फलाँ क्षेत्र में मत जाना।' लेकिन वह कछुआ उस क्षेत्र में चला गया, और एक शिकारी ने उसे रस्सी वाले भाले से मारा। 318 तब वह कछुआ पहले वाले के पास पहुँचा। जब पहले कछुए ने उसे दूर से आते देखा, तो उसने उससे कहा: 'प्रिय कछुए, मुझे आशा है कि तुम उस क्षेत्र में नहीं गए।' - 'मैं उस क्षेत्र में गया था, प्रिय।' - 'मुझे आशा है कि तुम्हें चोट नहीं लगी होगी, प्रिय।' - 'मुझे चोट नहीं लगी है; लेकिन यह रस्सी लगातार मेरे पीछे-पीछे चल रही है।' - 'हे प्यारे कछुए, सचमुच तुम पर चोट लगी है, सचमुच तुम पर चोट लगी है! तुम्हारे पिता और दादा को भी इसी तरह की रस्सी के कारण विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ा था। अब जाओ, हे प्यारे कछुए, तुम अब हमारे बीच नहीं हो।'

"'शिकारी,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान (मारा) का नाम है। 'रस्सी वाला भाला': यह लाभ, सम्मान और प्रशंसा का नाम है। 'रस्सी': यह आनंद और कामवासना (राग) का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे रस्सी वाले भाले से घायल भिक्षु कहा जाता है, 319 जो विपत्ति और विपत्ति का शिकार हुआ है, और दुष्ट उसके साथ जैसा चाहे कर सकता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक हैं.... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

160. लंबे बालों वाली बकरी (दिघालोमिका)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... मान लीजिए एक लंबी बालों वाली बकरी कंटीली झाड़ियों में प्रवेश करती है। वह जगह-जगह फंसती है, जगह-जगह जकड़ी जाती है, जगह-जगह बंध जाती है और जगह-जगह विपत्ति और विपत्ति का सामना करती है। उसी प्रकार, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या शहर में प्रवेश करता है। वह जगह-जगह फंसता है, जगह-जगह जकड़ा जाता है, जगह-जगह बंध जाता है और जगह-जगह विपत्ति और विपत्ति का सामना करता है। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

161. गोबर भृंग (मिल्हाका)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... मान लीजिए एक भृंग है, जो गोबर खाता है, गोबर से भरा हुआ है, और उसके सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है। इस कारण वह अन्य भृंगों को तुच्छ समझेगी, यह सोचकर: 'मैं गोबर खाने वाली हूं, गोबर से भरी हुई हूं, और मेरे सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है।' इसी प्रकार, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या कस्बे में जाता है। वहाँ वह जितना चाहे उतना भोजन करता है, उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया जाता है, और उसका भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में होता है। जब वह मठ लौटता है, तो वह भिक्षुओं के एक समूह के सामने अभिमान करता है: 'मैंने जितना चाहा उतना भोजन किया है, मुझे कल के भोजन के लिए आमंत्रित किया गया है, और मेरा भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में है। मैं वह हूँ जो वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता हूँ, परन्तु इन अन्य भिक्षुओं का पुण्य और प्रभाव कम है, और वे वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं करते।' अत: लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के लालच में डूबे रहने के कारण, वह अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं का तिरस्कार करता है। इससे इस मूर्ख व्यक्ति को लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक चीजें हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

162. वज्रपात (असानी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, वज्र किसे गिरेगा? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 320

'वज्र' हे भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं.... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

163. विषैला बाण (दिद्धा)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, विष से सने बाण से किसे भेदना चाहिए? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 3 ? 1

"'बाण,' भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

164. सियार (सिंगाला)
सावत्थी में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्या आपने रात ढलते समय किसी बूढ़े सियार के रोने की आवाज़ सुनी?"
"जी हाँ, पूज्यवर।"

वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। 322 वह चाहे गुफा में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त है, वह चाहे खाली कुटिया में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

165. आंधी (वेरम्भा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, आकाश में आंधी के रूप में तेज हवाएं चल रही हैं। 323 यदि कोई पक्षी वहां जाता है, तो आंधी उसे इधर-उधर फेंकती है, और जैसे ही वह आंधी से इधर-उधर फेंका जाता है, उसके पैर एक तरफ, पंख दूसरी तरफ, सिर एक तरफ और शरीर एक तरफ हो जाता है। उसी प्रकार, भिक्षुओं, यहां एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और आसक्त है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान स्थापित किए बिना, अपनी इंद्रियों पर अनियंत्रित होकर भिक्षा मांगने के लिए किसी गांव या शहर में प्रवेश करता है। वह वहां कम वस्त्रों में सजी महिलाओं को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह साधना त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। कुछ अपना किसी को उसका वस्त्र, किसी को उसका कुंड, किसी को उसका आसन, और किसी को उसकी सुई-पेटी, ठीक वैसे ही जैसे कोई पक्षी आंधी में उड़ जाता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

166. श्लोकों सहित सूत्र (सगतसुत्तम)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। भिक्षुओं, मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मान के वश में है और शरीर के टूटने से ग्रस्त है, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मानहीनता से ग्रस्त है और दुख की अवस्था में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मान और मानहीनता दोनों से ग्रस्त है और शरीर के टूटने से, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"चाहे उसे सम्मान से नवाजा जाए; अपमानित किया जाए, या दोनों ही दिए जाएं,
उसकी समाधि (सम्मोहन) अवस्था अविचलित रहती है; क्योंकि वह असीम अवस्था में निवास करता है। 324

जब वह दृढ़ता से ध्यान करता है; सूक्ष्म दृष्टि वाला अंतर्दृष्टि-द्रष्टा (विपस्सकम),
आसक्ति के नाश में आनंदित होता है; उसे वास्तव में श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है।" 325

(ii) दूसरा उप-अध्याय (कटोरा)
167. गोल्डन बाउल (सुवन्नापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के कटोरे में पिसी हुई चांदी के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर

झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

168. चांदी का कटोरा (रुपियापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के चूर्ण से भरे चांदी के कटोरे के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

169 (10) सुवन्नानिक्खा, आदि।
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: यह पूजनीय व्यक्ति एक सुवन्ननिक्ख के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... सौ सुवन्ननिक्खों के लिए भी नहीं... एक सिंगिनीक्ख के लिए भी नहीं... सौ सिंगिनीक्खों के लिए भी नहीं 326... सोने से भरी पृथ्वी के लिए भी नहीं... किसी भी भौतिक पुरस्कार के लिए भी नहीं... अपने जीवन के लिए भी नहीं... इस देश की सबसे सुंदर कन्या के लिए भी नहीं। 327 फिर भी कुछ समय बाद मैं उसे देखता हूँ, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त होकर जानबूझकर झूठ बोल रहा है। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(iii) तीसरा उप-अध्याय (एक महिला)
170. एक महिला (मातुगामा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही एकांत में स्त्री मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

171. सबसे खूबसूरत लड़की (कल्याणी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही देश की सबसे सुंदर कन्या, जब कोई उसके साथ एकांत में हो, तो मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

172. इकलौता पुत्र (एकपुत्तकास सं. एक-पुत्र)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपने प्रियतम पुत्र से उचित विनती करते हुए, उससे इस प्रकार विनती कर सकती है: 'प्रिय, तुम्हें चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक के समान बनना चाहिए' क्योंकि यही मेरे गृहस्थ पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक। 328 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरे भिक्षु पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् सारिपुत्त और मोग्गलाना। 'प्रिय, जब तक तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तक तुम्हें लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त न हो!'

भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु (साधु) को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा हो, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... इसलिए आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

173. इकलौती पुत्री (एकाधितु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपनी इकलौती प्रिय पुत्री से उचित विनती करते हुए इस प्रकार कह सकती है: 'प्रिय, तुम्हें गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी गृहस्थ महिला शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया। 329 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें भिक्षुणियों खेमा और उप्पलावन्ना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी भिक्षुणियों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् खेमा और उप्पलावन्ना। 'प्रिय, जब तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तुम लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त कर सकती हो और " तुम पर प्रशंसा न आए!"

"भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षुणी को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंची है, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

174. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो सांसारिक सुख (अस्सदो संस्कृत: अस्वाद्), खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते: 330 इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो सांसारिक सुख, खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत समझते हैं: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करो और लीन रहो।

---

175. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो उत्पत्ति और अपतटीयता, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), भय और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के मामले में बचाव को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)।

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

176. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा, इसके उद्गम, इसके निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)। 331

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

177. त्वचा (चावी)
सावत्थी में

[बुद्धः] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए सीधे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

178. रस्सी (राज्जू)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ते हैं। हड्डी को चीरकर वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बलवान व्यक्ति किसी के पैर को घोड़े के बालों की तनी हुई रस्सी से लपेटकर कसकर खींचे। यह पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ जाएगी। हड्डी को चीरकर वह मज्जा तक पहुँच जाएगी। उसी प्रकार, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा बाहरी त्वचा को चीरते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 177 में है)। वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

179. भिक्खु (सं. भिक्षु, भिक्षु)
श्रावस्ती पर्व पर भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा तो उस अर्हंत भिक्षु के लिए भी बाधा हैं, जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से पूछा,
"हे पूज्यवर, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा उस भिक्षु के लिए भी बाधा क्यों हैं जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं?"

हे आनंद, मैं यह नहीं कहता कि लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन की अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में बाधा हैं। बल्कि मैं यह कहता हूँ कि वे इस जीवन में उन सुखद निवासों की प्राप्ति में बाधा हैं जो सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। 332 हे आनंद, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक, इतने कड़वे, इतने नीच और बंधन से अद्वितीय सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, हे आनंद, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

(iv) चौथा उप-अध्याय (संघ में विभाजन)
180. विच्छेद (भिंडी)
सावत्थी में
[बुद्धः] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था, इसलिए उसने संघ में फूट डाल दी। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

181. कुसलमूला जड़
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और ग्रस्त हो गया था कि उसकी लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) जड़ कट गई...(जैसा कि 157 में है)।" 333

---

182. लाभकारी (कुसल) प्रकृति (कुशलधम्म)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) स्वभाव कट गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

183. उज्ज्वल प्रकृति (सुक्कधम्म सं. शुक-धर्म)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का उज्ज्वल स्वभाव नष्ट हो गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

184. उनके जाने के कुछ ही समय बाद (अचिरापक्कंता)

एक बार, देवदत्त के जाने के कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ, देवदत्त के संदर्भ में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 334

"भिक्षुओं, देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे केले का वृक्ष, बांस या सरकंडा अपने ही पतन और विनाश के लिए फल देता है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे खच्चर अपने ही पतन और विनाश के लिए गर्भवती होती है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे केले, बांस और नरकट का फल ही विनाश लाता है;
जैसे खच्चर का भ्रूण नष्ट हो जाता है; वैसे ही सम्मान दुष्ट का नाश कर देता है।"

---

185. पाँच सौ गाड़ियाँ (पंचराथसता)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास करते समय, राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा करने जा रहे थे, और उनके लिए पांच सौ बर्तनों में भोजन का प्रसाद भेजा गया था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, देवदत्त की उन्नति, मान-सम्मान और प्रशंसा से ईर्ष्या मत करो। जब तक राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा और पांच सौ घड़ों में भोजन का अर्पण होता रहेगा, तब तक देवदत्त को लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी।

जैसे जंगली कुत्ते की नाक पर पित्त छिड़कने से वह और भी जंगली हो जाता है, 335 वैसे ही, भिक्षुओं, जब तक राजकुमार अजातसत्तु देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा... देवदत्त को लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

186. माता सुत्ता (मातु सं. मातृ)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है, जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपनी माता के खातिर भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' 336 फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और अभिमानी था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक हैं; इतने कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा को अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

187. फादर सुट्टा, आदि (पितु आदि)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है, जिसके मन को मैंने अपने मन से ग्रहण किया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपने पिता के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... अपने पिता के लिए भी नहीं... अपने भाई के लिए भी नहीं... अपनी बहन के लिए भी नहीं... अपने बेटे के लिए भी नहीं... अपनी बेटी के लिए भी नहीं... अपनी पत्नी के लिए भी नहीं।' 336 कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था और वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक, कितनी कड़वी, कितनी नीच और बंधन से मुक्ति पाने में कितनी बाधक हैं! इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

अध्याय 7: राहुला (राहुलासयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-18}
(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
188. आँख आदि (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 337

“पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर सकूँ।”

“राहुल, आपके विचार से आँख क्या है या क्षणिक?” - “क्षणिक, पूज्यवर।” - “क्षणिक क्या है, दुख या सुख?” - “दुख, पूज्यवर।” -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या कान... नाक... जीभ... शरीर... मन स्थायी हैं या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर है, वह दुखदायी है या सुखदायी?" - "दुखदायी, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"यह देखकर, हे राहुल, ज्ञानी शिष्य को आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। 338 जब वह मुक्त हो जाता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

189. प्रपत्र आदि (रूपा)
... "राहुल, आपके विचार से रूप... (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) स्थायी हैं या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूपों (जैसा कि 188 में है) के प्रति... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

190. चेतना (विन्नाना संस्कृत विज्ञान)
... "राहुल, आपके विचार से नेत्र-चेतना (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... मन-चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानवान शिष्य को नेत्र-चेतना के प्रति घृणा (निब्बिदा) और मन-चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

191. संपर्क (संपहस्सा संस्कृत स्पर्श)
... "राहुल, तुम्हारा क्या विचार है? नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) ... कान संपर्क ... नाक संपर्क ... जीभ संपर्क ... शरीर संपर्क ... मन संपर्क स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) और मन संपर्क के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

192. वेदना
... "हे राहुल, आपका क्या विचार है? क्या नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) ... कान संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... नाक संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... जीभ संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... शरीर संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... "हे

राहुल, इस प्रकार देखकर, ज्ञानी शिष्य नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) और मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

193. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
... "राहुल, आपका क्या विचार है कि रूपों की अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों की अनुभूति (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है) और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

194. संज्ञानात्मक जागरूकता (संचेतना)
... "राहुला, आपके विचार से रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... गंधों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्वादों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता के प्रति घृणा का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

195. लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
... "राहुल, आपके विचार से, रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियों के प्रति लालसा... गंधों के प्रति लालसा... स्वादों के प्रति लालसा... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति लालसा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा, स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

196. तत्व (धातु)
... "राहुल, आपके विचार से पृथ्वी तत्व (धातु) (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व ... आकाश तत्व ... चेतना तत्व (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" 339 - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को पृथ्वी तत्व के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव होता है ... (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व के प्रति घृणा ... ऊष्मा तत्व के प्रति घृणा ... वायु तत्व के प्रति घृणा ... आकाश तत्व के प्रति घृणा ... चेतना तत्व के प्रति घृणा। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है ... वह समझता है:
'... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

197. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
... "राहुल, आपके विचार से रूप (जैसा कि 188 में है) ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूप (जैसा कि 188 में है) के प्रति घृणा (निबिद्धा) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था (स्वयं) के लिए और कुछ नहीं है'।"

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
198. आँख (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
(यह सूत्र 188 से सभी मामलों में समान है, सिवाय इसके कि इस सूत्र में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा मांगे।)

199. प्रपत्र आदि।
(ये नौ सूत्र 189-197 के समान ही हैं, सिवाय इसके कि इन सूत्रों में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा माँगे।)

200. अंतर्निहित-प्रवृत्ति (अनुसया सं. अनुशय)
सावत्थी में। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान, विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?" 340

"हे राहुल, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' 341

"किसी भी प्रकार की वेदना (संवेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संस. संग्या) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासतो) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"जब व्यक्ति ध्यान में (पासतो) इस प्रकार जानता और देखता है, राहुल, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य अभिकारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।" [253]

201. छुटकारा पाना (अपागता)
सावत्थी में, पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस. विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?" 342

"हे राहुल, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।

(इसी प्रकार) "किसी भी प्रकार की वेदना ... किसी भी प्रकार की अनुभूति ... किसी भी प्रकार का संस्कार ... किसी भी प्रकार की चेतना , चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।"

इस प्रकार, राहुल, जब कोई व्यक्ति ध्यान में रहकर जानता और देखता है (पासातो), तब चेतना के साथ इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

अध्याय 8. लक्ख़ाना (लक्खानासंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-19}
(i) पहला उपअध्याय (पथमावग्गो सं. प्रथम-वर्ग)
202. कंकाल (अट्ठी सं. अष्टी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास कर रहे थे। 343 फिर, सुबह, पूज्य महामोग्गलाना ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर पूज्य लक्खना के पास गए और उनसे कहा: "आओ, मित्र लक्खना, हम राजगृह में भिक्षा मांगने चलें।"

"ठीक है, मित्र," पूज्य लक्खना ने उत्तर दिया। फिर, जब वे गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो पूज्य महामोग्गलाना ने एक स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। 344 पूज्य लक्खना ने उनसे कहा: "मित्र मोग्गलाना, आपने किस कारण से मुस्कुराहट दिखाई?"

"यह प्रश्न पूछने का समय नहीं है, मित्र लक्खना। यह प्रश्न मुझसे तब पूछना जब हम भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में हों।
"

फिर, जब पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके लौटे, तो वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए, और पूज्य लक्खना ने पूज्य महामोग्गलाना से कहा: "यहाँ, जब पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक विशेष स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। मित्र मोग्गलाना, आपने ऐसा क्यों मुस्कुराया?"

"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक कंकाल को हवा में उड़ते हुए देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उसकी पसलियों पर चोंच मार रहे थे, उसे घायल कर रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। 345 तब मेरे मन में यह विचार आया: 'यह सचमुच अद्भुत है! यह सचमुच आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'" 346

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य दृष्टि और ज्ञान प्राप्त करके निवास करते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस प्राणी को देखा था, लेकिन मैंने उसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं उसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें हानि और पीड़ा होती।" बहुत समय से।

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में पशु कसाई हुआ करता था। उस कर्म के फलस्वरूप, वह कई वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगता रहा, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रहा है।" 347

(इस उप-अध्याय के शेष सूत्र पहले उप-अध्याय के समान ही हैं। पाली पाठ की तरह, इसलिए अनुवाद में यहाँ केवल वही वाक्यांश दिए गए हैं जो भिन्न हैं।)

---

203. मांस का टुकड़ा (पेसी बिना पेशी)
... "यहाँ, मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने हवा में मांस का एक टुकड़ा हिलता हुआ देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था।"...(जैसा कि 202 में है)

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में एक पशु कसाई था...(जैसा कि 202 में है)..." 348

---

204. मांस का टुकड़ा (पिंडा)
(जैसे कि 202 में)... "मैंने मांस का एक टुकड़ा देखा...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में एक मुर्गी काटने वाला था...."

205. घाव वाला आदमी (निचवी)
(जैसे कि 202 में)... "मैंने घावों वाले एक आदमी को देखा...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में एक भेड़ कसाई था...."

206. तलवार के बाल (एसिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तलवारों के बाल हवा में लहरा रहे थे। वे तलवारें लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में एक सुअर काटने वाला था...."

207. भाले के बाल (सत्ती)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर भाले जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे भाले लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रहे थे और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हिरण का शिकारी था...."

208. तीरनुमा बाल (उसुलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तीरों के बाल हवा में उड़ रहे थे। वे तीर लगातार ऊपर उठते और उसके शरीर पर लगते रहे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में यातना देने वाला था...." 349

209. सुईनुमा बाल (एल) 350 (सुसिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर लग रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में घोड़ों का प्रशिक्षक था...."

210. सुईनुमा बाल (2) (सुसिलोमा2)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ उसके सिर में घुसकर उसके मुँह से बाहर निकलीं; वे उसके मुँह में घुसकर उसकी छाती से बाहर निकलीं; वे उसकी छाती में घुसकर उसके पेट से बाहर निकलीं; वे उसके पेट में घुसकर उसकी जांघों से बाहर निकलीं; वे उसकी जांघों में घुसकर उसकी पिंडलियों से बाहर निकलीं; वे उसकी पिंडलियों में घुसकर उसके पैरों से बाहर निकलीं, और वह दर्द से चीख रहा था। ...

"वह प्राणी इसी राजगृह में निंदा करने वाला था...." 351

211 कुटिया (कुंभंडा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके अंडकोष हवा में तैरते हुए घड़ों की तरह थे। जब वह चलता था, तो उसे अपने अंडकोष कंधों पर उठाने पड़ते थे, और जब वह बैठता था तो अपने अंडकोषों के ऊपर बैठता था। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह का एक भ्रष्ट मजिस्ट्रेट था...." 352

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
212. सिर पानी में डूबा हुआ (सासिसाका)

(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को देखा जिसका सिर गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में व्यभिचारी था...." 353

---

213. गोबर खाने वाला (गुठखाड़ा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ, दोनों हाथों से गोबर खाते हुए देखा..."

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह का एक शत्रु ब्राह्मण था। बुद्ध कश्यप के समय में, उसने भिक्षु संघ को भोजन के लिए आमंत्रित किया। चावल के बर्तनों में गोबर भरकर, उसने भिक्षुओं से कहा: 'महोदय, इसमें से जितना चाहो उतना खाओ और बाकी अपने साथ ले जाओ।'..." 354

---

214. घावों वाली महिला (निच्चवित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक छिल चुकी स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में व्यभिचारिणी थी...." 355

---

215. बदसूरत औरत (मंगुलित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक दुर्गंधयुक्त और बदसूरत स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में एक ज्योतिषी थी...."

---

216. तपती हुई महिला (ओकिलिनी बिना अकुलिनी के)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक स्त्री को देखा, जिसका शरीर झुलस रहा था, झुलस रहा था, कालिख से सना हुआ था, हवा में हिल रहा था, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...." 357

"वह स्त्री कलिहगा के राजा की मुख्य रानी थी, ईर्ष्यालु स्वभाव की, उसने राजा की एक पत्नी पर अंगीठी में भरे कोयले उड़ेल दिए...."

---

217. बिना सिर वाला धड़ (असिसका सं. आशिसाका)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक बिना सिर का धड़ हवा में उड़ता हुआ देखा; उसकी आँखें और मुँह उसकी छाती पर थे। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर उसे नोंच रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हरिका नाम का एक जल्लाद था..."

---

218. दुष्ट भिक्खु (पापभिक्खु सं. पाप-भिक्षु)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह भिक्षु बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षु था...." 358

---

219. दुष्ट भिक्खुनि (पापभिक्खुनि सं. पापभिक्षुनि)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षुणी को हवा में विचरण करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह सुलग रहा था, जबकि वह पीड़ा से चीख रही थी। ..."

"वह भिक्षुणी बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षुणी थी...."

---

220. दुष्ट शिष्य (पापसिक्खमना सं. पाप-शिष्यमान)

(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक प्रशिक्षु भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। ..."

"वह प्रशिक्षु भिक्षु [पिछले जन्म में] एक दुष्ट प्रशिक्षु भिक्षु था...."

---

221. दुष्ट नौसिखिया भिक्खु (पापसमनेरा सं. पाप-सरमानेरा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक नवोदित भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कुंड, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह नवोदित भिक्षु एक दुष्ट नवोदित भिक्षु था..."

---

222. दुष्ट नौसिखिया नन, आदि (पापसमनेरी संस पाप-श्रमानेरी)
"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक ननद को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह भड़क रहा था, और वह पीड़ा से चीख रही थी। मुझे यह विचार आया: 'यह वास्तव में अद्भुत है! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य ऐसे होते हैं जो दृष्टि और ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस ननद को देखा था, लेकिन मैंने इसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं इसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और पीड़ा उठानी पड़ती।

वह ननद बुद्ध के समय में एक दुष्ट ननद थी।" कश्यप का उपदेश: उस कर्म के फलस्वरूप कई वर्षों, सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगने के कारण, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रही है।

अध्याय 9: उपमाओं के साथ जुड़े हुए प्रवचन (ओपम्मासंयुत्त सं. उपमा-संयुक्त) {संयुत्त-20}
223. छत की चोटी (कुटा, संस्कृत: कूटा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जैसे किसी ऊंचे भवन की सभी कड़ियां छत की चोटी तक जाती हैं और जड़ पर आकर मिलती हैं, और छत के हट जाने पर सभी हट जाती हैं, उसी प्रकार सभी हानिकारक अवस्थाएं अज्ञान में निहित होती हैं और अज्ञान पर आकर मिलती हैं, और अज्ञान के उखड़ जाने पर सभी उखड़ जाती हैं। 359 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सचेत रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

224. नाखून (नखसिखा)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी लेकर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन बड़ा है: मेरे नाखून में ली गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?" "

आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी ली है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, यह नगण्य है, इसकी तुलना नहीं की जा सकती, यह अंश के बराबर भी नहीं है।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो प्राणी मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं, वे अल्प हैं। परन्तु जो प्राणी मनुष्यों के बीच जन्म नहीं लेते, वे अधिक संख्या में हैं। 360 अत:, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

225. परिवार (कुला)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना आसान होता है जिनमें स्त्रियाँ अधिक और पुरुष कम होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना आसान होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) का विकास और अभ्यास नहीं किया है। 36 !

"जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना कठिन होता है जिनमें स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना कठिन होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है।

इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

226. भोजन के बर्तन (ओक्खा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि कोई सुबह सौ बर्तन भोजन दान करे, दोपहर में सौ बर्तन भोजन दान करे और शाम को सौ बर्तन भोजन दान करे, और यदि कोई दूसरा व्यक्ति गाय के थन को खींचने में लगने वाले समय के बराबर भी प्रेम और करुणा का भाव विकसित करे, चाहे सुबह हो, दोपहर हो या शाम, तो यह पहले वाले से अधिक फलदायी होगा।

" "इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा के द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और संवर्धन करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।"

---

227. भाला (सत्ती)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक नुकीला भाला है, और एक आदमी यह सोचकर आता है: 'मैं इस नुकीले भाले को अपने हाथ या मुट्ठी से मोड़कर, इसका आकार बिगाड़कर, इसे घुमाऊंगा।' 364 भिक्षुओं, क्या आपके विचार से उस आदमी के लिए ऐसा करना संभव होगा?"

नहीं, पूज्यवर। इसका क्या कारण है? क्योंकि उस नुकीले भाले को हाथ या मुट्ठी से मोड़ना, उसका आकार बिगाड़ना या उसे घुमाना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और कष्ट ही होगा।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और अभ्यास करता है, उसे अपना वाहन बनाता है, उसे अपना आधार बनाता है, उसे स्थिर करता है, उसमें अभ्यास करता है और उसे पूर्णतः सिद्ध करता है, तो यदि कोई अमानव यह सोचता है कि वह उसके मन को पराजित कर सकता है, तो उसे केवल थकान और कष्ट ही होगा।

अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, उसे अपना वाहन बनाएंगे, उसे अपना आधार बनाएंगे, उसे स्थिर करेंगे, उसमें अभ्यास करेंगे और उसे पूर्णतः सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

228. धनुर्धर (धनुग्गहा)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चारों दिशाओं में चार दृढ़ धनुषधारी, प्रशिक्षित, कुशल और अनुभवी धनुर्धारी खड़े हैं। 365 फिर एक व्यक्ति यह सोचते हुए आता है: 'मैं इन चारों दिशाओं में इन चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों को जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ लूंगा और फिर उन्हें वापस ले आऊंगा।' भिक्षुओं, क्या यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है'?"

"आदरणीय महोदय, यदि वह एक धनुर्धारी द्वारा चलाए गए बाण को भी जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ ले और उसे वापस ले आए, तो यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है।' चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों के बारे में तो बात करने की आवश्यकता ही नहीं है!"

भिक्षुओं, वह मनुष्य जिस गति से चलता है, उससे भी अधिक तीव्र सूर्य और चंद्रमा हैं। वह मनुष्य जिस गति से चलता है, सूर्य और चंद्रमा जिस गति से चलते हैं, और सूर्य और चंद्रमा के आगे दौड़ने वाले देवता जिस गति से चलते हैं, जीवन उससे भी अधिक तीव्र गति से नष्ट हो जाता है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

---

229. ड्रम पेग (एनी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एक समय पहले दशरहों के पास एक ढोल था जिसे सम्मनर कहते थे। 367 जब सम्मनर में दरार आ गई, तो दशरहों ने उसमें एक और कील ठोक दी। अंततः वह समय आया जब सम्मनर का मूल ढोल गायब हो गया और केवल कुछ कीलें ही बची रहीं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, भविष्य में भिक्षुओं के साथ भी यही होगा। जब तथागत द्वारा दिए गए वे प्रवचन, जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक और शून्यता से संबंधित हैं, पढ़े जा रहे होंगे, 368 तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक नहीं होंगे, न ही उन पर ध्यान देंगे, न ही उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे यह नहीं सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल की जानी चाहिए।" लेकिन जब वे प्रवचन, जो केवल कवियों द्वारा रचित कविताएँ हैं, शब्दों और वाक्यांशों में सुंदर हैं, बाहरी लोगों द्वारा निर्मित हैं, उनके शिष्यों द्वारा बोले जाते हैं, 369 का पाठ किया जाता है, तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल करनी चाहिए। इस प्रकार, भिक्षुओं, तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, लुप्त हो जाएंगे।

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'जब तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, का पाठ किया जाता है, तो हम उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और हम सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल करनी चाहिए।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

230. लकड़ी के ब्लॉक (कलिंगारा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, अब लिच्छवी लकड़ी के गट्ठों को तकिये बनाकर रहते हैं; वे सचेत (अपमादा) और लगन से साधना करते हैं। मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेह के पुत्र हैं, उन तक नहीं पहुँच पाते; वे उन पर अधिकार नहीं कर पाते। परन्तु भविष्य में लिच्छवी कोमल और कोमल हाथों-पैरों वाले हो जाएँगे; वे रुई के तकियों वाले नरम पलंगों पर सूर्योदय तक सोएँगे। तब मगध के राजा

अजातसत्तु उन तक पहुँच पाएंगे; तब वे उन पर अधिकार कर लेंगे।" तब दुष्ट मारा उन तक पहुँच प्राप्त कर लेगा; वह उन पर अधिकार कर लेगा।

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'लकड़ी के गट्ठों को तकिये के रूप में उपयोग करके, हम सचेत और लगन से साधना में लगे रहेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।" 370

---

231. नर हाथी (नाग)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक नवदीक्षित भिक्षु परिवारों से अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,

"आदरणीय भिक्षु, परिवारों से अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन जब उन्हें फटकारा गया, तो उसने कहा, "ये वरिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि वे परिवारों से मेलजोल कर सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं कर सकता?"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

“भिक्षुओं, एक समय की बात है, एक जंगल में एक बड़ी झील थी, जिसके आसपास बड़े-बड़े हाथी रहते थे। 371 वे हाथी झील में डुबकी लगाते, अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, उन्हें अच्छी तरह धोकर मिट्टी समेत चबाते और निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

उनके बच्चे भी उन बड़े-बड़े हाथियों की तरह झील में डुबकी लगाते और अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, लेकिन उन्हें अच्छी तरह धोए बिना, चबाए बिना, मिट्टी समेत निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति नहीं बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ वरिष्ठ भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म (मार्ग, नियम) पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। 372 वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि होती है, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।

नवदीक्षित भिक्षु, वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुकरण करते हुए, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे हुए, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखे बिना और उससे बचने का मार्ग समझे बिना करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि नहीं होती, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।" 373

"अतः, भिक्षुओं, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनसे आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करेंगे, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

232. बिल्ली (बिलारा)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक भिक्षु परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,
"आदरणीय भिक्षु, परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन चेतावनी मिलने के बावजूद उसने ऐसा करना नहीं छोड़ा।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, एक बार एक बिल्ली किसी गली, नाले या कूड़ेदान के पास खड़ी होकर एक छोटे चूहे की प्रतीक्षा कर रही थी, और सोच रही थी: 'जब यह छोटा चूहा भोजन के लिए बाहर आएगा, तो मैं उसे वहीं पकड़कर खा जाऊंगी।'" फिर वह चूहा भोजन की तलाश में निकला, और बिल्ली ने उसे पकड़ लिया और बिना चबाए जल्दी से निगल लिया। फिर उस छोटे चूहे ने बिल्ली की आंतें और पित्ताशय खा लिए, और इसी कारण बिल्ली की मृत्यु हो गई और उसे भीषण पीड़ा सहनी पड़ी।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान लगाए बिना, अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे बिना, भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करता है। वह वहाँ कम वस्त्रों में सजी स्त्रियों को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह मृत्यु या भीषण पीड़ा को प्राप्त होता है। हे भिक्षुओं, यही श्रेष्ठ साधना में मृत्यु है: कि व्यक्ति साधना त्याग कर निम्न लोक में लौट जाता है। यही भीषण पीड़ा है: कि व्यक्ति एक ऐसा अपवित्र अपराध करता है जिसका पुनर्वास संभव है।" 375

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'हम शरीर, वाणी और मन को संजोकर, सती ध्यान लगाकर और अपनी इंद्रियों को संयमित रखते हुए भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।"

233. सियार (1) (सिंगाला1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही एक बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। फिर भी वह जहाँ चाहे जाता है, जहाँ चाहे खड़ा होता है, जहाँ चाहे बैठता है, जहाँ चाहे लेटता है, और उस पर ठंडी हवा भी चलती है। यहाँ शाक्य पुत्र के अनुयायी होने का दावा करने वाले किसी व्यक्ति के लिए भी यदि वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर सके तो यह अच्छा होगा। 376

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

234. सियार (2) (सिंगाला2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही किसी बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"उस बूढ़े सियार में शायद कुछ कृतज्ञता और धन्यवाद हो, लेकिन यहाँ मौजूद उस व्यक्ति में कोई कृतज्ञता और धन्यवाद नहीं है जो शाक्य पुत्र का अनुयायी होने का दावा करता है। 377

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम कृतज्ञ और आभारी रहेंगे, और हम पर किए गए छोटे से छोटे उपकार को भी नहीं भूलेंगे।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

अध्याय 10: भिक्षुओं के साथ संबंधित प्रवचन (भिक्खुसंयुत्त) {संयुत्त-21}
235. कोलिता (महामोग्गलाना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "महान मौन, महान मौन।" तो महान मौन क्या है?'" 379

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) होती है, जो विचार और परीक्षा से रहित होती है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होती है। इसे ही श्रेष्ठ मौन कहा जाता है।'

"फिर, मित्रों, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब विचार सहित चेतना (सन्ना संस्कृत संज्ञा) और मन ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, पवित्र मौन के प्रति आलसी (पमादा) न हो। पवित्र मौन में अपने मन को स्थिर करो, पवित्र मौन में अपने मन को एकाग्र करो, पवित्र मौन में अपने मन को समाधि बना लो।' फिर, मित्रों, कुछ समय बाद, जब विचार और चिंतन शांत हो गए, तो मैंने दूसरे ध्यान में

प्रवेश किया और उसमें लीन हो गया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है।

"यदि, मित्रों, कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।" 380

---

236. उपतिस्सा 381 (सारिपुत्त)
सावत्थी में, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'क्या संसार में ऐसा कुछ है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है?' तब मुझे यह विचार आया:
'संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है।'

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, यदि स्वयं गुरु भी रूपांतरित हो जाएँ, तो क्या आपमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होगी?"

"मित्र, 382 यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो। परन्तु मेरे मन में यह विचार अवश्य आऊँगा:
'परम प्रभावशाली, परम शक्तिशाली और महान गुरु का देहांत हो गया है। यदि भगवान (बुद्ध) दीर्घकाल तक जीवित रहते, तो वे समस्त जन के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवों और मनुष्यों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए जीवित रहते।' "

यह अवश्य ही इसलिए है क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) दीर्घकाल से पूर्णतः उखड़ी हुई है 383 कि यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी उनमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो।"

---

237. बैरल
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में वेलुवन (गिलहरी अभयारण्य), एक ही घर में रह रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को नमस्कार किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र मोग्गलाना, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा शुद्ध और तेजस्वी है। क्या पूज्य महामोग्गलाना ने आज का दिन शांतिपूर्ण निवास में बिताया है?"

"मैंने पूरा दिन एक साधारण से घर में बिताया, मित्र, लेकिन मैंने कुछ धम्म (मार्ग, नियम) पर चर्चा की।" 384

"पूजनीय महामोग्गलाना ने किसके साथ धम्म पर चर्चा की?"

"मैंने भगवान (बुद्ध) के साथ धम्म पर चर्चा की, मित्र।"

"परन्तु भगवान (बुद्ध) बहुत दूर हैं, मित्र। वे अब सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे हैं। क्या पूजनीय महामोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) से संपर्क किया, या क्या भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से पूज्य महामोग्गलाना से संपर्क किया?"

"हे मित्र, मैंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) के पास नहीं गया, न ही भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से मेरे पास आए। बल्कि, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया, और मैंने भगवान (बुद्ध) से संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया।" 385

"आदरणीय महामोग्गलाना ने भगवान (बुद्ध) के साथ किस प्रकार की धम्म चर्चा की?"

"यहाँ, मित्र, मैंने भगवान (बुद्ध) से कहा: 'आदरणीय महोदय, ऐसा कहा जाता है, "जिसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो, उसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो।" आदरणीय महोदय, ऊर्जा (वीर्य) किस प्रकार जागृत होती है?' तब भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'देखो, मोग्गलाना, एक भिक्षु (भिक्षु) अपनी ऊर्जावान शक्ति को जागृत करके इस प्रकार निवास करता है: "इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रहें, और मेरे शरीर में मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जावान शक्ति को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति, पुरुष ऊर्जावान शक्ति, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।" 386 मोग्गलाना, इसी प्रकार ऊर्जावान शक्ति जागृत होती है।' मित्र, यही वह धम्म प्रवचन है जो मैंने भगवान (बुद्ध) से किया था। "

मित्र, पूज्य महामोग्गलाना की तुलना में हम हिमालय, पर्वतों के राजा, की तुलना में कुछ कंकड़ के समान हैं।" पूज्य महामोग्गलाना की आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य इतनी अधिक है कि यदि वे चाहें तो एक युग (कल्प/कल्प) तक जीवित रह सकते हैं। 387

"मित्र, पूज्य सारिपुत्त की तुलना में हम नमक के एक बड़े बर्तन के सामने नमक के कुछ दानों के समान हैं। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त की अनेक प्रकार से प्रशंसा, स्तुति और गुणगान किया है:

'जैसे सारिपुत्त सर्वोच्च हैं; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न), सद्गुण (शील) और शांति में।
वैसे ही एक भिक्षु जो उनसे परे चला गया है; अधिक से अधिक केवल उनके समर्थ हो सकता है।'
इस प्रकार दोनों महान नागों ने एक-दूसरे के इस उत्तम कथन और अभिव्यक्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की। 388

---

238. नवदीक्षित भिक्षु (नव)

श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक नवदीक्षित भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके अपने निवास में प्रवेश करता और विश्राम करते हुए मौन बैठा रहता। वह वस्त्र बनाते समय अन्य भिक्षुओं की सेवा नहीं करता था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु, उस भिक्षु को मेरे नाम से कहो कि गुरु उसे बुला रहे हैं।"

"जी, आदरणीय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह उस भिक्षु के पास जाकर उससे कहा, "गुरु तुम्हें बुला रहे हैं, मित्र।"

"जी, मित्र," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया।
तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे भिक्षु, क्या यह सच है कि भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके आप अपने निवास स्थान में प्रवेश करते हैं और विश्राम करते हुए मौन रहते हैं, और वस्त्र बनाते समय भिक्षुओं की सेवा नहीं करते?"

"हे पूज्यवर, मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ।"

तब भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन के विचार को स्वयं जानकर अन्य भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, इस भिक्षु में दोष न निकालो। यह भिक्षु वह है जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, उन चार ध्यानों को प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखदायक निवास प्रदान करते हैं। और वह वह है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"यह निर्वाण शिथिल प्रयासों से नहीं, न ही कमजोर प्रयासों से
प्राप्त होता है; यह मोक्ष समस्त दुखों से मुक्ति (मोक्ष) है।

यह युवा भिक्षु (मेरे पास) वास्तव में एक श्रेष्ठ पुरुष है:
वह अपना अंतिम शरीर धारण किए हुए है; उसने मारा (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त की है।"

---

239. सुजाता
सावत्थी में, पूज्य सुजाता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को यों कहा, "भिक्षुओं, यह कुलवासी दोनों दृष्टियों से सुंदर है। वह आकर्षक, सुंदर, मनमोहक और अत्यंत सुंदर रंगत वाला है। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया है और निवास किया है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... उन्होंने आगे कहा:

"यह भिक्षु परम सौंदर्य से परिपूर्ण है; उनका मन पूर्णतः एकाग्र है।
अनासक्ति से उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है; वे विरक्त हैं, समस्त दुःखों से मुक्त हैं;

वे अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए हैं; उन्होंने मार (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त कर ली है।"

---

240. लकुंदक भद्दिया
सावत्थी में, पूज्य लकुंदक भद्दिया भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम उस भिक्षु को आते देख रहे हो, जो बदसूरत, कुरूप, विकृत और भिक्षुओं में तिरस्कृत है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... और आगे कहा:

"हंस, बगुले और मोर; हाथी और चित्तीदार हिरण;
ये सभी शेर से डरते हैं; चाहे उनका शरीर कितना भी बड़ा क्यों न हो।

इसी प्रकार मनुष्यों में; जो छोटा है और जिसे ज्ञान प्राप्त है (पन्ना),
वही वास्तव में महान है; न कि वह बचकाना (नासमझ) जिसका शरीर सुगठित है।"

---

241. विशाखा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य विशाखा पंचलिपुत्त सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे। उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त था। 391

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा कक्ष में पहुँचे। वे नियत आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश कौन दे रहा है, उन्हें प्रेरित कर रहा है और प्रसन्न कर रहा है, उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त है?"

"यह आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त थे, आदरणीय महोदय।"

तब भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा: "शाबाश, शाबाश, विशाखा! यह अच्छा है कि आप भिक्षुओं को इस प्रकार धम्म प्रवचन से उपदेश देते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"जब ज्ञानी व्यक्ति नासमझों के बीच होता है, तो
वे उसे नहीं पहचानते यदि वह बोलता नहीं, 392
परन्तु वे उसे तब पहचानते हैं जब वह बोलता है।

अमरता (निर्वाण) की ओर इशारा करते हुए,

उसे धम्म का प्रवचन और व्याख्या करनी चाहिए; उसे संतों का ध्वज ऊंचा उठाना चाहिए।
सुविचारित शब्द संतों का ध्वज हैं; क्योंकि धम्म संतों का ध्वज है।"

---

242. नंदा

सावत्थी में, तब पूज्य नंदा, जो भगवान (बुद्ध) के मामा के बेटे थे, ने अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहने, अपनी आँखों में काजल लगाया, एक चमकीला कटोरा लिया और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 393 भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:

"नंदा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, कि तुम अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहनो, अपनी आँखों में काजल लगाओ और एक चमकीला कटोरा धारण करो। हे नंदा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, यह उचित है कि तुम वनवासी बनो, भिक्षा ग्रहण करो, चिथड़े के वस्त्र पहनो और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहो।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... [उन्होंने] आगे यह भी कहा:

"मैं नंदा को वनवासी के रूप में कब देखूंगा; चिथड़ों से सिले हुए वस्त्र पहने हुए;
अजनबियों के जूठे टुकड़ों पर जीवन यापन करते हुए; इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन?"

फिर, कुछ समय बाद, पूज्य नंदा वनवासी बन गए, भिक्षाभोजन करने लगे, चिथड़ों के वस्त्र पहनने लगे और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहने लगे।

---

243. टिस्सा

सावत्थी में। तब पूज्य तिस्सा, जो भगवान (बुद्ध) के चचेरे भाई थे, 395 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए - दुखी, शोकाकुल, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"तिस्सा, तुम यहाँ दुखी, शोकाकुल, आँसू बहाते हुए क्यों बैठे हो?"

"क्योंकि, पूज्यवर, भिक्षुओं ने मुझे चारों ओर से तीखे शब्दों से घेर लिया है।" 396

“हे तिस्सा, ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम दूसरों को उपदेश देते हो, परन्तु स्वयं उपदेश सहन नहीं कर सकते। तिस्सा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार न करो। हे तिस्सा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जो विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, यह उचित है कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार करो।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

“तुम क्रोधित क्यों हो? क्रोधित मत हो! हे तिस्सा, क्रोधहीनता तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है। क्रोध, अहंकार और तिरस्कार को दूर करना ही ब्रह्मचर्य जीवन है, हे तिस्सा।”

---

244. एक भिक्षु जिसे वरिष्ठ (थेरानामाका) कहा जाता है
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय, 397वें वरिष्ठ भिक्षु एकांतवास में रहते थे और एकांतवास की प्रशंसा करते थे। वे अकेले ही भिक्षा मांगने गाँव जाते, अकेले ही लौटते, अकेले ही एकांत में बैठते और अकेले ही ध्यान करते थे।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे आदरणीय, यहाँ एक वरिष्ठ भिक्षु हैं जो एकांतवास में रहते हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा,
"आओ, भिक्षु वरिष्ठ को मेरी ओर से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

“जी, पूज्यवर,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया और पूज्यवर के पास जाकर उनसे कहा: “गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्र पूज्यवर।”

“जी, मित्र,” पूज्यवरवर ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: “क्या यह सच है, पूज्यवरवर, कि आप एकांतवासी हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं?”

“जी, पूज्यवर।”

“परन्तु कैसे, पूज्यवरवरवर, आप एकांतवासी कैसे हैं और एकांतवास की प्रशंसा कैसे करते हैं?”

“जी, पूज्यवरवर, मैं भिक्षा मांगने के लिए अकेले ही गाँव जाता हूँ, अकेले ही लौटता हूँ, अकेले ही एकांत में बैठता हूँ और अकेले ही ध्यान करता हूँ। इसी प्रकार मैं एकांतवासी हूँ और एकांतवास की प्रशंसा करता हूँ।”

"यह एकांतवास का एक तरीका है। हे गुरुदेव, मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण आप ध्यानपूर्वक सुनिए और मनन कीजिए (मानसिकरो), मैं इस पर चर्चा करूँगा।"

"जी हे गुरुदेव।"

"और कैसे? हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण क्या है? यहाँ, हे गुरुदेव, अतीत का त्याग कर दिया गया है, भविष्य का त्याग कर दिया गया है, और वर्तमान स्वरूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को पूरी तरह से दूर कर दिया गया है। 398 इसी प्रकार, हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"ज्ञानी, सर्वविजयी, सर्वज्ञ;
सभी धर्मों (मार्ग, विधि) में निष्कलंक, सभी भोगों से मुक्त,
तृष्णा के नाश (खयाल/क्षय) में मुक्त;
मैं उस व्यक्ति को 'एकाकी निवास करने वाला' कहता हूँ।" 399

---

245. महाकप्पिना
सावत्थी में, पूज्य महाकप्पिना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 400 भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, क्या आप उस भिक्षु को आते हुए देख रहे हैं, जो गोरे रंग का, दुबला-पतला और उभरी हुई नाक वाला है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा: " जिनका चिन्ह कुल है, उनमें क्षत्रिय

श्रेष्ठ है । परन्तु ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ है। सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है। क्षत्रिय कवचधारी होकर चमकता है, ध्यानमग्न ब्राह्मण चमकता है। परन्तु बुद्ध दिन-रात, हर समय महिमा से प्रकाशित होते हैं।"

---

246. सहायक (साथी)
सावत्थी में, पूज्य महाकप्पिना के दो सहचर शिष्य भगवान बुद्ध के पास आए। भगवान बुद्ध ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या आप उन दो सहचर भिक्षुओं को आते देख रहे हैं, जो कप्पिना के शिष्य हैं?"

"जी, पूज्यवर।"

"वे भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण हैं। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उन्होंने पहले से ही प्राप्त न किया हो। और वे वे हैं जिन्होंने दिव्य ज्ञान से स्वयं उस सिद्धि को प्राप्त करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"ये [दो] साथी भिक्षु; बहुत लंबे समय से एक साथ हैं। 401
सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) ने उन्हें एकजुट किया है; बुद्ध द्वारा घोषित धम्म में।

कप्पिन द्वारा उन्हें अच्छी तरह से अनुशासित किया गया है; श्रेष्ठ द्वारा घोषित धम्म में।
वे अपने अंतिम शरीर धारण किए हुए हैं; मारा (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त करके।"

संयुत्त निकाय का कारण-कार्य ग्रंथ (निदानवग्ग) समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन3-खंडवग्गा-वेर2

SN3- समुच्चय की पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का तीसरा खंड है। यह भिक्खु बोधि का दूसरा संस्करण है, जो संशोधित संस्करण है।)
पाँच स्कंध हैं: शरीर-रूप, वेदना, बोध, संशय (अनिवार्य व्यवहार) और चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। ये सभी इंद्रियों से जुड़े हुए हैं।
महत्वपूर्ण सूत्र:
48, 56, 79: स्कंधों की व्याख्या।
85: (यमक) - कई प्रश्नों के बारे में (सारिपुत्र द्वारा) अद्भुत व्याख्याएँ, जैसे कि क्या वह व्यक्ति नष्ट हो जाता है जो दोषों से मुक्त होकर बुद्ध के समान तथागत बन जाता है, और कैसे स्कंध वास्तव में शत्रु हैं।
89: (खेमक) - 'मैं हूँ' की समस्या।
95: स्कंध झाग, बुलबुले, मृगतृष्णा, केले के पेड़ और जादूगर की चाल के समान हैं।
101: ध्यान अंडों को सेने के समान है।
182: मारा (शैतान) क्या है?
206-311: निर्वाण में प्रवेश और उसके साथ ही झूठे विचारों का त्याग।
330: अन्यत्र उल्लिखित चार तत्वों के स्थान पर छह धातुएँ: पृथ्वी, जल, वायु, ऊष्मा, आकाश और चेतना।
332-340: निर्वाण की ओर ले जाने वाली नौ ध्यान अवस्थाएँ।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN2)   अगला (SN4) >>>>

अंतर्वस्तु

1.1.1.44. हलिद्दकानी (2)
1.1.1.55. समाधि अवस्था
1.1.1.66. एकांतवास (पतिसलाना)
1.1.1.77. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (1) (उपादपरितासना)
1.1.1.88. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (2) (उपादपरितासना)
1.1.1.99. तीनों काल में अनित्य
1.1.1.1010. तीन काल में कष्ट (कालत्तयदुक्ख सं. काल-आत्मया-दुःख)
1.1.1.1111. तीन काल में अनात्म (कालत्तयानत्त सं. काल-आत्मया-अनात्म)
1.1.2(ii) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - अनित्य खंड (अनिकवागो संस। अनित्य-वर्ग)
1.1.2.112. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
1.1.2.213 (2) पीड़ा (दुक्खा)
1.1.2.314. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.1.2.415. अनित्य क्या है (यादनिक्का सं. यदा-अनित्य)
1.1.2.516. यमदुक्खा क्या है?
1.1.2.617. अनात्म (यदानत्) क्या है?
1.1.2.718. कारण सहित अनित्य
1.1.2.819. कारण सहित पीड़ा (सहेतुदुक्खा)
1.1.2.920. नॉनसेल्फ विथ कॉज़ (सहेतुअनात्ता सं. सहेतु-अनात्म)
1.1.2.1021. आनंद
1.1.3(iii) डिवीजन 1, रूट फिफ्टी - द बर्डन सेक्शन (भरा)
1.1.3.122. बोझ
1.1.3.223. पूर्ण समझ (परिन्न संस्कृत परम-ज्ञान)
1.1.3.324. प्रत्यक्ष रूप से जानना (अभिज्ञान सं. अभि-ज्ञान)
1.1.3.425. इच्छा और वासना (चंदा-राग)
1.1.3.526. सांसारिक सुख (1) (अस्सादा 1 बिना असवाद के)
1.1.3.627. सांसारिक सुख (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
1.1.3.728. सांसारिक सुख (3) (अस्सादा 3 सं. असवाद)
1.1.3.829. आनंद (अभिनंदन)
1.1.3.930. उदय (उप्पदा सं. उत्पद)
1.1.3.1031. दुख का मूल (अघामुला)
1.1.3.1132. नाजुक (पभंगु सं. प्र-भंगुर या प्रत्यक्ष-भंगुर)
1.1.4(iv) प्रभाग 1, मूल पचास - आपका नहीं अनुभाग (नटुम्हकमवग्गो सं. न-त्वमवकम-वर्ग)
1.1.4.133. आपका नहीं (1) (नतुम्खम्1 सं. न-त्वमवकम)
1.1.4.234. तुम्हारा नहीं (2)
1.1.4.335. एक निश्चित भिक्षु (1) (अन्नतारभिक्खु1 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
1.1.4.436. एक निश्चित भिक्खु (2) (अन्नतारभिक्खु2 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
1.1.4.537. आनंद (1)
1.1.4.638. आनंद (2)
1.1.4.739. धम्म के अनुसार (1) (अनुधम्म1 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.4.840. धम्म के अनुसार (2) (अनुधम्म2 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.4.941. धम्म के अनुसार (3) (अनुधम्म3 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.4.1042. धम्म के अनुसार (4) (अनुधम्म4 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
1.1.5(v) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - द्वीप खंड के रूप में स्व (अट्टदीपावगो संस। आत्म-द्वीप-वर्ग)
1.1.5.143. अपने आप को द्वीप मानकर (अट्टादिपा संस्कृत: अत्म-द्वीप)
1.1.5.244. मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
1.1.5.345 अनित्य (1) (अनिच्चा1 सं. अनित्य)
1.1.5.446. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सास. अनित्य)
1.1.5.547. चीजों के संबंध में तरीके (समनुपासना सं. सम्यक-अनुपश्यना)

1.1.5.648. समुच्चय (खंड सं. स्कंध)
1.1.5.749. सोना (1)
1.1.5.850. सोना (2)
1.1.5.951. आनंद का नाश (1)
1.1.5.1052. आनंद का नाश (2)
1.1.6(i) प्रभाग 2, मध्य पचास - अनुबंध अनुभाग (उपायवग्गो)
1.1.6.153. सगाई (उपाय)
1.1.6.254. बीज (बीजा)
1.1.6.355. प्रेरित उच्चारण (उदना)
1.1.6.456. क्लिंगिंग एग्रीगेट्स के चरण (उपदानपरिपवत्ता)
1.1.6.557. सात मामले (सत्तत्थाना)
1.1.6.658. पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (सम्म-सम-बुद्ध सं. सम्यक-सम-बुद्ध)
1.1.6.759. अनात्मा का लक्षण (अनत्तलक्खन सं. अनात्म-लक्षण)
1.1.6.860. महाली
1.1.6.961. जलना (आदित्ता सान. आदित्य)
1.1.6.1062. भाषा के मार्ग (निरुत्तिपथ)
1.1.7(ii) प्रभाग 2, मध्य पचास - अरिहंत खंड (अरिहंतवग्गो सं. अरिहंत-वर्ग)
1.1.7.163. आसक्ति में (उपाद्यमान)
1.1.7.264. गर्भ धारण करने में (मन्नामाना)
1.1.7.365. आनंद की खोज में (अभिनंदमन)
1.1.7.466. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
1.1.7.567. दुःख (दुक्खा)
1.1.7.668. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.1.7.769. जो स्वयं से संबंधित नहीं है (अनत्तनिया संस्कृत: अनत्मनिया)
1.1.7.870. जो कुछ भी आकर्षक प्रतीत होता है (रजनीयसंथिता)
1.1.7.971. राधा
1.1.7.1072. सुरधा
1.1.8(iii) खंड 2, मध्य पचास - भक्षण खंड (खज्जनिया संस्कृत: खदनिया)
1.1.8.173. सांसारिक सुख (अस्वाद के बिना)
1.1.8.274. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
1.1.8.375. उत्पत्ति (2) (समुदय1)
1.1.8.476. अरहंत (1)
1.1.8.577. अरहंत (2)
1.1.8.678. शेर
1.1.8.779. खा जाना (खजनिया सं. खडनिया)
1.1.8.880. भिक्षा मांगने वाला (पिंडोल्य)
1.1.8.981. पालिलिया
1.1.8.1082. पूर्णिमा की रात (पुन्नमा संस्कृत: पूर्णिमा)
1.1.9(iv) प्रभाग 2, मध्य पचास - वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुभाग (थेरावग्गो संस. स्थिवर-वर्ग)
1.1.9.183. आनंद
1.1.9.284. टिस्सा
1.1.9.385. यामाका
1.1.9.486. अनुराधा
1.1.9.587. वक्काली
1.1.9.688. असाजी
1.1.9.789. खेमाका
1.1.9.890. चन्ना
1.1.9.991. राहुल (1)

1.1.9.1092. राहुल (2)
1.1.10(v) प्रभाग 2, मध्य पचास - पुष्प खंड (पुप्फावग्गो सं. पुष्प-वर्ग)
1.1.10.193. नदी
1.1.10.294. फूल
1.1.10.395. फोम की एक गांठ (फेना-पिंड-उपमा)
1.1.10.496. गाय के गोबर का एक ढेर (गोमाया-पिंडा)
1.1.10.597. नाखून (नखसिखा)
1.1.10.698. सरल संस्करण (सुद्धिका)
1.1.10.799. पट्टा (1) (गद्दुलबद्ध)
1.1.10.8100. पट्टा (2) (गद्दुलबद्धा)
1.1.10.9101. कुल्हाड़ी का हैंडल (या जहाज) (वसीजाता)
1.1.10.10102. अनित्यता की धारणा
1.1.11(i) प्रभाग 3, अंतिम पचास - भाग अनुभाग (अंतावग्गो)
1.1.11.1103. भाग (अंता)
1.1.11.2104. दुख (दुक्खा)
1.1.11.3105. शरीर-पहचान (सक्कया सं. स-काया)
1.1.11.4106. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत परिज्ञान)
1.1.11.5107. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
1.1.11.6108. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
1.1.11.7109. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
1.1.11.8110. अरहंत
1.1.11.9111. इच्छा का परित्याग (1) (चंडप्पहन1 सं. चंड-प्राहन)
1.1.11.10112. इच्छा का परित्याग (2) (चंडप्पहन2 सं. चंड-प्राहन)
1.1.12(ii) प्रभाग 3, अंतिम पचास - धम्म खंड पर वक्ता (धम्मकथिकावग्ग सं. धर्म-कथिक-वर्ग)
1.1.12.1113. अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)
1.1.12.2114. सच्चा ज्ञान (विज्या संस्कृत विद्या)
1.1.12.3115. धम्म पर एक वक्ता (1) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
1.1.12.4116. धम्म पर एक वक्ता (2) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
1.1.12.5117. बंधन
1.1.12.6118. पूछताछ (l) (परिपुच्छिता1)
1.1.12.7119. पूछताछ (2) (परिपुच्छिता2)
1.1.12.8120. बंधनकारी चीजें (संयोजनीय)
1.1.12.9121. जिन चीजों से चिपका जा सकता है (उपदानीय)
1.1.12.10122. सदाचारी (सिलवंता सं. शीलवंत)
1.1.12.11123. निर्देश दिया (सुतावंता)
1.1.12.12124. कप्पा (1)
1.1.12.13125. कप्पा (2)
1.1.13(iii) भाग 3, अंतिम पचास - अज्ञानता अनुभाग (अविज्जा संस्कृत अविद्या)
1.1.13.1126. उत्पन्न होने के अधीन (1) (समुदायधम्म1 सं. समुदय-धर्म)
1.1.13.2127. उत्पन्न होने के अधीन (2) (समुदायधम्म2 सं. समुदय-धर्म)
1.1.13.3128. उत्पन्न होने के अधीन (3) (समुदायधम्म3 सं. समुदय-धर्म)
1.1.13.4129. सांसारिक भोग (1) (अस्सादा 1 सं. अस्वाद)
1.1.13.5130. सांसारिक-आनंद (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
1.1.13.6131. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
1.1.13.7132. उत्पत्ति (2) (समुदय2)
1.1.13.8133. कोत्थिता (1)
1.1.13.9134 कोत्थिता (2)
1.1.13.10135 कोत्थिता (3)

1.1.14(iv) डिवीजन 3, फाइनल फिफ्टी - हॉट एम्बर्स सेक्शन (कुक्कुलावग्गा सं. कोयला-वर्ग)
1.1.14.1136. गर्म अंगारे (कुक्कुला बिना कोयला)
1.1.14.2137. अनित्य (अनिच्च 1 सं. अनित्य)
1.1.14.3138. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सं. अनित्य)
1.1.14.4139. अनित्य (3) (अनिच्च 3 सं. अनित्य)
1.1.14.5140. पीड़ा (1) (दुक्खा1)
1.1.14.6141. पीड़ा (2) (दुक्खा2)
1.1.14.7142. पीड़ा (3) (दुक्खा3)
1.1.14.8143. अनात्म (1) (अनत्ता1 सं. अनात्म)
1.1.14.9144. अनात्म (2) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
1.1.14.10145. अनात्म (3) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
1.1.14.11146. घृणा में लीन (निब्बिदबाहुला)
1.1.14.12147. अनित्यता पर ध्यान (अनिकानुपासि सं. अनित्य-अनुपश्ययी)
1.1.14.13148. दुख पर ध्यान (दुक्खानुपासि सं. दुख-अनुपश्ययी)
1.1.14.14149. अनात्मा पर ध्यान (अनत्तनुपासि सं. अनात्म-अनुपश्ययी)
1.1.15(v) प्रभाग 3, अंतिम पचास - दृश्य अनुभाग (दिथिवाग्गो सं. दृष्टि-वर्ग)
1.1.15.1150. आंतरिक रूप से (अज्जट्टा)
1.1.15.2151 यह मेरा है (एतम्मामा)
1.1.15.3152. आत्मा (सोअत्ता संस्कृत सो-आत्म)
1.1.15.4153. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
1.1.15.5154. गलत दृष्टिकोण
1.1.15.6155. शरीर-पहचान-दृष्टिकोण (सक्कयदिथि सं. स-काया-दृष्टि)
1.1.15.7156. स्वयं का दृष्टिकोण (अत्तनुदित्थि सं. आत्म-अनु-दृष्टि)
1.1.15.8157. पालन (1) (अभिनिवेश1)
1.1.15.9158. पालन (2) (अभिनिवेश2)
1.1.15.10159. आनंद
1.2अध्याय 2: राधा (राधासंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-23}
1.2.1(i) प्रथम मारा उप-अध्याय
1.2.1.1160. मारा(शैतान) (सं. मृत्युदेव)
1.2.1.2161. एक प्राणी (सत्ता)
1.2.1.3162. अस्तित्व की नाली (भवनेति सं. भाव-नेत्री)
1.2.1.4163. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत: परिज्ञान)
1.2.1.5164. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
1.2.1.6165. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
1.2.1.7166. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
1.2.1.8167. अरहंत
1.2.1.9168. इच्छा का परित्याग (1)
1.2.1.10169. इच्छा का परित्याग (2)
1.2.2(ii) द्वितीय मारा उप-अध्याय
1.2.2.1170. मारा (शैतान) (मृत्युदेव या कामदेव)
1.2.2.2171. मारा के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म/कामदेव-धर्म)
1.2.2.3172. अनित्य (अनिच्चा सं. अनित्य)
1.2.2.4173. अनित्य प्रकृति का (अनिचधम्म सं. अनित्य-धर्म)
1.2.2.5174. पीड़ा (दुक्खा)
1.2.2.6175. पीड़ादायक प्रकृति का (दुक्खधम्म सं. दुक्खधर्म)
1.2.2.7176. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.2.2.8177. निःस्वार्थ प्रकृति का (अनत्तधम्म सं.. अनात्म-धर्म)
1.2.2.9178. विनाश के अधीन (खायधम्म सं. क्षय-धर्म)

1.2.2.10179. पतन के अधीन (वयधम्म बिना वय-धर्म)
1.2.2.11180. उत्पन्न होने के अधीन (समुदायधम्म सं. समुदय-धर्म)
1.2.2.12181. समाप्ति के अधीन (निरोधधम्म सं. निरोध-धर्म)
1.2.3(iii) अनुरोध अनुभाग (अयाकनावग्गा सं. याकाना-वर्ग)
1.2.3.1182. मारा (मराडी-सुत्त-एकादशकम)
1.2.3.2183. मारा आदि के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म)
1.2.3.3184 से 193 तक।
1.2.4(iv) पास में बैठना (उपनिसिननावग्गो)
1.2.4.1194. मारा (शैतान)
1.2.4.2195 से 205 तक मारा (शैतान) के अधीन, इत्यादि।
1.3अध्याय 3: विचारों पर संबंधित प्रवचन (दिथिसंयुत्त सं. दृष्टि-संयुक्त) {संयुत्त-24}
1.3.1(i) स्ट्रीम-एंट्री सेक्शन (सोतापट्टी सं. स्ट्रोटापट्टी)
1.3.1.1206. वायु (वात)
1.3.1.2207. यह मेरा है (एतम-मामा)
1.3.1.3208. स्वयं (सोअट्टा संस्कृत सो-अत्म)
1.3.1.4209. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
1.3.1.5210. ऐसा नहीं है (नत्थिदिन्ना)
1.3.1.6211. अभिनय (करोटो)
1.3.1.7212. कारण (हेतु)
1.3.1.8213. महान दृश्य (महादिट्ठी सं. महा-दृष्टि)
1.3.1.9214. संसार शाश्वत है (सस्सतादिथि सं. शाश्वत-दृष्टि)
1.3.1.10215. संसार शाश्वत नहीं है
1.3.1.11216. दुनिया सीमित है (अंतःवा)
1.3.1.12217. विश्व अनंत है (अननातव)
1.3.1.13218. आत्मा और शरीर एक ही हैं (तम-जीवम्-तम-शरीरम्)
1.3.1.14219. आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं (अन्नम-जीवम-अन्नम-शरीरम बिना। अन्य-जीवम-अन्य-शरीरम)
1.3.1.15220. तथाद्गत अस्तित्व में है (होती-तथागतो)
1.3.1.16221. तथागत का अस्तित्व नहीं है (नहोति-तथागतो)
1.3.1.17222. तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी (Hoti-ca-naca-hotitathagato)
1.3.1.18223. तथागत न तो अस्तित्व में है और न ही अस्तित्व में है (नेवा-होति-ना-नहोति-तथागतो)
1.3.2(ii) द्वितीय गोइंग धारा 264 (दुतियागमनावग्गो)
1.3.2.1224. वायु (वात)
1.3.2.2225-241. यह मेरा है, इत्यादि।
1.3.2.3242. रूप से निर्मित एक स्व-आटा (रूपी-आटा)
1.3.2.4243. एक निराकार आत्मा
1.3.2.5244. एक आत्मा जिसमें रूप और निराकार दोनों शामिल हैं (रूपी-च-अरूपि-च-अत्ता संस। रूप्य-च-अरूप्य-च-एटीएम)
1.3.2.6245. आत्मा न तो आकार से युक्त है और न ही निराकार (नेव-रूपी-नारूपी-अत्ता संस। नेव-रूप्य-नारुप्य-आत्म)
1.3.2.7246. विशेष रूप से खुश (एकांतसुखी)
1.3.2.8247. विशेष रूप से दुखी (एकांतदुक्खी)
1.3.2.9248. सुखी और दुखी दोनों (सुखदुक्खी)
1.3.2.10249. न तो खुश और न ही दुखी (अदुक्खा-मा-सुखी)
1.3.3(iii) तृतीय यात्रा खंड (ततिया-गमन-वग्गो सं. तृतीय-गमन-वर्ग)
1.3.3.1250. हवाएँ नहीं (ना-वात)
1.3.3.2251-275 यह मेरा है, इत्यादि।
1.3.4(iv) चतुर्थ यात्रा खंड (चतुर्थ-गमन-वग्गो संस। चतुर्थ-गमन-वर्ग)
1.3.4.1276. हवाएँ नहीं (ना-वात)
1.3.4.2277.-301. यह मेरा है, इत्यादि।
1.4अध्याय 4: प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (ओक्कंतसंयुत्त) {संयुत्त-25}

1.13.4665. समाधि आधारित प्लिन्सी (समाधि-मूलक-कल्लिता)
1.13.5666. समाधि आधारित वस्तु (समाधि-मूलक-अरम्मना)
1.13.6667. समाधि आधारित रेंज (समाधि-मुलाका-गोकारा)
1.13.7668. समाधि आधारित संकल्प (समाधि-मूलक-अभिनिहार)
1.13.8669. समाधि आधारित संपूर्णता (समाधि-मूलका-सक्कक्काकारी)
1.13.9670. समाधि आधारित दृढ़ता (समाधि-मूलक-सतक्काकारी)
1.13.10671. समाधि आधारित उपयुक्तता (समाधि-मूलक-सप्पयकारी)
1.13.11672. प्राप्ति आधारित रखरखाव (समापत्ति-मुलाका-तिथि)
1.13.12673. प्राप्ति आधारित उद्‌भव (समापत्ति-मुलाका-वुत्थन)
1.13.13674. प्राप्ति आधारित प्लिन्सी (समापट्टी-मुलाका-कल्लिता)
1.13.14675. प्राप्ति आधारित वस्तु (समापट्टी-मुलाका-अराम्मना)
1.13.15676. प्राप्ति आधारित रेंज (समापट्टी-मुलाका-गोकारा)
1.13.16677. प्राप्ति आधारित संकल्प(समापत्ति-मूलक-अभिनिहार)
1.13.17678. प्राप्ति आधारित संपूर्णता (समापट्टी-मुलाका-सक्काकाका)
1.13.18679. प्राप्ति आधारित दृढ़ता (समापत्ति-मुलाका-सताकाका)
1.13.19680. प्राप्ति आधारित उपयुक्तता (समापत्ति-मुलाका-सप्पयकारी)
1.13.20681. रखरखाव आधारित उद्‌भव (थिति-मुलाका-वुत्थना)
1.13.21682. रखरखाव आधारित लचीलापन, आदि (थिति-मूलक-कल्लिता)
1.13.22683. रखरखाव आधारित वस्तु, आदि (थिति-मुलका-अराम्मन)
1.13.23684. रखरखाव आधारित रेंज, आदि (थिति-मुलाका-गोकारा)
1.13.24685. रखरखाव आधारित संकल्प, आदि (थिति-मुलाका-अभिनिहार)
1.13.25686. रखरखाव आधारित संपूर्णता, आदि (थिति-मुलाका-सक्कक्काकारी)
1.13.26687. रखरखाव आधारित दृढ़ता, आदि (थिति-मुलाका-सताक्काकारी)
1.13.27688. रखरखाव आधारित उपयुक्तता, आदि (थिति-मुलाका-सप्पयकारी)
1.13.28689. उद्‌भव आधारित प्लिन्सी आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
1.13.29690. उद्‌भव आधारित वस्तु आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.30691. उद्‌भव आधारित रेंज आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.31692. उद्‌भव आधारित संकल्प आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.32693. उद्‌भव आधारित पूर्णता आदि (वुत्थाना-मूलक-कल्लित)
1.13.33694. उद्‌भव आधारित दृढ़ता आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
1.13.34695. उद्‌भव आधारित उपयुक्तता आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
1.13.35696. प्लिअन्सी आधारित वस्तु, आदि (कल्लिता-मुलका-अर्ममना)
1.13.36697. प्लैन्सी आधारित रेंज, आदि (कल्लिता-मुलाका-गोकारा)
1.13.37698. सहजता आधारित संकल्प, आदि (कल्लिता-मुलाका-अभिनिहार)
1.13.38699. प्लिन्सी आधारित संपूर्णता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सक्कक्काकारी)
1.13.39700. विनम्रता आधारित दृढ़ता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सताक्काकारी)
1.13.40701. प्लीएन्सी आधारित उपयुक्तता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सप्पयकारी)
1.13.41702. वस्तु आधारित रेंज (अरम्मना-मुलाका-गोकारा)
1.13.42703. वस्तु आधारित संकल्प (अरम्मना-मुलाका-अभिनिहारा)
1.13.43704. वस्तु आधारित संपूर्णता (अरम्मना-मुलाका-सक्कक्का)
1.13.44705. वस्तु आधारित दृढ़ता (अरम्मना-मुलाका-सटाक्का)
1.13.45706. वस्तु आधारित उपयुक्तता (अरम्मना-मुलाका-सप्पाया)
1.13.46707. रेंज आधारित संकल्प (गोकारा-मुलाका-अभिनिहारा)
1.13.47708. रेंज आधारित थोरनेस (गोकारा-मुलाका-सक्कक्का)
1.13.48709. रेंज आधारित दृढ़ता (गोकारा-मुलाका-सटाका)
1.13.49710. रेंज आधारित उपयुक्तता (गोकारा-मुलाका-सप्पाया)
1.13.50711. संकल्प आधारित संपूर्णता (अभिनिहार-मुलाका-सक्काकाका)
1.13.51712. संकल्प आधारित दृढ़ता (अभिनिहारा-मूलका-सतक्का)

1.13.52713. संकल्प आधारित उपयुक्तता (अभिनिहार-मुलाका-सप्पाया)
1.13.53714. संपूर्णता आधारित दृढ़ता (सक्कक्का-मुलाका-सटाक्का)
1.13.54715. संपूर्णता आधारित उपयुक्तता (सक्कक्का-मुलाका-सप्पाया)
1.13.55716. दृढ़ता आधारित उपयुक्तता (सतक्का-मुलाका-सप्पाया)
संयुक्त निकाय: III.खांधवग्गा (समुच्चय की पुस्तक)

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: समुच्चय पर संबंधित प्रवचन (खंडसम्युत्त) {सम्युत्त-22}
(i) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - नकुलपिता खंड
1. नकुलपिता
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सुसुमार्गीरा में भेषकलावन (मिगदाये) नामक हिरण उद्यान में भग्गों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ नकुलपिता भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 1

"हे पूज्यवर, मैं वृद्ध हूँ, उम्र का बोझ मुझ पर है, मैं जीवन के अंतिम पड़ाव पर हूँ, मेरा शरीर कष्ट से ग्रस्त है और मैं अक्सर बीमार रहता हूँ। मुझे भगवान (बुद्ध) और आदरणीय भिक्षुओं के दर्शन बहुत कम होते हैं। 2 हे पूज्यवर, कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे उपदेश दें, क्योंकि इससे मुझे दीर्घकालिक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

"हे गृहस्थ, ऐसा ही है! तुम्हारा यह शरीर पीड़ित है, बोझ से दबा हुआ है, बोझ से जकड़ा हुआ है। 3 यदि कोई इस शरीर को धारण करके क्षण भर के लिए भी स्वस्थ होने का दावा करे, तो यह केवल बचकानापन ही तो है? इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'यद्यपि मेरा शरीर पीड़ित है, तो भी मेरा मन पीड़ित नहीं होगा।' तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

तब गृहस्थ नकुलपिता, भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर, पूज्य सारिपुत्त के पास गए। आदरणीय सारिपुत्त को प्रणाम करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गए, और आदरणीय सारिपुत्त ने उनसे कहा:

"गृहस्थ, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा शुद्ध और तेजस्वी है। क्या आज आपको भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में धर्म प्रवचन सुनने का अवसर मिला?"

"क्यों नहीं, आदरणीय महोदय? अभी-अभी भगवान (बुद्ध) ने मुझे धर्म प्रवचन के अमृत से अभिषेक किया है।"

"गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने आपको किस प्रकार के धर्म प्रवचन के अमृत से अभिषेक किया है?"

"हे पूज्यवर, मैं भगवान (बुद्ध) के पास आया था...

(गृहस्थ नकुलपिता बुद्ध के साथ हुई अपनी पूरी बातचीत दोहराते हैं।)

"हे पूज्यवर, ऐसे धर्म प्रवचन के अमृत से ही भगवान (बुद्ध) ने मेरा अभिषेक किया।"

"हे गृहस्थ, क्या आपके मन में यह विचार नहीं आया कि आप भगवान (बुद्ध) से यह प्रश्न करें कि शरीर और मन दोनों कैसे क्षुब्ध होते हैं, और शरीर तो क्षुब्ध होता है लेकिन मन नहीं?" "हे

पूज्यवर, हम दूर से इस कथन का अर्थ पूज्य सारिपुत्त से जानने आए हैं। यदि पूज्य सारिपुत्त इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो बहुत अच्छा होगा।"

"तो फिर सुनिए और ध्यान से (मानसिकरो), हे गृहस्थ, मैं बोलूंगा।"

"जी हे पूज्यवर," गृहस्थ नकुलपिता ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"हे गृहस्थ, शरीर और मन से पीड़ित व्यक्ति कैसे होता है? हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, 4 जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा के समान, या आत्मा को रूप धारण करने वाला, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मानता है। वह 'मैं रूप हूँ, रूप मेरा है' की धारणाओं से ग्रस्त रहता है। 5 इन धारणाओं से ग्रस्त रहने के कारण, उसका रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह वेदना को आत्मा के समान, या आत्मा को वेदना धारण करने वाला, या वेदना को आत्मा में, या आत्मा को वेदना में मानता है।" वह 'मैं ही वेदना हूँ, मेरी ही वेदना है' की धारणाओं में ग्रस्त रहता है। इन धारणाओं में ग्रस्त रहने के कारण उसकी वेदना बदलती रहती है। वेदना के इस परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह अनुभूति को आत्मा, अनुभूति को आत्मा, अनुभूति को आत्मा में, या आत्मा को अनुभूति में मानता है। वह 'मैं ही अनुभूति हूँ, मेरी ही वेदना है' की धारणाओं में ग्रस्त रहता है। इन धारणाओं से ग्रस्त होकर जीने के कारण उसकी यह धारणा बदलती रहती है। धारणा में इस परिवर्तन के साथ ही उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को स्वयं के रूप में, या स्वयं को संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) से युक्त मानता है, या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को स्वयं में, या स्वयं को संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) में मानता है। वह इस धारणा से ग्रस्त रहता है: 'मैं संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) हूँ, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) मेरे हैं।' इन धारणाओं से ग्रस्त होकर जीने के कारण उसके ये संस्कार बदलते रहते हैं। संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) में इस परिवर्तन के साथ ही उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) को आत्मा, या आत्मा को चेतना से युक्त, या चेतना को आत्मा में, या आत्मा को चेतना में मानता है। वह 'मैं चेतना हूँ, चेतना मेरी है' जैसे विचारों से ग्रस्त रहता है। इन विचारों से ग्रस्त रहने के कारण उसकी चेतना में परिवर्तन और रूपांतरण होता रहता है। चेतना के इस परिवर्तन और रूपांतरण से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। हे

गृहस्थ, इसी प्रकार शरीर और मन दोनों व्यथित होते हैं।

"हे गृहस्थ, शरीर से पीड़ित होकर भी मन से पीड़ित न होने वाला व्यक्ति कैसे हो सकता है? हे गृहस्थ, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को रूप में मानता है। 7 वह 'मैं रूप हूँ, रूप मेरा है' के भावों से ग्रस्त नहीं रहता। क्योंकि वह इन भावों से मुक्त रहता है, इसलिए उसका रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को वेदना धारण करने वाला मानता है, न ही वेदना को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को वेदना में मानता है। वह 'मैं वेदना हूँ, वेदना मेरी है' के भावों से ग्रस्त नहीं रहता।" जब वह इन धारणाओं से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है, तो उसकी वेदना (संवेदना) में परिवर्तन और रूपांतरण होता है। वेदना (संवेदना) के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) को स्वयं के रूप में, स्वयं को अनुभूति से युक्त, अनुभूति को स्वयं में, या स्वयं को अनुभूति में नहीं मानता। वह 'मैं अनुभूति हूँ, अनुभूति मेरी है' जैसी धारणाओं से ग्रस्त होकर जीवन व्यतीत नहीं करता। जब वह इन धारणाओं से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है, तो उसकी अनुभूति में परिवर्तन और रूपांतरण होता है। अनुभूति

(संवेदना) के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती। वह संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) को स्वयं के रूप में, स्वयं को संस्कार (आदत) से युक्त, या संस्कार (आदत) को स्वयं में, या स्वयं को संस्कार (आदत) में नहीं मानता। वह 'मैं संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) हूँ, संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) मेरे हैं' जैसी धारणाओं से ग्रस्त होकर नहीं जीता। इन धारणाओं से मुक्त होकर जीने के कारण, उसके संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) बदलते रहते हैं। संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह चेतना को स्वयं के रूप में, स्वयं को चेतना से युक्त, चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में नहीं मानता। वह 'मैं चेतना हूँ, चेतना मेरी है' जैसी धारणाओं से ग्रस्त होकर नहीं जीता। जब वह इन धारणाओं से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है, तो उसकी चेतना में परिवर्तन और रूपांतरण होता है। चेतना के इस परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

"हे गृहस्थ, इस प्रकार शरीर तो क्षुब्ध होता है, पर मन क्षुब्ध नहीं होता।" 8

यह पूज्य सारिपुत्त ने कहा। पूज्य सारिपुत्त के इस कथन से गृहस्थ नकुलपिता प्रसन्न हुए।

---

2. देवदहा में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शाक्यों का एक नगर था जिसका नाम देवदहा था। तब पश्चिम की ओर जाने वाले कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, हम पश्चिमी प्रांत में निवास करने के लिए जाना चाहते हैं।" 9

"क्या आपने सारिपुत्त से विदा ली है, भिक्षुओं?"

"नहीं, हे पूज्यवर।"

"तो सारिपुत्त से विदा लें, भिक्षुओं। सारिपुत्त बुद्धिमान हैं, वे ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले अपने भाइयों की सहायता करते हैं।" 10 [6]

"जी, हे पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर एक झाड़ी में बैठे थे। 11 तब वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने स्थानों से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया। फिर, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, वे पूज्य सारिपुत्त के पास गए। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त को प्रणाम किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र सारिपुत्त, हम पश्चिमी प्रांत में निवास करने के लिए जाना चाहते हैं। हमने गुरु से विदा ली है।"

"मित्रों, ऐसे बुद्धिमान क्षत्रिय, बुद्धिमान ब्राह्मण, बुद्धिमान गृहस्थ और बुद्धिमान तपस्वी हैं जो किसी भिक्षु (भिक्षु) से विदेश जाने पर प्रश्न करते हैं 12 - क्योंकि बुद्धिमान लोग, मित्रों, जिज्ञासु होते हैं: 'आपके गुरु क्या कहते हैं, वे क्या सिखाते हैं?'" मुझे आशा है कि आप पूज्यजनों ने शिक्षाओं को भली-भांति सीखा है, उन्हें भली-भांति आत्मसात किया है, उन पर भली-भांति ध्यान दिया है, उन पर भली-भांति विचार किया है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उन्हें भली-भांति आत्मसात किया है, ताकि उत्तर देते समय आप वही कहें जो भगवान (बुद्ध) ने कहा है और उन्हें तथ्यों के विपरीत किसी भी बात से गलत तरीके से प्रस्तुत न करें; ताकि आप धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करें और आपके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने।" 13

"हे मित्र, हम पूज्य सारिपुत्त से इस कथन का अर्थ जानने के लिए दूर-दूर से आए हैं।" यदि पूज्य सारिपुत्त इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो वास्तव में अच्छा होगा। "

तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मित्रों, मैं बोलता हूँ।"

"जी, मित्रों," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

"मित्रों, कुछ बुद्धिमान क्षत्रिय, बुद्धिमान ब्राह्मण, बुद्धिमान गृहस्थ और बुद्धिमान तपस्वी हैं जो किसी भिक्षु के विदेश जाने पर उससे प्रश्न करते हैं - क्योंकि बुद्धिमान लोग, मित्रों, जिज्ञासु होते हैं: 'आपके गुरु क्या कहते हैं, वे क्या सिखाते हैं?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको उत्तर देना चाहिए: 'हमारे गुरु, मित्रों, इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण की शिक्षा देते हैं।'"

"जब आप इस प्रकार उत्तर दे देंगे, मित्रों, तो कुछ ज्ञानी क्षुद्र ... ज्ञानी तपस्वी आपसे आगे प्रश्न पूछेंगे - क्योंकि ज्ञानी लोग जिज्ञासु होते हैं, मित्रों, वे पूछेंगे: 'आपके गुरु इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण के बारे में क्या सिखाते हैं?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको उत्तर देना चाहिए: 'हमारे गुरु, मित्रों, रूप के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण, वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) के निवारण, बोध (संज्ञा) के निवारण, संशय (आक्रामक व्यवहार) के निवारण, और चेतना (विज्ञान) के निवारण की शिक्षा देते हैं।'"

"जब आप इस प्रकार उत्तर दे देंगे, मित्रों, तो कुछ बुद्धिमान क्षत्रिय... बुद्धिमान तपस्वी आपसे आगे प्रश्न करेंगे - क्योंकि बुद्धिमान लोग जिज्ञासु होते हैं, मित्रों: 'यह देखकर कि आपके गुरु रूप के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने, वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने... बोध... बोध... बोध (व्यवहार-आधार)... चेतना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने में क्या खतरा बताते हैं?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'यदि, मित्रों, कोई रूप के संबंध में कामवासना, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, 14 तो रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ व्यक्ति में दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।'" मित्रों, यदि कोई व्यक्ति वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के संबंध में कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, तो चेतना के परिवर्तन और बदलाव के साथ ही उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। इस खतरे को देखकर हमारे गुरु रूप के प्रति इच्छा और कामवासना (राग) को दूर करने और वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति इच्छा और कामवासना (राग) को दूर करने का उपदेश देते हैं।

"जब आप इस प्रकार उत्तर दे देंगे, मित्रों, तो हो सकता है कि कुछ बुद्धिमान क्षुद्र ... बुद्धिमान तपस्वी आपसे आगे प्रश्न पूछें - क्योंकि बुद्धिमान लोग जिज्ञासु होते हैं, मित्रों: 'यह देखकर कि आपके गुरु रूप के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने, वेदना के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करने ... बोध (सन्ना संस. संग्या) ... संखार (व्यवहार-अनुकूलन) ... चेतना को दूर करने से क्या लाभ प्रदान करते हैं?'" इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्रों, आपको इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'यदि कोई व्यक्ति रूप के प्रति कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित है, तो रूप परिवर्तन और रूपांतरण से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित है, तो चेतना परिवर्तन और रूपांतरण से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती। इस लाभ को देखकर, हमारे गुरु रूप के प्रति कामवासना (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करना, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति कामवासना (चंद) और कामवासना (राग) को दूर करना सिखाते हैं।'

हे मित्रों, यदि कोई व्यक्ति जो हानिकारक अवस्थाओं में प्रवेश करता है और उनमें बना रहता है, इस जीवन में बिना कष्ट, निराशा और बुखार के सुखी रह सकता है, और यदि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु के समय उसे शुभ गंतव्य (सुगति) प्राप्त हो सकता है, तो भगवान (बुद्ध) हानिकारक अवस्थाओं के त्याग की प्रशंसा नहीं करते। परन्तु क्योंकि जो व्यक्ति हानिकारक अवस्थाओं में प्रवेश करता है और उनमें बना रहता है, वह इस जीवन में कष्ट, निराशा और बुखार में रहता है, और क्योंकि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु के समय उसे अशुभ गंतव्य प्राप्त हो सकता है, इसलिए भगवान (बुद्ध) हानिकारक अवस्थाओं के त्याग की प्रशंसा करते हैं।

हे मित्रों, यदि कोई व्यक्ति जो लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं में प्रवेश करता है और उनमें बना रहता है, वह इस जीवन में कष्ट, निराशा और बुखार में रहता है, और यदि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु के समय उसे अशुभ गंतव्य प्राप्त हो सकता है, तो भगवान (बुद्ध) लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति की प्रशंसा नहीं करते। परन्तु जो लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में प्रवेश करके उनमें बना रहता है, वह इसी जीवन में सुखपूर्वक, बिना किसी कष्ट, निराशा या व्याकुलता के रहता है, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर उसे सुखी प्राप्ति की आशा रहती है, इसलिए भगवान (बुद्ध) लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं।

यह बात पूज्य सारिपुत्त ने कही। सारिपुत्त के इस कथन से वे भिक्षु प्रसन्न हो उठे।

---

3. हलिद्दकानी (1)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकच्चना कुरारघर में पापता पर्वत पर अवंती के लोगों के बीच निवास कर रहे थे। 16 तब गृहस्थ हलिद्दकनी पूज्य महाकच्चना के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने अत्तकवग्ग के 'मगंदिया के प्रश्न' में यह कहा है: 17

'घर छोड़कर
गाँव में विचरण करने वाले ऋषि किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं रखते; वे
इंद्रिय सुखों से मुक्त होकर, बिना किसी अपेक्षा के
लोगों से विवाद नहीं करते।'

हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस कथन का विस्तृत अर्थ क्या है?"

"हे गृहस्थ, रूप तत्व चेतना का घर है; जिसका मन रूप तत्व के प्रति वासना से जकड़ा हुआ है, उसे गृहस्थ ही भटकने वाला कहा जाता है। 18 वेदना तत्व चेतना का घर है... बोध तत्व चेतना का घर है... संस्कार तत्व चेतना का घर है; जिसका मन संस्कार तत्व के प्रति वासना से जकड़ा हुआ है, उसे गृहस्थ ही भटकने वाला कहा जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति गृहस्थ ही भटकता है। 19

"और हे गृहस्थ, एक संन्यासी कैसे भटकता है?" तथागत ने इच्छा, राग, आनंद और तृष्णा, उपादान और आसक्ति, रूप तत्व के प्रति मानसिक दृष्टिकोण, आसक्ति और अंतर्निहित प्रवृत्तियों का त्याग कर दिया है। इन सभी को उन्होंने जड़ से काट दिया है, ताड़ के पेड़ के ठूंठ की तरह नष्ट कर दिया है, ताकि भविष्य में इनका कोई उद्‌भव न हो। 20 अतः तथागत को संन्यासी के रूप में विचरण करने वाला कहा जाता है। इच्छा, राग, आनंद और तृष्णा, आसक्ति और लगाव, मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठाएँ और संवेदना (वेदना) तत्व, बोध तत्व, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) तत्व और चेतना तत्व से संबंधित अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ: तथागत ने इन सभी का जड़ से त्याग कर, जड़ से काट कर, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिया है, ताकि भविष्य में इनका कोई प्रभाव न रहे। इसलिए तथागत को संन्यासी के रूप में विचरण करने वाला कहा जाता है। इसी प्रकार संन्यासी विचरण करते हैं।

"हे गृहस्थ, कोई घर में कैसे विचरण करता है? रूपों के निमित्त (कारण) से युक्त घर में फैलाव और परिसीमन द्वारा, व्यक्ति घर में विचरण करने वाला कहलाता है। 22 ध्वनियों के निमित्त, गंधों के निमित्त, स्वादों के निमित्त, स्पर्शनीय वस्तुओं के निमित्त, और मानसिक घटनाओं (धम्म) के निमित्त (कारण) से युक्त घर में फैलाव और परिसीमन द्वारा, व्यक्ति घर में विचरण करने वाला कहलाता है।

"हे गृहस्थ, कोई घर के बिना कैसे विचरण करता है?" रूपों के निमित्त (कारण) से युक्त निवास स्थान में फैलाव और सीमितता: तथागत ने इन्हें जड़ से त्याग दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, इस प्रकार मिटा दिया है कि ये भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन नहीं हैं। इसलिए तथागत को निवास स्थान रहित विचरण करने वाला कहा जाता है। ध्वनियों के निमित्त, गंधों के निमित्त, स्वादों के निमित्त, स्पर्शनीय वस्तुओं के निमित्त, मानसिक घटनाओं (धम्म) के निमित्त (कारण) से युक्त निवास स्थान में फैलाव और सीमितता: तथागत ने इन्हें जड़ से त्याग दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, इस प्रकार मिटा दिया है कि ये भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन नहीं हैं। इसलिए तथागत को निवास स्थान रहित विचरण करने वाला कहा जाता है। इसी तरह मनुष्य बिना निवास स्थान के भटकता रहता है। 23

"हे गृहस्थ, गाँव में कोई कैसे घनिष्ठ संबंध रखता है? हे गृहस्थ, यहाँ मनुष्य गृहस्थों के साथ रहता है: वह उनके साथ सुख-दुख में शामिल होता है, उनके सुख-दुख में प्रसन्न होता है और उनके दुख-दुख में दुखी होता है, और उनके कार्यों और कर्तव्यों में स्वयं को शामिल करता है। 24 इसी तरह गाँव में मनुष्य घनिष्ठ संबंध रखता है।

"हे गृहस्थ, गाँव में कोई किसी से घनिष्ठ संबंध कैसे नहीं रखता? हे गृहस्थ, यहाँ भिक्षु गृहस्थों के साथ नहीं रहता। वह उनके सुख-दुख में शामिल नहीं होता, उनके सुख-दुख में प्रसन्न नहीं होता और उनके दुख-दुख में दुखी नहीं होता, और उनके कार्यों और कर्तव्यों में स्वयं को शामिल नहीं करता। इसी तरह गाँव में कोई किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं रखता।

"हे गृहस्थ, कोई व्यक्ति इंद्रिय सुखों से कैसे मुक्त नहीं हो सकता? हे गृहस्थ, यहाँ व्यक्ति इंद्रिय सुखों के संबंध में कामवासना, वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से रहित नहीं होता। इसी प्रकार व्यक्ति इंद्रिय सुखों से

मुक्त नहीं हो सकता।"

"हे गृहस्थ, अपेक्षाएँ कैसे पाली जाती हैं? 25 हे गृहस्थ, यहाँ व्यक्ति सोचता है: 'काश भविष्य में मेरा ऐसा रूप हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी संवेदना (वेदना) हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी अनुभूति हो! काश भविष्य में मुझे ऐसा संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी चेतना (विन्नान विज्ञान) हो!' इसी प्रकार अपेक्षाएँ पाली जाती हैं।

"हे गृहस्थ, अपेक्षा रहित कैसे रहा जाता है? हे गृहस्थ, यहाँ व्यक्ति यह नहीं सोचता: 'काश भविष्य में मेरा ऐसा रूप हो!... काश भविष्य में मुझे ऐसी चेतना हो!' इसी प्रकार अपेक्षा रहित रहा जाता है।"

"हे गृहस्थ, लोगों से विवाद कैसे किया जाए? यहाँ, हे गृहस्थ, कोई इस प्रकार की बातें करता है: 26 'तुम इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन को नहीं समझते। मैं इस धम्म और अनुशासन को समझता हूँ। क्या, तुम इस धम्म और अनुशासन को समझते हो! तुम गलत अभ्यास कर रहे हो। मैं सही अभ्यास कर रहा हूँ। जो बात पहले कही जानी चाहिए थी, वह तुमने बाद में कही; जो बात बाद में कही जानी चाहिए थी, वह तुमने पहले कही। मैं सुसंगत हूँ, तुम असंगत हो। जिस बात पर तुमने इतना समय लगाया, वह उलट गई है। तुम्हारा सिद्धांत खंडित हो गया है। जाओ अपने सिद्धांत को बचाने के लिए, क्योंकि तुम हार गए हो, या यदि संभव हो तो स्वयं को इससे मुक्त करो।' इसी प्रकार से लोग विवाद में उलझते हैं।

"हे गृहस्थ, लोगों से विवाद कैसे न किया जाए?" हे गृहस्थ, यहाँ कोई इस प्रकार की बातें नहीं करता: 'तुम्हें यह धम्म और अनुशासन समझ नहीं आता...' इसी प्रकार लोगों से वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।

"इसलिए, हे गृहस्थ, जब भगवान (बुद्ध) ने अत्थकवग्ग के 'मगंदिया के प्रश्न' में कहा:

'घर छोड़कर बिना निवास के विचरण करने वाले
ऋषि किसी से घनिष्ठ संबंध नहीं रखते; वे
इंद्रिय सुखों से मुक्त होकर, बिना किसी अपेक्षा के
लोगों से वाद-विवाद नहीं करते।'

भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का अर्थ विस्तार से समझना चाहिए।"

---

4. हलिद्दकानी (2)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकच्चना कुरारघर में पापता पर्वत पर अवंती के लोगों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ हलिद्दकनी पूज्य महाकच्चना के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने 'सक्का (इंद्र, देवदूतों के राजा) के प्रश्न' में यह कहा है: 27 'वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तृष्णा के निवारण में मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे ही परम लक्ष्य, बंधन से परम सुरक्षा, परम ब्रह्मचर्य जीवन, परम उद्देश्य तक पहुँच जाते हैं और देवों (देवदूतों) और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं।' 28 हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कहे गए इस वचन का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?"

गृहस्थ, इच्छा, वासना, आनंद, तृष्णा, आसक्ति, मानसिक दृष्टिकोण, आसक्ति और धातु के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्तियों के विनाश (खया/क्षय), क्षीण होने, निरोध, त्याग और परित्याग के माध्यम से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है

। इस तत्व से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

"इस प्रकार, हे गृहस्थ, जब भगवान (बुद्ध) ने 'सक्का के प्रश्न' में कहा है: 'वे तपस्वी और ब्राह्मण जो तृष्णा के निवारण में मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे ही परम लक्ष्य, बंधन से परम सुरक्षा, परम ब्रह्मचर्य जीवन, परम उद्देश्य को प्राप्त कर लेते हैं और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं' - तो इस प्रकार भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का अर्थ विस्तार से समझना चाहिए।"

---

5. समाधि अवस्था
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। सावत्थी में... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, समाधि की अवस्था प्राप्त करो। समाधि की अवस्था में भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

" और वह किन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है? रूप की उत्पत्ति और क्षय; वेदना की उत्पत्ति और क्षय; संज्ञा की उत्पत्ति और क्षय; संशय की उत्पत्ति और क्षय; विज्ञान की उत्पत्ति और क्षय। 29

“हे भिक्षुओं, रूप का उद्गम क्या है? वेदना का उद्गम क्या है? बोध का उद्गम क्या है? संस्कार का उद्गम क्या है? चेतना का उद्गम क्या है?

हे भिक्षुओं, यहाँ व्यक्ति आनंद की खोज करता है, उसका स्वागत करता है और उसे थामे रहता है। और वह क्या है जिसमें व्यक्ति आनंद की खोज करता है, किसका स्वागत करता है और किससे जुड़ा रहता है? व्यक्ति रूप में आनंद की खोज करता है, उसका स्वागत करता है और उसे थामे रहता है। इसके फलस्वरूप आनंद उत्पन्न होता है। रूप में आनंद आसक्ति है। आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।” यही इस समस्त दुख का मूल है।

"मनुष्य वेदना में, बोध में, संस्कार में, चेतना में आनंद की खोज करता है, उसका स्वागत करता है और उससे जुड़ा रहता है। इसके परिणामस्वरूप आनंद उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

"हे भिक्षुओं, यही रूप का मूल है; यही वेदना का मूल है; यही बोध का मूल है; यही संस्कार में, यही संस्कार में, यही चेतना का मूल है। 30

"और हे भिक्षुओं, रूप का क्षय क्या है? वेदना का क्षय क्या है? बोध का क्षय क्या है? संस्कार में, जो व्यवहारिकता है, उसका क्षय क्या है?

यहाँ, हे भिक्षुओं, मनुष्य आनंद की खोज नहीं करता, स्वागत नहीं करता, जुड़ा नहीं रहता। और वह क्या है जिसमें व्यक्ति आनंद नहीं खोजता? जिसका व्यक्ति स्वागत नहीं करता? जिससे व्यक्ति जुड़ा नहीं रहता? व्यक्ति रूप में आनंद नहीं खोजता, उसका स्वागत नहीं करता, उससे जुड़ा नहीं रहता। परिणामस्वरूप, रूप में आनंद समाप्त हो जाता है। आनंद के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने से अस्तित्व समाप्त हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

मनुष्य वेदनाओं, बोध, संस्कारों, चेतना में आनंद नहीं खोजता, न ही उनका स्वागत करता है, न ही उनसे जुड़ा रहता है। इसके परिणामस्वरूप, चेतना में आनंद समाप्त हो जाता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है। हे

भिक्षुओं, यही रूप का क्षय है; यही वेदनाओं का क्षय है; यही बोध का क्षय है; यही संस्कारों का क्षय है; यही चेतना का क्षय है।

---

6. एकांतवास (पतिसलाना)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। 31 एकांतवास में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

और वह वास्तव में क्या समझता है? रूप की उत्पत्ति और क्षय; वेदना की उत्पत्ति और क्षय; संज्ञा की उत्पत्ति और क्षय; संशय की उत्पत्ति और क्षय; विज्ञान की उत्पत्ति और क्षय;

और भिक्षुओं, रूप की उत्पत्ति क्या है?..."

(इस सूत्र का शेष भाग पिछले 5 सूत्रों के समान है।)

---

7. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (1) (उपादपरितासना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें आसक्ति से उत्पन्न बेचैनी (उपदान सं. आसक्ति) और अनासक्ति से उत्पन्न शांत रहना सिखाऊंगा। 32 मैं यह सुनूंगा और ध्यानमग्न रहूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, आसक्ति के कारण व्याकुलता कैसे होती है? हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा के समान, या आत्मा को रूप धारण करने वाला, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में देखता है। उसका वह रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन के साथ, उसकी चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) रूप परिवर्तन में लीन हो जाती है। रूप परिवर्तन की व्याकुलता से उत्पन्न व्याकुलता और मानसिक अवस्थाओं का समूह उसके मन को ग्रस्त रखता है। 33 क्योंकि उसका मन व्याकुल है, वह भयभीत, व्याकुल और चिंतित है, और आसक्ति के कारण वह व्याकुल हो जाता है।

वह वेदना को आत्मा के समान मानता है... बोध को आत्मा के समान मानता है... संज्ञा (Sangya) को स्वयं के रूप में... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को स्वयं के रूप में... चेतना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को चेतना से युक्त, या चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में। उसकी वह चेतना बदलती और रूपांतरित होती रहती है। चेतना के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसकी चेतना चेतना के परिवर्तन में लीन हो जाती है। चेतना के परिवर्तन में लीन होने से उत्पन्न बेचैनी और मानसिक अवस्थाओं का एक समूह उसके मन को ग्रस्त रखता है। क्योंकि उसका मन ग्रस्त है, वह भयभीत, व्यथित और चिंतित है, और आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण वह बेचैन हो जाता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, आसक्ति के कारण बेचैनी होती है।

और, भिक्षुओं, अनासक्ति के द्वारा अशांति कैसे प्राप्त की जा सकती है?" हे भिक्षुओं, यहाँ, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को रूप में मानता है। उसका रूप बदलता रहता है। रूप के इस परिवर्तन के बावजूद, उसकी चेतना रूप परिवर्तन में लीन नहीं होती। रूप परिवर्तन की चिंता से उत्पन्न कोई भी व्याकुलता या मानसिक अवस्थाएँ उसके मन को ग्रस्त नहीं करतीं। क्योंकि उसका मन व्याकुल नहीं है, इसलिए वह भयभीत, व्याकुल या चिंतित नहीं होता, और अनासक्ति के कारण वह विचलित नहीं होता।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, न ही चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, न ही आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के इस परिवर्तन के बावजूद, उसकी चेतना इस परिवर्तन में लीन नहीं रहती। चेतना के परिवर्तन से उत्पन्न कोई भी बेचैनी या मानसिक अवस्थाओं का समूह उसके मन को ग्रस्त नहीं करता। क्योंकि उसका मन लीन नहीं है, इसलिए वह भयभीत, व्याकुल या चिंतित नहीं होता, और अनासक्ति के कारण वह विचलित नहीं होता।

भिक्षुओं, अनासक्ति के कारण इसी प्रकार अविचलितता प्राप्त होती है।

---

8. आसक्ति के कारण होने वाली बेचैनी (2) (उपादपरितासना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें आसक्ति से उत्पन्न बेचैनी (उपादान संस्कृत: आसक्ति) और अनासक्ति से उत्पन्न अबेचनी सिखाऊंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो...

और हे भिक्षुओं, आसक्ति से बेचैनी कैसे उत्पन्न होती है? हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप को इस प्रकार देखता है:
'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा स्वरूप है।' 34 उसका वह रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह वेदना को इस प्रकार देखता है... संज्ञा को इस प्रकार देखता है... संवेदन को इस प्रकार देखता है... संशय को इस प्रकार देखता है... चेतना को इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा स्वरूप है।'" उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के इस परिवर्तन से उसमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार आसक्ति के कारण व्याकुलता उत्पन्न होती है।

और हे भिक्षुओं, अनासक्ति के कारण अव्याकुलता कैसे होती है? हे भिक्षुओं, यहाँ दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप को इस प्रकार नहीं देखता: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' उसका रूप बदलता रहता है। रूप के परिवर्तन से उसमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

वह वेदना को इस प्रकार नहीं देखता... बोध को इस प्रकार नहीं देखता... संस्कार को इस प्रकार नहीं देखता... चेतना को इस प्रकार नहीं देखता: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के परिवर्तन से उसमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होती।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार से आसक्ति रहित रहने के द्वारा अविचलितता प्राप्त होती है।"

---

9. तीनों काल में अनित्य
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों का, वर्तमान काल तो नितांत ही है। ऐसा देखकर, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य भूतकाल के रूप के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूप में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान काल के रूप के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अभ्यास करता है, ताकि वह लुप्त हो जाए और निरोध हो जाए।

वेदना क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है... संशय क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों का, वर्तमान काल तो नितांत ही है। ऐसा देखकर, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य भूतकाल की चेतना के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल की चेतना में आनंद नहीं लेता।" और वह वर्तमान की चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और समाप्ति का अभ्यास कर रहा है।"

---

10. तीन काल में कष्ट (कालत्तयदुक्ख सं. काल-आत्मया-दु:ख)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अतीत और भविष्य दोनों का दुखदायी है, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य अतीत के रूप के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य के रूप में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान के रूप के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वह लुप्त हो जाए और समाप्त हो जाए।

" "संवेदना दुखदायी है... अनुभूति दुखदायी है... संशय दुखदायी है... चेतना दुखदायी है, अतीत और भविष्य दोनों का, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य अतीत की चेतना के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य की चेतना में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान की चेतना के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वह लुप्त हो जाए और समाप्त हो जाए।"

---

11. तीन काल में अनात्म (कालत्तयानत्त सं. काल-आत्मया-अनात्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अतीत और भविष्य दोनों का अनात्म है, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य अतीत के रूप के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य के रूप में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान के रूप के प्रति घृणा (निबिद्दा) का अभ्यास करता है, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के लिए।

"संवेदना अनात्म है... अनुभूति अनात्म है... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) अनात्म है... चेतना अनात्म है, अतीत और भविष्य दोनों का, वर्तमान का तो कहना ही क्या। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य अतीत की चेतना के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य की चेतना में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान की चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और समाप्ति का अभ्यास कर रहा है।"

(ii) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - अनित्य खंड (अनिकवागो संस। अनित्य-वर्ग)
12. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। सावत्थी में... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है, वेदना क्षणभंगुर है, चेतना क्षणभंगुर है, संशय क्षणभंगुर है, और चेतना क्षणभंगुर है। हे भिक्षुओं, ऐसा देखकर, दीक्षित शिष्य रूप के प्रति घृणा, वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा, संशय के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।'" वह समझता है:
"पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

13 (2) पीड़ा (दुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप दुखदायी है, वेदना दुखदायी है, अनुभूति दुखदायी है, संस्कार दुखदायी हैं, चेतना दुखदायी है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

14. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, अनुभूति अनात्म है, संस्कार अनात्म है, चेतना अनात्म है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

15. अनित्य क्या है (यादनिक्का सं. यदा-अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

16. यमदुक्खा क्या है?
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना दुखदायी है... बोध दुखदायी है... संस्कार दुखदायी हैं... चेतना दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।

' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

17. अनात्म (यदानत्) क्या है?
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसा वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना अनात्म है... बोध अनात्म है... संस्कार अनात्म है... चेतना अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसा वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

18. कारण सहित अनित्य
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। रूप की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब रूप क्षणभंगुर से उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है?

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। चेतना की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब चेतना क्षणभंगुर से उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? इस प्रकार

देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था का और कोई अंत नहीं है।'"

---

19. कारण सहित पीड़ा (सहेतुदुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप दुखदायी है। रूप की उत्पत्ति का कारण भी दुखदायी है। चूंकि रूप दुखदायी से उत्पन्न हुआ है, तो सुख कैसे हो सकता है?

वेदना दुखदायी है... अनुभूति दुखदायी है... संस्कार दुखदायी हैं... चेतना दुखदायी है। चेतना की उत्पत्ति का कारण भी दुखदायी है। चूंकि चेतना दुखदायी से उत्पन्न हुई है, तो सुख कैसे हो सकता है?

ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

20. नॉनसेल्फ विथ कॉज़ (सहेतुअनात्ता सं. सहेतु-अनात्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप अनात्म है। रूप की उत्पत्ति का कारण भी अनात्म है। चूंकि रूप अनात्म से उत्पन्न हुआ है, तो वह आत्मा कैसे हो सकता है?

वेदना अनात्म है... अनुभूति अनात्म है... संस्कार अनात्म हैं... चेतना अनात्म है। चेतना की उत्पत्ति का कारण भी अनात्म है। चूंकि चेतना अनात्म से उत्पन्न हुई है, तो वह आत्मा कैसे हो सकती है?

इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

21. आनंद
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"पूज्यवर, कहा जाता है, 'निरोध, निरोध।' किन धर्मों (मार्ग, नियम) के निरोध के माध्यम से निरोध की बात की जा रही है?"

"आनंद, रूप क्षणभंगुर, संखत, आश्रित उत्पत्ति वाला, विनाश के अधीन, पतन के अधीन, लुप्त होने के अधीन और अंतःस्राप्त है। इसके अंतःस्राप्त होने से ही अंतःस्राप्त होने की बात कही जाती है।

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर, संखत, आश्रित उत्पत्ति वाली, विनाश के अधीन, पतन के अधीन, लुप्त होने के अधीन और अंतःस्राप्त है। इसके अंतःस्राप्त होने से ही अंतःस्राप्त होने की बात कही जाती है। आनंद,

इन्हीं धर्मों के अंतःस्राप्त होने से ही अंतःस्राप्त होने की बात कही जाती है।"

(iii) डिवीजन 1, रूट फिफ्टी - द बर्डन सेक्शन (भरा)
22. बोझ
सावत्थी में... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें बोझ, बोझ उठाने वाला, बोझ उठाना और बोझ उतारना सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, बोझ क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पाँच समुच्चय (कन्ध संस्कृत: स्कन्ध) जो आसक्ति के अधीन हैं। वे पाँच कौन से हैं? समुच्चय (रूप) जो आसक्ति के अधीन है, संवेदना (वेदना) जो आसक्ति के अधीन है, बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) जो आसक्ति के अधीन है, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) जो आसक्ति के अधीन है, चेतना (विज्ञान संस्कृत: आसक्ति के अधीन) जो आसक्ति के अधीन है। इसे ही बोझ कहते हैं।" 36
"हे भिक्षुओं, बोझ उठाने वाला कौन है? यह कहा जाना चाहिए: वह व्यक्ति, इस नाम और कुल का यह पूजनीय व्यक्ति। इसे बोझ उठाने वाला कहा जाता है। 37

"हे भिक्षुओं, बोझ उठाना क्या है? यह वह तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) है जो नवजन्म (पुनर्जन्म का कारण) की ओर ले जाती है, जिसमें आनंद (नंदी/आनंद) और काम (राग) शामिल होते हैं, इधर-उधर आनंद की खोज; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, विनाश की तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)। इसे बोझ उठाना कहा जाता है। 38

"हे भिक्षुओं, बोझ उतारना क्या है? यह उसी तृष्णा का शेषरहित लुप्त होना और निरोध (निरोध) है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव। इसे बोझ उतारना कहा जाता है।" 39

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"पाँच स्कंध वास्तव में बोझ हैं।
बोझ उठाने वाला व्यक्ति है।
बोझ उठाना संसार में कष्ट है।
बोझ उतारना आनंदमय है।
भारी बोझ उतारकर,
दूसरा बोझ उठाए बिना
, तृष्णा को जड़ से उखाड़कर,
व्यक्ति भूख से मुक्त हो जाता है, पूर्णतः तृप्त हो जाता है।" 40

---

23. पूर्ण समझ (परिन्न संस्कृत परम-ज्ञान)
सावत्थी में। [27] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन धर्मों (मार्गों, नियमों) का उपदेश दूंगा जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए और पूर्ण समझ भी। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए? हे भिक्षुओं, रूप वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए; वेदना... संज्ञा (संज्ञा)... संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... चेतना (विन्नाना (संज्ञा) वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए। इन्हें पूर्णतः समझने योग्य धर्म कहा जाता है।

और हे भिक्षुओं, पूर्ण समझ क्या है? काम (राग) का विनाश (खयाय/क्षय), द्वेष (दोष/द्वेष) का विनाश, मोह (मोह) का विनाश। इसे पूर्ण समझ कहा जाता है।" 44

---

24. प्रत्यक्ष रूप से जानना (अभिज्ञान सं. अभि-ज्ञान)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में असमर्थ हैं। वेदना, संवेदना, संशय, चेतना, विज्ञान आदि को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उनके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उनका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

भिक्षुओं, रूप को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में सक्षम हैं। वेदना, संवेदना, संशय, संवेदन आदि को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उनके प्रति वैराग्य धारण किए बिना और उनका त्याग किए बिना, दुख का नाश करने में सक्षम हैं।" 42

---

25. इच्छा और वासना (चंदा-राग)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो। ऐसा करने से रूप का त्याग हो जाएगा, वह जड़ से कट जाएगा, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाएगा, और भविष्य में फिर कभी उत्पन्न नहीं होगा।

वेदना के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो... बोध (संज्ञा) के लिए... संशय (अनिवार्य व्यवहार) के लिए... चेतना (विज्ञान) के लिए। ऐसा करने से चेतना का त्याग हो जाएगा, वह जड़ से कट जाएगा, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाएगा, और भविष्य में फिर कभी उत्पन्न नहीं होगा।"

---

26. सांसारिक सुख (1) (अस्सादा 1 बिना असवाद के)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, और रूप के मामले में इससे कैसे बचा जा सकता है? वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय, और चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के मामले में सांसारिक सुख क्या है, क्या खतरा है, और इनसे कैसे बचा जा सकता है?' 43

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'रूप पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही रूप में सांसारिक सुख है। रूप क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही रूप में खतरा है।' रूप के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही रूप से मुक्ति है।

"'संवेदना (वेदना) पर निर्भरता से, बोध पर निर्भरता से, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) पर निर्भरता से, चेतना पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही चेतना में सांसारिक सुख है। वह चेतना क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है: यही चेतना में खतरा है। चेतना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही चेतना से मुक्ति है।"

"हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन पाँच स्कंधों (खंड स्कंध) के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे बचने के तरीकों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, जो आसक्ति के अधीन हैं, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'"

---

27. सांसारिक सुख (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला था। सांसारिक सुख जो भी रूप में निहित है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि सांसारिक सुख कितना व्यापक है।

भिक्षुओं, मैं खतरे की खोज में निकला था। खतरे जो भी रूप में निहित है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि खतरे कितना व्यापक है।"

भिक्षुओं, मैं रूप से मुक्ति पाने के मार्ग पर निकला था। रूप से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देख लिया है कि रूप से मुक्ति कितनी व्यापक है।

भिक्षुओं, मैं वेदना में सांसारिक सुख, वेदना में निहित खतरे, वेदना से मुक्ति, वेदना से मुक्ति, (इसी प्रकार) अनुभूति (संज्ञा) से मुक्ति, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) से मुक्ति, और चेतना (विज्ञान) से मुक्ति पाने के मार्ग पर निकला था। चेतना से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देख लिया है कि चेतना से मुक्ति कितनी व्यापक है।

"हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन पाँच स्कंधों (खंड स्कंध) के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे बचने के तरीकों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, जो आसक्ति के अधीन हैं, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'"

---

28. सांसारिक सुख (3) (अस्सादा 3 सं. असवाद)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, यदि रूप में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु क्योंकि रूप में सांसारिक भोग है, इसलिए प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि रूप में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा न करते; परन्तु क्योंकि रूप में भय है, इसलिए प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि रूप से मुक्ति न होती, तो प्राणी उससे मुक्त न होते; परन्तु क्योंकि रूप से मुक्ति है, इसलिए प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि वेदना में सांसारिक भोग न होता... बोध में सांसारिक भोग न होता... संशय में सांसारिक भोग न होता... चेतना में सांसारिक भोग न होता... परन्तु क्योंकि चेतना से मुक्ति है, इसलिए प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।"

भिक्षुओं, जब तक प्राणी सांसारिक सुखों (असदो संस्कृत: असवाद) को सांसारिक सुख के रूप में, भय को भय के रूप में और इन पांच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) के मामले में, जो आसक्ति के अधीन हैं, उनसे मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, इससे मुक्त नहीं हो पाते, और न ही वे अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त हो जाते हैं; वे इससे विरक्त हो जाते हैं, इससे मुक्त हो जाते हैं, और अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं।

---

29. आनंद (अभिनंदन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जो रूप में आनंद ढूंढता है, वह दुख में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद ढूंढता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता। जो वेदना में, चेतना में, संवेदन में, विज्ञान में आनंद ढूंढता है, वह दुख में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद ढूंढता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता।

जो रूप में, चेतना में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुख में आनंद नहीं ढूंढता। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुख से मुक्त होता है।"

---

30. उदय (उप्पदा सं. उत्पद)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है। संवेदना (वेदना) का उद्भव... अनुभूति (संज्ञा) का उद्भव... संशय (अनिवार्य व्यवहार) का उद्भव... चेतना (विज्ञान) का उद्भव दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है।

रूप (चेतना) का निरोध, शांत होना और देहांत होना... दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देहांत है।"

---

31. दुख का मूल (अघामुला)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुःख और दुःख के मूल के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, दुःख क्या है? रूप दुःख है; वेदना दुःख है; संज्ञा दुःख है; संस्कार दुःख है; विज्ञान दुःख है। यही दुःख कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, दुःख का मूल क्या है? यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) है जो नवजन्म की ओर ले जाती है, जिसमें नंदी आनंद और राग होते हैं, इधर-उधर सुख की खोज; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा। यही दुःख का मूल है।"

---

32. नाजुक (पभंगु सं. प्र-भंगुर या प्रत्यक्ष-भंगुर)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें नश्वर और अविचल का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, नश्वर क्या है और अविचल क्या है? रूप नश्वर है; उसका निरोध, शांत होना, देह त्यागना अविचल है। वेदना नश्वर है... बोध नश्वर है... संशय (संज्ञा) नश्वर है... चेतना (विज्ञान) नश्वर है; उसका निरोध, शांत होना, देह त्यागना अविचल है।"

(iv) प्रभाग 1, मूल पचास - आपका नहीं अनुभाग (नटुम्हकमवग्गो सं. न-त्वमवकम-वर्ग)
33. आपका नहीं (1) (नतुम्खम्1 सं. न-त्वमवकम)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जो कुछ तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।46 और वह क्या है, भिक्षुओं, जो तुम्हारा नहीं है? रूप तुम्हारा नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। वेदना तुम्हारी नहीं है... चेतना तुम्हारी नहीं है... चेतना तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।

" "मान लो, भिक्षुओं, लोग इस जेतवन (जेतवन) में घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ ले जाएँ, या उन्हें जला दें, या उनके साथ जैसा चाहें वैसा करें।" क्या आप सोचते हैं: 'लोग हमें उठा ले जा रहे हैं, जला रहे हैं, या हमारे साथ जो चाहें कर रहे हैं'? "

नहीं, पूज्यवर। क्यों? क्योंकि, पूज्यवर, वह न तो हमारा स्वरूप है और न ही हमारे स्वरूप से संबंधित है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, रूप आपका नहीं है... चेतना आपकी नहीं है: इसका त्याग करो। जब आप इसका त्याग कर देंगे, तभी आपका कल्याण और सुख प्राप्त होगा।"

---

34. तुम्हारा नहीं (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें उपमा नहीं है।)

---

35. एक निश्चित भिक्षु (1) (अन्नतारभिक्खु1 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग/नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धर्म सुनकर मैं एकांतवास में, एकांत में, सचेत (अपमादा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"भिक्षु, यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। 47 यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मूल्यांकन उस प्रवृत्ति के अनुसार नहीं किया जाता।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

हे पूज्यवर, यदि किसी व्यक्ति में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में संवेदना के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में बोध के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में संवेग (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में चेतना के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है। हे

पूज्यवर, यदि किसी व्यक्ति में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मूल्यांकन उस आधार पर नहीं किया जाता है। यदि किसी में वेदना (संवेदना) की ओर, बोध की ओर, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) की ओर, चेतना की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसकी गणना इन आधारों पर नहीं की जाती।

"हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।" "

अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाते हैं। हे भिक्षु, यदि किसी में रूप (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है) की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो, तो उसकी गणना इन आधारों पर नहीं की जाती। इसी प्रकार मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझना चाहिए।"

तब उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठकर, भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर प्रणाम किया और प्रस्थान किया।

फिर एकांत में रहकर, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, उस भिक्षु ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया। 48

---

36. एक निश्चित भिक्खु (2) (अन्नतारभिक्खु2 सं. अन्यंतर-भिक्षु)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग/नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धर्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रह सकूँ।"

"भिक्षु, यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय संस्कृत: अनुषय) हो, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है; यदि किसी का मूल्यांकन किसी चीज़ के अनुसार किया जाता है, तो उसकी गणना उसी के अनुसार की जाती है। यदि किसी में किसी चीज़ के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मूल्यांकन उस अनुसार नहीं किया जाता; यदि किसी का मूल्यांकन किसी चीज़ के अनुसार न किया जाए, तो उसकी गणना उस अनुसार नहीं की जाती।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

"हे पूज्यवर, यदि किसी में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) है, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है; यदि उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है, तो उसका आकलन उसी के अनुसार किया जाता है। यदि किसी में संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) है, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है; यदि उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार किया जाता है, तो उसका आकलन उसी के अनुसार किया जाता है। हे

पूज्यवर, यदि किसी में रूप के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) नहीं है, तो उसका मूल्यांकन उसी के अनुसार नहीं किया जाता है; यदि किसी का मापन इसके अनुसार नहीं किया जाता, तो उसका मूल्यांकन भी इसके अनुसार नहीं होता। यदि किसी में वेदना, बोध, संस्कार, चेतना आदि की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) न हो, तो उसका मापन इसके अनुसार नहीं होता; यदि किसी का मापन इसके अनुसार नहीं किया जाता, तो उसका मूल्यांकन भी इसके अनुसार नहीं होता।

"हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझता हूँ।"

"बहुत अच्छा, हे भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझते हैं। हे भिक्षु, यदि किसी में रूप की ओर अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) हो... (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है)... तो उसका मूल्यांकन इसके अनुसार नहीं होता। मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ इसी प्रकार समझना चाहिए।"

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ... और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

37. आनंद (1)
सावत्थी में। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। . . . भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा, जो एक तरफ बैठे थे:

"हे आनंद, यदि आपसे पूछा जाए: 'मित्र आनंद, वे कौन से धर्म (मार्ग, नियम) हैं जिनसे उत्पत्ति, पतन और यथार्थ में परिवर्तन देखा जा सकता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?" 50

“आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: ‘मित्रों, रूप में उद्भव, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जाता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, क्रिया और विज्ञान में उद्भव, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जाता है। मित्रों, ये वे धर्म हैं जिनमें उद्भव, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जाता है।’ आदरणीय महोदय, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।”

"अच्छा, अच्छा, आनंद! हे आनंद, रूप से उदय, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जा सकता है। वेदना, बोध, संस्कार और चेतना से उदय, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे आनंद, ये वे धर्म हैं जिनसे उदय, पतन और स्थिर स्वरूप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे आनंद, इस प्रकार पूछे जाने पर आपको इसी प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

38. आनंद (2)
सावत्थी में... भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय आनंद से कहा, जो एक तरफ बैठे थे:

"हे आनंद, यदि तुमसे पूछा जाए: 'मित्र आनंद, वे कौन से धर्म हैं जिनका उदय हुआ, पतन हुआ और स्थिर धर्म में परिवर्तन हुआ? वे कौन से धर्म हैं जिनका उदय होगा, पतन होगा और स्थिर धर्म में परिवर्तन होगा? वे कौन से धर्म हैं जिनका उदय हुआ है, पतन हुआ है और स्थिर धर्म में परिवर्तन हुआ है?' - हे आनंद, इस प्रकार पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे?"

आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: 'मित्रों, उस रूप के साथ जो बीत चुका है, समाप्त हो चुका है, परिवर्तित हो चुका है, एक उद्भव देखा गया, एक पतन देखा गया, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा गया। वेदना... संज्ञा... संभाव्य... क्रिया... विज्ञान... चेतना के साथ जो बीत चुका है, समाप्त हो चुका है, परिवर्तित हो चुका है, एक उद्भव देखा गया, एक पतन

देखा गया, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा गया। मित्रों, इन्हीं धर्मों के कारण उद्भव देखा गया, पतन देखा गया, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा गया।

'मित्रों, उस रूप के साथ जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है, प्रकट नहीं हुआ है, एक उद्भव देखा जाएगा, एक पतन देखा जाएगा, और जो स्थिर है उसमें एक परिवर्तन देखा जाएगा। वेदना... संभाव्यता... संस्कार (व्यवहार-आधारभूत)... ऐसी चेतना जो अजन्मी है, अव्यक्त है, उसमें उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे मित्रों, इन्हीं धर्मों से उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे मित्रों, जन्मी

, प्रकट हुई आकृति से उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। वेदना (संवेदना)... बोध... संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आधारभूत)... ऐसी चेतना जो जन्मी है, प्रकट हुई है, उसमें उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है। हे मित्रों, इन्हीं धर्मों से उदय, पतन और यथास्थाप में परिवर्तन देखा जा सकता है।

"हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।"

"बहुत खूब, आनंद!"

(बुद्ध यहां पूज्यवर आनंद के पूरे उत्तर को दोहराते हुए कहते हैं:

"हे आनंद, इस प्रकार पूछे जाने पर आपको इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

39. धम्म के अनुसार (1) (अनुधम्म1 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार अभ्यास करता है, तो धम्म के अनुसार यही उचित है: उसे रूप, वेदना, चेतना, संशय और विज्ञान के प्रति घृणा (निबिद्धा) में लीन रहना चाहिए। 52 जो रूप और चेतना के प्रति घृणा में लीन रहता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है। जो रूप और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना से मुक्त हो जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

---

40. धम्म के अनुसार (2) (अनुधम्म2 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार अभ्यास कर रहा होता है, तो धम्म के अनुसार यही उचित है: उसे रूप में अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यान लगाकर चिंतन करना चाहिए (जैसा कि ऊपर अनुच्छेद 39 में बताया गया है)... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

---

41. धम्म के अनुसार (3) (अनुधम्म3 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
... "उसे रूप में दुख पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए (अनुपसी) ... (जैसा कि ऊपर 39 में है)
... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

---

42. धम्म के अनुसार (4) (अनुधम्म4 सं. अनुकर्णीय-धर्म)
... "उसे स्वरूप में अनात्म पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) रहना चाहिए ... (जैसा कि ऊपर 39 में है)
... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

(v) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - द्वीप खंड के रूप में स्व (अट्टदीपावगो संस। आत्म-द्वीप-वर्ग)
43. अपने आप को द्वीप मानकर (अट्टादिपा संस्कृत: अत्म-द्वीप)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अपने आप को एक द्वीप (अत्त-दीप) मानकर, अपने आप को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, धर्म (मार्ग, नियम) को एक द्वीप मानकर, धर्म को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, निवास करो। 53 जब तुम अपने आप को एक द्वीप मानकर, अपने आप को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, धर्म को एक द्वीप मानकर, धर्म को ही शरण मानकर, किसी और शरण के बिना, निवास करते हो, तो मूल तत्व की ही इस प्रकार जांच करनी चाहिए: 54 'दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कहाँ से उत्पन्न होती हैं? वे कैसे उत्पन्न होती हैं?'

"और, भिक्षुओं, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कहाँ से उत्पन्न होती हैं? वे कैसे उत्पन्न होती हैं?" हे भिक्षुओं, यहाँ अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ पुरुषों का दर्शन नहीं करता और उनके धर्म में अकुशल एवं अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का दर्शन नहीं करता और उनके धर्म में अकुशल एवं अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा के समान, आत्मा को रूप धारण करने वाला, रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में देखता है। उसका वह रूप बदलता रहता है। रूप के इस परिवर्तन से उसमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

वह वेदना को आत्मा मानता है... अनुभूति को आत्मा मानता है... संस्कार को आत्मा मानता है... चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है (विन्नान), या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है। उसकी चेतना बदलती रहती है। चेतना के इस परिवर्तन से उसमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

परन्तु भिक्षुओं, जब कोई रूप की अनित्यता, उसके परिवर्तन, लुप्त होने और निरोध को समझ लेता है, और जब वह ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से देखता है कि वास्तव में क्या है: 'भूतकाल में भी और अब भी समस्त रूप अनित्य, दुखमय और परिवर्तनशील है,' तब दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का त्याग हो जाता है। इन भावों का त्याग करने से व्यक्ति विचलित नहीं होता। 55 अविचलित रहकर व्यक्ति सुखी रहता है। सुखी रहने वाले भिक्षु को इस मामले में शांत कहा जाता है। 56

"जब व्यक्ति संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (अनिच्छुक व्यवहार) ... चेतना की अनित्यता, उसके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति को समझ लेता है, और जब वह सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से ध्यान में (पासतो) देखता है कि वास्तव में क्या है: 'भूतकाल में और अब भी समस्त चेतना अनित्य, दुखमय और परिवर्तनशील है,' तब दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का त्याग हो जाता है। इन भावों का त्याग करने से व्यक्ति विचलित नहीं होता। अविचलित रहकर व्यक्ति सुखी रहता है। सुखी रहने वाले भिक्षु को इस मामले में शांत कहा जाता है।"

---

44. मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें शरीर-सन्दुत्व (सक्काया) की उत्पत्ति और उसके निवारण (निरोध) का मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और, भिक्षुओं, शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति... रूप को आत्मा मानता है... संवेदना (वेदना) को आत्मा मानता है... बोध (संज्ञा) को आत्मा मानता है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को आत्मा मानता है... चेतना (विज्ञान) को आत्मा मानता है... या आत्मा को चेतना में मानता है। भिक्षुओं, इसे ही शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का मार्ग कहते हैं। जब यह कहा जाता है, 'शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का मार्ग', तो यहाँ इसका अर्थ यह है: धर्मों (मार्ग, नियम) को देखने का वह तरीका जो दुख की उत्पत्ति की ओर ले जाता है।" 57

“हे भिक्षुओं, शरीर-सम्भाव के निवारण का मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप को आत्मा नहीं मानता... न ही वेदना को आत्मा मानता है... न ही बोध को आत्मा मानता है... न ही संस्कार को आत्मा मानता है... न ही चेतना को आत्मा मानता है... न ही चेतना में स्थित आत्मा को। हे भिक्षुओं, यही शरीर-सम्भाव के निवारण का मार्ग कहलाता है। जब यह कहा जाता है, 'शरीर-सम्भाव के निवारण का मार्ग', तो यहाँ इसका अर्थ यह है: धर्मों को देखने का वह तरीका जो दुखों के निवारण की ओर ले जाता है।”

---

45 अनित्य (1) (अनिच्चा1 सं. अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) इसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखता है, तो मन वैरागी हो जाता है और अनासक्ति के कारण विमुक्त हो जाता है। 58

"संवेदना क्षणभंगुर है... बोध क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है।" जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई ध्यान में (पासातो) इसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखता है, तो मन वैरागी हो जाता है और अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है।

"हे भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु का मन रूप तत्व (धातु) के प्रति वैरागी हो जाए, तो वह अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है। यदि उसका मन वेदना तत्व (संवेदना तत्व) के प्रति, बोध तत्व (बोध तत्व) के प्रति, संशय तत्व (आक्रामक व्यवहार) तत्व (संज्ञा) के प्रति, चेतना तत्व (चेतना तत्व) के प्रति वैरागी हो जाए, तो वह अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है।

मुक्त होने पर वह स्थिर हो जाता है; स्थिर होने पर वह संतुष्ट हो जाता है; संतुष्ट होने पर वह विचलित नहीं होता।" विचलित न होकर, वे स्वयं निर्वाण प्राप्त करते हैं। वे समझते हैं: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।' 59

---

46. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सास. अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है... वेदना क्षणभंगुर है... संज्ञा (संज्ञा) क्षणभंगुर है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) क्षणभंगुर हैं... चेतना (विज्ञान) क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार:
'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

जब कोई ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) इसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसके वास्तविक स्वरूप में देखता है, तो वह अतीत के बारे में कोई विचार नहीं रखता। जब वह अतीत के बारे में कोई विचार नहीं रखता, तो वह भविष्य के बारे में कोई विचार नहीं रखता। जब वह भविष्य के बारे में कोई विचार नहीं रखता, तो उसमें हठधर्मी आसक्ति नहीं रहती।" 60 जब व्यक्ति में आसक्ति और आसक्ति नहीं रहती, तो मन रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के प्रति उदासीन हो जाता है और अनासक्ति के कारण दोषों से मुक्त हो जाता है।

"मुक्त होने पर मन स्थिर हो जाता है; स्थिर होने पर संतुष्ट हो जाता है; संतुष्ट होने पर विचलित नहीं होता। विचलित न होने पर व्यक्ति स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और समय नहीं है।'"

---

47. चीजों के संबंध में तरीके (समनुपासना सं. सम्यक-अनुपश्यना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो विभिन्न प्रकार से किसी भी चीज़ को आत्मा मानते हैं, वे सभी आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) को, या उनमें से किसी एक को आत्मा मानते हैं। वे पाँच कौन से हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है।" वह वेदना (संवेदना) को आत्मा के रूप में, संज्ञा (संज्ञा) को आत्मा के रूप में, संखार (बाध्यकारी व्यवहार) को आत्मा के रूप में, विज्ञान (विन्नना) को आत्मा के रूप में, या चेतना से युक्त आत्मा के रूप में, या आत्मा को आत्मा में, या आत्मा को चेतना में मानता है।

इस प्रकार, चीजों को देखने का यह तरीका और 'मैं हूँ' की धारणा उनमें लुप्त नहीं हुई है। 61 चूंकि 'मैं हूँ' लुप्त नहीं हुआ है, इसलिए पांचों इंद्रियों का अवतरण होता है - आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। 62 हे भिक्षुओं, मन है, मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं, अज्ञान का तत्व (धातु) है। जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति अज्ञान से उत्पन्न किसी संवेदना (वेदना) से संपर्क करता है, तो उसे 'मैं हूँ' का अनुभव होता है; 'मैं यह हूँ' का अनुभव होता है; 'मैं रहूँगा' और 'मैं नहीं रहूँगा', 'मैं सजीव रहूँगा' और 'मैं निराकार रहूँगा', 'मैं बोधगम्य रहूँगा' और 'मैं अबोधगम्य रहूँगा' और 'मैं न तो बोधगम्य रहूँगा और न ही अबोधगम्य रहूँगा' - ये सभी उसे अनुभव होते हैं। 63

पांचों इंद्रियां वहीं बनी रहती हैं। भिक्षुओं के संदर्भ में, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य अज्ञान का त्याग करके सच्चे ज्ञान को जागृत करता है। अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय के साथ, उसे 'मैं हूँ', 'मैं यह हूँ', 'मैं रहूँगा' और 'मैं नहीं रहूँगा', 'मैं सजीव रहूँगा' और 'मैं निराकार रहूँगा', 'मैं बोधगम्य रहूँगा' और 'मैं बोधगम्य नहीं रहूँगा' और 'मैं न तो बोधगम्य रहूँगा' जैसे विचार नहीं आते।

---

48. समुच्चय (खंड सं. स्कंध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें पाँच स्कंधों और आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के बारे में सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध क्या हैं? चाहे किसी भी प्रकार का रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: इसे रूप स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की वेदना हो... इसे वेदना स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो... इसे अनुभूति स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार का संस्कार हो... इसे संस्कार स्कंध कहते हैं।" चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) चाहे किसी भी प्रकार की हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: इसे चेतना का समूह कहते हैं। भिक्षुओं, इन्हें पाँच समूह कहा जाता है।

भिक्षुओं, आसक्ति के अधीन पाँच स्कंध क्या हैं? चाहे किसी भी प्रकार का रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का... दूर हो या पास का, वह अशुद्ध है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन रूप स्कंध (उपदान संस्कृत: आसक्ति) कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) हो... वह अशुद्ध है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन संवेदना स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो... वह अशुद्ध है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन अनुभूति स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आदत) हों... जो अशुद्ध हैं, जिनसे आसक्ति हो सकती है: इन्हें आसक्ति के अधीन संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) स्कंध कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की चेतना हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या दूर। या निकट, जो दूषित है, जिससे आसक्ति हो सकती है: इसे आसक्ति के अधीन चेतना समूह कहा जाता है। भिक्षुओं, इन्हें आसक्ति के अधीन पाँच समूह कहा जाता है। 65

---

49. सोना (1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ पुत्र सोना भगवान (बुद्ध) के पास गए... तब भगवान (बुद्ध) ने गृहस्थ पुत्र सोना से कहा,

"सोना, जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण, रूप के आधार पर, जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है, स्वयं को इस प्रकार मानते हैं: 'मैं श्रेष्ठ हूँ,' या 'मैं समतुल्य हूँ,' या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते? 66

"जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण, संवेदना (वेदना) के आधार पर... बोध (संज्ञा) के आधार पर... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के आधार पर... चेतना (विज्ञान) के आधार पर - जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है - स्वयं को इस प्रकार मानते हैं: 'मैं श्रेष्ठ हूँ,' या 'मैं समतुल्य हूँ,' या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते?"

"सोना, जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण रूप के आधार पर - जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है - स्वयं को इस प्रकार नहीं मानते: 'मैं श्रेष्ठ हूँ,' या 'मैं समतुल्य हूँ,' [49] या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते?

"जब कोई तपस्वी और ब्राह्मण संवेदना (वेदना) के आधार पर ... बोध के आधार पर ... संस्कार (व्यवहार-आधार) के आधार पर ... चेतना के आधार पर - जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है - स्वयं को इस प्रकार नहीं मानते:
'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ,' या 'मैं हीन हूँ,' तो इसका कारण क्या है, सिवाय इसके कि वे चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं देखते?

"सोना, आपके विचार में, रूप स्थायी है या अनित्य?" - "अनंत, आदरणीय महोदय।" - "अनंत क्या है? दुख या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"क्या वेदना (संवेदना) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या बोध (धारणा) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना (व्यवहार-निर्धारण) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना स्थायी है या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय।" - "क्या जो क्षणभंगुर है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।" "

अत: सोना, चाहे उसका कोई भी रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट, सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ वैसे ही देखना चाहिए जैसे वे वास्तव में हैं, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा स्व नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की अनुभूति... किसी भी प्रकार का संस्कार... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट, समस्त चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर, ज्ञानी शिष्य सोना को रूप के प्रति घृणा, वेदना के प्रति घृणा, अनुभूति के प्रति घृणा, संस्कार के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

50. सोना (2)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ पुत्र सोना भगवान (बुद्ध) के पास गए... भगवान (बुद्ध) ने गृहस्थ पुत्र सोना से कहा,

"सोना, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका अंत (निरोध) और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (अनिच्छुक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (विज्ञान)), उसकी उत्पत्ति, उसका अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय योग्य व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर पाते। 67

"परन्तु, सोना, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो रूप, उसके अंत को समझते हैं, उत्पत्ति, समाप्ति और समाप्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग; जो वेदना, अनुभूति, संस्कार, चेतना, उत्पत्ति, समाप्ति और समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

51. आनंद का नाश (1)

सावत्थी में। भिक्षु (भिक्षु), ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) एक भिक्षु अनित्य रूप को देखता है जो वास्तव में अनित्य है: यही उसका सही दृष्टिकोण है। सही ढंग से देखने पर, वह घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। आनंद (नंदी/आनंद) के विनाश (खया/क्षय) के साथ काम (राग) का विनाश होता है; काम के विनाश के साथ आनंद का विनाश होता है। आनंद और काम के विनाश के साथ मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है और उसे पूर्णतः मुक्त कहा जाता है। 68

एक भिक्षु ध्यान में अनित्य संवेदना (वेदना) को देखता है जो वास्तव में अनित्य है ... धारणा (संज्ञा संस्कृत ...वेदना) को देखता है जो वास्तव में अनित्य है ... संशय (संज्ञा संस्कृत वेदना) को देखता है जो वास्तव में अनित्य है ... यही उसका सही दृष्टिकोण है .... साथ आनंद और कामवासना के नाश (खया/क्षय) से मन मुक्त हो जाता है और पूर्णतः मुक्त माना जाता है।

---

52. आनंद का नाश (2)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, शरीर के प्रति ध्यानमग्न रहो। शरीर की अनित्यता को पहचानो। जब कोई भिक्षु शरीर के प्रति ध्यानमग्न होता है और उसकी अनित्यता को पहचानता है, तो उसे शरीर के प्रति घृणा का अनुभव होता है। आनंद के नाश से राग का नाश होता है; और आनंद के नाश से आनंद का नाश होता है। आनंद और वासना के नाश से मन मुक्त हो जाता है और उसे पूर्णतः मुक्त कहा जाता है।

भिक्षुओं, वेदना के प्रति ध्यानमग्न रहो... बोध के प्रति... संशय के प्रति... चेतना के प्रति... आनंद और कामवासना का विनाश होने पर मन मुक्त हो जाता है और उसे पूर्णतः मुक्त कहा जाता है।

(i) प्रभाग 2, मध्य पचास - अनुबंध अनुभाग (उपायवग्गो)
53. सगाई (उपाय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जो व्यस्त है वह अमुक्त है; 69 जो विरक्त है वह मुक्त है (विमुक्त)। हे भिक्षुओं, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), खड़े होकर रूप में व्यस्त रह सकती है; रूप पर आधारित, रूप पर स्थापित, आनंद के एक अंश के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है। या चेतना, खड़े होकर [संवेदना (वेदना) में व्यस्त ... अनुभूति (संज्ञा) में व्यस्त ...] संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) में व्यस्त रह सकती है; संस्कार (व्यवहार-आदत) पर आधारित, संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) पर स्थापित, आनंद के एक अंश के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है। 70

"भिक्षुओं, यद्यपि कोई कहे: 'रूप से अलग, संवेदना (वेदना) से अलग, अनुभूति से अलग, संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के कारण, मैं चेतना के आने-जाने, उसके क्षय और पुनर्जन्म, उसके विकास, वृद्धि और विस्तार का ज्ञान कराऊँगा' - यह असंभव है।

"भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने धातु (रूप तत्व) के लिए राग (काम) का त्याग कर दिया है, तो काम (काम) के त्याग से आधार कट जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता। 71 यदि उसने वेदना (संवेदना) तत्व के लिए काम (काम) का त्याग कर दिया है... बोध तत्व के लिए... संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आधारभूतता) तत्व के लिए... चेतना तत्व के लिए, तो काम (काम) के त्याग से आधार कट जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता।

"जब वह चेतना स्थापित नहीं होती, विकास नहीं करती, अउत्पादक होती है, तो वह मुक्त हो जाती है। 72 मुक्त होने पर वह स्थिर हो जाती है; स्थिर होने पर वह संतुष्ट हो जाती है; संतुष्ट होने पर वह विचलित नहीं होती। अविचलित होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेती है। वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

54. बीज (बीजा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार के बीज हैं। कौन से पाँच? जड़ वाले बीज, तने वाले बीज, जोड़ वाले बीज, कलम वाले बीज और पाँचवाँ अंकुरित बीज। 73 यदि ये पाँच प्रकार के बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, वायु और सूर्य से अप्रभावित, उपजाऊ और सुरक्षित रूप से बोए गए हों, लेकिन मिट्टी या जल न हो, तो क्या ये पाँच प्रकार के बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"यदि ये पाँच प्रकार के बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, वायु और सूर्य से क्षतिग्रस्त, अनुत्पादक और सुरक्षित रूप से बोए न गए हों, लेकिन मिट्टी और जल हो, तो क्या ये पाँच प्रकार के बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"यदि ये पाँच प्रकार के बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, वायु और सूर्य से अक्षुण्ण, उपजाऊ, सुरक्षित रूप से बोए गए हों और मिट्टी और जल हो, तो क्या ये पाँच प्रकार के बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"हाँ, पूज्यवर।"

भिक्षुओं, चेतना की चारों अवस्थाओं को पृथ्वी तत्व (धातु) के समान समझना चाहिए। आनंद (नंदी/आनंद) और राग (काम) को जल तत्व के समान समझना चाहिए। चेतना और उसके पोषक तत्वों को पाँच प्रकार के बीजों के समान समझना चाहिए। 74

"भिक्षुओं, खड़े होकर चेतना को रूप में लीन रहना चाहिए; रूप पर आधारित, रूप पर स्थापित, आनंद (नंदी/आनंद) के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है। या खड़े होकर चेतना को वेदना (संवेदना) में लीन रहना चाहिए... अनुभूति (संज्ञा) में लीन रहना चाहिए... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) में लीन रहना चाहिए; संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) पर आधारित, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) पर स्थापित, आनंद (अनुभव) के साथ, यह वृद्धि, विकास और विस्तार की ओर अग्रसर हो सकती है।"

भिक्षुओं, भले ही कोई कहे: 'रूप से अलग, वेदना से अलग, बोध से अलग, संस्कार से अलग, मैं चेतना के आने-जाने, उसके क्षय और पुनर्जन्म, उसके विकास, वृद्धि और विस्तार को प्रकट करूँगा' - यह असंभव है।

भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु ने रूप तत्व के प्रति कामवासना का त्याग कर दिया है, तो कामवासना के त्याग से ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई आधार नहीं रह जाता। यदि उसने वेदना तत्व के प्रति कामवासना का त्याग कर दिया है... बोध तत्व के प्रति... संस्कार तत्व के प्रति... चेतना तत्व के प्रति, तो कामवासना के त्याग से ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई आधार नहीं रह जाता।

जब वह चेतना अस्थिर होती है, विकास नहीं करती, सृजनहीन होती है, तब वह मुक्त होकर ही मुक्त होती है, स्थिर होती है; स्थिर होकर वह संतुष्ट होती है; संतुष्ट होकर वह विचलित नहीं होती। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करती है। वह समझती है:
"पुनर्जन्म का नाश हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

55. प्रेरित उच्चारण (उदना)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह प्रेरणाप्रद वचन दिया:
"ऐसा न भी हो, और न ही मेरे लिए हो; ऐसा नहीं होगा, और न ही मेरे लिए होगा" [56] इस प्रकार संकल्प करके, एक भिक्षु निम्न बंधनों को काट सकता है। 75

जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"परन्तु हे पूज्यवर, एक भिक्षु, इस प्रकार संकल्प करके: 'ऐसा न भी हो, और न ही मेरे लिए हो; ऐसा नहीं होगा, और न ही मेरे लिए होगा,' निम्न बंधनों को कैसे काट सकता है?"

"हे भिक्षु, अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ जनों का द्रष्टा नहीं है... वह रूप को आत्मा मानता है... या आत्मा को चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के रूप में देखता है।

वह वास्तव में अनित्य रूप को 'अनित्य रूप' के रूप में, अनित्य संवेदना (वेदना) को 'अनित्य संवेदना (वेदना)' के रूप में, अनित्य बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) को 'अनित्य बोध' के रूप में... अनित्य संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को 'अनित्य संस्कार (व्यवहार)' के रूप में... अनित्य चेतना को 'अनित्य चेतना' के रूप में नहीं समझता।"

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह पीड़ादायक रूप है, 'पीड़ादायक रूप'... पीड़ादायक संवेदना (वेदना) 'पीड़ादायक अनुभूति'... पीड़ादायक बोध 'पीड़ादायक बोध'... पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... पीड़ादायक चेतना 'पीड़ादायक चेतना'।

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह निस्वार्थ रूप है, 'निस्वार्थ रूप'... निस्वार्थ संवेदना (वेदना) 'निस्वार्थ संवेदना (वेदना)'... निस्वार्थ बोध 'निस्वार्थ बोध'... निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... निस्वार्थ चेतना 'निस्वार्थ चेतना'।

वह वास्तव में यह नहीं समझता कि संबद्ध रूप को 'संबद्ध रूप' के रूप में समझना चाहिए... वेदना को 'संबद्ध संवेदना' के रूप में समझना चाहिए... संबद्ध धारणा को 'संबद्ध धारणा' के रूप में समझना चाहिए... संबद्ध संस्कार को 'संबद्ध संस्कार' के रूप में समझना चाहिए... संबद्ध चेतना को 'संबद्ध चेतना' के रूप में समझना चाहिए।

वह वास्तव में यह नहीं समझता कि: 'रूप का नाश होगा'... 'वेदना का नाश होगा'... 'धारणा का नाश होगा'... 'संस्कार का नाश होगा'... 'चेतना का नाश होगा'। 76

"ज्ञान प्राप्त श्रेष्ठ शिष्य, भिक्षु (भिक्षु), जो श्रेष्ठों का द्रष्टा है... वह रूप को आत्मा नहीं मानता... न ही चेतना में विद्यमान आत्मा (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) मानता है।

वह अनित्य रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में 'अनित्य रूप' के रूप में समझता है..." क्षणभंगुर चेतना को 'क्षणभंगुर चेतना' के रूप में।

"वह वास्तव में पीड़ादायक रूप को 'पीड़ादायक रूप' के रूप में समझता है... पीड़ादायक चेतना को 'पीड़ादायक चेतना' के रूप में।"

वह निस्वार्थ रूप को 'निस्वार्थ रूप' के रूप में समझता है... निस्वार्थ चेतना को 'निस्वार्थ चेतना' के रूप में

समझता है। वह संबद्ध रूप को 'संबद्ध रूप' के रूप में समझता है... संबद्ध चेतना को 'संबद्ध चेतना' के रूप में समझता है।

वह समझता है: 'रूप का नाश होगा'...
'संवेदना का नाश होगा'... 'बोध का नाश होगा'
... 'संज्ञा का नाश होगा'... 'व्यवहार का नाश होगा'...
'चेतना का नाश होगा'।

रूप, वेदना, बोध, संभाव और चेतना के नाश होने पर, वह भिक्षु यह संकल्प लेता है:
'ऐसा न भी हो, और ऐसा न भी हो, तो भी मेरे लिए नहीं होगा; "ऐसा नहीं होगा, और ऐसा मेरे लिए नहीं होगा," यह संकल्प निम्न बंधनों को काट सकता है। 77

"हे पूज्यवर, इस प्रकार संकल्प करके एक भिक्षु निम्न बंधनों को काट सकता है। परन्तु किसी को कैसे पता चलेगा, कैसे देखेगा कि दोषों का तत्काल नाश (खयाल/क्षय) हो जाए?" 78 "

हे भिक्षु, यहाँ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति एक साधारण सी बात पर भयभीत हो जाता है। क्योंकि अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए यह बात भयभीत करने वाली है: 'ऐसा नहीं भी हो सकता है, और ऐसा मेरे लिए भी नहीं हो सकता है; ऐसा नहीं होगा, और ऐसा मेरे लिए नहीं होगा।' परन्तु ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य एक साधारण सी बात पर भयभीत नहीं होता। क्योंकि श्रेष्ठ शिष्य के लिए यह बात भयभीत करने वाली नहीं है: 'ऐसा नहीं भी हो सकता है, और ऐसा मेरे लिए भी नहीं हो सकता है; ऐसा नहीं होगा, और ऐसा मेरे लिए नहीं होगा।'" 79 [58]

"हे भिक्षु, चेतना खड़े-खड़े रूप में लीन हो सकती है... वेदना में लीन हो सकती है... बोध में लीन हो सकती है... संस्कार में लीन हो सकती है; संस्कार पर आधारित, संस्कार पर स्थापित, नंदी आनंद के साथ, यह वृद्धि, विस्तार और विकास की ओर अग्रसर हो सकती है।

"भिक्षु, यद्यपि कोई कहे: 'रूप से अलग, वेदना से अलग, बोध से अलग, संस्कार से अलग, मैं चेतना के आने-जाने, उसके क्षय और पुनर्जन्म, उसकी वृद्धि, विस्तार और विकास का वर्णन करूँगा' - यह असंभव है।

"भिक्षु, यदि किसी भिक्षु ने धातु के लिए राग (काम) का त्याग कर दिया है, तो काम के त्याग के साथ ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता। यदि उसने वेदना (संवेदना) के लिए, बोध (बोध) के लिए, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के लिए, चेतना (चेतना) के लिए काम का त्याग कर दिया है, तो काम के त्याग के साथ ही आधार नष्ट हो जाता है: चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं रहता।"

जब वह चेतना अस्थिर होती है, विकास नहीं करती, सृजनहीन होती है, तब वह मुक्त हो जाती है (विमुक्त संस्कृत)। मुक्त होने पर वह स्थिर हो जाती है; स्थिर होने पर वह संतुष्ट हो जाती है; संतुष्ट होने पर वह विचलित नहीं होती। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेती है। वह समझ जाती है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

हे भिक्षु, जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, विपश्यना ध्यान में), उसके लिए विकारों का तत्काल नाश (क्षय) हो जाता है।

---

56. क्लिंगिंग एग्रीगेट्स के चरण (उपदानपरिपवत्ता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध) हैं जो आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध, आसक्ति के अधीन संवेदना स्कंध, आसक्ति के अधीन अनुभूति स्कंध, आसक्ति के अधीन संस्कार स्कंध, आसक्ति के अधीन क्रिया स्कंध, और आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध।

जब तक मुझे चार अवस्थाओं में आसक्ति के अधीन इन पाँच स्कंधों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का वास्तविक स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव (देवदूत), मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया।" लेकिन जब मैंने इन सब बातों को उनके वास्तविक स्वरूप में प्रत्यक्ष रूप से जान लिया, तब मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

"और हे भिक्षुओं, चार अवस्थाएँ कैसे हैं? मैंने रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना। मैंने वेदना, बोध, संस्कार, चेतना, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना।

"और हे भिक्षुओं, रूप क्या है? चार महाधातु और उनसे उत्पन्न रूप: यही रूप कहलाता है। पोषण की उत्पत्ति के साथ रूप की उत्पत्ति होती है। पोषण के निरोध के साथ रूप का निरोध होता है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग रूप के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। 81

“जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार रूप, उसके उद्‌गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जानकर, रूप के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और उसके अंत के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे उत्तम अभ्यास कर रहे हैं। जो उत्तम अभ्यास कर रहे हैं, उन्होंने इस धर्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में आधार प्राप्त कर लिया है। 82

“और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार रूप, उसके उद्‌गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जानकर, रूप के प्रति घृणा (निब्बिद) के माध्यम से, उसके लुप्त होने और उसके अंत के माध्यम से, अनासक्ति (विमुक्ति) द्वारा मुक्त हो जाते हैं, वे उत्तम रूप से मुक्त हो जाते हैं। जो पूर्णतः मुक्त हैं, वे सिद्ध पुरुष हैं। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है। 83

भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) से उत्पन्न वेदना, कान संपर्क से उत्पन्न वेदना, नाक संपर्क से उत्पन्न वेदना, जीभ संपर्क से उत्पन्न वेदना, शरीर संपर्क से उत्पन्न वेदना और मन संपर्क से उत्पन्न वेदना। इसे ही वेदना कहते हैं। संपर्क उत्पन्न होने पर वेदना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था। इस प्रकार

प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इसे समझ पाते हैं, वे इसे समझ पाते हैं। वेदना (संवेदना), उसका उद्‌गम, उसका निवारण और निवारण के मार्ग का ज्ञान रखने वाले वे लोग जो वेदना के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और निवारण के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे उत्तम अभ्यास कर रहे हैं। जो लोग उत्तम अभ्यास कर रहे हैं

, उन्होंने इस धम्म और अनुशासन में दृढ़ता प्राप्त कर ली है। "और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से वेदना (संवेदना) और उसके निवारण के मार्ग को जान लेते हैं... उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करना असंभव है।

" "और हे भिक्षुओं, अनुभूति (संज्ञा) क्या है? अनुभूति के ये छह प्रकार हैं: रूपों की अनुभूति, ध्वनियों की अनुभूति, गंधों की अनुभूति, स्वादों की अनुभूति, स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति। इसे अनुभूति कहते हैं। संपर्क उत्पन्न होने पर अनुभूति उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर अनुभूति समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग अनुभूति के निवारण का मार्ग है।" अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)।

"जो भी तपस्वी और ब्राह्मण... उन पूर्ण पुरुषों के लिए, उनका वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।"

भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या हैं? संस्कार-आधार के ये छह वर्ग हैं: रूप संबंधी संस्कार, ध्वनि संबंधी संस्कार, गंध संबंधी संस्कार, स्वाद संबंधी संस्कार, स्पर्शनीय वस्तुओं संबंधी संस्कार और मानसिक घटनाओं (धम्म) संबंधी संस्कार। इन्हें संस्कार (व्यवहार-आधार) कहा जाता है। स्पर्श (फस/स्पर्श) के उत्पन्न होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं। स्पर्श के समाप्त होने से

संस्कार (व्यवहार-आधार) समाप्त हो जाते हैं। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (व्यवहार-आधार) के निवारण का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था।

जो भी तपस्वी और ब्राह्मण... उन पूर्ण साधकों के लिए एक प्रकार का व्यक्ति, जिसका वर्णन करने के लिए कोई सटीक पैमाना नहीं है।

"और हे भिक्षुओं, सांसारिक चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। इसे चेतना कहते हैं। मन और शरीर के उत्पन्न होने पर चेतना उत्पन्न होती है। मन और शरीर के समाप्त होने पर चेतना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग चेतना के समाप्त होने का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था।86

"जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार सांसारिक चेतना, उसके उद्‌भव, उसके समाप्त होने और उसके समाप्त होने के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जानकर, चेतना के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे अच्छा अभ्यास कर रहे हैं।" जो लोग अच्छी तरह अभ्यास कर रहे हैं, उन्होंने इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन में अपनी पकड़ मजबूत कर ली है।

"और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से (सांसारिक) चेतना, उसके उद्‌गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को जान लेते हैं, चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और अंत के माध्यम से, अनासक्ति द्वारा मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। जो पूर्णतः मुक्त (विमुक्त) हो जाते हैं, वे सिद्ध पुरुष (केवलिनो) होते हैं। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।"

नोट: जब समाधि अवस्थाओं में आनंदमय दिव्य चेतना का अनुभव होता है (प्रारंभ में मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में, बाद में सार्वभौमिक रूप से), तो सांसारिक चेतना, संशय (अनिवार्य व्यवहार), बोध (संज्ञा) और संवेदना (वेदना) का अंत (निरोध) हो जाता है, साथ ही रूप पर ध्यान भी नहीं रहता।

---

57. सात मामले (सत्तत्थाना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, इस धर्म और अनुशासन में, सात मामलों में निपुण और त्रिविध अन्वेषक भिक्षु को पूर्ण (केवली) कहा जाता है, वह जिसने पूर्णतः ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया है, सर्वोच्च प्रकार का व्यक्ति है। 87

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु सात मामलों में कैसे निपुण होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है; वह रूप के मामले में सांसारिक भोग, खतरे और उससे बचने के तरीके को समझता है।"

वह वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय, चेतना, विज्ञान, इसके उद्‌गम, इसके अंत और इसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है। वह सांसारिक सुख, खतरे और चेतना से मुक्ति को समझता है।

भिक्षुओं, रूप क्या है? चार महा तत्व और उनसे उत्पन्न रूप ही रूप कहलाता है। पोषण की उत्पत्ति से रूप की उत्पत्ति होती है। पोषण के समाप्त होने से रूप समाप्त हो जाता है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग रूप के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)।

रूप पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और सोमनस्सा, यही रूप में सांसारिक सुख है। रूप क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, यही रूप में भय है। रूप के प्रति इच्छा और राग का त्याग करना ही रूप से मुक्ति है।

जो भी तपस्वी और ब्राह्मण रूप, उसके उद्‌भव, उसके अंत और उसके अंत के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और रूप से संबंधित सांसारिक सुख, भय और उससे मुक्ति के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और रूप के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और उसके अंत के लिए साधना करते हैं, वे अच्छी साधना कर रहे हैं। जो अच्छी साधना कर रहे हैं, उन्होंने इस धम्म और अनुशासन में स्थान प्राप्त कर लिया है।

और जो तपस्वी और ब्राह्मण रूप, उसके उद्भव, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और सांसारिक सुख, खतरे और रूप से विरक्ति, उसके लुप्त होने और अंत के द्वारा उससे बचने के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, वे अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाते हैं (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त), वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। पूर्णतः मुक्त लोग सिद्ध पुरुष होते हैं (केवलिनो)। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं हैं।

भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना के छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क से उत्पन्न वेदना (जैसा कि पिछले सूत्र में बताया गया है) ... मन संपर्क से उत्पन्न वेदना। इसे वेदना कहते हैं। संपर्क उत्पन्न होने पर वेदना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि ... सही समाधि अवस्था। वेदना

पर निर्भर सुख और आनंद उत्पन्न होना वेदना में सांसारिक सुख है। वह वेदना क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वेदना में खतरा है। वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही वेदना से मुक्ति है।

जो भी तपस्वी और ब्राह्मण वेदना, उसके उद्गम, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान चुके हों, सांसारिक भोग, उसके खतरे और उससे मुक्ति के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान चुके हों, और वेदना के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके निवारण और निवारण के लिए साधना कर रहे हों, वे उत्तम साधना कर रहे हैं। जो उत्तम साधना कर रहे हैं, उन्होंने इस धर्म और अनुशासन में स्थान प्राप्त कर लिया है।

और जो भी तपस्वी और ब्राह्मण वेदना और उससे मुक्ति के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान चुके हों, वे सिद्ध पुरुष हैं, उनका वर्णन करना संभव नहीं है।

भिक्षुओं, यह अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) क्या है? अनुभूति के ये छह प्रकार हैं: रूपों की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति। इसे अनुभूति कहते हैं। स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के उत्पन्न होने पर अनुभूति उत्पन्न होती है। स्पर्श के समाप्त होने पर अनुभूति समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग अनुभूति के समाप्त होने का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था।

अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) पर निर्भर सुख और आनंद (सोमनस्स) उत्पन्न होते हैं: यही अनुभूति में सांसारिक सुख है। वह अनुभूति अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही अनुभूति में खतरा है। अनुभूति के लिए इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग और निवारण: यही अनुभूति से मुक्ति है।

"जो भी तपस्वी और ब्राह्मण हों... उन पूर्ण पुरुषों का वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।"

भिक्षुओं, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) क्या हैं? ये छह प्रकार के संस्कार हैं: रूप संबंधी संस्कार... मानसिक घटनाओं (धम्म) संबंधी संस्कार। इसे संस्कार कहते हैं। स्पर्श उत्पन्न होने पर संस्कार उत्पन्न होते हैं। स्पर्श समाप्त होने पर संस्कार समाप्त हो जाते हैं। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था।

संस्कार पर निर्भर सुख और आनंद, यही संस्कार में निहित सांसारिक सुख है। संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील होते हैं: यही संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का खतरा है। संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधारभूतता) से मुक्ति है।

"जो भी तपस्वी और ब्राह्मण... उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए शब्द कम पड़ जाते हैं।

" "और हे भिक्षुओं, चेतना क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र-चेतना... मन-चेतना। इसे चेतना कहते हैं। मन और शरीर (नामरूप) के उत्पन्न होने पर चेतना उत्पन्न होती है। मन और शरीर (नामरूप) के समाप्त होने पर चेतना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग चेतना के समाप्त होने का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टिकोण..." सही समाधि अवस्था।

"चेतना पर निर्भर रहने से उत्पन्न होने वाला सुख और सोमनस: यही चेतना में सांसारिक सुख है। चेतना क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है: यही चेतना में खतरा है। चेतना के प्रति इच्छा और राग का त्याग और निवारण: यही चेतना से मुक्ति है।

" जो भी तपस्वी और ब्राह्मण चेतना, उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, चेतना के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और उससे मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और चेतना के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और अंत के लिए अभ्यास करते हैं, वे अच्छा अभ्यास कर रहे हैं। जो लोग अच्छा अभ्यास कर रहे हैं, उन्होंने इस धर्म और अनुशासन में आधार प्राप्त कर लिया है।

और जो तपस्वी और ब्राह्मण चेतना, उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, और चेतना के सांसारिक सुख (असदो संस्कृतः असवाद), खतरे और चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और अंत (निरोध) के द्वारा उससे बचने के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, वे अनासक्ति के द्वारा मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाते हैं, वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। जो पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं, वे सिद्ध पुरुष होते हैं। उन सिद्ध पुरुषों का वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं हैं। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु सात विधाओं में निपुण होता है।

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु त्रिविध अन्वेषक कैसे होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु तत्वों के माध्यम से, इंद्रियों के माध्यम से और प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) के माध्यम से अन्वेष करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु त्रिविध अन्वेषक होता है। 88

"हे भिक्षुओं, जो भिक्षु इन सातों मामलों में निपुण हो और त्रिविध अन्वेषक हो, इस धम्म और अनुशासन में उसे पूर्ण पुरुष, पूर्ण रूप से पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वाला, सर्वोच्च प्रकार का व्यक्ति कहा जाता है।"

---

58. पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (सम्म-सम-बुद्ध सं. सम्यक-सम-बुद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति, जो रूप के प्रति घृणा (निबिद्ध) के माध्यम से अनासक्ति द्वारा, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के द्वारा मुक्त (विमुक्त संस्कृत विमुक्त) होते हैं, उन्हें पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्त भिक्षु, जो रूप के प्रति घृणा (असक्ति) के माध्यम से अनासक्ति द्वारा, उसके लुप्त होने और निरोध के द्वारा मुक्त होते हैं, उन्हें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्त कहा जाता है। 89

"तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति, जो संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संखार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... के प्रति घृणा के माध्यम से अनासक्ति द्वारा मुक्त होते हैं..." चेतना (विन्नान, संस्कृतः विज्ञान), अपने लुप्त होने और समाप्त होने के कारण, पूर्णतः प्रबुद्ध कहलाती है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु, जो संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना के प्रति घृणा के माध्यम से आसक्ति से मुक्त होता है, अपने लुप्त होने और समाप्त होने के कारण, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु कहलाता है।

"तो, भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु (विमुत्त, संस्कृत: विमुक्त) के बीच क्या अंतर है, क्या भिन्नता है, क्या भेद है?"

"आदरणीय गुरुदेव, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय गुरुदेव," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, उस मार्ग के प्रवर्तक हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के निर्माता हैं जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, उस मार्ग के उद्घोषक हैं जो पहले कभी घोषित नहीं किया गया। वे मार्ग के ज्ञाता हैं, मार्ग के खोजकर्ता हैं, मार्ग में निपुण हैं। और उनके शिष्य अब उस मार्ग का अनुसरण करते हुए निवास करते हैं और बाद में उस मार्ग के स्वामी बन जाते हैं।

हे भिक्षुओं, यही तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्त भिक्षु के बीच का भेद, अंतर और भिन्नता है।"

---

59. अनात्मा का लक्षण (अनत्तलक्खन सं. अनात्म-लक्षण)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। 90 वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पाँच भिक्षुओं के समूह को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, रूप अनात्म है। क्योंकि यदि, भिक्षुओं, रूप आत्मा होता, तो यह रूप कष्ट का कारण नहीं बनता, और यह संभव होता कि इसे रूप से धारण किया जाए: 'मेरा रूप ऐसा हो; मेरा रूप ऐसा न हो।'

परन्तु क्योंकि रूप अनात्म है, रूप कष्ट का कारण बनता है, और इसे रूप से धारण करना संभव नहीं है: 'मेरा रूप ऐसा हो; मेरा रूप ऐसा न हो।' 91

"संवेदना अनात्म है। . . . ." अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) अनात्म है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) अनात्म हैं... चेतना (विज्ञान संस्कृत: विज्ञान) अनात्म है। क्योंकि यदि, भिक्षुओं, चेतना आत्मा होती, तो यह चेतना कष्ट का कारण नहीं बनती, और चेतना से यह संभव होता: 'मेरी चेतना ऐसी हो; मेरी चेतना ऐसी न हो।' परन्तु क्योंकि चेतना अनात्म है, चेतना कष्ट का कारण बनती है, और चेतना से यह संभव नहीं है:
'मेरी चेतना ऐसी हो; मेरी चेतना ऐसी न हो।'

"भिक्षुओं, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" - "अस्थायी क्या है, दुख या सुख?" - "दुख, पूज्यवर।" - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या वेदना (संवेदना) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या बोध (धारणा) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना (व्यवहार-आदतनता) स्थायी है या क्षणभंगुर?... क्या चेतना स्थायी है या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" - "क्या जो क्षणभंगुर है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

इसलिए, भिक्षुओं, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट, सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से वैसे ही देखना चाहिए जैसे वे वास्तव में हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की धारणा... किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या पास, समस्त चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ वैसे ही देखा जाना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, यह देखकर कि दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए। और जब यह प्रवचन दिया जा रहा था, तब पाँचों भिक्षुओं के समूह के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

---

60. महाली
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवी महाली भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर, पुराण कस्सप कहते हैं: 'प्राणियों के अशुद्ध होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के अशुद्ध होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के शुद्ध होते हैं।' इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?" 92

"हे महाली, प्राणियों के अशुद्ध होने का कारण है; प्राणी कारण सहित अशुद्ध होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कारण है; प्राणी कारण सहित शुद्ध होते हैं।"

"परन्तु, हे पूज्यवर, प्राणियों के अशुद्ध होने का कारण क्या है? प्राणी कारण सहित अशुद्ध कैसे होते हैं?"

"हे महाली, यदि यह रूप केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही समाया रहता, और आनंद में भी न डूबा रहता, तो प्राणी इससे मोहित न होते। परन्तु क्योंकि यह रूप सुखमय है, आनंद में डूबा रहता है, आनंद में ही समाया रहता है, और केवल दुख में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं। 93 इससे मोहित होकर वे इसके वश में हो जाते हैं, और इसके वश में होने से वे अपवित्र हो जाते हैं। हे महाली, यही प्राणियों के अपवित्र होने का कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण से अपवित्र होते हैं।

"हे महाली, यदि यह वेदना केवल दुखमय होती... यदि यह अनुभूति... ये संस्कार... यह चेतना केवल दुखमय होती... तो प्राणी इससे मोहित न होते। परन्तु क्योंकि चेतना सुखमय है... इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।" इसके प्रति आसक्त होकर वे इसके वश में हो जाते हैं, और इसके वश में होकर वे अपवित्र हो जाते हैं। हे महाली, यही प्राणियों के अपवित्र होने का कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण सहित अपवित्र होते हैं। "

परन्तु, पूज्यवर, प्राणियों के शुद्धिकरण का कारण क्या है? प्राणी कारण सहित कैसे शुद्ध होते हैं?"

"हे महाली, यदि यह रूप केवल सुखमय होता, सुख में डूबा रहता, और दुख में न डूबा होता, तो प्राणियों को इसके प्रति घृणा (निबिद्दा) का अनुभव नहीं होता। परन्तु क्योंकि यह रूप दुखमय है, दुख में डूबा रहता है, दुख में डूबा रहता है, और केवल सुख में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इसके प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करके वे वैराग्य प्राप्त करते हैं, और वैराग्य के द्वारा वे शुद्ध होते हैं। हे महाली, यही प्राणियों के शुद्धिकरण का कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण सहित शुद्ध होते हैं।

"हे महाली, यदि यह वेदना (संवेदना) केवल सुखदायक होती... यदि यह अनुभूति... ये संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... यह चेतना केवल सुखदायक होती... तो प्राणियों को इसके प्रति घृणा का अनुभव नहीं होता। परन्तु क्योंकि चेतना दुखदायी है... प्राणियों को इसके प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करके वे वैराग्यवान हो जाते हैं, और वैराग्य के द्वारा वे शुद्ध हो जाते हैं। [71] हे महाली, यह भी प्राणियों के शुद्धिकरण का एक कारण है; इसी प्रकार प्राणी कारण सहित शुद्ध होते हैं।"

---

61. जलना (आदित्ता सान. आदित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप जल रहा है, वेदना जल रही है, चेतना जल रही है, संस्कार जल रहे हैं, चेतना जल रही है। 94 इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित शिष्य को रूप के प्रति घृणा, वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा, संस्कार के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

62. भाषा के मार्ग (निरुत्तिपथ)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, भाषा के ये तीन मार्ग हैं, पदनाम के मार्ग हैं, वर्णन के मार्ग हैं, जो अमिश्रित हैं, जो कभी मिश्रित नहीं हुए, जो मिश्रित नहीं हो रहे हैं, जो मिश्रित नहीं होंगे, जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा अस्वीकार नहीं किया जाता है। वे तीन क्या हैं?

"भिक्षुओं, जो भी रूप बीत गया हो, समाप्त हो गया हो, परिवर्तित हो गया हो: उस पर 'था' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'होगा'।

"जो भी संवेदना (वेदना)... जो भी बोध (संज्ञा)... जो भी संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... जो भी चेतना (विज्ञान) बीत गई हो, समाप्त हो गई हो, परिवर्तित हो गई हो: उस पर 'था' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'होगा'।"

भिक्षुओं, जो भी रूप अभी तक जन्म नहीं ले पाया है, जो प्रकट नहीं हुआ है, उसके लिए 'होगा' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'था'।

जो भी संवेदना (वेदना) ... जो भी बोध ... जो भी संस्कार (व्यवहार-आधारभूत) ... जो भी चेतना अभी तक जन्म नहीं ले पाई है, जो प्रकट नहीं हुई है, उसके लिए 'होगा' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'है' या 'था'।

भिक्षुओं, जो भी रूप जन्म ले चुका है, जो प्रकट हो चुका है, उसके लिए 'है' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'था' या 'होगा'।

जो भी संवेदना (वेदना)... जो भी बोध... जो भी संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... जो भी चेतना उत्पन्न हुई है, प्रकट हुई है: उस पर 'है' शब्द, नाम और वर्णन लागू होता है, न कि 'था' या 'होगा'।

हे भिक्षुओं, ये भाषा के तीन मार्ग, नामकरण के मार्ग और वर्णन के मार्ग हैं, जो अमिश्रित हैं, जो कभी मिश्रित नहीं हुए, जो मिश्रित नहीं हो रहे हैं, जो मिश्रित नहीं होंगे, जिन्हें बुद्धिमान तपस्वियों और ब्राह्मणों ने अस्वीकार नहीं किया है।

हे भिक्षुओं, यहाँ तक कि उक्कला के वस्सा और बन्ना, जो अकारणता, कर्म की निरर्थकता और शून्यवाद के समर्थक थे, ने भी यह नहीं सोचा कि भाषा के इन तीन मार्गों, नामकरण के मार्गों और वर्णन के मार्गों की आलोचना या निंदा की जानी चाहिए।

इसका क्या कारण है? क्योंकि वे निंदा, आक्रमण और आलोचना से डरते हैं।

(ii) प्रभाग 2, मध्य पचास - अरिहंत खंड (अरिहंतवग्गो सं. अरिहंत-वर्ग)
63. आसक्ति में (उपाद्यमान)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत में, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ निवास कर सकूँ।" "

भिक्षु, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) से मनुष्य शैतान से बंध जाता है; आसक्ति न रखने से मनुष्य दुष्ट से मुक्त हो जाता है।" 97 [74]

"समझ गए, भगवान (बुद्ध)! समझ गए, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ किस प्रकार समझा?"

"हे पूज्यवर, रूप से आसक्ति रखने से मनुष्य मार से बंध जाता है; उससे आसक्ति न रखने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय और चेतना से आसक्ति रखने से मनुष्य मार से बंध जाता है; उससे आसक्ति न रखने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।

" "हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैंने भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा।"

"बहुत अच्छा, हे भिक्षु! यह अच्छी बात है कि आपने मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा।" भिक्षु, रूप से आसक्ति रखने से व्यक्ति मारा से बंध जाता है... (जैसा कि ऊपर पूर्ण रूप से वर्णित है)... इससे आसक्ति न रखने से व्यक्ति बुराई से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार से मैंने संक्षेप में जो कहा है, उसका अर्थ विस्तार से समझा जा सके।

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर उन्हें प्रणाम करने के बाद प्रस्थान किया।

फिर एकांत में रहकर, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, उस भिक्षु ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक हो गए।

---

64. गर्भ धारण करने में (मन्नामाना)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें तो अच्छा होगा..." "

भिक्षु, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) में मनुष्य शैतान से बंधा रहता है; गर्भाधान न करने से मनुष्य शैतान से मुक्त हो जाता है।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने संक्षेप में कही गई मेरी बात का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

"हे पूज्यवर, रूप की कल्पना करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसकी कल्पना न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, संशय और चेतना की कल्पना करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसकी कल्पना न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।

" "हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।" "

अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ गए। हे भिक्षु, रूप की कल्पना करने से मनुष्य मार से बंध जाता है... (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है)... इसकी कल्पना न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।" इस प्रकार से मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझा जा सकता है।"

...और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

65. आनंद की खोज में (अभिनंदमन)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें तो अच्छा होगा..." "

भिक्षु, आनंद की खोज में मनुष्य शैतान के बंधन में बंध जाता है; आनंद की खोज न करने से मनुष्य शैतान से मुक्त हो जाता है।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, आपने संक्षेप में कही गई मेरी बात का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

हे पूज्यवर, रूप में आनंद की खोज करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसमें आनंद की खोज न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। वेदना में, बोध में, संशय में, और चेतना में आनंद की खोज करने से मनुष्य मार से बंध जाता है; इसमें आनंद की खोज न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है। हे

पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ पाया हूँ। "

बहुत अच्छा, हे भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बात का विस्तृत अर्थ समझ गए हैं। हे भिक्षु, रूप में आनंद की खोज करने से मनुष्य मार से बंध जाता है... (जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है)... इसमें आनंद की खोज न करने से वह शैतान से मुक्त हो जाता है।" इस प्रकार से मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का अर्थ विस्तार से समझा जा सकता है।

...और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

66. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें तो अच्छा होगा..."

"भिक्षु, तुम्हें क्षणभंगुर हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"

"समझ गया, भगवान (बुद्ध)! समझ गया, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"भिक्षु, तुमने संक्षेप में कही गई मेरी बात का अर्थ विस्तार से कैसे समझा?"

"हे पूज्यवर, रूप क्षणभंगुर है; मुझे इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना क्षणभंगुर है... संज्ञा (संज्ञा) क्षणभंगुर है... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) क्षणभंगुर हैं... चेतना (विज्ञान) क्षणभंगुर है; मुझे इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

" "हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझ पाते हैं। रूप क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा जा सकता है।" [77]

... और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गया।

---

67. दुःख (दुक्खा)
(पूर्ववर्ती सूत्र 66 के अनुसार आरंभ)

... "भिक्षु, आपको कष्टदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"

---

68. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
... "भिक्षु (साधु), तुम्हें अनात्म से संबंधित किसी भी चीज़ की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"...(जैसा कि 66 में है)

---

69. जो स्वयं से संबंधित नहीं है (अनत्तनिया संस्कृत: अनत्मनिया)
... "भिक्षु (साधु), तुम्हें उन चीजों की इच्छा का त्याग करना चाहिए जो स्वयं से संबंधित नहीं हैं
।"...(जैसा कि 66 में है)

---

70. जो कुछ भी आकर्षक प्रतीत होता है (रजनीयसंथिता)
... "भिक्षु (साधु), तुम्हें हर उस चीज़ की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए जो लुभावनी प्रतीत होती है।"...(जैसा कि 66 में है)

---

71. राधा
सावत्थी में। तब पूज्य राधा भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा: 98

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

"हे राधा, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासतो संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है'।

किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (सन्ना संस्कृत: संज्ञा) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) . . . किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासति) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"हे राधा, जब व्यक्ति इस प्रकार (ध्यान में, पासति) जान और देख लेता है, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य निमित्त के संबंध में, 'मैं' का भाव, 'मेरा' का भाव और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।"

तब पूज्य राधा . . . अरहंतों में से एक बन गईं।

---

72. सुरधा
सावत्थी में, पूज्य सुरधा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस. विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से ऊपर उठ जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?"

सुराधा, चाहे कोई भी रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल... दूर हो या पास - सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सभी रूपों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखकर, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, व्यक्ति आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

चाहे कोई भी वेदना हो... चाहे कोई भी अनुभूति (संज्ञा) हो... चाहे कोई भी संस्कार (आक्रामक व्यवहार) हो... चाहे कोई भी चेतना हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या पास - सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सभी चेतना को उनके वास्तविक स्वरूप में देखकर, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, व्यक्ति आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

"हे सुरधा, जब कोई इस प्रकार (ध्यान में, विपश्यना ध्यान में) जानता और देखता है, तब चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।"

तब पूज्य सुरधा... अरहंतों में से एक बन गए।

(iii) खंड 2, मध्य पचास - भक्षण खंड (खज्जनिया संस्कृत: खदनिया)
73. सांसारिक सुख (अस्वाद के बिना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के मार्ग को सही ढंग से नहीं समझ पाता।

परन्तु भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के मार्ग को सही ढंग से समझ लेता है।"

---

74. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), भय और उससे मुक्ति को सही ढंग से नहीं समझ पाता।

परन्तु भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख, भय और उससे मुक्ति को सही ढंग से समझ लेता है।"

---

75. उत्पत्ति (2) (समुदय1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं (संतों), शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप, वेदना, संज्ञा, संशय और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और मृत्यु, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझते हैं।"

---

76. अरहंत (1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

वेदना क्षणभंगुर है... अनुभूति क्षणभंगुर है... संस्कार क्षणभंगुर हैं... चेतना क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है।

मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

"हे भिक्षुओं, जितने भी प्राणियों के निवास स्थान हैं, यहाँ तक कि अस्तित्व के शिखर तक भी, 99 वे संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं, वे सर्वश्रेष्ठ हैं, अर्थात् अरहंत हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"अरहंत वास्तव में धन्य हैं! उनमें तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) नहीं पाई जाती।
'मैं हूँ' का अहंकार कट जाता है; मोह (मोह) का जाल टूट जाता है।

"वे अविचलित अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं; उनके मन अविचल हैं;
वे संसार में निष्कलंक हैं; पवित्र, दोषरहित हैं।

"पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) को पूर्णतः समझ चुके; सात गुणों में विचरण करने वाले, 101
वे प्रशंसनीय श्रेष्ठ पुरुष; बुद्ध के प्रिय पुत्र हैं।"

सात रत्नों से परिपूर्ण; त्रिविध प्रशिक्षण में प्रशिक्षित, 102
वे महान वीर (महावीर) भय और कांपते हुए विचरण करते हैं।

दस गुणों से परिपूर्ण; समाधि अवस्था में वे महान नाग
संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं; उनमें तृष्णा नहीं पाई जाती। 103

उनमें सिद्धों का ज्ञान उत्पन्न हो गया है; 'यह शरीर मेरा अंतिम शरीर है।'
ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों के संबंध में; वे अब दूसरों पर निर्भर नहीं रहते। [84]

वे विवेक में विचलित नहीं होते। 104; वे पुनर्जन्म के कारण से मुक्त हो जाते हैं (मोक्ष में)।
वश में किए जाने की अवस्था प्राप्त कर चुके वे संसार के विजेता हैं।

ऊपर, अगल-बगल और नीचे, उनमें आनंद का अभाव है।
वे साहसपूर्वक सिंह की दहाड़ लगाते हैं; प्रबुद्ध लोग संसार में सर्वोच्च हैं।

---

77. अरहंत (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें कुछ श्लोक हटा दिए गए हैं।)

---

78. शेर
सावत्थी में। "भिक्षुओं, संध्या के समय पशुओं का राजा सिंह अपनी मांद से निकलता है। बाहर आकर वह अंगड़ाई लेता है, चारों दिशाओं का अवलोकन करता है और तीन बार सिंह की गर्जना करता है। फिर वह शिकार की तलाश में निकल पड़ता है।

जब पशुओं का राजा सिंह गर्जना करता है, तो जो भी जानवर उसकी आवाज सुनते हैं, वे अधिकतर भय, घबराहट और आतंक से भर जाते हैं। जो बिलों में रहते हैं वे अपने बिलों में चले जाते हैं; जो पानी में रहते हैं वे पानी में चले जाते हैं; जो जंगलों में रहते हैं वे जंगलों में चले जाते हैं; और पक्षी हवा में उड़ जाते हैं। यहां तक कि गांवों, कस्बों और राजधानियों में मजबूत रस्सियों से बंधे हुए राजसी हाथी भी अपनी रस्सियों को तोड़कर भाग जाते हैं; भयभीत होकर वे पेशाब और शौच करते हैं और इधर-उधर भागते हैं। भिक्षुओं, पशुओं का राजा सिंह इतना शक्तिशाली, इतना राजसी और बलवान है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब तथागत संसार में अवतरित होते हैं, जो पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता, देवों और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध), वे धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश इस प्रकार देते हैं:
'रूप ऐसा है, उत्पत्ति ऐसी है, क्षय ऐसा है; वेदना ऐसी है... अनुभूति ऐसी है... संस्कार ऐसे हैं... चेतना ऐसी है, उत्पत्ति ऐसी है, क्षय ऐसा है।' 106

"तो, हे भिक्षुओं, जब वे देव जो दीर्घायु, सुंदर, सुख से परिपूर्ण और ऊंचे महलों में दीर्घकाल से निवास करते हैं, तथागत की धम्म शिक्षा सुनते हैं, तो वे अधिकतर भय, चिंता और आतंक से भर जाते हैं, [कहते हैं]: 'हे प्रभु, ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनित्य हैं, यद्यपि हम स्वयं को शाश्वत समझते थे; ऐसा प्रतीत होता है कि हम अस्थिर हैं, यद्यपि हम स्वयं को स्थिर समझते थे; ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनादि हैं, यद्यपि हम स्वयं को शाश्वत समझते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि हम अनित्य, अस्थिर, अनादि हैं, शरीर-सन्दु (सक्कय) में समाहित हैं।'" 107 "हे भिक्षुओं, तथागत इस संसार पर अपने देवताओं सहित अत्यंत शक्तिशाली और बलवान हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"जब बुद्ध दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा धर्मचक्र को गतिमान करते हैं, तो इस संसार के अद्वितीय गुरु, अपने देवताओं सहित, यह बात प्रकट करते हैं:

"शरीर-सम्भाव का निवारण (निरोध) और शरीर-सम्भाव का उद्भव। तथा अष्टांगिक मार्ग, जो दुखों के निवारण (उपासमन) की ओर ले जाता है।

" तब वे दीर्घायु देवता, सुंदर और महिमा से ओतप्रोत, सिंह की दहाड़ सुनकर भयभीत और आतंकित हो जाते हैं।

"'हमने देह-पहचान को पार नहीं किया है; ऐसा लगता है, महोदय, हम क्षणभंगुर हैं,' [ऐसा वे कहते हैं] अरहंत के इस कथन को सुनकर; जो मोक्ष प्राप्त स्थिर व्यक्ति हैं।"

---

79. खा जाना (खजनिया सं. खडनिया)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो अपने अनेक पूर्व निवासों का स्मरण करते हैं, वे सभी आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों (खंड संस्कृत) या उनमें से किसी एक का स्मरण करते हैं। 108 वे पाँच कौन से हैं?

"भिक्षुओं, जब इस प्रकार स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरा ऐसा रूप था,' तो केवल उसी रूप का स्मरण होता है। जब स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरी ऐसी वेदना थी,' तो केवल वेदना का स्मरण होता है। जब स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरी ऐसी अनुभूति थी,' तो केवल अनुभूति का स्मरण होता है। जब स्मरण करते हैं: 'पूर्व में मेरी ऐसी संशय (आक्रामक व्यवहार) थी,' तो केवल संशय (व्यवहार) का स्मरण होता है।"

जब स्मरण करते हुए कहते हैं: 'मुझे अतीत में ऐसी चेतना (विन्नान, विज्ञान नहीं) थी', तो यह केवल चेतना ही है जिसका स्मरण किया जाता है।

"और हे भिक्षुओं, आप इसे रूप क्यों कहते हैं? 109 'यह विकृत है', भिक्षुओं, इसलिए इसे रूप कहा जाता है। 110 किससे विकृत? ठंड से विकृत, गर्मी से विकृत, भूख से विकृत, प्यास से विकृत, मक्खियों, मच्छरों, हवा, सूर्य और सर्पों के संपर्क से विकृत। 'यह विकृत है', भिक्षुओं, इसलिए इसे रूप कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, आप इसे संवेदना (वेदना) क्यों कहते हैं? 'यह संवेदना करता है', भिक्षुओं, इसलिए इसे संवेदना (वेदना) कहा जाता है। 111 और यह क्या संवेदना करता है? यह सुख संवेदना करता है, यह दुख संवेदना करता है, [87] यह न दुख संवेदना करता है, न सुख। भिक्षुओं, यह 'संवेदना' करता है, इसलिए इसे संवेदना (वेदना) कहा जाता है।

भिक्षुओं, आप इसे अनुभूति (संज्ञा) क्यों कहते हैं? भिक्षुओं, यह 'अनुभूत' करता है, इसलिए इसे अनुभूति कहा जाता है। और यह क्या अनुभव करता है? यह नीला, पीला, लाल और सफेद अनुभव करता है। भिक्षुओं, यह 'अनुभूत' करता है, इसलिए इसे अनुभूति कहा जाता है।

भिक्षुओं, आप इन्हें संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) क्यों कहते हैं? भिक्षुओं, ये संस्कार (संबद्ध व्यवहार-अनुकूलन) का निर्माण करते हैं, इसलिए इन्हें संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-अनुकूलन) कहा जाता है। 112 और वे किस संस्कार का निर्माण करते हैं? वे संस्कारित रूप का निर्माण रूप के रूप में करते हैं; 113 वे संस्कारित संवेदना (वेदना) का निर्माण संवेदना (वेदना) के रूप में करते हैं; वे संस्कारित अनुभूति का निर्माण अनुभूति के रूप में करते हैं; वे वातानुकूलित संस्कार (व्यवहार-परिस्थिति) को संस्कार (व्यवहार-परिस्थिति) के रूप में निर्मित करते हैं; वे वातानुकूलित चेतना को चेतना के रूप में निर्मित करते हैं। 'वे वातानुकूलित भिक्षुओं का निर्माण करते हैं', इसलिए उन्हें संस्कार (व्यवहार-परिस्थिति) कहा जाता है।

"और भिक्षुओं, आप इसे चेतना क्यों कहते हैं? 'यह ज्ञाता है', भिक्षुओं, इसलिए इसे चेतना कहा जाता है। और यह क्या ज्ञाता है? यह खट्टा, कड़वा, तीखा, मीठा, चटपटा, हल्का, नमकीन और बेस्वाद ज्ञाता है। 'यह ज्ञाता है', भिक्षुओं।" इसलिए इसे चेतना कहा जाता है। 114

"इसमें, भिक्षुओं, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य सोचता है:
'मैं अब रूप के वश में हूँ। 115 अतीत में भी मैं रूप के वश में था, ठीक उसी प्रकार जैसे अब वर्तमान रूप के वश में हूँ। यदि मैं भविष्य के रूप में आनंद की खोज करूँ, तो भविष्य में भी मैं रूप के वश में हो जाऊँगा, ठीक उसी प्रकार जैसे अब वर्तमान रूप के वश में हूँ।' ऐसा सोचकर वह अतीत के प्रति उदासीन हो जाता है, भविष्य के रूप में आनंद की खोज नहीं करता, और वर्तमान रूप के प्रति घृणा (निबिद्दा) का अभ्यास करता है, उसके लुप्त होने और समाप्त होने (निरोध) का।

"[वह इस प्रकार सोचता है:] 'मैं अब वेदना के वश में हूँ।' ...

'मैं अब अनुभूति (संज्ञा) के वश में हूँ।' ... 'मैं अब संस्कार (व्यवहार-आधार) के वश में हूँ।' ... 'मैं अब चेतना द्वारा भस्म हो रहा हूँ (विन्नान, संस्कृत: विज्ञान)। अतीत में भी मैं चेतना द्वारा उसी प्रकार भस्म हुआ था जिस प्रकार वर्तमान चेतना द्वारा भस्म हो रहा हूँ। यदि मैं भविष्य की चेतना में आनंद (नंदी/आनंद) खोजूँ, तो भविष्य में भी मैं चेतना द्वारा उसी प्रकार भस्म हो जाऊँगा जिस प्रकार वर्तमान चेतना द्वारा भस्म हो रहा हूँ।' ऐसा सोचकर वह अतीत की चेतना के प्रति उदासीन हो जाता है, भविष्य की चेतना में आनंद नहीं खोजता, और वर्तमान चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और समाप्त होने का अभ्यास करता है।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप स्थायी है या अस्थायी?" ... क्या वेदना ... बोध ... संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?" 116
"अस्थायी, आदरणीय।" - "जो अस्थायी है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"इसलिए, भिक्षुओं, किसी भी प्रकार का रूप ... किसी भी प्रकार की वेदना ... किसी भी प्रकार का बोध ... किसी भी प्रकार का संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो

या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट, सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।

"हे भिक्षुओं, इसे वह श्रेष्ठ शिष्य कहते हैं जो तोड़ता है, निर्माण नहीं करता; जो त्यागता है, आसक्ति नहीं रखता; जो बिखेरता है, संचय नहीं करता; जो बुझाता है, प्रज्वलित नहीं करता। 117

"और वह क्या है जिसे वह तोड़ता है, निर्माण नहीं करता? वह रूप को तोड़ता है, निर्माण नहीं करता। वह संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (व्यवहार-आधारणा) ... चेतना को तोड़ता है, निर्माण नहीं करता।

और वह क्या है जिसका वह त्याग करता है और जिससे वह आसक्त नहीं रहता? वह रूप का त्याग करता है और उससे आसक्त नहीं रहता। वह वेदना, बोध, संस्कार, चेतना का त्याग करता है और उससे आसक्त नहीं रहता।

और वह क्या है जिसे वह बिखेरता है और एकत्रित नहीं करता? वह रूप को बिखेरता है और एकत्रित नहीं करता। वह वेदना, बोध, संस्कार, चेतना को बिखेरता है और एकत्रित नहीं करता।

और वह क्या है जिसे वह बुझाता है और प्रज्वलित नहीं करता? वह रूप को बुझाता है और उसे प्रज्वलित नहीं करता। वह संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (व्यवहार-आधारणा) ... चेतना को बुझाता है और उसे प्रज्वलित नहीं करता।

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (व्यवहार-आधारणा) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य का हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, इसे ही श्रेष्ठ शिष्य कहते हैं जो न तो निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है; जो न तो त्यागता है और न ही आसक्ति रखता है, बल्कि त्याग के बाद भी बना रहता है; जो न तो बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर के बाद भी बना रहता है; जो न तो बुझाता है और न

ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा के बाद भी बना रहता है। 118 "और हे भिक्षुओं, वह क्या है जो न तो निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है? वह न तो रूप का निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है। वह न तो संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (व्यवहार-आधारणा) ... चेतना का निर्माण करता है और न ही विघटन, बल्कि विघटन के बाद भी बना रहता है।"

और वह क्या है जिसे वह न तो त्यागता है और न ही उससे आसक्त रहता है, बल्कि त्याग कर ही रहता है? वह न तो रूप को त्यागता है और न ही उससे आसक्त रहता है, बल्कि उसे त्याग कर ही रहता है। वह न तो वेदना, न ही बोध, न ही संस्कार, न ही चेतना को त्यागता है और न ही उससे आसक्त रहता है, बल्कि उसे त्याग कर ही रहता है।

और वह क्या है जिसे वह न तो बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर कर ही रहता है? वह न तो रूप को बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर कर ही रहता है। वह न तो वेदना, न ही बोध, न ही संस्कार, न ही चेतना को बिखेरता है और न ही एकत्रित करता है, बल्कि बिखेर कर ही रहता है।

और वह क्या है जिसे वह न बुझाता है और न ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा हुआ ही रहता है? वह न तो रूप को बुझाता है और न ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा हुआ ही रहता है। वह न तो संवेदना (वेदना) ... बोध ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना को बुझाता है और न ही प्रज्वलित करता है, बल्कि बुझा हुआ ही रहता है।

"जब, भिक्षुओं, कोई भिक्षु इस प्रकार मन से मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तो देवता इंद्र, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) और प्रजापति के साथ दूर से ही उसे प्रणाम करते हैं:

'हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम! हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, आपको प्रणाम! हम स्वयं प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानते कि आप किस पर ध्यान करते हैं।'" 119

---

80. भिक्षा मांगने वाला (पिंडोल्य)
एक बार भगवान (बुद्ध) निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने किसी विशेष कारण से भिक्षुओं को विदा किया और सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षा मांगने के लिए कपिलवस्तु में प्रवेश किया। कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे दिनभर विश्राम करने के लिए विशाल वन में चले गए। विशाल वन में प्रवेश करके वे दिनभर विश्राम करने के लिए एक बेलुव वृक्ष के नीचे बैठ गए।

फिर, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में अकेले थे, तो उनके मन में यह विचार आया: 121 "मैंने भिक्षुओं के संघ को विदा कर दिया है। यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है, और जो हाल ही में इस धर्म और अनुशासन में आए हैं। यदि वे मुझे नहीं देखेंगे तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। जैसे जब एक छोटा बछड़ा अपनी माँ को नहीं देखता तो उसमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है, वैसे ही यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है, और जो हाल ही में इस धर्म और अनुशासन में आए हैं। यदि वे मुझे नहीं देखेंगे तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। जैसे जब छोटे पौधों को पानी नहीं मिलता तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है, वैसे ही यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है। "जो हाल ही में इस धम्म और अनुशासन में दीक्षित हुए हैं, यदि वे मुझे न देखें तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। मैं भिक्षुओं के संघ की सहायता उसी प्रकार करता हूँ जैसे मैंने अतीत में की है।"

तब ब्रह्मा सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी क्षण ब्रह्मालोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) की ओर श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनसे कहा, "हे भगवान (बुद्ध) ऐसा ही है! ऐसा ही है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भिक्षुओं के संघ को भगवान (बुद्ध) ने विदा कर दिया है। यहाँ कुछ भिक्षु नवदीक्षित हैं... (जैसा कि ऊपर उपमाओं सहित वर्णित है)... यदि वे भगवान (बुद्ध) के दर्शन न करें तो उनमें कुछ परिवर्तन या बदलाव आ सकता है। हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ में प्रसन्न हों! भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ का स्वागत करें! भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ की सहायता उसी प्रकार करें जैसे उन्होंने अतीत में की है।"

भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए। तब ब्रह्मा सहमपति ने भगवान (बुद्ध) की सहमति को समझकर, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर संध्या में भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और निग्रोध उद्यान में गए। वे नियत स्थान पर बैठ गए और आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि भिक्षु अकेले और जोड़े में, संकोचपूर्वक उनके पास आने लगे। 122 तब वे भिक्षु अकेले और जोड़े में, संकोचपूर्वक भगवान (बुद्ध) के पास आए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"भिक्षुओं, यह जीविका का सबसे नीच रूप है, अर्थात् भिक्षा मांगना। संसार में यह एक अपशब्द है: 123 'हे भिक्षा मांगने वाले; तू हाथ में भिक्षापात्र लेकर घूमता है!'" और फिर भी, हे भिक्षुओं, अच्छे कर्मों में लिप्त कुलवासी उस जीवन शैली को एक उचित कारण से अपनाते हैं। वे ऐसा राजाओं द्वारा विवश होकर नहीं करते, न ही चोरों द्वारा विवश होकर, न ही ऋण के कारण, न ही भय के कारण, और न ही जीविका कमाने के लिए। बल्कि वे ऐसा इस विचार से करते हैं: 'मैं पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में डूबा हुआ हूँ; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा में। मैं पीड़ा में डूबा हुआ हूँ, पीड़ा से पीड़ित हूँ। शायद इस संपूर्ण पीड़ा के अंत का कोई मार्ग मिल जाए!'

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार इस कुलवासी ने दीक्षा ली है।" फिर भी वह लोभी है, इंद्रिय सुखों के लिए राग से प्रज्वलित है, द्वेष से भरा हुआ मन रखता है, घृणा से दूषित इरादे रखता है, भ्रमित है, पूर्ण बोध से रहित है, समाधि अवस्था में नहीं है, विचलित है, और उसकी इंद्रियां शिथिल हैं। जैसे अंत्येष्टि की चिता की लकड़ी, जो दोनों सिरों से जल रही हो और बीच में मल से सनी हो, न तो गांव में और न ही जंगल में लकड़ी के रूप में उपयोग की जा सकती है, ठीक उसी प्रकार मैं इस व्यक्ति के बारे में कह रहा हूँ: उसने गृहस्थ सुखों को न तो प्राप्त किया है, फिर भी वह वैराग्य के लक्ष्य को पूरा नहीं करता है।

भिक्षुओं, तीन प्रकार के हानिकारक विचार होते हैं: कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार और हानि पहुँचाने का विचार। 124 और हे भिक्षुओं, ये तीनों हानिकारक विचार कहाँ पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं? उस व्यक्ति के लिए जो ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) में अच्छी तरह से स्थापित मन से रहता है, या उस व्यक्ति के लिए जो अनिमित्त समाधि अवस्था विकसित करता है। हे भिक्षुओं, अनिमित्त समाधि अवस्था विकसित करने के लिए यही पर्याप्त कारण है। हे भिक्षुओं, जब अनिमित्त समाधि अवस्था विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह बहुत फलदायी और लाभदायक होती है।

"हे भिक्षुओं, दो मत हैं: अस्तित्व का मत (भावो) और विनाश का मत। 125 इसमें, हे भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य इस प्रकार सोचता है: क्या संसार में ऐसी कोई वस्तु है जिससे मैं बिना निंदनीय हुए जुड़ा रह सकूँ?" वह इस प्रकार समझते हैं: 'संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिससे मैं बिना दोष के जुड़ा रह सकूँ। क्योंकि यदि मैं किसी वस्तु से जुड़ा रहूँ, तो केवल रूप (उपादान संस्कृत: आसक्ति), केवल संवेदना (वेदना), केवल अनुभूति (संज्ञा), केवल संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) और केवल चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) से ही जुड़ा रहूँगा। मेरे इसी आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होगा; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होगा; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी। यही इस समस्त दुःख का मूल कारण होगा।' 126

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि रूप स्थायी है या अस्थायी?... क्या संवेदना (वेदना)... बोध... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "जो अस्थायी है, क्या वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'" 127

---

81. पालिलिया
एक बार भगवान (बुद्ध) घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे।

फिर सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए कोसंबी में प्रवेश किया। कोसंबी में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद उन्होंने स्वयं अपना आवास व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और अपने निजी सेवकों को सूचित किए बिना, भिक्षु संघ से विदा लिए बिना, अकेले ही यात्रा पर निकल पड़े। 128

फिर, भगवान (बुद्ध) के प्रस्थान के कुछ ही समय बाद, एक भिक्षु पूज्य आनंद के पास आया और उनसे कहा:
"मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने स्वयं अपना आवास व्यवस्थित किया है, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया है, और अपने निजी सेवकों को सूचित किए बिना, भिक्षु संघ से विदा लिए बिना, अकेले ही यात्रा पर निकल पड़े हैं।"

"मित्र, जब भी भगवान (बुद्ध) इस प्रकार प्रस्थान करते हैं, तो वे एकांतवास करना चाहते हैं। ऐसे अवसर पर भगवान (बुद्ध) के साथ किसी को भी नहीं जाना चाहिए।"

तब भगवान (बुद्ध) विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए परिलय्यक पहुँचे। परिलय्यक में भगवान (बुद्ध) एक शुभ साल वृक्ष की तलहटी में निवास करने लगे। 129

तब कई भिक्षु पूज्य आनंद के पास आए और उनसे अभिवादन किया। 130 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा, "मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में धर्म (मार्ग, नियम) पर प्रवचन सुने हुए बहुत समय हो गया है। हम ऐसा प्रवचन सुनना चाहेंगे, मित्र आनंद।"

तब पूज्य आनंद उन भिक्षुओं के साथ परिलय्यक में, शुभ साल वृक्ष की तलहटी में भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने धर्म प्रवचन देकर उन भिक्षुओं को उपदेश दिया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। उसी अवसर पर एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: "कैसे पता चले, कैसे देखा जाए कि विकारों का तुरंत नाश (खयाल/क्षया) हो जाए?" 131

भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन में उठे विचार को स्वयं जानकर भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैंने इस धम्म (मार्ग, नियम) का विवेकपूर्ण उपदेश दिया है। 132 मैंने ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का विवेकपूर्ण उपदेश दिया है। चार सही प्रयास... आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि)... पाँच आध्यात्मिक शक्तियाँ... पाँच शक्तियाँ... ज्ञान के सात कारक... आर्य अष्टांगिक मार्ग का विवेकपूर्ण उपदेश दिया है। भिक्षुओं, मेरे द्वारा विवेकपूर्ण ढंग से उपदेशित इस धम्म के विषय में, एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: 'अपराधों के तत्काल नाश (खयाल/क्षय) के लिए कैसे जाना जाए, कैसे देखा जाए?'"

और हे भिक्षुओं, कैसे जानें, कैसे देखें, ताकि विकारों का तुरंत नाश हो सके? हे भिक्षुओं, यहाँ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और अपने धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और अपने धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को ही आत्मा मानता है। हे भिक्षुओं, यह मानना ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) है। 133 वह संस्कार (व्यवहार) - उसका स्रोत क्या है, उसकी उत्पत्ति क्या है, वह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति अज्ञान से उत्पन्न वेदना से संपर्क में आता है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है: वहीं से वह संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न होता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, वह संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) अनित्य, सशर्त (संखता),
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है; तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; स्पर्श (फस्स/स्पर्श) अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है; अज्ञान अनित्य, सशर्त,
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। [97] जब कोई इस प्रकार (ध्यान में, पस्सतो संदर्भ विपश्यना ध्यान में) जानता और देखता है,
भिक्षुओं, तो विकारों का तत्काल नाश हो जाता है।

वह रूप को आत्मा नहीं मानता, परन्तु आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है। यह मानना संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) है... (जैसा ऊपर बताया गया है)... जब कोई इस प्रकार जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), हे भिक्षुओं, तो दोषों का तत्काल नाश (खयाल/क्षय) हो जाता है।

वह रूप को आत्मा या आत्मा को रूप धारण करने वाला नहीं मानता, परन्तु वह रूप को आत्मा में मानता है। यह मानना संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) है...

वह रूप को आत्मा या आत्मा को रूप धारण करने वाला या रूप को आत्मा में मानता नहीं, परन्तु वह आत्मा को रूप में मानता है। यह मानना संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) है...

वह रूप को आत्मा या आत्मा को रूप में नहीं मानता, परन्तु वह वेदना को आत्मा... बोध (संज्ञा) को आत्मा... बोध (व्यवहार-निर्धारण) को आत्मा... बोध (व्यवहार-निर्धारण) को आत्मा... बोध (विज्ञान) को आत्मा... बोध (विज्ञान) को आत्मा... बोध (विज्ञान) को आत्मा वह दृष्टिकोण संस्कार (व्यवहार-आधार) है... जब कोई इस प्रकार जानता और देखता है (ध्यान में, पासतो), भिक्षुओं, तो दोषों का तत्काल नाश (खया/क्षय) हो जाता है।

"वह रूप को आत्मा नहीं मान सकता... [99] ... या चेतना में आत्मा को नहीं, बल्कि वह ऐसा दृष्टिकोण रखता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके चले जाने पर, मैं वही हो जाऊँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं।' 134 वह शाश्वतवादी दृष्टिकोण संस्कार (व्यवहार-आधार) है... जब कोई इस प्रकार जानता और देखता है (ध्यान में, पासतो), भिक्षुओं, तो दोषों का तत्काल नाश (खया/क्षय) हो जाता है।

"हो सकता है कि वह रूप को आत्मा न माने... या ऐसा [शाश्वतवादी] दृष्टिकोण न रखे, लेकिन उसका यह दृष्टिकोण है: 'मैं न भी हो सकता हूँ, और यह मेरे लिए न भी हो सकता है; मैं न तो होऊँगा, और यह मेरे लिए न भी होगा।' 135 वह विनाशवादी दृष्टिकोण एक संस्कार (व्यवहार-आधार) है...

"हो सकता है कि वह रूप को आत्मा न माने... या ऐसा [विनाशवादी] दृष्टिकोण न रखे, लेकिन वह सच्चे धम्म के विषय में भ्रमित, संशयपूर्ण और अनिर्णायक है। सच्चे धम्म के विषय में वह भ्रम, संशय और अनिर्णय ही एक संस्कार (व्यवहार-आधार) है। वह संस्कार (व्यवहार-आधार) - उसका स्रोत क्या है, उसकी उत्पत्ति क्या है, वह किससे उत्पन्न और पैदा हुआ है?" जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति

अज्ञान-संपर्क से उत्पन्न किसी वेदना (संवेदना) के संपर्क में आता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; तब संखर (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होता है। 136

"इसलिए, हे भिक्षुओं, वह संखर (आक्रामक व्यवहार) अनित्य, संकथित (संकल्पित),
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है; वह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) अनित्य, संकथित,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; वह वेदना अनित्य, संकथित,
आश्रित रूप से उत्पन्न होती है; वह स्पर्श (फस/स्पर्श) अनित्य, संकथित, आश्रित रूप से उत्पन्न होता है
; वह अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) अनित्य, संकथित,
आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। हे भिक्षुओं, जब कोई इस प्रकार (ध्यान में, पस्सतो) जानता और देखता है, तो
विकारों का तत्काल नाश (खयाल/क्षय) हो जाता है।" 137

---

82. पूर्णिमा की रात (पुन्नमा संस्कृत: पूर्णिमा)
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित सावत्थी में, मिगारा की माता के निवास में, भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ निवास कर रहे थे। 138 उस अवसर पर - पंद्रहवें उपोसथ के दिन, पूर्णिमा की रात - भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के संघ से घिरे खुले में बैठे थे।

तभी एक भिक्षु अपने आसन से उठे, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, भगवान (बुद्ध) की ओर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) से एक विषय के बारे में पूछना चाहता हूँ, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।" "तो

फिर, भिक्षु, अपने आसन पर बैठ जाइए और जो चाहें पूछिए।"

"जी, आदरणीय महोदय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया। तब वह अपने स्थान पर बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से बोला:

"हे पूज्यवर, क्या ये पाँच समुच्चय (खंड संस्कृत: स्कंध) आसक्ति के अधीन नहीं हैं? अर्थात्, समुच्चय (आसक्त), संवेदना (वेदना) आसक्त, बोध (संज्ञा) आसक्त, संस्कार (आकस्मिक व्यवहार) आसक्त और चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) आसक्त हैं।"

"हे भिक्षु, ये पाँच समुच्चय (आसक्त) आसक्त हैं: अर्थात्, रूप समुच्चय (आसक्त), संवेदना (वेदना) आसक्त, बोध, संस्कार (व्यवहार) आसक्त और चेतना समुच्चय।"

"हे आदरणीय महोदय," यह कहते हुए वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित हुआ। फिर उसने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

"परन्तु, आदरणीय महोदय, ये पाँच स्कंद किसमें निहित हैं?"

"हे भिक्षु, ये पाँच स्कंद इच्छा में निहित हैं।" 139

"हे आदरणीय महोदय, क्या वह आसक्ति इन पाँच स्कंदों के समान है, या वह आसक्ति इन पाँच स्कंदों से भिन्न है?"

"भिक्षुओं, वह आसक्ति न तो इन पाँच स्कंदों के समान है, [101] और न ही इन पाँच स्कंदों से भिन्न है। बल्कि, उनके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही वहाँ आसक्ति है।" 140

"हे आदरणीय महोदय," यह कहते हुए उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

"परन्तु, आदरणीय महोदय, क्या आसक्ति के अधीन पाँचों स्कंधों के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) में विविधता हो सकती है?"

"भिक्षु, ऐसा हो सकता है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। "भिक्षु, किसी के मन में यह विचार आता है: 'काश भविष्य में मेरा ऐसा रूप हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी वेदना हो! काश भविष्य में मुझे ऐसी अनुभूति हो! काश भविष्य में मेरा ऐसा संस्कार हो! काश भविष्य में मेरी

ऐसी चेतना हो!' इस प्रकार, भिक्षु, आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) में विविधता हो सकती है।"

"परमेश्वर, आदरणीय," यह कहते हुए उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा: "

परमेश्वर, 'स्कंध' शब्द स्कंधों पर किस प्रकार लागू होता है?"

भिक्षु, चाहे किसी भी प्रकार का रूप हो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे रूप समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे संवेदना समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति (बोध) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे अनुभूति समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आधारणा) हों, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे संस्कार समूह कहते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की चेतना (विश्लेष्म-आधारणा) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: इसे चेतना समूह कहते हैं। समूह। भिक्षु, इसी प्रकार 'समूह' शब्द का प्रयोग समूहों के लिए किया जाता है। "

आदरणीय महोदय," यह कहते हुए उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

"आदरणीय महोदय, रूप समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? 141 वेदना समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? ... बोध समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? ... संस्कार समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है? ... चेतना समूह की अभिव्यक्ति का कारण क्या है?"

"हे भिक्षु, चार महान तत्व (धातु) रूप समूह की अभिव्यक्ति का कारण हैं। इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) वेदना समूह की अभिव्यक्ति का कारण है। संपर्क बोध समूह की अभिव्यक्ति का कारण है। संपर्क (फस्सा/स्पर्श) संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) समूह की अभिव्यक्ति का कारण है। मन और शरीर का रूप (नामरूप) चेतना समूह की अभिव्यक्ति का कारण है।"

"आदरणीय महोदय, शरीर-पहचान-दृष्टिकोण (सक्कया-दित्थी) कैसे उत्पन्न होता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। वह वेदना को आत्मा मानता है... बोध को आत्मा मानता है... संस्कार को आत्मा मानता है... चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है। इसी प्रकार शरीर-सन्दूक का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है।"

"परन्तु, आदरणीय महोदय, शरीर-सन्दूक का दृष्टिकोण कैसे उत्पन्न नहीं होता?"

हे भिक्षु, यहाँ, ज्ञानी और श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, न ही चेतना को आत्मा में, न ही आत्मा को चेतना में। इसी प्रकार शरीर-पहचान का दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं होता।

हे पूज्यवर, रूप के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरा और उससे मुक्ति क्या है? वेदना के संदर्भ में सांसारिक सुख, खतरा और उससे मुक्ति क्या है? ... बोध के संदर्भ में क्या है? ... संस्कार (व्यवहार-आधार) के संदर्भ में क्या है? ... चेतना के संदर्भ में क्या है?

"हे भिक्षु, जो सुख और सोमनस्सा रूप पर निर्भर होकर उत्पन्न होते हैं, वही सांसारिक सुख है। रूप क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है, यही रूप का भय है। रूप के प्रति इच्छा और राग का त्याग करना ही रूप से मुक्ति है। जो सुख और सोमनस्सा वेदना पर निर्भर

होकर, बोध पर निर्भर होकर, संस्कार पर निर्भर होकर, चेतना पर निर्भर होकर उत्पन्न होते हैं, वही सांसारिक सुख है। चेतना क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील है, यही चेतना का भय है। चेतना के प्रति इच्छा और राग का त्याग करना ही चेतना से मुक्ति है।"

"हे आदरणीय महोदय," यह कहते हुए भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित हुआ। तब उन्होंने भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा:

"आदरणीय महोदय, कैसे जानें, कैसे देखें ताकि इस सचेत शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

"हे भिक्षु, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पस्सातो संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।"

"चाहे किसी भी प्रकार की वेदना हो... चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो... चाहे किसी भी प्रकार का संस्कार (व्यवहार-आधार) हो... चाहे किसी भी प्रकार की चेतना हो, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पस्सातो संदर्भ: विपश्यना) सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, अर्थात्: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।"

"हे भिक्षु, जब कोई इस प्रकार ध्यान में इस प्रकार जानता और देखता है (पासति), तब चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।"

उस समय एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: "तो ऐसा प्रतीत होता है कि रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, बोध अनात्म है, संस्कार (व्यवहार-आधार) अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर, अनात्म द्वारा किए गए कर्म किस आत्मा को प्रभावित करेंगे?" 142

तब भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन के विचार को स्वयं जानकर भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"हे भिक्षुओं, यह संभव है कि यहाँ कोई मूर्ख, मंदबुद्धि और अज्ञानी व्यक्ति, जिसका मन तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से ग्रस्त है, यह सोचे कि वह गुरु के उपदेश को इस प्रकार पार कर सकता है: 'तो ऐसा प्रतीत होता है कि रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, बोध अनात्म है, संस्कार (व्यवहार-आदत) अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर, जो अनात्म है उसके द्वारा किए गए कर्म किस आत्मा को प्रभावित करेंगे?' हे भिक्षुओं, मैंने आपको विभिन्न शिक्षाओं के संबंध में यहाँ-वहाँ पूछताछ के माध्यम से प्रशिक्षित किया है। 143

"हे भिक्षु, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... - "क्या वेदना स्थायी है या अस्थायी?..." क्या बोध स्थायी है या अस्थायी? ... क्या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) स्थायी हैं या अस्थायी? ... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी है, क्या वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"अतः... इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है" 144

ये दस प्रश्न हैं
जो भिक्षु पूछने आए थे:

दो स्कंधों के बारे में; क्या वही हो सकता है।
पदनाम और कारण; शरीर-पहचान (सक्कया) के बारे में दो,
सांसारिक-आनंद (असदो संस्कृत असवाद) पर एक-एक; और चेतना के साथ यह शरीर।

(iv) प्रभाग 2, मध्य पचास - वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुभाग (थेरावग्गो संस. स्थिवर-वर्ग)
83. आनंद
सावत्थी में, पूज्य आनंद ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य आनंद ने आगे कहा:

"मित्रों, जब हम नवदीक्षित थे, तब पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने हमारी बहुत सहायता की थी। 145 उन्होंने हमें निम्नलिखित उपदेश दिया:

"आनंद, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) से ही 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं। और किसके आसक्ति से 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं? 146 रूप के आसक्ति से ही 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं। वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (बोध) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के आसक्ति से ही 'मैं हूँ' की धारणा उत्पन्न होती है, आसक्ति के बिना नहीं।"

"मान लीजिए, मित्र आनंद, एक युवा स्त्री या पुरुष, जो आभूषणों का शौकीन हो, दर्पण में या शुद्ध, स्वच्छ जल से भरे कटोरे में अपनी छवि का अवलोकन करे: वह उसे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के साथ देखेगी, न कि आसक्ति के बिना। ठीक इसी प्रकार, 'मैं हूँ' का अनुभव रूप से आसक्ति के कारण होता है, न कि आसक्ति के बिना। 'मैं हूँ' का अनुभव वेदना (संवेदना) से, बोध से, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) से, ... चेतना से होता है, न कि आसक्ति के बिना।

"मित्र आनंद, आपके विचार में रूप स्थायी है या अस्थायी?" ... (जैसा कि पिछले सूत्र में है) ... "इस प्रकार देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' "

मित्रों, जब हम नवदीक्षित थे, तब पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने हमारी बहुत सहायता की थी। उन्होंने हमें उस उपदेश से अवगत कराया था। और जब मैंने उनके धम्म (मार्ग, नियम) के उपदेश सुने, तब मुझे धम्म का ज्ञान प्राप्त हुआ। 147

---

84. टिस्सा

सावत्थी में। उस अवसर पर, भगवान (बुद्ध) के चचेरे भाई, पूज्य तिस्सा ने कई भिक्षुओं को सूचित किया: "मित्रों, मेरा शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे नशा दिया गया हो, मैं भ्रमित हो गया हूँ, शिक्षाएँ अब मुझे स्पष्ट नहीं हैं। आलस्य और सुस्ती मेरे मन पर हावी हैं। मैं ब्रह्मचर्य का जीवन असंतुष्ट होकर व्यतीत कर रहा हूँ, और मुझे शिक्षाओं पर संदेह है।"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु को इस प्रकार संबोधित किया:
"आओ, भिक्षु तिस्सा को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

“जी, पूज्यवर,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया और पूज्य तिस्सा के पास जाकर उनसे कहा: “गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्र तिस्सा।”

“जी, मित्र,” पूज्य तिस्सा ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: “क्या यह सच है, तिस्सा, कि आपने कई भिक्षुओं को इस प्रकार बताया था: 'मित्रों, मेरा शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे नशा किया गया हो... और मुझे शिक्षाओं पर संदेह है'?”

“जी, पूज्यवर।”

“आप क्या सोचते हैं, तिस्सा, यदि कोई रूप के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं है, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, तो उस रूप के परिवर्तन और रूपांतरण से क्या भीतर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है?”

“जी, पूज्यवर।”

"अच्छा, अच्छा, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो रूप के प्रति वासना से रहित नहीं है। यदि कोई व्यक्ति वेदना (इंद्रिय) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) के प्रति वासना से रहित नहीं है, और उसके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) से रहित नहीं है, तो उस चेतना के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ क्या दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है?"

"जी, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो चेतना के प्रति वासना से रहित नहीं है। यदि कोई व्यक्ति रूप के प्रति वासना से रहित है, और उसके लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) से रहित है, तो उस रूप के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ क्या दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो रूप के प्रति वासना से रहित है। यदि कोई व्यक्ति वेदना (इंद्रिय) की वासना से रहित हो... बोध (बोध) की वासना से रहित हो... चेतना (चेतना) की वासना से रहित हो, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा से रहित हो, तो उस चेतना के परिवर्तन और रूपांतरण के साथ, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता उत्पन्न होती है।" और क्या भीतर निराशा उत्पन्न होती है?

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"वाह, वाह, तिस्सा! ऐसा ही है, तिस्सा, उस व्यक्ति के साथ जो चेतना की वासना से रहित है। तिस्सा, तुम क्या सोचते हो, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... - "इसलिए ... इस प्रकार देखकर ... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

"मान लो, तिस्सा, दो आदमी थे: एक मार्ग में अकुशल, दूसरा मार्ग में कुशल। मार्ग में अकुशल व्यक्ति कुशल व्यक्ति से मार्ग के बारे में एक प्रश्न पूछता, और बाद वाला कहता: 'आओ, भले आदमी, यह मार्ग है। इस पर थोड़ा आगे चलो और तुम्हें रास्ते में एक मोड़ दिखाई देगा। बाएँ हाथ की शाखा को छोड़ दो और दाएँ हाथ की शाखा पकड़ लो। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें एक घनी झाड़ी दिखाई देगी। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें एक विशाल दलदल दिखाई देगा। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें एक खड़ी चट्टान दिखाई देगी। थोड़ा और आगे जाओ और तुम्हें समतल भूमि का एक रमणीय विस्तार दिखाई देगा।"

"मैंने यह उपमा, तिस्सा, अर्थ समझाने के लिए गढ़ी है। इसका अर्थ यह है: 'मार्ग में अकुशल व्यक्ति': यह सांसारिक व्यक्ति के लिए है। 'मार्ग में कुशल व्यक्ति': यह तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए है। 'दोराहा मार्ग': यह संदेह के लिए है। 'बाईं शाखा': यह गलत अष्टमार्ग के लिए है; अर्थात् गलत दृष्टिकोण... गलत समाधि अवस्था के लिए। 'दाईं शाखा': यह आर्य अष्टमार्ग के लिए है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था के लिए। '

घनी झाड़ी': यह अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) के लिए है। 'विशाल दलदली भूमि': यह इंद्रिय सुखों के लिए है। 'खड़ी खाई': यह क्रोध के कारण निराशा के लिए है। 'समतल भूमि का रमणीय विस्तार': यह... निर्वाण।

"आनंदित हो, तिस्सा! आनंदित हो, तिस्सा! मैं तुम्हें सिखाने आया हूँ, तुम्हारी सहायता करने आया हूँ, तुम्हें उपदेश देने आया हूँ!"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पूज्य तिस्सा भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए। 150

---

85. यामाका

एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय यमक नामक एक भिक्षु के मन में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हुआ: "जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।" 151

अनेक भिक्षुओं ने यह हानिकारक विचार यमक नामक भिक्षु के मन में उत्पन्न होने की सूचना प्राप्त की। फिर वे पूज्य यमका के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "हे मित्र यमका, क्या यह सच है कि आपके मन में ऐसा हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है कि 'भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता'?" यमका ने कहा, "

बिल्कुल सही, मित्रों। भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।"

"मित्र यमका, ऐसा मत बोलो। भगवान (बुद्ध) का गलत अर्थ मत निकालो। भगवान (बुद्ध) का गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान (बुद्ध) ऐसा नहीं कहेंगे: 'जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के टूटने के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।' "

फिर भी, भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बावजूद, पूज्य यमका ने हठपूर्वक उस हानिकारक विचार को पकड़ लिया, उस पर अडिग रहे और घोषणा की: "जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के टूटने के साथ ही नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता।"

क्योंकि वे भिक्षु पूज्य यमका को उस हानिकारक विचार से विमुख नहीं कर सके, इसलिए वे अपने आसनों से उठे, पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उन्हें सारी घटना बताई, और आगे कहा: "यह अच्छा होगा यदि पूज्य सारिपुत्त करुणावश भिक्षु यमका के पास जाएँ।" पूज्य सारिपुत्त ने मौन रहकर सहमति दी।

फिर, शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए। वे पूज्य यमका के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "क्या यह सच है, मित्र यमका, कि आपके मन में ऐसा हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है: 'जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता'?"

"बिल्कुल, मित्र।"

"मित्र यमका, तुम्हारा क्या विचार है, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, मित्र।"... - "अतः ... ऐसा देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं बचा है।' 152

"मित्र यमका, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।" - "क्या आप तथागत को वेदना, संज्ञा, संवेदन, क्रिया और विज्ञान के रूप में देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।" "मित्र यमका, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखते हैं?"
- "नहीं, मित्र।" - "क्या आप तथागत को साकार रूप में देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।"

- "क्या आप तथागत को वेदना में देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें संवेदन में देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें संवेदन से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं? क्या आप उन्हें वेदना से अलग देखते हैं?" - "नहीं, मित्र।"

"हे मित्र यमका, क्या तुम रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना को एक साथ तथागत मानते हो?" - "नहीं, मित्र।"

"हे मित्र यमका, क्या तुम तथागत को निराकार, वेदना रहित, बोध रहित, संस्कार रहित और चेतना रहित मानते हो?" - "नहीं, मित्र।" 153

"परन्तु, मित्र, जब तुम तथागत को इस जीवन में वास्तविक और साकार रूप में नहीं देख पाते; 154 तो क्या यह कहना उचित है कि 'जैसा कि मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, वह शरीर के विखंडन के साथ नष्ट हो जाता है और मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहता'?"

"हे मित्र सारिपुत्त, पहले जब मैं अज्ञानी था, तब मैं उस हानिकारक विचार को मानता था, परन्तु अब जब मैंने पूज्य सारिपुत्त की यह धम्म शिक्षा सुनी है, तो मैंने उस हानिकारक विचार को त्याग दिया है और धम्म में प्रवेश कर लिया है।" 155

"यदि हे मित्र यमक, आपसे पूछा जाए: 'हे मित्र यमक, जब कोई भिक्षु अरहंत हो जाता है, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं, तो मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ उसका क्या होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप क्या उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह पूछें, मित्र, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा:
'मित्रों, रूप क्षणभंगुर है; जो क्षणभंगुर है वह दुख है; जो दुख है वह समाप्त हो गया है और बीत गया है। वेदना ... बोध ... संस्कार ... चेतना क्षणभंगुर है; जो क्षणभंगुर है वह दुख है; जो दुख है वह समाप्त हो गया है और बीत गया है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, मित्र, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।" 156

"वाह, वाह, मित्र यमका! अब, मित्र यमका, मैं आपको इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट रूप से समझाने के लिए एक उपमा देता हूँ। मान लीजिए, मित्र यमका, एक गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र है, जो धनवान है, उसके पास बहुत धन-संपत्ति है और वह अंगरक्षकों द्वारा संरक्षित है। तभी कोई व्यक्ति आता है जो उसे बर्बाद करना चाहता है, उसे हानि पहुँचाना चाहता है, उसे खतरे में डालना चाहता है, उसकी जान लेना चाहता है। उस व्यक्ति के मन में यह विचार आता है: 'यह गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र धनवान है, उसके पास बहुत धन-संपत्ति है और वह अंगरक्षकों द्वारा संरक्षित है। बलपूर्वक उसकी जान लेना आसान नहीं होगा। मुझे उसके पास जाकर उसकी जान ले लेनी चाहिए।'

फिर वह उस गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र के पास जाकर कहता है: 'मैं आपकी सेवा करूँगा, महोदय।' तब गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र उसे अपना सेवक नियुक्त कर लेता है। वह व्यक्ति उसकी सेवा करता है, उसके सामने खड़ा होता है, उसके पीछे चलता है, उसकी हर इच्छा पूरी करता है, उसका आचरण सौम्य और वाणी मधुर होती है।" गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उसे मित्र मानता था, 157 घनिष्ठ मित्र, और उस पर भरोसा करता था। परन्तु जब उस व्यक्ति को पता चलता था कि गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र ने उस पर भरोसा किया है, तो उसे अकेला पाकर वह तेज चाकू से उसकी हत्या कर देता था।

“हे मित्र यमका, जब वह व्यक्ति उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के पास जाकर उससे कहता था: 'मैं आपकी सेवा करूंगा, महोदय', तो क्या वह तब भी हत्यारा नहीं था, यद्यपि दूसरे ने उसे 'मेरा हत्यारा' नहीं पहचाना? और जब वह व्यक्ति उसकी सेवा करता था, उसके सामने खड़ा होता था, उसके पीछे जाता था, उसकी हर इच्छा पूरी करता था, उसका आचरण सुखद था, उसकी वाणी मधुर थी, तो क्या वह तब भी हत्यारा नहीं था, यद्यपि दूसरे ने उसे 'मेरा हत्यारा' नहीं पहचाना? और जब वह व्यक्ति उस पर अकेले में आकर तेज चाकू से उसकी हत्या कर देता था, तो क्या वह तब भी हत्यारा नहीं था, यद्यपि दूसरे ने उसे 'मेरा हत्यारा' नहीं पहचाना?”

“हाँ, मित्र।”

"इसी प्रकार, हे मित्र यमका, 158 अज्ञानी सांसारिक प्राणी, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो श्रेष्ठ पुरुषों का द्रष्टा नहीं है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है।

वह वेदना को आत्मा मानता है... अनुभूति को आत्मा मानता है... संशय को आत्मा मानता है... चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है।

वह वास्तव में अनित्य रूप को 'अनित्य रूप' के रूप में नहीं समझता 159... अनित्य संवेदना को 'अनित्य संवेदना' के रूप में नहीं समझता... अनित्य अनुभूति को 'अनित्य अनुभूति' के रूप में नहीं समझता..." अनित्य संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को 'अनंत संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)' के रूप में... अनित्य चेतना को 'अनंत चेतना' के रूप में।

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह पीड़ादायक रूप है, 'पीड़ादायक रूप'... पीड़ादायक संवेदना (वेदना) 'पीड़ादायक संवेदना (वेदना)'... पीड़ादायक अनुभूति 'पीड़ादायक अनुभूति'... पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'पीड़ादायक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... पीड़ादायक चेतना 'पीड़ादायक चेतना'।

वह यह नहीं समझता कि वास्तव में यह निस्वार्थ रूप है, 'निस्वार्थ संवेदना (वेदना)'... निस्वार्थ अनुभूति 'निस्वार्थ अनुभूति'... निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) 'निस्वार्थ संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)'... निस्वार्थ चेतना 'निस्वार्थ चेतना'।

वह यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में यह संबद्ध रूप है, 'संबद्ध रूप'... संबद्ध संवेदना है, 'संबद्ध संवेदना'... संबद्ध बोध है, संबद्ध संस्कार है, और संबद्ध चेतना है। वह यह नहीं समझ पाता कि

वास्तव में यह घातक रूप है, 'घातक रूप'... घातक संवेदना है, घातक बोध है, घातक संस्कार है, और घातक चेतना है।

वह रूप में संलग्न हो जाता है, उससे आसक्त हो जाता है, और उसे 'मेरा स्व' मानकर उस पर स्थिर हो जाता है। 160 वह वेदना (इंद्रिय) में संलग्न हो जाता है... संज्ञा (संज्ञा) में... संस्कार (व्यवहार-आधार) में... चेतना में, उससे आसक्त हो जाता है और उसे 'मेरा स्व' मानकर उस पर स्थिर हो जाता है। आसक्ति के ये पाँच समूह (स्कंध (संज्ञा)) जिनमें वह संलग्न हो जाता है और जिनसे वह आसक्त रहता है, उसे लंबे समय तक हानि और पीड़ा पहुँचाते हैं।

"परन्तु, हे मित्र, ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठों का द्रष्टा है... रूप को आत्मा नहीं मानता, न आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न रूप को आत्मा में मानता है, न आत्मा को रूप में मानता है।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही चेतना से युक्त आत्मा को, न ही आत्मा में चेतना को, न ही चेतना में आत्मा को।

वह अनित्य रूप को 'अनित्य रूप', अनित्य वेदना को 'अनित्य वेदना', अनित्य बोध को 'अनित्य बोध', अनित्य संस्कार को 'अनित्य संस्कार', अनित्य चेतना को 'अनित्य चेतना' समझता है।

वह पीड़ादायक रूप को 'पीड़ादायक रूप', पीड़ादायक वेदना को 'पीड़ादायक वेदना', पीड़ादायक अनुभूति को 'पीड़ादायक अनुभूति', पीड़ादायक संस्कारों को 'पीड़ादायक संस्कारों' और पीड़ादायक चेतना को 'पीड़ादायक चेतना' के रूप में समझते हैं। वह निस्वार्थ

रूप को 'निस्वार्थ रूप', निस्वार्थ वेदना को 'निस्वार्थ अनुभूति', निस्वार्थ अनुभूति को 'निस्वार्थ अनुभूति', निस्वार्थ संस्कारों को 'निस्वार्थ संस्कारों' और निस्वार्थ चेतना को 'निस्वार्थ चेतना' के रूप में समझते हैं।

वह संबद्ध रूप को 'संबद्ध रूप', संबद्ध संवेदना को 'संबद्ध संवेदना', संबद्ध बोध को 'संबद्ध बोध', संबद्ध संभाव्यता को 'संबद्ध संभाव्यता' और संबद्ध चेतना को 'संबद्ध चेतना' के रूप में समझता है।

वह घातक रूप को 'घातक रूप', घातक संवेदना को 'घातक संवेदना', घातक बोध को 'घातक बोध', घातक संभाव्यता को 'घातक संभाव्यता' और घातक चेतना को 'घातक चेतना' के रूप में समझता है।

वह रूप से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे 'अपना' नहीं मानता। वह संवेदना से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे 'अपना' नहीं मानता। वह बोध से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे अपना 'स्व' नहीं मानता। वह संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे अपना 'स्व' नहीं मानता। वह चेतना से संलग्न नहीं होता, उससे आसक्त नहीं होता और उसे अपना 'स्व' नहीं मानता। आसक्ति के ये पाँचों समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), जिनसे वह संलग्न नहीं होता और जिनसे वह आसक्त नहीं होता, उसे दीर्घकाल तक सुख और कल्याण प्रदान करते हैं।

"हे मित्र सारिपुत्त, यही कारण है कि जिन पूजनीय भिक्षुओं के पास ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करने वाले ऐसे दयालु और परोपकारी भिक्षु हैं, वे उन्हें उपदेश और शिक्षा देते हैं। और अब जब मैंने पूज्य सारिपुत्त का यह धम्म उपदेश सुन लिया है, तो अनासक्ति के कारण मेरा मन विमुक्त हो गया है।" 161

पूज्य सारिपुत्त ने यही कहा। पूज्य सारिपुत्त के इस कथन से प्रसन्न होकर पूज्य यमका प्रसन्न हुए।

---

86. अनुराधा

एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। 162 उस समय पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर एक वन कुटिया में निवास कर रही थीं। तभी अन्य संप्रदायों के कई तपस्वी पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"मित्र अनुराधा, जब कोई तथागत किसी अन्य तथागत का वर्णन करते हैं - जो सर्वोच्च प्रकार के व्यक्ति, परम पुरुष, सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले हैं - तो वे उनका वर्णन इन चार स्थितियों के संदर्भ में करते हैं: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं,' या 'तथागत मृत्यु

के बाद विद्यमान नहीं रहते,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते,' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते।'"

यह सुनकर पूज्य अनुराधा ने उन तपस्वियों से कहा: "मित्रों, जब कोई तथागत किसी अन्य तथागत का वर्णन करते हैं - जो सर्वोच्च प्रकार के व्यक्ति, परम पुरुष, सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले हैं - तो वे उनका वर्णन इन चार स्थितियों से अलग करते हैं: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते,' या 'मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते।' तथागत न तो मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं और न ही मृत्यु के बाद नहीं। 164

जब यह कहा गया, तो उन तपस्वियों ने पूज्य अनुराधा से कहा: "यह भिक्षु अवश्य ही नवदीक्षित है, दीक्षा प्राप्त किए हुए (पबज्जित) नहीं है; या यदि वह वरिष्ठ है, तो वह अकुशल और बचकाना (नासमझ) होगा।"

तब अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों ने पूज्य अनुराधा को "नवदीक्षित" और "बचकाना (नासमझ)" कहकर अपमानित किया और अपने स्थानों से उठकर चले गए।

फिर, उन तपस्वियों के चले जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य अनुराधा के मन में यह विचार आया: "यदि दूसरे संप्रदायों के वे तपस्वी मुझसे और प्रश्न करें, तो मैं कैसे उत्तर दूँ ताकि मुझे वही कहना है जो भगवान (बुद्ध) ने कहा है और मैं उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत न करूँ? और मैं धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाऊँ ताकि मेरे कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना का आधार न बने?"

तब पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) के पास गईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और भगवान (बुद्ध) को सब कुछ बताया जो हुआ था, और पूछा: "यदि दूसरे संप्रदायों के वे तपस्वी मुझसे और प्रश्न करें, तो मैं कैसे उत्तर दूँ... ताकि मेरे कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना का आधार न बने?"

"अनुराधा, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।"... - "इसलिए... इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

अनुराधा, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखती हैं? - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - "क्या आप वेदना, संज्ञा, संवेदन, संस्कार, विज्ञान, चेतना को तथागत मानती हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - अनुराधा

, क्या आप तथागत को साकार रूप में देखती हैं? - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - "क्या आप तथागत को साकार रूप में देखती हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।" - "क्या आप तथागत को वेदना में देखती हैं? क्या वे वेदना से भिन्न हैं? क्या वे संवेदन में हैं? क्या वे संवेदन से भिन्न हैं? क्या वे संस्कार में हैं? क्या वे संस्कार से भिन्न हैं? क्या वे चेतना में हैं? क्या वे चेतना से भिन्न हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

अनुराधा, आपका क्या विचार है? क्या आप रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना को एक साथ तथागत मानते हैं? - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"अनुराधा, आपका क्या विचार है? क्या आप तथागत को निराकार, वेदना रहित, बोध रहित, संस्कार रहित और चेतना रहित मानते हैं?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।" "

परन्तु अनुराधा, जब आप तथागत को इस जीवन में वास्तविक और साकार रूप में नहीं देख पाते, तो क्या यह कहना उचित है कि 'मित्रों, जब तथागत किसी अन्य तथागत का वर्णन करते हैं - सर्वोच्च पुरुष, परम पुरुष, सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने वाले - तो वे उनका वर्णन इन चार स्थितियों से अलग करते हैं: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं,' या ... 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"शाबाश, शाबाश, अनुराधा! अनुराधा, पहले भी और अब भी, मैं तुम्हें न्यायसंगत दुख और दुख के निवारण (निरोध) के बारे में बताता हूँ।" 165

---

87. वक्काली
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य वक्कली एक कुम्हार की कुटिया में बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। 166 तब पूज्य वक्कली ने अपने सेवकों को संबोधित करते हुए कहा:

"आओ, मित्रों, भगवान (बुद्ध) के पास आओ, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और कहो: 'पूज्यवर, भिक्षु वक्कली बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं; वे भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।'" फिर कहिए: "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश भिक्षु वक्कली के पास जाएँ तो अच्छा होगा।" "

जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अपना संदेश दिया। भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किया और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य वक्कली के पास गए। पूज्य वक्कली ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और अपने पलंग पर करवट बदली। 167 भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "बस करो, वक्कली, अपने पलंग पर मत करवट बदलो। ये आसन तैयार हैं, मैं वहीं बैठ जाता हूँ।"

तब भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और पूज्य वक्कली से बोले, "आशा है कि तुम ठीक हो, वक्कली, तुम्हारी सेहत में सुधार हो रहा है। आशा है कि तुम्हारी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, बढ़ना नहीं।"

"पूज्यवर, मेरी सेहत ठीक नहीं हो रही है, मेरी सेहत में सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, कम होना नहीं।"

"तो फिर, वक्कली, आशा है कि तुम पश्चाताप और पछतावे से व्याकुल नहीं हो।"

"जी हाँ, पूज्यवर, मुझे बहुत पश्चाताप और पछतावा है।"

"आशा है, वक्कली, कि तुम्हें सद्गुणों के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है।"

"पूज्यवर, सद्गुणों के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है।"

"तो फिर, वक्कली, यदि तुम्हें सद्गुणों के विषय में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है, तो तुम पश्चाताप और अफसोस से क्यों व्याकुल हो?"

"हे पूज्यवर, मैं बहुत समय से भगवान (बुद्ध) के दर्शन करने की इच्छा रखता रहा हूँ, परन्तु मेरी शारीरिक क्षमता नहीं रही है।"

"बस करो, वक्कली! तुम इस क्षुद्र शरीर को क्यों देखना चाहते हो? जो ध्यान में धम्म (सत्य, नियम) देखता है, वह मुझे देखता है; जो मुझे देखता है, वह धम्म को देखता है। 168 क्योंकि हे वक्कली, धम्म को ध्यान में देखने से मुझे देखा जा सकता है; और मुझे देखने से धम्म को देखा जा सकता है।"

"वक्काली, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" (इसी प्रकार संवेदना, चेतना, संस्कार और चेतना के लिए भी) - "इसलिए... ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य वक्काली को यह उपदेश देकर अपने आसन से उठकर गिद्ध शिखर पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य वक्काली ने अपने सेवकों से कहा: "आओ, मित्रों, मुझे इस पलंग पर उठाओ और मुझे इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर ले चलो। 169 मुझ जैसा व्यक्ति घरों के बीच मरने के बारे में कैसे सोच सकता है?"

"जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और पूज्य वक्काली को पलंग पर उठाकर इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर ले गए।

भगवान (बुद्ध) ने उस दिन और रात का शेष समय गिद्ध शिखर पर्वत पर बिताया। फिर, जब रात काफी आगे बढ़ चुकी थी, दो अत्यंत सुंदर देवदूत भगवान (बुद्ध) के पास आए और उन्होंने गिद्ध शिखर पर्वत को पूरी तरह से प्रकाशित कर दिया। एक तरफ खड़े होकर, एक देवदूत ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, भिक्षु वक्कली मुक्ति (विमोक्ष) के लिए तत्पर हैं।" 170 दूसरे देवदूत ने कहा: "हे प्रभु, वे निश्चित रूप से पूर्णतः मुक्त व्यक्ति की तरह मुक्त (विमुक्त) हो जाएंगे।" 171 देवताओं ने यही कहा। यह कहकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

फिर, जब रात बीत गई, तो भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "आओ, भिक्षुओं, भिक्षु वक्कली के पास जाओ और उससे कहो: 'मित्र वक्कली, भगवान (बुद्ध) [122] और दो देवताओं का वचन सुनो। मित्र, पिछली रात, जब रात काफी आगे बढ़ चुकी थी, दो अत्यंत सुंदर देवता भगवान (बुद्ध) के पास आए। एक देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, भिक्षु वक्कली मोक्ष प्राप्त करने के लिए तत्पर हैं।" दूसरे देवता ने कहा: "निश्चित रूप से, आदरणीय महोदय, वे पूर्णतः मुक्त व्यक्ति की तरह मुक्त हो जाएंगे।" और भगवान (बुद्ध) तुमसे कहते हैं, मित्र वक्कली: "डरो मत, वक्कली, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी। तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा।"

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और पूज्य वक्कली के पास जाकर उनसे कहा: "मित्र वक्कली, भगवान (बुद्ध) और दो देवताओं के वचन सुनो।"

तब पूज्य वक्कली ने अपने सेवकों से कहा: "आओ, मित्रों, मुझे पलंग से नीचे उतारो। मुझ जैसा व्यक्ति ऊंचे आसन पर बैठकर भगवान (बुद्ध) के उपदेश सुनने के बारे में कैसे सोच सकता है?"

"जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और पूज्य वक्कली को पलंग से नीचे उतार दिया।

"कल रात, मित्र, दो अत्यंत सुंदर देवता भगवान (बुद्ध) के पास आए। एक देवता ने भगवान (बुद्ध) से कहा: 'आदरणीय महोदय, भिक्षु वक्कली मुक्ति (विमोक्ष) के लिए तत्पर हैं।' दूसरे देवता ने कहा: 'निश्चित रूप से, आदरणीय महोदय, वे पूर्णतः मुक्त व्यक्ति की तरह मुक्त हो जाएँगे।' और भगवान (बुद्ध) तुमसे कहते हैं, मित्र वक्कली: 'डरो मत, वक्कली, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी। तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा।' "

तो फिर, मित्रों, मेरे नाम से भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और कहो: 'आदरणीय महोदय, भिक्षु वक्कली बीमार हैं, पीड़ित हैं, गंभीर रूप से बीमार हैं; वे भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।' तब कहें: "रूप क्षणभंगुर है: हे पूज्यवर, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो कुछ क्षणभंगुर है वह दुखदायी है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसके प्रति मुझमें कोई इच्छा, वासना या स्नेह नहीं है। वेदना क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है... हे पूज्यवर, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो कुछ क्षणभंगुर है वह दुखदायी है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसके प्रति मुझमें कोई इच्छा, वासना या स्नेह नहीं है।"

"जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और फिर वे चले गए। फिर, उन भिक्षुओं के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य वक्काली ने चाकू का प्रयोग किया। 172

तब वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए और अपना संदेश दिया। भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा, "आओ, भिक्षुओं, हम इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर चलें, जहाँ कुल के वक्काली ने चाकू का प्रयोग किया है।"

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध),
कुछ भिक्षुओं के साथ, इसिगिली ढलान पर स्थित काले पत्थर पर गए। भगवान (बुद्ध) ने दूर से पूज्य वक्काली को पलंग पर कंधे घुमाए लेटे हुए देखा।

उस समय धुएँ का एक बादल, अंधकार का एक बवंडर, पूर्व की ओर, फिर पश्चिम की ओर, उत्तर की ओर, दक्षिण की ओर, ऊपर की ओर, नीचे की ओर और मध्य दिशाओं की ओर बढ़ रहा था। तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, क्या तुम उस धुएँ के बादल को, उस अंधकार के भंवर को देख रहे हो, जो पूर्व की ओर, फिर पश्चिम की ओर, उत्तर की ओर, दक्षिण की ओर, ऊपर की ओर, नीचे की ओर और मध्य दिशाओं की ओर बढ़ रहा है?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"हे भिक्षुओं, वह दुष्ट मारा (शैतान) है जो कुल के वक्कली की चेतना की खोज कर रहा है, और सोच रहा है: 'कुल के वक्कली की चेतना अब कहाँ स्थापित है?' परन्तु हे भिक्षुओं, चेतना स्थापित न होने के कारण, कुल के वक्कलि ने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

---

88. असाजी
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य असाजी कस्सपक उद्यान में बीमार, व्यथित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे।

(जैसा कि पिछले सूत्र 87 में है, नीचे तक:)

"हे असाजी, यदि आपको सद्गुण (शील) के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है, तो आप पश्चाताप और खेद से क्यों व्याकुल हैं?"

"हे पूज्यवर, पहले जब मैं बीमार था, तब मैं शारीरिक संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) को समाधि में शांत करता रहता था, परन्तु अब मुझे समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं होती। 173 क्योंकि मुझे समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं होती, इसलिए मेरे मन में यह विचार आता है: 'मुझे भटकना नहीं चाहिए!' "

हे असाजी, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो समाधि की अवस्था को सार मानते हैं और समाधि की अवस्था को तपस्या के साथ जोड़ते हैं, 174 समाधि की अवस्था प्राप्त न कर पाने पर शायद सोचें, 'हमें भटकना नहीं चाहिए!'"

"आप क्या सोचते हैं, असाजी, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" (इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार और चेतना के लिए) - "इसलिए... इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' 175

"यदि उसे सुखद संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह अस्थायी है'; वह समझता है: 'इससे जुड़ा नहीं जा सकता'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे पीड़ादायक संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह अस्थायी है'; वह समझता है: 'इससे जुड़ा नहीं जा सकता'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह अस्थायी है'; वह समझता है:
'इससे जुड़ा नहीं जा सकता'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।'"

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है।

जब उसे शरीर से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे शरीर से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' जब उसे जीवन से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे जीवन से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' वह समझता है: 'जीवन के समाप्त होने के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'

"जैसे, असाजी, तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जलता है, और तेल और बाती के समाप्त होने पर ईंधन की कमी के कारण बुझ जाता है, वैसे ही, असाजी, जब एक भिक्षु को शरीर से विलीन होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है..." ...जीवन के साथ

समाप्त होते हुए... वह समझता है: 'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन की समाप्ति के बाद, जो कुछ भी महसूस किया जाता है, खुश न होने पर, यहीं पर सब कुछ अच्छा लगने लगेगा।

---

89. खेमाका

एक बार कई वरिष्ठ भिक्षु कोसंबी में स्थित घोषिता उद्यान में ठहरे हुए थे। उसी समय पूज्य खेमक बेर के वृक्ष उद्यान में रह रहे थे, वे बीमार और अत्यंत विक्षिप्त थे।

शाम को वे वरिष्ठ भिक्षु एकांतवास से बाहर आए और पूज्य दासक से कहा, "हे मित्र दासक, आओ, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो:
'वरिष्ठ भिक्षु तुमसे कहते हैं, मित्र खेमक: हमें आशा है कि तुम धैर्य रख रहे हो, हमें आशा है कि तुम स्वस्थ हो रहे हो। हमें आशा है कि तुम्हारी पीड़ा (वेदना) कम हो रही है, बढ़ नहीं रही है, और यह कमी ही ध्यान देने योग्य है, न कि वृद्धि।'"

"जी मित्रों," पूज्य दासक ने उत्तर दिया और वे पूज्य खेमक के पास जाकर उन्हें अपना संदेश दिया।

[आदरणीय खेमाका ने उत्तर दिया:] "मित्र, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें कम नहीं हो रही हैं, बल्कि बढ़ रही हैं, और यही बात ध्यान देने योग्य है कि वे कम नहीं हो रही हैं।"

तब आदरणीय दासका वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए और आदरणीय खेमाका की कही हुई बातें उन्हें बताईं। उन्होंने उससे कहा: "आओ, मित्र दासका, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो: 'हे मित्र खेमक, बड़ों ने तुमसे कहा है: हे मित्र, इन पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) का वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, सजीव रूप, सजीव वेदना, सजीव अनुभूति, सजीव संस्कार, सजीव क्रिया और सजीव चेतना। क्या आदरणीय खेमक इन पाँचों सजीव स्कंधों में से किसी को आत्मा या आत्मा से संबंधित मानते हैं?'"

"जी हाँ, मित्रों," आदरणीय दासका ने उत्तर दिया और वे आदरणीय खेमक के पास जाकर उन्हें अपना संदेश दिया।

[आदरणीय खेमाका ने उत्तर दिया:] "इन पाँच स्कंदनों (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का उल्लेख भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, स्कंदन के अधीन रूप स्कंदन (इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार)... स्कंदन के अधीन चेतना स्कंदन। इन पाँच स्कंदनों में से मैं किसी को भी आत्मा या आत्मा से संबंधित नहीं मानता।"

तब पूज्य दासक ने वरिष्ठ भिक्षुओं के पास जाकर पूज्य खेमक की कही बात बताई। उन्होंने उत्तर दिया, "हे मित्र दासक, आओ, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो: 'वरिष्ठ भिक्षु तुमसे कहते हैं, मित्र खेमक: हे मित्र, इन पाँच आसक्ति-ग्रस्त स्कंधों का वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, आसक्ति-ग्रस्त रूप स्कंध (उपादान संक्रिया)... (इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार)... आसक्ति-ग्रस्त चेतना स्कंध। यदि पूज्य खेमक इन पाँच आसक्ति-ग्रस्त स्कंधों में से किसी को भी आत्मा या आत्मा से संबंधित नहीं मानते, तो वे अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।'"

"जी, मित्रों," पूज्य दासक ने उत्तर दिया और वे पूज्य खेमक के पास जाकर उन्हें अपना संदेश दिया।

[आदरणीय खेमाका ने उत्तर दिया:] "इन पाँच स्कंदनों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का उल्लेख भगवान (बुद्ध) ने किया है; अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त रूप स्कंदन... आसक्ति से ग्रस्त चेतना स्कंदन। मैं इन पाँच स्कंदनों में से किसी को भी आत्मा या आत्मा से संबंधित नहीं मानता, फिर भी मैं अर्हंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो गए हों। मित्रों, इन पाँच स्कंदनों के संबंध में 'मैं हूँ' की धारणा अभी तक मुझमें विलीन नहीं हुई है, परन्तु मैं इनमें से किसी को भी 'यह मैं हूँ' नहीं मानता।" 176

तब आदरणीय दासक वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए और आदरणीय खेमाका की कही हुई बातें उन्हें बताईं। उन्होंने उत्तर दिया:
"आओ, मित्र दासका, भिक्षु खेमक के पास जाओ और उनसे कहो: 'वरिष्ठ भिक्षु तुमसे कहते हैं, मित्र खेमक: मित्र खेमक, जब तुम इस 'मैं हूँ' की बात करते हो - तो तुम 'मैं हूँ' किसे कहते हो? क्या तुम रूप को 'मैं हूँ' कहते हो, या रूप से अलग 'मैं हूँ' कहते हो? क्या तुम वेदना... बोध... संस्कार... चेतना... को 'मैं हूँ' कहते हो, या चेतना से अलग 'मैं हूँ' कहते हो?
मित्र खेमक, जब तुम इस 'मैं हूँ' की बात करते हो, तो तुम 'मैं हूँ' किसे कहते हो?" "

जी, मित्रों," पूज्य दासका ने उत्तर दिया, और वे पूज्य खेमक के पास गए और अपना संदेश दिया।

"बस करो, मित्र दासका! बार-बार इधर-उधर क्यों भाग रहे हो? मेरी छड़ी लाओ, मित्र। मैं स्वयं वरिष्ठ भिक्षुओं के पास जाता हूँ।"

फिर पूज्य खेमाका अपनी छड़ी के सहारे खड़े होकर वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। वरिष्ठ भिक्षुओं ने उनसे कहा,
"मित्र खेमाका, जब आप इस 'मैं हूँ' की बात करते हैं... तो आप 'मैं हूँ' से किस बात का जिक्र कर रहे हैं?"

"मित्रों, मैं रूप को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित नहीं करता, न ही रूप से अलग 'मैं हूँ' कहता हूँ। मैं वेदना को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित नहीं करता... न ही अनुभूति को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ... न ही संस्कार को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ... न ही चेतना को 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ, न ही चेतना से अलग 'मैं हूँ' कहकर संबोधित करता हूँ। मित्रों, यद्यपि आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों के संबंध में 'मैं हूँ' की धारणा मुझमें अभी तक विलीन नहीं हुई है, फिर भी मैं इनमें से किसी को भी 'यह मैं हूँ' नहीं मानता।"

"मान लीजिए, मित्रों, नीले, लाल या सफेद कमल की सुगंध है।" क्या कोई सही कह रहा होगा यदि वह कहे, 'सुगंध पंखुड़ियों की है,' या 'सुगंध डंठल की है,' 177 या 'सुगंध स्त्रीकेसर की है'? "

नहीं, मित्र।"

"और मित्रों, सही उत्तर देने के लिए कैसे उत्तर देना चाहिए?"

"सही उत्तर देते हुए, मित्र, उत्तर देना चाहिए: 'सुगंध फूल की है।'"

"इसी प्रकार, मित्रों, मैं रूप को 'मैं हूँ' नहीं कहता, न ही मैं रूप से अलग 'मैं हूँ' कहता हूँ। मैं वेदना को 'मैं हूँ' नहीं कहता... न ही अनुभूति को 'मैं हूँ'... न ही संस्कार को 'मैं हूँ'... न ही चेतना को 'मैं हूँ' कहता हूँ, न ही मैं चेतना से अलग 'मैं हूँ' कहता हूँ।" मित्रों, यद्यपि इन पाँच स्कंधों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के संबंध में मुझमें 'मैं हूँ' की धारणा अभी तक विलीन नहीं हुई है, फिर भी मैं इनमें से किसी को भी 'यह मैं हूँ' नहीं मानता।

"मित्रों, यद्यपि एक श्रेष्ठ शिष्य पाँच निम्न बंधनों का त्याग कर लेता है, फिर भी आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के संबंध में, उसके भीतर एक अवशिष्ट अहंकार 'मैं हूँ', एक इच्छा 'मैं हूँ', एक अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय संस्कृत: अनुषय) 'मैं हूँ' शेष रहती है, जो अभी तक उखड़ी नहीं है। कुछ समय बाद वह आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों के उदय और पतन (उदय-व्यवहार) पर ध्यान लगाते हुए कहता है: 'ऐसा रूप है, ऐसा इसका उद्‌गम है, ऐसा इसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार) हैं... ऐसी चेतना है, ऐसा इसका उद्‌गम है, ऐसा इसका क्षय है।'" जब वह आसक्ति के अधीन पांचों स्कंधों में होने वाले उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, तो उसमें निहित अहंकार 'मैं हूं', इच्छा 'मैं हूं' और अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) 'मैं हूं' जो अभी तक जड़ से उखड़ी नहीं थी, वह जड़ से उखड़ जाती है।

"मान लीजिए, मित्रों, एक कपड़ा गंदा और दागदार हो गया है, और उसके मालिक उसे धोबी को देते हैं। धोबी उसे नमक, क्षार या गोबर से अच्छी तरह रगड़कर साफ पानी में धोएगा। यद्यपि वह कपड़ा शुद्ध और साफ हो जाएगा, फिर भी उसमें नमक, क्षार या गोबर की बची हुई गंध रह जाएगी जो अभी तक गायब नहीं हुई है। धोबी उसे वापस मालिकों को दे देगा। मालिक उसे एक सुगंधित डिब्बे में रखेंगे, और नमक, क्षार या गोबर की बची हुई गंध गायब हो जाएगी जो अभी तक गायब नहीं हुई है। 178

"इसी प्रकार, मित्रों, यद्यपि एक श्रेष्ठ शिष्य ने पाँच निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है, फिर भी, आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के संबंध में, उसमें 'मैं हूँ' का अवशिष्ट अहंकार, 'मैं हूँ' की इच्छा और 'मैं हूँ' की अंतर्निहित प्रवृत्ति बनी रहती है जो अभी तक समाप्त नहीं हुई है।" जड़ से उखड़ गया... जब वह आसक्ति के अधीन पांच स्कंधों में उदय-अवरोह (उदय-व्य) का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हैं, तो शेष अहंकार 'मैं हूं', इच्छा 'मैं हूं', और अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) 'मैं हूं' जो अभी तक उखड़ी नहीं थी, वह उखड़ जाती है।"

यह सुनकर वरिष्ठ भिक्षुओं ने पूज्य खेमक से कहा: "हमने पूज्य खेमक को परेशान करने के लिए प्रश्न नहीं पूछे थे, बल्कि हमने सोचा था कि पूज्य खेमक भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं की विस्तार से व्याख्या, शिक्षण, प्रचार, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण

करने में सक्षम होंगे।" और पूज्य खेमाका ने भगवान (बुद्ध) की शिक्षाओं की विस्तृत व्याख्या, अध्यापन, प्रचार, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया है।"

पूज्य खेमाका ने यही कहा। पूज्य खेमाका के इस कथन से प्रसन्न होकर वरिष्ठ भिक्षु प्रसन्न हुए। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब साठ वरिष्ठ भिक्षुओं और पूज्य खेमाका के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

---

90. चन्ना
एक बार कई भिक्षु इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। तब, शाम को, पूज्य चन्ना एकांतवास से बाहर आए और अपनी चाबी लेकर एक-एक घर जाकर वरिष्ठ भिक्षुओं से कहने लगे:
"वरिष्ठ पूज्य भिक्षु मुझे उपदेश दें, मुझे धर्म का प्रवचन दें, मुझे धर्म का ऐसा उपदेश दें कि मैं धर्म को समझ सकूँ।" 179

जब यह कहा गया, तो वरिष्ठ भिक्षुओं ने पूज्य चन्ना से कहा: "हे मित्र चन्ना, रूप क्षणभंगुर है, वेदना क्षणभंगुर है, अनुभूति क्षणभंगुर है, संस्कार क्षणभंगुर हैं, चेतना क्षणभंगुर है। रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, अनुभूति अनात्म है, संस्कार अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। सभी संस्कार क्षणभंगुर हैं; सभी घटनाएँ अनात्म हैं।" 180

तब पूज्य चन्ना के मन में यह विचार आया: "मैं भी इसी प्रकार सोचता हूँ: 'रूप क्षणभंगुर है... चेतना क्षणभंगुर है। रूप अनात्म है... चेतना अनात्म है। सभी संस्कार (व्यवहार-आदतें) क्षणभंगुर हैं; सभी घटनाएँ (धर्म) अनात्म हैं।' परन्तु मेरा मन समस्त संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को शांत करने, समस्त भोगों (उपाधि) का त्याग करने, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का नाश करने, वैराग्य, निरोध और निर्वाण की ओर अग्रसर नहीं होता; न ही वह विश्वास प्राप्त करता है, स्थिर होता है और उस पर संकल्प लेता है। इसके विपरीत, बेचैनी और आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है और मन यह सोचते हुए पीछे मुड़ जाता है: 'परन्तु मेरा 'स्व' कौन है?'" 181 परन्तु जो ध्यान में धम्म को देखता है, उसके साथ ऐसा नहीं होता। तो मुझे धम्म का ऐसा शिक्षण कौन दे सकता है जिससे मैं ध्यान में धम्म को देख सकूँ?

तब पूज्य चन्ना के मन में विचार आया: "यह पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास करते हैं, और गुरु ने उनकी प्रशंसा की है तथा ब्रह्मचर्य जीवन में उनके ज्ञानी भिक्षु उन्हें आदर देते हैं। पूज्य आनंद मुझे धम्म का ऐसा शिक्षण दे सकते हैं जिससे मैं धम्म को देख सकूँ। क्योंकि मुझे पूज्य आनंद पर इतना विश्वास है, इसलिए मैं उनसे मिलता हूँ।"

तब पूज्य चन्ना ने अपना आवास व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया, और कोसंबी में घोषिता उद्यान गए, जहाँ उन्होंने पूज्य आनंद से संपर्क किया और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने के बाद, वह एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद को सारी घटना बताई, साथ ही आगे कहा: "पूज्य आनंद मुझे उपदेश दें, मुझे मार्गदर्शन दें, मुझे इस प्रकार धर्म प्रवचन दें कि मैं धर्म को समझ सकूँ।"

"मैं पूज्य चन्ना से इतना भी प्रसन्न हूँ। शायद पूज्य चन्ना ने स्वयं को खोल दिया है और अपनी बांझपन को दूर कर लिया है। 182 हे मित्र चन्ना, ध्यान से सुनो, तुम धम्म को समझने में सक्षम हो।"

तभी पूज्य चन्ना के मन में एक उदात्त आनंद और प्रसन्नता का भाव उत्पन्न हुआ, जब उन्होंने सोचा: "ऐसा लगता है कि मैं धम्म को समझने में सक्षम हूँ।"

[आदरणीय आनंद ने तब कहा:] "हे मित्र चन्ना, मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह सुना है, उनकी उपस्थिति में मैंने भिक्षु कच्चनगोत्त को दिए गए उपदेश को ग्रहण किया है: 183

"यह संसार, कच्चन, अधिकांशतः द्वैत पर आधारित है... (संयुत्त 12 में संपूर्ण सूत्र SN2:15 उद्धृत है)... यही इस संपूर्ण दुख का निवारण (निरोध) है।" "

इसलिए, हे मित्र आनंद, उन आदरणीय भिक्षुओं के लिए यही है जिनके पास ब्रह्मचर्य जीवन में ऐसे करुणामय और परोपकारी भिक्षु हैं, ताकि वे उन्हें उपदेश और शिक्षा दे सकें। और अब जब मैंने आदरणीय आनंद के इस धम्म उपदेश को सुन लिया है, तो मैंने धम्म में प्रवेश कर लिया है।"

---

91. राहुल (1)
श्रावस्ती, 184 में पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान, विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

"हे राहुल, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमान, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पसाति, विपश्यना ध्यान) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

किसी भी प्रकार की वेदना (संवेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संशय) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासति) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

'जब व्यक्ति ध्यान में (पासति) इस प्रकार जानता और देखता है, हे राहुल, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य अभिकारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।'

---

92. राहुल (2)
सावत्थी में, पूज्य राहुल ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेत (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के प्रति, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?"

"राहुल, चाहे भूतकाल का रूप हो, भविष्यकाल का रूप हो या वर्तमान काल का... दूर हो या पास का - सभी रूपों को उनके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है', व्यक्ति अनासक्ति से मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है।

किसी भी प्रकार की संवेदना (वेदना) हो... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) हो..." किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) . . . किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - जब सभी चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखा जाए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है,' तो व्यक्ति आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

"जब कोई (ध्यान में, विपश्यना ध्यान में) इस प्रकार जानता और देखता है, 'राहुला', तो इस चेतन शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।"

(v) प्रभाग 2, मध्य पचास - पुष्प खंड (पुप्फावग्गो सं. पुष्प-वर्ग)
93. नदी
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मान लीजिए एक पहाड़ी नदी तेज़ धारा के साथ नीचे की ओर बह रही है। यदि नदी के दोनों किनारों पर कास घास या कुश घास उगती, तो वह नदी को ढक लेती; यदि सरकंडे, नरकट या पेड़ उगते, तो वे भी नदी को ढक लेते। यदि कोई व्यक्ति धारा के साथ बहते हुए कास घास को पकड़ ले, तो वह टूट जाएगी और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा; यदि वह कुश घास को पकड़ ले, तो वह टूट जाएगी और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा; यदि वह सरकंडे, नरकट या पेड़ों को पकड़ ले, तो वे टूट जाएंगे और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति... रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। उसका वह रूप विघटित हो जाता है और उसे विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

वह वेदना को आत्मा मानता है।" ... अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) स्वयं के रूप में ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) स्वयं के रूप में ... चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) स्वयं के रूप में, या चेतना से युक्त स्वयं के रूप में, या स्वयं में चेतना के रूप में, या चेतना में स्वयं के रूप में। उसकी वह चेतना विघटित हो जाती है और इस प्रकार वह विपत्ति और विपत्ति का शिकार होता है।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" ...(इसी प्रकार संवेदना, अनुभूति, संस्कार और चेतना के लिए) - "अत: ... ऐसा देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

94. फूल

सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं संसार से विवाद नहीं करता; बल्कि संसार ही मुझसे विवाद करता है। धम्म (मार्ग, नियम) का अनुयायी संसार में किसी से विवाद नहीं करता। जिस बात पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि वह विद्यमान नहीं है, मैं भी कहता हूँ कि वह विद्यमान नहीं है। और जिस बात पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि वह विद्यमान है, मैं भी कहता हूँ कि वह विद्यमान है। 185

"और वह क्या है, भिक्षुओं, जिस बात पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि वह विद्यमान नहीं है, जिसके बारे में मैं भी कहता हूँ कि वह विद्यमान नहीं है? वह रूप जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत है, परिवर्तन के अधीन नहीं है: इस पर संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि यह विद्यमान नहीं है, और मैं भी कहता हूँ कि यह विद्यमान नहीं है।" वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... विज्ञान (विन्नना) ... वह चेतना जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे है: संसार के ज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि इसका अस्तित्व नहीं है, और मैं भी यही कहता हूँ कि इसका अस्तित्व नहीं है।

"हे भिक्षुओं, संसार के ज्ञानी जिस बात पर सहमत हैं कि उसका अस्तित्व नहीं है, मैं भी यही कहता हूँ कि उसका अस्तित्व नहीं है।

" "और हे भिक्षुओं, वह क्या है जिसके बारे में संसार के ज्ञानी सहमत हैं कि उसका अस्तित्व है, और मैं भी यही कहता हूँ कि उसका अस्तित्व है? वह रूप जो क्षणिक, दुखदायी और परिवर्तन के अधीन है: संसार के ज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि इसका अस्तित्व है, और मैं भी यही कहता हूँ कि इसका अस्तित्व है। वेदना (संवेदना) ... अनुभूति ... संस्कार (व्यवहार) ... चेतना जो क्षणिक, दुखदायी और परिवर्तन के अधीन है: संसार के ज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि इसका अस्तित्व है, और मैं भी यही कहता हूँ कि इसका अस्तित्व है।

"भिक्षुओं, संसार के ज्ञानी लोग इसी बात पर सहमत हैं कि यह विद्यमान है, और मैं भी इसके विद्यमान होने की बात कहता हूँ।

भिक्षुओं, संसार में एक विश्व-घटना है, जिसका तथागत ने ज्ञान प्राप्त किया है और उसे पार किया है। ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसकी घोषणा करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसका स्पष्टीकरण देते हैं।"

और वह कौन सी सांसारिक घटना है जिसे तथागत ने ज्ञान प्राप्त करके पार कर लिया है? हे भिक्षुओं, रूप ही वह सांसारिक घटना है जिसे तथागत ने ज्ञान प्राप्त करके पार कर लिया है। ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसका स्पष्टीकरण देते हैं। जब तथागत द्वारा इसकी व्याख्या की जा रही हो... तो यदि कोई इसे न जानता हो और न देखता हो, तो मैं उस नासमझ, अंधे और दृष्टिहीन सांसारिक व्यक्ति के साथ क्या कर सकता हूँ जो न जानता हो और न देखता हो?

"वेदना (संवेदना)... बोध... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... चेतना संसार में घटित होने वाली एक घटना है, जिसे तथागत ने जागृत किया है और पार किया है। ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसका स्पष्टीकरण देते हैं। जब तथागत द्वारा इसकी इस प्रकार व्याख्या और स्पष्टीकरण किया जा रहा हो, तो यदि कोई इसे न जानता हो और न देखता हो, तो मैं उस नासमझ, अंधे और दृष्टिहीन सांसारिक व्यक्ति के साथ क्या कर सकता हूँ, जो न जानता हो और न देखता हो?

भिक्षुओं, जैसे नीला, लाल या सफेद कमल जल में जन्म लेता है और जल में ही बढ़ता है, लेकिन जल से ऊपर उठकर वह जल से अछूता रहता है, वैसे ही तथागत संसार में जन्म लेकर संसार में पले-बढ़े, लेकिन संसार पर विजय प्राप्त करके वे संसार से अछूते रहते हैं।" 187

---

95. फोम की एक गांठ (फेना-पिंड-उपमा)

एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के किनारे अयोध्या में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 188

"भिक्षुओं, मान लीजिए कि यह गंगा नदी अपने साथ झाग का एक बड़ा गोला बहाकर ले जा रही है। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा और उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करेगा, तो उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला झाग के गोले में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार का रूप (शरीर) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: एक भिक्षु उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा और उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करेगा, तो उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला रूप में क्या सार हो सकता है? 189

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि शरद ऋतु में, जब वर्षा हो रही हो और बड़ी-बड़ी बूँदें गिर रही हों, तो पानी का एक बुलबुला उठता है और पानी की सतह पर फूट जाता है। अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति इसका निरीक्षण करे, इस पर विचार करे और ध्यानपूर्वक इसकी जांच करे, तो उसे यह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला जल के बुलबुले में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार की वेदना हो, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: भिक्षु इसका निरीक्षण करे, इस पर विचार करे और ध्यानपूर्वक इसकी जांच करे, तो उसे यह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला वेदना में क्या सार हो सकता है? 190

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में, दोपहर के समय, एक मृगतृष्णा दिखाई देती है। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा और उसका गहन अध्ययन करेगा, और उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला मृगतृष्णा में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार की अनुभूति हो (सन्ना संस्कृत संज्ञा), चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट: एक भिक्षु उसका निरीक्षण करता है, उस पर ध्यान करता है और उसका गहन अध्ययन करता है, और उसे वह शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। भला अनुभूति में क्या सार हो सकता है?"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति को केले के भीतरी भाग की आवश्यकता है, वह उसकी खोज में भटक रहा है, और एक तेज कुल्हाड़ी लेकर जंगल में प्रवेश करता है। वहाँ उसे एक विशाल केले के पेड़ का तना दिखाई देता है, सीधा, ताजा, बिना किसी फल-कली के। 192 वह उसे जड़ से काट देता है, ऊपरी भाग को अलग कर देता है, और कुंडल को खोलता है। कुंडल को खोलने पर उसे उसमें कोमल लकड़ी भी नहीं मिलती, भीतरी भाग तो दूर की बात है। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करेगा, उस पर मनन करेगा, और ध्यानपूर्वक उसकी जाँच करेगा, और उसे वह खाली, खोखला, सारहीन प्रतीत होगा। केले के पेड़ के तने में भला क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे किसी भी प्रकार का संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: एक भिक्षु उनका निरीक्षण करता है, उन पर ध्यान करता है, और ध्यानपूर्वक उनकी जाँच करता है। जब वह उनका अध्ययन करता है, तो वे उसे शून्य, खोखले और सारहीन प्रतीत होते हैं। आख़िर संस्कार (व्यवहार-आधार) में क्या सार हो सकता है? 193

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि एक जादूगर या जादूगर का शिष्य चौराहे पर कोई जादुई भ्रम प्रदर्शित करे। एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसका निरीक्षण करे, उस पर विचार करे और ध्यानपूर्वक उसका अध्ययन करे, तो वह उसे शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। आख़िर जादुई भ्रम में क्या सार हो सकता है? इसी प्रकार, भिक्षुओं, चाहे चेतना (विन्नान, विज्ञान) किसी भी प्रकार की हो, चाहे भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, निम्न या उच्च, दूर या निकट: एक भिक्षु उसका निरीक्षण करे, उस पर ध्यान करे और ध्यानपूर्वक उसका अध्ययन करे, तो वह उसे शून्य, खोखला और सारहीन प्रतीत होगा। आख़िर चेतना में क्या सार हो सकता है?" 194

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा है। " यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"रूप झाग के गुच्छे के समान है; संवेदना (वेदना) पानी के बुलबुले के समान है;
बोध मृगतृष्णा के समान है; इच्छाएँ केले के तने के समान हैं;
और चेतना भ्रम के समान है; सूर्य के सन्यासी ने ऐसा समझाया।

यद्यपि कोई इस पर ध्यान करे; और इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करे,
यह खोखला और खाली ही प्रतीत होता है; जब कोई इस पर ध्यानपूर्वक विचार करता है। "

इस शरीर के संदर्भ में; व्यापक प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले ने सिखाया है
कि तीन धर्मों (मार्ग, नियम) का त्याग करने पर; व्यक्ति (ध्यान में, पाषाण में, विपश्यना ध्यान में) इस रूप को त्यागा हुआ देखता है।

जब जीवन, ऊष्मा और चेतना; इस भौतिक शरीर से विमुख हो जाते हैं।
तब यह वहाँ त्यागा हुआ पड़ा रहता है; दूसरों के लिए भोजन, बिना संज्ञानात्मक जागरूकता के। 195

"यह निरंतरता ऐसी ही है; यह भ्रम, बचकाने (नासमझ) को बहकाने वाला।
इसे हत्यारा बनना सिखाया जाता है; यहाँ कोई सार नहीं पाया जा सकता। 196

"ऊर्जावान (वीर्य) से जागृत भिक्षु को; इस प्रकार समूह (खंड, संस्कृत में स्कंध) को देखना चाहिए,
चाहे दिन हो या रात, 197; बोधगम्य, सदा ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हुए।"

उसे सभी बंधनों को तोड़ देना चाहिए; और अपने लिए एक शरणस्थल बनाना चाहिए;
उसे प्रज्वलित होकर आगे बढ़ना चाहिए; अविनाशी अवस्था की लालसा रखते हुए।

---

96. गाय के गोबर का एक ढेर (गोमाया-पिंडा)
सावत्थी में, एक भिक्षु एक तरफ बैठे हुए भगवान (बुद्ध) से बोले:

"हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा रूप है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बना रहे? हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसी संवेदना (वेदना)... कोई ऐसी अनुभूति (संज्ञा)... कोई ऐसा संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... कोई ऐसी चेतना (विज्ञान) है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बनी रहे?"

"भिक्षु, ऐसा कोई रूप नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन से परे हो और जो शाश्वतता की तरह एक जैसा बना रहे। ऐसी कोई संवेदना (वेदना) नहीं है... कोई बोध नहीं है... कोई संस्कार (व्यवहार-आधार) नहीं है... कोई चेतना नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन से परे हो और जो शाश्वतता की तरह एक जैसी बनी रहे।"

तब भगवान (बुद्ध) ने अपने हाथ में गोबर का एक छोटा सा ढेर उठाया और उस भिक्षु से कहा, "भिक्षु, इतना भी व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे हो, और जो स्वयं शाश्वतता के समान स्थिर रहे। यदि इतना भी व्यक्तिगत अस्तित्व स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे होता, तो दुखों के पूर्ण नाश (खय/क्षय) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में नहीं आता। 198 परन्तु क्योंकि इतना भी व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे हो, इसलिए दुखों के पूर्ण नाश (ब्रह्मचर्य) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में आता है।

"भिक्षु, अतीत में मैं एक प्रधान क्षत्रिय राजा था। 199 मेरे पास 84,000 नगर थे, जिनमें प्रमुख राजधानी कुसवती थी। मेरे पास 84,000 महल थे, जिनमें से प्रमुख महल धम्म नामक था। मेरे पास नुकीली छतों वाले 84,000 हॉल थे, जिनमें से प्रमुख हॉल महान सभाघर नामक था। मेरे पास हाथीदांत, लकड़ी, सोने और चांदी से बने 84,000 पलंग थे, जिन पर लंबे बालों वाले फूलों से सजे आवरण बिछे थे, हिरण की खाल से बने उत्तम चादरें थीं, ऊपर लाल चंदोवे थे और दोनों सिरों पर लाल तकिए थे।

मेरे पास 84,000 नर हाथी थे जो सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे थे और सोने के धागों से ढके थे, जिनमें से प्रमुख हाथी उपोसथा नामक शाही नर हाथी था। मेरे पास 84,000 घोड़े थे जो सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे थे और सोने के धागों से

ढके थे, जिनमें से प्रमुख घोड़ा वलहका नामक शाही घोड़ा था। मेरे पास 84,000 रथ थे जो सोने के आभूषणों और सोने के झंडों से सजे थे और सोने के धागों से ढके थे, जिनमें से प्रमुख रथ वेजयंत नामक रथ था।

मेरे पास 84,000 रत्न थे, जिनमें सबसे श्रेष्ठ रत्न था। मेरे पास 84,000 स्त्रियाँ थीं, जिनमें सबसे श्रेष्ठ रानी सुभद्दा थीं। मेरे पास क्षत्रिय जाति के 84,000 सामंत थे, जिनमें सबसे श्रेष्ठ सेनापति था। मेरे पास उत्तम जूट की रस्सियों और पीतल के दूध के बर्तनों से बंधी 84,000 गायें थीं। मेरे पास उत्तम लिनेन, रेशम, ऊन और सूती कपड़े की 84,000 कोटि थीं। मेरे पास 84,000 थालियाँ थीं जिन पर मुझे सुबह और शाम का भोजन परोसा जाता था।

उन 84,000 नगरों में से, हे 201 भिक्षुओं, उस समय मैं केवल एक नगर में निवास करता था: राजधानी कुसावती। उन 84,000 महलों में से, उस समय मैं केवल एक महल में निवास करता था: धम्म नामक महल। उन 84,000 शिखरित छतों वाले हॉलों में से, उस समय मैं केवल एक ही शिखरित छत वाले हॉल में निवास करता था: वह हॉल जिसका नाम 'महान सराय' था। उन 84,000 पलंगों में से, उस समय मैं केवल एक ही पलंग का उपयोग करता था, जो हाथीदांत, लकड़ी, सोने या चांदी से बना था।

उन 84,000 हाथियों में से, उस समय मैं केवल एक ही हाथी पर सवार होता था, जिसका नाम 'उपोसथा' था, जो शाही नर हाथी था। उन 84,000 घोड़ों में से, उस समय मैं केवल एक ही घोड़े पर सवार होता था, जिसका नाम 'वलाहका' था। उन 84,000 रथों में से, उस समय मैं केवल एक ही रथ पर सवार होता था, जिसका नाम 'वेजयंत

' था। उन 84,000 स्त्रियों में से, उस समय मेरी सेवा में केवल एक ही स्त्री थी, जो या तो क्षत्रिय कन्या थी या वेलामिक कन्या। उन 84,000 कोटि वस्त्रों में से केवल एक जोड़ी वस्त्र ही मैंने उस समय पहने थे, जो या तो महीन लिनेन, या महीन रेशम, या महीन ऊन, या महीन सूती कपड़े से बने थे। उन 84,000 थालियों में से केवल एक थाली ही ऐसी थी जिससे मैंने उपयुक्त करी के साथ अधिकतम एक माप चावल खाया था।

"इस प्रकार, हे भिक्षु, वे सभी संस्कार (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं, बदल चुके हैं। हे भिक्षु, संस्कार (व्यवहार) इतने क्षणभंगुर, इतने अस्थिर, इतने अविश्वसनीय हैं। हे भिक्षु, सभी संस्कारों (व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) महसूस करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्त (विमुक्त) होना ही पर्याप्त है।"

---

97. नाखून (नखसिखा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा रूप है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बना रहे? क्या कोई ऐसी संवेदना (वेदना) ... कोई ऐसी अनुभूति (संज्ञा संस्कृत) ... कोई ऐसा संस्कार (आक्रामक व्यवहार-स्थिति) ... कोई ऐसी चेतना (विन्नाना संस्कृत संस्कृत) है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बनी रहे?"

"भिक्षु, ऐसा कोई रूप नहीं है ... कोई ऐसी संवेदना (वेदना) नहीं है ... कोई ऐसी अनुभूति नहीं है ... कोई ऐसा संस्कार (व्यवहार-स्थिति) नहीं है ... कोई ऐसी चेतना नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो अनंत काल के समान ही बनी रहे।"

तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और उस भिक्षु से कहा, "भिक्षु, इतना रूप भी नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय हो, और जो स्वयं शाश्वतता के समान स्थिर रहे। यदि इतना रूप स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय होता, तो दुखों के पूर्ण नाश (खय/क्षय) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में नहीं आता। परन्तु क्योंकि इतना रूप भी स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय नहीं है, इसलिए दुखों के पूर्ण नाश (ब्रह्मचर्य) के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग समझ में आता है।

इतना वेदना... बोध... संस्कार (व्यवहार-आधार)... चेतना भी स्थायी, स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय नहीं है, और जो स्वयं शाश्वतता के समान स्थिर रहे। यदि इतनी चेतना होती..." लेकिन चूंकि इतनी चेतना भी स्थायी, स्थिर, शाश्वत और परिवर्तन से परे नहीं है, इसलिए दुखों के पूर्ण नाश (खय/क्षय) के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन जीना ही समझ में आता है।

"भिक्षु, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" (इसी प्रकार वेदना, बोध, संस्कार और चेतना) - "इसलिए... ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

98. सरल संस्करण (सुद्धिका)

सावत्थी में, एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा रूप, कोई ऐसी संवेदना (वेदना), कोई ऐसी धारणा (संज्ञा संश्लेष), कोई ऐसा संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), कोई ऐसी चेतना (विन्नान संश्लेष), विज्ञान है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो शाश्वतता के समान ही स्थिर रहे?"

"भिक्षु, ऐसा कोई रूप, कोई ऐसी संवेदना (वेदना), कोई ऐसी धारणा, कोई ऐसा संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), कोई ऐसी चेतना नहीं है जो स्थायी, स्थिर, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो और जो शाश्वतता के समान ही स्थिर रहे।"

---

99. पट्टा (1) (गद्दुलबद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभ बिंदु ज्ञात नहीं है। 203

"भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब विशाल सागर सूखकर विलीन हो जाता है और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, 204 परन्तु फिर भी, मैं कहता हूँ, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों के दुख का अंत नहीं होता।"

भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब पर्वतों के राजा सिनेरु जलकर नष्ट हो जाते हैं और उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, परन्तु फिर भी, मैं कहता हूँ, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए भटकते प्राणियों के दुखों का अंत नहीं होता।

भिक्षुओं, एक समय ऐसा आता है जब महान पृथ्वी जलकर नष्ट हो जाती है और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, परन्तु फिर भी, मैं कहता हूँ, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए भटकते प्राणियों के दुखों का अंत नहीं होता (तन्हा संस्कृत)।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक कुत्ते को रस्सी से बांधकर किसी मजबूत खंभे से बांध दिया जाए: वह उसी खंभे के चारों ओर दौड़ता और घूमता रहेगा। ठीक उसी प्रकार, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप को आत्मा मानता है... वेदना को आत्मा मानता है... संज्ञा को आत्मा मानता है... संस्कार को आत्मा मानता है... विज्ञान को आत्मा मानता है... वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना के चारों ओर दौड़ता और घूमता रहता है। 205 जैसे-जैसे वह इनके चारों ओर दौड़ता और घूमता रहता है, वह रूप से मुक्त नहीं होता, वेदना से मुक्त नहीं होता, संज्ञा से मुक्त नहीं होता, संस्कार से मुक्त नहीं होता, चेतना से मुक्त नहीं होता। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होता; वह दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और मृत्यु से मुक्त नहीं होता। निराशा; मैं कहता हूँ, दुख से मुक्ति नहीं

। परन्तु ज्ञानी शिष्य... रूप को आत्मा नहीं मानता... न ही वेदना को आत्मा... न ही बोध को आत्मा... न ही संस्कार को आत्मा... न ही चेतना... वह रूप, वेदना, बोध, संस्कार और चेतना के चारों ओर घूमना-फिरना बंद कर देता है। क्योंकि वह इनके चारों ओर घूमना-फिरना बंद कर देता है, इसलिए वह रूप से मुक्त हो जाता है, वेदना से मुक्त हो जाता है, बोध से मुक्त हो जाता है, संस्कार से मुक्त हो जाता है और चेतना से मुक्त हो जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह दुख से मुक्त हो जाता है।

---

100. पट्टा (2) (गद्दुलबद्धा)
भिक्षुओं, यह संसार अनावृत है जिसका आरंभ ज्ञात नहीं है। अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं होता...

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक कुत्ते को रस्सी से बांधकर एक मजबूत खंभे से बांध दिया जाए। यदि वह चलता है, तो उस खंभे के निकट चलता है। यदि वह खड़ा होता है, तो उस खंभे के निकट खड़ा रहता है। यदि वह बैठता है, तो उस खंभे के निकट बैठता है। यदि वह लेटता है, तो उस खंभे के निकट लेटता है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक प्राणी रूप को इस प्रकार देखता है: यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है। वह वेदना, संज्ञा, संवेदन, आशय और चेतना को इस प्रकार देखता है:
'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है।' यदि वह चलता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट चलता है। यदि वह खड़ा होता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट खड़ा होता है। यदि वह बैठता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट बैठता है। यदि वह लेटता है, तो वह आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों के निकट लेटता है।

इसलिए, भिक्षुओं, हमें अपने मन पर इस प्रकार बार-बार विचार करना चाहिए: 'यह मन लंबे समय से कामवासना, द्वेष और मोह से दूषित है।' मन के विकारों से ही प्राणी दूषित होते हैं। मन के शुद्धिकरण से प्राणी पवित्र हो जाते हैं।

"भिक्षुओं, क्या आपने 'चलते हुए' नामक चित्र देखा है?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"यहाँ तक कि 'चलते हुए' नामक वह चित्र भी मन द्वारा ही विविधतापूर्ण ढंग से बनाया गया है, परन्तु मन तो उस चित्र से भी अधिक विविधतापूर्ण है।"

"अतः, भिक्षुओं, हमें अपने मन पर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'यह मन लंबे समय से कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) से दूषित है।' मन के दोषों से प्राणी दूषित होते हैं; मन के शुद्धिकरण से प्राणी पवित्र हो जाते हैं।"

भिक्षुओं, मुझे जीव जगत में किसी अन्य जीव जाति में इतनी विविधता नहीं दिखती जितनी पशु जगत में। पशु जगत के जीव भी मन के कारण विविध हो गए हैं, 208 परन्तु मन तो पशु जगत के जीवों से भी अधिक विविध है।

अतः, भिक्षुओं, हमें अपने मन पर इस प्रकार चिंतन करना चाहिए: 'यह मन लंबे समय से काम (राग), द्वेष (दोष/मोह) और मोह (मोह) से दूषित है।' मन के दोषों से जीव दूषित होते हैं; मन के शुद्धिकरण से जीव शुद्ध होते हैं।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई कलाकार या चित्रकार, रंग, लाख, हल्दी, नील या लाल रंग का उपयोग करके, एक पॉलिश किए हुए तख्ते, दीवार या कैनवास पर किसी पुरुष या स्त्री की आकृति को उसके सभी लक्षणों के साथ पूर्ण रूप से चित्रित करता है। उसी प्रकार, जब कोई अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कुछ भी उत्पन्न करता है, तो वह केवल रूप ही उत्पन्न करता है; केवल वेदना ही उत्पन्न करता है; केवल बोध ही उत्पन्न करता है; केवल संस्कार ही उत्पन्न करता है; केवल चेतना ही उत्पन्न करता है।

भिक्षुओं, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... - "अत: इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

101. कुल्हाड़ी का हैंडल (या जहाज) (वसीजाता)

सावत्थी में। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खयाल/क्षय) उसे प्राप्त होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, पाषाणो (संदर्भ: विपश्यना ध्यान), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता (ध्यान में, पाषाणो)। जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में, पाषाणो), क्या उसी के लिए विकारों का नाश होता है? 'ऐसा रूप है, ऐसा उसका उद्भव है, ऐसा उसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा (संज्ञा संस्कृत) है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदतियाँ) हैं... ऐसी चेतना (विन्नान संस्कृत संस्कृत विज्ञान) है, ऐसा उसका उद्भव है, ऐसा उसका क्षय है': जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, पाषाणो), उसी के लिए विकारों का नाश होता है। 210

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु समर्पित नहीं रहता है विकास के लिए, भले ही उसके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो: 'हे, अनासक्ति से मेरा मन दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति से दोषों से मुक्त नहीं होता। इसका क्या कारण है? यह कहा जाना चाहिए: विकास न होने के कारण। किसका विकास न होने के कारण? ध्यान के चार आधारों का विकास न होने के कारण... चार सही प्रयासों का... आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों (इद्धि/रिद्धि) का... पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का... पाँच शक्तियों का... ज्ञान के सात कारकों का... आर्य अष्टांगिक मार्ग का। 211

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक मुर्गी के आठ, दस या बारह अंडे हैं जिन्हें उसने ठीक से ढका, सेया और पाला-पोसा नहीं है। भले ही उसके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो: 'हे, मेरे चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों के खोल को भेदकर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं!' फिर भी चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों को भेदकर सुरक्षित रूप से बाहर नहीं निकल पाते। इसका कारण क्या है? क्योंकि आठ, दस या बारह अंडों वाली मुर्गी ने उन्हें ठीक से ढका, सेया और पाला-पोसा नहीं था।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु विकास में लीन होकर नहीं रहता, भले ही उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न हो:

'काश, अनासक्ति द्वारा मेरा मन दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति द्वारा दोषों से मुक्त नहीं होता। इसका कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विकास न होने के कारण। किसका विकास न होने के कारण? . . . आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास न होने के कारण।"

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु विकास में लीन होकर रहता है, तो भले ही उसके मन में ऐसी कोई इच्छा न उठे कि 'काश मेरा मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति के द्वारा दोषों से मुक्त हो जाता है। इसका कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विकास के कारण। किस विकास के कारण? ध्यान के चार आधारों (सती) ... चार सही प्रयासों ... आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों (इद्धि/रिद्धि) ... पाँच आध्यात्मिक क्षमताओं ... पाँच शक्तियों ... ज्ञान के सात कारकों ... आर्य अष्टांगिक मार्ग के विकास के कारण।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक मुर्गी के आठ, दस या बारह अंडे थे जिन्हें उसने ढककर, सेया और ठीक से पाला-पोसा था। भले ही उसके मन में ऐसी कोई इच्छा न उठे: 'काश मेरे चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों को छेदकर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं!' फिर भी चूजे अपने पंजों और चोंच की नोकों से अंडों को छेदकर सुरक्षित रूप से बाहर निकलने में सक्षम होते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उस मुर्गी ने आठ, दस या बारह अंडों को ठीक से ढककर, सेते और उनका पालन-पोषण किया था।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, 212 जब कोई भिक्षु विकास में लीन रहता है, भले ही उसके मन में ऐसी कोई इच्छा न उठे:
'काश मेरा मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो जाए!' फिर भी उसका मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त है। इसका क्या कारण है? यह कहा जाना चाहिए: विकास के कारण। किस विकास के कारण? विकास के कारण... आर्य अष्टांगिक मार्ग के विकास के कारण।

"हे भिक्षुओं, जब कोई बढ़ई या बढ़ई का प्रशिक्षु अपनी कुल्हाड़ी के हैंडल को देखता है, तो उसे अपनी उंगलियों और अंगूठे के निशान दिखाई देते हैं, लेकिन वह नहीं जानता: 'आज कुल्हाड़ी का इतना हैंडल घिस गया है, कल इतना, पहले इतना।' लेकिन जब वह घिस जाता है, तो उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि वह घिस गया है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु साधना में लीन रहता है, तो भले ही उसे यह ज्ञान न हो कि 'आज मेरे इतने दोष दूर हो गए, कल इतने, पहले इतने,' फिर भी जब वे दूर हो जाते हैं, तो उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वे दूर हो गए हैं।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक समुद्री जहाज है जिसका रस्सियाँ छह महीने तक पानी में रहने के कारण घिस चुकी हैं। 214 शीत ऋतु में उसे सूखी भूमि पर लाया जाता है और हवा और धूप से उसकी रस्सियाँ और भी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। वर्षा के बादल से भीगने पर, रस्सियाँ आसानी से टूटकर सड़ जाती हैं। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु साधना में लीन रहता है, तो उसकी बेड़ियाँ आसानी से टूटकर सड़ जाती हैं।"

---

102. अनित्यता की धारणा
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब अनित्यता की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह सभी इंद्रिय-संबंधी वासनाओं (राग) का नाश करती है, यह अस्तित्व की वासनाओं (भावो) का नाश करती है, यह सभी अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) का नाश करती है, यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।" 215

"जैसे, भिक्षुओं, शरद ऋतु में एक हल चलाने वाला बड़े हल से जुताई करते हुए सभी जड़ों को काट देता है, वैसे ही, जब अनित्यता की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह सभी इंद्रिय-संबंधी वासनाओं (राग) का नाश करती है... यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।"

भिक्षुओं, जिस प्रकार एक सरकंडा काटने वाला सरकंडा काटता है, उसे ऊपर से पकड़ता है, हिलाता है, पटकता है और इधर-उधर पटकता है, उसी प्रकार जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो यह सभी इंद्रियजन्य (काम/यौन) (राग) को नष्ट कर देती है... यह 'मैं हूं' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार आमों के गुच्छे की डंडी कट जाने पर उससे जुड़े सभी आम उसके साथ गिर जाते हैं, उसी प्रकार जब अनिच्चा (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित हो जाती है... यह 'मैं हूं' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, नुकीली छत वाले घर की सभी कड़ियाँ छत के शिखर की ओर जाती हैं, शिखर की ओर ढलान बनाती हैं और अंत में शिखर पर आकर मिलती हैं, और शिखर को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित होती है... तो यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।" 216

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, सुगंधित जड़ों में, काली ओरिस को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित होती है... तो यह 'मैं हूँ' के सभी अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, सुगंधित कण्डराओं में, लाल चंदन को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा (अनित्य)) की अनुभूति (सन्न संज्ञा ...

भिक्षुओं, जिस प्रकार सुगंधित फूलों में चमेली को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार अनित्यता का बोध विकसित होने पर 'मैं हूँ' का अहंकार जड़ से उखड़ जाता है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी छोटे राजकुमार चक्र घुमाने वाले राजा के अधीन होते हैं और चक्र घुमाने वाले राजा को उनका प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार अनित्यता का बोध विकसित होने पर 'मैं हूँ' का अहंकार जड़ से उखड़ जाता है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी तारों की चमक चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होती और चंद्रमा की चमक को उनका प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार अनित्यता का बोध विकसित होने पर 'मैं हूँ' का अहंकार जड़ से उखड़ जाता है।

"हे भिक्षुओं, जिस प्रकार शरद ऋतु में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में आरोहण करते हुए अपने प्रकाश और किरणों से समस्त अंधकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार, जब अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, तो यह समस्त इंद्रिय (काम/यौन) वासना (राग) को दूर कर देती है, यह अस्तित्व की वासना (भावो) को दूर कर देती है, यह समस्त अज्ञान को दूर कर देती है और 'मैं हूँ' के अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है।"

"और हे भिक्षुओं, अनित्यता (अनिच्चा) की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित की जाती है जिससे यह समस्त इंद्रिय (काम/यौन) वासना (राग) को दूर कर देती है, अस्तित्व की वासना (भावो) को दूर कर देती है, समस्त अज्ञान को दूर कर देती है और 'मैं हूँ' के अहंकार को जड़ से उखाड़ देती है? 'ऐसा ही रूप है, ऐसी ही उत्पत्ति है, ऐसा ही उसका क्षय है; ऐसी है संवेदना (वेदना)... ऐसी है अनुभूति... ऐसे हैं संस्कार (अनिच्छुक व्यवहार)... ऐसी है चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान), ऐसी है इसकी उत्पत्ति, ऐसा है इसका अंत: इसी प्रकार अनित्यता की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, जिससे सभी इंद्रिय-संबंधी (राग) वासना, अस्तित्व के कारक (भाव) के प्रति सभी वासना, सभी अज्ञान और सभी अहंकार का उन्मूलन होता है।

(i) प्रभाग 3, अंतिम पचास - भाग अनुभाग (अंतावग्गो)

103. भाग (अंता)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये चार भाग हैं। 217 वे चार क्या हैं? शरीर-सन्दुत्व (सक्कय) का भाग, शरीर-सन्दुत्व की उत्पत्ति का भाग, शरीर-सन्दुत्व की समाप्ति (निरोध) का भाग, और शरीर-सन्दुत्व की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग का भाग।

" "और हे भिक्षुओं, शरीर-सन्दुत्व का भाग क्या है? इसे इस प्रकार कहा जाना चाहिए: आसक्ति से ग्रस्त पाँच समूह (उपदान संस्कृत: आसक्ति)। वे पाँच क्या हैं? आसक्ति से ग्रस्त रूप समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), आसक्ति से ग्रस्त संवेदना समूह (वेदना समूह), आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति समूह (संज्ञा समूह), आसक्ति से ग्रस्त संस्कार समूह (आक्रामक व्यवहार) और आसक्ति से ग्रस्त चेतना समूह (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। इसे शरीर-सन्दुत्व का भाग कहा जाता है।"

भिक्षुओं, शरीर-सम्भाव का मूल क्या है? यह तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) है जो नवजन्म की ओर ले जाती है, जिसमें नंदी आनंद और कामवासनाएँ शामिल होती हैं, जो इधर-उधर सुख की खोज करती हैं; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा। इसे शरीर-सम्भाव का मूल कहा जाता है।

भिक्षुओं, शरीर-सम्भाव के अंत का मूल क्या है?

यह उसी तृष्णा का पूर्णतः लुप्त होना और अंत है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव। इसे शरीर-सम्भाव के अंत का मूल कहा जाता है।

भिक्षुओं, शरीर-सम्मोहन के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग कौन सा है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। यही शरीर-सम्मोहन के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

भिक्षुओं, ये चार भाग हैं।

---

104. दुख (दुक्खा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुख, दुख का कारण, दुख का निवारण (निरोध) और दुख निवारण का मार्ग सिखाऊंगा।

और हे भिक्षुओं, दुख क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंध (खंड संस्कृत) (उपदान संस्कृत) (आसक्ति)। वे पाँच कौन से हैं?... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... इसे दुख कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, दुख का कारण क्या है? यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत) है जो पुनर्जन्म का कारण बनती है... इसे दुख का कारण कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, दुख का निवारण क्या है? यह उसी तृष्णा का धीरे-धीरे लुप्त हो जाना और निवारण है... इसे दुख का निवारण कहते हैं।"

भिक्षुओं, दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था। इसी को दुखों के निवारण (निरोध) का मार्ग कहा जाता है।

---

105. शरीर-पहचान (सक्कया सं. स-काया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें देह-सम्मोहन, देह-सम्मोहन का उद्गम, देह-सम्मोहन का निरोध और देह-सम्मोहन के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा।"

(इस सूत्र का शेष भाग पिछले 104 सूत्रों के समान है, उचित प्रतिस्थापनों के साथ।)

---

106. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत परिज्ञान)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन धर्मों (मार्गों, नियमों) का उपदेश दूंगा जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए, पूर्ण ज्ञान का और उस व्यक्ति का जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। 218 ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिन्हें पूर्णतः समझना चाहिए? हे भिक्षुओं, रूप वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए। वेदना... संज्ञा (संज्ञा)... संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... चेतना (विन्नान (संज्ञा) वह है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए। इन्हें पूर्णतः समझने योग्य धर्म कहा जाता है।
"और हे भिक्षुओं, पूर्ण ज्ञान क्या है? काम (राग) का नाश (खयाय/क्षय), द्वेष (दोष/द्वेष) का नाश (नष्ट/द्वेष) का नाश (नष्ट/मोह): इसे पूर्ण ज्ञान कहा जाता है। 219

"और हे भिक्षुओं, वह कौन है जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है (परिणेय)?" यह कहा जाना चाहिए: अरहंत, ऐसे नाम और वंश के पूजनीय व्यक्ति। इसे वह व्यक्ति कहा जाता है जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

---

107. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड) हैं जो आसक्ति (उपदान) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध... आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध।

भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन पाँच आसक्ति के अधीन सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के मार्ग को नहीं समझते, मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।"

लेकिन, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को उनके वास्तविक स्वरूप में समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय योग्य व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

108. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
सावत्थी 220 में लिखा है, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड) हैं जो आसक्ति (उपदान) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध... आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध।

भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन पाँच आसक्ति के अधीन उत्पत्ति और अपक्षय, सांसारिक भोग (असदो), भय और उससे मुक्ति को यथावत नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता...

परन्तु भिक्षुओं, जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को यथावत समझते हैं... वे इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

109. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (खंड) हैं जो आसक्ति (उपदान) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? आसक्ति के अधीन रूप स्कंध... आसक्ति के अधीन चेतना स्कंध। हे

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इन पाँच आसक्ति के अधीन स्कंधों की उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख (असदो), खतरे और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।"

---

110. अरहंत
... “जब भिक्षु, आसक्ति के अधीन इन पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: असवाद) के मामले में उत्पत्ति और अपव्यय, सांसारिक भोग (असदो), खतरे और उससे बचने के तरीके को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेते हैं, और अनासक्ति के द्वारा भिक्षु मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, 221 तब वह अरहंत भिक्षु कहलाता है, जिसके दोष नष्ट हो गए हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गया है।”

---

111. इच्छा का परित्याग (1) (चंडप्पहन1 सं. चंड-प्राहन)
सावत्थी में कहा गया है, "भिक्षुओं, रूप के प्रति जो भी इच्छा हो, जो भी वासना हो, आनंद हो, तृष्णा हो - उसका त्याग कर दो। ऐसा करने से वह रूप जड़ से उखड़ जाएगा, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाएगा, मिट जाएगा और भविष्य में फिर कभी उत्पन्न नहीं होगा। यही बात वेदना, संज्ञा, संशय और चेतना पर भी लागू होती है।"

---

112. इच्छा का परित्याग (2) (चंडप्पहन2 सं. चंड-प्राहन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप के प्रति जो भी इच्छा हो, जो भी कामवासना, आनंद, लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), जो भी आसक्ति और मोह (उपादान संस्कृत: आसक्ति), मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठाएँ और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय) हों, उन्हें त्याग दें। इस प्रकार वह रूप जड़ से उखड़ जाएगा, ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट हो जाएगा, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो सके। यही बात वेदना, संज्ञा, संशय और चेतना पर भी लागू होती है।"

(ii) प्रभाग 3, अंतिम पचास - धम्म खंड पर वक्ता (धम्मकथिकावग्ग सं. धर्म-कथिक-वर्ग)
113. अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)
श्रावस्ती में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' हे पूज्यवर, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन रहता है?"

"हे भिक्षु, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता।

वह वेदना, बोध, संशय, चेतना, उसके उद्‌गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता। यही अज्ञान कहलाता है, और इसी प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन रहता है।"

---

114. सच्चा ज्ञान (विज्या संस्कृत विद्या)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, कहते हैं, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' हे पूज्यवर, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुंचा जा सकता है?"

"हे भिक्षु, ज्ञानी शिष्य रूप, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है। वह वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, चेतना, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है। यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इसी प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुंचा जा सकता है।"

---

115. धम्म पर एक वक्ता (1) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलने वाला, धर्म पर बोलने वाला।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म पर बोलने वाला होता है?" 222

"भिक्षु, यदि कोई रूप के प्रति घृणा (निबिद्दा) उत्पन्न करने, उसके विलीन होने और निरोध के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई रूप के प्रति घृणा, उसके विलीन होने और निरोध के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई रूप के प्रति घृणा, उसके विलीन होने और निरोध के द्वारा अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

"भिक्षु, यदि कोई वेदना, संवेदना, संशय, आक्रामक व्यवहार और चेतना के प्रति घृणा उत्पन्न करने के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो चेतना के लुप्त होने और उसके समाप्त होने की प्रक्रिया में, धम्म पर प्रवचन देने वाला भिक्षु कहलाता है। चेतना के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और उसके समाप्त होने के उद्देश्य से साधना करने वाला भिक्षु धम्म के अनुसार साधना करने वाला भिक्षु कहलाता है। यदि चेतना के प्रति घृणा, उसके लुप्त होने और उसके समाप्त होने के माध्यम से अनासक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तो इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाता है।

---

116. धम्म पर एक वक्ता (2) (धम्मकथिका1 सं. धर्म-कथिक)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलने वाला, धर्म पर बोलने वाला।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म पर बोलने वाला होता है? किस प्रकार कोई धर्म के अनुसार अभ्यास करता है? किस प्रकार कोई इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करता है?"

(इस सूत्र का शेष भाग पूर्ववर्ती 115 के समान है।)

---

117. बंधन
सावत्थी में। "यहाँ, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति... रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। इसे, भिक्षुओं, रूप के बंधन में जकड़ा हुआ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहा जाता है, जो आंतरिक और बाह्य बंधन में जकड़ा हुआ है, जो निकट और दूर के तट को नहीं देखता, जो बंधन में वृद्ध होता है, जो बंधन में मरता है, जो बंधन में ही इस लोक से परलोक जाता है।

वह संवेदना (वेदना) को आत्मा मानता है... बोध (संज्ञा) को आत्मा मानता है... संशय (आक्रामक व्यवहार) को आत्मा मानता है... चेतना (विज्ञान) को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है। इसे, भिक्षुओं, चेतना के बंधन में जकड़ा हुआ अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहा जाता है... जो बंधन में ही इस लोक से परलोक जाता है।"

लेकिन, भिक्षुओं, ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य... रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। भिक्षुओं, यही वह ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है जो रूप के बंधन से मुक्त है, जो आंतरिक और बाह्य बंधनों से मुक्त है, जो (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) निकट और दूर दोनों तटों को देखता है। मैं कहता हूँ, वह दुखों से मुक्त है।

वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... बोध को आत्मा नहीं मानता... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को आत्मा नहीं मानता... चेतना को आत्मा नहीं मानता... न ही आत्मा को चेतना में। भिक्षुओं, यही वह ज्ञानवान श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है जो चेतना के बंधन से मुक्त है... मैं कहता हूँ, वह दुखों से मुक्त है।

---

118. पूछताछ (l) (परिपुच्छिता1)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आप रूप को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, आदरणीय।"

"अच्छा, भिक्षुओं! रूप को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"क्या आप संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, आदरणीय।"

"अच्छा, भिक्षुओं! चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"इस प्रकार देखकर ... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

119. पूछताछ (2) (परिपुच्छिता2)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या आप रूप को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"अच्छे भिक्षुओं! रूप को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"क्या आप संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संखार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"अच्छे भिक्षुओं! चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

120. बंधनकारी चीजें (संयोजनीय)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें वे धर्म सिखाऊंगा जो बंधन हैं और बंधन क्या है? सुनो

, भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जो बंधन हैं, और बंधन क्या है? रूप, भिक्षुओं, एक धर्म है जो बंधन है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) बंधन हैं। वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, चेतना, विज्ञान, एक धर्म है जो बंधन है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) बंधन हैं। इन्हें बंधनकारी धर्म कहा जाता है, और इसे बंधन।"

---

121. जिन चीजों से चिपका जा सकता है (उपदानीय)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें वे धर्म सिखाऊंगा जिनका पालन किया जा सकता है और वह आसक्ति (उपदान, संस्कृत: आसक्ति)। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिनका पालन किया जा सकता है, और वह आसक्ति क्या है? भिक्षुओं, रूप एक धर्म है जिसका पालन किया जा सकता है; इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, चेतना, विज्ञान, एक धर्म है जिसका पालन किया जा सकता है; इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। इन्हें ही वे धर्म कहते हैं जिनका पालन किया जा सकता है, और यही आसक्ति है।

---

122. सदाचारी (सिलवंता सं. शीलवंत)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में स्थित बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए, पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे, अभिवादन किया और उनसे कहा, "मित्र सारिपुत्त, वे कौन से धर्म हैं जिनका एक गुणी भिक्षु को ध्यानपूर्वक (योनिसो) पालन करना चाहिए?"

"मित्र कोत्थिता, एक गुणी भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) पर ध्यानपूर्वक (योनिसो) सचेत (मानसी) रहना चाहिए, क्योंकि वे अनित्य, दुखदायी, रोग, ट्यूमर, तीर, दुःख, पीड़ा, पराये, विघटनशील, शून्य और अनात्म हैं। 225 वे पाँच कौन से हैं? आसक्ति से ग्रस्त रूप स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संवेदना स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संस्कार स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त क्रिया स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त चेतना स्कंध। एक गुणी भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँचों स्कंधों पर ध्यानपूर्वक, अनित्य और अनात्म के रूप में सचेत रहना चाहिए।" हे मित्र, जब कोई गुणी भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, तो वह सोतापन्न के फल को प्राप्त कर सकता है। "

परन्तु, हे मित्र सारिपुत्त, सोतापन्न भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यानमग्न होना चाहिए?"

"हे मित्र कोत्थिता, सोतापन्न भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों पर अनित्य और अनात्म के रूप में ध्यानमग्न होना चाहिए। हे मित्र, जब कोई सोतापन्न भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, तो वह एक बार पुनर्जन्म के फल को प्राप्त कर सकता है।"

"लेकिन, मित्र सारिपुत्त, एक पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए?"

"मित्र कोत्थिता, एक पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर अनित्य ... अनात्म के रूप में ध्यान केंद्रित करना चाहिए। मित्र, जब एक पुनर्जन्म लेने वाला भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर ध्यान केंद्रित करता है, तो संभव है कि वह पुनर्जन्म न लेने के फल (अनगामी) को प्राप्त कर ले।" "

लेकिन, मित्र सारिपुत्त, एक पुनर्जन्म न लेने वाले भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए?"

"मित्र कोत्थिता, जो भिक्षु पुनर्जन्म रहित है, उसे आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों (उपदान सं. आसक्ति) पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए, क्योंकि ये क्षणिक हैं... अनात्म हैं। मित्र, जब कोई भिक्षु जो पुनर्जन्म रहित है (अनगामी), आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है, तो वह अरहंतत्व का फल प्राप्त कर सकता है।"

"परन्तु, मित्र सारिपुत्त, एक अरहंत भिक्षु को किन धर्मों पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए (मानसिकरो)?"

"मित्र कोत्थिता, एक अर्हंत भिक्षु को आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंदों पर ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए, जो अनित्य, दुखदायी, रोग, ट्यूमर, तीर, दुःख, पीड़ा, पराये, विघटनशील, शून्य और अनात्म हैं। मित्र, अर्हंत के लिए आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है

और जो उसने पहले ही कर लिया है, उसे दोहराने की भी आवश्यकता नहीं है। 226 परन्तु जब इन धम्मों का विकास और अभ्यास हो जाता है, तो वे इसी जीवन में सुखद निवास और सती ध्यान तथा संपजन्न की ओर ले जाते हैं।"

---

123. निर्देश दिया (सुतावंता)
(यह सूत्र पिछले 122 सूत्रों के समान ही है, सिवाय इसके कि प्रारंभिक
प्रश्न और उत्तर "एक दीक्षित भिक्षु" के शब्दों में व्यक्त किए गए हैं।)

---

124. कप्पा (1)
सावत्थी में। तब पूज्य कप्पा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस चेतना से युक्त शरीर (विन्नान संस्कृत विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?"

(शेष भाग 71 के समान है, परन्तु कप्पा को संबोधित है।)

---

125. कप्पा (2)
सावत्थी में, पूज्य कप्पा भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस्कृत विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?"

(शेष भाग 72 के समान है, परन्तु कप्पा को संबोधित है।)

(iii) भाग 3, अंतिम पचास - अज्ञानता अनुभाग (अविज्जा संस्कृत अविद्या)
126. उत्पन्न होने के अधीन (1) (समुदायधम्म1 सं. समुदय-धर्म)
श्रावस्ती में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कहते हैं, 'अज्ञान, अज्ञान।' हे पूज्यवर, अज्ञान क्या है, और कौन सा व्यक्ति अज्ञान में लीन रहता है?"

"हे भिक्षु, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति उत्पत्ति के अधीन रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'रूप उत्पत्ति के अधीन है।' वह पतन के अधीन रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'रूप पतन के अधीन है।' वह उत्पत्ति और पतन के अधीन रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'रूप उत्पत्ति और पतन के अधीन है।' वह वेदना, चेतना, संवेदन, संशय, क्रिया और चेतना को उसके उत्पत्ति और पतन के अधीन उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझता: 'चेतना उत्पत्ति और पतन के अधीन है।'"

"हे भिक्षु, इसे अज्ञान कहते हैं, और इस प्रकार मनुष्य अज्ञान में डूब जाता है।"

यह सुनकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"हे पूज्यवर, कहते हैं, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' हे पूज्यवर, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?"

"हे भिक्षु, ज्ञानी शिष्य उत्पत्ति के अधीन रूप को इस प्रकार समझता है: 'रूप उत्पत्ति के अधीन है।' वह पतन के अधीन रूप को इस प्रकार समझता है: 'रूप पतन के अधीन है।' वह उत्पत्ति और पतन के अधीन रूप को इस प्रकार समझता है: 'रूप उत्पत्ति और पतन के अधीन है।' वह वेदना... बोध... संस्कार... चेतना को उत्पत्ति के अधीन... पतन के अधीन... उत्पत्ति और पतन के अधीन इस प्रकार समझता है: 'चेतना उत्पत्ति और पतन के अधीन है।'"

"हे भिक्षु, इसे ही सच्चा ज्ञान कहते हैं, और इसी मार्ग से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है।"

---

127. उत्पन्न होने के अधीन (2) (समुदायधम्म2 सं. समुदय-धर्म)

एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए, पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे और उनसे कहा, "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' मित्र, अज्ञान क्या है, और कौन सी बात अज्ञान में लीन होने का कारण बनती है?"

(इस सूत्र का शेष भाग पिछले सूत्र में अज्ञान पर हुए संवाद के समान है।)

---

128. उत्पन्न होने के अधीन (3) (समुदायधम्म3 सं. समुदय-धर्म)
बरनासी में, इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में, एक तरफ बैठे हुए, पूज्य महाकोत्थिता ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' तो मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुंचा जा सकता है?"

(इस सूत्र का शेष भाग सूत्र 126 में सच्चे ज्ञान पर हुए संवाद के समान है।)

---

129. सांसारिक भोग (1) (अस्सादा 1 सं. अस्वाद)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में, एक तरफ बैठे हुए, पूज्य महाकोत्थिता ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' मित्र, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार कोई व्यक्ति अज्ञान में लीन रहता है?"

"यहाँ, मित्र, अज्ञानी सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और रूप, वेदना, बोध, संशय और चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के मामले में उससे बचने के तरीके को नहीं समझ पाता है। मित्र, यही अज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार व्यक्ति अज्ञान में लीन रहता है।"

---

130. सांसारिक-आनंद (2) (अस्सादा2 सं. असवाद)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में... "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' तो मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?"

"यहाँ, मित्र, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और रूप, वेदना, बोध, संशय और चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के मामले में उससे बचने के तरीके को समझता है। मित्र, यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।"

---

131. उत्पत्ति (1) (समुदय1)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में... "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' तो मित्र, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है?"

"यहाँ, मित्र, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरा और रूप, संवेदना (वेदना), बोध (सन्ना संस्कृत: संज्ञा), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) और चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के मामले में बचाव क्या है। मित्र, यही अज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है।"

---

132. उत्पत्ति (2) (समुदय2)
इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में... "मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' तो मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?" "

यहाँ, मित्र, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप, वेदना, बोध, संशय और चेतना के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझता है। मित्र, यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।"

---

133. कोत्थिता (1)
(यह 129 और 130 के संयुक्त रूप से समान है, सिवाय इसके कि यहाँ सारिपुत्त
प्रश्न पूछता है और महदकोत्थिता उत्तर देता है।)

---

134 कोत्थिता (2)
(131 और 132 के संयुक्त रूप से समान, सिवाय इसके कि यहाँ सारिपुत्त प्रश्न पूछता है और महदकोत्थिता उत्तर देता है।) [176]

---

135 कोत्थिता (3)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे हुए, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महाकोत्थिता से कहा: "मित्र कोत्थिता, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' मित्र, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार कोई अज्ञान में डूबा रहता है?"

"यहाँ, मित्र, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति रूप, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता। वह संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान), उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझता। मित्र, इसे ही अज्ञान कहते हैं, और इस प्रकार व्यक्ति अज्ञान में डूबा रहता है।"

यह कहने के बाद, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महाकोत्थिता से कहा: "मित्र कोत्थिता, कहा जाता है, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।'" अब, मित्र, सच्चा ज्ञान क्या है, और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है? "

यहाँ, मित्र, ज्ञानी शिष्य रूप को समझता है। उसका उद्गम, उसका अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग। वह वेदना... बोध... संस्कार... चेतना, उसका उद्गम, उसका अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग समझता है। मित्र, यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, और इस प्रकार सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।"

(iv) डिवीजन 3, फाइनल फिफ्टी - हॉट एम्बर्स सेक्शन (कुक्कुलावग्गा सं. कोयला-वर्ग)
136. गर्म अंगारे (कुक्कुला बिना कोयला)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप जलते अंगारों के समान है, वेदना जलते अंगारों के समान है, अनुभूति (संज्ञा) जलते अंगारों के समान है, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) जलते अंगारों के समान है, चेतना (विज्ञान) जलते अंगारों के समान है। इस प्रकार देखकर, भिक्षुओं, दीक्षित शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है... चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

137. अनित्य (अनिच्च 1 सं. अनित्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आपको जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। और क्षणभंगुर क्या है? रूप क्षणभंगुर है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना क्षणभंगुर है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।"

---

138. अनित्य (2) (अनिच्चा2 सं. अनित्य)
"भिक्षुओं, तुम जो भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति कामवासना (राग) का त्याग करो।"

(पिछली सूत्र के समान ही पूर्ण, "इच्छा" के स्थान पर "कामवासना" शब्द का प्रयोग करें।)

---

139. अनित्य (3) (अनिच्च 3 सं. अनित्य)
... "भिक्षुओं, तुम अनित्य चीज़ों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो।" ...

(137 के अनुसार "इच्छा" के स्थान पर "इच्छा (चंद) और कामवासना (राग)" का प्रयोग करके पूरा करें)

---

140. पीड़ा (1) (दुक्खा1)
"भिक्षुओं, आपको दुखदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।" और दुख क्या है? रूप दुखदायी है; आपको इसकी इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना दुखदायी है; आपको इसकी इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको दुखदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।

141. पीड़ा (2) (दुक्खा2)
... "भिक्षुओं, आप कष्टदायी हर चीज के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करें।"...
(शेष 140 के समान। कामवासना के स्थान पर इच्छा का प्रयोग करें)

142. पीड़ा (3) (दुक्खा3)
... "भिक्षुओं, आप कष्टदायी हर चीज के लिए कामवासना और चंद्रागो का त्याग करें।"...
(शेष भाग 140 के समान है। कामवासना के स्थान पर कामवासना और चंद्रागो का प्रयोग करें)

143. अनात्म (1) (अनत्ता1 सं. अनात्म)
"भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।" और अनात्म क्या है? रूप अनात्म है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना अनात्म है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

144. अनात्म (2) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
... "भिक्षुओं, आप सभी को अनात्म के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए।"
(शेष वाक्य 143 के समान है। कामवासना के स्थान पर इच्छा का प्रयोग करें।)

145. अनात्म (3) (अनत्ता2 सं. अनात्म)
... "भिक्षुओं, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करके उस हर चीज के प्रति सजग रहना चाहिए जो अनात्म है।"...
(143 के समान, इच्छा के स्थान पर इच्छा और कामवासना का प्रयोग करें)

146. घृणा में लीन (निब्बिदबाहुला)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जो व्यक्ति आस्था से दीक्षा लेकर दीक्षा ग्रहण कर चुका है, उसके लिए धर्म के अनुसार यही उचित है: उसे रूप, वेदना, चेतना, संशय और विज्ञान के प्रति घृणा में लीन रहना चाहिए। 228 जो व्यक्ति रूप और चेतना के प्रति घृणा में लीन रहता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है। जो व्यक्ति रूप और चेतना को पूर्णतः समझ लेता है, वह रूप, वेदना, चेतना, संशय और चेतना से मुक्त हो जाता है। वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है।

147. अनित्यता पर ध्यान (अनिकानुपासि सं. अनित्य-अनुपश्ययी)
सावत्थी 229 में लिखा है, "भिक्षुओं (संतों), जो कुल के अनुयायी आस्था से दीक्षा लेकर निकले हैं, उनके लिए धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार यही उचित है: उन्हें रूप में अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यान लगाकर रहना चाहिए (जैसा कि ऊपर 146 में है)... वे दुखों से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।"

148. दुख पर ध्यान (दुक्खानुपासि सं. दुख-अनुपश्ययी)
(जैसा कि 146 में है)... "उसे रूप में पीड़ा पर ध्यानपूर्वक चिंतन करना चाहिए... वह पीड़ा से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

149. अनात्मा पर ध्यान (अनत्तनुपासि सं. अनात्म-अनुपश्ययी)
(जैसा कि 146 में है)... "उसे स्वरूप में अनात्म पर ध्यानपूर्वक लीन रहना चाहिए... वह दुख से मुक्त हो जाता है, मैं कहता हूँ।"

(v) प्रभाग 3, अंतिम पचास - दृश्य अनुभाग (दिथिवाग्गो सं. दृष्टि-वर्ग)
150. आंतरिक रूप से (अज्जट्टा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं?" 230

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। जब संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

" "भिक्षुओं, आपके विचार में रूप स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, आदरणीय महोदय।"

"अस्थायी क्या दुख है या सुख?"

"दुख, आदरणीय महोदय।"

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति के बिना क्या सुख और दु:ख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?"
"नहीं।" आदरणीय महोदय,

"क्या वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... स्थायी है या अस्थायी?... लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?" "

नहीं, आदरणीय महोदय।"

"ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

151 यह मेरा है (एतम्मामा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो क्या हम उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखकर, उसका पालन करके, उसे इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, जब रूप होता है, तो रूप से आसक्ति रखकर, उसका पालन करके, हम चीजों को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' जब वेदना... बोध... संशय... चेतना... विज्ञान... चेतना होती है, तो चेतना से आसक्ति रखकर, उसका पालन करके, हम चीजों को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।'

"भिक्षुओं, आपके विचार से रूप क्या है..." चेतना स्थायी है या अस्थायी?

"अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या कोई किसी चीज़ को इस प्रकार देख सकता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

152. आत्मा (सोअत्ता संस्कृत सो-आत्म)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, उसका पालन करने से, ऐसा विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके देह त्यागने के बाद, मैं वही रहूँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति से, रूप का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके देह त्यागने के बाद, मैं वही रहूँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं।'" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान (विन्नान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: जो आत्मा है वही संसार है ... परिवर्तन के अधीन नहीं है।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तन के अधीन है, उससे आसक्ति रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार देखकर ... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

153. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, उसका पालन करने से, ऐसा विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न भी हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न भी हो'?" 233

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न भी हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न भी हो'।" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (बोध) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना से जुड़े रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'मैं न होऊं... और यह मेरे लिए न हो।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

154. गलत दृष्टिकोण
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस बात से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किस बात का पालन करने से, गलत धारणा उत्पन्न होती है?" 234

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति (रूप का पालन करने) के कारण, रूप का पालन करने से, गलत धारणा उत्पन्न होती है। जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति (चेतना का पालन करने) के कारण, चेतना का पालन करने से, गलत धारणा उत्पन्न होती है।

"भिक्षुओं, आपके विचार में रूप क्या है..." चेतना स्थायी है या अस्थायी?

"अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या गलत धारणा उत्पन्न हो सकती है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

155. शरीर-पहचान-दृष्टिकोण (सक्कयदिथि सं. स-काया-दृष्टि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किसका आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, किसका पालन करने से, शरीर-सन्दुत्व का दृष्टिकोण (सक्कया-दिष्ठी) उत्पन्न होता है?" 235
"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्त होने से, रूप का पालन करने से, शरीर-सन्दुत्व का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा)... संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्त होने से, चेतना का पालन करने से, शरीर-सन्दुत्व का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है।" ...

"इस प्रकार देखकर... वह समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

156. स्वयं का दृष्टिकोण (अत्तनुदित्थि सं. आत्म-अनु-दृष्टि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किसका आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) करने से, किसका पालन करने से आत्मबोध उत्पन्न होता है?" 236
"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं। ..."
"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति करने से, रूप का पालन करने से आत्मबोध उत्पन्न होता है। जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति करने से, चेतना का पालन करने से आत्मबोध उत्पन्न होता है।" ...

"इस प्रकार देखकर ... वह समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

157. पालन (1) (अभिनिवेश1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस बात से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण बंधन, आसक्ति और बेड़ियाँ उत्पन्न होती हैं?" 237

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से जुड़े रहने के कारण बंधन, आसक्ति और बेड़ियाँ उत्पन्न होती हैं। जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति के कारण, चेतना से जुड़े रहने के कारण बंधन, आसक्ति और बेड़ियाँ उत्पन्न होती हैं।" ...

"इस प्रकार देखकर ... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

158. पालन (2) (अभिनिवेश2)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस चीज से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किस चीज का पालन करने के कारण बंधन, आसक्ति, बेड़ियाँ और जकड़न उत्पन्न होती हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
(ऊपर दिए गए अनुच्छेद 157 के अनुसार पूर्ण)

159. आनंद

सावत्थी में। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: "पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।" 238

"आनंद, आपके विचार से रूप स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, पूज्यवर।" - "क्या अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील को इस प्रकार मानना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, पूज्यवर।"

"क्या वेदना (संवेदना) स्थायी है या अस्थायी?... क्या अनुभूति (संज्ञा) स्थायी है या अस्थायी?... क्या संस्कार (आक्रामक व्यवहार) स्थायी है या अस्थायी?... क्या चेतना (विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"अतः, आनंद, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, किसी भी रूप में हो...

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

अध्याय 2: राधा (राधासंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-23}

(i) प्रथम मारा उप-अध्याय

160. मारा(शैतान) (सं. मृत्युदेव)

सावत्थी में। तब पूज्य राधा भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा: "पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'मारा (शैतान), मारा।' पूज्यवर, मारा किस रूप में हो सकता है?" 240

“हे राधा, जब रूप होता है, तो उसमें मार, या हत्यारा, या मारा जाने वाला हो सकता है। 241 इसलिए, हे राधा, रूप को मार के रूप में देखो, उसे हत्यारा समझो, उसे मारे जाने वाला समझो। उसे एक रोग, एक ट्यूमर, एक तीर, एक दुःख, एक वास्तविक दुःख समझो। जो इसे इस प्रकार देखते हैं, वे सही ढंग से देखते हैं।

“जब वेदना (संवेदना) होती है... जब संज्ञा (संज्ञा) होती है... जब संस्कार (आक्रामक व्यवहार-स्थिति) होते हैं... जब विज्ञान (विन्नान (विज्ञान) होती है, हे राधा, तो उसमें मार, या हत्यारा, या मारा जाने वाला हो सकता है। इसलिए, हे राधा, चेतना को मार के रूप में देखो, उसे हत्यारा समझो, उसे मारे जाने वाला समझो। उसे एक रोग, एक ट्यूमर, एक तीर, एक दुःख, एक वास्तविक दुःख समझो। जो इसे इस प्रकार देखते हैं, वे सही देखते हैं।

"हे पूज्यवर, सही देखने का उद्देश्य क्या है?"

"हे राधा, सही देखने का उद्देश्य निब्दिदा है।" "

और हे पूज्यवर, निब्दिदा का उद्देश्य क्या है?"

"निब्दिदा का उद्देश्य वैराग्य है।"

"और हे पूज्यवर, वैराग्य का उद्देश्य क्या है?"

"वैराग्य का उद्देश्य मुक्ति है।"

"और हे पूज्यवर, मुक्ति का उद्देश्य क्या है?" "

मुक्ति का उद्देश्य निर्वाण है।" 242

"और हे पूज्यवर, निर्वाण का उद्देश्य क्या है?"

"हे राधा, तुम प्रश्न पूछने की सीमा से परे चली गई हो। 243

तुम प्रश्न पूछने की सीमा को समझ नहीं पाईं। क्योंकि, हे राधा, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन निर्वाण को आधार मानकर, निर्वाण को ही गंतव्य मानकर, निर्वाण को ही अंतिम लक्ष्य मानकर जिया जाता है।" 244

---

161. एक प्राणी (सत्ता)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने
भगवान (बुद्ध) से कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'एक प्राणी, एक प्राणी।'
पूज्यवर, किस प्रकार से किसी को प्राणी कहा जाता है?"

"राधा, मनुष्य इच्छा, वासना, आनंद और रूप की लालसा में बुरी तरह फंसा हुआ है; इसलिए उसे प्राणी कहा जाता है। 244 मनुष्य इच्छा, वासना, आनंद और वेदना की लालसा में बुरी तरह फंसा हुआ है... अनुभूति की लालसा में... संशय की लालसा में... चेतना की लालसा में... इसलिए उसे प्राणी कहा जाता है।

मान लीजिए, राधा, कुछ छोटे लड़के या लड़कियां रेत के महल बना रहे हैं। जब तक उनमें उन रेत के किलों के प्रति कामवासना, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) होती है, तब तक वे उन्हें संजोते हैं, उनके साथ खेलते हैं, उन्हें अनमोल मानते हैं और उन पर अपना अधिकार जताते हैं। लेकिन जब उन छोटे लड़कों या लड़कियों में उन रेत के किलों के प्रति कामवासना, इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा खत्म हो जाती है, तो वे उन्हें अपने हाथों और पैरों से बिखेर देते हैं, तोड़ देते हैं, चकनाचूर कर देते हैं और उन्हें खेल से बाहर कर देते हैं।

"हे राधा, इसी प्रकार रूप को बिखेर दो, उसे नष्ट कर दो, उसे चूर-चूर कर दो, उसे खेल से बाहर कर दो; तृष्णा के नाश (तन्हा संस. तृष्णा) का अभ्यास करो। वेदना को बिखेर दो... संज्ञा को बिखेर दो... संशय को बिखेर दो... चेतना को बिखेर दो, उसे नष्ट कर दो, उसे चूर-चूर कर दो, उसे खेल से बाहर कर दो; तृष्णा के नाश का अभ्यास करो। हे राधा, तृष्णा का नाश ही निर्वाण है।"

---

162. अस्तित्व की नाली (भवनेति सं. भाव-नेत्री)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'अस्तित्व का माध्यम, अस्तित्व का माध्यम।' 246 हे पूज्यवर, अस्तित्व का माध्यम क्या है, और अस्तित्व के माध्यम का निरोध क्या है?"

"राधा, इच्छा, राग, आनंद, तृष्णा, आसक्ति और लगाव, मानसिक दृष्टिकोण, आसक्ति और रूप संबंधी अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ: 247 इसे ही अस्तित्व का माध्यम कहा जाता है। इनके समाप्त होने से ही अस्तित्व के माध्यम का अंत हो जाता है।

"

(ये अगले सात सूत्र (106-112) के समान हैं, लेकिन राधा को संबोधित हैं।)

---

163. पूरी तरह से समझा जाना (परिन्नेय संस्कृत: परिज्ञान)
(106 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

164. तपस्वी (1) (समना 1 सं. श्रमना)
(107 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

165. तपस्वी (2) (समान2 सं. श्रमण)
(108 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

166. स्ट्रीम-एंटरर (सोटापन्ना संस्कृत स्ट्रोटापन)
(109 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

167. अरहंत
(110 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

168. इच्छा का परित्याग (1)
(111 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

---

169. इच्छा का परित्याग (2)
(112 के समान, लेकिन राधा को संबोधित।)

(ii) द्वितीय मारा उप-अध्याय
170. मारा (शैतान) (मृत्युदेव या कामदेव)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहा जाता है, 'मारा (शैतान), मारा।' तो हे परमेश्वर, मारा क्या है?"

"राधा, रूप ही मारा है। वेदना ही मारा है, चेतना ही मारा है, संवेदना ही मारा है, संशय ही मारा है,
... चेतना ही मारा है। इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं:
'... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

171. मारा के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म/कामदेव-धर्म)
श्रावस्ती में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'मरा (शैतान) के अधीन, मरा के अधीन।' 248 हे पूज्यवर, मरा के अधीन क्या है?"

"हे राधा, रूप मरा के अधीन है। वेदना मरा के अधीन है, चेतना मरा के अधीन है, संवेदना मरा के अधीन है, संस्कार मरा के अधीन है, चेतना मरा के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

172. अनित्य (अनिच्चा सं. अनित्य)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, कहते हैं, 'अस्थायी, अनिस्थायी।' तो हे प्रभु, अनिस्थायी क्या है?"

"राधा, रूप अनिस्थायी है। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान, सब अनिस्थायी हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: '...इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'"

---

173. अनित्य प्रकृति का (अनिचधम्म सं. अनित्य-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, कहा जाता है, 'अस्थायी स्वभाव का, अनिस्थायी स्वभाव का।' तो हे प्रभु, अनिस्थायी स्वभाव का क्या है?"

"राधा, रूप अनिस्थायी स्वभाव का है। संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) अनिस्थायी स्वभाव की है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

174. पीड़ा (दुक्खा)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहते हैं, 'दुख, दुख।' तो हे परमेश्वर, दुख क्या है?"

"राधा, रूप दुख है, वेदना दुख है, अनुभूति दुख है, संस्कार दुख है, चेतना दुख है। ऐसा देखकर... वे समझ गए: '...इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

---

175. पीड़ादायक प्रकृति का (दुक्खधम्म सं. दुक्खधर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्य, कहते हैं, 'कष्टदायी प्रकृति का, कष्टदायी प्रकृति का।' हे पूज्य, कष्टदायी प्रकृति का क्या है?"

"राधा, रूप कष्टदायी प्रकृति का है। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना कष्टदायी प्रकृति की है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

176. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहा जाता है, 'अनात्म, अनात्म।' तो हे परमेश्वर, अनात्म क्या है?"

"राधा, रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, अनुभूति अनात्म है, संस्कार अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

177. निःस्वार्थ प्रकृति का (अनत्तधम्म सं.. अनात्म-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्य, कहते हैं, 'निस्वार्थ स्वभाव, निस्वार्थ स्वभाव।' तो हे पूज्य, निस्वार्थ स्वभाव क्या है?"

"राधा, रूप निस्वार्थ है। संवेदना (वेदना) ... अनुभूति (संज्ञा) ... संशय (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) निस्वार्थ है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

178. विनाश के अधीन (खायधम्म सं. क्षय-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे पूज्य, कहा जाता है, 'क्षय के अधीन, विनाश के अधीन।' तो हे पूज्य, विनाश के अधीन क्या है?"

"हे राधा, रूप विनाश के अधीन है। वेदना... बोध... संशय... चेतना... चेतना विनाश के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

179. पतन के अधीन (वयधम्म बिना वय-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, कहते हैं, 'पतन के अधीन, पतन के अधीन।' तो हे पूज्यवर, अब क्या पतन के अधीन है?"

"राधा, रूप पतन के अधीन है। वेदना... संज्ञा... संवेदन... क्रिया... विज्ञान... चेतना पतन के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

180. उत्पन्न होने के अधीन (समुदायधम्म सं. समुदय-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "परमेश्वर, कहा जाता है, 'उत्पत्ति के अधीन, उत्पत्ति के अधीन।' तो हे परमेश्वर, अब उत्पत्ति के अधीन क्या है?"

"राधा, रूप उत्पत्ति के अधीन है। वेदना... संज्ञा... संवेदन... क्रिया... विज्ञान... चेतना उत्पत्ति के अधीन है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

181. समाप्ति के अधीन (निरोधधम्म सं. निरोध-धर्म)
सावत्थी में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे प्रभु, कहा जाता है, 'निरोध के अधीन, निरोध के अधीन' तो हे प्रभु, अब क्या निरोध के अधीन है?"

"राधा, रूप निरोध के अधीन है। वेदना निरोध के अधीन है... अनुभूति निरोध के अधीन है... संस्कार निरोध के अधीन है... चेतना निरोध के अधीन है... चेतना निरोध के अधीन है।" ऐसा देखकर... वे समझ गए: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

(iii) अनुरोध अनुभाग (अयाकनावग्गा सं. याकाना-वर्ग)
182. मारा (मराडी-सुत्त-एकादशकम)
श्रावस्ती में, एक तरफ बैठी पूज्य राधा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, "परमेश्वर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रह सकूँ।"

"राधा, तुम्हें इच्छा का त्याग करना चाहिए, तुम्हें कामवासना का त्याग करना चाहिए, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी मार (शैतान) है, वह मार है। और राधा, मार क्या है? रूप मार है। संवेदना (वेदना) मार है... बोध (संज्ञा) मार है... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) मार है... चेतना (विज्ञान) मार है। इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

183. मारा आदि के अधीन (मरधम्म सं. मृत्युदेव-धर्म)
... "राधा, तुम्हें इच्छा का त्याग करना चाहिए, तुम्हें कामवासना का त्याग करना चाहिए, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) दोनों का त्याग करना चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी मार (शैतान) के अधीन है... जो कुछ भी अनित्य है... जो कुछ भी अनित्य स्वभाव का है... जो कुछ भी दुखदायी है... जो कुछ भी अनात्म है... जो कुछ भी निस्वार्थ स्वभाव का है... जो कुछ भी क्षय/विनाश के अधीन है... जो कुछ भी पतन के अधीन है... जो कुछ भी उत्पन्न होने के अधीन है... जो कुछ भी निरोध के अधीन है। और हे राधा, कौन-सा कुछ निरोध के अधीन है? रूप निरोध के अधीन है। वेदना... अनुभूति... संशय... चेतना... चेतना निरोध के अधीन है। ऐसा देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

184 से 193 तक।
(172 से 181 के समान)

(iv) पास में बैठना (उपनिसिननावग्गो)
194. मारा (शैतान)
श्रावस्ती में, भगवान (बुद्ध) ने एक तरफ बैठी हुई पूज्य राधा से कहा, "राधा, तुम्हें इच्छा का त्याग करना चाहिए, तुम्हें कामवासना का त्याग करना चाहिए, तुम्हें इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए, क्योंकि जो कुछ भी मारा (शैतान) है, वह यही है। और राधा, मारा क्या है?"... (अनुच्छेद 170 के अनुसार पूर्ण।)

---

195 से 205 तक मारा (शैतान) के अधीन, इत्यादि।
(सूत्र 171 से 181 के समान, लेकिन पूर्ववर्ती सूत्र की तरह प्रारंभ होता है)

अध्याय 3: विचारों पर संबंधित प्रवचन (दिथिसंयुत्त सं. दृष्टि-संयुक्त) {संयुत्त-24}
(i) स्ट्रीम-एंट्री सेक्शन (सोतापट्टी सं. स्ट्रोटापट्टी)
(निब्बान/निर्वाण की धारा में प्रवेश न करने वालों के बारे में गलत धारणाएँ और निर्वाण प्राप्त करने के बाद उनका परित्याग)
206. वायु (वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान है, तो किससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किससे चिपके रहने से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़े रहते हैं'?" 249

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...

"जब कोई रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप से चिपके रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (बोध) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना से जुड़े रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ चलती नहीं हैं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप स्थायी है या अस्थायी?
(इसी प्रकार संवेदना, बोध, संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के लिए) ... क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति (उपादान (संस्कृत: आसक्ति) के बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जो कुछ देखा, सुना, महसूस किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा और मन द्वारा विचरण किया जाता है: 250 क्या वह स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।"

"अस्थायी क्या है? दुख या सुख?"

"दुख, पूज्यवर।"

"परन्तु जो अस्थायी दुख है, उससे आसक्ति रखे बिना, और जो परिवर्तनशील है, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है, 251 और जब वह दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण (निरोध) और दुख के निवारण के मार्ग के बारे में उलझन का त्याग कर देता है, तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और जिसका गंतव्य ज्ञान होता है।"

---

207. यह मेरा है (एतम-मामा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, जब रूप है, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से चिपके रहने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'।" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) ... चेतना (विज्ञान संस्कृत संस्कृत) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है।' ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है, तो उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

208. स्वयं (सोअट्टा संस्कृत सो-अत्म)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है; उसके द्वारा नष्ट हो जाने पर, मैं वही हो जाऊँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं'?" 252

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: जो आत्मा है वही संसार है; उसके द्वारा निकल जाने पर, मैं वही हो जाऊँगा - स्थायी, स्थिर, शाश्वत, परिवर्तन के अधीन नहीं।" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदत) ... चेतना (विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'जो आत्मा है वही संसार है ... परिवर्तन के अधीन नहीं है।' ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह स्थितियों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है) ... तब उसे सोतापन्न (प्रवाह में प्रवेश करने वाला) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

209. यह शायद मेरे लिए नहीं है (नोकामेशिया)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो किससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किससे चिपके रहने से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न होगा'?" 253

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति रखने से, रूप से चिपके रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'मैं न भी होऊं, और यह मेरे लिए न हो; मैं न तो होऊंगा, और यह मेरे लिए न होगा।'" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) ... चेतना (विज्ञान संस्कृत संस्कृत) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'मैं शायद न होऊं ... यह मेरे लिए नहीं होगा।' ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है ... तो उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

210. ऐसा नहीं है (नत्थिदिन्ना)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब किसी चीज़ से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किसी चीज़ का पालन करने से, इस प्रकार का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 254 'कुछ भी दान नहीं किया जाता, कुछ भी भेंट नहीं की जाती, कुछ भी दान में नहीं दिया जाता; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता; न यह संसार, न दूसरा संसार; न माता, न पिता; न ही स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न ही संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का अनुभव किया है, और उन्हें दूसरों को ज्ञात कराते हैं। यह व्यक्ति चार महान तत्वों (धातु) से बना है। जब कोई मरता है, तो पृथ्वी पृथ्वी-शरीर में लौटकर विलीन हो जाती है; जल जल-शरीर में लौटकर विलीन हो जाता है; अग्नि अग्नि-शरीर में लौटकर विलीन हो जाती है; वायु वायु-शरीर में लौटकर विलीन हो जाती है; इंद्रियां अंतरिक्ष में स्थानांतरित हो जाती हैं। [चार] पुरुष, पाँचवें के रूप में अर्थी के साथ, शव को ले जाते हैं। अंत्येष्टि भाषण जारी रहते हैं। श्मशान भूमि तक; हड्डियाँ सफेद हो जाती हैं; दाह संस्कार राख में समाप्त होता है। दान देना बचकाना (नासमझ) सिद्धांत है। जब कोई यह सिद्धांत कहता है कि [दान देना और इस प्रकार की बातें] होती हैं, तो यह खोखली, झूठी बकवास है। बचकाना (नासमझ) और बुद्धिमान, शरीर के टूटने के साथ ही एक समान नष्ट हो जाते हैं; मृत्यु के बाद उनका कोई अस्तित्व नहीं रहता।"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं।..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध होता है... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) होता है... चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'कुछ भी दिया हुआ नहीं है... मृत्यु के बाद उनका अस्तित्व नहीं रहता।'...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

211. अभिनय (करोटो)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब कोई अस्तित्व किससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, किससे चिपके रहने से ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है; 255 'जब कोई कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई अंग-भंग करता है या दूसरों से करवाता है, जब कोई यातना देता है या दूसरों से यातना दिलवाता है, जब कोई दुख देता है या दूसरों से दुख दिलवाता है, जब कोई अत्याचार करता है या दूसरों से अत्याचार करवाता है, जब कोई डराता है या दूसरों से डराता है, जब कोई जीवन नष्ट करता है, बिना दिया हुआ लेता है, घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, चोरी करता है, राजमार्गों पर घात लगाता है, दूसरे की पत्नी को बहकाता है, झूठ बोलता है - तो करने वाले द्वारा कोई बुराई नहीं की जाती। यदि कोई तेज धार वाले पहिये से इस पृथ्वी के जीवों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो इससे न तो कोई बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम होगा। यदि कोई गंगा के दक्षिणी किनारे पर हत्या करते हुए जाए और वध करना, अंग-भंग करना और दूसरों से अंग-भंग करवाना, यातना देना और दूसरों से यातना दिलवाना, इससे न तो कोई बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम। यदि कोई गंगा के उत्तरी तट पर दान देता और दूसरों से दान करवाता, भेंट चढ़ाता और दूसरों से भेंट चढ़ाता, तो इससे न तो कोई पुण्य प्राप्त होगा और न ही पुण्य का कोई परिणाम। दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्मसंयम से, सत्य बोलने से, न तो कोई पुण्य प्राप्त होता है और न ही पुण्य का कोई परिणाम।

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध होता है... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) होता है... चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'जब कोई व्यक्ति कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है... तो न तो पुण्य होता है और न ही पुण्य का कोई परिणाम होता है/...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

212. कारण (हेतु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे किस बात से आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किस बात का पालन करने से, इस प्रकार का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 256 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के अपवित्र होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कोई कारण नहीं है; प्राणी बिना कारण के शुद्ध होते हैं। [स्वयं द्वारा कोई कर्म नहीं है, दूसरों द्वारा कोई कर्म नहीं है, कोई पुरुष कर्म नहीं है।] कोई शक्ति नहीं है, कोई ऊर्जा नहीं है (वीर्य), कोई पुरुष शक्ति नहीं है, कोई पुरुष सहनशक्ति नहीं है। सभी प्राणी, सभी जीव, सभी आत्माएं, बिना किसी प्रभुत्व, शक्ति और ऊर्जा के हैं; भाग्य, परिस्थिति और प्रकृति द्वारा ढाले गए, वे छह श्रेणियों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं'?" 257

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध (संज्ञा)... संस्कार (आक्रामक व्यवहार)... चेतना (विज्ञान) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण नहीं है... वे छह वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं।'...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

213. महान दृश्य (महादिट्ठी सं. महा-दृष्टि)
सावत्थी में। भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान है, तो उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 258 'ये सात शरीर हैं जो अजन्मे हैं, उत्पन्न नहीं हुए हैं, सृजित नहीं हैं, निर्जन हैं, पर्वत शिखरों के समान स्थिर हैं, स्तंभों के समान स्थिर हैं। वे न तो गतिमान हैं, न परिवर्तित होते हैं, न ही एक दूसरे को अवरुद्ध करते हैं। इनमें से कोई भी दूसरों को सुख या दुख या सुख-दुख का कारण नहीं बन सकता। ये सात क्या हैं? वे हैं: पृथ्वी शरीर, जल शरीर, अग्नि शरीर, वायु

शरीर, सुख, दुख और आत्मा, जो सातवां है। ये सात शरीर अजन्मे हैं... [यहाँ न कोई हत्यारा है, न कोई वधकर्ता, न कोई श्रोता है, न कोई वक्ता है, न कोई ज्ञाता है, न कोई अंतरंग व्यक्ति है।] 259 यहाँ तक कि जो व्यक्ति किसी दूसरे का सिर तेज तलवार से काटता है, वह किसी को जीवन से वंचित नहीं करता; तलवार केवल सात शरीरों के बीच के स्थान से होकर गुजरती है। चौदह लाख प्रमुख गुण हैं। उत्पत्ति, 260, छह हजार, छह सौ; कर्म के पाँच सौ प्रकार हैं, पाँच प्रकार के कर्म हैं, तीन प्रकार के कर्म हैं, पूर्ण कर्म हैं, और आधा कर्म हैं; बासठ मार्ग हैं, बासठ उप-युग हैं, छह वर्ग हैं, मनुष्य के जीवन की आठ अवस्थाएँ हैं, उनतालीस सौ प्रकार के आजीवक हैं, उनतालीस सौ प्रकार के तपस्वी हैं, उनतालीस सौ नागों के निवास स्थान हैं, बीस सौ इंद्रियाँ हैं, तीस सौ नरक हैं, छत्तीस धूल के लोक हैं, सात प्रत्यक्षदर्शी लोक हैं, सात अप्रत्यक्षदर्शी लोक हैं, सात प्रकार के देवदूत हैं, सात प्रकार के मनुष्य हैं, सात प्रकार के राक्षस हैं, सात महान झीलें हैं, सात प्रकार की गांठें हैं, सात सौ अन्य प्रकार की गांठें हैं, सात चट्टानें हैं, सात सौ अन्य चट्टानें हैं, सात प्रकार के स्वप्न हैं, सात सौ अन्य प्रकार के स्वप्न, चौरासी लाख महान युग (कप्प/कल्प) जिनमें नासमझ और बुद्धिमान दोनों भटकते रहते हैं, जिसके बाद वे समान रूप से दुखों का अंत करते हैं। ऐसा कुछ नहीं है: "इस पुण्य (शील) या व्रत या तप या ब्रह्मचर्य जीवन से मैं अपरिपक्व कर्मों को परिपक्व करूँगा या परिपक्व कर्मों को बार-बार अनुभव करके नष्ट करूँगा" - ऐसा नहीं है! सुख और दुख का निर्धारण होता है; संसार की सीमाएँ निश्चित हैं; न तो यह छोटा होता है और न ही बड़ा, न आगे बढ़ता है और न ही पीछे हटता है। जैसे, जब धागे का गोला फेंका जाता है, तो वह खुल कर भाग जाता है, उसी प्रकार नासमझ और बुद्धिमान दोनों ही धागे को खोलकर सुख और दुख से भाग जाते हैं। 262

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) होती है... बोध (संज्ञा संस्कृत)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आधार)... चेतना (विज्ञान संस्कृत) होती है, चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'ये सात शरीर हैं जो अविकसित हैं... बचकाने (नासमझ) और बुद्धिमान, इन्हें खोलकर, सुख और दुख से भागो...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है)... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

214. संसार शाश्वत है (सस्सतादिथि सं. शाश्वत-दृष्टि)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार शाश्वत है'?" 263

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं। ...

"जब रूप है, भिक्षुओं, जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) है, तो चेतना के प्रति आसक्ति के कारण, चेतना के प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'संसार शाश्वत है'। ...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है (जैसा कि 206 में है) ... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है ... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

215. संसार शाश्वत नहीं है

सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार शाश्वत नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय है।"

---

216. दुनिया सीमित है (अंतःवा)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, उसके प्रति आसक्ति से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार सीमित है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।" [215]

---

217. विश्व अनंत है (अननातव)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'संसार अनंत है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं... "
भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना है।"

---

218. आत्मा और शरीर एक ही हैं (तम-जीवम्-तम-शरीरम्)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (गलत) विचार कैसे उत्पन्न होता है कि आत्मा और शरीर एक ही हैं?" "

आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है, तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना है।"

---

219. आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं (अन्नम-जीवम-अन्नम-शरीरम बिना। अन्य-जीवम-अन्य-शरीरम)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, किससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (गलत) विचार कैसे उत्पन्न होता है: आत्मा एक है, शरीर दूसरी?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन को त्याग देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय है।"

---

220. तथाद्गत अस्तित्व में है (होती-तथागतो)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो अस्तित्व में है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से, उसके प्रति आसक्ति से, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है कि तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

221. तथागत का अस्तित्व नहीं है (नहोति-तथागतो)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं... "
भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है... तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

222. तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी (Hoti-ca-naca-hotitathagato)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उसके प्रति आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसके प्रति आसक्ति के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी?'

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में (जैसा कि 206 में है) उलझन का त्याग कर देता है, तब उसे सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है... जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

---

223. तथागत न तो अस्तित्व में है और न ही अस्तित्व में है (नेवा-होति-ना-नहोति-तथागतो)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब कोई चीज़ विद्यमान होती है, तो किससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किससे चिपके रहने से, ऐसा (गलत) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते?'

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"जब रूप होता है, भिक्षुओं, तो रूप से आसक्ति रखने से, रूप से चिपके रहने से, ऐसा (गलत) विचार उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते।' जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत: संज्ञा) ... संशय (अनिवार्य व्यवहार-आदत) ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना से चिपके रहने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते।'

भिक्षुओं, आपके विचार से रूप क्या है...? चेतना स्थायी है या अस्थायी? "

अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जो देखा, सुना, अनुभव किया, जाना, प्राप्त किया, खोजा और मन द्वारा विचरण किया जाता है: क्या वह स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।"

"अस्थायी क्या दुख है या सुख?"

"दुख, पूज्यवर।"

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन छह मामलों में उलझन का त्याग कर देता है, और जब वह दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख के निवारण के मार्ग के बारे में उलझन का त्याग कर देता है, तब उसे श्रेष्ठ शिष्य कहा जाता है जो सोतापन्ना, जो अब अधोलोक से बंधा नहीं है, नियति में स्थिर है, और जिसका गंतव्य ज्ञान है।

(ii) द्वितीय गोइंग धारा 264 (दुतियागमनावग्गो)
224. वायु (वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते, बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहते हैं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं। ..."

"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से चिपके रहने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहती हैं।'" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... विज्ञान (विन्नाना (संज्ञा) होती है, तो चेतना से आसक्ति (उपादान (आसक्ति)) के कारण, चेतना से जुड़े रहने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जब दुख होता है, तो दुख से आसक्ति रखने, दुख से जुड़े रहने के कारण ही ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... लेकिन एक स्तंभ की तरह अडिग खड़े रहो।

225-241. यह मेरा है, इत्यादि।
(ये सूत्र (225-241) पिछले सूत्रों (207-223) के विचारों को दोहराते हैं, लेकिन उपरोक्त
प्रतिमान (224) पर आधारित हैं।)

---

242. रूप से निर्मित एक स्व-आटा (रूपी-आटा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा रूप से बनी है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?" ... 266 (शेष 224 के समान)

---

243. एक निराकार आत्मा
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा निराकार है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?" (शेष 224 के समान)

---

244. एक आत्मा जिसमें रूप और निराकार दोनों शामिल हैं (रूपी-च-अरूपि-च-अत्ता संस। रूप्य-च-अरूप्य-च-एटीएम)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा रूप से भी बनी है और निराकार भी है, और मृत्यु के बाद भी अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

245. आत्मा न तो आकार से युक्त है और न ही निराकार (नेव-रूपी-नारूपी-अत्ता संस। नेव-रूप्य-नारुप्य-आत्म)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा न तो सजीव है और न ही निराकार है, और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

246. विशेष रूप से खुश (एकांतसुखी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा केवल सुखी है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

247. विशेष रूप से दुखी (एकांतदुक्खी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा केवल दुखी है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

248. सुखी और दुखी दोनों (सुखदुक्खी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा सुखी और दुखी दोनों है और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

---

249. न तो खुश और न ही दुखी (अदुक्खा-मा-सुखी)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), जब जो कुछ मौजूद है... क्या इस तरह का (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'आत्मा न तो सुखी है और न ही दु:खी और मृत्यु के बाद अक्षुण्ण रहती है'?"...(शेष 224 के समान)

(iii) तृतीय यात्रा खंड (ततिया-गमन-वग्गो सं. तृतीय-गमन-वर्ग)
250. हवाएँ नहीं (ना-वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उससे चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते, बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहते हैं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप से चिपके रहने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर रहती हैं'।" जब वेदना (संवेदना) ... संज्ञा (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विन्नान (संज्ञा) होती है, तो चेतना से आसक्ति रखने से, चेतना का पालन करने से, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, रूप ... चेतना स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"लेकिन जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति (उपादान (संज्ञा) रखे बिना, क्या ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो कुछ भी अस्थायी है वह दुखदायी है। जब वह मौजूद होता है, तो उससे आसक्ति रखने से ही ऐसा विचार उत्पन्न होता है: 267 'हवाएँ नहीं चलतीं ... लेकिन एक स्तंभ की तरह अडिग खड़े रहो।

251-275 यह मेरा है, इत्यादि।
(ये सूत्र द्वितीय यात्रा (225-249) के विचारों को दोहराते हैं, लेकिन उपरोक्त प्रतिमान पर आधारित हैं।)

(iv) चतुर्थ यात्रा खंड (चतुर्थ-गमन-वग्गो संस। चतुर्थ-गमन-वर्ग)
276. हवाएँ नहीं (ना-वात)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब जो विद्यमान है, उससे आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण, उसका पालन करने के कारण, ऐसा (झूठा) विचार कैसे उत्पन्न होता है: 'हवाएँ नहीं चलतीं, नदियाँ नहीं बहतीं, गर्भवती महिलाएँ जन्म नहीं देतीं, चंद्रमा और सूर्य उदय और अस्त नहीं होते, बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़े रहते हैं'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"जब रूप है, भिक्षुओं, रूप से आसक्ति के कारण, रूप का पालन करने के कारण, ऐसा विचार उत्पन्न होता है: हवाएँ नहीं चलतीं... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।" जब संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) होती है, तो चेतना से चिपके रहने से, चेतना से जुड़े रहने से, इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है: 'हवाएँ चलती नहीं हैं ... बल्कि एक स्तंभ की तरह स्थिर खड़ी रहती हैं।'

भिक्षुओं, आपके विचार से रूप... वेदना... बोध... संस्कार... चेतना स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख है, आदरणीय।" - "जो अस्थायी, दुखमय और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।" "

इसलिए, भिक्षुओं, किसी भी प्रकार का रूप... किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार का बोध... किसी भी प्रकार का संस्कार... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

277.-301. यह मेरा है, इत्यादि।
(ये सूत्र द्वितीय यात्रा (225-249) के विचारों को दोहराते हैं, लेकिन उपरोक्त प्रतिमान पर आधारित हैं।)

अध्याय 4: प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (ओक्कंतसंयुत्त) {संयुत्त-25}
302. आँख (चक्खु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, बदलती रहती है। कान... नाक... जीभ... शरीर... मन क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, बदलता रहता है। जो इन शिक्षाओं में आस्था रखता है और इस प्रकार उन पर दृढ़ संकल्प करता है, वह आस्था-अनुयायी कहलाता है, वह जो सही मार्ग पर चल पड़ा है, श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर पर पहुँच गया है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ गया है। वह ऐसा कोई कर्म करने में असमर्थ है जिसके कारण उसका पुनर्जन्म नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में हो; वह सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) का फल प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त करने में असमर्थ है। 268

"जिसके लिए इन शिक्षाओं को पर्याप्त चिंतन के बाद प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ स्वीकार किया जाता है, वह धम्म-अनुयायी कहलाता है, 269 वह जो सही मार्ग पर चल पड़ा है, श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर पर पहुँच गया है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ गया है।" वह ऐसा कोई कर्म करने में असमर्थ है जिसके कारण उसका पुनर्जन्म नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में हो; वह जलप्रवेश के फल को प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकता।

"जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति, संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे जलप्रवेश करने वाला (सोतापन्न) कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।" 270

---

303. प्रपत्र (रूपा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं। ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं। जो इन शिक्षाओं में आस्था रखता है और उन पर दृढ़ संकल्प करता है, उसे आस्था-अनुयायी कहा जाता है, वह जो धर्म के निश्चित मार्ग पर चल पड़ा है...; वह सोतापत्ति के फल को प्राप्त किए बिना परलोक नहीं जा सकता।

जो इन शिक्षाओं को पर्याप्त चिंतन और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ ग्रहण करता है, उसे धम्म-अनुयायी कहा जाता है, वह जो धर्म के निश्चित मार्ग पर चल पड़ा है... (शेष 302 के समान); वह सोतापत्ति के फल को प्राप्त किए बिना परलोक नहीं जा सकता।"

जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब अधोलोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय ही उसका गंतव्य होता है।

---

304. चेतना (विन्नाना संस. विज्ञान)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, नेत्र-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... मन-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय ही उसका लक्ष्य होता है।"

---

305. संपर्क (संपहसा संस्कृत: सम-स्पर्श)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, दृष्टि संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, रूप बदलता रहता है। कान का संपर्क... नाक का संपर्क... जीभ का संपर्क... शरीर का संपर्क... मन का संपर्क क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, रूप बदलता रहता है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं रहता, नियति में स्थिर रहता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य है।"

---

306. अनुभूति (वेदना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख के संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना क्षणिक, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती है। कान के संपर्क से उत्पन्न वेदना... नाक के संपर्क से उत्पन्न वेदना... जीभ के संपर्क से उत्पन्न वेदना... शरीर के संपर्क से उत्पन्न वेदना... मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना क्षणिक, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

307. धारणा (रूप-सन्ना बिना रूप-संज्ञा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

308. संज्ञानात्मक जागरूकता (रूप-संवेदना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता (सांसेतन) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। ध्वनियों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... गंधों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्वादों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलती रहती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

309. लालसा (रूप-तन्हा बिना रूप-तृष्णा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है। ध्वनियों के प्रति लालसा... गंधों के प्रति लालसा... स्वादों के प्रति लालसा... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति लालसा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है। (शेष अनुच्छेद 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, और ज्ञानोदय उसका गंतव्य होता है।"

---

310. तत्व (पथविधातु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है। जल तत्व... ऊष्मा तत्व... वायु तत्व... आकाश तत्व... चेतना तत्व (विन्नान, संस्कृत: विज्ञान) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है। 271 (शेष 302 के समान) जो इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसे सोतापन्न कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं रहता, नियति में स्थिर रहता है, और ज्ञानोदय ही उसका गंतव्य है।"

---

311. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
सावत्थी में। भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है, बदलता रहता है। वेदना, संज्ञा, संवेदन, क्रिया और चेतना क्षणभंगुर हैं, परिवर्तनशील हैं, बदलती रहती हैं।

जो इन शिक्षाओं में आस्था रखता है और उन पर दृढ़ संकल्प करता है, उसे आस्थावान अनुयायी कहा जाता है, वह व्यक्ति जिसने सत्य के निश्चित मार्ग पर प्रवेश किया है, श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर पर प्रवेश किया है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ गया है। वह ऐसा कोई कर्म नहीं कर सकता जिसके कारण उसका पुनर्जन्म नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में हो; वह सोतापत्ति के फल को प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति इन शिक्षाओं को पर्याप्त चिंतन और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि के साथ स्वीकार करता है, उसे धर्म का अनुयायी कहा जाता है, वह व्यक्ति जिसने सत्य के निश्चित मार्ग पर प्रवेश किया है। सही मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्तर में प्रवेश कर जाता है, सांसारिक स्तर से ऊपर उठ जाता है। वह ऐसा कोई कर्म नहीं कर सकता जिसके कारण उसे नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेना पड़े; वह जलप्रवेश के फल को प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकता।

"जो व्यक्ति इन शिक्षाओं को जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान), उसे जलप्रवेश करने वाला (सोतापन्न) कहा जाता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं रहता, नियति में स्थिर रहता है, और ज्ञानोदय ही उसका लक्ष्य होता है।"

अध्याय 5: उद्भव पर संबंधित प्रवचन (उपपादसंयुत्त सं. उत्पदा-संयुत्त) {संयुत्त-26}
312. आँख (चक्खु)
सावत्थी में भिक्षुओं का कहना है, "आँख का उदय, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उदय, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था-मृत्यु का प्रकटीकरण है। 272 कान, नाक, जीभ, शरीर और मन का उदय, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उदय, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था-मृत्यु का प्रकटीकरण है। आँख

(जैसा कि ऊपर बताया गया है) का निरोध, शांत होना और मन का देहांत दुख का देहांत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था-मृत्यु का देहांत है।"

---

313. प्रपत्र (रूपा)
श्रावस्ती में भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

(जैसा कि ऊपर बताया गया है) और मानसिक घटनाओं (धम्म) का निरोध, शांत होना और देहांत होना दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

314. चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)
सावत्थी में भिक्षुओं का कहना है, "मन-चेतना की नेत्र-चेतना (साथ ही कान, नाक, जीभ, शरीर) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। मन-चेतना की

नेत्र-चेतना (जैसा कि ऊपर बताया गया है) का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का देहांत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

315. संपर्क (संपहसा सं. संस्पर्श)
सावत्थी में कहा गया है, "भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) (कान, नाक, जीभ, शरीर आदि) का उत्पन्न होना, जारी रहना, उत्पादन और अभिव्यक्ति... मन के संपर्क से दुख उत्पन्न होता है, रोग जारी रहता है, बुढ़ापा और मृत्यु प्रकट होती है।

नेत्र संपर्क (जैसा कि ऊपर बताया गया है) का समाप्त होना (निरोध), शांत होना और देहांत होना... मन के संपर्क से दुख का समाप्त होना, रोग का शांत होना और बुढ़ापा और मृत्यु का देहांत होता है।"

---

316. संवेदना
सावत्थी में, "भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न संवेदना (वेदना) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण (कान, नाक, जीभ, शरीर के संपर्क से भी)... मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। नेत्र

संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) का निरोध, शांत होना और देहांत (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

317. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि) की अनुभूति का उद्‌भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति दुख का उद्‌भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

(ऊपर वर्णित) की अनुभूति का निरोध, शांत होना और देहांत होना... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति का देहांत होना दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

318. जागरूकता (संचेतना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति जागरूकता (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) का उद्‌भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता का उद्‌भव दुख का उद्‌भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

के प्रति जागरूकता (जैसा कि ऊपर बताया गया है) का निरोधन, शांत होना और देहांत होना... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता का देहांत दुख का निरोधन, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

319. लालसा (तन्हा बिना तृष्णा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) के प्रति लालसा (तन्हा संशय: तृष्णा) का उत्पन्न होना, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा का उत्पन्न होना, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है। रूपों

(ऊपर वर्णित) के प्रति लालसा (तन्हा संशय: तृष्णा) का निरोध, शांत होना और देहांत होना... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देहांत है।"

---

320. तत्व (धातु)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) ... जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व ... आकाश तत्व ... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) तत्व का उद्‌भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्‌भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। पृथ्वी

तत्व (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... चेतना तत्व का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का अंत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

321. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, रूप का उद्‌भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण... संवेदना (वेदना) का... बोध (संज्ञा) का... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का... चेतना (विज्ञान) का... दुख का उद्‌भव, रोग की निरंतरता, वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकटीकरण है।

रूप का निरोध, शांत होना और देह त्यागना... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... चेतना का दुख का अंत, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देह त्याग है।"

अध्याय 6: अशुद्धियों पर संबंधित प्रवचन (किलेसमसम्युत) {सम्युत्त-27}
322. आँख
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का विकार (उपकिलेष) है। 273 कान के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ... नाक के लिए ... जीभ के लिए ... शरीर के लिए ... मन के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु (भिक्षु) इन छह मामलों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है, तो उसका मन वैराग्य की ओर झुक जाता है। वैराग्य से सुदृढ़ मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।" 274

---

323. रूप (रूपा)

सावत्थी में लिखा है, "भिक्षुओं, रूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का उप्किलेष है। ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन का उप्किलेष है। जब कोई भिक्षु इन छह मामलों में मानसिक उप्किलेष का त्याग कर देता है, तो उसका मन वैराग्य की ओर झुक जाता है। वैराग्य से सुदृढ़ मन उन धम्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सुगम हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।"

---

324. चेतना (विन्नाना सं. विज्ञान)

भिक्षुओं, नेत्र-चेतना (कान, नाक, जीभ, स्पर्श) के लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) मन-चेतना के लिए होती है, जो मन का विकार (उपकिलेसा) है। जब कोई भिक्षु इन छह स्थितियों में मानसिक विकार (उपकिलेसा) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है)... तो उसका मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

---

325. संपर्क(फस्सा/स्पर्श) (संपहसा सं. संस्पर्श)

भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) की इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) (कान, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए भी)... मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के लिए मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु इन छह मामलों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है)... तो उसका मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।

---

326. अनुभूति(वेदना)

भिक्षुओं, नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श/फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (सम्मोहन) की इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) (कानों, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए भी)... मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (सम्मोहन) मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु (सम्मोहन) इन छह स्थितियों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है)... [उसका मन] उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।

---

327. धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)

भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि) के बोध की इच्छा (चंद) और वासना (राग) मन की (धम्म) का बोध करना मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु इन छह स्थितियों में (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है) इस मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है, तो उसका मन उन धम्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा ही समझा जा सकता है।

---

328. जागरूकता (संचेतना)

"भिक्षुओं (साधुओं), में रूपों के प्रति जागरूकता की इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) होती है... (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श के प्रति भी)। [234] ...मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जागरूकता मन का एक विकार (उपकिलेसा) है। जब कोई भिक्षु (साधु) इन छह मामलों में मानसिक विकार (उपकिलेसा) का त्याग कर देता है... [उसका मन] उन धम्मों (मार्ग, नियम) के संबंध में सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जाना है।"

---

329. तृष्णा(तन्हा सं. तृष्णा) (तन्हा सं. तृष्णा)

भिक्षुओं, रूपों (ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श आदि) के प्रति लालसा और अभिलाषा (चांड) और राग, मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा मन का विकार (उपकिलेष) है। जब कोई भिक्षु इन छह स्थितियों में मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है (जैसा कि अनुच्छेद 322 में है), तो उसका मन उन धर्मों (मार्ग, नियम) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

---

330. तत्व (धातु)

"भिक्खु (भिक्षु), पृथ्वी तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... जल तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... ताप तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... वायु तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... अंतरिक्ष तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) ... आकाश तत्व (धातु) के लिए इच्छा (चंद) और वासना (राग) चेतना (विन्ना सं. विज्ञान) तत्व (धातु) मन का भ्रष्टाचार (उपकिलेसा) है। जब एक भिक्षु (भिक्षु) ने इन छह मामलों में मानसिक भ्रष्टाचार (उपकिलेसा) को त्याग दिया है। (जैसा कि 322 में है)।

---

331. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)

भिक्षुओं, रूप, वेदना, बोध, संवेदन, संशय और चेतना के प्रति लालसा और राग, ये सभी मन के विकार (उपकिलेष) हैं। जब कोई भिक्षु इन पाँचों प्रकार के मानसिक विकार (उपकिलेष) का त्याग कर देता है, तो उसका मन वैराग्य की ओर प्रवृत्त होता है। वैराग्य से सुदृढ़ मन उन धर्मों (मार्गों और नियमों) के प्रति सहज हो जाता है जिन्हें दैवीय ज्ञान (अभिन्य) द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

अध्याय 7: सारिपुत्त से संबंधित प्रवचन (सारिपुत्तसम्युत्त) {सम्युत्त-28}
332. एकांतवास से जन्मा (विवेकजा संस. विवेकज्या)
(प्रथम ध्यान/समाधि) एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे।

सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं वस्त्र धारण करके सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद वापस लौटे, तो भोजन करने के बाद वे अंधवन (अंधों के वन) में दिनभर विश्राम करने के लिए चले गए। अंधवन में प्रवेश करके वे एक वृक्ष के चरणों में दिनभर विश्राम करने के लिए बैठ गए।

शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में चले गए। आदरणीय आनंद ने दूर से आदरणीय सारिपुत्त को आते देखा और उनसे कहा, "मित्र सारिपुत्त, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा निर्मल और तेजस्वी है। आदरणीय सारिपुत्त ने आज का दिन किस निवास में बिताया है?" 275

"यहाँ, मित्र, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और निवास किया, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। फिर भी, मित्र, मेरे मन में यह विचार नहीं आया, 'मैं प्रथम ध्यान प्राप्त कर रहा हूँ,' या 'मैंने प्रथम ध्यान प्राप्त कर लिया है,' या 'मैं प्रथम ध्यान से बाहर आ गया हूँ।' "

यह अवश्य ही इसलिए होगा क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत पहले ही पूरी तरह से जड़ से उखाड़ दिया गया था, इसलिए उनके मन में ऐसे विचार नहीं आए।" 276

---

333. बिना विचार के (अवितक्का सं. अवितार्क)
(द्वितीय ध्यान/समाधि) सावत्थी में.... (जैसा कि ऊपर 332 में है) ... पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा और उनसे कहा: "मित्र सारिपुत्त, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका रंग शुद्ध और तेजस्वी है। पूज्य सारिपुत्त ने आज का दिन किस निवास में बिताया है?"

"यहाँ, मित्र, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैंने द्वितीय ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। फिर भी, मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं द्वितीय ध्यान प्राप्त कर रहा हूँ' या 'मैंने द्वितीय ध्यान प्राप्त कर लिया है' या 'मैं द्वितीय ध्यान से बाहर आ गया हूँ' ।" "

यह अवश्य ही इसलिए होगा क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत पहले ही पूरी तरह से जड़ से उखाड़ दिया गया था, इसलिए उन्हें ऐसे विचार नहीं आए।"

---

334. आनंद (पीति सं. प्रीति)
(तृतीय ध्यान/समाधि) सावत्थी में... पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"यहाँ, मित्र, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होते ही, मैं समभाव और ध्यानमग्न (सतिमा) अवस्था में रहा, और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) होकर, मैंने शरीर के साथ सुख का अनुभव किया; मैं उस तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें निवास किया जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न और सुखी है।' फिर भी, मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया, 'मैं तृतीय ध्यान प्राप्त कर रहा हूँ....'" (पूर्ववर्ती सूत्र 333 के अनुसार पूर्ण)

---

335. समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)
(चौथा ध्यान/समाधि) सावत्थी में... (जैसा कि 332 में है)... पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, सुख-दुख का त्याग करके और पहले ही सुख-दुख के दूर हो जाने के बाद, मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सती) का शुद्धिकरण शामिल है। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया, 'मैं चौथे ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

336. अंतरिक्ष की अनंतता का संकाय (आकाश-अनन्त-आयतना संस्कृत: आकाश-अनन्त-आयतना)
(पांचवां ध्यान/ज़ेन/समाधि) सावत्थी में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, यहाँ, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) के बोधों के लुप्त होने से, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैंने अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया, 'मैं अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

337. चेतना की अनंतता की क्षमता (Vinnan-ananc-ayatana sans. Vigyan-anant-ayatana)
(छठा ध्यान/ज़ेन/समाधि) सावत्थी में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) अनंत है,' मैंने अनंत चेतना की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं अनंत चेतना की अनुभूति प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

338. शून्यता की क्षमता (अकिंचन्न-आयतना)
(सातवाँ ध्यान/ज़ेन/समाधि) सावत्थी में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, यहाँ मैंने चेतना की अनंतता (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, शून्यता की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं शून्यता की क्षमता प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

339. न तो-धारणा-न ही-गैर-धारणा का संकाय
(आठवीं ध्यान अवस्था/समाधि) श्रावस्ती में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"मित्र, यहाँ मैंने शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करके, न-बोध-न-बोध की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। फिर भी, मित्र, मुझे यह विचार नहीं आया कि 'मैं न-बोध-न-बोध की शक्ति प्राप्त कर रहा हूँ...'"

---

340. निरोध की प्राप्ति (निरोध-समापत्ति सं. निरोध-सम-प्राप्ति)
(निब्बान/निर्वाण/मोक्ष की ओर अग्रसर नौवां अंतिम ध्यान/समाधि) श्रावस्ती में (जैसा कि 332 में है) पूज्य आनंद ने दूर से पूज्य सारिपुत्त को आते देखा...

"हे मित्र, यहाँ मैंने न-बोध-न-बोध की शक्ति को पूर्णतः पार करके, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश किया और निवास किया। फिर भी, हे मित्र, मेरे मन में यह विचार नहीं आया, 'मैं बोध और वेदना की निरोध अवस्था प्राप्त कर रहा हूँ,' या 'मैंने बोध और वेदना की निरोध अवस्था प्राप्त कर ली है,' या 'मैं बोध और वेदना की निरोध अवस्था से बाहर आ गया हूँ।' "

यह अवश्य ही इसलिए होगा क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत समय पहले ही पूर्णतः जड़ से उखाड़ दिया गया था, इसलिए मेरे मन में ऐसे विचार नहीं आए। उसे।"

---

341. सुचिमुखी
एक बार पूज्य सारिपुत्त राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। राजगृह में निरंतर भिक्षा मांगने के बाद, 277 उन्होंने एक दीवार के सहारे बैठकर भिक्षाभोजन किया। तभी

महिला तपस्वी सुचिमुखी पूज्य सारिपुत्त के पास आईं और उनसे बोलीं, “हे तपस्वी, क्या आप नीचे की ओर मुख करके भोजन करते हैं?” 278

“मैं नीचे की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।” “

तो हे तपस्वी, क्या आप ऊपर की ओर मुख करके भोजन करते हैं?”

“मैं ऊपर की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।”

“तो हे तपस्वी, क्या आप चारों दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करते हैं?” 279

“मैं चारों दिशाओं की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।”

"तो, हे तपस्वी, क्या आप मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करते हैं?"

"मैं मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन नहीं करता, बहन।"

"जब आपसे पूछा जाता है, 'हे तपस्वी, क्या आप नीचे की ओर मुख करके भोजन करते हैं?'
... 'क्या आप मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करते हैं?' तो आप
उत्तर देते हैं, 'मैं इस प्रकार भोजन नहीं करता, बहन।' तो फिर आप कैसे भोजन करते हैं, हे तपस्वी?"

"बहन, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो भू-ज्योतिष की भ्रष्ट कला 280 - आजीविका का एक गलत साधन - से अपना जीवन यापन करते हैं, उन्हें नीचे की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है। वे तपस्वी और ब्राह्मण जो ज्योतिष की भ्रष्ट कला 281 - आजीविका का एक गलत साधन - से अपना जीवन यापन करते हैं, उन्हें ऊपर की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है। वे तपस्वी और ब्राह्मण जो संदेशवाहक बनकर और सामान पहुँचाकर अपना जीवन यापन करते हैं 282 - आजीविका का एक गलत साधन - उन्हें चारों दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है। वे तपस्वी और ब्राह्मण जो हस्तरेखा शास्त्र की भ्रष्ट कला 283 - आजीविका का एक गलत साधन - से अपना जीवन यापन करते हैं, उन्हें मध्य दिशाओं की ओर मुख करके भोजन करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है।

बहन, मैं भू-ज्योतिष की भ्रष्ट कला या ज्योतिष की भ्रष्ट कला जैसे भ्रष्ट साधनों से अपना जीवन यापन नहीं करता/करती हूँ।" ज्योतिष विद्या से, या संदेशवाहक बनकर, या हस्तरेखा शास्त्र जैसी नीच कला से। मैं विधिपूर्वक भिक्षा मांगती हूँ और भिक्षा प्राप्त करने के बाद विधिपूर्वक ही भिक्षा ग्रहण करती हूँ।

फिर साध्वी सुचिमुखी राजगृह में गली-गली और चौराहे-चौक जाकर घोषणा करने लगीं: “शाक्य पुत्र के अनुयायी साध्वी विधिपूर्वक भोजन करते हैं; वे निष्कलंक भोजन करते हैं। शाक्य पुत्र के अनुयायी साध्वी साध्वी को भिक्षा दें।”

अध्याय 8: नागों पर संबंधित प्रवचन (नागसम्युत्त) {सम्युत्त-29}
(यह अध्याय नाग नामक अमानवीय प्राणियों के बारे में है, जो मनुष्यों को दिखाई नहीं देते और पश्चिम दिशा में निवास करते हैं, जैसा कि दिघनिकाय के अतनातिया सूत्र में वर्णित है।)
342. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं (संतों), नागों की उत्पत्ति के ये चार तरीके हैं। 284 वे चार क्या हैं? अंडों से उत्पन्न नाग, गर्भ से उत्पन्न नाग, नमी से उत्पन्न नाग, स्वतः उत्पन्न नाग। ये नागों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

343. श्रेष्ठ (पानितातारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, नागों की उत्पत्ति के ये चार तरीके हैं...

"भिक्षुओं, गर्भ से, जल से और स्वतः उत्पन्न होने वाले नाग, अंडों से उत्पन्न होने वाले नागों से श्रेष्ठ हैं। जल से और स्वतः उत्पन्न होने वाले नाग, अंडों से और गर्भ से उत्पन्न होने वाले नागों से श्रेष्ठ हैं। स्वतः उत्पन्न होने वाले नाग, अंडों से, गर्भ से और जल से उत्पन्न होने वाले नागों से श्रेष्ठ हैं।

"भिक्षुओं, ये नागों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

344. उपोसथा (1)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, यहाँ कुछ वृहद नाग उपोसथ का पालन क्यों करते हैं और अपने शरीर के प्रति सजग नहीं रहते, इसका कारण क्या है?" 285

"हे भिक्षुओं, कुछ वृहद नाग ऐसा सोचते हैं: 'पूर्वजों हमने शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव रखा। 286 ऐसा करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के क्षोभ के साथ हमारा पुनर्जन्म हुआ। यदि आज हम शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण का अभ्यास करें, तो मृत्यु के बाद शरीर के क्षोभ के साथ हमारा पुनर्जन्म स्वर्गलोक में होगा। आइए, हम शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण का अभ्यास करें।'

"यही कारण है कि यहाँ कुछ अंडाणु-जन्म नाग उपोसथ का पालन करते हैं और अपने शरीर के प्रति चिंता का त्याग करते हैं।" [242]

345-347. उपोसथा (2-4)
(अन्य तीन प्रकार के नागों के लिए भी यही प्रक्रिया दोहराई जाती है।)

---

348. उसने सुना है (1) (सुत सं. श्रुत)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर कोई व्यक्ति अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से दुविधा में है। उसने सुना है: 'अंडाणु-जनित नाग दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर, काश मैं अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!' फिर, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर, वह अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

" "यही कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु होने पर यहाँ कोई व्यक्ति अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

349-351. उसने सुना है (2-4) (सुता सं. श्रुता)
(ये तीनों सूत्र अन्य तीन प्रकार के नागों के लिए भी यही बात दोहराते हैं।)

352-361. दान देने के समर्थन से (1) (अंदज-दान-उपकारा)
एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि [245] शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु से पहले कोई व्यक्ति अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव से कार्य कर रहा है। उसने सुना है: 'अंडाणु-जनित नाग दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु से पहले, मैं अंडाणु-जनित नागों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!'" वह भोजन देता है... वह पेय देता है... वह वस्त्र देता है... वह वाहन देता है... वह माला देता है... वह सुगंध देता है... वह मरहम देता है... वह पलंग देता है... वह निवास देता है... वह दीपक देता है। 287 फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह अंडाणुजनित नागों के साथ पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, अंडाणुजनित नागों के साथ पुनर्जन्म लेता है।"

362-391. दान देने के सहयोग से (2-4) (जलाबुजादि-दान-उपकार)
(ये तीनों दशक अन्य तीन प्रकार के नागों के लिए पिछले दशक को दोहराते हैं।)

अध्याय 9: सुपन्नों पर संबंधित प्रवचन (सुपन्नसम्युत्त) {सम्युत्त-30}
(यह अध्याय सुपन्ना नामक गैर-मानव प्राणियों के बारे में है, जो मनुष्यों को दिखाई नहीं देते।)
392. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, सुपन्नों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं। वे चार कौन से हैं? अंडों से उत्पन्न सुपन्न, गर्भ से उत्पन्न सुपन्न, नमी से उत्पन्न सुपन्न, और स्वतः उत्पन्न सुपन्न। ये सुपन्नों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

393. वे ले जाते हैं (हरंती)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, सुपन्नों की उत्पत्ति के ये चार तरीके हैं...

"भिक्षुओं, अंडों से उत्पन्न सुपन्न केवल अंडों से उत्पन्न नागों को ही ले जाते हैं, गर्भ से उत्पन्न, जल से उत्पन्न या स्वतः उत्पन्न नागों को नहीं। गर्भ से उत्पन्न सुपन्न अंडों से उत्पन्न और गर्भ से उत्पन्न नागों को ले जाते हैं, जल से उत्पन्न या स्वतः उत्पन्न नागों को नहीं। जल से उत्पन्न सुपन्न अंडों से उत्पन्न, गर्भ से उत्पन्न और जल से उत्पन्न नागों को ले जाते हैं, स्वतः उत्पन्न नागों को नहीं। स्वतः उत्पन्न सुपन्न अंडों से उत्पन्न, गर्भ से उत्पन्न, जल से उत्पन्न और स्वतः उत्पन्न नागों को ले जाते हैं।

"भिक्षुओं, ये सुपन्नों की उत्पत्ति के चार तरीके हैं।"

---

394. उभयभावी (1) (द्वयकारी सं. द्वंदव्य-कारी)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले कोई व्यक्ति अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव से कार्य करता है। उसने सुना है: 'अंडजनित सुपन्न दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं', वह सोचता है: 'हे शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले, मैं अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!' फिर, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले, वह अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

" "यही कारण है कि शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु से पहले यहाँ कोई व्यक्ति अंडजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

395-397 अस्पष्ट
(पहले की तरह, यही प्रक्रिया अन्य तीन प्रकार के सुपन्नाओं के लिए भी दोहराई जाती है।)

398-407. दान देने के समर्थन से (1) (अंदज-दान-उपकारा)
एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति अंडे से जन्मे सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "

हे भिक्षु, कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से द्वैत भाव से कार्य कर रहा है। उसने सुना है: 'अंडे से जन्मे सुपन्न दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद, काश मैं अंडे से जन्मे सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!'" वह भोजन देता है... वह पेय देता है... वह वस्त्र देता है... वह वाहन देता है... वह माला देता है... वह सुगंध देता है... वह मरहम देता है... वह पलंग देता है... वह निवास देता है... वह दीपक देता है। फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह अंडाणुजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, अंडाणुजनित सुपन्नों की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

408-437. दान देने के सहयोग से (जलाबुजादि-दान-उपकार)
(ये तीनों दशक अन्य तीन प्रकार के सुपन्नाओं के लिए पिछले दशक की पुनरावृत्ति करते हैं।)

अध्याय 10: गंधब्बास पर संबंधित प्रवचन (गंधब्बासंयुक्त सं. गंधर्व-संयुक्त) {संयुत्त-31}
(यह अध्याय गंधर्व नामक अमानवीय प्राणियों के बारे में है, जो संस्कृत में गंधर्व कहलाते हैं और मनुष्यों को दिखाई नहीं देते।)

438. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गंधर्व संप्रदाय के देवों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, गंधर्व संप्रदाय के देव कौन हैं? हे भिक्षुओं, सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित लकड़ी में निवास करने वाले 289 देव हैं, सुगंधित कोमल लकड़ी में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित छाल में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित टहनियों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित पत्तियों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित फूलों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित फलों में निवास करने वाले देव हैं, सुगंधित रस में निवास करने वाले देव हैं, और सुगंधित सुगंधों में निवास करने वाले देव हैं।
हे भिक्षुओं, इन्हें गंधर्व संप्रदाय के देव कहा जाता है।"

---

439. अच्छा आचरण (सुकारिता सं. सुचरित्र)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के टूटने के बाद मृत्यु से पहले कोई गंधर्व संप्रदाय के देवों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?" "हे

भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का अभ्यास करता है। 290 उसने सुना है: 'गंधर्व संप्रदाय के देव दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण हैं।' वह सोचता है: 'हे शरीर के टूटने के बाद मृत्यु से पहले, मैं गंधर्व संप्रदाय के देवों की संगति में पुनर्जन्म लूँ!'" फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह गंधर्व संप्रदाय के देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, गंधर्व संप्रदाय के देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

---

440. दाता (1) (मूल-गंध-दाता)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवदूतों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति देह, वाणी और मन से अच्छे आचरण का अभ्यास करता है। उसने सुना है: सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देव दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं। वह सोचता है: 'हे शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद, मुझे भी सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवों की संगति में पुनर्जन्म मिले!'" वह सुगंधित जड़ों का दाता बन जाता है। फिर, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

441-449. दाता (सार-गन्धादि-दाता)
(यही प्रतिमान गंधबत्तों के अन्य समूहों - जैसे सुगंधित लकड़ी में निवास करने वाले आदि - के लिए भी दोहराया जाता है, जैसा कि 440 में सूचीबद्ध है, जिनमें से प्रत्येक संबंधित प्रकार का दान दाता है।)

450-459. दान देने के सहयोग से (1) (मूल-गंध-दान-उपकार)
श्रावस्ती में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, क्या कारण है कि शरीर के क्षोभ से मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवदूतों की संगति में पुनर्जन्म लेता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से अच्छे आचरण का अभ्यास करता है। उसने सुना है: 'सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देव दीर्घायु, सुंदर और सुख से परिपूर्ण होते हैं।'

वह सोचता है: 'हे शरीर के क्षोभ से मृत्यु के बाद, मुझे भी सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवों की संगति में पुनर्जन्म मिले!' वह भोजन देता है... वह पेय देता है... वह वस्त्र देता है... वह वाहन देता है... वह माला देता है... वह सुगंध देता है... वह मरहम देता है... वह पलंग देता है... वह निवास देता है... वह दीपक देता है।" फिर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वह सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।

"यही कारण है कि यहाँ कोई व्यक्ति, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, सुगंधित जड़ों में निवास करने वाले देवताओं की संगति में पुनर्जन्म लेता है।"

460-549. दान देने के सहयोग से(2) (सार-गन्धादि-दान-उपकार)
(सुगंधित लकड़ी में निवास करने वाले अन्य प्रकार के गंधबों आदि के लिए उपरोक्त प्रतिमान को दोहराएं।)

अध्याय 11: मेघ देवों पर संबंधित प्रवचन (वलाहकसयुत्त) {संयुत्त-32}
(देवताओं/बादलों के स्वर्गदूतों के अदृश्य लोक के बारे में)
550. सरल संस्करण (शुद्धिका बिना शुद्धि)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें बादल में निवास करने वाले देवों के बारे में सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो। ...

"और, भिक्षुओं, बादल में निवास करने वाले देव कौन हैं? 291 भिक्षुओं, शीतल बादल देव, गर्म बादल देव, तूफान बादल देव, वायु बादल देव और वर्षा बादल देव हैं।

"भिक्षुओं, इन्हें बादल में निवास करने वाले देव कहा जाता है।"

---

551. अच्छा आचरण (सुकारिता सं. सुचरित्र)
(यह अनुच्छेद 439 के समान है, जिसमें बादलों में निवास करने वाले देवों (देवदूतों) की संगति में पुनर्जन्म का वर्णन है।)

552-561. दान देने के समर्थन से (1) (सीता-वलहक-दान-उपकारा)
(440 के समान, शीतल बादल देवों की संगति में पुनर्जन्म के संबंध में।) 292

562-601. दान देने के सहयोग से (2) (उन्हा-वलाहका-दान-उपकार सं. उशना-)
(ये सूत्र पिछले सूत्रों की तरह ही, अन्य
प्रकार के बादल-निवास करने वाले देवताओं के बीच पुनर्जन्म के संबंध में प्रतिमान को दोहराते हैं।)

---

602. शीतल-मेघ देवता (सीता-वल्लाह)
सावत्थी में... एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"आदरणीय महोदय, कभी-कभी यहाँ ठंड क्यों हो जाती है?"

भगवान ने जवाब दिया, "भिक्षु, शीतल बादल देव कहलाते हैं। जब उनके मन में यह विचार आता है कि 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में लीन हो जाएँ", तो उनकी इच्छा के अनुसार यहाँ ठंड हो जाती है। भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी यहाँ ठंड हो जाती है।"

---

603. गर्म-बादल देवता (उंहा-वलाहका सं. उशना-)
... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी यहाँ गर्मी क्यों हो जाती है?"

"हे भिक्षु, यहाँ कुछ ऐसे देवदूत हैं जिन्हें गर्म बादल देव कहा जाता है। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएँ,' तो उनकी इच्छा के अनुसार यहाँ गर्मी हो जाती है। हे भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी यहाँ गर्मी हो जाती है।"

---

604. तूफान-बादल देवता (अभभा-वल्हाका)
... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी यहाँ तूफ़ान क्यों आता है?"

"हे भिक्षु, यहाँ तूफ़ान-बादल देव हैं। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएँ,' तब उनकी इच्छा के अनुसार तूफ़ान आ जाता है। हे भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी यहाँ तूफ़ान आ जाता है।"

---

605. पवन-बादल देवता (वात-वल्हाक)

... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी हवा क्यों चलती है?"

"हे भिक्षु, कुछ ऐसे देवदूत होते हैं जिन्हें पवन-बादल देव कहा जाता है। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएं,' तब उनकी इच्छा के अनुसार हवा चलने लगती है। हे भिक्षु, यही कारण है कि कभी-कभी हवा चलती है।"

---

606. वर्षा-मेघ देवता (वस्सा-वलाहा सं. वर्षा-)
... "आदरणीय महोदय, कभी-कभी बारिश क्यों होती है?"

"हे भिक्षु, वर्षा-बादल देव होते हैं। जब उनके मन में यह विचार आता है, 'चलो हम अपने ही प्रकार के आनंद में मग्न हो जाएं,' तब उनकी इच्छा के अनुसार वर्षा होती है। हे भिक्षु, यही कभी-कभी बारिश होने का कारण है।"

अध्याय 12: वाचागोट्टा (वाचागोट्टासंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-33}
607. रूप (1) न जानने के कारण (रूप-अन्नन संस्कृत रूप-अज्ञ)
सावत्थी में, तपस्वी वच्छगोत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। 294 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“गुरु गौतम, संसार में ये विभिन्न सैद्धांतिक विचार क्यों उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं', या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते', या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते', या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते'?”

"हे वच्छा, रूप, उत्पत्ति, निरोध और निरोध की समाप्ति के मार्ग के अज्ञान के कारण ही संसार में अनेक प्रकार के मत उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही न्यस्त होते हैं।' हे वच्छा, यही वह कारण है जिसके कारण संसार में अनेक प्रकार के मत उत्पन्न होते हैं।" 295

---

608. संवेदन को न जानने के कारण (2) (वेदना-अन्न सं. वेदना-अज्ञान)
सावत्थी में...

"हे वच्छा, संवेदना (वेदना), उसके उद्गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग (निरोध) के अज्ञान के कारण ही संसार में वे विभिन्न सैद्धांतिक विचार उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है'... या
'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविद्यित।' हे वच्छा, यही वह कारण है जिसके कारण संसार में वे विभिन्न सैद्धांतिक विचार उत्पन्न होते हैं।"

---

609. धारणा न जानने के कारण (3) (सन्ना-अन्ना सं. संज्ञा-अज्ञान)
... "हे वच्छ, यह इसलिए है क्योंकि बोध (सन्ना संस. संग्या), इसकी उत्पत्ति, इसका अंत और इसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग (निरोध) का ज्ञान न होने के कारण ही संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं...."

---

610. संस्कार न जानने के कारण (4) (संस्कार-अन्ना सं. संस्कार-अज्ञान)
... "हे वच्छा, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) की स्थिति, उनके उद्गम, उनके निवारण (निरोध) और उनके निवारण के मार्ग के अज्ञान के कारण ही संसार में वे विभिन्न प्रकार के संशयपूर्ण विचार उत्पन्न होते हैं...."

---

611. अज्ञान चेतना के कारण(5) (विन्नाना-अन्नाना संस. विज्ञान-अज्ञ)
... "हे वच्छा, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग के अज्ञान के कारण ही संसार में वे विभिन्न सैद्धांतिक विचार उत्पन्न होते हैं...."

612-616 रूप आदि न देखने के कारण (रूप-अदस्सनादि सं. रूप-दर्शन-आदि)

... "हे वच्छ, रूप न देखने के कारण ही ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा संस्कृत) ... संखार (बाध्यकारी व्यवहार-आधार) ... चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), इसकी उत्पत्ति, इसका निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग के कारण ही संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं...." 296

617- 621. रूपों आदि को भेद न पाने के कारण (रूप-अनभिसामयदि)
... "हे वच्छा, यह इसलिए है क्योंकि हम ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-अनुकूलन) ... चेतना (विन्नान (विज्ञान)), इसकी उत्पत्ति, इसका निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को पार नहीं कर पाते, इसीलिए संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं..."

622-626. रूपों आदि को न समझने के कारण (रूप-अननुबोधादि)
(पिछले वाक्य के समान, लेकिन "रूप को न समझ पाना," आदि पढ़ें।)

627-631. रूप आदि का भेदन न करने के कारण (रूप-अप्पेटिवधादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "भेदनशील रूप नहीं," आदि पढ़ें।)

632-636. रूप आदि का विवेक न करने के कारण (रूप-असल्लक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "रूप को न पहचान पाना," आदि पढ़ें।)

637-641. रूपों आदि में भेदभाव न करने के कारण (रूप-अनुपालक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "भेदभावपूर्ण रूप नहीं," आदि पढ़ें।)

642-646. रूपों आदि में अंतर न करने के कारण (रूप-अप्पच्चुपालक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "रूप का विभेदन नहीं कर रहा है," आदि पढ़ें।)

647-651. फॉर्म आदि की जांच न करने के कारण (रूप-असमपेक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "परीक्षा प्रपत्र नहीं" आदि पढ़ें।)

652-656. प्रपत्रों आदि की ठीक से जांच न करने के कारण (रूपा-अप्पच्चुपेक्खनादि)
(पिछले वाले के समान, लेकिन "बारीकी से जांच नहीं करना," आदि पढ़ें।)

657-661. रूपों आदि को प्रत्यक्ष रूप से न जानने के कारण (रूप-अप्पच्चकम्मदि)
... "हे वच्छा, रूप, संवेदना (वेदना), बोध (संज्ञा, संज्ञा, संशय, बाध्यकारी व्यवहार, चेतना, विज्ञान, इसके उद्‌गम, इसके निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने के कारण ही संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते'। हे वच्छा, यही कारण है कि संसार में वे विभिन्न काल्पनिक विचार उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं होते' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और नहीं भी होते'।" "तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही उनका अस्तित्व समाप्त होता है।"

अध्याय 13: ध्यान में समाधि अवस्थाओं पर संबंधित प्रवचन (झानसाम्युत्त) {साम्युत्त-34}
662. समाधि आधारित प्राप्ति (समाधि-मूलक-समापत्ति सं. समाधि-मूलक-संप्राप्ति)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था (विभिन्न दिव्य अवस्थाओं) की प्राप्ति में कुशल नहीं होता है।" 298

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था से संबंधित समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित प्राप्ति दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, इस प्रकार, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था से संबंधित समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित प्राप्ति दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई निकलती है, मलाई से मक्खन निकलता है, मक्खन से घी निकलता है, और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में निपुण तथा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में निपुण ध्यानी इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

---

663. समाधि आधारित रखरखाव (समाधि-मूलक-स्थिति सं. समाधि-मूलक-स्थिति)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल होता है, लेकिन (दीर्घ) समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं होता। 300

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है, लेकिन समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है।

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

664. समाधि आधारित उद्भव (समाधि-मूलक-वुत्थन)
नोट: 301

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर निकलने (उससे बाहर निकलने पर नियंत्रण) में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर निकलने में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर निकलने में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से उद्भव दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से उद्भव दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से उद्भव दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

665. समाधि आधारित प्लिन्सी (समाधि-मूलक-कल्लिता)
नोट: 302

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन (एक दिव्य अवस्था से दूसरी दिव्य अवस्था में शीघ्रता से जाने) में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के प्रति लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के प्रति लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के प्रति लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

666. समाधि आधारित वस्तु (समाधि-मूलक-अरम्मना)
(टिप्पणी: 303)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) के विषय (ध्यान का विषय, किस पर) में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित विषय, दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित विषय, दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित विषय, दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

667. समाधि आधारित रेंज (समाधि-मुलाका-गोकारा)
(टिप्पणी: 304)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विस्तार (संकीर्ण या व्यापक, शरीर के भीतर से ब्रह्मांड की अनंतता तक) में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विस्तार में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विस्तार में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित ज्ञान, दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित ज्ञान, दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से संबंधित ज्ञान, दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

668. समाधि आधारित संकल्प (समाधि-मूलक-अभिनिहार)
(टिप्पणी: 305)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, पर समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में, पर समाधि (सम्मोहन) अवस्था के समाधान में कुशल होता है।

यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के समाधान में कुशल होता है, पर समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था के समाधान में।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

669. समाधि आधारित संपूर्णता (समाधि-मूलका-सक्कक्काकारी)
(टिप्पणी: 306)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था की गहनता (तीव्रता और पूर्णता) में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की गहनता में तो कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था की गहनता में कुशल होता है।

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था के प्रति पूर्णतः निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था के प्रति पूर्णतः निपुण होता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे भिक्षुओं

, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था के प्रति और समाधि अवस्था के प्रति पूर्णतः निपुण होता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

670. समाधि आधारित दृढ़ता (समाधि-मूलक-सतक्काकारी)
(टिप्पणी: 307)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर नहीं रहता (नियमित रूप से, बार-बार या समय-समय पर प्राप्त नहीं करता)।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर रहने में कुशल होता है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर रहने में कुशल नहीं होता।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निरंतर रहने में कुशल होता है।

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था में दृढ़ता दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था में दृढ़ता दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध निकलता है, दूध से मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था में दृढ़ता दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

671. समाधि आधारित उपयुक्तता (समाधि-मूलक-सप्पयकारी)
(टिप्पणी: 308)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल होता है, लेकिन समाधि अवस्था की उपयुक्तता (निरवान/समाधि के संबंध में उपयुक्त या अनुपयुक्त अवस्था) में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में कुशल होता है, लेकिन समाधि अवस्था के संबंध में समाधि अवस्था में कुशल नहीं होता है।

" "यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था में कुशल होता है और न ही समाधि अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में कुशल होता है।"

"यहाँ ध्यान करने वाला व्यक्ति समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के लिए उपयुक्तता दोनों में निपुण होता है।

हे भिक्षुओं, समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के लिए उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि अवस्था और समाधि अवस्था के लिए उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

---

672. प्राप्ति आधारित रखरखाव (समापत्ति-मुलाका-तिथि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था के पालन में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के पालन में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है और न ही उसके पालन में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और पालन दोनों में निपुण है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और पालन दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और उसे बनाए रखने में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

673. प्राप्ति आधारित उद्भव (समापत्ति-मुलाका-वुत्थन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण होता है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर आने में निपुण नहीं होता।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था से बाहर आने में निपुण होता है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण नहीं होता।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न तो निपुण होता है और न ही बाहर आने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण और बाहर आने दोनों में निपुण होता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण और बाहर आने दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट होता है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और उद्भव दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

674. प्राप्ति आधारित प्लिन्सी (समापट्टी-मुलाका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में कुशल है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में लचीलेपन में कुशल नहीं है।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में लचीलेपन में कुशल है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में

कुशल नहीं है।" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में न तो प्राप्ति में कुशल है और न ही लचीलेपन में।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और लचीलेपन दोनों में कुशल है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और लचीलेपन दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में निपुण प्राप्ति और लचीलेपन में पारंगत ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

675. प्राप्ति आधारित वस्तु (समापट्टी-मुलाका-अराम्मना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विषय में निपुण नहीं है। "

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विषय में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में न तो प्राप्ति में और न ही विषय में निपुण है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और विषय दोनों में निपुण है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और विषय दोनों में निपुण है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और विषय दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

676. प्राप्ति आधारित रेंज (समापट्टी-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था की सीमा में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की सीमा में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और सीमा

दोनों में निपुण है। यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और सीमा दोनों में निपुण है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और सीमा दोनों में निपुण है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और सीमा दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

677. प्राप्ति आधारित संकल्प(समापत्ति-मूलक-अभिनिहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था के निवारण में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के निवारण में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन)

अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और निवारण दोनों में निपुण है।

"यहाँ, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और निवारण दोनों में निपुण ध्यान करने वाला इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और संकल्प दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

678. प्राप्ति आधारित संपूर्णता (समापट्टी-मुलाका-सक्काकाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन) अवस्था की पूर्णता में निपुण नहीं है। " "यहाँ

, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की पूर्णता में निपुण है, परन्तु समाधि (सम्मोहन)

अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

" "यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और पूर्णता दोनों में निपुण है।

" "यहाँ, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और पूर्णता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था में निपुण और पूर्णतया निपुण ध्यानी इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

679. प्राप्ति आधारित दृढ़ता (समापत्ति-मुलाका-सताकाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था में बने रहने में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था में बने रहने में निपुण है, परन्तु समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण नहीं है।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था की प्राप्ति में निपुण है और न ही उसमें बने रहने में।

यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और उसमें बने रहने दोनों में निपुण है।

"यहाँ, भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की प्राप्ति और उसमें बने रहने दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था की प्राप्ति और उसमें दृढ़ता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

680. प्राप्ति आधारित उपयुक्तता (समापत्ति-मुलाका-सप्पयकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था की उपयुक्तता में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में निपुण है, लेकिन समाधि (सम्मोहन) अवस्था

के संबंध में प्राप्ति में निपुण नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और उपयुक्तता दोनों में निपुण है।

"यहाँ, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में प्राप्ति और उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यान करने वाला इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और सबसे उत्कृष्ट है।"

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, गाय से दूध निकलता है... और घी से मलाई निकलती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में सिद्धि और उपयुक्तता दोनों में निपुण ध्यानी... इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

681. रखरखाव आधारित उद्भव (थिति-मुलाका-वुत्थना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर आने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था से बाहर आने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उससे बाहर आने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर आने दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर आने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

682. रखरखाव आधारित लचीलापन, आदि (थिति-मूलक-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उसे बनाए रखने में कुशल है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसे बनाए रखने दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसे बनाए रखने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

683. रखरखाव आधारित वस्तु, आदि (थिति-मुलका-अराम्मन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था के विषय में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के विषय में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है और न ही उसके विषय में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव और विषय दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था के रखरखाव और विषय दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

684. रखरखाव आधारित रेंज, आदि (थिति-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही बाहर निकलने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और बाहर निकलने दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और बाहर निकलने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

685. रखरखाव आधारित संकल्प, आदि (थिति-मुलाका-अभिनिहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था से बाहर निकलने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उससे बाहर निकलने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर निकलने दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और उससे बाहर निकलने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

686. रखरखाव आधारित संपूर्णता, आदि (थिति-मुलाका-सक्कक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से पूर्ण होने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को पूर्ण करने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही पूर्ण होने में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और पूर्ण होने दोनों में कुशल है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था को बनाए रखने और पूर्ण होने दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

687. रखरखाव आधारित दृढ़ता, आदि (थिति-मुलाका-सताक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

"हे भिक्षुओं, यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था से दृढ़ता से बाहर आने में कुशल नहीं है।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल नहीं है।

"यहाँ एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था को बनाए रखने में कुशल है और न ही उसमें दृढ़ता से बाहर आने में

कुशल है। "यहाँ एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसमें दृढ़ता से बाहर आने दोनों में कुशल है।

"इसलिए, हे भिक्षुओं, जो ध्यान करने वाला समाधि अवस्था को बनाए रखने और उसमें दृढ़ता से बाहर आने दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

688. रखरखाव आधारित उपयुक्तता, आदि (थिति-मुलाका-सप्पयकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था की उपयुक्तता में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था की उपयुक्तता में कुशल है, लेकिन समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल नहीं है।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला न तो समाधि अवस्था के रखरखाव में कुशल है और न ही उसकी उपयुक्तता में।

"यहाँ, एक ध्यान करने वाला समाधि अवस्था के रखरखाव और उपयुक्तता दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि अवस्था के रखरखाव और उपयुक्तता दोनों में कुशल है, इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

689. उद्भव आधारित प्लिन्सी आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन लचीलेपन में नहीं... वह लचीलेपन में कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और लचीलेपन दोनों में कुशल है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और लचीलेपन दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

690. उद्भव आधारित वस्तु आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में निपुण है लेकिन विषय में नहीं... विषय में निपुण है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में निपुण है और न ही विषय में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और विषय दोनों में निपुण है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और विषय दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

691. उद्भव आधारित रेंज आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो निपुण है लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में और न सीमा में निपुण... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और सीमा दोनों में निपुण है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और सीमा दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

692. उद्भव आधारित संकल्प आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में तो कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न ही संकल्प में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और संकल्प दोनों में कुशल है।

" "इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और संकल्प दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

693. उद्भव आधारित पूर्णता आदि (वुत्थाना-मूलक-कल्लित)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन पूर्णता में नहीं... पूर्णता में कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न ही पूर्णता में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और पूर्णता दोनों में कुशल है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और पूर्णता दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

694. उद्भव आधारित दृढ़ता आदि (वुत्थन-मुलका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला वह है जो उद्भव में तो कुशल है लेकिन स्थिरता में नहीं... स्थिरता में कुशल है लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल है और न स्थिरता में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और स्थिरता दोनों में कुशल है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उद्भव और स्थिरता दोनों में कुशल है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

695. उद्भव आधारित उपयुक्तता आदि (वुत्थन-मुलाका-कल्लिता)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला उद्भव में तो कुशल होता है, लेकिन उपयुक्तता में नहीं... उपयुक्तता में तो कुशल होता है, लेकिन उद्भव में नहीं... न उद्भव में कुशल होता है, न उपयुक्तता में... और न ही समाधि अवस्था के संबंध में उद्भव और उपयुक्तता दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संबंध में उद्भव और उपयुक्तता दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

696. प्लिअन्सी आधारित वस्तु, आदि (कल्लिता-मुलका-अर्ममना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

भिक्षुओं, यहाँ एक ध्यान करने वाला व्यक्ति लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन विषय में नहीं... विषय में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो विषय में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विषय और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

भिक्षुओं, इसलिए, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में विषय और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है।"

---

697. प्लैन्सी आधारित रेंज, आदि (कल्लिता-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो सीमा में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में सीमा और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में सीमा और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

698. सहजता आधारित संकल्प, आदि (कल्लिता-मुलाका-अभिनिहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला व्यक्ति लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो संकल्प में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

699. प्लिन्सी आधारित संपूर्णता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सक्कक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन पूर्णता में नहीं... पूर्णता में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो पूर्णता में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

"इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

700. विनम्रता आधारित दृढ़ता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सताक्काकारी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला लचीलेपन में निपुण होता है, लेकिन दृढ़ता में नहीं... दृढ़ता में निपुण होता है, लेकिन लचीलेपन में नहीं... न तो दृढ़ता में निपुण होता है और न ही लचीलेपन में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और लचीलेपन दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और लचीलेपन दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

701. प्लीएन्सी आधारित उपयुक्तता, आदि (कल्लिता-मुलाका-सप्पयकारी)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला व्यक्ति नम्रता में निपुण होता है, परन्तु उपयुक्तता में नहीं... उपयुक्तता में निपुण होता है, परन्तु नम्रता में नहीं... न उपयुक्तता में निपुण होता है, न नम्रता में... और न नम्रता में निपुण होता है... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध

में उपयुक्तता और नम्रता दोनों में निपुण होता है। इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला व्यक्ति जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और नम्रता दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

702. वस्तु आधारित रेंज (अरम्मना-मुलाका-गोकारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो कुशल होता है, लेकिन उसके दायरे में नहीं... दायरे में तो कुशल होता है, लेकिन विषय में नहीं... न तो दायरे में और न ही विषय में कुशल... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दायरे और विषय दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दायरे और विषय दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है।"

---

703. वस्तु आधारित संकल्प (अरम्मना-मुलाका-अभिनिहारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो कुशल होता है, लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में तो कुशल होता है, लेकिन विषय में नहीं... न तो संकल्प में कुशल होता है और न ही विषय में... समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प और विषय दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संबंध में संकल्प और विषय दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

704. वस्तु आधारित संपूर्णता (अरम्मना-मुलाका-सक्कक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो निपुण होता है, पर उसकी पूर्णता में नहीं... या पूर्णता में निपुण होता है, पर विषय में नहीं... या तो पूर्णता में निपुण होता है, न ही विषय में... या समाधि अवस्था के संदर्भ में पूर्णता और विषय दोनों में निपुण होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संदर्भ में पूर्णता और विषय दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

705. वस्तु आधारित दृढ़ता (अरम्मना-मुलाका-सटाक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो निपुण होता है, पर उसमें दृढ़ता नहीं होती... वह दृढ़ता में निपुण होता है, पर विषय में नहीं... वह न तो दृढ़ता में निपुण होता है और न ही विषय में... समाधि अवस्था के संबंध में दृढ़ता और विषय दोनों में निपुण होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संबंध में दृढ़ता और विषय दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

706. वस्तु आधारित उपयुक्तता (अरम्मना-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला विषय में तो कुशल होता है, पर उसकी उपयुक्तता में नहीं... उपयुक्तता में तो कुशल होता है, पर विषय में नहीं... न तो उपयुक्तता में कुशल होता है और न ही विषय में... समाधि अवस्था के संदर्भ में उपयुक्तता और विषय दोनों में कुशल होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि अवस्था के संदर्भ में उपयुक्तता और विषय दोनों में कुशल ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

707. रेंज आधारित संकल्प (गोकारा-मुलाका-अभिनिहारा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला संकल्प में तो निपुण होता है, पर उसकी सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, पर संकल्प में नहीं... न तो संकल्प में निपुण होता है और न ही सीमा में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और सीमा दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में संकल्प और सीमा दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

708. रेंज आधारित थोरनेस (गोकारा-मुलाका-सक्कक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) की पूर्णता में निपुण होता है, परन्तु उसकी सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, परन्तु पूर्णता में नहीं... न तो पूर्णता में निपुण होता है और न ही सीमा में... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के संबंध में पूर्णता और सीमा दोनों में

निपुण होता है। इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के संबंध में पूर्णता और सीमा दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

709. रेंज आधारित दृढ़ता (गोकारा-मुलाका-सटाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यानी स्थिरता में निपुण होता है, लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, लेकिन स्थिरता में नहीं... स्थिरता और सीमा दोनों में निपुण नहीं... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में स्थिरता और सीमा दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यानी जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में स्थिरता और सीमा दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ है।"

---

710. रेंज आधारित उपयुक्तता (गोकारा-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला उपयुक्तता में निपुण होता है, लेकिन सीमा में नहीं... सीमा में निपुण होता है, लेकिन उपयुक्तता में नहीं... न तो उपयुक्तता में निपुण होता है और न ही सीमा में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और सीमा दोनों में निपुण होता है।

इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और सीमा दोनों में निपुण होता है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ होता है।"

---

711. संकल्प आधारित संपूर्णता (अभिनिहार-मुलाका-सक्काकाका)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता में निपुण होता है, परन्तु संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, परन्तु पूर्णता में नहीं... न तो पूर्णता में निपुण होता है और न ही संकल्प में... पूर्णता और संकल्प

दोनों में निपुण होता है।" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में पूर्णता और संकल्प दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है।"

---

712. संकल्प आधारित दृढ़ता (अभिनिहारा-मूलका-सतक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला दृढ़ता में निपुण होता है, लेकिन संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, लेकिन दृढ़ता में नहीं... न तो दृढ़ता में निपुण होता है और न ही संकल्प में... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और संकल्प दोनों में निपुण होता है।

" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और संकल्प दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

713. संकल्प आधारित उपयुक्तता (अभिनिहार-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता में निपुण होता है, परन्तु संकल्प में नहीं... संकल्प में निपुण होता है, परन्तु उपयुक्तता में नहीं... न उपयुक्तता में निपुण होता है, न संकल्प में... उपयुक्तता और संकल्प

दोनों में निपुण होता है।" "इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्तता और संकल्प दोनों में निपुण ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

714. संपूर्णता आधारित दृढ़ता (सक्कक्का-मुलाका-सटाक्का)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला दृढ़ता में कुशल होता है, लेकिन पूर्ण नहीं... पूर्ण होता है, लेकिन दृढ़ता में नहीं... न तो दृढ़ता में और न ही पूर्ण... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और पूर्णता दोनों में निपुण होता है।

"इसमें, भिक्षुओं, वह ध्यान करने वाला जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में दृढ़ता और पूर्णता दोनों में निपुण है, वह इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में श्रेष्ठ है... सबसे उत्तम है।"

---

715. संपूर्णता आधारित उपयुक्तता (सक्कक्का-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के चार प्रकार होते हैं। वे
कौन से चार प्रकार हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला उपयुक्तता में कुशल होता है, लेकिन पूर्ण नहीं... पूर्ण होता है, लेकिन उपयुक्त नहीं... न उपयुक्त होता है, न पूर्ण... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्त और पूर्ण दोनों प्रकार का साधक होता है।

इसमें, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उपयुक्त और पूर्ण दोनों प्रकार का ध्यान करने वाला ही श्रेष्ठ है... इन चारों प्रकार के ध्यान करने वालों में सबसे उत्तम है।"

---

716. दृढ़ता आधारित उपयुक्तता (सतक्का-मुलाका-सप्पाया)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान करने वालों के ये चार प्रकार होते हैं।
वे कौन से चार हैं?

" "यहाँ, भिक्षुओं, एक ध्यान करने वाला निरंतर होता है लेकिन वह नहीं जो उचित कार्य करता है... एक जो उचित कार्य करता है लेकिन निरंतर नहीं होता... न तो निरंतर और न ही उचित कार्य करने वाला... एक निरंतर कार्यकर्ता और वह जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के संबंध में उचित कार्य करता है।"

"हे भिक्षुओं, जो ध्यान में निरंतर लगा रहता है और समाधि अवस्था के लिए उचित कर्म करता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और उत्कृष्ट है।

जिस प्रकार, हे भिक्षुओं, गाय से दूध, मलाई, मलाई से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मलाई बनती है, जो इन सब में श्रेष्ठ मानी जाती है, उसी प्रकार जो ध्यान में निरंतर लगा रहता है और समाधि अवस्था के लिए उचित कर्म करता है, वही इन चारों प्रकार के ध्यानियों में श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, अग्रणी, सर्वोच्च और उत्कृष्ट है।"

संयुत्त निकाय का खंडवग्ग (ग्रन्थवग्ग) समाप्त होता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन4-सलायतनवग्गा-वेर2

एसएन4-छह इंद्रियों की पुस्तक
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का चौथा खंड है। यह भिक्खु बोधि का दूसरा संस्करण है, जो संशोधित संस्करण है।)
इस खंड में छह इंद्रियों, अर्थात् आँख, नाक, जीभ, कान, स्पर्श और मन का विश्लेषण अनित्य, दुख, बंधन, प्रज्वलन, शून्यता, सर्प और अनात्म के रूप में किया गया है, जो ज्ञान की अवस्था के संदर्भ में है और उनकी समाप्ति की अवस्था को प्राप्त करने के तरीके के बारे में है जो समाधि/सम्मोहन और उनकी उच्चतर अवस्थाओं की ओर ले जाती है, अंततः अंतिम मुक्ति (विमुक्ति, संस्कृत में विमुक्ति) तक।
महत्वपूर्ण सूत्र:
1: 'स्व' पर प्रश्न उठाया गया है
28: इंद्रियाँ प्रज्वलित हैं
65: मार (शैतान) कामुकता, मृत्यु और पुनर्जन्म का स्वामी है
68: संसार
81: दुख क्या है
83: अतीत के बुद्धों का वर्णन इंद्रिय-संपत्तियों के संदर्भ में नहीं किया जा सकता
85: संसार शून्य है
88: पुन्ना - अहिंसा और सहिष्णुता पर महत्वपूर्ण सूत्र;
94-96: निर्वाण के लिए इंद्रियों की रक्षा
97-100: समाधि (सम्मोहन)
101: आँख, कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन और उनके कार्य आपके नहीं हैं
120: जागरूकता
127: ब्रह्मचर्य का पालन कैसे करें
132: लोहिक - जन्म का महत्व व्यर्थ है, इंद्रियों की रक्षा आवश्यक है
136: सुख दुख है
146: कर्म का निवारण
228-229: सागर - प्रत्येक इंद्रिय अपने विषयों के सागर के समान है

230: इंद्रिय शक्तियाँ मछली पकड़ने के काँटों के समान हैं
232, 343: बंधन क्या है, यह वह इच्छा है जो किसी इंद्रिय द्वारा अपने विषय को महसूस करने पर उत्पन्न होती है
235: इंद्रिय शक्तियों का जलना
238: विषैले साँप - शत्रुओं का उदाहरण
239: दैनिक जीवन कैसे जिएं
241: नदी में लकड़ी का लट्ठा का उदाहरण
244: आचरण भिक्षु (संत)
245: अदृश्य किमसुका वृक्ष का विभिन्न लोगों द्वारा अलग-अलग वर्णन
246: मन को कैसे नियंत्रित करें
247: संयम - छह जानवर (इंद्रियां) मजबूत खंभे से बंधे हुए
248: 'मैं हूं' का भ्रम और मन के संयम के बारे में
267: समाधि की सभी अवस्थाओं को परिभाषित किया गया; सच्ची खुशी
269: संवेदनाओं पर महत्वपूर्ण प्रवचन
270: संवेदनाओं के कितने प्रकार हैं
279: पापी और निष्पाप में क्या अंतर है
332-340: सभी नौ ध्यान/समाधि अवस्थाएँ
348: समाधि और संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार आदि) पर महत्वपूर्ण सूत्र
349: मुक्ति के प्रकार
354: रंगमंच कलाकारों का भाग्य - नरक या पशु
355: योद्धाओं का भाग्य नरक
358: पत्थर के डूबने और मक्खन के तैरने का उदाहरण
360: बुद्ध द्वारा जैन शिक्षाओं का विश्लेषण
362: सोना और चांदी स्वीकार्य नहीं हैं
366-409: बिना शर्त - ध्यान और ज्ञानोदय पर गहन अंतर्दृष्टि

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN3) अगला (SN5-भाग 1) >>>>

अंतर्वस्तु

संयुक्त निकाय:4.सलायतनवग्गा-छह इंद्रिय संकाय

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: छह इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (सलायतनसम्यत्त) {सम्यत्त-35}
(i) भाग 1, मूल पचास - अनित्य (Aniccavaggo sans. Anitya-varg)
1. आंतरिक अनित्य 1 (अज्जतनिच्चा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 2 एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है। 3 जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

कान क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है।" जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

नाक क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

जीभ क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

शरीर क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

मन क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा (सच्चा) स्वरूप नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

(नोट: यहाँ 'स्व' की अवधारणा पर प्रश्न उठाया गया है [जिसे बुद्ध ने एक झूठी रचना माना था]। समाधि/सम्मोहन की अवस्थाओं में 'स्व' प्रत्येक अवस्था में अलग-अलग रूप में प्रकट होता है। समाधि/सम्मोहन की प्रारंभिक अवस्थाओं में 'स्व' मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर एक प्रज्वलित आनंदमय जागरूकता के रूप में प्रकट होता है, बाद में यह मानव शरीर से परे जाकर भौतिक अनंतता में विलीन हो जाता है, फिर यह शून्यता में विलीन हो जाता है और अंत में मुक्त निर्वाण अवस्था [नौवीं समाधि] में यह सब कुछ पार कर जाता है और 'स्व' या 'मैं' की भावना को खोकर पारलौकिक [पदार्थ से परे] संभवतः सार्वभौमिक हो जाता है।)

---

2. आंतरिक पीड़ा (अज्जतदुक्खा)
भिक्षुओं, आँख दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

कान दुखदायी है... नाक दुखदायी है... जीभ दुखदायी है... शरीर दुखदायी है... मन दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

3. आंतरिक को अनात्म के रूप में देखना (अज्जतनात्म)
भिक्षुओं, आँख अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

कान अनात्म है... नाक अनात्म है... जीभ अनात्म है... शरीर अनात्म है... मन अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

4. बाह्य रूप में अनित्य (बहिरानिका सं. बहिरा-अनित्य)
भिक्षुओं, रूप क्षणभंगुर हैं। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) क्षणभंगुर हैं। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। दुख ही अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को रूपों के प्रति घृणा (निब्बिद) होती है, ध्वनियों के प्रति घृणा होती है, गंधों के प्रति घृणा होती है, स्वादों के प्रति घृणा होती है, स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति घृणा होती है और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा होती है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है (विमुक्त)। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

5. बाह्य पीड़ा (बहिरदुक्खा)
भिक्षुओं, शरीर दुखदायी हैं। दुखदायी तत्व अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) दुखदायी हैं। दुखदायी तत्व अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, जैसे: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

6. बाहरी रूप में गैर-स्वयं (बहिरनत्ता सं. बहिरा-अनात्म)

भिक्षुओं, रूप अनात्म हैं। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

7. तीनों कालों में आंतरिक तत्व अनित्य है (अज्जहत्तनिकचतितानागत)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, आँख नश्वर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों ही, वर्तमान काल तो निःसंतान है। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल की आँख के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्य की आँख में आनंद नहीं खोजता; और वह वर्तमान की आँख से घृणा करने, उसके लुप्त होने और समाप्त होने (निरोध) का अभ्यास करता है।

कान नश्वर है... नाक नश्वर है... जीभ नश्वर है... शरीर नश्वर है... मन नश्वर है, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों ही, वर्तमान काल तो निःसंतान है। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल के मन के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वह लुप्त हो जाता है और समाप्त हो जाता है।"

---

8. तीनों कालों में आंतरिक पीड़ा (अज्जतदुक्खतितनगत)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, आँख भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के कष्ट से ग्रस्त है, वर्तमान की तो बात ही क्या। इस प्रकार देखने से... मन अपने लुप्त होने और निरोध के कारण व्यथित होता है।"

---

9. तीनों कालों में अनात्म के रूप में आंतरिक (अज्जततनत्ततितनगत)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, आँख भूतकाल और भविष्यकाल दोनों की अनात्म है, वर्तमान की तो बात ही क्या। इस प्रकार देखने पर... मन अनात्म है... क्योंकि यह लुप्त हो जाता है और समाप्त हो जाता है।"

---

10. तीन काल में बाह्य के रूप में अनित्य
भिक्षुओं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप क्षणभंगुर हैं, वर्तमान काल तो निःसंदेह है ही। हे भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल के रूपों के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूपों में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान काल के रूपों के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाएं। ध्वनि

क्षणभंगुर है... गंध क्षणभंगुर है... स्वाद क्षणभंगुर है... स्पर्शनीय वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के क्षणभंगुर हैं, वर्तमान काल तो निःसंदेह ही है। हे भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल की मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाती हैं।

---

11. तीन काल में पीड़ा के रूप में बाहरी (बहिरादुक्खतितानागता सं. बहिरा-दुक्खा-अतिता-अनागत)
भिक्षुओं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप कष्टदायी हैं, वर्तमान काल की तो बात ही क्या। हे भिक्षुओं, इस प्रकार ज्ञान प्राप्त शिष्य भूतकाल के रूपों के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूपों में आनंद नहीं खोजता; और वह वर्तमान काल के रूपों के प्रति घृणा का अभ्यास करता है, ताकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाएं (निरोध)। ध्वनियाँ

कष्टदायी हैं... गंधें कष्टदायी हैं... स्वाद कष्टदायी हैं... स्पर्शनीय वस्तुएँ कष्टदायी हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप कष्टदायी हैं, वर्तमान काल की तो बात ही क्या। हे भिक्षुओं, इस प्रकार ज्ञान प्राप्त शिष्य भूतकाल की मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाती हैं (निरोध)।

---

12. द एक्सटर्नल ऐज़ नॉनसेल्फ इन द थ्री टाइम्स (बहिरनट्टितनगता सं. बहिरा-अनात्म-अतिता-अनागत)
भिक्षुओं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के रूप अनात्म हैं, वर्तमान काल तो निःसंदेह है ही। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल के रूपों के प्रति उदासीन रहता है; वह भविष्यकाल के रूपों में आनंद नहीं लेता; और वह वर्तमान काल के रूपों के प्रति घृणा (निबिद्दा) का अभ्यास करता है, ताकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाएं।

ध्वनियाँ अनात्म हैं... गंधें अनात्म हैं... स्वाद अनात्म हैं... स्पर्शनीय वस्तुएँ अनात्म हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं, भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के, वर्तमान काल तो निःसंदेह ही है। इस प्रकार देखते हुए, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य भूतकाल की मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति उदासीन रहता है... क्योंकि वे लुप्त होकर समाप्त हो जाती हैं।

(ii) प्रभाग 1, रूट फिफ्टी - जोड़े अनुभाग (यमकावग्गो)
13. मेरे ज्ञानोदय से पहले (1) (पुब्बेसंबोध1 सं. पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'आँख के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?

कान, नाक, जीभ, शरीर, मन के मामले में सांसारिक सुख क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'आँख पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही आँख का सांसारिक सुख है। आँख का क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील होना: यही आँख का खतरा है। आँख के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही आँख से मुक्ति है।"

"कान, नाक, जीभ, शरीर और मन पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद ही मन का सांसारिक सुख है। मन का क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील होना ही मन का खतरा है। मन की इच्छा और राग का त्याग करना ही मन से मुक्ति है।" हे भिक्षुओं

, जब तक मैं इन छह आंतरिक इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। लेकिन जब मुझे इन सब बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया, तब मैंने दावा किया कि मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा (पुनर्जन्म का कारण नहीं होगा)।'"

---

14. मेरे ज्ञानोदय से पहले (2) (पुब्बेसम्बोध2 सं. पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, और रूपों के मामले में इससे कैसे बचा जा सकता है?

ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं, और मानसिक घटनाओं (धम्म) के मामले में सांसारिक सुख क्या है, इसमें क्या खतरा है, और इससे कैसे बचा जा सकता है?'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'रूपों पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स): यही रूपों में सांसारिक सुख है। रूप अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील हैं: यही रूपों में खतरा है। रूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही रूपों से मुक्ति है।"

"ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भर रहने से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद (सोमनस्स) ही मानसिक घटनाओं में सांसारिक सुख है। मानसिक घटनाएं क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील हैं, यही मानसिक घटनाओं में खतरा है। मानसिक घटनाओं के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण ही मानसिक घटनाओं से मुक्ति है।"

"हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन छह बाह्य इंद्रियों से संबंधित सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'"

---

15. सांसारिक सुख की तलाश (1) (अस्सादप्रियेसन1 संस. असवाद..)
भिक्षुओं, मैं आँख में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला। आँख में जो भी सांसारिक सुख है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि आँख में सांसारिक सुख कितनी दूर तक फैला हुआ है।

भिक्षुओं, मैं आँख में खतरे की खोज में निकला। आँख में जो भी खतरा है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि आँख में खतरा कितनी दूर तक फैला हुआ है।
भिक्षुओं, मैं आँख से मुक्ति की खोज में निकला। आँख से जो भी मुक्ति है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि आँख से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

भिक्षुओं, मैं आँख में सांसारिक सुख... खतरे... कान... नाक... जीभ... शरीर... मन से मुक्ति की खोज में निकला। मन से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने स्पष्ट रूप से देखा है कि मन से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

"हे भिक्षुओं, जब तक मैं इन छह आंतरिक इंद्रियों के संदर्भ में सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मैंने इन सबको यथार्थ रूप में प्रत्यक्ष रूप से जान लिया, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा (पुनर्जन्म का कारण नहीं है)।"

---

16. सांसारिक सुख की तलाश (2) (अस्सादप्रियेसन2 संस. असवाद..)
(यह छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएं और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 15 के समान है।)

---

17. यदि सांसारिक सुख न हो (1) (Noceassada1 sans. Noce-aswad)
भिक्षुओं, यदि आँख में सांसारिक सुख न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु आँख में सांसारिक सुख होने के कारण प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि आँख में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा न करते; परन्तु आँख में भय होने के कारण प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि आँख से बचने का कोई रास्ता न होता, तो प्राणी उससे नहीं बचते; परन्तु आँख से बचने का रास्ता होने के कारण प्राणी उससे बच जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि कान में, नाक में, जीभ में, शरीर में, मन में सांसारिक सुख न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु मन से बचने का रास्ता होने के कारण प्राणी उससे बच जाते हैं।

भिक्षुओं, जब तक प्राणी इन छह आंतरिक इंद्रियों के संदर्भ में सांसारिक सुखों को उनके वास्तविक स्वरूप में, भय को भय के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, शैतानों और ब्रह्माओं से, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों से, इसके देवों और मनुष्यों से, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते, और न ही वे अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब बातों को उनके वास्तविक स्वरूप में प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों से मुक्त हो जाते हैं... वे इससे विरक्त हो जाते हैं, मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, और अवरोधों से मुक्त मन से निवास करते हैं।

---

18. यदि कोई (2) (Noceassada2 sans. Noce-aswad) नहीं होता
(यह छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएं और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 17 के समान है।)

---

19. आनंद (1) (अभिनंद1)
भिक्षुओं, जो आँखों को प्रसन्न करने की इच्छा रखता है, वह दुखों में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुखों में आनंद ढूंढता है, वह दुखों से मुक्त नहीं होता। जो कानों में... नाक में... जीभ में... शरीर में... मन में आनंद ढूंढता है, वह दुखों में आनंद ढूंढता है। मैं कहता हूँ, जो दुखों में आनंद ढूंढता है, वह दुखों से मुक्त नहीं होता।

जो आँखों में... मन में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुखों में आनंद नहीं ढूंढता। मैं कहता हूँ, जो दुखों में आनंद नहीं ढूंढता, वह दुखों से मुक्त होता है।

---

20. (8) आनंद (2) (अभिनंद2)
(छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएँ और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 19 के समान।)

---

21. दुःख का उत्पन्न होना (1) (दुक्खुप्पदा1 सं. दुक्ख-उत्पाद)
भिक्षुओं, आँख का उत्पन्न होना, निरंतर रहना, उत्पादन होना और प्रकट होना दुख का उत्पन्न होना, रोग का निरंतर रहना और वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकट होना है। कान, नाक, जीभ, शरीर और मन का उत्पन्न होना दुख का उत्पन्न होना, रोग का निरंतर रहना और वृद्धावस्था और मृत्यु का प्रकट होना है।

आँख और मन का निरोध होना, शांत होना और देहांत होना दुख का निरोध होना, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था और मृत्यु का देहांत होना है।

---

22. दुःख का उत्पन्न होना (2) (दुक्खुप्पदा2 सं. दुक्ख-उत्पाद)
(यह छह बाह्य इंद्रियों - रूप, ध्वनि, गंध, स्पर्शनीय वस्तुएं और मानसिक घटनाएँ (धम्म) - के लिए पिछले 21 के समान है।)

(iii) डिवीजन 1, रूट फिफ्टी - द ऑल (सब्बा संस सर्व)
23. सर्व (सब्बा सं. सर्व)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सब कुछ सिखाऊँगा। 6 सुनो...

"और हे भिक्षुओं, यह सब क्या है? आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्शनीय वस्तुएँ, मन और मानसिक घटनाएँ (धर्म)। इसे ही सब कुछ कहते हैं। हे भिक्षुओं,

यदि कोई इस प्रकार कहे: 'इस सब को त्यागकर, मैं एक और सब कुछ प्रकट करूँगा' - तो यह उसकी ओर से केवल खोखला अभिमान होगा। 7 यदि उससे प्रश्न किया जाए तो वह उत्तर नहीं दे पाएगा और, इसके अलावा, उसे कष्ट होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, यह उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा।" 8

---

24. परित्याग (पहाना सं. प्राहन)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें सब कुछ त्यागने का धर्म सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, सब कुछ त्यागने का धर्म क्या है? आँख का त्याग करना है, रूपों का त्याग करना है, नेत्र-चेतना का त्याग करना है, नेत्र-संपर्क (समाधि अवस्था में लौटना) का त्याग करना है, और नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना), चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो, उसका भी त्याग करना है।" 9

“कानों का त्याग करना है... मन का त्याग करना है, मानसिक घटनाओं (धम्म) का त्याग करना है, मन-चेतना का त्याग करना है, मन-संपर्क का त्याग करना है, और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली हर संवेदना (वेदना) का त्याग करना है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - उसका भी त्याग करना है। हे

भिक्षुओं, यही वह धम्म है जिसका अर्थ है सब कुछ त्यागना।”

---

25. दिव्य-ज्ञान और पूर्ण समझ के माध्यम से परित्याग (अभिज्ञान-परिपूर्णज्ञान-प्राहन)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा सब कुछ त्यागने का धर्म सिखाऊंगा। 10 इसे सुनो...

और हे भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा सब कुछ त्यागने का धर्म क्या है? दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा आँख का त्याग करना है, रूपों का त्याग करना है, नेत्र-चेतना का त्याग करना है, विषय के साथ नेत्र-संपर्क का त्याग करना है, और नेत्र-संपर्क के कारण

उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - उसका भी दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा त्याग करना है।"

"दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा कान का त्याग करना है...दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा मन का त्याग करना है, मानसिक घटनाओं (धम्म) का त्याग करना है, मन-चेतना का त्याग करना है, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का त्याग करना है, और मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - उसका भी दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा त्याग करना है।

भिक्षुओं, यही वह धम्म है जिसका अर्थ है दिव्य ज्ञान और पूर्ण समझ के द्वारा सभी का त्याग करना।"

---

26. पूर्ण समझ के बिना (1) (अपरिजानन1 सं. अपरिपूर्णज्ञान)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जब तक आप सर्वस्व को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानते और पूर्णतः नहीं समझते, जब तक आप उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं। 11

"और हे भिक्षुओं, वह सर्वस्व क्या है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते, जिसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और जिसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं?

"आँख को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते, उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं। रूपों को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते... आँख-चेतना... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से; फस्सा/स्पर्श)... और आँख-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

"कान को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः नहीं समझते... मन... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... इसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और इसका त्याग किए बिना, व्यक्ति दुख का नाश करने में असमर्थ है।

"यह, भिक्षुओं, वह सर्वस्व है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना... व्यक्ति दुख का नाश करने में असमर्थ है।

"भिक्षुओं, सर्वस्व को प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, इसके प्रति वैराग्य विकसित करके और इसका त्याग करके, व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है। [18]

"और हे भिक्षुओं, वह सर्वस्व क्या है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, इसके प्रति वैराग्य विकसित करके और इसका त्याग करके, व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है?

"आँख को प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर... मन को... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को... इसके प्रति वैराग्य विकसित करके और इसका त्याग करके, व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है।

"यह, भिक्षुओं, वह सर्वस्व है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर... व्यक्ति दुख का नाश करने में सक्षम है।"

---

27. पूर्ण समझ के बिना (2) (अपरिजानन2 सं. अपरिपूर्णज्ञान)
भिक्षुओं, जब तक आप सर्वथा को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते और पूर्णतः नहीं समझ लेते, जब तक आप उसके प्रति वैराग्य विकसित नहीं कर लेते और उसका त्याग नहीं कर देते, तब तक आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

और हे भिक्षुओं, यह सर्वथा क्या है...?

आँख, रूप, आँख-चेतना और धम्म (गुण, नियम) जिन्हें आँख-चेतना द्वारा जाना जाता है। कान, ध्वनियाँ, कान-चेतना और धम्म जिन्हें कान-चेतना द्वारा जाना जाता है... मन, मानसिक घटनाएँ (धम्म), मन-चेतना और धम्म जिन्हें मन-चेतना द्वारा जाना जाता है। हे

भिक्षुओं, यही वह सर्वथा है जिसे प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, जिसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, आप दुख का नाश करने में असमर्थ हैं।

लेकिन, भिक्षुओं, सर्वस्व को प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, उसके प्रति वैराग्य विकसित करके और उसका त्याग करके, मनुष्य दुख का नाश कर सकता है।

और, भिक्षुओं, वह सर्वस्व क्या है...? (जैसा कि ऊपर बताया गया है)

"यही वह सर्वस्व है, जिसे प्रत्यक्ष रूप से जानकर और पूर्णतः समझकर, उसके प्रति वैराग्य विकसित करके और उसका त्याग करके मनुष्य दुख का नाश कर सकता है।"

---

28 जलना (आदित्ता, आदित्य के बिना)
एक बार भगवान (बुद्ध) गया के शीर्ष पर, गया में, एक हजार भिक्षुओं के साथ निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 13

"भिक्षुओं, सब कुछ जल रहा है। और हे भिक्षुओं, वह सब क्या है जो जल रहा है? आँख जल रही है, रूप जल रहे हैं, आँख-चेतना जल रही है, आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श) जल रहा है, और आँख के संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी - वह भी जल रही है। किससे जल रही है? काम (राग) की अग्नि से, घृणा (दोष/द्वेष) की अग्नि से, मोह (मोह) की अग्नि से; पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से, मैं कहता हूँ।

"कान जल रहा है... [20] ... मन जल रहा है... और मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी जलने वाली है। किस चीज से जल रही है? काम (राग) की आग से, घृणा (दोष/द्वेष) की आग से, मोह (मोह) की आग से; पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से, मैं कहता हूँ।

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को आँख, रूपों, नेत्र-चेतना, नेत्र-संपर्क (फस्सा/स्पर्श), और नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है - चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो; उसे कान के प्रति घृणा होती है... मन के प्रति घृणा होती है... मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा होती है... घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। जब वह मुक्त हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' उन्होंने समझा: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए। और जब यह प्रवचन दिया जा रहा था, तब उन हजार भिक्षुओं के मन अनासक्ति के कारण विकारों से मुक्त हो गए।

---

29. बोझ से दबा हुआ (अद्धभूत)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, सब कुछ भारित है। 14 और हे भिक्षुओं, वह सब क्या है जो भारित है? आँख भारित है, रूप भारित हैं, दृष्टि-चेतना भारित है, आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) भारित है, और आँख के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी भारित है। किससे भारित है? पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से, मैं कहता हूँ।

कान भारित हैं... मन भारित है... किससे भारित हैं? पुनर्जन्म से... निराशा से, मैं कहता हूँ।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

30. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (समुग्घतसरुप्पा)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें वह मार्ग सिखाऊंगा जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा...

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है? 15 हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आँख की कल्पना नहीं करता, आँख में कल्पना नहीं करता, आँख से कल्पना नहीं करता, और यह कल्पना नहीं करता कि 'आँख मेरी है।' 16 वह रूपों की कल्पना नहीं करता... आँख-चेतना की... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) की... और आँख-संपर्क (संपर्क) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की - चाहे वह सुखद हो या पीड़ादायक या न पीड़ादायक न सुखद - वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, और यह कल्पना नहीं करता कि 'वह मेरा है।'"

वह कान की कल्पना नहीं करता... वह मन की कल्पना नहीं करता... मानसिक घटनाओं (धम्म) की कल्पना नहीं करता... मन-चेतना की कल्पना नहीं करता... मन-संपर्क की कल्पना नहीं करता... और मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की कल्पना नहीं करता... वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, यह नहीं सोचता कि 'वह मेरा है।'

वह सब कुछ की कल्पना नहीं करता, सब कुछ में कल्पना नहीं करता, सब कुछ से कल्पना नहीं करता, यह नहीं सोचता कि 'सब कुछ मेरा है।'

"चूंकि वह किसी भी प्रकार की कल्पना नहीं करता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। आसक्ति न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। अविचलित रहकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई महत्व नहीं है।' हे

भिक्षुओं, यही वह मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है।"

---

31. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (1) (समुग्घतसप्पय1)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें वह मार्ग सिखाऊंगा जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है। 18 इसे सुनो...

और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आँख की कल्पना नहीं करता, आँख में कल्पना नहीं करता, आँख से कल्पना नहीं करता, 'यह आँख मेरी है' की कल्पना नहीं करता। वह रूपों की कल्पना नहीं करता... आँख-चेतना की... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) की... और आँख-संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के संबंध में - चाहे वह सुखद हो या पीड़ादायक या न पीड़ादायक न सुखद - वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, 'वह मेरा है' की कल्पना नहीं करता।" भिक्षुओं, जो कुछ भी कोई कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई अपने भीतर कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई अपने से कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई 'मेरा' समझकर कल्पना करता है - वह कुछ और है। संसार, कुछ और बनकर, होने से आसक्त होकर, केवल होने में ही आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है। 19

"वह कान की कल्पना नहीं करता... वह मन की कल्पना नहीं करता... और मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है... वह उसकी कल्पना नहीं करता, उसमें कल्पना नहीं करता, उससे कल्पना नहीं करता, यह नहीं समझता कि 'वह मेरा है'।" भिक्षुओं, जो कुछ भी मनुष्य अपने मन में सोचता है, जिस किसी में सोचता है, जिस किसी से सोचता है, जिस किसी को भी 'मेरा' समझता है, वह कुछ और है। संसार, जो कुछ भी हो रहा है, होने से आसक्त है, और केवल होने में ही आनंद पाता है।

"भिक्षुओं, जो कुछ भी स्कंध, धातु और इंद्रियों का सार है, मनुष्य उसे न तो अपने मन में सोचता है, न उसमें सोचता है, न उससे सोचता है, न यह सोचता है कि 'वह मेरा है'।"

"चूंकि वह किसी भी चीज को इस प्रकार नहीं सोचता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। आसक्त न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:

'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

"भिक्षुओं, यही वह मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है।" 20

---

32. उखाड़ने के लिए उपयुक्त (2) (समुग्घतसप्पय2)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें वह मार्ग सिखाऊंगा जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है?" भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? आँख स्थायी है या अस्थायी? - "स्थायी, पूज्यवर।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख है, पूज्यवर।" - "क्या जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, पूज्यवर।"

"क्या रूप स्थायी हैं या अस्थायी?... क्या नेत्र-चेतना... क्या नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श)... क्या नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी - स्थायी है या अस्थायी?...

क्या कान स्थायी हैं या अस्थायी?... क्या मन... क्या मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" - "अस्थायी क्या है? दुख या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "क्या जो अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को आँख, रूपों, नेत्र-चेतना, नेत्र-संपर्क, और नेत्र-संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है - चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो। उसे कान के प्रति घृणा होती है... मन के प्रति... मन-संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा होती है... घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

"भिक्षुओं, यही वह मार्ग है जो सभी धारणाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उपयुक्त है।"

(iv) प्रभाग 1, मूल पचास - पुनर्जन्म के अधीन (जातिधम्मवग्गो सं. जाति-धर्म-वर्ग)
33. पुनर्जन्म के अधीन (जातिधम्मदि सं. जाति-धर्म-आदि)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, सब कुछ पुनर्जन्म के अधीन है। और हे भिक्षुओं, वह सब क्या है जो पुनर्जन्म के अधीन है? आँख पुनर्जन्म के अधीन है। रूप... नेत्र-चेतना... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श)... जो भी संवेदना (वेदना) नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होती है... वह भी पुनर्जन्म के अधीन है।

कान... जीभ... शरीर... मन... जो भी संवेदना (वेदना) मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होती है... वह भी पुनर्जन्म के अधीन है।

" "इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित शिष्य आँख के प्रति, रूपों के प्रति, नेत्र-चेतना के प्रति, नेत्र-संपर्क (संपर्क) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

34.-42 (10) उम्र बढ़ने आदि के अधीन (जातिधम्मदि सं. जाति-धर्म-आदि)
34. "भिक्खुओं (भिक्षुओं), सभी बुढ़ापे (जराधम्म) के अधीन हैं... 35. सभी बीमारी (ब्याधिधम्म) के अधीन हैं... 36. सभी मृत्यु (मरणधम्म) के अधीन हैं... 37. सभी दुःख (सोकधम्म) के अधीन हैं... 38. सभी अपवित्रता (समकिलेसिकाधम्म) के अधीन हैं... .. 39. सभी विनाश (खायधम्म) के अधीन हैं... 40.सभी पतन के अधीन हैं (वयधम्म).... 41.सभी उत्पत्ति के अधीन हैं(समुदयधम्म)....42.सभी समाप्ति के अधीन हैं(निरोधधम्म)...." (प्रत्येक को पिछले 33 के रूप में पूरा किया जाना है।)

(v) प्रभाग 1, मूल पचास - सभी अनित्य खंड है (सब्बानिकावगो संस। सर्व-अनित्य-वर्ग)
43-52 अनित्य, आदि (अनिचादि सं. अनित्य-आदि)

43. सावत्थी में। भिक्षुओं, सब कुछ अनित्य है (अनित्य)... 44. सब कुछ दुखमय है (दुक्खा)... 45. सब कुछ अनात्म है (अनत्म)... 46. सब कुछ प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात करना है (अभिन्नेय)... 47. सब कुछ पूर्णतः समझना है (परिणेय)... 48. सब कुछ त्याग देना है (पहत्ब्बा)... 49. सब कुछ अनुभव करना है (सच्चिकतब्बा)... 50. सब कुछ दिव्य ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः समझना है (अभिन्नपरिणेय)... 51. सब कुछ पीड़ित है (उपद्दुत)... 52. सब कुछ दुखी है (उपसत्था)..." (प्रत्येक को 33 के अनुसार पूरा करना है।)

(i) भाग 2, द्वितीय पचास - अज्ञान खंड (अविज्जवग्गो संस्कृत अविद्या-वर्ग)
53. अज्ञान का त्याग (अविज्जापहन सं. अविद्या-प्रहन)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"आदरणीय गुरुदेव, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) को त्यागने और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए कैसे जानें, कैसे देखें?"

"भिक्षु, जब कोई ध्यान में आँख को अनित्य जानता और देखता है, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है। 21 जब कोई ध्यान में रूपों को अनित्य जानता और देखता है... जब कोई ध्यान में मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य जानता और देखता है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है। जब कोई इस प्रकार ध्यान में देखता और जानता है, भिक्षु, तो अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।"

---

54. बंधनों का परित्याग
... "आदरणीय महोदय, बंधनों से मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है, कैसे देखा जा सकता है?" 22
{बुद्ध का उत्तर उपरोक्त अनुच्छेद 53 में दिए गए अनुसार है।}

---

55. बंधनों को उखाड़ फेंकना (संयोजनसमुग्घात)
... "आदरणीय महोदय, बंधनों को कैसे उखाड़ा जाए, कैसे जाना जाए, कैसे देखा जाए?"

"भिक्षु, जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) आँख को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है, तो बंधन उखड़ जाते हैं। जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) रूपों को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है... (ऊपर बताए गए सभी)... जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) इस प्रकार देखा और जाना जाता है, भिक्षु, तो बंधन उखड़ जाते हैं।"

56-59 अपवित्रता आदि का परित्याग (असवपहन सं. आश्रव-प्राहन)
... "आदरणीय महोदय, कैसे जानें, कैसे देखें कि दोषों का त्याग कैसे किया जाए?... दोषों को जड़ से कैसे उखाड़ा जाए?... अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) का त्याग कैसे किया जाए?... अंतर्निहित प्रवृत्तियों को जड़ से कैसे उखाड़ा जाए?" 23

"भिक्षु, जब ध्यान में आँख को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है, तो अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं। जब ध्यान में रूप को अनात्म के रूप में देखा और जाना जाता है... (ऊपर बताए गए सभी अनुसार)... जब ध्यान में इस प्रकार देखा और जाना जाता है, भिक्षु, तो अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ जड़ से उखड़ जाती हैं।"

नोट: अनात्म का ज्ञान समाधि/सम्मोहन की अवस्था में होता है। समाधि की अवस्था में भीतर एक नए सार का पता चलता है जिसके संदर्भ में शरीर और मन अनात्म के रूप में प्रकट होते हैं।

---

60. सभी आसक्ति का पूर्ण ज्ञान (सब्बुपादनपरिण)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के पूर्ण ज्ञान का धर्म सिखाऊंगा। 24 सुनो...

"और हे भिक्षुओं, समस्त आसक्ति का पूर्ण ज्ञान क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क (स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है। इस प्रकार देखकर, दीक्षित शिष्य आँख, रूपों, आँख-चेतना, आँख-संपर्क और वेदना के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा मन मुक्त होता है।" इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: 'मुझे आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का पूर्ण ज्ञान हो गया है।'

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता में... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता में, मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों का मिलन स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) कहलाता है। स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है। इस प्रकार देखकर, दीक्षित शिष्य मन, मानसिक घटनाओं (धम्म), मन-चेतना, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और वेदना (संवेदना) के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा मन मुक्त हो जाता है। इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: 'मुझे आसक्ति का पूर्ण ज्ञान हो गया है।'

"यही है, भिक्षुओं, समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के पूर्ण ज्ञान का धम्म।"

---

61. सभी आसक्तियों का अंत (1) (सब्बुपादनपरियादन1)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के निवारण का धर्म सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, समस्त आसक्ति का निवारण करने वाला धर्म क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: '
मैंने आसक्ति का निवारण कर लिया है।'

कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धर्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है... इसके विमोक्ष से मुक्ति पाकर वह समझता है: 'मैंने आसक्ति का निवारण कर लिया है।' हे

भिक्षुओं, यही समस्त आसक्ति का निवारण करने वाला धर्म है।

---

62 सभी आसक्ति का अंत (2) (सब्बुपादनपरियादन2)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के निवारण का धर्म सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो..." "

और हे भिक्षुओं, समस्त आसक्ति के निवारण का धर्म क्या है? हे भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, आँख स्थायी है या अस्थायी?"

... (अध्याय 32 के अनुसार पूरा किया जाना है)

"हे भिक्षुओं, यही समस्त आसक्ति के निवारण का धर्म है।"

(ii) डिवीजन 2, द सेकेंड फिफ्टी - मिगाजालवाग्गो
63 (1) मिगाजाला (1)
सावत्थी में। तब पूज्य मिगजाला भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 26

"पूज्यवर, कहा जाता है, 'अकेला रहने वाला, अकेला रहने वाला।' 27 पूज्यवर, किस प्रकार कोई अकेला रहने वाला होता है, और किस प्रकार कोई साथी के साथ रहता है?" 28

"हे मिगजाल, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो आनंद उत्पन्न होता है। आनंद के साथ मोह भी होता है। मोह के साथ बंधन भी होता है। हे मिगजाल, आनंद के बंधन में बंधा हुआ भिक्षु साथी के साथ रहने वाला कहलाता है।

हे मिगजाल, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ, नाक से सुनाई देने वाली गंध, जीभ से महसूस होने वाले स्वाद, शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुएँ और मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ भी हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक हैं।" यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) की खोज करता है, तो उसे साथी के साथ रहने वाला कहा जाता है।

"मिगाजा, यद्यपि ऐसा भिक्षु वनों और उपवनों में, एकांत स्थानों में, जहाँ कम ध्वनि और शोर हो, एकांत हो, लोगों से छिपा हो, एकांत के लिए उपयुक्त हो, तब भी उसे साथी के साथ रहने वाला कहा जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि तृष्णा (तन्हा संस्कृत) उसका साथी है, और उसने उसका त्याग नहीं किया है; इसलिए उसे साथी के साथ रहने वाला कहा जाता है।

"मिगाजा, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और मोहक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) की खोज नहीं करता, उनका स्वागत नहीं करता, और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो आनंद समाप्त हो जाता है। जब आनंद नहीं होता, तो आसक्ति नहीं होती। जब आसक्ति नहीं होती, तो बंधन नहीं होता। हे मिगजाल, आनंद के बंधन से मुक्त (मोक्ष में) भिक्षु को एकांतवासी कहा जाता है।

"हे मिगजाल, कान से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं... नाक से सुनाई देने वाली गंध हैं... जीभ से सुनाई देने वाले स्वाद हैं... शरीर द्वारा स्पर्शित की जाने वाली वस्तुएँ हैं... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) नहीं खोजता... तो उसे एकांतवासी कहा जाता है।

हे मिगजाल, भले ही ऐसा भिक्षु किसी गाँव के आसपास रहता हो, भिक्षुओं और भिक्षुणियों, पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों, राजाओं और राजमंत्रियों, संप्रदाय के शिक्षकों और उनके शिष्यों के साथ संगति करता हो, फिर भी उसे एकांतवासी कहा जाता है। इसका क्या कारण है?" क्योंकि तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उसकी साथी है, और उसने उसे त्याग दिया है; इसलिए उसे एकाकी कहा जाता है।

---

64. मिगाजाला (2)
तब पूज्य मिगजाल भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"मिगजाल, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो वांछनीय, प्यारे, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और मोहक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो आनंद उत्पन्न होता है। मैं कहता हूँ, मिगजाल, आनंद के उत्पन्न होने के साथ ही दुख उत्पन्न होता है।

" "मिगजाल, कानों से सुनाई देने वाली ऐसी ध्वनियाँ हैं..." नाक से पहचानी जाने वाली गंधें... जीभ से पहचाने जाने वाले स्वाद... शरीर द्वारा पहचाने जाने वाले स्पर्शनीय पदार्थ... मन द्वारा पहचाने जाने वाले मानसिक घटनाक्रम (धम्म) जो वांछनीय, प्यारे, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है, तो... आनंद उत्पन्न होता है। [38] हे मिगजाल, मैं कहता हूँ, आनंद के उत्पन्न होने के साथ ही दुख उत्पन्न होता है।

हे मिगजाल, आँखों से देखे जाने वाले रूप हैं जो वांछनीय, प्यारे, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं खोजता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो आनंद समाप्त हो जाता है। हे मिगजाल, आनंद के समाप्त होने (निरोध) के साथ ही दुख का अंत होता है।

हे मिगजाल, कानों से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ हैं... नाक से महसूस होने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्श से महसूस होने वाली वस्तुएँ... मन द्वारा महसूस होने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक होती हैं। यदि कोई भिक्षु इनमें आनंद नहीं लेता... तो आनंद समाप्त हो जाता है। हे मिगजाल, आनंद के समाप्त होने के साथ ही दुख का भी अंत हो जाता है।"

तब पूज्य मिगजाल, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर उन्हें प्रणाम करने के बाद प्रस्थान किया।

फिर एकांत में रहते हुए, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी, पूज्य मिगजाल ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य मिगजाल एक हो गए। अरहंतों का।

---

65. समिद्धि (1)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य समिद्धि भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा: 29
"परमेश्वर, कहा जाता है, 'मरा (शैतान), मररा।' हे पूज्यि, मररा किस प्रकार विद्यमान हो सकता है या मररा का वर्णन हो सकता है?" 30

"हे समिद्धि, जहाँ आँख है, जहाँ रूप हैं, जहाँ दृष्टि-चेतना है, जहाँ दृष्टि-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म हैं, वहाँ मररा विद्यमान है या मररा का वर्णन है।

जहाँ कान हैं... मन है, जहाँ मानसिक घटनाएँ (धर्म) हैं, जहाँ मन-चेतना है, जहाँ मन-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म हैं, वहाँ मररा विद्यमान है या मररा का वर्णन है।"

जहां आंख नहीं है, समिद्धि नहीं है, रूप नहीं हैं, दृष्टि-चेतना नहीं है, दृष्टि-चेतना द्वारा बोधित किए जाने योग्य कोई धम्म नहीं हैं, वहां न तो मारा का अस्तित्व है और न ही मारा का कोई वर्णन है।

जहां कान नहीं हैं... मन नहीं है, मानसिक घटनाएँ (धम्म) नहीं हैं, मन-चेतना नहीं है, मन-चेतना द्वारा बोधित किए जाने योग्य कोई धम्म नहीं हैं, वहां न तो मारा का अस्तित्व है और न ही मारा का कोई वर्णन है।

---

66. समिद्धि (2)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'एक प्राणी, एक प्राणी।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार से कोई प्राणी या प्राणी का वर्णन हो सकता है?"

(उत्तर पूर्ववर्ती सूत्र 65 के समान है।)

---

67. समिद्धि (3)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'पीड़ा, पीड़ा।' आदरणीय
महोदय, पीड़ा किस प्रकार हो सकती है या पीड़ा का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है?" . . .(65 के समान)

---

68. समिद्धि (4)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'संसार, संसार।' आदरणीय महोदय, संसार या संसार का वर्णन किस प्रकार हो सकता है?"

"जहाँ आँख है, समिद्धि है, जहाँ रूप हैं, आँख-चेतना है, आँख-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म (गुण, नियम) हैं, वहाँ संसार विद्यमान है या संसार का वर्णन है।

जहाँ कान है... मन है, जहाँ मानसिक घटनाएँ (धर्म) हैं, मन-चेतना है, मन-चेतना द्वारा बोधित होने वाले धर्म हैं, वहाँ संसार विद्यमान है या संसार का वर्णन है।"

जहां आंख नहीं है, समाधि अवस्था है, कोई रूप नहीं है, कोई दृष्टि-चेतना नहीं है, कोई धम्म नहीं है जिसे दृष्टि से जाना जा सके, वहां न तो संसार का अस्तित्व है और न ही संसार का कोई वर्णन।

जहां कान नहीं हैं... कोई मन नहीं है, कोई मानसिक घटना (धम्म) नहीं है, कोई मन-चेतना नहीं है, कोई धम्म नहीं है जिसे मन से जाना जा सके, वहां न तो संसार का अस्तित्व है और न ही संसार का कोई वर्णन।

नोट: यह समाधि अवस्था को भी संदर्भित करता है।

---

69. उपसेना
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य उपसेना राजगृह में शीतवन (सीतवन) के नागों की फन वाली गुफा (सप्पा-सोंडिक-पब्बरे) में निवास कर रहे थे। 31 उस समय एक सर्प पूज्य उपसेना के शरीर पर गिर पड़ा। तब पूज्य उपसेना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मित्रों, आओ, मेरे इस शरीर को पलंग पर उठाओ और इसे बाहर ले जाओ, इससे पहले कि यह यहीं भूसे की तरह बिखर जाए।" 32

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य उपासना से कहा, "हम पूज्य उपासना के शरीर में कोई परिवर्तन या उनकी इंद्रियों में कोई बदलाव नहीं देखते; फिर भी पूज्य उपासना कहते हैं: 'मित्रों, आओ, मेरे इस शरीर को पलंग पर उठाओ और इसे बाहर ले जाओ, इससे पहले कि यह यहीं भूसे की तरह बिखर जाए।'"

"मित्र सारिपुत्त, जो सोचता है, 'मैं आँख हूँ' या 'आँख मेरी है'; 'मैं कान हूँ' या 'कान मेरा है' ... 'मैं मन हूँ' या 'मन मेरा है', उसके लिए काम (राग) शरीर का परिवर्तन या इंद्रियों में बदलाव हो सकता है। परन्तु, मित्र सारिपुत्त, मुझे तो यह विचार नहीं आता, 'मैं आँख हूँ' या 'आँख मेरी है'; 'मैं कान हूँ' या 'कान मेरा है' ... 'मैं मन हूँ' या 'मन मेरा है', तो मेरे शरीर में कोई परिवर्तन या मेरी इंद्रियों में कोई बदलाव क्यों होना चाहिए? "क्या इंद्रियां?" 33

"यह अवश्य ही इसलिए है क्योंकि पूज्य उपसेना में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) को बहुत पहले ही पूरी तरह से जड़ से उखाड़ दिया गया है, इसलिए उन्हें यह विचार नहीं आता, 'मैं आँख हूँ' या 'आँख मेरी है'; 'मैं कान हूँ' या 'कान मेरा है' ... 'मैं मन हूँ' या 'मन मेरा है'।"

तब उन भिक्षुओं ने पूज्य उपसेना के शरीर को पलंग पर उठाया और उसे बाहर ले गए। फिर पूज्य उपसेना का शरीर वहीं मुट्ठी भर भूसे की तरह बिखर गया।

---

70. उपवन

तब पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'प्रत्यक्ष दृश्य धम्म (मार्ग, नियम), प्रत्यक्ष दृश्य धम्म।' 34 पूज्यवर, धम्म किस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है?"

"यहाँ, उपवन, किसी रूप को आँख से देखकर, एक भिक्षु उस रूप के साथ-साथ उस रूप के प्रति वासना (राग) का अनुभव करता है। वह समझता है कि रूपों के प्रति वासना आंतरिक रूप से विद्यमान है, इस प्रकार: 'मेरे भीतर रूपों के प्रति वासना है।' क्योंकि ऐसा है, उपवन, इसलिए धम्म प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।

" "इसके अलावा, उपवन, किसी ध्वनि को कान से सुनकर..." मन से किसी मानसिक घटना को जानने पर, भिक्षु उस मानसिक घटना के साथ-साथ उस मानसिक घटना के प्रति राग (कामना) का भी अनुभव करता है। वह समझता है कि मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति कामना आंतरिक रूप से विद्यमान है, इस प्रकार: 'मेरे भीतर मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति कामना है।' हे उपवन, ऐसा होने पर धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, दर्शन के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किए जाने योग्य है।

"परन्तु यहाँ, हे उपवन, आँख से किसी रूप को देखने पर, भिक्षु उस रूप के प्रति राग (कामना) का अनुभव किए बिना उस रूप का अनुभव करता है। वह समझता है कि रूपों के प्रति कामना आंतरिक रूप से विद्यमान नहीं है, इस प्रकार:
'मेरे भीतर रूपों के प्रति कोई कामना नहीं है।' हे उपवन, ऐसा होने पर, धम्म प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान, तात्कालिक, दर्शन के लिए आमंत्रित करने वाला, व्यावहारिक और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किए जाने योग्य है।

"इसके अतिरिक्त, हे उपवन, कान से कोई ध्वनि सुनने पर... ... किसी मानसिक घटना को मन से जानने के बाद, भिक्षु उस मानसिक घटना का अनुभव बिना किसी राग (कामना) के करता है। वह समझता है कि मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आंतरिक रूप से कोई कामना नहीं होती, इसलिए वह कहता है: 'मुझमें आंतरिक रूप से मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति कोई कामना नहीं है।' उपवन, ऐसा होने के कारण धम्म प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। 35

---

71. संपर्क के लिए छह इंद्रिय संकाय (1) (पथमाचफस्सायतन1 सं. प्रथम-चाहा-स्पर्श-आयतन)

"भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु इन छह इंद्रियों के संपर्क (वस्तु से इंद्रियों का संपर्क; स्पर्श) के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक भोग (अस्वाद), संकट और उससे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझता, तो उसने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है; वह धर्म और अनुशासन से बहुत दूर है।"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, मैं भ्रमित हूँ, क्योंकि मैं इन छह इंद्रियों के संपर्क (स्पर्श) के संदर्भ में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक भोग, संकट और उससे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पा रहा हूँ।" "

भिक्षु, क्या तुम आँख को इस प्रकार देखते हो:
'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' यही दुख का अंत है।

" "क्या आप कान को इस प्रकार देखते हैं...? क्या आप मन को इस प्रकार देखते हैं:
'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको मन को उसके वास्तविक स्वरूप में सही पन्ना (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' यही दुख का अंत है।"

---

72. संपर्क के लिए छह इन्द्रिय संकाय (2)
(पहले दो अनुच्छेद पिछले सूत्र 71 के समान हैं।)

"हे भिक्षु, क्या आप आँख को इस प्रकार देखते हैं:
'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, आदरणीय।"

"अच्छे भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ स्पष्ट रूप से देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' इस प्रकार, संपर्क की यह पहली क्षमता (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श/स्पर्श) आपके द्वारा भविष्य में किसी भी नए जन्म (पुनर्जन्म का कारण) के लिए त्याग दी जाएगी। 37

"क्या आप कान को इस प्रकार देखते हैं...? इस प्रकार, संपर्क की यह दूसरी क्षमता आपके द्वारा भविष्य में किसी भी नए जन्म (पुनर्जन्म का कारण) के लिए त्याग दी जाएगी....

"क्या आप मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?"

"जी हाँ, आदरणीय।"

"अच्छा, भिक्षु! और यहाँ, भिक्षु, आपको सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के साथ मन को उसके वास्तविक स्वरूप में स्पष्ट रूप से देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार संपर्क (फस्सा/स्पर्श) की इस छठी इंद्रिय को आप भविष्य में किसी भी नए जन्म (पुनर्जन्म के कारण) के लिए त्याग देंगे।"

---

73. संपर्क के लिए छह संकाय (3)
(पहले दो अनुच्छेद 71 के अनुसार।)

"हे भिक्षु, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील वस्तु को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"क्या कान... मन स्थायी है या अस्थायी?" "अस्थायी, आदरणीय।" - "अस्थायी क्या दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील वस्तु को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय।"

"हे भिक्षु, इस प्रकार देखकर, दीक्षित शिष्य को आँख के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है... मन के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

(iii) प्रभाग 2, द्वितीय पचास - बीमार अनुभाग (गिलानावग्गो)

74. बीमार (1) (गिलाना)

सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, फलाँ-फलाँ के एक नए दीक्षित भिक्षु हैं, जो अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं, और वे बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं। हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश उस भिक्षु की ओर ध्यान दें तो अच्छा होगा।"

तब, जब भगवान (बुद्ध) ने "नवदीक्षित" और "बीमार" शब्द सुने और यह समझ गए कि वह एक प्रसिद्ध भिक्षु नहीं हैं, तो वे उनके पास गए। उस भिक्षु ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा और अपने पलंग पर करवट बदली। 38 भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा, "बस करो, भिक्षु, अपने पलंग पर मत करवट बदलो। ये आसन तैयार हैं, मैं वहीं बैठूँगा।"

तब भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और उस भिक्षु से बोले, "हे भिक्षु, आशा है कि तुम धैर्यवान हो, आशा है कि तुम स्वस्थ हो रहे हो। आशा है कि तुम्हारी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, न कि उनका बढ़ना।"

"हे प्रभु, मैं धैर्यवान नहीं हूँ, मैं स्वस्थ नहीं हो रहा हूँ। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, न कि उनका कम होना।"

"तो हे भिक्षु, आशा है कि तुम पश्चाताप और पछतावे से व्याकुल नहीं हो।"

"जी हाँ, हे प्रभु, मुझे बहुत पश्चाताप और पछतावा है।" [47]

"हे भिक्षु, आशा है कि तुम्हें सद्‌गुण (शील) के संबंध में स्वयं को दोष देने के लिए कुछ भी नहीं है।"

"हे प्रभु, सद्‌गुण के संबंध में स्वयं को दोष देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

"तो फिर, भिक्षु, यदि आपको सद्‌गुणों के संबंध में स्वयं को दोष देने का कोई कारण नहीं है, तो आप पश्चाताप और अफसोस से क्यों व्याकुल हैं?"

"मैं समझता हूँ, पूज्यवर, कि भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश सद्‌गुणों की शुद्धि के लिए नहीं दिया है।" "

यदि, भिक्षु, आप समझते हैं कि मैंने धर्म का उपदेश सद्‌गुणों की शुद्धि के लिए नहीं दिया है, तो आप किस उद्देश्य से धर्म का उपदेश देने का मेरा अनुमान लगाते हैं?"

"पूज्यवर, मैं समझता हूँ कि भगवान (बुद्ध) ने धर्म का उपदेश कामवासनाओं के नाश के लिए दिया है।" 39

“अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छी बात है कि आप समझते हैं कि मैंने धर्म का उपदेश कामवासना को दूर करने के लिए दिया है। क्योंकि धर्म का उपदेश मैंने कामवासना को दूर करने के लिए ही दिया है।

“भिक्षु, आपके विचार से आँख स्थायी है या अस्थायी?” - “अस्थायी, पूज्यवर।” ... “क्या कान... मन स्थायी है या अस्थायी?” - “अस्थायी, पूज्यवर।” - “अस्थायी क्या है? दुख या सुख?” - “दुख, पूज्यवर।” - "क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ गया: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर, वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुआ। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब उस भिक्षु के मन में धम्म का निर्मल, निष्कलंक दर्शन उत्पन्न हुआ: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब निरोध के अधीन है।" 40

---

75. बीमार (2) (गिलाना)
(जैसा कि ऊपर 74 में है, नीचे तक:)

"यदि, भिक्षु (साधु), आप समझते हैं कि मैंने धर्म (धर्म, नियम) का उपदेश शील की शुद्धि के लिए नहीं दिया है, तो आप किस उद्देश्य से धर्म का उपदेश देना समझते हैं?"

"आदरणीय महोदय, मैं समझता हूँ कि भगवान (बुद्ध) ने धर्म का उपदेश आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण (उपदान संस. आसक्ति) के लिए दिया है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षु! यह अच्छी बात है कि आप समझते हैं कि मैंने धर्म का उपदेश आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण के लिए दिया है। क्योंकि धर्म का उपदेश मैंने आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण के लिए ही दिया है। 41

"भिक्षु, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" ... "क्या कान ... नाक ... जीभ ... शरीर ... मन ... मन-चेतना ... मन-संपर्क (विचार के साथ मन का स्पर्श) ... मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी - स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय।" - "क्या जो अस्थायी है वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय।" - "क्या जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे स्थायी मानना उचित है?" इस प्रकार: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?” - “नहीं, पूज्यवर।”

“ऐसा देखकर... वह समझ गया: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुआ। और जब यह प्रवचन चल रहा था, अनासक्ति के कारण उस भिक्षु का मन विमुक्त हो गया।

---

76. राधा (1)
तब पूज्य राधा भगवान (बुद्ध) के पास गईं और उनसे कहा: "हे प्रभु, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

राधा, तुम्हें जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है; तुम्हें इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। रूप क्षणभंगुर हैं... नेत्र-चेतना क्षणभंगुर है... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) क्षणभंगुर है... नेत्र-संपर्क के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी क्षणभंगुर है; तुम्हें उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

कान... मन क्षणभंगुर है... मन-संपर्क (मन का विचार से स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है... वह भी क्षणभंगुर है; तुम्हें उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। [49] राधा, तुम्हें जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए।

---

77. राधा (2)
(जैसा कि पहले 76 में बताया गया है)
... "राधा, तुम्हें कष्ट देने वाली हर चीज की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।"

---

78. राधा (3)
(जैसा कि पहले 76 में बताया गया है)
... "राधा, तुम्हें अनात्म से संबंधित किसी भी चीज की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।"

---

79. अज्ञान का त्याग (1) (अविज्जापहन1 सं. अविद्या-प्रहन)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, क्या कोई ऐसा धर्म (गुण, नियम) है जिसके त्याग से भिक्षु अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) का त्याग करता है और सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है?"

"हे भिक्षु, एक ऐसा धर्म (गुण, नियम) है जिसके त्याग से भिक्षु अज्ञान का त्याग करता है और सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है।"

"और वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है, हे पूज्यवर?"

"हे भिक्षु, अज्ञान ही वह धर्म (गुण, नियम) है जिसके त्याग से भिक्षु अज्ञान का त्याग करता है और सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है।" 42

"परन्तु, हे पूज्यवर, भिक्षु को कैसे पता चलेगा, कैसे देखेगा, कि वह अज्ञान का त्याग करे और सच्चा ज्ञान प्राप्त करे?"

"भिक्षु, जब कोई भिक्षु ध्यान में आँख को अनित्य जानता और देखता है, तो वह अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है। जब वह ध्यान में रूपों को अनित्य जानता और देखता है... जब वह ध्यान में मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य जानता और देखता है... तो वह अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।

जब, भिक्षु, ध्यान में इस प्रकार कोई भिक्षु अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।"

---

80. अज्ञान का त्याग (2) (अविज्जापहन2 सं. अविद्या-प्रहन)
(ऊपर से नीचे तक:)

"परन्तु, आदरणीय महोदय, एक भिक्षु को कैसे पता चलेगा, कैसे देखेगा, कि वह अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) का त्याग करके सच्चे ज्ञान को प्राप्त करे?"

"यहाँ, भिक्षु ने सुना है, 'किसी भी चीज़ का पालन करना उचित नहीं है।'" जब कोई भिक्षु यह सुनता है, 'किसी भी बात का पालन करने योग्य नहीं है,' तो वह प्रत्यक्ष रूप से सब कुछ जान लेता है। प्रत्यक्ष रूप से सब कुछ जानने के बाद, वह सब कुछ पूर्णतः समझ लेता है। पूर्णतः समझने के बाद, वह (ध्यान में, पस्सति) सभी निमित्त कारकों को भिन्न रूप से देखता है। 43 वह (ध्यान में, पस्सति) आँख को भिन्न रूप से देखता है, वह (ध्यान में, पस्सति) रूपों को भिन्न रूप से देखता है... मन के संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... उसे भी वह (ध्यान में, पस्सति) भिन्न रूप से देखता है।

"हे भिक्षु, जब कोई भिक्षु इस प्रकार जानता और देखता है, तो वह अज्ञान का त्याग कर देता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न होता है।"

---

81. अनेक भिक्खु (सम्बहुलाभिक्कु)
तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा: [51] "हे पूज्यवर, अन्य संप्रदायों के तपस्वी हमसे पूछते हैं: 'मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?' हे पूज्यवर, जब हमसे ऐसा पूछा जाता है, तो हम उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देते हैं: 'मित्रों, दुख को पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत

किया जाता है।' हे पूज्यवर, हमें आशा है कि जब हम ऐसा उत्तर देते हैं तो हम वही कहते हैं जो भगवान (बुद्ध) ने कहा है और उन्हें तथ्यों के विपरीत किसी भी प्रकार से गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करते; कि हम धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करते हैं, और हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता।" 44

"हे भिक्षुओं, जब तुम इस प्रकार उत्तर देते हो, तो तुम वही कहते हो जो मैंने कहा है, और मुझे तथ्यों के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं करते; तुम धम्म के अनुसार व्याख्या करते हो, और तुम्हारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता। क्योंकि, हे भिक्षुओं, मेरे अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) दुख को पूर्ण रूप से समझने के लिए ही व्यतीत किया जाता है।

"परन्तु, हे भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी तुमसे पूछें: 'हे मित्रों, वह कौन सा दुख है जिसे पूर्ण रूप से समझने के लिए तपस्वी गौतम के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया जाता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, तुम्हें उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, आँख दुख है: इसे पूर्ण रूप से समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया जाता है।' शरीर दुखदायी हैं... जो भी संवेदना (वेदना) दृष्टि संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है... वह भी दुखदायी है... मन दुखदायी है... जो भी संवेदना (वेदना) मन संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है... वह भी दुखदायी है: इसी को पूर्ण रूप से समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। हे भिक्षुओं, यही वह दुख है जिसे पूर्ण रूप से समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।

"इस प्रकार पूछे जाने पर, हे भिक्षुओं, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

82. विश्व (लोकपन्हा बिना लोक-प्रश्न)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे बोला, "आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'संसार, संसार।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार 'संसार' कहा जाता है?"

"भिक्षु, यह विघटनशील है, इसीलिए इसे संसार कहा जाता है। 45 और क्या विघटनशील है? भिक्षु, आँख विघटनशील है, रूप विघटनशील हैं, नेत्र-चेतना विघटनशील है, नेत्र-संपर्क विघटनशील है, और नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) विघटनशील है... वह भी विघटनशील है। कान विघटनशील है... मन विघटनशील है... मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी विघटनशील है। भिक्षु, यह विघटनशील है, इसीलिए इसे संसार कहा जाता है।"

---

83. फग्गुनपन्हा (सं. फग्गुना-प्रश्न)
तब पूज्य फाग्गुना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: "पूज्यवर, क्या कोई ऐसी आँख है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है? 46 क्या कोई ऐसा कान है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके?... क्या कोई ऐसा मन है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है?"

"हे फाग्गुना, ऐसी कोई आँख नहीं है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत: प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है। ऐसा कोई कान नहीं है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके... ऐसा कोई मन नहीं है जिसके द्वारा अतीत के बुद्धों का वर्णन किया जा सके - वे जिन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया है, छह इंद्रियों के भ्रम (पापंच संस्कृत: प्रपंच/माया) को पार किया है, चक्र को समाप्त किया है और सभी दुखों से मुक्ति पाई है।"

(iv) प्रभाग 2, द्वितीय पचास - चन्ना खंड (चन्नावग्गो)
84. विघटन के अधीन (पलोकधम्म)
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "पूज्यवर, कहा जाता है, 'संसार, संसार।' किस अर्थ में, पूज्यवर, इसे 'संसार' कहा जाता है?"

"आनंद, जो कुछ भी विघटन के अधीन है, उसे भगवान बुद्ध की साधना में संसार कहा जाता है। 47 और विघटन के अधीन क्या है? आनंद, आँख विघटन के अधीन है, यह... नेत्र-चेतना... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श)... नेत्र-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली

कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी विघटन के अधीन है। कान विघटन के अधीन है... मन विघटन के अधीन है... मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी विघटन के अधीन है। आनंद, जो कुछ भी विघटन के अधीन है, उसे भगवान बुद्ध की साधना में संसार कहा जाता है।"

---

85. संसार खाली है (शून्यता-लोक के बिना)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहा जाता है, 'संसार खाली है, संसार खाली है।' किस अर्थ में कहा जाता है, पूज्यवर, 'संसार खाली है'?"

"आनंद, क्योंकि यह आत्मा और आत्मा से संबंधित किसी भी चीज से खाली है, इसलिए कहा जाता है, 'संसार खाली है'।" और वह क्या है जो स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है? हे आनंद, आँख स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है। रूप स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित हैं। नेत्र-चेतना स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है। नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; स्पर्श) स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है। मन के संपर्क (विचार से संपर्क; स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है।

हे आनंद, क्योंकि यह स्वयं से और स्वयं के अंशों से रहित है, इसीलिए कहा जाता है, 'संसार खाली है।'

---

86. संक्षेप में धम्म (संखिटत्तधम्म सं. संक्षिप्त-धर्म)
एक तरफ बैठे हुए, पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"आनंद, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, पूज्यवर।"

(32 के अनुसार पूर्ण, "इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है" तक।) [55]

---

87. चन्ना
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। 48 उस समय पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महाचुंड और पूज्य चन्ना गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास कर रहे थे, और पूज्य चन्ना बीमार थे, गंभीर रूप से पीड़ित थे। तब, शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए, पूज्य महाचुंड के पास गए और उनसे कहा: "आओ, मित्र चुंड, हम पूज्य चन्ना के पास जाकर उनकी बीमारी के बारे में पूछें।"

"जी, मित्र," पूज्य महाचुंड ने उत्तर दिया।

तब पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाचुंड पूज्य चन्ना के पास गए और उनसे अभिवादन का आदान-प्रदान किया, जिसके बाद वे निर्धारित स्थानों पर बैठ गए। तब पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य चन्ना से कहा: "मुझे आशा है कि आप ठीक हैं, मित्र चन्ना, मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हो रहे हैं। मुझे आशा है कि आपकी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, न कि उनका बढ़ना।"

"मित्र सारिपुत्त, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में सुधार नहीं हो रहा है। 49 तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनका बढ़ना ही स्पष्ट है, कम होना नहीं। जैसे कोई बलवान व्यक्ति तेज तलवार से मेरा सिर चीर दे, वैसे ही तेज हवाएँ मेरे सिर को चीर रही हैं। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे कोई बलवान व्यक्ति मेरे सिर पर चमड़े का सख्त पट्टा कसकर बाँध दे, वैसे ही मेरे सिर में तेज दर्द हो रहा है। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से बैल का पेट चीर दे, वैसे ही तेज हवाएं मेरे पेट को चीर रही हैं। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। ...जैसे दो बलवान व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति को दोनों भुजाओं से पकड़कर गर्म कोयलों के गड्ढे पर भून दें, वैसे ही मेरे शरीर में तेज जलन हो रही है। मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। उनका कम होना नहीं, बल्कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है। "मैं चाकू का प्रयोग करूँगा, हे मित्र सारिपुत्त, मुझे जीने की कोई इच्छा नहीं है।"

"आदरणीय चन्ना चाकू का प्रयोग न करें। आदरणीय चन्ना जीवित रहें। हम चाहते हैं कि आदरणीय चन्ना जीवित रहें। यदि आदरणीय चन्ना को उचित भोजन न मिले, तो मैं उनके लिए उचित भोजन की खोज में जाऊँगा; यदि उन्हें उचित औषधि न मिले, तो मैं उनके लिए उचित औषधि की खोज में जाऊँगा; यदि उनके पास उचित सेवक न हो, तो मैं उनकी सेवा करूँगा। आदरणीय चन्ना चाकू का प्रयोग न करें। आदरणीय चन्ना जीवित रहें। हम चाहते हैं कि आदरणीय चन्ना जीवित रहें।"

"मित्र सारिपुत्त, ऐसा नहीं है कि मुझे उपयुक्त भोजन की कमी है; मेरे पास उपयुक्त भोजन है। ऐसा नहीं है कि मुझे उपयुक्त औषधि की कमी है; मेरे पास उपयुक्त औषधि है। ऐसा नहीं है कि मुझे उचित सेवकों की कमी है; मेरे पास उचित सेवक हैं। इसके अलावा, मित्र, मैंने लंबे समय से गुरु की सेवा सुखद तरीके से की है, अप्रिय तरीके से नहीं; क्योंकि शिष्य के लिए गुरु की सेवा सुखद तरीके से करना उचित है, अप्रिय तरीके से नहीं। यह याद रखना, मित्र सारिपुत्त: भिक्षु चन्ना चाकू का प्रयोग निर्दोषता से करेंगे।" 51

"हम पूज्य चन्ना से एक विशेष विषय के बारे में पूछना चाहते हैं, यदि वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।"

"पूछो, मित्र सारिपुत्त। जब मैं सुन लूंगा तो मुझे पता चल जाएगा।"

"मित्र चन्ना, क्या तुम आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों (गुणों, नियमों) को इस प्रकार देखते हो: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'? क्या तुम कान, कान-चेतना और कान-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखते हो...? क्या तुम मन, मन-चेतना और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखते हो:

'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'? मित्र सारिपुत्त, मैं आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'।" मैं कान, कान-चेतना और कान-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखता हूँ... मैं मन, मन-चेतना और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों को इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'

"मित्र चन्ना, तुमने आँख से, आँख-चेतना से और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में ऐसा क्या देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है कि तुम उन्हें इस प्रकार देखते हो: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?" आपने कान में, मन में, मन-चेतना में और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में ऐसा क्या देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है कि आप उन्हें इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है'?

"मित्र सारिपुत्त, मैंने आँख में, आँख-चेतना में और आँख-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में निरोध (निरोध) को देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है, इसलिए मैं उन्हें इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' मैंने कान में, मन में, मन-चेतना में और मन-चेतना से ज्ञात होने वाले धर्मों में निरोध को देखा और प्रत्यक्ष रूप से जाना है, इसलिए मैं उन्हें इस प्रकार देखता हूँ: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।'" 52

यह सुनकर पूज्य महाचुंडा ने पूज्य चन्ना से कहा, "अतः, मित्र चन्ना, भगवान (बुद्ध) की इस शिक्षा का निरंतर ध्यान रखना चाहिए: 'आश्रित व्यक्ति में अस्थिरता होती है; स्वतंत्र व्यक्ति में अस्थिरता नहीं होती। जब अस्थिरता नहीं होती, तब शांति (पसाद्धि/प्रशाब्धि) होती है; जब शांति होती है, तब कोई प्रवृत्ति नहीं होती; जब कोई प्रवृत्ति नहीं होती, तब आना-जाना नहीं होता; जब आना-जाना नहीं होता, तब मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं होता; जब मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं होता, तब न तो यह है, न यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और न ही यह और पुनर्जन्म। यही दुख का अंत है।'" 53

फिर, जब पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाचुंडा ने पूज्य चन्ना को यह उपदेश दिया, तो वे अपने आसनों से उठे और चले गए। उनके जाने के तुरंत बाद, पूज्य चन्ना ने चाकू का प्रयोग किया। 54

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, पूज्य चन्ना ने चाकू का प्रयोग किया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य क्या होगा?"

"सारिपुत्त, क्या भिक्षु चन्ना ने आपके समक्ष ही अपनी निर्दोषता की घोषणा नहीं की थी?" 55

“पूज्यवर, पुब्बाविज्झना नाम का एक वज्जियन गाँव है। वहाँ पूज्य चन्ना के मित्रवत, घनिष्ठ और आतिथ्यप्रिय परिवार थे।” 56

“हे सारिपुत्त, पूज्य चन्ना के वास्तव में ये मित्रवत परिवार थे, घनिष्ठ परिवार, आतिथ्य सत्कार करने वाले परिवार; परन्तु मैं यह नहीं कहता कि इस हद तक कोई दोषी है। सारिपुत्त, जब कोई इस शरीर को त्यागकर दूसरा शरीर धारण करता है, तब मैं कहता हूँ कि वह दोषी है। भिक्षु चन्ना के मामले में ऐसा नहीं हुआ। भिक्षु चन्ना ने चाकू का प्रयोग निर्दोषतापूर्वक किया। अतः, सारिपुत्त, तुम्हें यह याद रखना चाहिए।” 57

टिप्पणी: इसका अर्थ है कि चन्ना ने दूसरा शरीर धारण नहीं किया (पुनर्जन्म नहीं लिया) अतः उन्हें मुक्ति/निर्वाण प्राप्त हुआ।

---

88. पुन्ना

तब पूज्य पुन्ना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: 58 "पूज्यवर, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"पुन्ना, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो उसे आनंद प्राप्त होता है। हे पुन्ना, आनंद की उत्पत्ति के साथ ही दुख उत्पन्न होता है, मैं कहता हूँ। हे पुन्ना, कानों से सुनाई देने वाली ऐसी ध्वनियाँ और मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो उसे आनंद प्राप्त होता है। हे पुन्ना, आनंद की उत्पत्ति के साथ ही दुख उत्पन्न होता है, मैं कहता हूँ।

"पुन्ना, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप और मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश नहीं करता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो उसमें आनंद समाप्त हो जाता है।

हे पुन्ना, आनंद के समाप्त होने से दुख का अंत हो जाता है, मैं कहता हूँ।

"हे पुन्ना, अब जब तुमने मुझसे यह संक्षिप्त उपदेश प्राप्त कर लिया है, तो तुम किस देश में निवास करोगे?"

"हे पूज्यवर, सुनापरंत नामक एक देश है। मैं वहाँ निवास करूँगा।"

"पुन्ना, सुनापरंत के लोग जंगली और असभ्य हैं। यदि वे तुम्हारा अपमान करें, तो तुम क्या सोचोगे?"

"हे पूज्यवर, यदि सुनापरंत के लोग मेरा अपमान करें, तो मैं सोचूँगा: 'सुनापरंत के ये लोग उत्तम हैं, वास्तव में उत्तम हैं, क्योंकि वे मुझे मुक्का नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूँगा, हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूँगा, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें मुक्के से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे मुक्के से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग उत्कृष्ट हैं, वास्तव में उत्कृष्ट हैं, क्योंकि वे मुझे मिट्टी के ढेले से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा। हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।" "

लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें मिट्टी के ढेले से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?"

आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे मिट्टी के ढेले से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग उत्कृष्ट हैं, वास्तव में उत्कृष्ट हैं, क्योंकि वे मुझे छड़ी से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा। हे प्रभु (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा। सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें लाठी से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे लाठी से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग श्रेष्ठ हैं, वास्तव में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे मुझे चाकू से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

"लेकिन, पुन्ना, यदि सुनापरंत के लोग तुम्हें चाकू से मारें, तो तुम क्या सोचोगे?"

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंत के लोग मुझे चाकू से मारें, तो मैं सोचूंगा: 'ये सुनापरंत के लोग श्रेष्ठ हैं, वास्तव में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे मुझे तेज चाकू से नहीं मारते।' तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे भगवान (बुद्ध); तब मैं ऐसा सोचूंगा, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

"परन्तुना, यदि सुनापरंता के लोग तुम्हें तेज चाकू से मार डालें, तो तुम क्या सोचोगी?"

"आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे तेज चाकू से मार डालें, तो मैं सोचूँगी: भगवान (बुद्ध) के ऐसे शिष्य भी हुए हैं जो शरीर और जीवन से घृणा, अपमान और विरक्ति के कारण हमलावर की तलाश में निकले। 59 परन्तु मुझे तो बिना खोजे ही यह हमलावर मिल गया। तब मैं ऐसा सोचूँगी, हे प्रभु; तब मैं ऐसा सोचूँगी, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)।"

"बहुत खूब, पुन्ना! ऐसे आत्मसंयम और शांति से परिपूर्ण होकर तुम सुनापरंता देश में निवास कर सकोगी। अब, पुन्ना, तुम अपनी सुविधानुसार जा सकती हो।" 60

तब, भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर, पूज्य पुन्ना अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए प्रस्थान किया। फिर उन्होंने अपना आवास व्यवस्थित किया, अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लिया और सुनापरंत देश की ओर प्रस्थान किया। विभिन्न चरणों में भटकते हुए, वे अंततः सुनापरंत देश पहुँचे, जहाँ वे निवास करने लगे। फिर, उस वर्षा ऋतु में, पूज्य पुन्ना ने पाँच सौ पुरुष और पाँच सौ स्त्री अनुयायियों को साधना में स्थापित किया, और स्वयं उसी वर्षा ऋतु में तीन सच्चे ज्ञानों को प्राप्त किया। और उसी वर्षा ऋतु में उन्होंने परम निर्वाण प्राप्त किया। 61

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा: "पूज्यवर, पुन्ना नामक कुल के व्यक्ति, जिन्हें भगवान (बुद्ध) ने संक्षिप्त उपदेश दिया था, का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है? उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा?"

भिक्षुओं, कुल के पुन्ना बुद्धिमान थे। उन्होंने धम्म के अनुसार अभ्यास किया और धम्म के कारण मुझे परेशान नहीं किया। कुल के पुन्ना ने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।

---

89. बहिया

तब पूज्य बाहिया भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रह सकूँ।"

"बाहिया, आपके विचार से आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अनंत, पूज्यवर।" (जैसा कि 32 से आगे है:) ... "वे समझते हैं: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

तब पूज्य बाहिया भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर, वे चले गए। फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य बाहिया ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इस बात को अनुभव कर लिया और इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई महत्व नहीं है।" और पूज्य बाहिया अरहंतों में से एक बन गए।

---

90. उत्तेजित होना (1) (Eja1)

भिक्षुओं, विचलित होना रोग है, विचलित होना ट्यूमर है, विचलित होना बाण के समान है। 62 अत:, भिक्षुओं, तथागत अविचलित रहते हैं, बाण रहित। अत:, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु चाहे, 'काश मैं अविचलित रहूँ, बाण रहित!' तो उसे आँख का ध्यान नहीं रखना चाहिए, आँख में ध्यान नहीं रखना चाहिए, आँख से ध्यान नहीं रखना चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'यह आँख मेरी है।' 63

उसे रूपों का ध्यान नहीं रखना चाहिए... आँख-चेतना का... आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) का... और आँख-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) का... उसे उसका ध्यान नहीं रखना चाहिए, उसमें ध्यान नहीं रखना चाहिए, उससे ध्यान नहीं रखना चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'यह मेरा है।'

उसे कान की कल्पना नहीं करनी चाहिए... उसे मन की कल्पना नहीं करनी चाहिए... मानसिक घटनाओं (धम्म) की... मन-चेतना की... मन-संपर्क की... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की... उसे उसकी कल्पना नहीं करनी चाहिए, उसमें कल्पना नहीं करनी चाहिए, उससे कल्पना नहीं करनी चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'यह मेरा है।'

उसे सब कुछ की कल्पना नहीं करनी चाहिए, सब में कल्पना नहीं करनी चाहिए, सब से कल्पना नहीं करनी चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि 'सब कुछ मेरा है।'

क्योंकि वह इस प्रकार किसी भी चीज की कल्पना नहीं करता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता। आसक्ति न होने के कारण (उपदान संस्कृत: आसक्ति), वह विचलित नहीं होता। विचलित न होने के कारण, वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:

'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

---

91. उत्तेजित होना (2) (Eja2)
भिक्षुओं, विचलित होना एक रोग है, विचलित होना एक ट्यूमर है, विचलित होना एक बाण के समान है। इसलिए, भिक्षुओं, तथागत अविचलित, बाण रहित निवास करते हैं। इसलिए, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह कामना करे, 'काश मैं अविचलित, बाण रहित निवास कर सकूँ!' तो उसे आँख, रूप, आँख-चेतना, आँख-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) का विचार नहीं करना चाहिए... और आँख-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के संबंध में... उसे उसका विचार नहीं करना चाहिए, उसमें विचार नहीं करना चाहिए, उससे विचार नहीं करना चाहिए, यह विचार नहीं करना चाहिए कि 'वह मेरा है।' भिक्षुओं, जो कुछ भी कोई सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने में सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने से सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने 'मेरा' समझता है - वह कुछ और है। संसार, भाव से आसक्त होकर, केवल भाव में ही आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है। 64

"उसे कान की कल्पना नहीं करनी चाहिए... उसे मन की कल्पना नहीं करनी चाहिए... मानसिक घटनाओं (धम्म) की... मन-चेतना की... मन-संपर्क की... और मन-संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) की... उसे उसकी कल्पना नहीं करनी चाहिए, उसमें कल्पना नहीं करनी चाहिए, उससे कल्पना नहीं करनी चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए, 'वह मेरा है।' भिक्षुओं, जो कुछ भी कोई सोचता है, जो कुछ भी कोई अपने में सोचता है, [67] जिससे कल्पना करता है, जो कुछ भी कोई अपने 'मेरा' समझता है - वह कुछ और है। संसार, भाव से आसक्त होकर, केवल भाव में ही आनंद (नंदी/आनंद) खोजता है।

भिक्षुओं, जो कुछ भी स्कंध, धातु और इंद्रिय शक्तियाँ हैं, वह उन्हें नहीं मानता, उनमें नहीं मानता, उनसे नहीं मानता, और न ही यह मानता है कि 'यह मेरा है।'

क्योंकि वह किसी भी चीज को इस प्रकार नहीं मानता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता। आसक्त न होने के कारण वह विचलित नहीं होता। विचलित न होकर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है।'

---

92. दोहे (1)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें द्वैत सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, द्वैत क्या है? आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्शनीय वस्तुएँ, मन और मानसिक घटनाएँ (धम्म)। इसे ही द्वैत कहते हैं। हे

भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'इस द्वैत को त्यागकर मैं एक अन्य द्वैत का प्रचार करूंगा' - तो यह उसकी ओर से केवल खोखला अभिमान होगा। यदि उससे प्रश्न किया जाए तो वह उत्तर नहीं दे पाएगा और उसे क्रोध का सामना करना पड़ेगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, यह उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा।" 65

---

93. दोहे (युग्म)(2)
भिक्षुओं, चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) द्वैत पर निर्भर होती है। और हे भिक्षुओं, चेतना द्वैत पर निर्भर कैसे होती है? आँख और रूपों पर निर्भर होकर नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। आँख क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है; रूप क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाले होते हैं। इस प्रकार यह द्वैत गतिशील और डगमगाता हुआ क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाला होता है।

नेत्र-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाली होती है। नेत्र-चेतना के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूप बदलने वाला होता है। हे भिक्षुओं, जब नेत्र-चेतना एक क्षणभंगुर कारण पर निर्भर होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है?

इन तीनों धर्मों (गुणों, नियमों) के मिलन, मुठभेड़ और संगति को नेत्र संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) कहते हैं। नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। हे भिक्षुओं, जब नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) एक क्षणभंगुर कारण पर निर्भर होकर उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है? हे भिक्षुओं

, संपर्क होने पर व्यक्ति अनुभव करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति इरादा करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति बोध करता है। 67 इस प्रकार ये धर्म भी गतिशील और अस्थिर, क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से कान-चेतना उत्पन्न होती है... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। मन क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है; मानसिक घटनाएं (धम्म) क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती रहती हैं। इस प्रकार यह द्वैत गतिशील और अस्थिर, क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है।

मन-चेतना क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होती रहती है। मन-चेतना के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और रूपांतरित होता रहता है। हे भिक्षुओं, जब मन-चेतना एक क्षणभंगुर कारण पर निर्भरता से उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है?"

इन तीनों धर्मों के मिलन, संवाद और संगति को मन-संपर्क (मन और विचार का स्पर्श) कहते हैं। मन-संपर्क भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। मन-संपर्क के उत्पन्न होने का कारण भी क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलता रहता है। हे भिक्षुओं, जब मन-संपर्क किसी क्षणभंगुर कारण पर निर्भर होकर उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है? हे

भिक्षुओं, संपर्क होने पर व्यक्ति अनुभव करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति अभिकल्पना करता है, संपर्क होने पर व्यक्ति बोध करता है। इस प्रकार ये धर्म भी गतिशील और अस्थिर, क्षणभंगुर, परिवर्तनशील और बदलते रहते हैं। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार चेतना द्वैत पर निर्भर होकर उत्पन्न होती है।

(v) भाग 2, द्वितीय पचास - छक्कों का खंड (सलावाग्गो)
94. अनियंत्रित, असुरक्षित 68 (अदंतगुट्टा)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय-संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हों - तो दुख का कारण बनते हैं। 69 वे छह कौन सी हैं?

"भिक्षुओं, आँख, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण बनती है। कान, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण बनता है। नाक, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण

बनती है। जीभ, संपर्क (संपर्क) की एक इंद्रिय के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित और बेकाबू हो - तो दुख का कारण बनती है।" स्पर्श (स्पर्श) एक संपर्क शक्ति के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित, अनियंत्रित हो - तो दुख का कारण बनता है। मन (स्पर्श) एक संपर्क शक्ति के रूप में - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित, अनियंत्रित हो - तो दुख का कारण बनता है। ये छह इंद्रिय शक्तियां (स्पर्श) - यदि अनियंत्रित, असुरक्षित, अनियंत्रित, अनियंत्रित हों - तो दुख का कारण बनती हैं

। भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय शक्तियां (स्पर्श) - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, संरक्षित, नियंत्रित हों - तो सुख (सुख) का कारण बनती हैं। 70 वे छह कौन सी हैं?

"भिक्षुओं, आंख (स्पर्श) एक संपर्क शक्ति के रूप में - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, संरक्षित, नियंत्रित हो - तो सुख का कारण बनती है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में कान - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में नाक - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में जीभ - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। स्पर्श (संपर्क) की इंद्रिय के रूप में स्पर्श (संपर्क) - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित और संयमित हो - तो सुख का स्रोत है। ये छह इंद्रिय-संवेदनाएँ (स्पर्श) - यदि अच्छी तरह से नियंत्रित, सुरक्षित, संरक्षित और संयमित हों - तो सुख प्रदान करती हैं।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"हे भिक्षुओं, केवल छह ही इंद्रियाँ (स्पर्श) संपर्क का कारण बनती हैं,
जहाँ अनियंत्रित होने पर दुख होता है।
जो इन्हें नियंत्रित करना जानते हैं
, वे निर्मल रहते हैं, और विश्वास को अपना साथी बनाते हैं।

मन को प्रसन्न करने वाले रूपों (नंदी/आनंद)
और आनंदहीन रूपों को देखकर,
राग के मार्ग को छोड़कर आनंदमय रूप की ओर अग्रसर हों।"
और यह सोचकर मन को दूषित न करो कि '[दूसरा] मुझे अप्रिय है।'

मधुर और कर्कश दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनकर,
मधुर ध्वनि से मोहित न हो।
कर्कश ध्वनि के प्रति घृणा का भाव त्याग दो।
और यह सोचकर मन को दूषित न करो कि
'[यह] मुझे अप्रिय है।'

सुगंधित, मनभावन खुशबू सूंघकर,
और सड़ी हुई दुर्गंध सूंघकर,
दुर्गंध के प्रति अरुचि का भाव त्याग दो ।
और सुंदर वस्तु के प्रति लालसा के वश में न हो।

मीठा और स्वादिष्ट स्वाद चखकर, और कभी-कभी कड़वा स्वाद चखकर, मीठे स्वाद का लालच न करो। कड़वे स्वाद के प्रति अरुचि न रखो।

सुखद स्पर्श से मोहित न हो, और
पीड़ादायक स्पर्श से भयभीत न हो।
सुखद और पीड़ादायक दोनों को समान दृष्टि से देखो।
किसी भी चीज से आकर्षित या विमुख न हो।

जब साधारण लोग अपनी छह इंद्रियों (प्रपंच/माया) से भ्रमित होकर
इस प्रकार अनुभव करते हैं और इंद्रियों के भ्रम में पड़कर साधना में जुट जाते हैं, तो वे

सांसारिक जीवन से बंधी सभी मानसिक अवस्थाओं से मुक्त होकर
त्याग के मार्ग पर विचरण करते हैं। 71

"जब मन इस प्रकार छह इंद्रियों से भली-भांति विकसित हो जाता है,
तो स्पर्श होने पर मन कहीं विचलित नहीं होता।
हे भिक्षुओं, कामवासना (राग) और द्वेष (दोष/द्वेष) दोनों पर विजय प्राप्त करके,
जन्म-मृत्यु के परे उस पार निर्वाण की ओर प्रस्थान करो!"

---

95. मालुंक्यपुत्त (सं. मलुक्य-पुत्र)
तब पूज्य मालुनक्यपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा: 72 "पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"अब, मालुनक्यपुत्त, मैं युवा भिक्षुओं को क्या कहूँ जब आप जैसे भिक्षु - वृद्ध, उम्रदराज, वर्षों के बोझ से दबे हुए, जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके - मुझसे संक्षेप में उपदेश माँगें?" 73

"हे पूज्यवर, यद्यपि मैं वृद्ध, उम्रदराज, वर्षों के बोझ से दबा हुआ, जीवन के अंतिम पड़ाव पर आ चुका हूँ, तो कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें, शुभ पुरुष (सुगतो) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें। शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का अर्थ समझ सकूँ, शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का उत्तराधिकारी बन सकूँ।"

"मालुंक्या तुम सोचते हो, मालुंक्यापुत्त, क्या तुम्हारे मन में उन रूपों के लिए कोई इच्छा, वासना (राग) या स्नेह है जिन्हें तुमने न तो देखा है और न ही कभी देखा है, जिन्हें तुम नहीं देखते और न ही यह सोचते हो कि उन्हें देखा जा सकता है?" 74

"नहीं, पूज्यवर।"

क्या आपके मन में उन ध्वनियों के प्रति कोई इच्छा, वासना (राग) या स्नेह है जो कानों से सुनी जा सकती हैं... उन गंधों के प्रति जो नाक से सुनी जा सकती हैं... उन स्वादों के प्रति जो जीभ से महसूस किए जा सकते हैं... उन स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति जो शरीर द्वारा महसूस की जा सकती हैं... उन मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति जो मन द्वारा महसूस की जा सकती हैं जिन्हें आपने न तो कभी जाना है और न ही आप जानते हैं और न ही यह सोचेंगे कि उन्हें जाना जा सकता है? "

नहीं, आदरणीय महोदय।"

हे मालुख्यपुत्त, आपके द्वारा देखे, सुने, अनुभव किए और बोध किए गए धर्मों (गुणों, नियमों) के संदर्भ में: जो देखा जाता है उसमें केवल देखा जाता है; जो सुना जाता है उसमें केवल सुना जाता है; जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है; जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है।

हे मालुख्यपुत्त, आपके द्वारा देखे, सुने, अनुभव किए और बोध किए गए धर्मों के संदर्भ में, जब जो देखा जाता है उसमें केवल देखा जाता है, जो सुना जाता है उसमें केवल सुना जाता है, जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है, और जो बोध किया जाता है उसमें केवल बोध किया जाता है, तब, हे मालुख्यपुत्त, आप 'उससे' नहीं होंगे। हे मालुख्यपुत्त, जब आप 'उससे' नहीं होंगे, तब आप 'उसमें' नहीं होंगे। हे मालुख्यपुत्त, जब आप 'उसमें' नहीं होंगे, तब आप न तो यहाँ होंगे, न उससे परे होंगे और न ही इन दोनों के बीच में होंगे। यही दुख का अंत है।" 75

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बात का अर्थ मैं विस्तार से समझता/समझती हूँ:

"ध्यान में उलझे हुए रूप को देखकर; मनभावन चिन्ह (निमित्त, कारण) पर ध्यान देते हुए;
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है; और उसे दृढ़ता से पकड़े रहता है।"

"दृश्य रूप से उत्पन्न होकर, भीतर अनेक प्रकार की वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं।"

लोभ और क्रोध भी; जिनसे मन विचलित हो जाता है। 76
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए ध्वनि सुनकर; सुखद संकेत (कारण, निमित्त) पर ध्यान देते हुए,
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है; और उसे कसकर पकड़े रहता है।

"श्रव्य ध्वनि से उत्पन्न होकर; भीतर अनेक वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिनसे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए गंध सूंघकर; सुखद संकेत (कारण, निमित्त) पर ध्यान देते हुए,
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है; और उसे कसकर पकड़े रहता है।

"गंध से उत्पन्न होकर; भीतर अनेक वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिनसे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए किसी स्वाद का आनंद लेने पर,
मन को मोह में डूबे रहने के कारण, निमित्त भाव से उसका अनुभव होता है और वह उस पर दृढ़ता से टिका रहता है।

स्वाद से उत्पन्न होकर, अनेक वेदनाएँ भीतर उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिससे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"ध्यान भंग करते हुए किसी स्पर्श का अनुभव करने पर,
मन को मोह में डूबे रहने के कारण, निमित्त भाव से उसका अनुभव होता है और वह उस पर दृढ़ता से टिका रहता है।

स्पर्श से उत्पन्न होकर, अनेक वेदनाएँ भीतर उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिससे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख संचित करता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"ध्यान में लीन होकर किसी धर्म (यहाँ मन में विचार) का ज्ञान होने पर, मनभावन चिन्ह (निमित्त, कारण) पर ध्यान देने से,
व्यक्ति आसक्त मन से उसका अनुभव करता है और उसे कसकर पकड़े रहता है।

धर्म (यहाँ मन में विचार) से उत्पन्न होकर, भीतर अनेक वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं;
लोभ और क्रोध भी; जिससे मन विचलित हो जाता है।
जो इस प्रकार दुख भोगता है, उसके लिए निर्वाण बहुत दूर कहा जाता है।

"जब कोई दृढ़ता से ध्यानमग्न होकर किसी रूप को देखता है, तो वह रूपों के प्रति वासना से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे उदासीन मन से अनुभव करता है और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि रूप को देखते हुए भी,
और किसी संवेदना का अनुभव करते हुए भी, [दुख] समाप्त होता है, बढ़ता नहीं। 77
इस प्रकार दुख का नाश करने वाले के लिए निर्वाण निकट ही कहा जाता है।

"जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर कोई ध्वनि सुनता है, तो वह ध्वनियों के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैराग्यपूर्ण मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि जैसे ही वह कोई ध्वनि सुनता है
और किसी अनुभूति का अनुभव करता है, [दुख] समाप्त हो जाता है, बढ़ता नहीं।
इस प्रकार दुख का नाश करने वाले के लिए निर्वाण निकट ही कहा जाता है।

"जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर कोई गंध सूंघता है, तो वह गंधों के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैराग्यपूर्ण मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि जैसे ही वह कोई गंध सूंघता है
और किसी अनुभूति का अनुभव करता है, [दुख] समाप्त हो जाता है, बढ़ता नहीं।
इस प्रकार दुख का नाश करने वाले के लिए निर्वाण निकट ही कहा जाता है।

जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर किसी स्वाद का आनंद लेता है, तो वह स्वाद के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैरागी मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि स्वाद का आनंद लेते हुए भी,
और किसी अनुभूति का अनुभव करते हुए भी, [दुःख] उत्पन्न नहीं होता, बल्कि समाप्त हो जाता है।
इस प्रकार दुःख को दूर करने वाले के लिए निर्वाण निकट माना जाता है।

जब कोई दृढ़ ध्यानमग्न होकर किसी स्पर्श का अनुभव करता है, तो वह स्पर्श के प्रति राग से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैरागी मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न है कि स्पर्श का अनुभव करते हुए भी,
और किसी अनुभूति का अनुभव करते हुए भी, [दुःख] उत्पन्न नहीं होता, बल्कि समाप्त हो जाता है।
इस प्रकार दुःख को दूर करने वाले के लिए निर्वाण निकट माना जाता है।

जब कोई दृढ़तापूर्वक ध्यानमग्न होकर किसी धर्म (यहाँ मन में विचार) को जानता है, तो वह वस्तुओं के प्रति वासना से प्रज्वलित नहीं होता;
वह उसे वैरागी मन से अनुभव करता है, और उसे कसकर पकड़े नहीं रहता।

वह इस प्रकार ध्यानमग्न (सतो) है कि धर्म (यहाँ मन में विचार) को जानते हुए भी,
जब वह किसी संवेदना का अनुभव करता है, तो [दुःख] समाप्त हो जाता है, बढ़ता नहीं।
इस प्रकार दुःख को नष्ट करने वाले के लिए निर्वाण निकट कहा जाता है।

"हे पूज्यवर, इसी प्रकार मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझता हूँ।"

बुद्ध: "अच्छा, अच्छा, मालंक्यपुत्त! यह अच्छा है कि तुम मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझते हो।

(बुद्ध यहाँ उपरोक्त श्लोकों को पूर्ण रूप से दोहराते हैं।)

"हे मालंक्यपुत्त, इसी प्रकार मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझा जाना चाहिए।"

तब पूज्य मलंक्यपुत्त, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को अपने दाहिनी ओर रखकर उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे प्रस्थान कर गए। फिर एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य मलंक्यपुत्त ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त किया और उसमें निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है। जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य मलंक्यपुत्त अरहंतों में से एक बन गए।

96. पतनशील धम्म (परिहनधम्म सं. परिहानी-धम्म)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें हानि के अधीन व्यक्ति, हानि के अधीन न होने वाले व्यक्ति और छह निपुण इंद्रियों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, हानि कैसे होती है? 78 हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी रूप को अपनी आँखों से देखता है, तो उसके भीतर अकुशल अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से जुड़ी बुरी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। 79 यदि भिक्षु उन्हें सहन करता है और उनका त्याग नहीं करता, उन्हें दूर नहीं करता, उनका अंत नहीं करता और उन्हें मिटा नहीं देता, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि कहा है।'"

"इसके अलावा, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसके मन में अकुशल (हानिकारक) अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से जुड़ी बुरी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि भिक्षु उन्हें सहन करता है और उनका त्याग नहीं करता, उन्हें दूर नहीं करता, उन्हें समाप्त नहीं करता और उन्हें मिटा नहीं देता, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे हानि कहा है।'

"भिक्षुओं, इसी प्रकार व्यक्ति हानि का भागी होता है।"

और हे भिक्षुओं, हानि से कैसे बचा जा सकता है? हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी रूप को आँखों से देखता है, तो उसके मन में अकुशल अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से संबंधित अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि भिक्षु उन्हें सहन न करे, बल्कि उनका त्याग कर दे, उन्हें दूर कर दे, उनका अंत कर दे और उन्हें मिटा दे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी अवस्थाओं से विमुख नहीं हो रहा हूँ। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे हानि नहीं कहा है।'

इसके अतिरिक्त, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसके मन में अकुशल अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और बंधनों से संबंधित अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि भिक्षु उन्हें सहन न करे, बल्कि उनका त्याग कर दे, उन्हें दूर कर दे, उनका अंत कर दे और उन्हें मिटा दे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख नहीं हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि नहीं कहा है।'

"भिक्षुओं, इसी प्रकार हानि नहीं होती है।

और भिक्षुओं, वे छह इंद्रिय शक्तियाँ क्या हैं जिन पर महारत हासिल की गई है? 80 यहाँ, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी रूप को आँख से देखता है, तो उसमें अकुशल (हानिकारक) अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं होती हैं, न ही बंधनों से संबंधित कोई स्मृतियाँ और अभिलाषाएँ। भिक्षु को यह समझना चाहिए: 'इस शक्ति पर महारत हासिल कर ली गई है। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने महारत हासिल की हुई शक्ति कहा है।'

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसके मन में न तो कोई बुरी (अकुशल) अवस्था उत्पन्न होती है, न ही बंधनों से संबंधित कोई स्मृतियाँ या इरादे। भिक्षु को इसे इस प्रकार समझना चाहिए: 'इस इंद्रिय पर महारत प्राप्त कर ली गई है। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे महारत प्राप्त इंद्रिय कहा है।' भिक्षुओं, इन्हें ही महारत प्राप्त छह इंद्रिय शक्तियाँ कहा जाता है।

97. सुस्ती से निवास करना (पामदविहारी सं. प्रमाद-विहारी)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें आलसी (पमादा) और सजग (अपमादा) रहने वाले व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, आलसी कैसे रहा जाता है? यदि कोई नेत्र इंद्रिय पर संयम न रखे, तो उसका मन नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों में दूषित हो जाता है। मन दूषित होने पर आनंद नहीं होता। आनंद न होने पर प्रीति नहीं होती। आनंद न होने पर प्रशब्धि नहीं होती। प्रशब्धि नहीं होती। दुख में रहने वाले का मन समाधि अवस्था में नहीं जाता। जब मन समाधि अवस्था में नहीं होता, तो धम्म प्रकट नहीं होते। क्योंकि धम्म प्रकट नहीं होते, इसलिए उसे आलसी कहा जाता है।

यदि कोई श्रवण शक्ति पर संयम न रखते हुए उसमें लीन रहता है, तो उसका मन कानों द्वारा बोधगम्य ध्वनियों से दूषित हो जाता है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। यदि कोई मन शक्ति पर संयम न रखते हुए उसमें लीन रहता है, तो उसका मन मन द्वारा बोधगम्य मानसिक घटनाओं (धर्म) से दूषित हो जाता है। क्योंकि ये घटनाएँ (धर्म) प्रकट नहीं होतीं, इसलिए व्यक्ति को 'आलस्य में रहने वाला' माना जाता है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार व्यक्ति आलस्य में रहता है।

और हे भिक्षुओं, सचेत कैसे रहा जाए? यदि कोई नेत्र इंद्रिय पर संयम रखकर मन को सजीव रखे, तो उसका मन नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों से दूषित नहीं होता। मन के दूषित न होने पर प्रसन्नता उत्पन्न होती है। प्रसन्न होने पर परमानंद उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद से ऊपर उठता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है। समाधि अवस्था में मन के कारण धर्म प्रकट होते हैं। धर्म प्रकट होने के कारण ही व्यक्ति को सचेत रहने वाला कहा जाता है।

"यदि कोई श्रवण शक्ति पर संयम बरते, तो उसका मन कानों द्वारा बोधगम्य ध्वनियों से दूषित नहीं होता (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)... यदि कोई मन शक्ति पर संयम बरते, तो उसका मन बोधगम्य मानसिक घटनाओं (धर्म) से दूषित नहीं होता... क्योंकि घटनाएँ (धर्म) प्रकट होती हैं, इसलिए व्यक्ति को 'जागरूक' माना जाता है।

" हे भिक्षुओं, इसी प्रकार व्यक्ति जागरूक रहता है।

---

98. संयम (संवर)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें संयम और असंयम सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, असंयम क्या है? हे भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आकर्षक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि कहा है।'"

भिक्षुओं, कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिन्हें कान से सुना जा सकता है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)... कुछ ऐसी मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जिन्हें मन द्वारा अनुभव किया जा सकता है और जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज करे, उनका स्वागत करे और उनसे जुड़ा रहे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख हो रहा हूँ। क्योंकि इसे भगवान (बुद्ध) ने हानि कहा है।'

भिक्षुओं, यही असंयम है।

हे भिक्षुओं, संयम कैसे है? हे भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आकर्षक, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज न करे, उनका स्वागत न करे और उनसे जुड़ा न रहे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं से विमुख नहीं हो रहा हूँ। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे हानि नहीं कहा है।'

हे भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन से सुनाई देने वाली मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आकर्षक और इंद्रिय-लुभावन हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की खोज न करे, उनका स्वागत न करे और उनसे जुड़ा न रहे, तो उसे यह समझना चाहिए: 'मैं लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं को नहीं खो रहा हूँ।' क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने इसे कोई हानि नहीं कहा है।

"भिक्षुओं, यही संयम है।"

---

99. आत्म-मग्न समाधि (समाधि)
"भिक्षुओं, समाधि अवस्था विकसित करो। समाधि अवस्था में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। 84

"और वह किन चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है? वह वास्तविकता को उसके वास्तविक स्वरूप में समझता है: 'आँख क्षणभंगुर है।'" वह यथार्थ को समझते हैं: 'रूप क्षणभंगुर हैं।'... 'दृष्टि-चेतना क्षणभंगुर है।'... 'दृष्टि संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) क्षणभंगुर है।'... 'दृष्टि संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी क्षणभंगुर है।'...(इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)...

"वह यथार्थ को समझते हैं: 'मन क्षणभंगुर है। (इसी प्रकार चेतना (विज्ञान), स्पर्श आदि के लिए)... वह यथार्थ को समझते हैं: 'मन संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना)... वह भी क्षणभंगुर है।'

"भिक्षुओं, समाधि अवस्था विकसित करो।" समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में रहने वाला भिक्षु चीजों को वैसे ही समझता है जैसे वे वास्तव में हैं।

---

100. एकांतवास (पतिसलाना)
"भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। एकांतवासी भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।"

(शेष भाग पूर्ववर्ती सूत्र 99 के समान है।)

---

101. तुम्हारा नहीं (1) (नटुमहाका1)
भिक्षुओं, जो कुछ तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। 85 जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। और वह क्या है, भिक्षुओं, जो तुम्हारा नहीं है? आँख तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। रूप तुम्हारे नहीं हैं... आँख की चेतना तुम्हारी नहीं है... आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; स्पर्श) तुम्हारा नहीं है... आँख के संपर्क (स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो - वह भी तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। जब तुम उसे त्याग दोगे, तो वह तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।

कान तुम्हारे नहीं हैं (इसी प्रकार नाक, जीभ, स्पर्श)... मन तुम्हारा नहीं है... मन के संपर्क (स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है... वह यह भी तुम्हारा नहीं है: इसे त्याग दो। जब तुम इसे त्याग दोगे, तभी तुम्हारा कल्याण और सुख होगा।

"मान लो, भिक्षुओं, लोग इस जेतवन (जेतवन) में घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ ले जाएँ, या उन्हें जला दें, या उनके साथ जैसा चाहें वैसा करें। क्या तुम सोचोगे: 'लोग हमें ले जा रहे हैं, या जला रहे हैं, या हमारे साथ जैसा चाहें वैसा कर रहे हैं'?"

"नहीं, पूज्यवर। क्यों? क्योंकि, पूज्यवरवर, वह न तो हमारा स्वरूप है और न ही हमारा विषय है।"

भिक्षुओं, आँख भी तुम्हारी नहीं है... (इसी प्रकार इसके रूप, चेतना (विन्नान, विज्ञान), स्पर्श और संवेदना भी)... मन के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) भी तुम्हारी नहीं है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। वह भी तुम्हारी नहीं है: उसका त्याग कर दो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो यही तुम्हारे कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा।

---

102. तुम्हारा नहीं (2) (नटुमहाका2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें उपमा नहीं है।)

---

103. उद्दका
भिक्षुओं, उद्दक रामपुत्त यह घोषणा किया करते थे:

"'यह, निश्चय ही ज्ञान का स्वामी है;
यह, निश्चय ही सर्वविजयी है; इसने निश्चय ही उस ट्यूमर की जड़
काटी है जो पहले कभी नहीं काटी गई!' 86 "भिक्षुओं, यद्यपि उद्दक रामपुत्त स्वयं ज्ञान का स्वामी नहीं थे, फिर भी उन्होंने घोषणा की: 'मैं ज्ञान का स्वामी हूँ।' यद्यपि वे स्वयं सर्वविजयी नहीं थे, फिर भी उन्होंने घोषणा की: 'मैं सर्वविजयी हूँ।' यद्यपि उन्होंने ट्यूमर की जड़ नहीं काटी थी, फिर भी उन्होंने घोषणा की: 'मैंने ट्यूमर की जड़ काटी है।' परन्तु यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही ढंग से कह सकता है: "'यह, निश्चय ही ज्ञान का स्वामी है; यह, निश्चय ही सर्वविजयी है; इसने निश्चय ही उस ट्यूमर की जड़ काटी है जो पहले कभी नहीं काटी गई!'" और हे भिक्षुओं, ज्ञान का स्वामी कैसे बनता है? जब कोई भिक्षु छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का विषय वस्तु से संपर्क;

फस्सा/स्पर्श) के संबंध में उत्पत्ति, अपन, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के सत्य को यथावत समझ लेता है, तब वह भिक्षु ज्ञान का स्वामी होता है। और हे भिक्षुओं, कोई भिक्षु विश्व विजेता कैसे बनता है? जब कोई भिक्षु छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में उत्पत्ति, अपन, सांसारिक भोग, खतरे और उससे बचने के सत्य को यथावत समझ लेता है और अनासक्ति के द्वारा मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तब वह भिक्षु विश्व विजेता बनता है। और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु उस ट्यूमर की जड़ को कैसे निकालता है जिसे पहले नहीं काटा गया था? 'ट्यूमर', हे भिक्षुओं: यह उस शरीर का नाम है जो चार महान तत्वों (धातु) से बना है, माता-पिता से उत्पन्न होता है, चावल और दलिया से निर्मित होता है, अनित्यता (अनिच्च संस्कृत: अनित्य) के अधीन है, रगड़ने और दबाने के अधीन है, टूटने और बिखरने के अधीन है। 87 'ट्यूमर की जड़': यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का नाम है। जब एक भिक्षु तृष्णा का त्याग कर देता है, उसे जड़ से काट देता है, ताड़ के ठूंठ की तरह बना देता है, मिटा देता है ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो, ऐसे में भिक्षु ने उस ट्यूमर की जड़ को काट दिया है जिसे पहले नहीं काटा गया था। "भिक्षुओं, यद्यपि उद्दक रामपुत्त स्वयं ज्ञान-गुरु नहीं थे, उन्होंने घोषणा की: 'मैं ज्ञान-गुरु हूँ।'... लेकिन यहाँ, हे भिक्षुओं, एक सही अर्थ में बोलने वाला भिक्षु शायद कहेगा: "'यह तो निश्चय ही ज्ञान का स्वामी है; यह तो निश्चय ही सर्वविजयी है; इसने तो उस ट्यूमर की जड़ काट दी है जिसे पहले कभी नहीं काटा गया था!'"

(i) तीसरा भाग 3. तीसरा पचास - बंधन से मुक्ति (योगक्खेमिवग्गो संस्कृत: योगक्षेमी-वर्ग)
104. बंधन से मुक्त (योगक्षेमी संस्कृत: योगक्षेमी)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाले व्यक्ति के विषय पर धर्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या सिखाऊंगा। 88 इसे सुनो...

"और हे भिक्षुओं, बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाले व्यक्ति के विषय पर धर्म की व्याख्या क्या है? हे भिक्षुओं, कुछ ऐसे रूप हैं जो आँखों से दिखाई देते हैं, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक हैं। तथागत ने इन्हें जड़ से त्याग दिया है, जड़ से काट दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, मिटा दिया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। वे इनके त्याग के लिए प्रयास करने की घोषणा करते हैं। इसलिए तथागत को बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाला कहा जाता है।" 89

"हे भिक्षुओं, कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं..., कुछ ऐसी मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। तथागत ने इन सबका त्याग कर जड़ से काट दिया है, इन्हें ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट कर दिया है, ताकि भविष्य में इनका पुनरागमन न हो। वे इनके त्याग के लिए प्रयास करने की घोषणा करते हैं। इसलिए तथागत को बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाला कहा जाता है। हे

भिक्षुओं, यह बंधन से मुक्ति पाने के प्रयास की घोषणा करने वाले विषय पर धम्म की व्याख्या है।"

---

105. आसक्ति (उपादय) द्वारा
भिक्षुओं, जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसके आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) से आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं? 90

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."
"भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो आँख से चिपके रहने से सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। जब कान होता है... मन होता है, तो मन से चिपके रहने से सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

" "भिक्षुओं, आपके विचार में आँख स्थायी है या अस्थायी?"

"आदरणीय महोदय।"

"अस्थायी से दुख आता है या सुख?"

"दुख आता है।"

"परन्तु, जो अस्थायी, दुखदायी और

परिवर्तनशील है, उससे चिपके बिना क्या सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या कान (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन)... मन स्थायी है या अस्थायी?...परन्तु, जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे चिपके बिना क्या सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न हो सकते हैं?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख (मन) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

106. दुख का उद्गम (दुक्खसमुदय)
(पिछले 105 के समान)

---

107. विश्व की उत्पत्ति (लोकसमुदाय)
(पिछले 105 के समान)

---

108. मैं सुपीरियर हूं (सेयोहामास्मि)
भिक्षुओं, जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो किस चीज से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) रखने से, किस चीज का पालन करने से, क्या यह विचार उत्पन्न होता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'?

आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...

"भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो आँख से आसक्ति रखने से, आँख का पालन करने से, यह विचार उत्पन्न होता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'। जब कान होते हैं... जब मन होता है, तो मन से आसक्ति रखने से, मन का पालन करने से, यह विचार उत्पन्न होता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'।"

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? आँख... मन स्थायी है या अस्थायी?"

"अस्थायी, पूज्यवर।" ...

"परन्तु जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उससे आसक्ति रखे बिना क्या यह विचार आ सकता है: 'मैं श्रेष्ठ हूँ' या 'मैं समतुल्य हूँ' या 'मैं हीन हूँ'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इस प्रकार देखकर... वह समझ जाता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'" [89]

---

109. बंधन उत्पन्न करने वाले (संयोजनीय)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें बंधनकारी धर्मों और बंधन के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो... 92

"और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जो बंधनकारी हैं, और बंधन क्या है? हे भिक्षुओं, आँख एक धर्म है जो बंधनकारी है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) वहाँ बंधन है। कान एक धर्म है जो बंधनकारी है... मन एक धर्म है जो बंधनकारी है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) वहाँ बंधन है। इन्हें बंधनकारी धर्म कहा जाता है, और इसे बंधन।"

---

110. Clinging Causing (Upadaniya)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें वे धर्म सिखाऊंगा जिनसे आसक्ति रखी जा सकती है और आसक्ति (उपदान, संस्कृत: आसक्ति)। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिनसे आसक्ति रखी जा सकती है, और आसक्ति क्या है? भिक्षुओं, आँख एक धर्म है जिससे आसक्ति रखी जा सकती है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। कान एक धर्म है जिससे आसक्ति रखी जा सकती है... मन एक धर्म है जिससे आसक्ति रखी जा सकती है; इसके लिए इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही आसक्ति है। इन्हें ही आसक्ति रखने योग्य धर्म कहते हैं, और इसे ही आसक्ति कहते हैं।

---

111. आंतरिक भाग को पूरी तरह समझना (1) (अज्जत्तिकायतनपरिजनन)
भिक्षुओं, आँख को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश नहीं किया जा सकता। कान को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना... मन को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना, उसके प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश नहीं किया जा सकता। परन्तु आँख को प्रत्यक्ष रूप से जाने और पूर्णतः समझे बिना... मन के प्रति वैराग्य विकसित किए बिना और उसका त्याग किए बिना, दुख का नाश किया जा सकता है।

---

112. बाह्य को पूर्णतः समझना (2) (बहिरयातनपरिजनन)
(यह 111 के समान है, लेकिन इसे छह बाह्य इंद्रिय-संवेदनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है।)

---

113. सुनना (उपासुति)
(107 के समान)

(ii) तीसरा भाग - लोकमगुनवग्गो (लोकमगुनवग्गो)
114. मारा का फंदा (1) (मारपासा1)
भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो वह शैतान के जाल में फँसा हुआ भिक्षु कहलाता है; वह शैतान के बंधन में आ जाता है और शैतान उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए) और मन से अनुभव होने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है... तो शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

"भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो आकर्षक, प्यारे, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश नहीं करता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो वह ऐसा भिक्षु कहलाता है जिसने मारा के जाल में प्रवेश नहीं किया है, जो मारा के वश में नहीं आया है; मारा का फंदा उससे खुल गया है, इसलिए वह मारा के बंधन से मुक्त है और शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा नहीं कर सकता।

"भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)।" मन द्वारा अनुभव की जाने वाली वे मानसिक घटनाएँ (धम्म) जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता है... तो शैतान उसके साथ अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता।

---

115. मारा का फंदा (2) (मारपासा2)
भिक्षुओं, ऐसी आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो वह आँखों से देखी जा सकने वाली आकृतियों में बंधा हुआ भिक्षु कहलाता है, जो शैतान के जाल में फँस गया है, जो शैतान के वश में आ गया है; [उस पर शैतान का फंदा लगा दिया गया है जिससे वह शैतान के बंधन में बँधा हुआ है] 95 और शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

भिक्षुओं, ऐसी ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... ऐसी मानसिक घटनाएँ हैं जो मन से सुनी जा सकती हैं, जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) की तलाश करता है... तो शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

हे भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे आसक्त नहीं रहता, तो वह आँखों से दिखाई देने वाले रूपों में मुक्त भिक्षु कहलाता है, जो मार के जाल में नहीं फंसा है, जो मार के वश में नहीं आया है; [मारा का फंदा उससे खुल गया है, इसलिए वह मार के बंधन से मुक्त है] और राक्षस उसके साथ अपनी इच्छा अनुसार नहीं कर सकता।

हे भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन से दिखाई देने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद (नंदी/आनंद) नहीं खोजता है... तो शैतान उसके साथ अपनी इच्छा अनुसार कुछ नहीं कर सकता।

---

116. लोकांतगमना (लोकांतगमना)

"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि संसार के अंत को न तो जाना जा सकता है, न देखा जा सकता है और न ही यात्रा करके वहाँ पहुँचा जा सकता है। फिर भी, भिक्षुओं, मैं यह भी कहता हूँ कि संसार के अंत तक पहुँचे बिना दुखों का अंत नहीं हो सकता।" 96

यह कहकर भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए। 97 फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद, भिक्षुओं ने सोचा, "हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने अपने आसन से उठकर अपने निवास में प्रवेश कर लिया है, संक्षेप में सारांश सुनाकर, उसका विस्तृत अर्थ नहीं समझाया है। अब भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में सुनाए गए सारांश का विस्तृत अर्थ कौन समझाएगा?" तब उन्होंने विचार किया, "पूजनीय आनंद की स्तुति गुरु द्वारा की जाती है और ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने वाले उनके ज्ञानी भाई उन्हें सम्मान देते हैं; पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में सुनाए गए इस सारांश का विस्तृत अर्थ बताए बिना ही उसका विस्तृत अर्थ समझाने में सक्षम हैं। आइए हम उनके पास जाकर इसका अर्थ पूछें।"

तब वे भिक्षु पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया, जिसके बाद वे एक तरफ बैठ गए और उन्हें सारी बात बताई, और कहा, "पूज्य आनंद हमें इसका अर्थ समझाएँ।"

[आदरणीय आनंद ने उत्तर दिया:] "मित्रों, ऐसा ही है जैसे कोई व्यक्ति जिसे सार तत्व की आवश्यकता हो, उसकी खोज में भटकता रहे और सार तत्व से युक्त विशाल वृक्ष की जड़ और तने को अनदेखा कर दे, यह सोचकर कि सार तत्व शाखाओं और पत्तों में ढूँढा जाना चाहिए। ठीक यही बात आप आदरणीय व्यक्तियों के साथ भी है: जब आप गुरु के सामने थे, तब आप भगवान (बुद्ध) के पास से यह सोचकर गुजरे कि मुझे अर्थ के बारे में पूछना चाहिए। क्योंकि, मित्रों, जानने पर भगवान (बुद्ध) जानते हैं; देखने पर वे देखते हैं; वे दृष्टि बन गए हैं, वे ज्ञान बन गए हैं, वे धर्म बन गए हैं, वे पवित्र बन गए हैं; वे व्याख्याकार, उद्घोषक, अर्थ के स्पष्टीकरणकर्ता, अमरता (निर्वाण) के दाता, धर्म (मार्ग, नियम) के स्वामी, तथागत हैं। यही वह समय था जब आपको भगवान (बुद्ध) से अर्थ पूछना चाहिए था। [95] जैसा उन्होंने आपको समझाया, वैसा ही आपको याद रखना चाहिए था।"

"हे मित्र आनंद, निश्चय ही भगवान (बुद्ध) जानते हैं, देखते हैं, वे स्वयं दृष्टि बन गए हैं... तथागत। यही वह समय था जब हमें भगवान (बुद्ध) से अर्थ पूछना चाहिए था, और जैसा उन्होंने हमें समझाया था, वैसे ही हमें उसे याद रखना चाहिए था। फिर भी, आदरणीय आनंद की गुरु द्वारा प्रशंसा की जाती है और ब्रह्मचर्य जीवन में उनके ज्ञानी भाइयों द्वारा उनका सम्मान किया जाता है; आदरणीय आनंद भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में सुनाए गए इस सारांश का विस्तृत अर्थ बिना विस्तृत व्याख्या किए ही समझाने में सक्षम हैं। आदरणीय आनंद बिना किसी कठिनाई के इसकी व्याख्या करें।" "

तो सुनो, मित्रों, और जो मैं कहूँ उस पर ध्यान दो।"

"जी, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। आदरणीय आनंद ने यह कहा:

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश करने से पहले, संक्षेप में एक सारांश सुनाते हुए, बिना विस्तृत अर्थ बताए, अर्थात्: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि जगत के अंत को न तो जाना जा सकता है, न देखा जा सकता है और न ही यात्रा द्वारा पहुँचा जा सकता है। फिर भी, भिक्षुओं, मैं यह भी कहता हूँ कि जगत के अंत तक पहुँचे बिना दुखों का अंत नहीं हो सकता', तो मैं

इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ: जिस जगत के द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है - उसे ही श्रेष्ठ साधक की साधना में जगत कहा जाता है। 98 और मित्रों, जगत में वह क्या है जिसके द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है? आँख वह है जिसके द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है। 99 कान... नाक... जीभ... शरीर... मन वह है जिसके द्वारा व्यक्ति जगत को देखता है, जगत की कल्पना करता है। जिस संसार में मनुष्य संसार को देखता है, संसार की कल्पना करता है, उसे ही श्रेष्ठ साधक की साधना में संसार कहा जाता है।

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश करने से पहले, संक्षेप में एक सारांश सुनाते हुए, उसका विस्तृत अर्थ बताए बिना, अपने निवास में प्रवेश किया, अर्थात्: 'भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि संसार के अंत को यात्रा द्वारा जाना, देखा या पहुँचा नहीं जा सकता। फिर भी, भिक्षुओं, मैं यह भी कहता हूँ कि संसार के अंत तक पहुँचे बिना दुखों का अंत नहीं होता,' मैं इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ। अब, मित्रों, यदि आप चाहें, तो भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछें।" "जिस प्रकार भगवान (बुद्ध) ने तुम्हें समझाया है, उसी प्रकार तुम्हें इसे याद रखना चाहिए।"

"जी हां, मित्रों," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और अपने स्थानों से उठकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को उनके जाने के बाद घटी सारी बातें बताईं, और आगे कहा: [97] "फिर, आदरणीय, हम आदरणीय आनंद के पास गए और उनसे इसका अर्थ पूछा। आदरणीय आनंद ने हमें इसका अर्थ इन शब्दों में, इन वाक्यांशों में समझाया।"

"आनंद बुद्धिमान हैं, भिक्षुओं, आनंद को महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त है। यदि तुमने मुझसे इसका अर्थ पूछा होता, तो मैं तुम्हें उसी प्रकार समझाता जिस प्रकार आनंद ने समझाया है। इसका यही अर्थ है, और इसलिए तुम्हें इसे याद रखना चाहिए।"

---

117. कामुक सुख की डोरियाँ (कामागुना)

भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'मेरा मन अक्सर उन पाँच इंद्रिय सुखों की ओर भटकता है जो हृदय पर अपनी छाप छोड़ चुके हैं, 100 परन्तु जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और बदल चुके हैं, या उन इंद्रिय सुखों की ओर जो वर्तमान में हैं, या थोड़ा-बहुत भविष्य में आने वाले हैं।' तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, 101 मुझे उन पाँच इंद्रिय सुखों के संबंध में सतर्कता (अपमादा), ध्यान और मन की रक्षा का अभ्यास करना चाहिए जो हृदय पर अपनी छाप छोड़ चुके हैं, जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और बदल चुके हैं।'

इसलिए, भिक्षुओं, आपके मामले में भी आपका मन अक्सर उन पाँच इंद्रिय सुखों की ओर भटकता है जो हृदय पर अपनी छाप छोड़ चुके हैं, परन्तु जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और बदल चुके हैं, या उन इंद्रिय सुखों की ओर जो वर्तमान में हैं, या थोड़ा-बहुत भविष्य में आने वाले हैं। अतः, भिक्षुओं, अपने कल्याण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उन पाँच इंद्रिय सुखों के संबंध में सतर्कता, ध्यान और मन की रक्षा का अभ्यास करें, जिन्होंने हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ दिया है, परन्तु जो बीत चुके हैं, समाप्त हो चुके हैं और परिवर्तित हो चुके हैं।

"अतः, भिक्षुओं, उस शक्ति को समझना चाहिए, 102 जहाँ आँख काम करना बंद कर देती है और रूपों की अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) लुप्त हो जाती है। 103 उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ कान काम करना बंद कर देते हैं और ध्वनियों की अनुभूति लुप्त हो जाती है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)। उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ मन काम करना बंद कर देता है और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति लुप्त हो जाती है। उस शक्ति को समझना चाहिए।"

यह कहकर, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए। फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के तुरंत बाद, भिक्षुओं ने विचार किया ... (जैसा कि पिछले सूत्र में है, आगे भी): ... पूज्य आनंद ने यह कहा:

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए, तो उन्होंने संक्षेप में एक सारांश सुनाया, बिना उसका विस्तृत अर्थ बताए - अर्थात्: 'इसलिए, भिक्षुओं, उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ आँख काम करना बंद कर देती है और रूपों का बोध लुप्त हो जाता है... उस शक्ति को समझना चाहिए, जहाँ मन काम करना बंद कर देता है और मानसिक घटनाओं (धम्म) का बोध लुप्त हो जाता है। उस शक्ति को समझना चाहिए' - मैं इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ: यह बात भगवान (बुद्ध) ने कही थी, मित्रों, छह इंद्रियों के निरोध (निरोध) के संदर्भ में। 104

"मित्रों, जब भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए, तो उन्होंने संक्षेप में एक सारांश सुनाया, बिना उसका विस्तृत अर्थ बताए ... मैं समझता हूँ इस सारांश का विस्तृत अर्थ इस प्रकार है। अब, मित्रों, यदि आप चाहें, तो भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे इसका अर्थ पूछें। जिस प्रकार भगवान (बुद्ध) आपको इसका अर्थ समझाएँ, उसी प्रकार इसे याद रखें।

“जी हां, मित्रों,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और अपनी सीटों से उठकर भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को उनके जाने के बाद घटी सारी बातें बताईं, और आगे कहा: “फिर, आदरणीय, हम आदरणीय आनंद के पास गए और उनसे इसका अर्थ पूछा। आदरणीय आनंद ने हमें इसका अर्थ इन शब्दों में, इन वाक्यांशों में समझाया।”

“आनंद बुद्धिमान हैं, भिक्षुओं, आनंद को गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त है। यदि आप मुझसे इसका अर्थ पूछते, तो मैं भी आपको उसी प्रकार समझाता जिस प्रकार आनंद ने समझाया है। इसका यही अर्थ है, और इसलिए आपको इसे याद रखना चाहिए।”

---

118. सक्का का प्रश्न (सक्कपन्हा सं. शक्र-प्रश्न)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब देवों/देवदूतों के स्वामी, सक्का (इंद्र) भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और उनसे कहा:

"हे आदरणीय महोदय, इसका क्या कारण है कि यहाँ कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते? और इसका क्या कारण है कि यहाँ कुछ प्राणी इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं?"

हे देवों, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो मनभावन, प्यारे, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसकी चेतना उन पर निर्भर हो जाती है और उनसे चिपक जाती है। आसक्ति से ग्रस्त भिक्षु निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता। 105

हे देवों, कानों से सुनाई देने वाली ऐसी ध्वनियाँ हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन से सुनाई देने वाली ऐसी मानसिक घटनाएँ हैं जो मनभावन, प्यारी, सुखद, आनंददायक, इंद्रियों को लुभाने वाली और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसकी चेतना उन पर निर्भर हो जाती है और उनसे चिपक जाती है। आसक्ति रखने वाला भिक्षु निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता।

हे देवों, यही कारण है कि कुछ प्राणी इस जीवन में निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते। हे

देवों, यहाँ ऐसी आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। मन द्वारा देखी जाने वाली ऐसी मानसिक घटनाएँ (धर्म) हैं जो वांछनीय, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-प्रेरक और उत्तेजक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं खोजता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे आसक्त नहीं रहता, तो उसकी चेतना उन पर निर्भर नहीं होती या उनसे आसक्त नहीं होती। आसक्ति रहित भिक्षु निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

हे देवों, यही कारण है कि कुछ प्राणी इस जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।

---

119. Pancasikha
(वही स्थिति है, सिवाय इसके कि वार्ताकार गंधर्वों का पुत्र पंचसिखा है।) 106

---

120. सारिपुत्त
एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तभी एक भिक्षु उनके पास आए और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा,

"मित्र सारिपुत्त, मेरे साथ निवास करने वाले एक भिक्षु ने साधना त्याग कर सांसारिक जीवन में लौट गए हैं।"

"तो, मित्र, जब कोई इंद्रियों के द्वारों की रक्षा नहीं करता, अत्यधिक भोजन करता है और जागृति के प्रति समर्पित नहीं होता, तब ऐसा संभव है। यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा नहीं करता, अत्यधिक भोजन करता है और जागृति के प्रति समर्पित नहीं है, वह जीवन भर पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करे। परन्तु, मित्र, यह संभव है कि कोई भिक्षु जो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, संयमित भोजन करता है और जागृति के प्रति समर्पित है, वह जीवन भर पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करे।

" "और, मित्र, कोई इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझ पाता।" 107 क्योंकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह दृष्टि को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, दृष्टि की रक्षा करता है, दृष्टि को नियंत्रित करने का उपाय करता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद का अनुभव करके... शरीर से स्पर्शित वस्तु को महसूस करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझ पाता। क्योंकि यदि वह अपनी दृष्टि को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह दृष्टि को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, दृष्टि की रक्षा करता है, दृष्टि को नियंत्रित करने का उपाय करता है। हे मित्र, इसी प्रकार इंद्रियों के द्वारों की रक्षा की जाती है।

"और हे मित्र, संयमपूर्वक भोजन कैसे किया जाता है? यहाँ, ध्यानपूर्वक (सावधानीपूर्वक), एक भिक्षु न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करता है, बल्कि केवल इस शरीर के भरण-पोषण और देखभाल के लिए, असुविधा को दूर करने के लिए, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) में सहायता करने के लिए भोजन ग्रहण करता है, यह सोचते हुए कि: इस प्रकार मैं पुरानी संवेदना (वेदना) को समाप्त करूँगा और नई संवेदना (वेदना) को उत्पन्न नहीं होने दूँगा, और मैं स्वस्थ और निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा।" 108 हे मित्र, इसी प्रकार संयमपूर्वक भोजन किया जाता है।

और हे मित्र, जागृति के प्रति समर्पित कैसे हुआ जाता है? यहाँ, दिन के समय, चलते-फिरते और बैठते हुए, भिक्षु अपने मन को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के प्रथम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के मध्य पहर में, वह उठने का विचार मन में रखते हुए, एक पैर दूसरे पर रखकर, सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट जाता है, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करता है। उठने के बाद, रात्रि के अंतिम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को बाधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। हे मित्र, इसी प्रकार जागृति के प्रति समर्पित हुआ जाता है।

अतः, हे मित्र, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करेंगे; हम भोजन में संयम बरतेंगे; हम जागृति के प्रति समर्पित रहेंगे।' इस प्रकार, हे मित्र, तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

121. राहुला (राहुलोवाडा) को निर्देश
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। 109 तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में थे, उनके मन में यह विचार आया:
“राहुल में मुक्ति की अवस्थाएँ (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) परिपक्व हो चुकी हैं। मैं उसे विकारों के नाश (खय/क्षय) की ओर आगे ले जाऊँ।” 110

तब, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने चले गए। भिक्षा मांगने के बाद भोजन करने पर उन्होंने पूज्य राहुल को संबोधित करते हुए कहा: “हे राहुल, एक आसन लो। चलो आज के लिए अंधवन (अंधों के वन) में चलें।”

"जी, पूज्यवर," पूज्य राहुल ने उत्तर दिया और बैठने के लिए एक कपड़ा लेकर भगवान (बुद्ध) के पीछे-पीछे चलने लगे।

उस अवसर पर हजारों देवता (देवदूत) भगवान (बुद्ध) के पीछे-पीछे यह सोचकर चल रहे थे: "आज भगवान (बुद्ध) पूज्य राहुल को विकारों के नाश (खयाल/क्षय) की ओर आगे ले जाएंगे।" 111 तब भगवान (बुद्ध) अंधवन में उतरे और एक वृक्ष के नीचे उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। पूज्य राहुल ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"राहुल, तुम क्या सोचते हो, आँख स्थायी है या अस्थायी?" - "अनस्थायी, पूज्यवर।" - "जो अस्थायी है, वह दुख है या सुख?" - "दुख, पूज्यवर।" - "जो अस्थायी, दुखदायी और परिवर्तनशील है, क्या उसे इस प्रकार मानना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या रूप स्थायी होते हैं या अस्थायी?" क्या नेत्र-चेतना... क्या नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; फस्सा/स्पर्श)... क्या संवेदना (वेदना), बोध (संज्ञा संस्कृत), संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-स्थिति) और चेतना (विन्नाना संस्कृत, विज्ञान) में शामिल कोई भी चीज जो

नेत्र-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है, स्थायी है या अस्थायी? - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" (शेष भाग पिछले अनुच्छेद के समान है।)

"क्या कान... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन स्थायी है या अस्थायी?... क्या मानसिक घटनाएँ (धम्म)... क्या मन-चेतना... क्या मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श)... क्या संवेदना (वेदना), बोध, संस्कार (व्यवहार-स्थिति) और चेतना में शामिल कोई भी चीज जो मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होती है, स्थायी है या अस्थायी? क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" - "क्षणभंगुर क्या है? दुख या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।" - "क्या क्षणभंगुर, दुखमय और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं।" आदरणीय महोदय।"

"इस प्रकार देखकर, राहुल, जो एक विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य हैं, आँख के प्रति घृणा (निब्बिदा), रूपों के प्रति घृणा, आँख-चेतना के प्रति घृणा, आँख-संपर्क के प्रति घृणा (फस्सा/स्पर्श); संवेदना (वेदना), बोध, संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) और आँख-संपर्क से उत्पन्न चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं। वे कान के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं... मन के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं... संवेदना (वेदना), बोध, संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-निर्धारण) और मन-संपर्क से उत्पन्न चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करते हैं। घृणा

का अनुभव करते हुए, वे वैराग्य हो जाते हैं। वैराग्य के माध्यम से उनका मन मुक्त हो जाता है (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त)। जब मन मुक्त हो जाता है, तब उन्हें यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।'" वह समझ गए:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न होकर पूज्य राहुल प्रसन्न हुए। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब अनासक्ति के कारण पूज्य राहुल का मन विकारों से मुक्त हो गया, और उन हजारों देवताओं (देवदूतों) में धम्म का निर्मल, निष्कलंक दर्शन प्रकट हुआ: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब निरोध के अधीन है।" 112

---

122. बंधन उत्पन्न करने वाले (संयोजनीयधम्म)
(109 के समान, लेकिन छह बाह्य इंद्रियों के माध्यम से।)

---

123. चिपकने वाला कारण (उपदानियधम्म)
(110 के समान, लेकिन छह बाह्य इंद्रियों के माध्यम से।)

(iii) तीसरा भाग - गृहस्थ (गृहपति, गृहपति का उपसंहार)
124. वेसाली में
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब वैशाली के गृहस्थ उगा भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा... 113

(प्रश्न और उत्तर बिल्कुल वही हैं जो 118 में हैं।)

---

125. वज्जियों के बीच
एक बार भगवान (बुद्ध)
हत्थिगमा में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। तब हत्थिगमा के गृहस्थ उगा ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उनसे कहा... 114
8 (जैसा कि 118 में है।)

---

126. नालंदा में
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ उपली भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा... 115
(जैसा कि 118 में है।)

---

127. भारद्वाज

एक बार पूज्य पिंडोला भारद्वाज कोसंबी में घोषिता उद्यान में निवास कर रहे थे। 116 तब राजा उदेना पूज्य पिंडोला भारद्वाज के पास गए और उनसे अभिवादन किया। 117 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे गुरु भारद्वाज, इसका कारण क्या है कि ये युवा भिक्षु, काले बालों वाले, यौवन के आशीर्वाद से संपन्न, जीवन के सर्वांगीण काल में, जिन्होंने इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं हुए हैं, अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं?” 118

"हे महाराज, सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी भगवान (बुद्ध), पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत ने यह कहा है: 'हे भिक्षुओं, अपनी माता के समान आयु की स्त्रियों के प्रति यह भाव रखो कि वे तुम्हारी माता हैं; 119 अपनी बहनों के समान आयु की स्त्रियों के प्रति यह भाव रखो कि वे तुम्हारी बहनें हैं; अपनी पुत्रियों के समान आयु की स्त्रियों के प्रति यह भाव रखो कि वे तुम्हारी पुत्रियाँ हैं।' हे महाराज, यही कारण है कि ये युवा भिक्षु अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं।"

"मन अनियंत्रित है, हे भरद्वाज गुरु। कभी-कभी माता के समान वृद्ध स्त्रियों के प्रति भी राग भाव उत्पन्न हो जाते हैं; कभी बहन के समान वृद्ध स्त्रियों के प्रति; कभी पुत्री के समान युवा स्त्रियों के प्रति। क्या इसके अतिरिक्त कोई और कारण है कि ये युवा भिक्षु जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं?"

"हे महाराज, सर्वज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी भगवान (बुद्ध), पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत ने यह कहा है: 'हे भिक्षुओं, पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा से घिरे इस शरीर का अवलोकन करो, जो अनेक प्रकार की अशुद्धियों से भरा है: 120 "इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, मेसेंटरी, पेट की सामग्री, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, चिकनाई, लार, नाक का पानी, जोड़ों का द्रव और मूत्र हैं।" हे महाराज, यही कारण है कि ये युवा भिक्षु अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं।

"यह तो आसान है, हे भरद्वाज गुरु, उन भिक्षुओं के लिए जो शरीर से विकसित हैं, सद्गुणों (शील) से विकसित हैं, मन से विकसित हैं और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से विकसित हैं। परन्तु उन भिक्षुओं के लिए कठिन है जो शरीर से अविकसित हैं, सद्गुणों से अविकसित हैं, मन से अविकसित हैं और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से अविकसित हैं। कभी-कभी, यद्यपि कोई सोचता है, 'मैं शरीर को गंदा मानकर उसकी देखभाल करूँगा,' फिर भी वह उसे सुंदर देखता है। क्या इसके अलावा कोई और कारण है कि ये युवा भिक्षु ... अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं?"

हे महाराज, सर्वज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी भगवान (बुद्ध), पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत ने यह कहा है: “भिक्षुओं, अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हुए निवास करो। किसी रूप को आँख से देखकर उसके निमित्त और विशेषताओं को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम आँख को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं, इसलिए इसके संयम का अभ्यास करो, आँख की रक्षा करो, आँख को संयमित करो। कान से कोई ध्वनि सुनकर... नाक से कोई गंध सूंघकर... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करके... शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, उसके निमित्त और विशेषताओं को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम मन को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं।” लोभ और अप्रसन्नता तुम पर हावी न हो, इसलिए इसके संयम का अभ्यास करो, मन की शक्ति की रक्षा करो, मन के संयम का अभ्यास करो।' हे महाराज, यही कारण है कि ये युवा भिक्षु ... अपने पूरे जीवन भर पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और इसे निरंतर बनाए रखते हैं।

"यह अद्भुत है, हे भरद्वाज गुरु! यह आश्चर्यजनक है, हे भरद्वाज गुरु! सर्वज्ञ और प्रत्यक्ष भगवान (बुद्ध), जो अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, उन्होंने इसे कितनी खूबसूरती से कहा है। यही कारण है कि ये युवा भिक्षु, काले बालों वाले, यौवन के आशीर्वाद से परिपूर्ण, जीवन के सर्वोपरि, जिन्होंने इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं हुए हैं, अपने पूरे जीवन में पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते हैं और उसे निरंतर बनाए रखते हैं। मेरे मामले में भी, जब मैं शरीर, वाणी और मन से असुरक्षित होकर, ध्यान स्थापित किए बिना, इंद्रियों पर संयम रखे बिना अपने हरम में प्रवेश करता हूँ, तो उस समय कामवासना मुझ पर अत्यधिक हावी हो जाती है। परन्तु जब मैं शरीर, वाणी और मन से सावधान होकर, ध्यान स्थापित करके, इंद्रियों पर संयम रखकर अपने हरम में प्रवेश करता हूँ, तो उस समय कामवासना मुझ पर इस प्रकार हावी नहीं होती।"

हे महानुभाव, भरद्वाज स्वामी! हे महानुभाव, भरद्वाज स्वामी! भरद्वाज स्वामी ने अनेक तरीकों से धम्म (मार्ग, नियम) को स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीन लोगों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। हे महानुभाव, मैं भगवान (बुद्ध), धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से हे महानुभाव, मुझे जीवन भर के लिए शरण में आए हुए गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।

---

128. सोना

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ का पुत्र सोना भगवान (बुद्ध) के पास आया... और उनसे कहा

(जैसा कि 118 में है)।

---

129. घोसिता

एक बार पूज्य आनंद कोसंबी में घोषिता के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ घोषिता पूज्य आनंद के पास आए और उनसे कहा: "पूज्य आनंद, ऐसा कहा जाता है, 'तत्वों की विविधता (धातु), तत्वों की विविधता।' 122 हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किस प्रकार किया है?"

गृहस्थ, नेत्र तत्व विद्यमान है, और सुखदायक रूप, और नेत्र चेतना: किसी वस्तु के साथ संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। 123 नेत्र तत्व विद्यमान है, और अप्रिय रूप, और नेत्र चेतना: किसी पीड़ादायक संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। नेत्र तत्व विद्यमान है, और समता का आधार (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) रूप, और नेत्र चेतना: किसी पीड़ादायक या सुखदायक संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, न पीड़ादायक और न सुखदायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है।

गृहस्थ, कान तत्व ... नाक तत्व ... जीभ तत्व ... शरीर तत्व ... मन तत्व, और सुखदायक मानसिक घटनाएँ (धम्म), और मन चेतना: पर निर्भर करते हुए सुखद अनुभव होने पर सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व, अप्रिय मानसिक घटनाएँ और मन-चेतना विद्यमान हैं: कष्टदायक अनुभव होने पर कष्टदायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व, समभाव का आधार बनने वाली मानसिक घटनाएँ और मन-चेतना विद्यमान हैं: न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभव होने पर न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है।

"हे गृहस्थ, इसी प्रकार भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किया है।"

---

130. हलिद्दाकानी

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकच्चना कुराराघर में पापता पर्वत पर अवंती के लोगों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ हलिद्दकनी पूज्य महाकच्चना के पास आए और उनसे कहा: 124

“पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने कहा है: 'धातुओं की विविधता के कारण इंद्रियों के साथ विभिन्न संपर्क उत्पन्न होते हैं; इन संपर्कों की विविधता के कारण वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है।' 125 यह कैसे संभव है, पूज्यवर?”

“हे गृहस्थ, किसी रूप को देखकर एक भिक्षु उसे इस प्रकार समझता है: 'यह ऐसा है!'” 126 नेत्र चेतना होती है, और किसी वस्तु के संपर्क (संवेदना का स्पर्श) से सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। 127 फिर, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु अप्रिय रूप को इस प्रकार समझता है: 'ऐसा ही है!' नेत्र चेतना होती है, और किसी पीड़ादायक संपर्क (संवेदना) से पीड़ादायक अनुभूति उत्पन्न होती है। फिर, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु समभाव का आधार (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) को इस प्रकार समझता है:
'ऐसा ही है!' नेत्र-चेतना होती है, और किसी ऐसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, जिसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक अनुभव किया जाता है, एक ऐसी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है जो न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक होती है।

"इसके अलावा, गृहस्थ, कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद का अनुभव करके... शरीर से किसी स्पर्शित वस्तु को महसूस करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, एक भिक्षु सुखद घटना को इस प्रकार समझता है... [116] ... अप्रिय घटना को इस प्रकार... समभाव का आधार बनने वाली घटना को इस प्रकार:

'ऐसा ही है!' मन-चेतना होती है, और किसी ऐसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, जिसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक अनुभव किया जाता है, एक ऐसी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है जो न तो पीड़ादायक और न ही सुखदायक होती है।

"हे गृहस्थ, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है, और संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

131. नकुलपिता
एक बार भगवान (बुद्ध) भेषकला वन (मिगदाये) में, सुमसुमारागिरा में भग्गों के बीच निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ नकुलपिता भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा... 128
(जैसा कि 118 में है।)

---

132. लोहिक्का
एक बार पूज्य महाकच्चना अवंती के लोगों के बीच मकरकटा में एक वन कुटिया में रह रहे थे। तभी ब्राह्मण लोहिच्च के कुछ शिष्य, जो ब्राह्मण थे, लकड़ियाँ इकट्ठा करते हुए पूज्य महाकच्चना की कुटिया के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे कुटिया के चारों ओर पैर पटकने और शोर मचाने लगे, और शोर-शराबा करते हुए तरह-तरह की शरारतें करने लगे। 129 वे कहने लगे: “भगवान के चरणों की ये मुंडे हुए तपस्वी, दास, सांवली संतानें अपने दास भक्तों द्वारा आदरणीय, पूजनीय, सम्मानित और सम्मानित हैं।” 130

तब पूज्य महाकच्चना अपनी कुटिया से बाहर आए और उन ब्राह्मण युवकों से कहा: “शोर मत करो, बालकों। मैं तुम्हें धर्म (मार्ग, नियम) के बारे में बताऊंगा।” यह सुनकर वे युवक चुप हो गए। तब पूज्य महाकच्चना ने उन युवकों को श्लोकों से संबोधित करते हुए कहा:

“प्राचीन काल के वे पुरुष जो सद्गुणों में श्रेष्ठ थे।
वे ब्राह्मण जिन्होंने प्राचीन नियमों का स्मरण किया।
उनके इंद्रिय द्वार सुरक्षित और संरक्षित थे। उन्होंने
भीतर के क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली थी।

वे धम्म और ध्यान में आनंदित रहते थे।
वे ब्राह्मण जिन्होंने प्राचीन नियमों का स्मरण किया।
परन्तु ये लोग ‘हम पाठ करते हैं’ का दावा करते हुए पतित हो गए हैं।
कुल के अहंकार से व्याकुल होकर अधार्मिक जीवन जी रहे हैं।

क्रोध से अभिभूत होकर विभिन्न शस्त्रों से सुसज्जित होकर
वे दुर्बल और दृढ़ दोनों का उत्पीड़न करते हैं।”
"जिसके इंद्रिय द्वार असुरक्षित हों
, उसके द्वारा लिए गए सभी व्रत व्यर्थ हैं,
ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति स्वप्न में धन प्राप्त करता है: [118]

उपवास और जमीन पर सोना।
भोर में स्नान करना, तीनों वेदों का अध्ययन,
खुरदरी खाल, उलझे बाल और मैल; भजन, नियम और व्रत, तपस्या।
पाखंड, झुकी हुई लाठी, स्नान;

ये ब्राह्मणों के प्रतीक हैं; इनका उपयोग वे अपने सांसारिक लाभ को बढ़ाने के लिए करते हैं। 132
"एक मन जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था में अच्छी तरह से स्थिर हो; निर्मल और दोषरहित।
सभी सजीव प्राणियों के प्रति कोमल; "यही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) को प्राप्त करने का मार्ग है।"

तब वे ब्राह्मण युवक क्रोधित और असंतुष्ट होकर ब्राह्मण लोहिच्च के पास गए और उनसे कहा, "देखिए, महोदय, आपको यह जानना चाहिए कि तपस्वी महाकच्चन ब्राह्मणों के भजनों का घोर अपमान और तिरस्कार करते हैं।"

यह सुनकर ब्राह्मण लोहिच्च क्रोधित और असंतुष्ट हुए। लेकिन फिर उनके मन में विचार आया: "केवल इन युवकों से सुनी बातों के आधार पर तपस्वी महाकच्चन को अपशब्द कहना उचित नहीं है। मुझे उनसे जाकर पूछताछ करनी चाहिए।"

तब ब्राह्मण लोहिच्चा, उन ब्राह्मण युवकों के साथ, पूज्य महाकच्चना के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकच्चना को प्रणाम किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “गुरु कच्चना, क्या मेरे कुछ शिष्य ब्राह्मण युवक लकड़ियाँ इकट्ठा करते हुए इधर आए थे?”

“जी हाँ, ब्राह्मण।”

“क्या गुरु कच्चना ने उनसे कोई बातचीत की?”

“हाँ, मैंने उनसे बातचीत की।”

“गुरु कच्चना, आपने उनसे किस प्रकार की बातचीत की?”

“उन युवकों से मेरी बातचीत इस प्रकार हुई:

‘प्राचीन काल के वे पुरुष जो शील में श्रेष्ठ थे।
वे ब्राह्मण जो प्राचीन नियमों का स्मरण करते थे, ...
(पहले जैसा ही) ...
सभी प्राणियों के प्रति कोमल; यही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) को प्राप्त करने का मार्ग है। ’

उन युवकों से मेरी ऐसी ही बातचीत हुई।”

गुरु कच्चना ने कहा, ‘इंद्रियों को खुला छोड़कर।’ किस प्रकार से, गुरु कच्चाना, क्या कोई 'इंद्रियों के द्वार असुरक्षित' होता है? "

यहाँ, हे ब्राह्मण, किसी रूप को आँख से देखकर, कोई व्यक्ति मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। 133 वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति को, जैसा वह वास्तव में है, नहीं समझता, जिसमें वे दुष्ट हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से ध्वनि सुनकर... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, कोई व्यक्ति मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय मानसिक घटना से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना रहता है... बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। हे ब्राह्मण, इसी प्रकार कोई व्यक्ति 'इंद्रियों के द्वार असुरक्षित' होता है।" "

यह अद्भुत है, गुरु कच्चाना! यह आश्चर्यजनक है।" गुरु कच्चाना! गुरु कच्चाना ने तो ऐसे व्यक्ति को 'इंद्रियों से असुरक्षित' घोषित कर दिया है जिसके इंद्रिय द्वार वास्तव में असुरक्षित हैं! लेकिन गुरु कच्चाना ने तो 'इंद्रियों से सुरक्षित' भी कहा था। किस अर्थ में, गुरु कच्चाना, 'इंद्रियों से सुरक्षित' कोई व्यक्ति होता है?

हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति किसी रूप को आँख से देखता है, तो वह न तो किसी मनभावन रूप पर मोहित होता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विचलित होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है, और वह मन की उस मुक्ति को, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति को, जैसा वह वास्तव में है, समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से कोई ध्वनि सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो किसी मनभावन मानसिक घटना पर मोहित होता है और न ही किसी अप्रिय मानसिक घटना से विचलित होता है। वह शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है... बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। हे ब्राह्मण, इसी प्रकार व्यक्ति 'इंद्रियों के द्वारों को सुरक्षित' रखता है।

यह अद्भुत है। गुरु कच्चाना! यह आश्चर्यजनक है। गुरु कच्चाना! गुरु कच्चाना ने कैसे कहा है कि जिसके इंद्रियों के द्वार वास्तव में सुरक्षित हैं, वह 'इंद्रियों के द्वारों को सुरक्षित' रखने वाला है! महान, गुरु कच्चाना! महान, गुरु कच्चाना! धम्म को मास्टर कच्चना ने

अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है... (जैसा कि 127 में है)... आज से मास्टर कच्चना मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।

"मास्टर कच्चना लोहिच्च परिवार के पास उसी प्रकार जाएँ जैसे वे मकरकाटा में गृहस्थ अनुयायियों के परिवारों के पास जाते हैं। वहाँ के ब्राह्मण युवक और युवतियाँ मास्टर कच्चना को प्रणाम करेंगे, उनके सम्मान में खड़े होंगे, उन्हें आसन और जल अर्पित करेंगे, और इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

---

133. वेराहाकानी

एक बार पूज्य उदय्य ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में कमंडा में रह रहे थे। तभी वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के शिष्य एक ब्राह्मण युवक ने पूज्य उदय्य के पास आकर उन्हें प्रणाम किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और पूज्य उदय्य ने उसे धर्मोपदेश देकर प्रेरित किया और प्रसन्न किया। धर्मोपदेश से प्रेरित और प्रसन्न होकर वह ब्राह्मण युवक अपनी सीट से उठा, वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के पास गया और उनसे कहा, "देखिए, महोदया, आपको यह जानना चाहिए कि तपस्वी उदय्य एक ऐसे धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पूर्ण और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करते हैं।"

"तो फिर, हे युवक, मेरी ओर से तपस्वी उदयी को कल के भोजन के लिए आमंत्रित कर।"

"जी महोदया," युवक ने उत्तर दिया। फिर वह पूज्य उदयी के पास गया और उनसे कहा: "कृपा करके गुरु उदयी से निवेदन करें कि वे हमारे आदरणीय गुरु, वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के हाथों से कल का भोजन ग्रहण करें।"

पूज्य उदयी ने मौन रहकर सहमति दे दी। फिर, जब रात्रि बीत गई, तो सुबह पूज्य उदयी ने वस्त्र धारण किए, अपना कुंड और बाहरी वस्त्र लिया और वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला के निवास पर गए। वहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। फिर, ब्राह्मण महिला ने अपने हाथों से पूज्य उदयी को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसे और उन्हें तृप्त किया। जब पूज्य उदयी ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कुंड रख दिया, तब ब्राह्मण महिला ने अपनी पांव पहनीं, एक ऊंचे आसन पर बैठ गईं, अपना सिर ढँक लिया और उनसे कहा:
"हे तपस्वी, धम्म का प्रचार कीजिए।" "बहन, ऐसा करने का अवसर आएगा," कहकर वे अपने आसन से उठे और चले गए। 136

दूसरी बार वह ब्राह्मण युवक पूज्य उदयि के पास आया... (ऊपर से नीचे तक): ... "देखिए, महोदया, आपको यह जानना चाहिए कि तपस्वी उदयि एक ऐसे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में अच्छा, मध्य में अच्छा और अंत में अच्छा है, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) प्रकट करते हैं जो पूर्णतः संपूर्ण और शुद्ध है।"

"इस तरह, युवक, तुम तपस्वी उदयि की प्रशंसा करते रहते हो, लेकिन जब मैंने उनसे कहा, 'प्रवचन का प्रचार करो, तपस्वी,' तो उन्होंने कहा, 'बहन, ऐसा करने का अवसर आएगा,' और वे अपने आसन से उठे और चले गए।"

"महोदया, ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि आपने अपने पदचिह्न पहने, एक ऊंचे आसन पर बैठीं, अपना सिर ढँका और उनसे कहा: 'प्रवचन का प्रचार करो, तपस्वी।' क्योंकि ये पूज्य धम्म का आदर और सम्मान करते हैं।"

"तो फिर, हे युवक, कल के भोजन के लिए मेरी ओर से तपस्वी उदय को आमंत्रित कर देना।"

"जी महोदया," उन्होंने उत्तर दिया। फिर वे पूज्य उदयि के पास गए... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब पूज्य उदयि ने भोजन समाप्त कर लिया और अपना कटोरा रख दिया, तो ब्राह्मण महिला ने अपनी चप्पलें उतार दीं, एक नीची चौकी पर बैठ गईं, अपना सिर ढकने से मुक्त किया और उनसे कहा: "पूज्यवर, अरहंतों के अनुसार सुख और दुःख के लिए क्या आवश्यक है? और अरहंतों के अनुसार सुख और दुःख के अभाव के लिए क्या आवश्यक है?"

"बहन, अरहंतों का मानना है कि जब आँख होती है तो सुख और दुःख होते हैं, और जब आँख नहीं होती तो सुख और दुःख नहीं होते। अरहंतों का मानना है कि जब कान होते हैं तो सुख और दुःख होते हैं, और जब कान नहीं होते तो सुख और दुःख नहीं होते... अरहंतों का मानना है कि जब मन होता है तो सुख और दुःख होते हैं, और जब मन नहीं होता तो सुख और दुःख नहीं होते।"

यह सुनकर वेराहच्चानी वंश की ब्राह्मण महिला ने पूज्य उदयि से कहा: "महान, पूज्यवर! महान, पूज्यवर! गुरु उदयि ने अनेक विधियों से धम्म को स्पष्ट किया है... (जैसा कि 127 में है)... आज से गुरु उदयि मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

(iv) तीसरा भाग - देवदहा खंड

134. देवदहा में 137

एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शाक्यों का एक नगर था जिसका नाम देवदहा था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह नहीं कहता कि उन्हें अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) के संबंध में सजगता (अप्पमदा) का कार्य करना है, न ही मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह कहता हूँ कि उन्हें छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में सजगता (फस्सा/स्पर्श) का कार्य नहीं करना है।

मैं उन भिक्षुओं के बारे में भी नहीं कहता जो अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो गए हैं, कि उन्हें अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में सजगता (फस्सा/स्पर्श) का कार्य करना है। ऐसा क्यों है?" उन्होंने अपना काम सतर्कता से किया है; वे आलसी (इन पमादा) होने में असमर्थ हैं।

लेकिन मैं उन भिक्षुओं के बारे में कहता हूँ जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से पूर्ण मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं, कि उन्हें अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के प्रति सजग रहने का कार्य करना है। ऐसा क्यों है? भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले कुछ रूप सुखद होते हैं और कुछ अप्रिय। [हमें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए कि] ये बार-बार अनुभव होने पर भी मन को ग्रस्त न करें। जब मन ग्रस्त नहीं होता, तो अथक ऊर्जा (वीर्य) जागृत होती है, ध्यान की निर्मल अवस्था स्थापित होती है, शरीर शांत और निर्मल हो जाता है, मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में एकाग्र हो जाता है। सजगता के इस फल को देखकर, भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि उन भिक्षुओं को अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के प्रति सजग रहने का कार्य करना है

। भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) जो सुखद और अप्रिय दोनों हैं। [हमें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए कि] ये बार-बार अनुभव होने पर भी मन को परेशान न करें। जब मन इनसे मुक्त होता है, तो अथक ऊर्जा जागृत होती है, ध्यान की अवस्था निर्मल हो जाती है, शरीर शांत और तनावमुक्त हो जाता है, मन समाधि की अवस्था में एकाग्र हो जाता है। हे भिक्षुओं, इस जागरूकता के फल को देखकर मैं कहता हूँ कि उन भिक्षुओं को अभी भी छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में जागरूकता पर काम करना बाकी है।

---

135. अवसर (खाना सं. क्षण)

भिक्षुओं, यह आपके लिए एक बड़ा लाभ है, यह आपके लिए उत्तम लाभ है कि आपको ब्रह्मचर्य जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने भिक्षुओं, 'इंद्रियों का वस्तुओं से संपर्क' नामक छह प्रकार की इंद्रियों के नरक को देखा है। (च-फस-आयतनिका) 138 वहाँ आँख से देखा गया कोई भी रूप अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं। कान से सुनी गई कोई भी ध्वनि... नाक से सूंघी गई कोई भी गंध... जीभ से चखा गया कोई भी स्वाद... शरीर से स्पर्श की गई कोई भी वस्तु... मन से अनुभव की गई कोई भी मानसिक घटना अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं।

भिक्षुओं, यह आपके लिए एक बड़ा लाभ है, यह आपके लिए उत्तम लाभ है कि आपको ब्रह्मचर्य जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने भिक्षुओं, उस स्वर्ग को देखा है जिसे 'छह प्रकार की इंद्रिय क्रिया' कहा जाता है। (च-फस-आयतनिका) 139 वहाँ आँखों से देखा गया कोई भी रूप वांछनीय है, कभी अवांछनीय नहीं; सुंदर है, कभी अप्रिय नहीं; सुखद है, कभी अप्रिय नहीं। कानों से सुनी गई कोई भी ध्वनि... नाक से सूंघी गई कोई भी गंध... जीभ से चखा गया कोई भी स्वाद... शरीर से स्पर्श किया गया कोई भी अनुभव... मन से जाना गया कोई भी मानसिक अनुभव वांछनीय है, कभी अवांछनीय नहीं; सुंदर है, कभी अप्रिय नहीं; सुखद है, कभी अप्रिय नहीं।

"यह आपके लिए लाभ है, भिक्षुओं, यह आपके लिए अच्छा लाभ है कि आपको ब्रह्मचर्य जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ है।"

---

136. फॉर्म्स1 में प्रसन्नता (रूपरमा)
भिक्षु, देव और मनुष्य रूपों में आनंदित होते हैं, रूपों में प्रसन्न होते हैं, रूपों में आनंद लेते हैं। रूपों के परिवर्तन, लुप्त होने और निरोध के साथ, देव और मनुष्य दुख में निवास करते हैं। देव और मनुष्य ध्वनियों में आनंदित होते हैं... गंधों में आनंदित होते हैं... स्वादों में आनंदित होते हैं... स्पर्शनीय वस्तुओं में आनंदित होते हैं... मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंदित होते हैं, मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंद लेते हैं, मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंद लेते हैं। मानसिक घटनाओं (धम्म) के परिवर्तन, लुप्त होने और लुप्त होने के साथ, देव और मनुष्य दुख में निवास करते हैं।

लेकिन, भिक्षुओं, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, रूपों के मामले में उत्पत्ति और लुप्त होने, सांसारिक आनंद (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के तरीके को यथावत समझ चुके हैं। वे रूपों में आनंदित नहीं होते, रूपों में आनंद नहीं लेते, रूपों में आनंद नहीं लेते। रूपों के परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति के साथ तथागत आनंदपूर्वक निवास करते हैं।

"उन्होंने ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्शनीय वस्तुओं और मानसिक घटनाओं (धम्म) के मामले में उत्पत्ति और क्षय, सांसारिक सुख, खतरे और बचाव को यथार्थ रूप में समझ लिया है। वे मानसिक घटनाओं (धम्म) में आनंद नहीं लेते, मानसिक घटनाओं (धम्म) में प्रसन्न नहीं होते, मानसिक घटनाओं (धम्म) में प्रसन्न नहीं होते। मानसिक घटनाओं (धम्म) के परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति के साथ तथागत आनंदपूर्वक निवास करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर,
सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा: 141

"रूप, ध्वनियाँ, गंध, स्वाद,
स्पर्शनीय वस्तुएँ और मन के सभी विषय
वांछनीय, प्यारे और सुखद हैं।
जब तक यह कहा जाता है: 'वे हैं।'

इन्हें सुख माना जाता है।
संसार और उसके देवताओं द्वारा;
लेकिन जहाँ ये समाप्त होते हैं,
वहाँ वे दुख मानते हैं।

"महान लोगों ने
शरीर-सत्ता (सक्कय) के समाप्त होने को सुख माना है।
स्पष्ट दृष्टि रखने वालों का यह दृष्टिकोण
समस्त संसार के विपरीत है। 142

"जिसे दूसरे सुख कहते हैं,
उसे महान लोग दुख कहते हैं;
जिसे दूसरे दुख कहते हैं,
उसे महान लोग सुख मानते हैं।

"देखो, यह धर्म (मार्ग, नियम) समझना कठिन है:
यहाँ नासमझ लोग भ्रमित हो जाते हैं।
अवरुद्ध मन वालों के लिए यह अस्पष्ट है।
जो नहीं देखते, उनके लिए घोर अंधकार है।

"परन्तु अच्छे लोगों के लिए यह प्रकट होता है।
जो देखते हैं, उनके लिए यह प्रकाश है।
धर्म में अकुशल मंदबुद्धि लोग
इसकी उपस्थिति में भी इसे नहीं समझते।

"यह धर्म
उन लोगों द्वारा आसानी से नहीं समझा जा सकता जो अस्तित्व के लिए राग से ग्रस्त हैं,
जो अस्तित्व की धारा में बहते रहते हैं।
शैतान के दायरे में गहराई से डूबे हुए।

"कुलीनों के सिवा और कौन
इस अवस्था को समझ सकता है?
जब वे इस अवस्था को सही ढंग से जान लेते हैं, तो
दोषमुक्त लोग पूरी तरह से तृप्त हो जाते हैं।" 143

---

137. रूपों में आनंद (2) (रूपराम)
(यह सूत्र पहले वाले सूत्र के समान है, लेकिन इसमें श्लोक नहीं हैं।)

---

138. तुम्हारा नहीं (l) 144 (नटुमहाका1)
भिक्षुओं, जो कुछ तुम्हारा नहीं है, उसका त्याग करो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो तुम्हें सुख और सुख प्राप्त होगा। और वह क्या है, भिक्षुओं, जो तुम्हारा नहीं है? आँख तुम्हारी नहीं है: उसका त्याग करो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो तुम्हें सुख और सुख प्राप्त होगा। कान तुम्हारा नहीं है... मन तुम्हारा नहीं है: उसका त्याग करो। जब तुम उसका त्याग कर दोगे, तो तुम्हें सुख और सुख प्राप्त होगा।

मान लो, भिक्षुओं, लोग इस जेतवन (जेतवन) में घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ ले जाएँ, या उन्हें जला दें, या उनके साथ जैसा चाहें वैसा करें। क्या तुम सोचोगे: 'लोग हमें ले जा रहे हैं, या जला रहे हैं, या हमारे साथ जैसा चाहें वैसा कर रहे हैं'?

नहीं, पूज्यवर। क्यों? क्योंकि, पूज्यवरवर, वह न तो हमारा स्वरूप है और न ही हमारे स्वरूप से संबंधित है।

उसी प्रकार, भिक्षुओं, आँख तुम्हारी नहीं है... कान... मन तुम्हारा नहीं है... जब तुम इसे त्याग दोगे, तभी तुम्हारा कल्याण और सुख होगा।"

---

139. तुम्हारा नहीं (2) (नटुमहाका2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, लेकिन इसे छह बाह्य इंद्रियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।)

---

140. आंतरिक कारण सहित अनित्य (अज्जतनिच्चहेतु)
भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है। 145 आँख की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब आँख क्षणभंगुर से उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है?

कान क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है। मन की उत्पत्ति का कारण भी क्षणभंगुर है। जब मन क्षणभंगुर से उत्पन्न हुआ है, तो वह स्थायी कैसे हो सकता है?

इस प्रकार देखकर, भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख और मन के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करके वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के माध्यम से उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है:
'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

141. आंतरिक कारणों से होने वाला कष्ट (अज्जतदुक्खेतु)
"भिक्षुओं, आँख दुःख है। आँख की उत्पत्ति का कारण भी दुःख है। चूँकि आँख दुःख से उत्पन्न हुई है, तो वह सुख कैसे हो सकती है?

"कान दुःखी है.... मन दुःखी है। मन की उत्पत्ति का कारण भी दुःख है। चूँकि मन दुःख से उत्पन्न हुआ है, तो वह सुख कैसे हो सकता है?

"ऐसा देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

142. कारण सहित अनात्म (आंतरिक) (अज्झट्टनत्तहेतु)
"भिक्षुओं, आँख अनात्म है। आँख की उत्पत्ति का कारण भी अनात्म है। चूँकि आँख अनात्म से उत्पन्न हुई है, तो वह आत्मा कैसे हो सकती है?

"कान अनात्म है..(इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन).. मन अनात्म है। मन की उत्पत्ति का कारण [131] भी अनात्म है। क्योंकि मन की उत्पत्ति उससे हुई है जो खुद नहीं है, तो वह खुद कैसे हो सकता है?

"ऐसा देखकर... वह समझता है: '... इस होने की स्थिति के लिए और कुछ नहीं है।'"

143-145. कारण, वगैरह के साथ नश्वर (बाहरी) (बहिरा..)
(ये तीन सुत्त 140-142 जैसे ही हैं, लेकिन छह बाहरी इंद्रियों यानी रूप, आवाज़, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के ज़रिए बताए गए हैं।)

(v) भाग 3. तीसरा पचास - नया और पुराना (नवपुराणवग्गो)
146. कर्म-निरोध के बिना कम्म समाप्ति (कम्मानिरोध)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें नए और पुराने कर्म, कर्मों के निवारण (निरोध) और कर्मों के निवारण के मार्ग के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा...

और भिक्षुओं, पुराना कर्म क्या है? आँख पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और नियंत्रित (संक्षिप्त) माना जाता है, जिसे महसूस किया जा सकता है। 146 कान पुराना कर्म है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए भी)। मन पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और नियंत्रित माना जाता है, जिसे महसूस किया जा सकता है। इसे पुराना कर्म कहते हैं।"

"भिक्षुओं, नया कर्म क्या है? शरीर, वाणी या मन से जो भी कर्म किया जाता है

, वही नया कर्म कहलाता है। भिक्षुओं, कर्म का निवारण क्या है? जब शारीरिक, वाणी और मानसिक क्रियाओं के निवारण से मुक्ति प्राप्त होती है, तो यही कर्म का निवारण कहलाता है।

भिक्षुओं, कर्म निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था।

इस प्रकार, भिक्षुओं, मैंने पुराने कर्म, नए कर्म, कर्म निवारण और कर्म निवारण के मार्ग का उपदेश दिया है।" भिक्षुओं, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा और कल्याण की इच्छा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, भिक्षुओं, ये खाली कुटियाएँ हैं। ध्यान करो, भिक्षुओं, आलस्य मत करो, अन्यथा तुम्हें बाद में पछतावा होगा। यही हमारा तुम्हें उपदेश है।

147. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (1) (अनिच्चनिब्बनसप्पया)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग सिखाऊंगा। 147 ध्यान से सुनो....

"और हे भिक्षुओं, निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग क्या है? यहाँ, एक भिक्षु (ध्यान में, विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) आँख को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) रूपों को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) नेत्र-चेतना को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में, पस्सति) नेत्र-संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य देखता है, चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो या न सुखदायक हो।"

वह (ध्यान में, पस्सति) कान को अनित्य देखता है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)... वह (ध्यान में) मन को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) मानसिक घटनाओं (धम्म) को अनित्य देखता है, वह (ध्यान में) मन-चेतना को अनित्य देखता है, वह

(ध्यान में) मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) को अनित्य देखता है, वह मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य देखता है, चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो।

"यही निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग है।"

148-149. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (2-3)
(पिछली सूत्र के समान, जिसमें "अस्थायी" के स्थान पर "पीड़ा" और "अनात्म" प्रतिस्थापित किया गया है।) [135]

---

150. निर्वाण प्राप्त करने के लिए उपयुक्त (4) (निब्बानसप्पयपतिपाद)
"भिक्षुओं, मैं आपको निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, आँख स्थायी है या अस्थायी?"... (सभी अनुच्छेद 32 के अनुसार)...

"इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

"भिक्षुओं, यही निर्वाण प्राप्त करने का उपयुक्त मार्ग है।"

---

151. एक विद्यार्थी (अन्तीवासिका)
भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन बिना शिष्यों और बिना गुरु के व्यतीत किया जाता है। 148 जिस भिक्षु के शिष्य और गुरु होते हैं, वह सुख में नहीं, बल्कि कष्ट में रहता है। जिस भिक्षु के शिष्य और गुरु नहीं होते, वह सुख में रहता है।

और हे भिक्षुओं, जिस भिक्षु के शिष्य और गुरु होते हैं, वह सुख में क्यों नहीं, कष्ट में क्यों रहता है? हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी आकृति को अपनी आँखों से देखता है, तो उसके भीतर बंधनों से संबंधित दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं। 149 वे उसके भीतर निवास करती हैं। क्योंकि वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ उसके भीतर निवास करती हैं, इसलिए उसे 'शिष्यों वाला' कहा जाता है। वे उस पर आक्रमण करती हैं। क्योंकि वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ उस पर आक्रमण करती हैं, इसलिए उसे 'गुरु वाला' कहा जाता है।

"इसके अलावा, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है... मन से किसी मानसिक घटना को समझता है... तो उसे 'गुरु प्राप्त करने वाला' कहा जाता है।

" "इसी प्रकार

, शिष्यों और गुरुओं वाला भिक्षु सुख में नहीं, बल्कि कष्ट में रहता है।" "और हे भिक्षुओं, बिना शिष्यों और बिना गुरुओं वाला भिक्षु सुख में कैसे रह सकता है? हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु आँख से कोई रूप देखता है, तो उसमें बंधनों से जुड़ी बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ, स्मृतियाँ और अभिलाषाएँ उत्पन्न नहीं होतीं। वे उसके भीतर निवास नहीं करतीं। क्योंकि वे बुरी (अकुशल) अवस्थाएँ उसके भीतर निवास नहीं करतीं, इसलिए उसे 'शिष्यों रहित' कहा जाता है।"

"इसके अलावा, जब कोई भिक्षु कान से कोई ध्वनि सुनता है..." (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)। मन से किसी मानसिक घटना को जानने वाला व्यक्ति 'बिना गुरु वाला' कहलाता है।

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार बिना शिष्यों और बिना गुरु वाले भिक्षु सुख और आराम से रहते हैं।

हे भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन बिना शिष्यों और बिना गुरु के व्यतीत किया जाता है। शिष्यों और गुरु वाले भिक्षु सुख में नहीं, बल्कि कष्ट में रहते हैं। बिना शिष्यों और बिना गुरु वाले भिक्षु सुख और आराम से रहते हैं।"

---

152. ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य क्या है? (किमत्तीयब्रह्मचर्य)
भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें, 'हे मित्रों, गौतम तपस्वी के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?' तो आपको उन्हें यह उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, दुख को पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य

जीवन व्यतीत किया जाता है।' हे भिक्षुओं, यदि वे तपस्वी आपसे पूछें, 'हे मित्रों, वह कौन सा दुख है जिसे पूर्णतः समझने के लिए गौतम तपस्वी के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है?' तो आपको उन्हें यह उत्तर देना चाहिए:

'हे मित्रों, आँख दुख है; इसे पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। रूप दुख हैं; इन्हें पूर्णतः समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।' नेत्र-चेतना कष्टदायी है... नेत्र-संपर्क (इंद्रियों का किसी वस्तु से स्पर्श) कष्टदायी है... नेत्र-संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) - चाहे सुखद हो, कष्टदायी हो या न कष्टदायी हो - वह भी कष्टदायी है: इसी को पूर्णतः समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। कान कष्टदायी है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन भी)। मन कष्टदायी है... मन-संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) कष्टदायी है... वह भी कष्टदायी है: इसी को पूर्णतः समझने के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है। हे मित्रों, यही वह कष्ट है जिसके पूर्ण ज्ञान के लिए भगवान (बुद्ध) के अधीन ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार पूछे जाने पर, आप अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर दें।"

---

153. क्या कोई विधि है? (अत्तिनुखोपरीयया)
"क्या कोई ऐसी व्याख्या विधि है, भिक्षुओं, जिसके द्वारा एक भिक्षु - आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार, और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे - इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा कर सके: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"एक ऐसी व्याख्या विधि है जिसके द्वारा भिक्षु - आस्था के बिना... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार किए बिना - इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा कर सकता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' और वह व्याख्या विधि क्या है? यहाँ, भिक्षु, किसी रूप को आँख से देखकर, यदि उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) है, तो भिक्षु समझता है: 'उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) है!'; या, यदि उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है, तो वह समझता है: 'उसमें कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है।'" 151 "चूंकि ऐसा है, तो क्या इन धर्मों (गुणों, नियमों) को आस्था से, या व्यक्तिगत पसंद से, या मौखिक परंपरा से, या तर्कपूर्ण चिंतन से, या किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से समझा जाना चाहिए?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"क्या इन धर्मों को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर नहीं समझा जाना चाहिए?"

"जी, पूज्यवर।"

"भिक्षुओं, यह व्याख्या की वह विधि है जिसके द्वारा एक भिक्षु अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार कर सकता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

"इसके अलावा, भिक्षुओं, कान से एक ध्वनि सुनकर..." किसी मानसिक घटना को मन से जानने के बाद, यदि भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) हो, तो भिक्षु समझता है:
'भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) है'; या, यदि भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है, तो वह समझता है: 'भीतर में कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) या मोह (मोह) नहीं है।' चूंकि ऐसा है, तो क्या इन धर्मों को आस्था से,

या व्यक्तिगत पसंद से, या मौखिक परंपरा से, या तर्कपूर्ण विचार से, या किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करके समझा जाना चाहिए?

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या इन धर्मों को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर ही नहीं समझा जा सकता?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"भिक्षुओं, यह व्याख्या की वह विधि है जिसके द्वारा एक भिक्षु - आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार, और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से विमुख होकर - इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा कर सकता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

154. इंद्रियों से सुसज्जित (इंद्रियसंपन्न)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'बुद्धि से सुसज्जित, बुद्धि से सुसज्जित।' 152 हे पूज्यवर, बुद्धि से सुसज्जित व्यक्ति किस प्रकार होता है?"

"हे भिक्षु, यदि कोई नेत्र इंद्रिय के उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यान लगाते हुए (अनुपस्सी) नेत्र इंद्रिय के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है; यदि कोई श्रवण इंद्रिय के उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यान लगाते हुए (उदय-व्य) कान इंद्रिय के प्रति घृणा का अनुभव करता है; ... यदि कोई मन इंद्रिय के उत्थान और पतन (उदय-व्य) पर ध्यान लगाते हुए (उदय-व्य) मन इंद्रिय के प्रति घृणा का अनुभव करता है, तो घृणा का अनुभव करते हुए व्यक्ति वैराग्यवान हो जाता है... जब [मन] मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।'" इससे यह समझ में आता है: 'पुनर्जन्म का देहांत हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और उद्देश्य नहीं है।' हे भिक्षु, इसी प्रकार मनुष्य को विवेक प्राप्त होता है।

---

155. धम्मकथिकपुच्छ पर एक वक्ता (धम्मकथिकपुच्छ)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) पर बोलने वाला, धर्म पर बोलने वाला।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई व्यक्ति धर्म पर बोलने वाला होता है?" 153

"भिक्षु, यदि कोई आँख के प्रति घृणा (निबिद्ध) उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के लिए धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई आँख के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के लिए अभ्यास करता है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि आँख के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

"भिक्षु, यदि कोई कान के प्रति घृणा (निबिद्ध) उत्पन्न करने, मन के प्रति घृणा (निबिद्ध) उत्पन्न करने, उसके क्षीण होने और निरोध के लिए धम्म का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का उपदेशक भिक्षु कहा जा सकता है।" जो धम्म पर प्रवचन देते हैं। यदि कोई मन से घृणा उत्पन्न करने, उसे नष्ट करने और समाप्त करने के उद्देश्य से अभ्यास कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि मन से घृणा उत्पन्न करने, उसे नष्ट करने और समाप्त करने के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

(i) प्रभाग 4. चौथा पचास - आनंद खंड का विनाश (नंदिक्खायवग्गो सं. नंदी\आनंद-क्षय-वर्ग)

156. आनंद का विनाश (1) (अज्जतानंदिक्खया)
भिक्षुओं, ध्यान में भिक्षु उस आँख को क्षणभंगुर देखता है जो वास्तव में क्षणभंगुर है: यही उसका सही दृष्टिकोण है। 154 सही ढंग से देखने पर, वह घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। आनंद (नंदी/आनंद) के नाश (खया/क्षय) से काम (राग) का नाश होता है; काम (खया/क्षय) के नाश से आनंद का नाश होता है। आनंद और काम (खया/क्षय) के नाश होने पर मन पूर्णतः मुक्त (विमुक्त) हो जाता है।

भिक्षुओं, ध्यान में भिक्षु उस कान को क्षणभंगुर देखता है जो वास्तव में क्षणभंगुर है... उस मन को जो वास्तव में क्षणभंगुर है: यही उसका सही दृष्टिकोण है। ... आनंद (नंदी/आनंद) और काम (खया/क्षय) के नाश (खया/क्षय) होने पर मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

---

157. प्रसन्नता का नाश (2)
(बाह्य इंद्रियों के लिए भी यही बात लागू होती है।)

---

158. आनंद का विनाश (3) (अज्जत्तानिकानन्दिक्खया)
भिक्षुओं, ध्यानपूर्वक आँख पर ध्यान दो। आँख की अनित्यता को पहचानो। जब कोई भिक्षु ध्यानपूर्वक आँख पर ध्यान देते हुए आँख की अनित्यता को पहचान लेता है, तो उसे आँख के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। आनंद के विनाश से राग का विनाश होता है; और आनंद के विनाश से आनंद का विनाश होता है। आनंद और कामवासना के विनाश से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है। भिक्षुओं

, ध्यानपूर्वक कान पर ध्यान दो... मन पर ध्यान दो। मन की अनित्यता (अनिच्चा) को उसके वास्तविक स्वरूप में पहचानो... आनंद और कामवासना के नाश (क्षय/क्षय) से मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

---

159. प्रसन्नता का नाश (4)
(बाह्य इंद्रियों के लिए भी यही बात लागू होती है।)

---

160. जीवक का आम का बाग (1) (जीवकम्बवनसमाधि1)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में जीवक के आम के बाग (जीवक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 156
"भिक्षुओं, समाधि अवस्था विकसित करो। जब कोई भिक्षु समाधि अवस्था में होता है, तो वस्तुएँ उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट हो जाती हैं। और क्या उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होता है? आँख उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होती है - अनित्य रूप में। रूप उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होते हैं - अनित्य रूप में। नेत्र-चेतना... नेत्र-संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श)... नेत्र-संपर्क के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे वह सुखद हो, पीड़ादायक हो या न पीड़ादायक हो, न सुखदायक हो - वह उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होती है - अनित्य रूप में।

कान उसके सामने यथार्थ रूप में प्रकट होता है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन के लिए)। मन उसे उसके वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो जाता है... मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) उसे उसके वास्तविक स्वरूप में, अनित्य रूप में प्रकट हो जाती है।

"भिक्षुओं, समाधि अवस्था का विकास करो। जब कोई भिक्षु समाधि अवस्था में होता है, तो
उसे सब कुछ उसके वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो जाता है।"

---

161. जीवक का आम का बाग (2) (जीवकंबवनसमाधि2)
एक बार भगवान (बुद्ध) जीवक के आम के बाग (जीवक-अंबावन) में राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,
"भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। जब कोई भिक्षु एकांतवास में होता है, तो उसे सब कुछ अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो जाता है। और उसे क्या अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होता है?"

(यह सब पिछले सूत्र 161 के अनुसार है।)

---

162. कोत्थिता (1)
तब पूज्य महाकोत्थिता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे कहा: 158 "पूज्यवर, यह अच्छा होगा यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत में, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

कोत्थिता, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है; उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो। रूप क्षणभंगुर हैं... नेत्र-चेतना क्षणभंगुर है... आँख का संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) क्षणभंगुर है... आँख के संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है; उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो।

कान क्षणभंगुर है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन भी क्षणभंगुर हैं)। मन क्षणभंगुर है... मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है; उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो।

कोत्थिता, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग कर दो।

---

163 (8) कोत्थिता (2)
"कोत्थिता, तुम्हें कष्टदायी हर चीज की इच्छा का त्याग करना चाहिए।"
... (पिछली सूत्र के अनुसार पूर्ण।)

---

164. कोत्थिता (3)
"कोत्थिता, तुम्हें अनात्म से संबंधित किसी भी चीज की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।"

---

165. गलत दृष्टिकोण का त्याग (मिच्छदित्थिपहना)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, गलत दृष्टि को त्यागने के लिए कैसे जानना और देखना चाहिए?" 159

"भिक्षु, जब कोई ध्यान में आँख को अनित्य जानता और देखता है, तो गलत दृष्टि का त्याग हो जाता है। जब कोई ध्यान में रूपों को अनित्य जानता और देखता है... आँख की चेतना को अनित्य... आँख के संपर्क को अनित्य... मन के संपर्क से उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) को अनित्य मानता है... तो गलत दृष्टि का त्याग हो जाता है। जब कोई इस प्रकार ध्यान में जानता और देखता है, तभी गलत दृष्टि का त्याग होता है।"

---

166. शरीर-पहचान-दृष्टिकोण का परित्याग
... "आदरणीय महोदय, ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) शरीर-सन्दूक का त्याग कैसे किया जाए?"

"भिक्षु, जब ध्यान में आँख को अनित्य मान लिया जाता है, तो शरीर-सन्दूक का त्याग हो जाता है।"... (ऊपर दिए गए कथन को पूरा करें।)

---

167. स्वयं के दृष्टिकोण का परित्याग
... "आदरणीय महोदय, आत्म-दर्शन का त्याग कैसे किया जाए, कैसे जाना जाए?"

"भिक्षु (साधु), जब ध्यान में (विपश्यना ध्यान के संदर्भ में) आँख को अनित्य मानकर उसका ज्ञान और दृष्टि समाप्त हो जाती है, तब आत्म-दर्शन का त्याग हो जाता है।"... (ऊपर दिए गए कथन को पूरा करें।)

(ii) भाग 4. चौथा पचास - साठ गुना पुनरावृति श्रृंखला 160 (सत्थिपेय्यलावग्गो)
168. अनित्य (आंतरिक) के लिए इच्छा (अज्जतनिच्चचंदा)
भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है; इसके प्रति भी इच्छा का त्याग करो। भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करो।

---

169. क्षणभंगुर (आंतरिक) के प्रति वासना (अज्जतनिच्चरगा)
भिक्षुओं, जो भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति कामवासना (राग) का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है; इसके प्रति कामवासना का त्याग करो। भिक्षुओं, जो भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति कामवासना का त्याग करो।

---

170. अनित्य (आंतरिक) के लिए इच्छा(चंद) और वासना(राग)

भिक्षुओं, तुम जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? आँख क्षणभंगुर है... मन क्षणभंगुर है; तुम इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो। भिक्षुओं, तुम जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करो।

171-173 दुख की इच्छा (आंतरिक), आदि (दुक्खचंदादि)
भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। और कष्ट क्या है? आँख कष्टदायी है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श और मन भी)... मन कष्टदायी है; आपको इसके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए।

174-176. अनात्म (आंतरिक) की इच्छा, इत्यादि (अनत्तचंदादि)
भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। ... आपको अनात्म के प्रति राग का त्याग करना चाहिए। ... आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए। और अनात्म क्या है? आँख अनात्म है... मन अनात्म है; आपको इसके प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए।

177-179. अनित्य (बाह्य) के प्रति इच्छा, इत्यादि (बहिरनिच्चचंदादि)
भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा का त्याग करो... जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति राग का त्याग करो... जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा और राग दोनों का त्याग करो। और क्षणभंगुर क्या है? रूप क्षणभंगुर हैं... मानसिक घटनाएँ क्षणभंगुर हैं; उनके प्रति इच्छा और राग दोनों का त्याग करो। भिक्षुओं, जो कुछ भी क्षणभंगुर है, उसके प्रति इच्छा और राग दोनों का त्याग करो।

180-182. कष्ट की इच्छा (बाह्य), आदि (बहिरदुक्खाचांदडी)
भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए... आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। और कष्ट क्या है? रूप कष्टदायी हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) कष्टदायी हैं; आपको उनके प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको कष्टदायी हर चीज के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना चाहिए।

183-185 अनात्म (बाह्य) आदि की इच्छा (बहिरनत्तचंदादि)
भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा का त्याग करना चाहिए... आपको अनात्म के प्रति राग का त्याग करना चाहिए... आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए। और अनात्म क्या है? रूप अनात्म हैं... मानसिक घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं; आपको उनके प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए। भिक्षुओं, आपको अनात्म के प्रति इच्छा (चंद) और काम (राग) का त्याग करना चाहिए।

---

186. अतीत अनित्य (आंतरिक) (अज्जततितितिनिच्चा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन क्षणभंगुर था। ऐसा देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य आँख (जैसा कि ऊपर बताया गया है) और मन के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'

---

187. भविष्य अनित्य (आंतरिक) (अज्जत्तनगतनिच्चा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... भविष्य का मन क्षणभंगुर है। ऐसा देखकर, ज्ञानी शिष्य आँख (जैसा कि ऊपर बताया गया है) और मन के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। वह समझता है: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

188. वर्तमान क्षणिक (आंतरिक) (अज्जतपच्चुप्पननिच्चा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... वर्तमान मन क्षणभंगुर है। ऐसा देखकर, ज्ञानी शिष्य को आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... मन के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। वह समझता है: '... इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'

189-191. अतीत, आदि, आंतरिक पीड़ा के रूप में (अज्जततीतदिदुक्खा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन दुख भोग रहा है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

192-194. अतीत, इत्यादि, अनात्म (आंतरिक) के रूप में (अज्जततततितदियनत्ता)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन, अनात्म है। इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

195-197. अतीत, इत्यादि, अनित्य (बाह्य) के रूप में (बहिरतिताडियानिक्का)
भिक्षुओं, उनके रूप (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित)... अतीत, भविष्य और वर्तमान के मानसिक घटनाक्रम (धर्म) क्षणभंगुर हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

198-200. अतीत, इत्यादि, पीड़ा (बाहिरतीतदिदुक्खा) के रूप में
भिक्षुओं के लिए, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के सभी रूप (श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श) दुखदायी हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: इस अवस्था में और कुछ नहीं रह सकता।

201-203. अतीत, इत्यादि, अनात्म (बाह्य) के रूप में (बहिरतीतदियनत्ता)
भिक्षुओं के लिए, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल के सभी रूप (श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श) अनात्म हैं। इस प्रकार देखकर वे समझते हैं: "इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।"

---

204. अतीत की कौन सी चीज़ अनित्य है (आंतरिक) (अज्जततीतयदानिका)
भिक्षुओं, आँख... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन क्षणभंगुर था। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

205. भविष्य का क्या अस्थाई है (आंतरिक) (अज्जत्तनगतयादानिका)
भिक्षुओं, आँख... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... भविष्य का मन क्षणभंगुर होगा। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

206. वर्तमान (आंतरिक) में क्या क्षणभंगुर है (अज्जतपच्चुप्पन्नयदानिक्का)
भिक्षुओं, आँख... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... वर्तमान मन क्षणभंगुर है। जो क्षणभंगुर है वह दुख है। जो दुख है वह अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

207-209. अतीत का दुख क्या है, इत्यादि (आंतरिक) (अज्जत्ततितदीयम्दुक्खा)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन दुखदायी है। दुखदायी का अर्थ अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

210-212. अतीत का अनात्म क्या है, इत्यादि (आंतरिक) (अज्जत्ततितदियादनत्ता)
भिक्षुओं, आँख (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... अतीत का मन... भविष्य का मन... वर्तमान का मन, अनात्म है। जो अनात्म है, उसे सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

213-215. अतीत की अनित्यता, इत्यादि (बाह्य) (बहिरतीतदियादानिका)

भिक्षुओं, रूपों (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) और भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल की मानसिक घटनाओं (धम्म) का अस्तित्व क्षणिक है। क्षणिक दुख है। दुख अनात्म है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखकर वह समझता है:
'इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'

216-218. अतीत का दुख क्या है, इत्यादि (बाहिरातीतदियमदुक्खा)
भिक्षुओं, रूप (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित)... अतीत, भविष्य और वर्तमान के मानसिक अनुभव (धम्म) दुखदायी हैं। दुखदायी का अर्थ है अनात्म। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखने पर वे समझते हैं: 'इस अवस्था का कोई और अर्थ नहीं है।'

219-221. अतीत का अनात्म क्या है, इत्यादि (बाह्य) (बहिरतीतदियादनत्ता)
भिक्षुओं, रूपों (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श सहित) और भूतकाल, भविष्य और वर्तमान के मानसिक अनुभवों (धम्म) में अनात्म निहित है। अनात्म को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए, अर्थात्: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' इस प्रकार देखने पर वे समझते हैं:
'इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

222. इंद्रिय शक्तियाँ अनित्य (आंतरिक) हैं (अज्जतयातनानिच्च)
भिक्षुओं, आँख क्षणभंगुर है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन भी क्षणभंगुर हैं)। मन भी क्षणभंगुर है। ऐसा देखकर वे समझते हैं:
'इस अवस्था का कोई और अस्तित्व नहीं है।'

---

223. इंद्रिय-संबंधी पीड़ा (अज्जतयातनदुक्खा)
"भिक्षुओं, आँख पीड़ित है... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन भी पीड़ित हैं)... मन पीड़ित है। ऐसा देखकर... वे समझते हैं:
'...इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'"

---

224. इंद्रिय शक्तियाँ अनात्म (आंतरिक) के रूप में (अज्जत्तयातनाअनत्ता)
भिक्षुओं, आँख अनात्म है (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन)... मन अनात्म है। इस प्रकार देखकर... वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

---

225. इन्द्रिय संकाय अनित्य (बाह्य) के रूप में
भिक्षुओं, शरीर क्षणभंगुर हैं (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श भी क्षणभंगुर हैं)। मानसिक घटनाएँ (धर्म) भी क्षणभंगुर हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

226. इंद्रिय-शारीरिक पीड़ा (बाहिरयातनदुक्खा) के रूप में
भिक्षुओं, शरीर दुखदायी हैं (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श भी)... मानसिक घटनाएँ (धर्म) दुखदायी हैं। ऐसा देखकर वे समझते हैं: 'इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

---

227. द सेंस फैकल्टीज़ एज़ नॉनसेल्फ (बाह्य)
भिक्षुओं, रूप अनात्म हैं (श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श भी)... मानसिक घटनाएँ (धर्म) अनात्म हैं। इस प्रकार देखकर... वे समझते हैं: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'

(iii) प्रभाग 4. चौथा पचास - महासागर (समुद्दवग्गो सं. समुद्र-वर्ग)
228. महासागर (1) (समुद्दा1 सं. समुद्र)
भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति 'सागर, सागर' की बात करता है। परन्तु वह सागर, श्रेष्ठ साधु के अनुशासन में, केवल जल का एक विशाल पिंड, जल का एक विशाल विस्तार है। भिक्षुओं

, आँख मनुष्य के लिए सागर है; इसकी धारा रूपों से बनी होती है। 161 जो उस रूपों से बनी धारा का सामना कर लेता है, वह लहरों, भंवरों, शार्क और राक्षसों से भरे आँख के सागर को पार कर लेता है। 162 पार करके, परे जाकर, ब्राह्मण उच्च स्थान पर खड़ा होता है।

भिक्षुओं, कान मनुष्य के लिए सागर है। . . . मन मनुष्य के लिए सागर है; इसकी धारा मानसिक घटनाओं (धम्म) से बनी होती है। जो उस मानसिक घटनाओं (धम्म) से बनी धारा का सामना कर लेता है, वह लहरों, भंवरों, शार्क और राक्षसों से भरे मन के सागर को पार कर लेता है। पार करके, परे जाकर, ब्राह्मण उच्च स्थान पर खड़ा होता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। इसके बाद सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"जिसने इस कठिन सागर को पार कर लिया है,
जिसमें शार्क, राक्षस और लहरों जैसे खतरे हैं,
ज्ञान के उस स्वामी ने, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है,
संसार के अंत तक पहुँचकर, उसे ही पार किया हुआ कहा जाता है।"

---

229. महासागर (2) (समुद्दा2 सं. समुद्र)
भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति 'सागर, सागर' की बात करता है। परन्तु वह सागर, हे भगवान के अनुशासन में वर्णित सागर नहीं है; वह तो केवल जल का एक विशाल पिंड है। हे

भिक्षुओं, यहाँ ऐसी आकृतियाँ हैं जिन्हें आँखों से देखा जा सकता है, जो मनभावन, सुंदर, सुखद, आकर्षक, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक हैं। हे भगवान के अनुशासन में इसे सागर कहा जाता है। यहाँ यह संसार अपने देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, यह पीढ़ी अपने तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, अपने देवों और मनुष्यों के साथ, अधिकतर डूबी हुई है, उलझी हुई त्वचा के समान, गुंथे हुए धागे के गोले के समान, उलझे हुए सरकंडों और घास के समान हो गई है, और दुख के तल, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक, संसार से आगे नहीं बढ़ सकती।

"कानों द्वारा पहचानी जा सकने वाली ध्वनियाँ हैं... मन द्वारा पहचानी जा सकने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, कामुक रूप से लुभाने वाली और मोहक हैं। यहाँ यह संसार अपने देवों (देवदूतों), मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूतों) के साथ, यह पीढ़ी अपने तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, अपने देवों और मनुष्यों के साथ, अधिकांशतः डूबी हुई है, उलझे हुए धागे के गुच्छे की तरह, उलझी हुई सरकंडों और झाड़ियों की तरह हो गई है, और दुख के तल, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक, संसार से आगे नहीं बढ़ सकती। 164

"जिसने कामवासना (राग) और घृणा (दोष/द्वेष) को दूर कर दिया है; अज्ञान (अविज्जा संस्कृत. अविद्या) के साथ;
उसने इस कठिन सागर को पार कर लिया है; जिसमें शार्क, राक्षस और लहरों का खतरा है।"

"बंधन दूर करने वाला, मृत्यु का त्याग करने वाला, बिना किसी प्राप्ति (उपाधि) के, जिसने
पुनर्जन्म के कारण न होने वाले दुखों का त्याग कर दिया है। वह
इस दुनिया से चला गया है, उसकी कोई माप नहीं है; मैं कहता हूँ,
उसने मृत्यु के राजा को भी चकित कर दिया है।"

---

230. मछुआरे की उपमा (बालिसिकोपामा)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक मछुआरा गहरे पानी में चारा लगा हुआ कांटा डालता है और भोजन की तलाश में कोई मछली उसे निगल लेती है। जिस मछली ने मछुआरे का कांटा निगला है, उस पर विपत्ति और विपत्ति आएगी और मछुआरा उसके साथ जो चाहे कर सकता है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, संसार में प्राणियों पर विपत्ति लाने और उनका वध करने के लिए ये छह कांटे मौजूद हैं।

भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले ऐसे रूप हैं जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रियों को लुभाने वाले और मोहक हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद की तलाश करता है, उनका स्वागत करता है और उनसे जुड़ा रहता है, तो उसे शैतान का कांटा निगलने वाला भिक्षु कहा जाता है। उस पर विपत्ति और विपत्ति आएगी और शैतान उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

भिक्षुओं, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ (इसी प्रकार गंध, स्वाद और स्पर्श) होती हैं... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाएँ (धम्म) होती हैं जो आकर्षक और मोहक होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद लेता है, तो शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूप होते हैं जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और मोहक होते हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता, उनका स्वागत नहीं करता और उनसे जुड़ा नहीं रहता, तो वह ऐसा भिक्षु कहलाता है जिसने मार के फंदे को नहीं निगला, जिसने फंदे को तोड़ दिया, उसे नष्ट कर दिया। उस पर कोई विपत्ति या विपत्ति नहीं आई है, और शैतान उसके साथ जैसा चाहे वैसा नहीं कर सकता।

"हे भिक्षुओं, कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिन्हें कान से सुना जा सकता है... कुछ ऐसी मानसिक घटनाएँ (धम्म) हैं जिन्हें मन द्वारा अनुभव किया जा सकता है और जो वांछनीय... लुभावनी होती हैं। यदि कोई भिक्षु उनमें आनंद नहीं लेता... तो शैतान उसके साथ अपनी इच्छा के अनुसार नहीं कर सकता।"

---

231. दुग्ध-रस वृक्ष (खिररुक्खोपमा सं. क्षीर-वृक्ष-उपमा)
भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के संबंध में, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी में कामवासना (राग) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, यदि घृणा (दोष/द्वेष) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, यदि मोह (मोह) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, तो आँखों की पहुँच में आने वाले तुच्छ रूप भी मन को व्याकुल कर देते हैं, प्रमुख रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, घृणा (दोष/द्वेष) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, मोह (मोह) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के संबंध में भी यही बात लागू होती है (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श के लिए भी)। मन द्वारा बोधगम्य मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में भी यही बात लागू होती है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक दूध-रस का वृक्ष था - एक असत्था या एक बरगद या एक पिलक्खा या उदुंबरा - ताजा, युवा, कोमल। यदि कोई इसे तेज कुल्हाड़ी से जगह-जगह से तोड़ दे, तो क्या इसमें से रस निकलेगा? "

जी जी, पूज्यवर। इसका कारण क्या है? क्योंकि इसमें रस होता है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के संबंध में... यहाँ तक कि आँखों की पहुँच में आने वाले तुच्छ रूप भी मन को आसक्त कर लेते हैं, प्रमुख रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना (राग) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, घृणा (दोष/द्वेष) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है, मोह (मोह) अभी भी विद्यमान है और उसका त्याग नहीं हुआ है। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के संबंध में भी यही बात लागू होती है (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श के लिए)... मन द्वारा अनुभव की जाने वाली मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए भी।"

भिक्षुओं, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के विषय में, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी में कामवासना (राग) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, यदि घृणा (दोष/द्वेष) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, यदि मोह (मोह) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, तो आँखों के दायरे में आने वाले प्रमुख रूप भी मन को आकर्षित नहीं करते, तुच्छ रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना (राग) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, घृणा (दोष/द्वेष) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो, मोह (मोह) न हो और उसका त्याग कर दिया गया हो। यही बात कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के विषय में भी लागू होती है... मन से सुनाई देने वाली मानसिक घटनाओं (धम्म) के विषय में भी।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक दूध देने वाला वृक्ष - असत्थ, बरगद, पिलक्खा या उदुम्बर - सूख गया हो, मुरझा गया हो, अपनी आयु खो चुका हो। "यदि कोई व्यक्ति इसे तेज कुल्हाड़ी से जगह-जगह से तोड़ दे, तो क्या इसमें से रस निकलेगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। इसका कारण क्या है? क्योंकि इसमें रस नहीं है।"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, आँखों से दिखाई देने वाले रूपों के विषय में... यहाँ तक कि आँखों की पहुँच में आने वाले प्रमुख रूप भी मन को आकर्षित नहीं करते, तुच्छ रूपों की तो बात ही क्या। इसका कारण क्या है? क्योंकि कामवासना (राग) का अस्तित्व नहीं है और उसका त्याग कर दिया गया है, घृणा (दोष/द्वेष) का अस्तित्व नहीं है और उसका त्याग कर दिया गया है, मोह (मोह) का अस्तित्व नहीं है और उसका त्याग कर दिया गया है। यही बात कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों के विषय में भी लागू होती है... (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श आदि के लिए)... मन द्वारा अनुभव किए जाने वाले मानसिक बोध (धम्म) के लिए भी।

---

232. कोत्थिका
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे मित्र सारिपुत्त, क्या आँख रूपों का बंधन है या रूप आँख का बंधन हैं? क्या कान ध्वनियों का बंधन है या ध्वनियाँ कानों का बंधन हैं?... क्या मन मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है या मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं?”

"मित्र कोत्थिता, आँख न तो रूपों का बंधन है और न ही रूप आँख का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं। कान न तो ध्वनियों का बंधन है और न ही ध्वनियाँ कान का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं। मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।

"मान लो, मित्र, एक काले बैल और एक सफेद बैल को एक ही जुए से जोत दिया जाए। क्या यह कहना सही होगा कि 'काला बैल सफेद बैल का बंधन है; सफेद बैल काले बैल का बंधन है'?"

"नहीं, मित्र।" "काला बैल सफेद बैल का बंधन नहीं है और न ही सफेद बैल काले बैल का बंधन है, बल्कि वह एकमात्र लगाम या जुआ है जिससे दोनों एक साथ जुड़े हुए हैं: वही बंधन है।" "

इसी प्रकार, मित्र, आँख रूपों का बंधन नहीं है... न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) जो दोनों पर निर्भर होकर वहाँ उत्पन्न होती हैं: वही बंधन है।"

"यदि हे मित्र, आँख रूपों का बंधन होती या रूप आँख का बंधन होते, तो ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) के लिए उपयुक्त नहीं होता। 168 परन्तु क्योंकि आँख न तो रूपों का बंधन है और न ही रूप आँख का बंधन हैं, बल्कि उन पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही वहाँ बंधन हैं, इसलिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश के लिए उपयुक्त है।"

"यदि हे मित्र, कान ध्वनियों का बंधन होता या ध्वनियाँ कानों का बंधन होतीं (इसी प्रकार गंध, स्वाद, स्पर्श के लिए)... यदि मन मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन होता या मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन होतीं, तो ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश के लिए उपयुक्त नहीं होता। परन्तु क्योंकि मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि इन दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं, इसलिए ब्रह्मचर्य जीवन का यह मार्ग दुखों के पूर्ण नाश के लिए उपयुक्त है।

" "इस प्रकार भी, हे मित्र, यह समझा जा सकता है कि ऐसा क्यों है: भगवान (बुद्ध) में आँख विद्यमान है, भगवान (बुद्ध) आँख से रूप देखते हैं, फिर भी कोई इच्छा (चंद) नहीं होती और..." भगवान (बुद्ध) में राग (काम) विद्यमान हैं; भगवान (बुद्ध) मन से पूर्णतः मुक्त हैं। भगवान (बुद्ध) में कान विद्यमान हैं, वे कानों से ध्वनि सुनते हैं... भगवान (बुद्ध) में नाक विद्यमान हैं, वे नाक से गंध सूंघते हैं... भगवान (बुद्ध) में जीभ विद्यमान हैं, वे जीभ से स्वाद का अनुभव करते हैं... भगवान (बुद्ध) में शरीर विद्यमान है, वे शरीर से स्पर्शित वस्तुओं का अनुभव करते हैं... भगवान (बुद्ध) में मन विद्यमान है, वे मन से मानसिक घटना का संज्ञान करते हैं, फिर भी भगवान (बुद्ध) में इच्छा (चंद) और राग (काम) नहीं है; भगवान (बुद्ध) मन से पूर्णतः मुक्त हैं।

"इस प्रकार, मित्र, यह समझा जा सकता है कि आँख न तो रूपों की बंधन है और न ही रूप आँख के बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं; कान न तो ध्वनियों के बंधन हैं और न ही ध्वनियाँ कान के बंधन हैं; मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन के बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।"

(पृष्ठ 343 भी देखें)

233. कामाभू

एक बार पूज्य आनंद और पूज्य कामभू कोसंबी में स्थित घोषिता उद्यान में रह रहे थे। शाम को पूज्य कामभू एकांतवास से बाहर आए और पूज्य आनंद के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य आनंद का अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे मित्र आनंद, क्या आँख रूपों का बंधन है या रूप आँख का बंधन हैं?... क्या मन मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है या मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं?”

"मित्र कामभू, आँख न तो रूपों का बंधन है और न ही रूप आँख का बंधन हैं... मन न तो मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन है और न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।

"मान लो, मित्र, एक काले बैल और एक सफेद बैल को एक ही जुए से जोत दिया जाए। क्या यह कहना सही होगा कि 'काला बैल सफेद बैल का बंधन है; सफेद बैल काले बैल का बंधन है'?" "

नहीं, मित्र। काला बैल सफेद बैल का बंधन नहीं है और न ही सफेद बैल काले बैल का बंधन है, बल्कि वह एक ही जुए से बंधन है जिससे दोनों को जोता गया है।"

"इसी प्रकार, मित्र, आँख रूपों का बंधन नहीं है..." न ही मानसिक घटनाएँ (धम्म) मन की बेड़ियाँ हैं, बल्कि इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) जो इन दोनों पर निर्भर होकर मन में उत्पन्न होती हैं, वही वहाँ की बेड़ियाँ हैं।

---

234. उदयी

एक बार पूज्य आनंद और पूज्य उदयि, घोसीता उद्यान के कोसंबी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य उदयि एकांतवास से बाहर आए और पूज्य आनंद के पास पहुंचे। उन्होंने पूज्य आनंद का अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने अनेक प्रकार से इस शरीर के स्वरूप को इस प्रकार घोषित, प्रकट और स्पष्ट किया है:

‘इसी कारण यह शरीर अनात्म है।’ क्या इस चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के स्वरूप को भी इसी प्रकार समझाया जा सकता है — इसे इस प्रकार सिखाना, घोषित करना, स्थापित करना, प्रकट करना, विश्लेषण करना और स्पष्ट करना: ‘इसी कारण यह चेतना अनात्म है’?”

“हाँ, मित्र उदयि, यह संभव है। क्या नेत्र-चेतना आँख और रूपों पर निर्भर नहीं होती?”

“जी, मित्र।”

“यदि नेत्र-चेतना के उत्पन्न होने का कारण पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाए, तो क्या नेत्र-चेतना को पहचाना जा सकता है?”

“नहीं, मित्र।”

“इस प्रकार, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित, प्रकट और स्पष्ट किया है: ‘इसी कारण यह चेतना अनात्म है।’

क्या कान-चेतना कान और ध्वनियों पर निर्भर नहीं होती?... क्या मन-चेतना मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भर नहीं होती?” “

हाँ, मित्र।”

“यदि मन-चेतना के उत्पन्न होने का कारण पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाए, तो क्या मन-चेतना को पहचाना जा सकता है?”

“नहीं, मित्र।”

"इस प्रकार भी, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित, प्रकट और स्पष्ट किया है: 'इसी कारण यह चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) अनात्म है।'

"मान लो, मित्र, एक व्यक्ति को लकड़ी की आवश्यकता है, वह लकड़ी की तलाश में भटक रहा है, और वह एक तेज कुल्हाड़ी लेकर जंगल में प्रवेश करता है। 169 वहाँ उसे एक बड़े केले के पेड़ का तना दिखाई देता है, सीधा, ताजा, बिना किसी फल-कली के। वह उसे जड़ से काट देता है, ऊपरी भाग को अलग कर देता है, और कुंडल को खोलता है। कुंडल को खोलते ही उसे नरम लकड़ी भी नहीं मिलती, लकड़ी तो दूर की बात है।

"इसी प्रकार, एक भिक्षु इन छह इंद्रियों में संपर्क (फस/स्पर्श) के लिए न तो स्वयं को और न ही स्वयं से संबंधित किसी चीज को पहचानता है। चूंकि वह इस प्रकार किसी चीज को नहीं पहचानता, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता। आसक्त न होने (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के कारण वह विचलित नहीं होता। विचलित न होने के कारण वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है।" वह समझता है: "पुनर्जन्म का देहांत हो चुका है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

---

235. जलने पर व्याख्या (अदित्तप्रियाया सं. आदित्य-परियया)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें अग्नि विषय पर धर्म की व्याख्या दूंगा। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, अग्नि विषय पर धर्म की व्याख्या क्या है? भिक्षुओं, आँखों से देखने पर निमित्त भाव को चेहरे के माध्यम से समझने की अपेक्षा, जलती हुई, धधकती और चमकती हुई लाल गर्म लोहे की सुई से आँख का छिन्न-भिन्न होना बेहतर होगा। 170 क्योंकि यदि चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) से बंधी रहे, चाहे वह निमित्त भाव में हो, और उस समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि वह दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ।

भिक्षुओं, जलती हुई, धधकती और चमकती हुई नुकीली लोहे की छड़ से कान की इंद्रिय का छिल जाना, कान से पहचानी जा सकने वाली ध्वनि में चेहरे के माध्यम से निमित्त चिन्ह को समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना निमित्त चिन्ह या चेहरे में सांसारिक भोग से बंधी रहे, और उस समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ।

भिक्षुओं, जलती हुई, धधकती और चमकती हुई नुकीली कील से नाक की इंद्रिय का छिल जाना, नाक से पहचानी जा सकने वाली गंध में चेहरे के माध्यम से निमित्त चिन्ह को समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना सांसारिक सुखों से बंधी रहे (निमित्त भाव से), और यदि उसी समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखते हुए ही मैं ऐसा कह रहा हूँ।

भिक्षुओं, जीभ की इंद्रिय का जलते, धधकते और चमकते तेज धारदार यंत्र से छिल जाना, जीभ से अनुभव किए जा सकने वाले स्वाद में निमित्त चिन्ह को चेहरे के भावों से समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना निमित्त चिन्ह या चेहरे के भावों में सांसारिक भोग से बंधी रहे और उस समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ।

भिक्षुओं, शरीर की इंद्रिय का जलते, धधकते और चमकते तेज भाले से छिल जाना, शरीर से अनुभव किए जा सकने वाले स्पर्शनीय वस्तु में निमित्त चिन्ह को चेहरे के भावों से समझने से कहीं बेहतर होगा। क्योंकि यदि चेतना सांसारिक सुखों से बंधी रहे (निमित्त भाव से), और यदि उसी समय मृत्यु हो जाए, तो संभव है कि व्यक्ति दो स्थानों में से किसी एक में जाए: नरक या पशुलोक। इस खतरे को देखते हुए ही मैं ऐसा कह रहा हूँ।

"भिक्षुओं, सोना बेहतर होगा - क्योंकि मैं कहता हूँ कि नींद जीवितों के लिए बांझ, निष्फल और अचेतन है - बजाय ऐसे विचारों के जो उनके वश में आए व्यक्ति को संघ में फूट डालने के लिए प्रेरित करें। इस खतरे को देखकर मैं ऐसा कहता हूँ। 171

"इस विषय में, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य सोचता है: 'आँखों को जलती, धधकती और चमकती लाल लोहे की सुई से चीरना छोड़ दो। मुझे केवल इस पर ध्यान देना चाहिए: इसलिए आँख क्षणभंगुर है, रूप क्षणभंगुर हैं, आँख-चेतना क्षणभंगुर है, आँख-संपर्क (वस्तु से इंद्रिय का

स्पर्श) क्षणभंगुर है, आँख-संपर्क (स्पर्श) के कारण जो भी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है - चाहे सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखद - वह भी क्षणभंगुर है।

"तेज, धधकती और चमकती लोहे की नुकीली छड़ी से कान को चीरना बंद करो। मेरा ध्यान केवल इस बात पर रहे: इसलिए कान क्षणभंगुर है, ध्वनियाँ क्षणभंगुर हैं, कान की चेतना क्षणभंगुर है, कान का स्पर्श क्षणभंगुर है, कान के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।

" "तेज, धधकती और चमकती नाखून काटने वाली नुकीली वस्तु से नाक को चीरना बंद करो। मेरा ध्यान केवल इस बात पर रहे: इसलिए नाक क्षणभंगुर है, गंध क्षणभंगुर हैं, नाक की चेतना क्षणभंगुर है, नाक का स्पर्श क्षणभंगुर है, नाक के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।"

"तेज धार वाले तेज रेजर से जीभ को चीरना बंद करो, जो जलता, धधकता और चमकता रहता है। मुझे केवल इस बात पर ध्यान देना चाहिए: इसलिए जीभ क्षणभंगुर है, स्वाद क्षणभंगुर हैं, जीभ की चेतना क्षणभंगुर है, जीभ का स्पर्श क्षणभंगुर है, जीभ के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।

" "तेज धार वाले तेज भाले से शरीर को चीरना बंद करो, जो जलता, धधकता और चमकता रहता है। मुझे केवल इस बात पर ध्यान देना चाहिए: इसलिए शरीर क्षणभंगुर है, स्पर्शनीय वस्तुएं क्षणभंगुर हैं, शरीर की चेतना क्षणभंगुर है, शरीर का स्पर्श क्षणभंगुर है, शरीर के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।"

"'सोना छोड़ो। मुझे केवल इस बात पर ध्यान देना है: इसलिए मन क्षणभंगुर है, मानसिक घटनाएँ (धम्म) क्षणभंगुर हैं, मन-चेतना क्षणभंगुर है, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न होने वाली कोई भी संवेदना (वेदना) क्षणभंगुर है... वह भी क्षणभंगुर है।'

इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को आँख, रूप, आँख-चेतना, आँख-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और आँख-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है—चाहे वह सुखद हो, दुखदायी हो या न दुखदायी हो... मन, मानसिक घटनाओं (धम्म), मन-चेतना, मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और मन-संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न होने वाली किसी भी संवेदना (वेदना) के प्रति भी घृणा (निब्बिदा) होती है... घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है।

वैराग्य के माध्यम से [उसका मन] मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। जब वह मुक्त हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझते हैं:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है।'

"यही, भिक्षुओं, अग्नि विषय पर धम्म की व्याख्या है।"

---

236. हाथों और पैरों की उपमा (1) (हत्थपादोपमा1 संस्कृत: हस्त-पाद-उपमा)
भिक्षुओं, जब हाथ होते हैं, तो उठाना और रखना समझ में आता है। जब पैर होते हैं, तो आना-जाना समझ में आता है। जब अंग होते हैं, तो झुकना और फैलाना समझ में आता है। जब पेट होता है, तो भूख और प्यास समझ में आती है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो नेत्र संपर्क (इंद्रिय का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। 172 जब कान होते हैं, तो कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं। जब मन होता है, तो मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

"हे भिक्षुओं, जब हाथ नहीं होते, तो उठाना और रखना समझ में नहीं आता। जब पैर नहीं होते, तो आना-जाना समझ में नहीं आता। जब अंग नहीं होते, तो झुकना और सीधा होना समझ में नहीं आता। जब पेट नहीं होता, तो भूख और प्यास समझ में नहीं आती।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब आंखें नहीं होतीं, तो नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख-दुख उत्पन्न नहीं होते। जब कान नहीं होते, तो कान संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख-दुख उत्पन्न नहीं होते। जब मन नहीं होता, तो मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण आंतरिक रूप से सुख-दुख उत्पन्न नहीं होते।"

---

237. हाथों और पैरों की उपमा (2) (हत्थपादोपमा2 संस्कृत. हस्त-पाद-उपमा)
भिक्षुओं, जब हाथ होते हैं, तो उठाना और रखना होता है...

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब आँख होती है, तो सुख और दुःख आंतरिक रूप से दृष्टि संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) के कारण उत्पन्न होते हैं... जब मन होता है, तो सुख और दुःख आंतरिक रूप से मन संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, जब हाथ नहीं होते, तो उठाना और रखना नहीं होता...

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब आँख नहीं होती... मन नहीं होता, तो सुख और दुःख आंतरिक रूप से मन संपर्क (स्पर्श) के कारण उत्पन्न नहीं होते।

(iv) भाग 4. चौथा पचास - सांप (असिविसावग्गो)
238. असिविसोपमा (सांपों की उपमा)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि चार भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले सांप हैं। 173 फिर एक व्यक्ति आता है जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और कष्टों से विमुख है। वे उससे कहते हैं: 'हे प्रभु, ये चारों सांप भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले हैं। समय-समय पर इन्हें उठाना चाहिए; समय-समय पर इन्हें स्नान कराना चाहिए; समय-समय पर इन्हें भोजन कराना चाहिए; समय-समय पर इन्हें विश्राम देना चाहिए। 174 परन्तु यदि इनमें से कोई भी सांप तुम पर क्रोधित हो जाए, तो हे प्रभु, तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी या तुम्हें घातक कष्ट सहना पड़ेगा। जो भी करना हो, करो, हे प्रभु!'

तब, भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सांपों से भयभीत होकर वह व्यक्ति इधर-उधर भाग जाता। वे उससे कहते: 'हे प्रभु, पाँच खूंखार शत्रु तुम्हारा पीछा कर रहे हैं, यह सोचकर कि "जहाँ भी हम उसे देखेंगे, वहीं उसकी जान ले लेंगे।" हे स्वामी, जो भी करना पड़े, करो!'

"तब, हे भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सर्पों और पाँच हत्यारे शत्रुओं से भयभीत होकर वह व्यक्ति इधर-उधर भाग जाता। वे उससे कहते:
'हे स्वामी, छठा हत्यारा, तुम्हारा घनिष्ठ साथी, 175 तलवार लिए तुम्हारा पीछा कर रहा है, यह सोचकर कि 'जहाँ भी उसे देखूँगा, वहीं उसका सिर काट दूँगा।' हे स्वामी, जो भी करना पड़े, करो!' "

तब, हे भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सर्पों और पाँच हत्यारे शत्रुओं और छठे हत्यारे, तलवार लिए घनिष्ठ साथी से भयभीत होकर वह व्यक्ति इधर-उधर भाग जाता। उसे एक खाली गाँव दिखाई देता। वह जिस भी घर में प्रवेश करता, वह खाली, वीरान, निर्जन होता। वह जिस भी बर्तन को पकड़ता, वह खाली, खोखला, निर्जन होता। वे उससे कहते: 'हे स्वामी, अभी गाँव पर हमला करने वाले डाकू 176 इस खाली गाँव पर धावा बोलेंगे। हे स्वामी, जो भी करना पड़े, करो!'

"तब, हे भिक्षुओं, भयंकर ज्वाला और घातक विष वाले चार सर्पों, पाँच हत्यारे शत्रुओं, छठे हत्यारे - तलवार लिए हुए घनिष्ठ साथी - और गाँव पर हमला करने वाले डाकुओं से भयभीत होकर, वह व्यक्ति एक या दूसरी दिशा में भाग जाता। वह जल का एक विशाल विस्तार देखता जिसका निकटवर्ती किनारा खतरनाक और भयभीत करने वाला था, और जिसका दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और खतरे से मुक्त था, परन्तु निकटवर्ती किनारे से दूरवर्ती किनारे तक पार करने के लिए कोई नौका या पुल नहीं होता। 177

"तब वह व्यक्ति सोचता: यह जल का एक विशाल विस्तार है जिसका निकटवर्ती किनारा खतरनाक और भयभीत करने वाला है, और जिसका दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और खतरे से मुक्त है, परन्तु पार करने के लिए कोई नौका या पुल नहीं है। मैं घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ एकत्र करूँ और उन्हें एक बेड़ा बनाऊँ, ताकि उस बेड़े की सहायता से, अपने हाथों और पैरों से प्रयास करके, मैं सुरक्षित रूप से दूरवर्ती किनारे तक पहुँच सकूँ।"

"तब वह व्यक्ति घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ इकट्ठा करके उन्हें एक बेड़ा बनाता था, ताकि उस बेड़े की सहायता से, अपने हाथों और पैरों से प्रयास करके, वह सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच सके। पार करके, आगे बढ़कर, ब्राह्मण ऊँचे स्थान पर खड़ा होता है। 178

"मैंने यह उपमा, भिक्षुओं, एक अर्थ समझाने के लिए बनाई है। यहाँ इसका अर्थ यह है: 'भयंकर ऊष्मा और घातक विष वाले चार सर्प': यह चार महान तत्वों (धातु) का प्रतीक है - पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), वायु तत्व (धातु) ।" 179

"'पांच हत्यारे शत्रु': यह आसक्ति से ग्रस्त पांच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) का नामकरण है; अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त भौतिक रूप, आसक्ति से ग्रस्त वेदना, आसक्ति से ग्रस्त संज्ञान, आसक्ति से ग्रस्त संस्कार, आसक्ति से ग्रस्त विज्ञान और आसक्ति से ग्रस्त चेतना। 180

"'छठा हत्यारा, खींची हुई तलवार वाला घनिष्ठ साथी': यह आनंद और राग का नामकरण है। 181

"'खाली गाँव': यह छह आंतरिक इंद्रियों के लिए एक पदनाम है। भिक्षुओं, यदि कोई बुद्धिमान, सक्षम, समझदार व्यक्ति उन्हें आँख से देखे, तो वे खाली, खोखली, निर्जीव प्रतीत होती हैं। यदि वह उन्हें कान से... मन से देखे, तो वे खाली, खोखली, निर्जीव प्रतीत होती हैं।

'गाँव पर हमला करने वाले डाकू': यह छह बाहरी इंद्रियों के लिए एक पदनाम है। भिक्षुओं, आँख सुखद और अप्रिय रूपों से प्रभावित होती है। कान... नाक... जीभ... शरीर... मन सुखद और अप्रिय मानसिक घटनाओं (धम्म) से प्रभावित होता है।"

"जल का विशाल विस्तार": यह चार बाढ़ों का प्रतीक है: कामुकता की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़ (भावो), दृष्टियों की बाढ़ और अज्ञान की बाढ़ (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)।

"निकट तट, जो खतरनाक और भयभीत करने वाला है": यह शरीर-पहचान (सक्कया) का प्रतीक है। 182

"दूर तट, जो सुरक्षित और खतरे से मुक्त है": यह निर्वाण का प्रतीक है।

"नाव": यह आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है; अर्थात् सही दृष्टि (देखें SN5:8)... सही समाधि अवस्था।

"हाथों और पैरों से प्रयास करना": यह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करने का प्रतीक है।

"पार कर गया, आगे बढ़ गया, ब्राह्मण उच्च भूमि पर खड़ा है": यह अरहंत का प्रतीक है।"

---

239. रथ की उपमा (रथ-उपमा, संस्कृत: रथ-उपमा)
भिक्षुओं, तीन गुणों से युक्त होकर एक भिक्षु इसी जीवन में सुख और आनंद से परिपूर्ण रहता है, और वह विकारों के नाश (क्षय) की नींव रखता है। वे तीन गुण क्या हैं? वह है जो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, जो संयमित भोजन करता है, और जो सचेत रहता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु इंद्रियों के द्वारों की रक्षा कैसे करता है? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, एक भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझता। क्योंकि यदि वह आँख को अनियंत्रित छोड़ दे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह आँख को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, आँख की रक्षा करता है, आँख को नियंत्रित करता है। कान से कोई ध्वनि सुनकर... किसी गंध को नाक से सूंघकर... किसी स्वाद को जीभ से चखकर... किसी वस्तु को शरीर से स्पर्श करके... किसी मानसिक घटना को मन से जानकर भी भिक्षु उसके निमित्त और विशेषताओं को नहीं समझ पाता। क्योंकि यदि वह मन को अनियंत्रित छोड़ दे तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी हानिकारक अवस्थाएँ उस पर हावी हो सकती हैं, इसलिए वह मन को नियंत्रित करने का मार्ग अपनाता है, मन की रक्षा करता है, मन को संयमित करने का प्रयास करता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक चबूतरे पर, उत्तम नस्ल के घोड़ों से जुता हुआ रथ समतल भूमि पर तैयार खड़ा है, हाथ में अंकुश लिए हुए। तब एक कुशल प्रशिक्षक, घोड़ों को वश में करने वाला सारथी, उस पर सवार होगा और अपने बाएं हाथ में लगाम और दाएं हाथ में अंकुश लेकर, अपनी इच्छानुसार किसी भी मार्ग से, जब चाहे, रथ चलाएगा और लौट आएगा। ठीक इसी प्रकार, एक भिक्षु इन छह

इंद्रियों की रक्षा करने, उन्हें नियंत्रित करने, उन्हें वश में करने और उन्हें शांत करने का अभ्यास करता है। इस प्रकार, भिक्षु इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं।

"और, भिक्षु भोजन में संयमी कैसे होते हैं?" यहां, विवेकपूर्ण विचार करते हुए, भिक्षु न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए भोजन ग्रहण करता है, बल्कि केवल इस शरीर के भरण-पोषण, कष्टों को दूर करने और ब्रह्मचर्य जीवन में सहायता करने के लिए भोजन
ग्रहण करता है, यह सोचते हुए कि: 'इस प्रकार मैं पुरानी संवेदना (वेदना) को समाप्त कर दूंगा और नई संवेदना (वेदना) को उत्पन्न नहीं होने दूंगा, और मैं स्वस्थ और निर्दोष रहूंगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूंगा।' जिस प्रकार कोई व्यक्ति घाव भरने के लिए ही उस पर लेप लगाता है, या जिस प्रकार कोई भार ढोने के लिए ही धुरी पर तेल लगाता है, उसी प्रकार भिक्षु विवेकपूर्ण विचार करते हुए ब्रह्मचर्य जीवन में सहायता के लिए भोजन ग्रहण करता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु भोजन में संयम बरतता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु किस प्रकार जागृति के प्रति समर्पित होता है? यहाँ, दिन के दौरान, चलते-फिरते और बैठते हुए, एक भिक्षु अपने मन को अवरोधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के पहले पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को अवरोधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। रात्रि के मध्य पहर में, वह उठने के विचार को मन में धारण करने के बाद, एक पैर दूसरे पर रखकर, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए, सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट जाता है। उठने के बाद, रात्रि के अंतिम पहर में, चलते-फिरते और बैठते हुए, वह अपने मन को अवरोधक अवस्थाओं से शुद्ध करता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जागृति के प्रति समर्पित होता है।

हे भिक्षुओं, इन्हीं तीन गुणों के द्वारा एक भिक्षु इसी जीवन में सुख और आनंद से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, और वह मृत्यु के विनाश (खयाल/क्षय) की नींव रखता है। अपवित्रताएँ।"

---

240. कछुए की उपमा (कुम्मोपमा)
भिक्षुओं, अतीत में एक कछुआ 184 एक शाम नदी के किनारे भोजन की तलाश कर रहा था। उसी शाम एक सियार भी उसी नदी के किनारे भोजन की तलाश कर रहा था। जब कछुए ने दूर से सियार को भोजन की तलाश करते देखा, तो उसने अपने अंगों और गर्दन को अपने खोल के अंदर समेट लिया और चुपचाप बैठा रहा। 188 सियार ने

भी कछुए को दूर से भोजन की तलाश करते देखा था, इसलिए वह पास आया और पास में ही इंतजार करने लगा, यह सोचते हुए कि 'जब यह कछुआ अपने किसी अंग या गर्दन को बाहर निकालेगा, तो मैं उसे वहीं पकड़ लूंगा, बाहर खींच लूंगा और खा जाऊंगा।' लेकिन चूंकि कछुए ने अपने किसी भी अंग या गर्दन को बाहर नहीं निकाला, इसलिए सियार को उस तक पहुँचने का मौका नहीं मिला, तो उसने उसमें रुचि खो दी और चला गया।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, दुष्ट शैतान लगातार आपके आस-पास ही प्रतीक्षा कर रहा है, यह सोचकर कि 'शायद मैं आँख के माध्यम से या कान के माध्यम से ... या मन के माध्यम से उस तक पहुँच प्राप्त कर लूँगा।' अतः, भिक्षुओं, इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हुए निवास करो। किसी रूप को आँख से देखकर उसके निमित्त और गुणों को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम आँख को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं, इसलिए इसकी संयम विधि का अभ्यास करो, आँख की रक्षा करो, आँख को संयमित करो। कान से कोई ध्वनि सुनकर... नाक से कोई गंध सूंघकर... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करके... शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करके... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, उसके निमित्त और गुणों को मत पकड़ो। क्योंकि यदि तुम मन को असुरक्षित छोड़ दोगे, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ तुम पर हावी हो सकती हैं, इसलिए इसकी संयम विधि का अभ्यास करो, मन की रक्षा करो, मन को संयमित करो।

"जब, भिक्षुओं, तुम निवास करते हो इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हुए, दुष्ट मारा, आप तक पहुँचने में असफल होकर, आपमें रुचि खो देगा और चला जाएगा, ठीक वैसे ही जैसे सियार कछुए से दूर चला जाता है।

मन के विचारों को समेटते हुए,
जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने खोल में समेट लेता है।
स्वतंत्र, दूसरों को परेशान न करते हुए, पूरी तरह से संतुष्ट,
एक भिक्षु किसी को दोष नहीं देगा। 186

---

241. महान लट्ठे की उपमा (1) (दारुक्खन्धोपमा1)
एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के किनारे कोसंबी में निवास कर रहे थे। उन्होंने देखा कि गंगा नदी की धारा एक विशाल लट्ठे को बहाकर ले जा रही है, और उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, क्या तुम गंगा नदी की धारा में बहते हुए उस विशाल लट्ठे को देख रहे हो?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

हे भिक्षुओं, यदि वह लकड़ी का लट्ठा निकटवर्ती किनारे की ओर न भटके, दूरवर्ती किनारे की ओर न भटके, मध्यधारा में न डूबे, ऊँची भूमि पर न उछले, मनुष्यों द्वारा न फँसे, अमानवों द्वारा न फँसे, भंवर में न फँसे और आंतरिक रूप से न सड़ जाए, तो वह समुद्र की ओर झुकती हुई, ढलानदार और प्रवृत्त होगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी की धारा समुद्र की ओर झुकती हुई, ढलानदार और प्रवृत्त होती है।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यदि आप निकटवर्ती किनारे की ओर न भटकें, दूरवर्ती किनारे की ओर न भटकें, मध्यधारा में न डूबें, ऊँची भूमि पर न उछलें, मनुष्यों द्वारा न फँसे, अमानवों द्वारा न फँसे, भंवर में न फँसे और आंतरिक रूप से न सड़ें, तो आप निर्वाण की ओर झुकते हुए, ढलानदार और प्रवृत्त होंगे। इसका कारण क्या है? क्योंकि सही दृष्टि निर्वाण की ओर झुकती, ढलान बनाती और मुड़ती है।

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा,
"हे पूज्यवर, निकटवर्ती किनारा क्या है? दूरवर्ती किनारा क्या है? मध्यधारा में डूबना क्या है? ऊँचे स्थान पर आ पहुँचना क्या है? मनुष्य किसे पकड़ लेते हैं, अमानव किसे पकड़ लेते हैं, भंवर में क्या फंस जाता है? आंतरिक सड़न क्या है?" "

भिक्षु: 'निकटवर्ती किनारा': यह छह आंतरिक इंद्रियों का नाम है। 'दूरवर्ती किनारा': यह छह बाह्य इंद्रियों का नाम है। 'मध्यधारा में डूबना': यह आनंद और राग का नाम है। 'ऊँचे स्थान पर आ पहुँचना': यह 'मैं हूँ' के अहंकार का नाम है।"

"और हे भिक्षु, मनुष्यों द्वारा वश में किया जाना क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति गृहस्थों के साथ रहता है; वह उनके साथ सुख-दुख में शामिल होता है, वह उनके सुख में प्रसन्न होता है और उनके दुख में दुखी होता है, और वह उनके कार्यों और कर्तव्यों में संलग्न रहता है। 187 इसे मनुष्यों द्वारा वश में किया जाना कहते हैं।

"और हे भिक्षु, अमानवों द्वारा वश में किया जाना क्या है? यहाँ, कोई व्यक्ति किसी विशेष देव वर्ग में पुनर्जन्म की आकांक्षा के साथ ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता है, यह सोचते हुए कि 'इस पुण्य (शील) या व्रत या तप (तप) या ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) से मैं देव (देवदूत) या देवों में से एक बन जाऊँगा।' इसे अमानवों द्वारा वश में किया जाना कहते हैं।

"'भंवर में फँस जाना': हे भिक्षु, यह इंद्रिय सुख के पाँच डोरों का नाम है।"

"और हे भिक्षु, आंतरिक सड़न क्या है? यहाँ व्यक्ति अनैतिक है, बुरे चरित्र का है, अपवित्र और संदिग्ध आचरण वाला है, अपने कार्यों में गुप्त है, तपस्वी होने का दावा करते हुए भी तपस्वी नहीं है, ब्रह्मचारी होने का दावा करते हुए भी ब्रह्मचारी नहीं है, आंतरिक रूप से सड़ी हुई, भ्रष्ट, पतित है। 188 इसे आंतरिक सड़न कहते हैं।"

उस समय ग्वाला नंदा भगवान (बुद्ध) के पास खड़ा था। तब उसने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, मैं निकटवर्ती तट की ओर नहीं भटकूँगा, दूरवर्ती तट की ओर नहीं भटकूँगा, मध्यधारा में नहीं डूबूँगा, ऊँचे स्थान पर नहीं पहुँचूँगा, मनुष्यों द्वारा नहीं पकड़ा जाऊँगा, अमानवों द्वारा नहीं पकड़ा जाऊँगा, भंवर में नहीं फँसूँगा, और आंतरिक रूप से भ्रष्ट नहीं होऊँगा। क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है? क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है?"

"तो फिर, नंदा, गायों को उनके स्वामियों को लौटा दो।"

"आदरणीय महोदय, गायें अपने बछड़ों के प्रति आसक्ति के कारण स्वतः ही वापस चली जाएँगी।"

"नंदा, गायों को उनके स्वामियों को लौटा दो।"

तब ग्वाले नंदा ने गायों को उनके स्वामियों को लौटा दिया, भगवान (बुद्ध) के पास वापस आए और बोले, “हे पूज्यवर, गायों को उनके स्वामियों को लौटा दिया गया है। क्या मैं भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त कर सकता हूँ, क्या मैं उच्चतर दीक्षा प्राप्त कर सकता हूँ?”

तब ग्वाले नंदा ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उच्चतर दीक्षा प्राप्त की। और शीघ्र ही, उच्चतर दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर... पूज्य नंदा अरहंतों में से एक बन गए।

---

242. महान लट्ठे की उपमा (2) (दारुक्खन्धोपमा2)
एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के किनारे किंबिला में निवास कर रहे थे। उन्होंने देखा कि गंगा की धारा एक विशाल लट्ठे को बहाकर ले जा रही है, और उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, क्या तुम गंगा की धारा में बहते हुए उस विशाल लट्ठे को देख रहे हो?"
"जी हाँ, पूज्यवर।"... (जैसा ऊपर बताया गया है)...

यह सुनकर पूज्यवर किंबिला ने भगवान (बुद्ध) से पूछा,
"हे पूज्यवर, तट के पास का क्या अर्थ है... आंतरिक सड़न क्या है?"

(उत्तर ऊपर दिए गए अनुसार है, सिवाय इसके:)

"और हे किंबिला, आंतरिक सड़न क्या है? हे किंबिला, यहाँ एक भिक्षु एक ऐसा अपवित्र अपराध करता है, एक ऐसा अपराध जिसका पुनर्वास संभव नहीं है। 190 इसे आंतरिक सड़न कहते हैं।"

---

243. भ्रष्टों पर व्याख्या (अवस्सुतपरीयया)
एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु के निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय कपिलवस्तु के शाक्यों के लिए एक नया सभा भवन अभी-अभी बनाया गया था और उसमें अभी तक कोई तपस्वी, ब्राह्मण या कोई भी मनुष्य नहीं रहा था। तब कपिलवस्तु के शाक्यों भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे पूज्यवर, कपिलवस्तु के शाक्यों के लिए एक नया सभा भवन अभी-अभी बनाया गया है और उसमें अभी तक कोई तपस्वी, ब्राह्मण या कोई भी मनुष्य नहीं रहा है। हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) इसका उपयोग सर्वप्रथम करें। जब भगवान (बुद्ध) इसका उपयोग सर्वप्रथम कर लेंगे, तब कपिलवस्तु के शाक्यों इसका उपयोग करेंगे। इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।”

191 भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए। जब शाक्यों समझ गए कि भगवान (बुद्ध) सहमत हो गए हैं, तो वे अपने आसनों से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, नए सभा भवन में गए। उन्होंने उसे पूरी तरह से चटाइयों से ढक दिया, आसन तैयार किए, एक बड़ा जल पात्र रखा और एक तेल का दीपक जलाया। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और उन्हें यह सूचना देते हुए कहा, "भगवान (बुद्ध) अपनी सुविधानुसार आएं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के संघ के साथ नए सभा भवन में गए। अपने पैर धोने के बाद, वे भवन में प्रवेश कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके केंद्रीय स्तंभ के पास बैठ गए। भिक्षुओं ने भी अपने पैर धोने के बाद भवन में प्रवेश किया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके पश्चिमी दीवार के पास बैठ गए, उनके सामने भगवान (बुद्ध) विराजमान थे। कपिलवस्तु के शाक्यों ने भी अपने पैर धोकर हॉल में प्रवेश किया और पश्चिम की ओर मुख करके पूर्वी दीवार के पास बैठ गए, उनके सामने भगवान (बुद्ध) विराजमान थे।

भगवान (बुद्ध) ने रात भर शाक्यों को धर्मोपदेश दिया, उन्हें प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद उन्होंने उन्हें यह कहते हुए विदा किया: "गौतमों, रात बीत गई है। आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

"जी, पूज्यवर," उन्होंने उत्तर दिया। फिर वे अपने स्थानों से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, चले गए। फिर, कपिलवस्तु के शाक्यों के जाने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने पूज्य महामोग्गलाना को संबोधित करते हुए कहा: "मोग्गलाना, भिक्षुओं का संघ आलस्य और सुस्ती से मुक्त है। भिक्षुओं को धर्मोपदेश दीजिए। मेरी कमर में दर्द हो रहा है, इसलिए मैं थोड़ा आराम कर लूँ।" 193

"जी हाँ, आदरणीय महोदय," आदरणीय महामोग्गलाना ने उत्तर दिया।

तब भगवान (बुद्ध) ने अपना बाहरी वस्त्र चार भागों में मोड़कर तैयार किया और सिंह मुद्रा में दाहिनी ओर लेट गए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए, उठने के विचार को मन में धारण किया। तब पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्रों!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"मैं तुम्हें, मित्रों, भ्रष्ट और निर्जीव का उपदेश दूंगा
। 194 इसे सुनो और ध्यानमग्न (मानसिकरो) रहो, मैं बोलूंगा।"

"जी, मित्रों," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। आदरणीय महामोग्गलाना ने यह कहा:

"हे मित्रों, मनुष्य कैसे भ्रष्ट हो जाता है? यहाँ, आँख से एक रूप देखकर, एक भिक्षु (साधु) मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। 195 वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त मुक्ति है, के वास्तविक अर्थ को नहीं समझता, जिसमें वे दुष्ट हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से एक ध्वनि सुनकर... मन से एक मानसिक घटना को जानकर, वह मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय मानसिक घटना से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (पन्ना) द्वारा प्राप्त मुक्ति को, जो वास्तव में है, के वास्तविक अर्थ को नहीं समझता, जिसमें वे दुष्ट हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।

"यह है हे मित्रों, ऐसे भिक्षु को कहते हैं जो आँखों से दिखाई देने वाले रूपों में, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों में, नाक से सुनाई देने वाली गंधों में, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों में, शरीर से महसूस होने वाले स्पर्शों में और मन से महसूस होने वाले मानसिक अनुभवों (धर्म) में भ्रष्ट हो चुका हो। जब कोई भिक्षु इस प्रकार रहता है, तो यदि मारा (शैतान) आँख के द्वारा उसके पास आता है, तो वह उस पर हावी हो जाता है। यदि मारा कानों के द्वारा... मन के द्वारा उसके पास आता है, तो वह उस पर हावी हो जाता है।

"मान लीजिए, मित्रों, सरकंडों या घास से बनी एक सूखी, मुरझाई हुई, अपनी चरम अवस्था से गुजर चुकी झोपड़ी है। यदि कोई व्यक्ति जलती हुई घास की मशाल लेकर पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, नीचे से या ऊपर से उसके पास आता है, चाहे वह किसी भी दिशा से आए, आग उसमें प्रवेश कर जाती है, आग उसे अपने वश में कर लेती है। ठीक इसी प्रकार, मित्रों, जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, यदि मारा आँख के माध्यम से... मन के माध्यम से उसके पास आता है, तो मारा उसमें प्रवेश कर जाता है, मारा उसे अपने वश में कर लेता है।"

जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, तो रूप उसे अभिभूत कर देते हैं; वह रूपों को अभिभूत नहीं करता। ध्वनियाँ उसे अभिभूत कर देती हैं; वह ध्वनियों को अभिभूत नहीं करता। गंधें उसे अभिभूत कर देती हैं; वह गंधों को अभिभूत नहीं करता। स्वाद उसे अभिभूत कर देते हैं; वह स्वादों को अभिभूत नहीं करता। स्पर्शनीय वस्तुएँ उसे अभिभूत कर देती हैं; वह स्पर्शनीय वस्तुओं को अभिभूत नहीं करता। मानसिक घटनाएँ (धम्म) उसे अभिभूत कर देती हैं; वह मानसिक घटनाओं (धम्म) को अभिभूत नहीं करता। मित्रों, इसे वह भिक्षु कहते हैं जो रूपों से अभिभूत होता है, ध्वनियों से अभिभूत होता है, गंधों से अभिभूत होता है, स्वादों से अभिभूत होता है, स्पर्शनीय वस्तुओं से अभिभूत होता है, मानसिक घटनाओं (धम्म) से अभिभूत होता है - वह जो अभिभूत होता है और जो अभिभूत नहीं होता। अकुशल (अकुशल) अवस्थाओं ने उसे अभिभूत कर दिया है, ऐसी अवस्थाएँ जो अपवित्रता, जो नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) की ओर ले जाती है, जो कष्ट लाती है, जिसके परिणामस्वरूप पीड़ा होती है, और जो भविष्य में पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाती है।

"मित्रों, इसी प्रकार मनुष्य भ्रष्ट होता है।"

हे मित्रों, कोई कैसे निष्कलंकित रहता है? यहाँ, आँख से किसी रूप को देखकर, भिक्षु न तो किसी मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विमुख होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ को समझता है, जिसमें वे सभी दुष्ट और

हानिकारक अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से कोई ध्वनि सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो किसी मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय मानसिक घटना से विमुख होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ को समझता है, जिसमें वे सभी दुष्ट और हानिकारक अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। हे

मित्रों, इसे ही वह भिक्षु कहते हैं जो प्रत्यक्ष रूपों में निष्कलंकित है। आँख से देखने पर भी, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों में भी, नाक से सुनाई देने वाली गंधों में भी, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों में भी, शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुओं में भी, और मन द्वारा अनुभव किए जाने वाले मानसिक अनुभवों (धर्म) में भी। जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, तो यदि मारा (शैतान) आँख के माध्यम से उसके पास आता है, तो वह उस तक पहुँचने में असफल रहता है, उसे वश में करने में असफल रहता है। यदि मारा कानों के माध्यम से... मन के माध्यम से उसके पास आता है, तो भी मारा उस तक पहुँचने में असफल रहता है, उसे वश में करने में असफल रहता है।

"मान लीजिए, मित्रों, एक शिखर वाला घर या एक हॉल है जो घनी मिट्टी से बना है और उस पर अभी-अभी प्लास्टर किया गया है। यदि कोई व्यक्ति जलती हुई घास की मशाल लेकर पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, नीचे से या ऊपर से उसके पास आता है, चाहे वह किसी भी दिशा से आए, आग उस तक नहीं पहुँच पाती, आग उस पर हावी नहीं हो पाती। ठीक इसी प्रकार, मित्रों, जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, यदि मारा आँख के माध्यम से... मन के माध्यम से उसके पास आता है, तो मारा उस तक नहीं पहुँच पाता, मारा उस पर हावी नहीं हो पाता।

जब कोई भिक्षु इस प्रकार निवास करता है, तो वह रूपों पर हावी हो जाता है; रूप उस पर हावी नहीं होते। वह ध्वनियों पर हावी हो जाता है; ध्वनियाँ उस पर हावी नहीं होतीं। वह गंधों पर हावी हो जाता है; गंधें उस पर हावी नहीं होतीं। वह स्वादों पर हावी हो जाता है; स्वाद उस पर हावी नहीं होते। वह स्पर्शनीय वस्तुओं पर हावी हो जाता है; स्पर्शनीय वस्तुएँ उसे अभिभूत नहीं करतीं। वह मानसिक घटनाओं (धम्म) को अभिभूत करता है; मानसिक घटनाएँ (धम्म) उसे अभिभूत नहीं करतीं। हे मित्रों, इसे ही वह भिक्षु कहते हैं जो रूपों को, ध्वनियों को, गंधों को, स्वादों को, स्पर्शनीय वस्तुओं को, और मानसिक घटनाओं (धम्म) को अभिभूत करता है - वह जो अभिभूत करता है और अभिभूत नहीं होता। उसने उन सभी हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं को अभिभूत कर दिया है जो दूषित करती हैं, पुनर्जन्म का कारण बनती हैं, कष्ट लाती हैं, पीड़ा का कारण बनती हैं, और भविष्य में पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनती हैं।

"हे मित्रों, इसी प्रकार मनुष्य निर्मल रहता है।"

तब भगवान (बुद्ध) उठे और पूज्य महामोग्गलाना को संबोधित करते हुए बोले, "शाबाश, शाबाश, मोग्गलाना! आपने भिक्षुओं को भ्रष्ट और निर्जीव के विषय पर बहुत अच्छी व्याख्या दी है।"

पूज्य महामोग्गलाना ने यही कहा। गुरु ने इसकी सराहना की। पूज्य महामोग्गलाना के इस कथन से भिक्षु प्रसन्न हुए।

---

244. दुखदायी अवस्थाएँ (दुक्खधम्म)
भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु दुख उत्पन्न करने वाली सभी अवस्थाओं के उद्भव और निवारण को यथावत समझ लेता है, तब वह इंद्रिय सुखों को इस प्रकार देख पाता है कि उन्हें देखने पर उसके भीतर इंद्रिय इच्छा, इंद्रिय स्नेह, इंद्रिय मोह और इंद्रिय वासना उत्पन्न नहीं होती; तब वह आचरण और निवास का ऐसा तरीका समझ लेता है कि जब वह इस प्रकार आचरण करता है और इस प्रकार निवास करता है, तो लोभ और अप्रसन्नता जैसी हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ उस पर हावी नहीं होतीं। 196

"और हे भिक्षुओं, कोई भिक्षु दुख उत्पन्न करने वाली सभी अवस्थाओं के उद्भव और निवारण को यथावत कैसे समझता है? 197 'ऐसा है रूप, ऐसा है उसका उद्भव, ऐसा है उसका निवारण; ऐसी है संवेदना (वेदना)... ऐसा है बोध (संज्ञा संस्कृत)... ऐसा है संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... ऐसी है चेतना (विज्ञान संस्कृत)... ऐसा है इसका उद्गम, ऐसा है इसका अंत: इसी तरह एक भिक्षु उन सभी अवस्थाओं के उद्गम और अंत को समझता है जो दुख का कारण बनती हैं।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु इंद्रिय सुखों को इस प्रकार कैसे देखता है कि जब वह उन्हें देखता है तो उसके भीतर इंद्रिय सुखों के प्रति कोई इच्छा, इंद्रिय स्नेह, इंद्रिय मोह और इंद्रिय वासना सुप्त अवस्था में न रहे? मान लीजिए एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से गहरा है, और बिना लौ या धुएँ के सुलगते कोयलों से भरा है। 198 एक व्यक्ति जीने की इच्छा से, मरने की इच्छा से नहीं, सुख की

कामना से और कष्टों से विमुख होकर आता है। तब दो बलवान पुरुष उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर कोयले के गड्ढे की ओर घसीटते हैं। वह व्यक्ति अपने शरीर को इधर-उधर हिलाता है। क्यों? क्योंकि वह जानता है:
'मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा और इस प्रकार मृत्यु या घातक कष्ट को प्राप्त हो जाऊँगा।' इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इंद्रिय सुखों को कोयले की भट्टी के समान देखता है, तो उसके भीतर इंद्रिय सुखों के प्रति कामुक इच्छा, कामुक स्नेह, कामुक मोह और कामुक वासना सुप्त नहीं रहती।

और हे भिक्षुओं, किसी भिक्षु ने आचरण और निवास का ऐसा तरीका कैसे समझा है कि जब वह इस प्रकार आचरण करता है और इस प्रकार निवास करता है, तो उस पर लोभ और अप्रसन्नता की हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ हावी नहीं होतीं? मान लीजिए कोई व्यक्ति काँटेदार जंगल में प्रवेश करता है। उसके आगे काँटे होंगे, उसके पीछे काँटे होंगे, उसके बाईं ओर काँटे होंगे, उसके दाईं ओर काँटे होंगे, उसके नीचे काँटे होंगे, उसके ऊपर काँटे होंगे। वह सजग होकर आगे बढ़ेगा, वह सजग होकर वापस आएगा, यह सोचते हुए कि 'मुझे कोई काँटा न चुभे!' इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन होता है, वह गुरु के साधना में काँटा कहलाता है। इसे 'काँटा' समझकर, संयम और असंयम को समझना चाहिए।

और हे भिक्षुओं, संयम कैसे प्राप्त होता है? यहाँ, किसी रूप को आँख से देखकर, भिक्षु मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (विमुक्ति, संस्कृत: विमुक्ति) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, नहीं समझ पाता, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से ध्वनि सुनकर... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और अप्रिय मानसिक घटना से विमुख हो जाता है। वह शरीर का ध्यान स्थापित किए बिना, सीमित मन से रहता है, और वह मन की उस मुक्ति (पन्ना) को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, नहीं समझ पाता, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार से... संयमहीनता।

"और हे भिक्षुओं, संयम कैसे है? यहाँ, आँख से किसी रूप को देखकर, भिक्षु न तो किसी मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विचलित होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ रूप से समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से ध्वनि सुनकर... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो किसी मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही किसी अप्रिय मानसिक घटना से विचलित होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर रहता है, और वह मन की उस मुक्ति को, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त होती है, यथार्थ रूप से समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार संयम है।"

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो कभी-कभी ध्यान की अवस्था में व्यवधान के कारण, बंधनों से संबंधित दुष्ट (अकुशल) स्मृतियाँ और इरादे उसके मन में उत्पन्न हो सकते हैं। उसकी ध्यान अवस्था के उत्पन्न होने में भले ही समय लगे, लेकिन वह शीघ्र ही उनका त्याग कर देता है, उन्हें दूर कर देता है, उनका अंत कर देता है, उन्हें मिटा देता है। 201 मान लीजिए कि एक व्यक्ति दिन भर गर्म की गई लोहे की थाली पर दो-तीन बूँदें गिराता है। बूँदें धीरे-धीरे गिर सकती हैं, लेकिन वे शीघ्र ही वाष्पीकृत होकर गायब हो जाएँगी। इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है... तो उसकी ध्यान अवस्था के उत्पन्न होने में भले ही समय लगे, लेकिन वह शीघ्र ही उनका त्याग कर देता है, उन्हें दूर कर देता है, उनका अंत कर देता है, उन्हें मिटा देता है।

इस प्रकार एक भिक्षु ने आचरण का ऐसा तरीका और निवास का ऐसा ढंग समझ लिया है कि जब वह इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो दुष्ट (अकुशल) स्मृतियाँ और इरादे उसके मन में उत्पन्न हो जाते हैं। उस पर लोभ और क्रोध का भाव नहीं आता।

जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं, यह कहते हुए: 'आओ, हे भले, इन भगवा वस्त्रों को अपने ऊपर क्यों बोझ बनने दो? मुंडा सिर और भिक्षापात्र लेकर क्यों भटकते हो? आओ, निम्न लोक में लौटकर धन का आनंद लो और पुण्य कर्म करो।' हे भिक्षुओं, जब वह भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो यह असंभव है कि वह साधना छोड़कर निम्न लोक में लौट जाए।

मान लो, हे भिक्षुओं, कि जब गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, तो लोगों की एक बड़ी भीड़ फावड़ा और टोकरी लेकर यह सोचकर आती है: 'हम इस गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका देंगे।' भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या लोगों की वह विशाल भीड़ गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका पाएगी? "

नहीं, पूज्यवर। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, और उसे पश्चिम की ओर झुकाना आसान नहीं है। लोगों की वह विशाल भीड़ केवल थकान और कष्ट ही पाएगी।" "इसी

प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार आचरण करता है और निवास करता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं... [परन्तु] यह असंभव है कि वह साधना छोड़कर निम्न लोक में लौट जाए। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसका मन लंबे समय से एकांत की ओर झुका हुआ है। अतः यह असंभव है कि वह साधना छोड़कर निम्न लोक में लौट जाए।"

---

245. किम्सुका वृक्ष उपमा (किम्सुकोपामा)
एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु के पास जाकर पूछा, "मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?" 202

"मित्र, जब भिक्षु छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; स्पर्श/संवेदना) के उद्भव और क्षय को यथावत समझ लेता है, तब उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।" 203

तब पहले भिक्षु ने दूसरे भिक्षु के उत्तर से असंतुष्ट होकर दूसरे भिक्षु के पास जाकर पूछा, "मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?"

"मित्र, जब भिक्षु आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंधों (खन्ध संस्कृत) के उद्भव और क्षय को यथावत समझ लेता है, तब उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।"

फिर, पहले भिक्षु ने दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर एक और भिक्षु के पास जाकर पूछा, "मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?"

"मित्र, जब भिक्षु चारों महान तत्वों (धातुओं) की उत्पत्ति और विनाश को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तभी उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।"

फिर, पहले भिक्षु ने दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर एक और भिक्षु के पास जाकर पूछा, "मित्र, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?"

"मित्र, जब भिक्षु यह सत्य समझ लेता है कि 'जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब निरोध के अधीन होता है,' तभी उसकी दृष्टि शुद्ध होती है।"

तब पहले भिक्षु, दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर, भगवान (बुद्ध) के पास गए, सारी घटना बताई और पूछा: "हे पूज्यवर, भिक्षु की दृष्टि किस प्रकार शुद्ध होती है?"

"भिक्षु, मान लीजिए कि एक व्यक्ति ने पहले कभी किमसुख का वृक्ष नहीं देखा था। 204 वह एक ऐसे व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुख का वृक्ष देखा हो और उससे पूछ सकता है: 'महोदय, किमसुख का वृक्ष कैसा होता है?' दूसरा उत्तर दे सकता है: 'हे महोदय, किमसुख का वृक्ष काला होता है, जैसे जला हुआ ठूंठ।' उस समय किमसुख का वृक्ष उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में था।

"तब वह व्यक्ति, दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर, एक अन्य व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुख का वृक्ष देखा हो और उससे पूछ सकता है:
'महोदय, किमसुख का वृक्ष कैसा होता है?' दूसरा व्यक्ति शायद जवाब दे: 'महोदय, किमसुका का पेड़ लाल रंग का होता है, जैसे मांस का टुकड़ा।' उस समय किमसुका का पेड़ उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा दूसरे व्यक्ति की नज़र में था।

"फिर वह व्यक्ति, दूसरे के जवाब से असंतुष्ट होकर, किसी दूसरे व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुका का पेड़ देखा हो और उससे पूछ सकता है: 'महोदय, किमसुका का पेड़ कैसा दिखता है?' दूसरा व्यक्ति शायद जवाब दे:

'महोदय, किमसुका के पेड़ में छाल की पट्टियाँ लटकी होती हैं और फटी हुई फलियाँ होती हैं, जैसे बबूल के पेड़ में होती हैं। ' 205 उस अवसर पर किमसुका का पेड़ उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा कि दूसरे आदमी की दृष्टि में था।

"तब वह व्यक्ति, दूसरे के उत्तर से असंतुष्ट होकर, किसी अन्य व्यक्ति के पास जा सकता है जिसने किमसुका वृक्ष देखा हो और उससे पूछ सकता है: 'महोदय, किमसुका वृक्ष कैसा होता है?' दूसरा उत्तर दे सकता है: 'हे महोदय, किमसुका वृक्ष में बहुत सारे पत्ते और वनस्पति होती है और यह बरगद के वृक्ष की तरह भरपूर छाया देता है।' उस समय किमसुका वृक्ष उसके लिए ठीक वैसा ही था जैसा दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में था।

"इसी प्रकार, हे भिक्षु, उन श्रेष्ठ पुरुषों ने भी अपनी दृष्टि के शुद्ध होने के कारण अपने विवेक के अनुसार उत्तर दिया। 206

"मान लीजिए, हे भिक्षु, एक राजा का सीमावर्ती नगर था जिसमें मजबूत प्राचीर, दीवारें और मेहराब थे और छह द्वार थे। 207 वहाँ तैनात द्वारपाल बुद्धिमान, सक्षम और समझदार होगा; वह अजनबियों को बाहर रखेगा और परिचितों को प्रवेश देगा। पूर्व से दो तेज दूत आएंगे और द्वारपाल से पूछेंगे:
'हे महोदय, इस नगर का स्वामी कहाँ है?'" वह उत्तर देता: 'वह केंद्रीय चौक में बैठा है।' तब दूतों की वह फुर्तीली जोड़ी नगर के स्वामी को वास्तविकता का संदेश देती और उसी मार्ग से वापस लौट जाती जिससे वे आए थे। इसी प्रकार, दूत पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से आते, अपना संदेश देते और उसी मार्ग से वापस लौट जाते जिससे वे आए थे।

"मैंने यह उपमा, भिक्षु, अर्थ समझाने के लिए बनाई है। यहाँ अर्थ यह है: 'नगर': यह उस शरीर का नाम है जो चार महान तत्वों (धातु) से बना है, माता-पिता से उत्पन्न हुआ है, उबले हुए चावल और दलिया से निर्मित है, अनित्यता के अधीन है, घिसने और नष्ट होने के अधीन है, टूटने और बिखरने के अधीन है। 208 'छह द्वार': यह छह आंतरिक इंद्रियों का नाम है। 'द्वारपाल': यह ध्यान का नाम है। 'तेज़ गति से चलने वाले दूतों की जोड़ी': यह शांति (समथा/समभाव) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना-ध्यान) का प्रतीक है। 'नगर का स्वामी': यह चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) का प्रतीक है। 209 'केंद्रीय चौक': यह चार महान तत्वों - पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व का प्रतीक है। 'सत्य का संदेश': यह निर्वाण का प्रतीक है। 210 'जिस मार्ग से वे आए थे': यह आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

---

246. The Simile of the Lute (Vinopama sans. Vina-upama)
भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु या भिक्षुणी के मन में नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों के प्रति इच्छा, कामवासना, घृणा, द्वेष, मोह या विमुखता उत्पन्न हो, तो उसे अपने मन को इनसे इस प्रकार नियंत्रित करना चाहिए: 211 'यह मार्ग भययोग्य, खतरनाक, काँटों से भरा, घने जंगल से आच्छादित, पथभ्रष्ट, दुष्ट और अभाव से ग्रस्त है। 212 यह निम्न वर्ग के लोगों का मार्ग है; यह श्रेष्ठ वर्ग के लोगों का मार्ग नहीं है। यह तुम्हारे लिए नहीं है।' इस प्रकार नेत्र द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों के संबंध में मन को इन अवस्थाओं से नियंत्रित करना चाहिए। इसी प्रकार, कान द्वारा सुनी जा सकने वाली ध्वनियों के संबंध में भी... मन द्वारा देखी जा सकने वाली मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में भी।

मान लीजिए, भिक्षुओं, कि जौ पक गया है और पहरेदार आलसी (पमादा में) है। यदि जौ का शौकीन बैल जौ के खेत में प्रवेश करता है, तो वह अपनी इच्छा अनुसार जितना चाहे उतना आनंद ले सकता है। उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति जो अपनी छह इंद्रियों पर संयम नहीं रखता, वह पांच प्रकार के कामुक सुखों में अपनी इच्छा अनुसार लिप्त हो जाता है। 213

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि जौ पक गया है और पहरेदार चौकस है। यदि जौ का शौकीन कोई बैल जौ के खेत में प्रवेश करता है, तो पहरेदार उसे थूथन से मजबूती से पकड़ लेगा। थूथन को मजबूती से पकड़े हुए, वह उसके सींगों के बीच के बालों को मजबूती से पकड़ लेगा और उसे वहीं रोककर अपनी लाठी से उसकी जमकर पिटाई करेगा। पिटाई करने के बाद, वह बैल को भगा देगा। यह प्रक्रिया दूसरी और तीसरी बार भी हो सकती है। इस प्रकार, जौ का शौकीन वह बैल, चाहे वह गाँव गया हो या जंगल में, चाहे वह खड़े रहने का आदी हो या बैठने का, लाठी से मिली पिछली पिटाई को याद रखते हुए, उस जौ के खेत में फिर कभी प्रवेश नहीं करेगा।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु का मन अच्छी तरह से वश में हो जाता है, 214 छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के संबंध में, तो वह आंतरिक रूप से स्थिर, शांत, एकीकृत और समाधि अवस्था में।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, कोई राजा या राजमंत्री हो जिसने पहले कभी वीणा की ध्वनि न सुनी हो। वह वीणा की ध्वनि सुनकर कहे: 'हे प्रभु, यह ध्वनि इतनी मोहक, इतनी प्यारी, इतनी मादक, इतनी सम्मोहक, इतनी मोहक किस बात की है?' वे उससे कहेंगे: 'हे प्रभु, यह

वीणा की ध्वनि है - इतनी मोहक, इतनी प्यारी, इतनी मादक, इतनी सम्मोहक, इतनी मोहक।' वह उत्तर देगा: 'जाओ, वह वीणा मेरे पास लाओ।'

वे उसके पास वीणा लाते और कहते: 'हे प्रभु, यह वही वीणा है, जिसकी ध्वनि इतनी मोहक, इतनी प्यारी, इतनी मदहोश करने वाली, इतनी मंत्रमुग्ध करने वाली, इतनी मोहक थी।' राजा कहते: 'मैं इस वीणा से तंग आ गया हूँ, महोदय। मुझे बस वही ध्वनि लाओ।' वे उत्तर देते: 'हे प्रभु, यह वीणा अनेक घटकों से बनी है, बहुत सारे घटकों से, और यह अपने अनेक घटकों के साथ बजाए जाने पर ध्वनि उत्पन्न करती है; अर्थात्, चर्मपत्र ध्वनि तख्ती, पेट, भुजा, शीर्ष, तार, पलेक्ट्रम और संगीतकार के उचित प्रयास पर निर्भर करती है। 215 अतः, हे प्रभु, यह वीणा, जो अनेक घटकों से बनी है, अपने अनेक घटकों के साथ बजाए जाने पर ध्वनि उत्पन्न करती है।'

राजा वीणा को दस या सौ टुकड़ों में तोड़ देते, फिर उन्हें चूर्ण-चूर्ण कर देते। उन्हें चूर-चूर करके, वह उन्हें आग में जलाकर राख कर देता था, और फिर उस राख को तेज हवा में बिखेर देता था या नदी की तेज धारा में बहा देता था। तब वह कहता था:
'सचमुच, महोदय, यह तथाकथित वीणा एक दयनीय वस्तु है, और वीणा कहलाने वाली कोई भी अन्य वस्तु भी। लोग इसके प्रति कितने आलसी (पमादा में) हैं, कितने मूर्ख हैं!' 216

"इसी प्रकार, भिक्षु रूप का अध्ययन रूप की सीमा तक करते हैं, वे वेदना का अध्ययन वेदना की सीमा तक करते हैं, वे अनुभूति (संज्ञा) का अध्ययन अनुभूति की सीमा तक करते हैं, वे संस्कार (आक्रामक व्यवहार) का अध्ययन संस्कार की सीमा तक करते हैं, वे चेतना (विज्ञान) का अध्ययन चेतना की सीमा तक करते हैं। जैसे-जैसे वे रूप का अध्ययन रूप की सीमा तक करते हैं... चेतना का अध्ययन चेतना की सीमा तक करते हैं, वैसे-वैसे 'मैं' या 'मेरा' या 'मैं हूँ' की जो भी धारणाएँ उनके मन में पहले थीं, वे अब उनके मन में नहीं रहतीं।" 217

---

247. छह पशुओं की उपमा (छप्पनकोपमा)
भिक्षुओं, मान लो अगर कोई घायल और सड़ता हुआ आदमी कांटेदार सरकंडों के जंगल में घुस जाए, 218 और कुश के कांटे उसके पैरों में चुभेंगे और सरकंडों की टहनियां उसके अंगों को काट देंगी। इस तरह उस आदमी को और भी ज़्यादा दर्द और परेशानी होगी। इसी तरह, भिक्षुओं, यहाँ कोई भिक्षु गाँव या जंगल में गया है, और उसे कोई ऐसा मिलता है जो उसे इस तरह डांटता है:

'यह आदरणीय व्यक्ति, इस तरह से काम कर रहा है, इस तरह का व्यवहार कर रहा है, यह एक गंदा गाँव का काँटा है।' उसे इस तरह 'काँटा' समझने के बाद, संयम और संयम को समझना चाहिए। 219

"और भिक्षुओं, संयम कैसे होता है? यहाँ, आँख से एक रूप देखकर, एक भिक्षु एक अच्छे रूप पर ध्यान देता है और एक बुरे रूप से दूर भागता है। वह शरीर का ध्यान लगाए बिना, सीमित मन के साथ रहता है, और वह यह नहीं समझता कि मन की मुक्ति (विमुक्ति रहित विमुक्ति) असल में क्या है, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, जिसमें वे बुरी हानिकारक (अकुशल रहित अकुशल) अवस्थाएँ बिना रुके खत्म हो जाती हैं। कान से कोई आवाज़ सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को पहचानने के बाद, वह एक अच्छी मानसिक घटना पर ध्यान देता है और एक बुरी मानसिक घटना से दूर हो जाता है। वह शरीर का ध्यान लगाए बिना, सीमित मन के साथ रहता है, और वह यह नहीं समझता कि मन की मुक्ति (विमुक्ति रहित पन्ना) असल में क्या है, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, जिसमें वे बुरी हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ बिना रुके खत्म हो जाती हैं।

"मान लो, भिक्षुओं, एक आदमी छह जानवरों को पकड़ेगा - जिनके रहने की जगह और खाने की जगह अलग-अलग हैं - और उन्हें एक मज़बूत रस्सी से बांध देगा। वह एक साँप, एक मगरमच्छ, एक चिड़िया, एक कुत्ता, एक सियार और एक बंदर पकड़ेगा, और हर एक को एक मज़बूत रस्सी से बांध देगा। ऐसा करने के बाद, वह रस्सियों को बीच में एक गाँठ लगाकर एक साथ बांध देगा और उन्हें छोड़ देगा (मोक्ष/मोक्ष)। फिर वे छह जानवर जिनके रहने की जगह और खाने की जगह अलग-अलग हैं, हर एक अपने खाने की जगह और इलाके की तरफ खींचेगा। साँप एक तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो चींटियों के बिल में घुस जाऊँ।' मगरमच्छ दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो पानी में घुस जाऊँ।' चिड़िया दूसरी तरफ खींचेगी, यह सोचकर कि 'चलो आसमान में उड़ जाऊँ।' कुत्ता दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो किसी गाँव में घुस जाऊँ।' सियार दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो किसी श्मशान में घुस जाऊँ।' बंदर दूसरी तरफ खींचेगा, यह सोचकर कि 'चलो किसी जंगल में घुस जाऊँ।'
"जब ये छह जानवर थककर चूर हो जाते हैं, तो उनमें से जो सबसे बलवान होता है, वे उसके अधीन हो जाते हैं; वे उसके सामने आत्मसमर्पण कर देते हैं और उसके वश में आ जाते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु ने शरीर-केंद्रित ध्यान का अभ्यास नहीं किया होता है, तो आँख सुखद रूपों की ओर आकर्षित होती है और अप्रिय रूप अरुचिकर लगते हैं; कान सुखद ध्वनियों की ओर आकर्षित होते हैं और अप्रिय ध्वनियाँ अरुचिकर लगती हैं; नाक सुखद गंधों की ओर आकर्षित होती है और अप्रिय गंधें अरुचिकर

लगती हैं; जीभ सुखद स्वादों की ओर आकर्षित होती है और अप्रिय स्वाद अरुचिकर लगते हैं; शरीर सुखद स्पर्श वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है और अप्रिय स्पर्श वस्तुएँ अरुचिकर लगती हैं; मन सुखद मानसिक घटनाओं (धर्म) की ओर आकर्षित होता है और अप्रिय मानसिक घटनाओं (धर्म) अरुचिकर लगती हैं।

इसी प्रकार असंयम होता है।"

और हे भिक्षुओं, संयम कैसे है? यहाँ, आँख से किसी रूप को देखकर, भिक्षु न तो मनभावन रूप पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही अप्रिय रूप से विमुख होता है। वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है, और वह मन की उस मुक्ति को, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। कान से कोई ध्वनि सुनकर... मन से किसी मानसिक घटना को जानकर, वह न तो मनभावन मानसिक घटना पर ध्यान केंद्रित करता है और न ही अप्रिय मानसिक घटना से विमुख होता है। [200] वह असीम मन से शरीर का ध्यान लगाकर निवास करता है, और वह मन की उस मुक्ति को, बुद्धि द्वारा मुक्ति को, यथार्थ रूप में समझता है, जिसमें वे दुष्ट (अकुशल) अवस्थाएँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार संयम है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक व्यक्ति छह जानवरों को पकड़ता है - जो अलग-अलग क्षेत्रों और अलग-अलग चरागाहों में रहते हैं - और उन्हें एक मजबूत रस्सी से बाँध देता है। वह एक साँप, एक मगरमच्छ, एक पक्षी, एक कुत्ता, एक सियार और एक बंदर को पकड़ता और हर एक को एक मजबूत रस्सी से बाँध देता। ऐसा करने के बाद, वह उन्हें एक मजबूत खंभे या स्तंभ से बाँध देता। फिर अलग-अलग क्षेत्रों और अलग-अलग भोजन क्षेत्रों वाले वे छह जानवर अपने-अपने भोजन क्षेत्र और क्षेत्र की दिशा में खींचते। साँप एक तरफ खींचता, यह सोचते हुए कि 'मुझे चींटियों के टीले में जाना है'... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... बंदर दूसरी तरफ खींचता, यह सोचते हुए कि 'मुझे जंगल में जाना है।'

जब ये छह जानवर थक जाते हैं, तो वे उस खंभे के पास खड़े हो जाते हैं, वहाँ बैठ जाते हैं, वहाँ लेट जाते हैं। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु शरीर-केंद्रित ध्यान का अभ्यास कर लेता है, तो उसकी आँख सुखद रूपों की ओर आकर्षित नहीं होती और न ही अप्रिय रूप उसे अरुचिकर लगते हैं; उसके कान सुखद ध्वनियों की ओर आकर्षित नहीं होते और न ही अप्रिय ध्वनियाँ उसे अरुचिकर लगती हैं; उसकी नाक सुखद गंधों की ओर आकर्षित नहीं होती और न ही अप्रिय गंधें उसे अरुचिकर लगती हैं; उसकी जीभ सुखद स्वादों की ओर आकर्षित नहीं होती और न ही अप्रिय स्वाद उसे अरुचिकर लगते हैं; उसका शरीर सुखद स्पर्श वस्तुओं की ओर आकर्षित नहीं होता और न ही अप्रिय स्पर्श वस्तुओं को उसे अरुचिकर लगता है; उसका मन सुखद मानसिक घटनाओं (धर्म) की ओर आकर्षित नहीं होता और न ही अप्रिय मानसिक घटनाओं (धर्म) को उसे अरुचिकर लगता है।

इसी प्रकार संयम रहता है।

"'एक मजबूत खंभा या स्तंभ': भिक्षुओं, यह शरीर-केंद्रित ध्यान के लिए एक पदनाम है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम शरीर-केंद्रित ध्यान का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

248. जौ का पूला (यवकलापिसु)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक चौराहे पर जौ का एक गट्ठा रखा है। फिर छह आदमी अपने हाथों में डंडे लेकर आते हैं और वे उन छह डंडों से जौ के गट्ठे पर प्रहार करते हैं। इस प्रकार वह गट्ठा अच्छी तरह से क्षतिग्रस्त हो जाता है। फिर एक सातवां आदमी अपने हाथ में डंडा लेकर आता है और वह उस गट्ठे पर सातवें डंडे से प्रहार करता है। इस प्रकार वह गट्ठा और भी अधिक अच्छी तरह से क्षतिग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार

, भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति की आंखें सुखद और अप्रिय रूपों से प्रभावित होती हैं; उसके कान सुखद और अप्रिय ध्वनियों से प्रभावित होते हैं; उसकी नाक सुखद और अप्रिय गंधों से प्रभावित होती है; उसकी जीभ सुखद और अप्रिय स्वादों से प्रभावित होती है; उसके शरीर पर सुखद और अप्रिय स्पर्श वस्तुओं का प्रभाव पड़ता है; और उसके मन पर सुखद और अप्रिय मानसिक घटनाओं (धर्म) का प्रभाव पड़ता है। यदि वह अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति भविष्य में होने वाले नए जीवन (पुनर्जन्म का कारण) पर अपना मन लगाता है, 221 तो वह मूर्ख व्यक्ति और भी बुरी तरह से चोट खाता है, ठीक उसी तरह जैसे जौ की बाली को सातवें कोड़े से मारा जाता है।

"एक बार अतीत में, भिक्षु, देव (देवदूत) और असुर (राक्षस) युद्ध के लिए तैयार हुए थे। 222 तब असुरों के स्वामी वेपचित्ति ने असुरों को इस प्रकार संबोधित किया: 'हे सज्जनों, यदि इस आगामी युद्ध में असुर जीतें और देव पराजित हों, तो देवों/देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर असुरों के नगर में मेरे पास ले आओ।' और देवदूतों के स्वामी सक्का (इंद्र) ने तावतिंसा देवताओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे सज्जनों, यदि इस आगामी युद्ध में देव विजयी हों और असुर पराजित हों, तो असुरों के स्वामी वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म में मेरे पास ले आइए, जो देवताओं का सभागृह है।

" उस युद्ध में देव विजयी हुए और असुर पराजित हुए। तब तावतिंसा देवताओं ने वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांधकर सुधम्म में सक्का के पास ले आए, जो देवताओं का सभागृह है। और वहाँ असुरों के स्वामी वेपचित्ति को उनके चारों अंगों और गर्दन से बांध दिया गया।

जब वेपचित्ति के मन में यह विचार आया: 'देव धर्मात्मा हैं, असुर अधर्मी हैं; अब मैं यहीं पर देवताओं के नगर में चला गया हूँ,' तब उन्होंने स्वयं को अपने अंगों और गर्दन के बंधनों से मुक्त पाया और दिव्य इंद्रिय सुख के पाँचों डोरों से परिपूर्ण होकर आनंदित हुए। परन्तु जब उनके मन में यह विचार आया: 'असुर धर्मात्मा हैं, देवता अधर्मी हैं; अब मैं असुरों के नगर में जाऊँगा,' तब उन्होंने स्वयं को अपने चारों अंगों और गर्दन के बंधनों से बंधा हुआ पाया और वे दिव्य इंद्रिय सुख के पाँचों डोरों से वंचित हो गए। हे भिक्षुओं,

वेपचित्ति का बंधन इतना सूक्ष्म था, परन्तु मार (शैतान) का बंधन उससे भी अधिक सूक्ष्म है। गर्भ धारण करने से व्यक्ति मार के बंधन में बंध जाता है; गर्भ धारण न करने से व्यक्ति उस दुष्ट से मुक्त हो जाता है। 223

भिक्षुओं, 'मैं हूँ' (अस्मि) एक कल्पना है; 'मैं यह हूँ' एक कल्पना है; 'मैं होऊँगा' एक कल्पना है; 'मैं नहीं होऊँगा' एक कल्पना है; 'मैं रूप से बना रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं निराकार रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं बोधगम्य रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं अबोधगम्य रहूँगा' एक कल्पना है; 'मैं न तो बोधगम्य रहूँगा और न ही अबोधगम्य रहूँगा' एक कल्पना है। 224 कल्पना एक रोग है, कल्पना एक ट्यूमर है, कल्पना एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम कल्पना रहित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूँ' एक विक्षिप्तता है; 225 'मैं यह हूँ' एक विक्षिप्तता है; 'मैं रहूंगा' एक विक्षिप्तता है... 'मैं न तो प्रत्यक्ष रहूंगा और न ही अप्रदर्शित' एक विक्षिप्तता है। विक्षिप्तता एक रोग है, विक्षिप्तता एक ट्यूमर है, विक्षिप्तता एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अविचलित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूं' एक धड़कन है; 'मैं यह हूं' एक धड़कन है; 'मैं रहूंगा' एक धड़कन है... 'मैं न तो प्रत्यक्ष रहूंगा और न ही अप्रदर्शित' एक धड़कन है। धड़कन एक रोग है, धड़कन एक ट्यूमर है, धड़कन एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम धड़कन रहित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूं' एक 6-इंद्रिय-भ्रम है (पापंच संस्कृत प्रपंच/माया); 'मैं यह हूँ' एक छठी इंद्रिय का भ्रम है; 'मैं होऊंगा' एक छठी इंद्रिय का भ्रम है... 'मैं न तो प्रत्यक्ष होऊंगा और न ही अप्रत्यक्ष' एक छठी इंद्रिय का भ्रम है। छठी इंद्रिय का भ्रम एक रोग है, छठी इंद्रिय का भ्रम एक ट्यूमर है, छठी इंद्रिय का भ्रम एक तीर है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम छठी इंद्रिय के भ्रम से रहित मन के साथ निवास करेंगे।'

भिक्षुओं, 'मैं हूँ' अहंकार से ग्रस्त होना है; 226 'मैं यह हूँ' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं होऊंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं नहीं होऊंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं रूप से बना रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं निराकार रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं बोधशील रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं अबोधशील रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है; 'मैं न तो बोधशील रहूंगा और न ही अबोधशील रहूंगा' अहंकार से ग्रस्त होना है। अहंकार से ग्रस्त होना एक रोग है, अहंकार से ग्रस्त होना एक ट्यूमर है, अहंकार से ग्रस्त होना एक तीर के समान है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम ऐसे मन के साथ निवास करेंगे जिसमें अहंकार नष्ट हो गया हो।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

अध्याय 2: संवेदनाओं पर संबंधित प्रवचन (वेदानासंयुत्त) {संयुत्त-36}

(i) श्लोकों सहित खंड (सगाथावग्गो)

249. आत्म-मग्न समाधि (समाधि)

भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की संवेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखद संवेदना (वेदना), दुखदायी संवेदना (वेदना), और न दुखदायी न सुखद संवेदना (वेदना)। ये तीन संवेदनाएँ हैं।

समाधि अवस्था में, पूर्णतः संबोधित (संपजानो); बुद्ध का शिष्य, ध्यानमग्न (सतिमा)।
संवेदनाओं को समझता है; और संवेदनाओं के उद्गम को।

जहाँ वे अंततः समाप्त होती हैं; और उनके विनाश (खया/क्षया) की ओर ले जाने वाले मार्ग को।
संवेदनाओं के क्षय/विनाश के साथ; भिक्षु भूख रहित और पूर्णतः तृप्त हो जाता है। 227

---

250. सुख
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखदायक वेदना, दुखदायक वेदना, और न दुखदायक न सुखदायक वेदना। ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं।

चाहे सुखदायक हो या दुखदायक; न दुखदायक न सुखदायक वेदना के साथ,
आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की, चाहे कोई भी वेदना हो: यह

जानकर कि "यह दुख है; नाशवान, विघटनशील,"
इन्हें बार-बार छूकर, इनके पतन को देखकर; व्यक्ति इनके प्रति अपनी आसक्ति खो देता है। 228

---

251. परित्याग (पहाना सं. प्राहन)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) होती हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखद संवेदना (वेदना), दुखदायी संवेदना (वेदना), और न दुखदायी न सुखद संवेदना (वेदना)। सुखद संवेदना (वेदना) के संबंध में काम (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय संस्कृत: अनुषय) का त्याग करना चाहिए। दुखदायी संवेदना (वेदना) के संबंध में घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय संस्कृत: अविद्या) का त्याग करना चाहिए। 229

“जब, भिक्षु सुखद संवेदना (वेदना) के संबंध में काम (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय), दुखदायी संवेदना (वेदना) के संबंध में घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय), और न दुखदायी न सुखद संवेदना (वेदना) के संबंध में अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुषय संस्कृत: अविद्या) का त्याग कर देता है, तब वह जिसे अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) के बिना भिक्षु कहा जाता है, 230 वह जो सही ढंग से देखता है। उन्होंने तृष्णा का नाश किया है, बंधनों को तोड़ा है, और अहंकार को पूर्णतः तोड़कर दुख का अंत किया है।

जब कोई सुख का अनुभव करता है,
यदि वह वेदना को नहीं समझता, तो
कामवासना की प्रवृत्ति बनी रहती है,
क्योंकि उसे इससे मुक्ति का मार्ग नहीं दिखाई देता।

जब कोई पीड़ा का अनुभव करता है,
यदि वह वेदना को नहीं समझता, तो
घृणा की प्रवृत्ति बनी रहती है,
क्योंकि उसे इससे मुक्ति का मार्ग नहीं दिखाई देता।

व्यापक अंतर्दृष्टि वाले ने
उस शांत वेदना के संदर्भ में शिक्षा दी है,
जो न पीड़ादायक है और न ही सुखदायक:
यदि कोई इसमें भी आनंद की तलाश करता है, तो
भी वह दुख से मुक्त नहीं होता। [206]

परन्तु जब कोई उत्साही भिक्षु
पूर्ण बोध (संपजन्न) की उपेक्षा नहीं करता, तो वह ज्ञानी व्यक्ति वेदना को पूर्णतः

समझ लेता है । वेदना को पूर्णतः समझ लेने के बाद वह दोषमुक्त हो जाता है। जीवन ही। धम्म (मार्ग, नियम) में खड़े होकर, शरीर के विखंडन के साथ, ज्ञान के स्वामी की गणना नहीं की जा सकती।

---

252. अथाह खाई (पाताल)
भिक्षुओं, जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहता है, 'महासागर में अथाह खाई है,' 232 तो वह किसी ऐसी चीज़ के बारे में ऐसा कहता है जो अस्तित्वहीन और अवास्तविक है। भिक्षुओं, यह वास्तव में कष्टदायक शारीरिक संवेदनाओं (वेदना) का नाम है, अर्थात् 'अथाह खाई'।

जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को कष्टदायक शारीरिक संवेदना (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह दुखी होता है, शोक करता है और विलाप करता है; वह रोता है, अपनी छाती पीटता है और व्याकुल हो जाता है। इसे अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति कहा जाता है जो अथाह खाई में ऊपर नहीं उठा है, जिसने वहाँ आधार नहीं पाया है।

लेकिन, भिक्षुओं, जब किसी दीक्षित शिष्य को वेदना का कष्टदायक शारीरिक अनुभव होता है, तो वह शोक, विलाप या शोक नहीं करता; वह रोता नहीं, सीना नहीं पीटता और व्याकुल नहीं होता। यही वह दीक्षित शिष्य कहलाता है जो अथाह सागर में ऊपर उठ गया है, जिसने वहाँ स्थान प्राप्त कर लिया है।

जो
उत्पन्न वेदनाओं,
जीवन को क्षीण करने वाली शारीरिक संवेदनाओं को सहन नहीं कर सकता, जो उनके
स्पर्श से कांप उठता है, जो

दुर्बल है
और जोर-जोर से रोता और विलाप करता है:
वह अथाह सागर में ऊपर नहीं उठा है,
न ही उसने वहाँ स्थान प्राप्त किया है।

परन्तु जो उन्हें सहन कर सकता है
- उत्पन्न वेदनाओं,
जीवन को क्षीण करने वाली शारीरिक संवेदनाओं को
- जो उनके स्पर्श से कांप नहीं उठता:
वह अथाह सागर में ऊपर उठ गया है
और उसने वहाँ स्थान भी प्राप्त कर लिया है।

---

253. देखा जाना चाहिए (दत्ताब्बा सं. दृष्टव्य)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ होती हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखद वेदना, कष्टदायक वेदना और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना। भिक्षुओं, सुखद वेदना को कष्टदायक समझना चाहिए; कष्टदायक वेदना को बाण के समान समझना चाहिए; और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना को क्षणभंगुर समझना चाहिए।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सुखद वेदना को कष्टदायक, कष्टदायक वेदना को बाण के समान और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना को क्षणभंगुर समझता है, तो वह सही दृष्टि वाला भिक्षु कहलाता है। उन्होंने तृष्णा का नाश कर दिया है, बंधनों को तोड़ दिया है, और अहंकार को पूर्णतः नष्ट करके दुखों का अंत कर दिया है।

जिसने सुख को दुखमय

और दुखमय को तीर के समान देखा है, जिसने
शांतिमय अनुभूति (वेदना) को क्षणभंगुर देखा है ,
जो न दुखमय है और न सुखमय:

वही सही दृष्टि वाला भिक्षु है,
जो संवेदनाओं (वेदना) को पूर्णतः समझता है।
संवेदनाओं (वेदना) को पूर्णतः समझकर,
वह इसी जीवन में दोषमुक्त है।
धर्म (मार्ग, नियम) में स्थिर रहकर, शरीर के विखंडन के साथ,
ज्ञान के स्वामी की गणना नहीं की जा सकती।

---

254. द डार्ट (सल्ला सं. शल्य)
भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को सुखद, कष्टदायी और न कष्टदायी तथा न सुखदायी अनुभूतियाँ होती हैं। ज्ञानी शिष्य को भी सुखद, कष्टदायी तथा न कष्टदायी तथा न सुखदायी अनुभूतियाँ होती हैं। तो, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में क्या अंतर है? "आदरणीय महोदय

, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण में लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध)
ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को वेदना का कष्टदायक अनुभव होता है, तो वह दुखी होता है, शोक करता है और विलाप करता है; वह छाती पीटते हुए रोता है और व्याकुल हो जाता है। उसे दो प्रकार का कष्ट (वेदना) होता है - एक शारीरिक और एक मानसिक। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को एक बाण से मारा जाए, और फिर तुरंत बाद दूसरे बाण से मारा जाए, जिससे उस व्यक्ति को दो बाणों के कारण होने वाला कष्ट (वेदना) अनुभव हो। इसी प्रकार, जब अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को वेदना का कष्टदायक अनुभव होता है... तो उसे दो प्रकार का कष्ट (वेदना) होता है - एक शारीरिक और एक मानसिक।

उसी कष्टदायक कष्ट (वेदना) के संपर्क में आने पर, वह उससे घृणा करता है। जब वह कष्टदायक कष्ट (वेदना) से घृणा करता है, तो इसके पीछे उस कष्टदायक कष्ट (वेदना) के प्रति अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) निहित होती है।" पीड़ादायक वेदना से ग्रस्त होकर वह इंद्रिय सुख में आनंद की तलाश करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को पीड़ादायक वेदना से मुक्ति का एकमात्र उपाय इंद्रिय सुख ही ज्ञात है। 235 जब वह इंद्रिय सुख में आनंद की तलाश करता है, तो इसके पीछे सुखदायक वेदना के प्रति कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) निहित होती है। वह इन वेदनाओं के उद्भव और अंत, सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति को सही ढंग से नहीं समझ पाता। जब वह इन बातों को नहीं समझता, तो इसके पीछे पीड़ादायक और सुखदायक दोनों प्रकार की वेदनाओं के प्रति अज्ञान (अविज्जा) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) निहित होती है।

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे आसक्त हो जाता है। यदि उसे कोई कष्टदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे आसक्त हो जाता है। यदि उसे न कष्टदायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे आसक्त हो जाता है। हे भिक्षुओं, इसे अज्ञानी सांसारिक कहा जाता है जो पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से आसक्त है; जो दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से आसक्त है; जो दुख से आसक्त है, मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओं, जब ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य को कोई कष्टदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह दुःख, शोक या विलाप नहीं करता; वह छाती पीट-पीटकर नहीं रोता और व्याकुल नहीं होता। 236 वह केवल एक अनुभूति (वेदना) का अनुभव करता है - शारीरिक अनुभूति, मानसिक नहीं। मान लीजिए कि वे किसी व्यक्ति को बाण से मारते हैं, लेकिन तुरंत बाद उसे दूसरे बाण से नहीं मारते, ताकि वह व्यक्ति केवल एक बाण से उत्पन्न अनुभूति (वेदना) का अनुभव करे। इसी प्रकार, जब दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य को कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है... तो उसे एक ही अनुभूति (वेदना) होती है - शारीरिक अनुभूति, मानसिक अनुभूति नहीं।

उस पीड़ादायक वेदना से संपर्क में आने पर भी, वह उसके प्रति कोई अरुचि नहीं रखता। चूंकि वह पीड़ादायक वेदना के प्रति अरुचि नहीं रखता, इसलिए पीड़ादायक वेदना के प्रति अरुचि की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) इसके पीछे नहीं है। पीड़ादायक वेदना से संपर्क में आने पर भी, वह इंद्रिय सुख में आनंद नहीं लेता। इसका कारण क्या है? क्योंकि शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य इंद्रिय सुख के अलावा पीड़ादायक वेदना से मुक्ति का मार्ग जानता है। चूंकि वह इंद्रिय सुख में आनंद नहीं लेता, इसलिए सुखदायक वेदना के प्रति कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति इसके पीछे नहीं है। वह इन संवेदनाओं (वेदना) के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे मुक्ति को यथावत समझता है। चूंकि वह इन बातों को समझता है, इसलिए न पीड़ादायक और न ही सुखदायक संवेदना (वेदना) के संबंध में अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) इसके पीछे नहीं है। इसके पीछे कुछ नहीं है।

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है। यदि उसे कोई कष्टदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है। यदि उसे न कष्टदायक और न सुखदायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर अनुभव करता है। हे भिक्षुओं, इसे ही वह श्रेष्ठ शिष्य कहते हैं जो पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से विरक्त है; जो दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से विरक्त है; जो पीड़ा से विरक्त है, मैं कहता हूँ।

हे भिक्षुओं, यही वह भेद, वह अंतर, वह अंतर है जो ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य और अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में है।"

ज्ञानी, विद्वान व्यक्ति
सुखद और कष्टदायक [मानसिक] अनुभूति (वेदना) का अनुभव नहीं करता। यही ज्ञानी और सांसारिक व्यक्ति
में बड़ा अंतर है । क्योंकि जो विद्वान धर्म (मार्ग, नियम) को समझ चुका है, जो इस संसार और परलोक को स्पष्ट रूप से देखता है, वह इससे विरक्त है।

वांछनीय धर्म (गुण, नियम) उनके मन को उत्तेजित नहीं करते।
अवांछनीय धर्मों के प्रति उनमें कोई घृणा नहीं है।

उनके लिए आकर्षण और विकर्षण का कोई अस्तित्व नहीं है;
दोनों का नाश हो चुका है।
धूल रहित, दुःख रहित अवस्था को जानकर,
भाव से परे जाने वाला व्यक्ति इसे सही ढंग से समझता है।

---

255. बीमार वार्ड (1) (गेलन्ना1)
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में शिखरनुमा छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और रोगी कक्ष में गए, जहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, एक भिक्षु को अपने समय की प्रतीक्षा ध्यानमग्न (सतिमा) और
पूर्णतः संबोधित (संपजानो) अवस्था में करनी चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

" "और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कैसे ध्यानमग्न होता है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यानमग्न अवस्था में, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न अवस्था में, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर निवास करता है।" वह ध्यानमग्न होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धर्म) पर घटनाओं पर ध्यान लगाते हैं; वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक (संपजानो) और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यानमग्न (सतिमा) होता है।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु वह है जो आगे बढ़ते और लौटते समय; आगे और पीछे देखते समय; अंगों को सिकोड़ते और फैलाते समय; वस्त्र धारण करते और ग्रहण-पात्र धारण करते समय; भोजन करते, पीते,

चबाते और चखते समय; शौच करते और मूत्र त्यागते समय; चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय पूर्ण बोध के साथ कार्य करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु पूर्ण बोध का अभ्यास करता है।

एक भिक्षु को अपने ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्ण बोध (संपजन्न) अवस्था में समय व्यतीत करना चाहिए।
यही हमारा आपको निर्देश है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो), सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, तब यदि उसमें कोई सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें एक सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न हुई है। अब यह अनुभूति आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? इसी शरीर पर आश्रित। परन्तु यह शरीर अनित्य, बद्ध (संखत), आश्रित उत्पत्ति का है। अतः जब सुखद अनुभूति (वेदना) अनित्य, बद्ध, आश्रित उत्पत्ति के शरीर पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह शरीर और वेदना में अनित्यता पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, वह पतन पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, वह मिटने पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, वह निरोध पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है और वह त्याग पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है। 238 इस प्रकार चिंतन करते हुए, वह शरीर और वेदना के संबंध में कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का त्याग कर देता है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो), सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, तब यदि उसमें कोई पीड़ादायक वेदना उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें पीड़ादायक वेदना उत्पन्न हुई है। अब यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इसी शरीर पर आश्रित। परन्तु यह शरीर अनित्य, बद्ध और आश्रित है। अतः जब पीड़ादायक वेदना अनित्य, बद्ध और आश्रित शरीर पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह शरीर और वेदना की अनित्यता पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है, पतन, क्षीणता, समाप्ति और त्याग पर चिंतन करता है। इस प्रकार चिंतन करते हुए, शरीर और वेदना के प्रति घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति का वह त्याग कर देता है। भिक्षुओं, जब

कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न होकर, पूर्णतः संबोधित होकर, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ चिंतन करता है, यदि उसमें कोई ऐसी वेदना उत्पन्न होती है जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तो वह उसे इस प्रकार समझता है: '
मुझमें एक ऐसी वेदना उत्पन्न हुई है जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी।' यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इसी शरीर पर आश्रित। परन्तु यह शरीर अनित्य, संखत और आश्रित है। अतः जब सुखहीन वेदना (न तो सुखदायक और न ही सुखदायक) एक अनित्य, संभलित और आश्रित शरीर पर निर्भर होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह शरीर और सुखहीन वेदना की अनित्यता पर ध्यान लगाता है, वह पतन, क्षीणता, निरोध और त्याग पर ध्यान लगाता है। इस प्रकार ध्यान लगाने से शरीर और सुखहीन वेदना के प्रति अज्ञान की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का वह त्याग कर देता है।

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है:
'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है:
'इससे कोई लगाव नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।'

यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, उसे यह अलग-थलग महसूस होता है।

जब भिक्षु को शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है:
'मुझे शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) हो रही है।' जब भिक्षु को जीवन से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे जीवन से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) हो रही है।' वह समझता है: 'जीवन के समाप्त होने के बाद, शरीर के टूटने से, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं ठंडा हो जाएगा।' हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जलता है, और तेल और बाती के समाप्त होने पर ईंधन की कमी के कारण बुझ जाता है, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब भिक्षु को शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है... जीवन से जुड़ी हुई... तो वह

समझता है: 'जीवन के समाप्त होने के बाद, शरीर के टूटने से, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं ठंडा हो जाएगा।'

---

256. बीमार वार्ड (2) (गेलन्ना2)
(जैसा कि पिछले सूत्र में दूसरे आदेश तक बताया गया है:)

"भिक्षु को ध्यानमग्न और पूर्णतः बोधगम्य रहते हुए अपने समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए।
यही हमारा आपको निर्देश है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न, पूर्णतः बोधगम्य, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, यदि उसमें कोई सुखद वेदना उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें एक सुखद वेदना उत्पन्न हुई है। अब यह वेदना आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इस संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) पर आश्रित। परन्तु यह संपर्क क्षणिक, संखतो और आश्रित है।" अतः जब सुखदायक अनुभूति (वेदना) किसी अनित्य, बद्ध और आश्रित संपर्क पर निर्भर होकर उत्पन्न हुई हो, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यान लगाकर, संपर्क (फस/स्पर्श) और सुखदायक अनुभूति (वेदना) पर चिंतन करता है; वह पतन, लुप्त होने, निरोध और त्याग पर चिंतन करता है। इस प्रकार चिंतन करते हुए, संपर्क (फस/स्पर्श) और सुखदायक अनुभूति (वेदना) के संबंध में कामवासना (राग) की अंतर्निहित प्रवृत्ति का वह त्याग कर देता है।

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी अवस्था में रहता है, यदि उसमें कोई पीड़ादायक वेदना उत्पन्न होती है, तो वह इस प्रकार समझता है: मुझमें पीड़ादायक वेदना उत्पन्न हुई है। अब यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इस स्पर्श पर आश्रित। परन्तु यह स्पर्श क्षणिक, बद्ध और आश्रित है। अतः जब पीड़ादायक वेदना क्षणिक, बद्ध और आश्रित स्पर्श पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो वह स्थायी कैसे हो सकती है? वह ध्यानमग्न होकर अनित्यता, स्पर्श और पीड़ादायक संवेदनाओं पर ध्यान लगाता है; वह पतन, क्षीणता, समाप्ति और त्याग पर ध्यान लगाता है। इस प्रकार ध्यान लगाने से, स्पर्श और पीड़ादायक संवेदनाओं के प्रति अरुचि की अंतर्निहित प्रवृत्ति का वह त्याग कर देता है।

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इस प्रकार ध्यानमग्न होकर, पूर्णतः संबोधित होकर, सजग होकर, उत्साही और दृढ़ संकल्पित होकर ध्यान लगाता है, यदि उसमें न पीड़ादायक और न ही सुखदायक संवेदना उत्पन्न होती है, तो वह उसे इस प्रकार समझता है:
मुझमें एक ऐसी अनुभूति (वेदना) उत्पन्न हुई है जो न तो कष्टदायक है और न ही सुखदायक। यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? केवल इस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) पर आश्रित। परन्तु यह स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) अनित्य, संखतो और आश्रित रूप से उत्पन्न है। तो जब यह न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) एक अनित्य, संखतो और आश्रित रूप से उत्पन्न स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) पर आश्रित होकर उत्पन्न हुई है, तो यह स्थायी कैसे हो सकती है? वह स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) और न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) की अनित्यता पर ध्यान केंद्रित करते हुए, पतन पर ध्यान केंद्रित करते हुए, क्षीण होने पर ध्यान केंद्रित करते हुए, निरोध पर ध्यान केंद्रित करते हुए और त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए चिंतन करते हैं। इस प्रकार चिंतन करते हुए, स्पर्श और पीड़ादायक एवं सुखदायक वेदना के संबंध में अंतर्निहित अज्ञान की प्रवृत्ति (अनुसय) का वह त्याग कर देता है।

"यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... तो वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न मिलने के कारण वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'"

---

257. अनित्य (अनिका सं. अनित्य)
भिक्षुओं, ये तीनों वेदनाएँ अनित्य, संबद्ध, आश्रितता से उत्पन्न, क्षय/नष्ट होने वाली, क्षीणता के अधीन, लुप्त होने वाली और निरोध के अधीन हैं। ये तीन क्या हैं? सुखद, दुखदायी और न दुखदायी। ये तीनों वेदनाएँ अनित्य, संबद्ध, आश्रितता से उत्पन्न, क्षय/नष्ट होने वाली, क्षीणता के अधीन, लुप्त होने वाली और निरोध के अधीन हैं।

---

258. संपर्क में निहित (फस्सामुलका सं. स्पर्श-मुलक)
भिक्षुओं, ये तीन संवेदनाएँ (वेदनाएँ) संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) से उत्पन्न होती हैं, और संपर्क ही इनका स्रोत और कारण है। ये तीन संवेदनाएँ कौन सी हैं? सुखद संवेदना (वेदना), कष्टदायक संवेदना (वेदना), और न कष्टदायक न सुखद संवेदना (वेदना)।

भिक्षुओं, सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फसस्पर्श) के आधार पर एक सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। उस सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फसस्पर्श) के निरोध (निरोध) के साथ ही, उससे संबंधित संवेदना (वेदना) - यानी उस सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फसस्पर्श) के आधार पर उत्पन्न हुई सुखद संवेदना (वेदना) - समाप्त हो जाती है।

किसी कष्टदायक स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण कष्टदायक वेदना उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित वेदना - यानी उस कष्टदायक स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई कष्टदायक वेदना - समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है। किसी

न कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण भी कष्टदायक और न सुखदायक वेदना उत्पन्न होती है। उस कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के समाप्त होने पर, उससे संबंधित वेदना - यानी उस कष्टदायक और न सुखदायक स्पर्श के कारण उत्पन्न हुई कष्टदायक वेदना - समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के आपस में टकराने और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और आग निकलती है, परन्तु जब लकड़ियों को अलग करके रख दिया जाता है तो उत्पन्न ऊष्मा शांत हो जाती है; 240 उसी प्रकार ये तीनों वेदनाएँ स्पर्श से उत्पन्न होती हैं, स्पर्श में ही निहित होती हैं और स्पर्श ही इनका स्रोत और कारण है। उचित संपर्कों (इंद्रिय विषयों से स्पर्श) पर निर्भर करते हुए, संबंधित वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं; उचित संपर्कों के समाप्त होने पर संबंधित वेदनाएँ भी समाप्त हो जाती हैं।

(ii) अकेला खंड (राहोगतावगो)
259. अकेला (रहोगता)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: भगवान (बुद्ध) ने तीन वेदियों का वर्णन किया है:

सुखद वेदियां, दुखदायी वेदियां और न दुखदायी न सुखदायी वेदियां। इन तीन वेदियों का वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है। लेकिन भगवान (बुद्ध) ने कहा है: "जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, वह दुख में शामिल है।" अब भगवान (बुद्ध) ने यह किस संदर्भ में कहा है?"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! मैंने इन तीन वेदियों का वर्णन किया है: सुखद वेदियां, दुखदायी वेदियां और न दुखदायी न सुखदायी वेदियां। मैंने इन तीन वेदियों का वर्णन किया है। और मैंने यह भी कहा है: 'जो कुछ भी महसूस किया जाता है, वह दुख में शामिल होता है।' यह मैंने संस्कार (कर्म संस्कार, व्यवहार-आदतों) की अनित्यता (अनिच्च संस्कृत अनित्य) के संदर्भ में कहा है। यह मैंने संस्कार (व्यवहार-आदतों) के क्षय/विनाश (खय/क्षय) के अधीन होने, संस्कार (व्यवहार-आदतों) के पतन के अधीन होने, संस्कार (व्यवहार-आदतों) के लुप्त होने, संस्कार (व्यवहार-आदतों) के निरोध (समाप्ति) के अधीन होने और संस्कार (व्यवहार-आदतों) के परिवर्तन के अधीन होने के संदर्भ में कहा है। 241

"तो, भिक्षु, मैंने संस्कार (कर्म संस्कार, बाध्यकारी-व्यवहार-आदतों) की क्रमिक समाप्ति का भी उपदेश दिया है।" 242 प्रथम ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का वाणी का अंत हो जाता है। द्वितीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का विचार और परीक्षण समाप्त हो जाते हैं। तृतीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पीति/प्रीति आनंद समाप्त हो जाता है। चतुर्थ ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति का श्वास लेना और श्वास छोड़ना समाप्त हो जाता है। अनंत आकाश की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का रूप-बोध समाप्त हो जाता है। अनंत चेतना की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का अनंत आकाश की अनुभूति समाप्त हो जाती है। शून्यता की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का अनंत चेतना की अनुभूति समाप्त हो जाती है। न-बोध-न-अनुभूति की अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति का शून्यता की अनुभूति समाप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति ने बोध और संवेदना का अंत (वेदना) प्राप्त कर लिया है, उसके लिए बोध और संवेदना का अंत हो जाता है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का अंत हो जाता है।

हे भिक्षु, मैंने कर्म संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार संबंधी आदतों) के क्रमिक शांत होने का भी उपदेश दिया है। प्रथम ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की वाणी शांत हो जाती है। वेदना और बोध की शांति प्राप्त करने वाले की बोध और बोध शांत हो जाते हैं। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसकी राग शांत हो जाती है, द्वेष शांत हो जाता है और मोह शांत हो जाता है।

हे भिक्षु, ये छह प्रकार की शांति हैं। प्रथम ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की वाणी शांत हो जाती है। द्वितीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले के विचार और परीक्षा शांत हो जाते हैं। तृतीय ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की पीति शांत हो जाती है। चतुर्थ ध्यान अवस्था प्राप्त करने वाले की श्वास और श्वास शांत हो जाते हैं। जिस व्यक्ति ने बोध और संवेदना का अंत (वेदना) प्राप्त कर लिया है, उसकी बोध और संवेदना शांत हो जाती हैं। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसकी कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) शांत हो जाते हैं।

---

260. आकाश (1) (अकासा1)
भिक्षुओं, जैसे आकाश में अनेक प्रकार की हवाएँ चलती हैं: पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, धूल भरी और निर्जलित, ठंडी और गर्म, हल्की और तेज़; वैसे ही इस शरीर में भी अनेक प्रकार की वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं: सुखद, कष्टदायक और न कष्टदायक, न सुखदायक।

जैसे
आकाश में अनेक प्रकार की हवाएँ चलती हैं।
पूर्व से और पश्चिम से।
उत्तर से और दक्षिण से।

धूल भरी और निर्जलित।
कभी ठंडी, कभी गर्म। कभी
तेज़, कभी हल्की -
अनेक प्रकार की हवाएँ चलती हैं;

वैसे ही इस शरीर में भी
अनेक प्रकार की वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं।
सुखद और कष्टदायक।
और न कष्टदायक, न सुखदायक।

परन्तु जब कोई उत्साही भिक्षु
पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) की उपेक्षा नहीं करता।
तब वह ज्ञानी व्यक्ति
सभी संवेदनाओं (वेदना) को पूर्णतः समझ लेता है।

वेदना को पूर्णतः समझ लेने के कारण
वह इसी जीवन में दोषमुक्त हो जाता है।
शरीर के विखंडन के बावजूद धर्म (मार्ग, नियम) में स्थिर रहने वाले
उस ज्ञानी व्यक्ति की कोई सामर्थ्य नहीं होती।

---

261. आकाश (2) (अकासा2)
(पिछला पाठ समान है, लेकिन श्लोकों के बिना।)
"भिक्षुओं, जैसे आकाश में विभिन्न प्रकार की हवाएँ चलती हैं: पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, धूल भरी और निर्जलित हवाएँ, ठंडी और गर्म हवाएँ, हल्की और तेज हवाएँ; वैसे ही इस शरीर में विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं: सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, न दुखदायी और न सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है।"

---

262. गेस्ट हाउस (अगारा)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक अतिथिगृह है। लोग पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से आकर वहाँ ठहरते हैं; क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस और शुद्ध आकर वहाँ ठहरते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओं, इस शरीर में विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं: सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है, न दुखदायी न सुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापी सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापी दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापी न दुखदायी न सुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है;

पापरहित सुखद संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापरहित दुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; पापरहित न दुखदायी न सुखदायी संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। 244

---

263. आनंद (1)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, वेदना क्या है? वेदना का उद्गम क्या है? वेदना का निरोध क्या है? वेदना के निरोध का मार्ग क्या है? वेदना में सांसारिक सुख क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे कैसे बचा जा सकता है?"

आनंद, ये तीन वेदनाएँ - सुखदायक वेदना, दुखदायक वेदना और न दुखदायक, सुखदायक वेदना - वेदना कहलाती हैं। इंद्रियों का विषय से संपर्क होने पर वेदना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि (एसएन5:8 के अनुसार) और सही समाधि अवस्था। वेदना पर निर्भर सुख और आनंद उत्पन्न होने पर, यही वेदना में सांसारिक सुख है। वह वेदना क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है; यही वेदना में खतरा है। इच्छा और राग का त्याग और निवारण। वेदना: यही वेदना से मुक्ति है।

"तो, आनंद, मैंने कर्म संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार) के क्रमिक निवारण का भी उपदेश दिया है... (जैसा कि 259 में है)... जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसकी कामवासना शांत हो जाती है, द्वेष शांत हो जाता है और मोह शांत हो जाता है।"

---

264. आनंद (2)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान (बुद्ध) ने बैठे हुए ही पूज्य आनंद से कहा,
“आनंद, वेदना क्या है? वेदना का उद्गम क्या है? वेदना का निरोध क्या है? वेदना के निरोध का मार्ग क्या है? वेदना में सांसारिक सुख क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे कैसे बचा जा सकता है?”

“पूज्यवर, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।” “

तो सुनो और ध्यान लगाओ (मनसिकारो), आनंद। मैं बोलूंगा।”

"जी, पूज्यवर," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"आनंद, ये तीन वेदनाएँ - सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, और न दुखदायी न सुखद वेदना - वेदना कहलाती हैं..."
(जैसा कि पिछले सूत्र में है)

265-266. कई भिक्षु
('ये दोनों सूत्र 263-264 के समान हैं, सिवाय इसके कि प्रत्येक में आनंद के स्थान पर "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।')

---

267. पंचकंगा
नोट: धारणा को धारणा के रूप में पढ़ें (संज्ञा संस्कृत)।
तब बढ़ई पाːचकːग पूज्य उदयि के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे पूछा,
"पूज्य उदयि, भगवान (बुद्ध) ने कितने प्रकार की संवेदनाओं (वेदनाओं) का वर्णन किया है?" 245

"हे बढ़ई, भगवान (बुद्ध) ने तीन प्रकार की संवेदनाओं (वेदनाओं) का वर्णन किया है: सुखद संवेदना (वेदना), पीड़ादायक संवेदना (वेदना), और न पीड़ादायक न सुखद संवेदना (वेदना)। ये तीन प्रकार की संवेदनाएं (वेदनाएं) हैं जिनका वर्णन भगवान (बुद्ध) ने किया है।"

यह सुनकर बढ़ई पंचकंग ने पूज्य उदयि से कहा, “हे उदयि, भगवान (बुद्ध) ने तीन प्रकार की वेदनाओं की बात नहीं की है। उन्होंने दो प्रकार की वेदनाओं की बात की है: सुखद वेदना और पीड़ादायक वेदना। हे पूज्य, इस न पीड़ादायक और न ही सुखद वेदना के विषय में भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि यह शांति और परम सुख में समाहित है।”

पूज्य उदयि ने दूसरी और तीसरी बार अपना मत रखा, और बढ़ई पंचकंग ने भी दूसरी और तीसरी बार अपना मत रखा, परन्तु न तो पूज्य उदयि बढ़ई पंचकंग को मना सके और न ही बढ़ई पंचकंग पूज्य उदयि को।

पूज्य आनंद ने पूज्य उदयि और बढ़ई पंचकंग के बीच यह वार्तालाप सुना। फिर वह भगवान (बुद्ध) के पास गया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) को पूरी बातचीत बताई।
[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"आनंद, यह व्याख्या की एक सच्ची विधि थी जिसे बढ़ई पंचकंग ने भिक्षु उदयि से स्वीकार नहीं किया, और यह व्याख्या की एक सच्ची विधि थी जिसे भिक्षु उदयि ने बढ़ई पंचकंग से स्वीकार नहीं किया। मैंने दो प्रकार की वेदनाओं का वर्णन एक विधि से किया है; मैंने तीन प्रकार की वेदनाओं का वर्णन दूसरी विधि से किया है; मैंने पाँच प्रकार की वेदनाओं ... छह प्रकार की वेदनाओं ... अठारह प्रकार की वेदनाओं ... छत्तीस प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है; [225] और मैंने एक सौ आठ प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है। इस प्रकार, आनंद, मैंने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश विभिन्न विधियों से दिया है।" 246

जब मैंने धम्म को विभिन्न व्याख्या विधियों से इस प्रकार समझाया है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो लोग दूसरों द्वारा कही गई और अच्छी बातों को स्वीकार नहीं करेंगे, वे विवाद करेंगे, झगड़े करेंगे और एक-दूसरे पर शब्दों के वार करते रहेंगे। लेकिन जब मैंने धम्म को विभिन्न व्याख्या विधियों से इस प्रकार समझाया है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो लोग दूसरों द्वारा कही गई और अच्छी बातों को स्वीकार करेंगे, वे एक-दूसरे का सम्मान करेंगे, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह एक होकर, एक-दूसरे को प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए, सद्भाव से रहेंगे।

आनंद, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? वे रूप जो आँखों से दिखाई देते हैं, जो आकर्षक, प्यारे, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक होते हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित होने वाली वस्तुएँ जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजित करने वाली हों। ये पाँच इंद्रिय सुख के सूत्र हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख के सूत्रों पर निर्भर सुख और आनंद को ही इंद्रिय सुख कहते हैं।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं', मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि एक अन्य प्रकार का सुख है जो इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है। यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं', मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि एक अन्य प्रकार का सुख है जो इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, यहाँ विचार और चिंतन के शांत होने पर भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से परिपूर्ण है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद और सुख से युक्त है। यह उस प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' लेकिन मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि एक और प्रकार का सुख है जो इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, जब पीति/प्रीति भी लुप्त हो जाती है, तब एक भिक्षु समभाव में रहता है, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित होकर वह शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह उस तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और निवास करता है जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में रहने वाला, ध्यानमग्न और सुखी है।' यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' लेकिन मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि उस सुख से भी श्रेष्ठ और उच्च कोटि का एक अन्य सुख है। और वह अन्य प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, सुख और दुःख के त्याग के साथ, और पहले से ही सुख और अप्रसन्नता के दूर हो जाने के बाद, भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता

है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और जिसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि शामिल है। यही वह अन्य प्रकार का सुख है जो पहले वाले सुख से भी श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। 247

"यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यही परम सुख (सुख) और आनंद (सोमनस्स) है जिसका प्राणी अनुभव करते हैं,' मैं उन्हें यह स्वीकार नहीं करता। ऐसा क्यों? क्योंकि उस सुख से भी श्रेष्ठ और उच्च कोटि का एक अन्य सुख है। और वह अन्य प्रकार का सुख क्या है? यहां, आनंद, रूप-बोध से पूर्ण रूप से मुक्त होकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) से मुक्त होकर, विविधता के बोधों पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है', एक भिक्षु अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यह उस प्रकार का दूसरा सुख है जो पहले वाले सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' लेकिन मैं इससे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का सुख है। और वह दूसरा सुख क्या है? हे आनंद, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना अनंत है,' भिक्षु अनंत चेतना की अनुभूति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह दूसरा सुख है जो पहले वाले सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' मैं इससे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक उत्कृष्ट और उदात्त एक अन्य प्रकार का सुख है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, चेतना की अनंतता की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं' का ज्ञान प्राप्त करके, एक भिक्षु शून्यता की अनुभूति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले वाले सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।

कुछ लोग भले ही कहें, 'यही परम सुख और सोमनस्सा है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं,' मैं इससे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक उत्कृष्ट और उदात्त एक अन्य प्रकार का सुख है। और वह दूसरा प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, यहाँ भिक्षु शून्यता की भावना को पूर्णतः पार करके, न-बोध-न-बोध की भावना में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह दूसरा प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक उत्कृष्ट और उदात्त है।

"यद्यपि कुछ लोग कहें कि 'यही परम सुख और आनंद है जिसका अनुभव प्राणी करते हैं', मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि इस सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का एक अन्य प्रकार का सुख है। और वह अन्य प्रकार का सुख क्या है? हे आनंद, यहाँ, न-बोध-न-बोध की शक्ति को पूर्णतः पार करके, भिक्षु बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (निरोध) में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। यही वह अन्य प्रकार का सुख है जो पहले प्रकार के सुख से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च कोटि का है। 248

"अब, हे आनंद, यह संभव है कि अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार कहें: 'तपस्वी गौतम बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध की बात करते हैं, और उनका मानना है कि यह सुख में समाहित है। वह क्या है? वह कैसे है?'" जब अन्य संप्रदायों के तपस्वी ऐसा कहें, हे आनंद, तो उन्हें यह कहा जाना चाहिए: 'हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) सुख की अवस्था का वर्णन केवल सुखद अनुभूति (वेदना) के संदर्भ में ही नहीं करते। बल्कि, हे मित्रों, जहाँ कहीं भी और जिस भी रूप में सुख पाया जाता है, तथागत उसका वर्णन सुख में शामिल होने के रूप में करते हैं।' 249

---

268. भिक्षु
"भिक्षुओं, मैंने दो प्रकार की संवेदनाओं (वेदनाओं) का वर्णन एक ही विधि से किया है... इस प्रकार, भिक्षुओं, मैंने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश विभिन्न विधियों से दिया है..."

(पिछला सूत्र पूर्ण है।)

(iii) एक सौ आठ (अत्थासतपरियायवग्गो) का विषय
269. शिवका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब तपस्वी मोलियाशिवका भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। 250 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले:

“गुरु गौतम, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का मत और मत रखते हैं: 'व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है, चाहे वह सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी, वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है।' 251 इस विषय में गुरु गौतम क्या कहते हैं?”

"शिवका, यहाँ पित्त विकारों से कुछ संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं: यह स्वयं ज्ञात है, और संसार में इसे सत्य माना जाता है। अब जब वे तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं, 'व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है, चाहे वह सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी, वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है,' तो वे स्वयं के ज्ञान से परे जाते हैं और संसार में जो सत्य माना जाता है, उससे भी परे जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह मत गलत है। 252

"शिवका, यहाँ कफ विकारों से कुछ संवेदनाएँ (वेदनाएँ) उत्पन्न होती हैं... वायु विकारों से उत्पन्न होती हैं..." उपरोक्त तीनों के असंतुलन से उत्पन्न... जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न... लापरवाही भरे व्यवहार से उत्पन्न... हमले से उत्पन्न... कर्म के फलस्वरूप उत्पन्न: कुछ संवेदनाएँ (वेदना) यहाँ कर्म के फलस्वरूप कैसे उत्पन्न होती हैं, यह स्वयं ज्ञात है, और संसार में यही सत्य माना जाता है। 253 अब जब वे तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं, 'व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है, चाहे वह सुखद हो या दुखदायी या न दुखदायी न सुखदायी, वह सब अतीत में किए गए कर्मों के कारण होता है,' तो वे स्वयं के ज्ञान से परे जाते हैं और संसार में जो सत्य माना जाता है, उससे भी परे जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह मत गलत है।'

यह सुनकर तपस्वी मोलियाशिवका ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! हे महान गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।

पित्त, कफ और वात।
असंतुलन और जलवायु भी,
लापरवाही और आक्रमण,
और कर्म का फल आठवां है।

---

270. एक सौ आठ (अत्थासता) का विषय
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक सौ आठ विषयों पर धर्म की व्याख्या दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, एक सौ आठ विषयों पर धर्म की व्याख्या क्या है? मैंने दो प्रकार की वेदनाओं का वर्णन एक विधि से किया है; मैंने तीन प्रकार की वेदनाओं का वर्णन दूसरी विधि से किया है; मैंने पाँच प्रकार की वेदनाओं, छह प्रकार की वेदनाओं, अठारह प्रकार की वेदनाओं और छत्तीस प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है; और मैंने एक सौ आठ प्रकार की वेदनाओं का वर्णन तीसरी विधि से किया है।"

भिक्षुओं, दो प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? शारीरिक और मानसिक। इन्हें दो प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है।

भिक्षुओं, तीन प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, न दुखदायी न सुखद वेदना। इन्हें तीन प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। भिक्षुओं

, पाँच प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? सुख, दुख, आनंद, दुःख और समभाव। इन्हें पाँच प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। 254 भिक्षुओं

, छह प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदनाएँ... मन संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदनाएँ। इन्हें छह प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, अठारह प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? आनंद से युक्त छह परीक्षाएँ, अप्रसन्नता से युक्त छह परीक्षाएँ, समभाव से युक्त छह परीक्षाएँ। इन्हें अठारह प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। 255

"और हे भिक्षुओं, छत्तीस प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? गृहस्थ जीवन पर आधारित छह प्रकार का आनंद, त्याग पर आधारित छह प्रकार का आनंद; गृहस्थ जीवन पर आधारित छह प्रकार की अप्रसन्नता, त्याग पर आधारित छह प्रकार की अप्रसन्नता; गृहस्थ जीवन पर आधारित छह प्रकार का समभाव, त्याग पर आधारित छह प्रकार का समभाव। इन्हें छत्तीस प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। 256

"और हे भिक्षुओं, एक सौ आठ प्रकार की वेदनाएँ क्या हैं? भूतकाल की छत्तीस वेदनाएँ, भविष्य की छत्तीस वेदनाएँ और वर्तमान की छत्तीस वेदनाएँ। इन्हें ही एक सौ आठ प्रकार की वेदनाएँ कहा जाता है। हे

भिक्षुओं, यही एक सौ आठ प्रकार की वेदनाओं पर धम्म की व्याख्या है।"

---

271. एक निश्चित भिक्खु (अन्नताराभिक्कु)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, वेदना क्या है? वेदना का उद्गम क्या है? वेदना के उद्गम की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? वेदना का निरोध क्या है? वेदना के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? वेदना में सांसारिक सुख क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे कैसे बचा जा सकता है?"

हे भिक्षु, तीन प्रकार की वेदनाएँ होती हैं: सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना और न कष्टदायक, न सुखदायक वेदना। इन्हें ही वेदना कहते हैं। इंद्रियों के स्पर्श से वेदना उत्पन्न होती है। तृष्णा वेदना की उत्पत्ति का मार्ग है। स्पर्श समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना की समाप्ति का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था (देखें SN5:8)। वेदना

पर निर्भर सुख और आनंद से उत्पन्न होने वाला सुख ही वेदना में सांसारिक सुख है। वह वेदना क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वेदना का खतरा है। वेदना के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग करना ही वेदना से मुक्ति है।

---

272. पहले (पब्बा सं. पूर्व)
भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: "सम्मोहन (वेदना) क्या है? इसका उद्गम क्या है? इसके उद्गम की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? संवेदना का निरोध क्या है? संवेदना के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? संवेदना में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है? इसमें क्या खतरा है? इससे मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है?"

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'ये तीन संवेदनाएँ हैं... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... यही संवेदना से मुक्ति का मार्ग है।'"

---

273. ज्ञान (नाना सं. ज्ञान)
"'ये संवेदनाएँ (वेदनाएँ) हैं': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (मार्ग, नियम) के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह संवेदना (वेदना) का उद्गम है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह संवेदना (वेदना) के उद्गम की ओर ले जाने वाला मार्ग है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह संवेदना (वेदना) का निरोध है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"'यही वह मार्ग है जो वेदना के निवारण की ओर ले जाता है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यही वेदना में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत असवाद) है'... 'यही वेदना में खतरा है'... 'यही वेदना से मुक्ति है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

---

274. अनेक भिक्खु (सम्बहुलाभिक्कु)
(यह 271 के समान ही है, सिवाय इसके कि इसमें "एक निश्चित भिक्षु" के बजाय "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।)

---

275. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना, और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना।

वे तपस्वी या ब्राह्मण भिक्षु, जो इन तीनों वेदनाओं के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के मार्ग को यथार्थ रूप में नहीं समझते: 258 इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

लेकिन, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (गुणों, नियमों) को उनके वास्तविक स्वरूप में समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

276. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
"वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन तीन संवेदनाओं (वेदना) के मामले में उत्पत्ति और अपक्षय, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), भय और उससे मुक्ति को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (गुणों, नियमों) को यथावत समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते और निवास करते हैं।" ब्राह्मणत्व।"

---

277. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
"जो तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, वेदना, उसके उद्गम, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी नहीं मानता... और न ही वे तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

" "परन्तु, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण, वेदना, उसके उद्गम, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं, उन्हें मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी मानता हूँ... और वे तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

278. सरल संस्करण (शुद्धिका)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की संवेदनाएँ (वेदनाएँ) हैं। वे तीन कौन सी हैं? सुखद संवेदना (वेदना), पीड़ादायक संवेदना (वेदना), और न पीड़ादायक न सुखद संवेदना (वेदना)? 259

---

279. निष्पाप (निरामी)
भिक्षुओं, पापमय आनंद (पीति/प्रीति) है, निष्पाप आनंद है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप आनंद है। पापमय सुख (सुख) है, निष्पाप सुख है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप सुख है। पापमय समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) है, निष्पाप समभाव (उपेक्खा) है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप समभाव (उपेक्खा) है। पापमय मुक्ति (विमोक्ष/विमोक्ष) है, निष्पाप मुक्ति है, और निष्पाप से भी अधिक निष्पाप मुक्ति है।

और हे भिक्षुओं, पापमय आनंद क्या है? हे भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? वे रूप जो आँख से देखे जा सकते हैं... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए)। शरीर द्वारा अनुभव की जा सकने वाली स्पर्शनीय वस्तुएँ जो वांछनीय, प्यारी, सुखद, मनभावन, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाला आनंद पापमय आनंद (पीति/प्रीति) कहलाता है।

भिक्षुओं, निष्पाप आनंद क्या है? यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो विचार और चिंतन से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन से

युक्त होता है, विचार और चिंतन से रहित होता है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। इसे निष्पाप आनंद कहते हैं।

भिक्षुओं, निष्पाप से भी अधिक निष्पाप आनंद क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, कामवासना (राग) से मुक्त, घृणा (दोष/द्वेष) से मुक्त, मोह (मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो आनंद उत्पन्न होता है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप आनंद कहा जाता है। 260

"और, भिक्षुओं, पापमय सुख क्या है? भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? आँखों से दिखाई देने वाले रूप... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श के लिए)... शरीर द्वारा अनुभव की जाने वाली स्पर्शनीय वस्तुएँ जो वांछनीय, प्यारी, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभाने वाली, उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों पर निर्भर रहने वाला सुख: इसे पापमय सुख कहा जाता है।

और, भिक्षुओं, निष्पाप सुख क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर... एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है... द्वितीय ध्यान में... आनंद के लुप्त हो जाने पर, वह समभाव और ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हुए, और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर, शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव और ध्यानमग्न है, सुखी है। इसे निष्पाप सुख कहा जाता है।'

हे भिक्षुओं, निष्पाप से भी अधिक निष्पाप सुख क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हों, कामवासना (राग) से मुक्त, द्वेष (दोष/मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो सुख उत्पन्न होता है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप सुख कहते हैं। हे

भिक्षुओं, पापमय समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) क्या है? हे भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। कौन सी पाँच? वे रूप जो आँख से दिखाई देते हैं (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श से)... स्पर्शनीय वस्तुएँ जो वांछनीय, सुंदर, मनभावन, सुखद, इंद्रिय-लुभावन और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाला समभाव (उपेक्खा) ही पापमय समभाव कहलाता है।

हे भिक्षुओं, निष्पाप समभाव क्या है? सुख-दुख का त्याग करने और उससे पहले सुख-दुख के बीत जाने पर भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव द्वारा ध्यान की शुद्धि को समाहित करता है। हे

भिक्षुओं, निष्पाप से भी अधिक निष्पाप समभाव क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, कामवासना (राग) से मुक्त, घृणा (दोष/द्वेष) से मुक्त और मोह (मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो समभाव उत्पन्न होता है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप समभाव कहा जाता है।

"हे भिक्षुओं, पाप से मुक्ति क्या है? रूप से संबंधित मुक्ति पाप से मुक्ति है। हे

भिक्षुओं, निष्पाप मुक्ति क्या है? निराकार से संबंधित मुक्ति निष्पाप मुक्ति है। 261 "हे भिक्षुओं, निष्पाप

से भी अधिक निष्पाप मुक्ति क्या है? जब कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो गए हों, कामवासना (राग) से मुक्त, द्वेष (दोष/मोह) से मुक्त, मोह (मोह) से मुक्त अपने मन का चिंतन करता है, तो मुक्ति प्राप्त होती है। इसे निष्पाप से भी अधिक निष्पाप मुक्ति कहते हैं।"

अध्याय 3: महिलाओं पर संबंधित प्रवचन (मतुगमसाम्युत्त) {साम्युत्त-37}

(i) प्रथम पुनरावृत्ति श्रृंखला (अनुरुद्ध के लिए: (i) अंधकार पक्ष)

280. महिलाएं (मातुगामा)

भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत अप्रिय लगती है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह सुंदर नहीं होती, धनी नहीं होती, गुणी नहीं होती; वह आलसी होती है; और वह संतान उत्पन्न नहीं करती। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत अप्रिय लगती है।

भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत सुखद लगती है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह सुंदर, धनी और गुणी होती है; वह चतुर और परिश्रमी होती है; और वह संतान उत्पन्न करती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं तो वह पुरुष को अत्यंत सुखद लगती है।

---

281. पुरुष (पुरिसा)

भिक्षुओं, जब किसी पुरुष में पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह सुंदर नहीं होता, धनी नहीं होता, गुणी नहीं होता; वह आलसी होता है; और वह संतान उत्पन्न नहीं करता। जब किसी पुरुष में ये पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है।

भिक्षुओं, जब किसी पुरुष में पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है। वे पाँच गुण कौन से हैं? वह सुंदर, धनी और गुणी होता है; वह चतुर और परिश्रमी होता है; और वह संतान उत्पन्न करता है। जब किसी पुरुष में ये पाँच गुण होते हैं तो वह स्त्री को अत्यंत अप्रिय लगता है।

---

282. विचित्र (एवेनिकडुक्खा)

भिक्षुओं, पाँच प्रकार के ऐसे कष्ट हैं जो केवल स्त्रियों को होते हैं, 262 और जो पुरुषों को नहीं होते। वे पाँच कौन से हैं?

"हे भिक्षुओं, युवावस्था में भी एक स्त्री अपने पति के परिवार के साथ रहने चली जाती है और अपने रिश्तेदारों से अलग हो जाती है। यह स्त्रियों को होने वाला पहला कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री को मासिक धर्म होता है। यह स्त्रियों को होने वाला दूसरा कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री गर्भवती हो जाती है। यह स्त्रियों को होने वाला तीसरा कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री बच्चे को जन्म देती है। यह स्त्रियों को होने वाला चौथा कष्ट है...

"फिर, एक स्त्री को पुरुष की सेवा करनी पड़ती है। यह स्त्रियों को होने वाला पाँचवाँ कष्ट है...

"हे भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार के कष्ट हैं जो केवल स्त्रियों को होते हैं, और जो पुरुषों को नहीं होते।"

---

283. तीन गुण (तिहिधम्मेही)

भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में तीन गुण होते हैं, तो शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, वह सामान्यतः दुखमय अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है। वे तीन गुण क्या हैं? हे भिक्षुओं, सुबह के समय स्त्री स्वार्थ के दोष से ग्रस्त हृदय के साथ घर में रहती है; दोपहर के समय वह ईर्ष्या से ग्रस्त हृदय के साथ घर में रहती है; शाम के समय वह काम (राग) से ग्रस्त हृदय के साथ घर में रहती है। जब किसी स्त्री में ये तीन गुण होते हैं... तो वह सामान्यतः दुखमय अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेती है।

---

284. क्रोधित (कोधना)

तब पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा: 263 “हे पूज्यवर, मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, यह देखता हूँ कि शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, स्त्रियाँ दुखमय अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती हैं। हे पूज्यवर, जब किसी स्त्री में कितने गुण होते हैं, तो उसका पुनर्जन्म इस प्रकार होता है?”

“हे अनुराधा, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म दुखमय अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में होता है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह अविश्वासी, निर्लज्ज, कुकर्म से भयभीत न होने वाली, क्रोधी और अज्ञानी (बल) होती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो उसका पुनर्जन्म दुखमय अवस्था में... नरक में होता है।”

285-292. दुर्भावनापूर्ण, इत्यादि।

अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह अविश्वासी, निर्लज्ज, कुकर्म से निर्भीक, द्वेषी, ईर्ष्यालु, कंजूस, अनैतिक, अज्ञानी, आलसी, कुटिल बुद्धि वाली होती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह दुख की अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेती है।

---

293. पाँच (पैंकावेरा)
अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह जीवन का नाश करती है, बिना माँगे वस्तुएँ लेती है, यौन दुराचार में लिप्त होती है, झूठ बोलती है और शराब, मदिरा और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पदार्थों का सेवन करती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह दुख की अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेती है।

(ii) द्वितीय पुनरावृत्ति श्रृंखला (अनुराद्ध के लिए: (ii) उज्ज्वल पक्ष)
294. क्रोध रहित (अक्कोधन)
तब पूज्य अनुराधा भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, यह देखता हूँ कि शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु से पहले स्त्रीयाँ स्वर्गलोक में, शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेती हैं। हे पूज्यवर, जब स्त्री में कितने गुण होते हैं, तब उसका पुनर्जन्म होता है?"

अनुराधा ने कहा, "हे अनुराधा, जब स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के क्षोभ के बाद, मृत्यु से पहले उसका पुनर्जन्म स्वर्गलोक में, शुभ स्थान (सुगति) पर होता है। वे पाँच गुण क्या हैं?

उसमें विश्वास होता है, उसमें लज्जा होती है, वह कुकर्म से भयभीत होती है, वह क्रोध रहित होती है और वह बुद्धिमान होती है। जब स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तब उसका पुनर्जन्म स्वर्गलोक में, शुभ स्थान (सुगति) पर होता है।"

295-302. बिना द्वेष, इत्यादि।
अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

उसमें आस्था होती है, उसमें लज्जा की भावना होती है, वह कुकर्म से डरती है, वह द्वेष रहित होती है, ईर्ष्या रहित होती है... कंजूस नहीं होती... अनैतिक आचरण वाली नहीं होती... गुणी होती है... विद्वान होती है... ऊर्जावान होती है... ध्यानमग्न (सतिमा) होती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है।

---

303. पंचशील (पांच नियम)
अनुरुद्ध, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान (सुगती) यानी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है। वे पाँच गुण क्या हैं?

वह जीवन के क्षय (खयाल/क्षय) से दूर रहती है, बिना माँगे कुछ लेने से दूर रहती है, यौन दुराचार से दूर रहती है, झूठी वाणी से दूर रहती है, और शराब, मदिरा और आलस्य पैदा करने वाले मादक पदार्थों से दूर रहती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान (सुगती) यानी स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेती है।

(iii) शक्तियां (बाला) धारा
304. आत्मविश्वास (विसारादा)
भिक्षुओं, स्त्री में पाँच गुण होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? सौंदर्य का गुण, धन का गुण, रिश्तेदारों का गुण, पुत्रों का गुण और सद्गुण का गुण। ये स्त्री के पाँच गुण हैं। जब स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह घर में आत्मविश्वास से निवास करती है।

305. जीत हासिल करना (पसयहा)
"भिक्षुओं, स्त्री में पाँच गुण होते हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह अपने पति को वश में करके घर में निवास करती है।" 266

306. उसके नियंत्रण में (अभिभुय्या)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), स्त्री की पाँच शक्तियाँ होती हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जब स्त्री इन पाँच शक्तियों को धारण करती है, तो वह अपने पति के साथ अपने वश में रहती है।"

307. एक (एका)
भिक्षुओं, जब किसी पुरुष में एक शक्ति होती है, तो वह स्त्री को अपने वश में रखता है। वह एक शक्ति क्या है? अधिकार की शक्ति। जब कोई स्त्री अधिकार की शक्ति से वश में हो जाती है, तो न तो सौंदर्य की शक्ति, न धन की शक्ति, न रिश्तेदारों की शक्ति, न पुत्रों की शक्ति, और न ही सद्गुण (शील) की शक्ति उसे बचा सकती है।

308. उस संदर्भ में (अंगा)
भिक्षुओं, स्त्री में पाँच गुण होते हैं। वे पाँच गुण क्या हैं? सौंदर्य, धन, सत्त्व, पुत्र प्राप्ति और शील।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य का गुण हो, परन्तु धन का गुण न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। परन्तु यदि उसमें सौंदर्य और धन दोनों गुण हों, तो वह इस मामले में पूर्ण है। भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य और धन दोनों गुण हों, परन्तु सत्त्व का

गुण न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। परन्तु यदि उसमें सौंदर्य, धन और सत्त्व तीनों गुण हों, और सत्त्व का गुण भी हो, तो वह इस मामले में पूर्ण है। भिक्षुओं,

यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन और सत्त्व तीनों गुण हों, परन्तु पुत्र प्राप्ति का गुण न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। लेकिन यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन, रिश्तेदारी और पुत्रों की शक्ति हो, तो वह इस मामले में पूर्ण है।

"हे भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन, रिश्तेदारी और पुत्रों की शक्ति हो, परन्तु सद्गुण की शक्ति न हो, तो वह इस मामले में अपूर्ण है। परन्तु यदि उसमें सौंदर्य, धन, रिश्तेदारी और पुत्रों की शक्ति हो, और सद्गुण की शक्ति भी हो, तो वह इस मामले में पूर्ण है।

ये स्त्री की पाँच शक्तियाँ हैं।"

309. वे निष्कासित करते हैं (नासेन्टी)
भिक्षुओं, स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं... सद्गुण (शील) का गुण।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता। 267 भिक्षुओं

, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य और धन का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन और सगे-संबंधियों का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता।

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सौंदर्य, धन, सगे-संबंधियों और पुत्रों का गुण हो, परन्तु सद्गुण का गुण न हो, तो उसे परिवार से निकाल दिया जाता है; उसे परिवार में स्थान नहीं दिया जाता। भिक्षुओं,

यदि किसी स्त्री में सद्गुण का गुण हो, परन्तु सौंदर्य का गुण न हो, तो उसे परिवार में स्थान दिया जाता है; उसे परिवार से नहीं निकाला जाता। 268

"हे भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सद्गुण का गुण हो, पर धन का गुण न हो, तो वे उसे परिवार में स्थान देते हैं; उसे निष्कासित नहीं करते। हे

भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सद्गुण का गुण हो, पर सगे संबंधियों पर प्रभुत्व न हो, तो वे उसे परिवार में स्थान देते हैं; उसे निष्कासित नहीं करते।

हे भिक्षुओं, यदि किसी स्त्री में सद्गुण का गुण हो, पर पुत्रों पर प्रभुत्व न हो, तो वे उसे परिवार में स्थान देते हैं; उसे निष्कासित नहीं करते।

ये स्त्री के पाँच गुण हैं।"

---

310. कारण (हेतु)
भिक्षुओं, स्त्री की ये पाँच शक्तियाँ हैं (जैसा कि ऊपर अनुच्छेद 309 में बताया गया है)... सद्गुण (शील) की शक्ति।

भिक्षुओं, शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद स्त्री का पुनर्जन्म सुगति (सम्प्रदाय) के कारण स्वर्गलोक में नहीं होता, न ही सौंदर्य, न धन, न संबंधियों या पुत्रों के कारण। बल्कि सद्गुण की शक्ति के कारण ही स्त्री का पुनर्जन्म सुगति (सम्प्रदाय) के स्वर्गलोक में होता है।

ये स्त्री की पाँच शक्तियाँ हैं।

---

311. परिस्थितियाँ (थाना सं. स्थान)
भिक्षुओं, पाँच ऐसी स्थितियाँ/स्थान हैं जिन्हें पुण्य न करने वाली स्त्री के लिए प्राप्त करना कठिन है। वे पाँच क्या हैं?

वह यह कामना कर सकती है: 'काश मैं एक उपयुक्त परिवार में जन्म लूँ!' यह पहली स्थिति है जिसे पुण्य न करने वाली स्त्री के लिए प्राप्त करना कठिन है।

वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर, काश मेरा विवाह भी एक उपयुक्त परिवार में हो!' यह दूसरी स्थिति है। ... वह यह

कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर और एक उपयुक्त परिवार में विवाह करके, काश मैं बिना किसी प्रतिद्वंदी के घर में रह सकूँ!' 269 यह तीसरी स्थिति है।

... वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर ... बिना किसी प्रतिद्वंदी के घर में रहकर, काश मुझे पुत्रों की संतान हो!' यह चौथी स्थिति है। ...

वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर ... पुत्रों की संतान होने पर, काश मैं अपने पति के साथ अपने वश में रह सकूँ!' यह पाँचवीं स्थिति है...

"ये पाँच स्थितियाँ हैं जिन्हें पुण्य न करने वाली स्त्री के लिए प्राप्त करना कठिन है।

भिक्षुओं, पुण्य करने वाली स्त्री के लिए पाँच स्थितियाँ आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। वे पाँच क्या हैं?

" वह यह कामना कर सकती है: 'मुझे एक उपयुक्त परिवार में जन्म मिले!' यह पहली स्थिति है...

"वह यह कामना कर सकती है: 'एक उपयुक्त परिवार में जन्म लेकर... पुत्रों को जन्म देकर, मैं अपने पति के साथ अपने वश में रहूँ!' यह पाँचवीं स्थिति है...

"ये पाँच स्थितियाँ हैं जिन्हें पुण्य करने वाली स्त्री के लिए आसानी से प्राप्त हो जाती हैं।"

---

312. आत्मविश्वासी (पंचसिलविसारदा)

भिक्षुओं, जब किसी स्त्री में पाँच गुण होते हैं, तो वह घर में निश्चिंत होकर निवास करती है। वे पाँच गुण क्या हैं? वह जीवन के क्षय (खयाल/क्षय) से दूर रहती है, बिना माँगे कुछ लेने से दूर रहती है, यौन दुराचार से दूर रहती है, झूठी वाणी से दूर रहती है, और मदिरा, मादक पदार्थ और आलस्य उत्पन्न करने वाले पदार्थों से दूर रहती है। जब किसी स्त्री में ये पाँच गुण होते हैं, तो वह घर में निश्चिंत होकर निवास करती है।

---

313. वृद्धि (वद्धि)
भिक्षुओं (सन्यासियों) के साथ-साथ, एक श्रेष्ठ शिष्या भी श्रेष्ठ विकास करती है और इस देहधारी अस्तित्व का सार, इसका सर्वश्रेष्ठ, प्राप्त करती है। वे पाँच क्या हैं? वह आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि में वृद्धि करती है। इन पाँच क्षेत्रों में वृद्धि करते हुए, एक श्रेष्ठ शिष्या श्रेष्ठ विकास करती है और इस देहधारी अस्तित्व का सार, इसका सर्वश्रेष्ठ, प्राप्त करती है। जब वह यहाँ आस्था और सद्‌गुण, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि, उदारता और ज्ञान में

वृद्धि करती है , तो गुणी शिष्या यहीं पर अपने लिए सार प्राप्त कर लेती है।

अध्याय 4: जम्बूखडका से संबंधित प्रवचन (जम्बूखडकसंयुत्त) {संयुत्त-38}
314. निब्बान पर एक प्रश्न (निब्बानपन्हा बिना निर्वाण-प्रश्न)
एक बार पूज्य सारिपुत्त मगध के नलकगम में निवास कर रहे थे। तब तपस्वी जंबुखदक (271) पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से बोले,

“मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'निर्वाण, निर्वाण।' अब निर्वाण क्या है?”

"काम (राग) का क्षय, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही है, मित्र, निर्वाण। 271

"पर, मित्र, क्या इस निर्वाण की प्राप्ति का कोई मार्ग है?" "हाँ, मित्र, इस निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग

है।" [252]

"और, मित्र, वह मार्ग क्या है, इस निर्वाण की प्राप्ति का वह मार्ग क्या है?"

"मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था। यही मार्ग है, मित्र, इस निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग है।"

"यह मार्ग उत्कृष्ट है, मित्र, इस निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग उत्कृष्ट है। और, मित्र सारिपुत्त, केवल जागरूकता (अप्पमदा) ही पर्याप्त है।"

---

315. अरिहंतशिप प्रश्न (अरहत्तपन्हा सं. अरिहंत-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'अरहंतत्व, अरहंतत्व।' तो अरहंतत्व क्या है?"

"काम (राग) का क्षय, द्वेष (दोष) का विनाश, मोह (मोह) का विनाश: मित्र, यही अरहंतत्व कहलाता है।"

"पर मित्र, क्या इस अरहंतत्व की प्राप्ति का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, इस अरहंतत्व की प्राप्ति का मार्ग है।"

"और मित्र, वह मार्ग क्या है?"

"मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। मित्र, यही मार्ग है, यही अरहंतत्व की प्राप्ति का मार्ग है।"

"हे मित्र, यह मार्ग उत्तम है, इस अरहंतत्व की प्राप्ति का मार्ग उत्तम है। और हे मित्र सारिपुत्त, केवल सजगता (अप्पमदा) ही पर्याप्त है।"

---

316. धम्म के समर्थक (धम्मवादिपन्हा सं. धम्मवादि-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, संसार में धम्म के समर्थक कौन हैं? संसार में भली-भांति अभ्यास करने वाले कौन हैं? संसार में सौभाग्यशाली (सुगतो) कौन हैं?"

"मित्र, जो कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग के लिए धम्म का उपदेश देते हैं, वे संसार में धम्म के समर्थक हैं। जो कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के त्याग के लिए अभ्यास कर रहे हैं, वे संसार में भली-भांति अभ्यास कर रहे हैं। जिनके लिए कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) जड़ से समाप्त हो गए हैं, ताड़ के ठूंठ के समान नष्ट हो गए हैं, ताकि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहें, वे संसार में सौभाग्यशाली (सुगतो) हैं।" 272

"लेकिन, मित्र, क्या कोई मार्ग है, क्या इस राग, द्वेष और मोह से मुक्ति पाने का कोई तरीका है?"

"हाँ, मित्र, इस राग, द्वेष और मोह से मुक्ति पाने का मार्ग है।"

"और वह मार्ग क्या है, मित्र...?"

"वह है, मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग...."

"यह मार्ग उत्तम है, मित्र, इस राग, द्वेष और मोह से मुक्ति पाने का मार्ग उत्तम है। और यह पर्याप्त है, मित्र सारिपुत्त, केवल सजगता के लिए।"

---

317. किस उद्देश्य से? (किमत्थिया संस्कृत किम-अर्थ्या)
"हे सारिपुत्त, ब्रह्मचर्य का जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है? यह

जीवन गौतम गौतम के मार्गदर्शन में व्यतीत किया जाता है, ताकि दुखों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके।" "

परन्तु, क्या इस दुख को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

318. सांत्वना (अस्ससप्पट्टा)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'जिसने सांत्वना प्राप्त कर ली है, जिसने सांत्वना प्राप्त कर ली है।' मित्र, सांत्वना किस प्रकार प्राप्त की जाती है?" 273

"मित्र, जब कोई भिक्षु उत्पत्ति और उसके अंत, सांसारिक भोग (अस्वाद), खतरे और छह इंद्रियों के संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श) के मामले में उससे बचने के तरीके को यथावत समझ लेता है, तो वह सांत्वना प्राप्त कर लेता है।"

"परन्तु, मित्र, क्या इस सांत्वना की प्राप्ति का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, हाँ, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग..."

---

319. परम सांत्वना (परमस्ससप्पत्ता)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'जिसने परम शांति प्राप्त कर ली हो, जिसने परम शांति प्राप्त कर ली हो।' मित्र, परम शांति किस प्रकार प्राप्त की जाती है?"

"मित्र, जब कोई भिक्षु सांसारिक सुखों (असदो संस्कृत: अस्वाद), खतरे और छह इंद्रियों के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के मामले में उनसे बचने के तरीके को यथावत समझ लेता है, और अनासक्ति के द्वारा विमुक्त हो जाता है, तब वह परम शांति प्राप्त करता है।"

"परन्तु, मित्र, क्या इस परम शांति की प्राप्ति का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

320. संवेदना प्रश्न
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'संवेदना, वेदना।' तो यह संवेदना क्या है?"

"मित्र, ये तीन संवेदनाएँ हैं: सुखद संवेदना, दुखदायी संवेदना और न दुखदायी, न सुखद संवेदना। ये तीन संवेदनाएँ हैं।" "

परन्तु, मित्र, क्या इन तीनों संवेदनाओं को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

321. अपवित्रता प्रश्न (असवपन्हा सं. आश्रव-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'असंक्रमण (असावो), असंक्रमण (असावो)।' तो असंक्रमण क्या है?"

"मित्र, ये तीन प्रकार के असंक्रमण हैं: काम-असावो का असंक्रमण, भव-असावो का असंक्रमण और अज्ञान का असंक्रमण। ये तीन असंक्रमण हैं।" "

पर, मित्र, क्या इन तीनों असंक्रमणों से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

322. अज्ञान प्रश्न (अविज्जापन्हा सं. अविद्या-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' अज्ञान क्या है?"

"दुःख को न जानना, दुःख के कारण को न जानना, दुःख के निवारण (निरोध) को न जानना, दुःख के निवारण के मार्ग को न जानना। यही अज्ञान कहलाता है।" "

परन्तु, मित्र, क्या इस अज्ञान से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

323. लालसा प्रश्न (तन्हापन्हा बिना तृष्णा-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), लालसासा।' लालसासा क्या है?"

"मित्र, लालसासा तीन प्रकार की लालसासा होती है: इंद्रिय सुखों की लालसासा, अस्तित्व की लालसासा (भावो), और मृत्यु की लालसासा। ये तीन प्रकार की लालसासासा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) हैं।" "

पर मित्र, क्या इस लालसासासा का त्याग करने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

324. बाढ़ संबंधी प्रश्न (ओघापन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'बाढ़, बाढ़।' बाढ़ क्या होती है?"

"मित्र, ये चार बाढ़ें हैं: कामुकता की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़ (भावो), दृष्टियों की बाढ़, और अज्ञान की बाढ़ (अविज्जा संस्कृत. अविद्या)। ये चार बाढ़ें हैं।" "

पर मित्र, क्या इन चारों बाढ़ों से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है...."

---

325. चिपके हुए प्रश्न (उपादानपन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'चिपकना, चिपकना।' यह क्या है? '

मित्र, ये चार प्रकार के आसक्ति हैं: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और प्रतिज्ञाओं से आसक्ति, और आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। ये चार प्रकार के आसक्ति हैं।" "

पर, मित्र, क्या इन चारों प्रकार के आसक्ति से मुक्ति पाने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है..."

---

326. अस्तित्व प्रश्न (भावपन्हा सं. भाव-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'अस्तित्व, अस्तित्व।' तो अस्तित्व क्या है?"

"मित्र, तीन प्रकार के अस्तित्व हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, रूप-क्षेत्र का अस्तित्व और निराकार रूप का अस्तित्व। ये तीन प्रकार के अस्तित्व हैं।" "

परन्तु, मित्र, क्या इन तीनों प्रकार के अस्तित्व को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।"

---

327. दुख के प्रश्न (दुक्खपन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'दुख, दुख।' तो दुख क्या है?"

"मित्र, दुख तीन प्रकार के होते हैं: दर्द के कारण दुख, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के कारण दुख, और परिवर्तन के कारण दुख। ये तीन प्रकार के दुख हैं।" 274

"परन्तु, मित्र, क्या इन तीनों प्रकार के दुखों को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, मार्ग है... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग..."

---

328. शारीरिक पहचान संबंधी प्रश्न (सक्कायपन्हा)
"मित्र सारिपुत्त, कहा जाता है, 'शरीर-सन्दुत्व (सक्कय), शरीर-सन्दुत्व।' तो शरीर-सन्दुत्व क्या है?"

"मित्र, आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) को भगवान (बुद्ध) ने शरीर-सन्दुत्व कहा है; अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त रूप स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संवेदना स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त संस्कार स्कंध, आसक्ति से ग्रस्त अभिव्यंजक और आसक्ति से ग्रस्त चेतना स्कंध। आसक्ति से ग्रस्त इन पाँच स्कंधों को भगवान (बुद्ध) ने शरीर-सन्दुत्व कहा है।" "

परन्तु, मित्र, क्या इस शरीर-सन्दुत्व को पूर्णतः समझने का कोई मार्ग है?"

"हाँ, मित्र, इस शरीर-सन्दुत्व को पूर्णतः समझने का मार्ग है।"

"और हे मित्र, वह मार्ग क्या है, इस देह-पहचान की पूर्ण समझ का वह तरीका क्या है?"

"हे मित्र, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। यही मार्ग है, हे मित्र, यही देह-पहचान की पूर्ण समझ का तरीका है।"

"उत्कृष्ट है वह मार्ग, हे मित्र, इस देह-पहचान की पूर्ण समझ का उत्कृष्ट तरीका। और हे मित्र सारिपुत्त, यह जागरूकता (अप्पमदा) के लिए पर्याप्त है।"

---

329. कठिन प्रश्न (दुक्करपन्हा सं. दुष्कर-प्रश्न)
"मित्र सारिपुत्त, इस धम्म और अनुशासन में क्या करना कठिन है?"

"मित्र, दीक्षा लेना इस धम्म और अनुशासन में कठिन है।"

"मित्र, दीक्षा प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए क्या करना कठिन है?" "मित्र, दीक्षा प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए
आनंद प्राप्त करना कठिन है।" "मित्र, आनंद प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए

क्या करना कठिन है?" "मित्र, आनंद प्राप्त कर चुके व्यक्ति के लिए
धम्म के अनुसार अभ्यास करना कठिन है।"

"परन्तु, मित्र, यदि कोई भिक्षु धम्म के अनुसार अभ्यास कर रहा है, तो क्या उसे अरहंत बनने में अधिक समय लगेगा?"

"अधिक समय नहीं लगेगा, मित्र।" 275

अध्याय 5: समन्दक (समन्दकसंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-39}
समंदक आदि द्वारा पूछे गए प्रश्न 330-331।
एक बार पूज्य सारिपुत्त उक्काचेला में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। तब तपस्वी समंदक पूज्य सारिपुत्त के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से बोले,
“मित्र सारिपुत्त, कहते हैं, 'निर्वाण, निर्वाण।' निर्वाण क्या है?”...

(इस सम्युत्त का शेष भाग पिछले सम्युत्तों 314-329 के समान है, सिवाय वार्ताकार समंदक के शारीरिक स्वरूप के।)

“परन्तु, मित्र, यदि कोई भिक्षु धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार अभ्यास कर रहा हो, तो क्या उसे अरहंत बनने में अधिक समय लगेगा?”

“अधिक समय नहीं, मित्र।”

अध्याय 6: मोग्गलाना से संबंधित प्रवचन (मोग्गलानासाम्युत्त) {साम्युत्त-40}
332. प्रथम झाना/ट्रांस प्रश्न (पथमाझानपन्हा सं. प्रथम-ध्यान-प्रश्न)
एक बार पूज्य महामोग्गलाना सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"मित्रों, भिक्षुओं!" 276

"मित्रों!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांतवास में अकेला था, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "प्रथम ध्यान, प्रथम ध्यान।" अब प्रथम ध्यान क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त, हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त होता है, और एकांतवास से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होता है। इसे प्रथम ध्यान कहते हैं।

"फिर, मित्रों, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया... जब मैं वहाँ निवास कर रहा था, तब इंद्रिय-बोध (संज्ञा) और मन-क्रिया (मानसिकरा) ने मुझे घेर लिया। 277

"फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, प्रथम ध्यान के विषय में आलसी (पामद में) न हो। प्रथम ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, प्रथम ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, प्रथम ध्यान में अपने मन को समाधि में ले जाओ।' फिर, मित्रों, एक बार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है।

"यदि, मित्रों, कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह एक ऐसा शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

333. दूसरा झाना प्रश्न (दुतियाझानपन्हा सं. द्वितीय-ध्यान-प्रश्न)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "द्वितीय ध्यान, द्वितीय ध्यान।" तो अब यह द्वितीय ध्यान क्या है?' 279

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) होती है, जो विचार और परीक्षा से रहित होता है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से युक्त होता है। इसे ही द्वितीय ध्यान कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैं दूसरे ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें लीन हो गया... जब मैं वहाँ लीन था, तब विचार और चिंतन के साथ-साथ चेतना और मानसिक क्रियाएँ मुझ पर हावी हो गईं।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और मुझसे कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, दूसरे ध्यान के विषय में आलसी (पमादा) न हो। दूसरे ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, दूसरे ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, दूसरे ध्यान में अपने मन को समाधि बनाओ।' फिर, कुछ समय बाद, जब विचार और चिंतन शांत हो गए, तो मैं दूसरे ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें लीन हो गया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

334. तीसरा झाना प्रश्न (तातियाझानपन्हा सं. तृतीया-ध्यान-प्रश्न)
"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में एकांत में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "तीसरा ध्यान, तीसरा ध्यान।" तो तीसरा ध्यान क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ आया: 'यहाँ, जब आनंद (पीति/प्रीति) भी लुप्त हो जाता है, तब एक भिक्षु समभाव में रहता है, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर वह शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: "वह समभाव में रहने वाला, ध्यानमग्न और सुखी है।" इसे ही तीसरा ध्यान कहते हैं।"

"फिर, मित्रों, जब आनंद भी लुप्त हो गया... मैं तीसरे ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें विलीन हो गया। ...जब मैं वहाँ विलीन था, तब मुझे अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) और मन-क्रिया (मानसिकारा) का अनुभव हुआ, जो आनंद से परिपूर्ण थी।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और मुझसे कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, तीसरे ध्यान के विषय में आलसी (पमादा) न हो। तीसरे ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, तीसरे ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, तीसरे ध्यान में अपने मन को समाधि बनाओ।' फिर, बाद में, जब आनंद भी लुप्त हो गया (पीति/प्रीति), तब मैं समभाव और ध्यानमग्न अवस्था में विलीन रहा और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर मैंने शरीर के साथ सुख का अनुभव किया; मैंने तीसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह शांत, ध्यानमग्न और सुखी है।'

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

335. चौथा झाना प्रश्न
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में था, तब मेरे मन में एक विचार आया: 'कहा जाता है, "चौथा ध्यान, चौथा ध्यान।" तो चौथा ध्यान क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह बात समझ में आई: 'यहाँ, सुख और दुःख का त्याग करने और पहले ही सुख और दुःख के बीत जाने के साथ, एक भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्ष संस्कृत: उपेक्षा) द्वारा ध्यान की शुद्धि शामिल है। इसे ही चौथा ध्यान कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, सुख और दुःख का त्याग करके... मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया... जब मैं वहाँ निवास कर रहा था, तब सुख से युक्त मेरी चेतना (सन्ना संस. संग्या) और मन (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, चौथे ध्यान के विषय में आलसी (पमादा) न हो। चौथे ध्यान में अपने मन को स्थिर करो, चौथे ध्यान में अपने मन को एकाग्र करो, चौथे ध्यान में अपने मन को समाधि बनाओ।' फिर, बाद में, सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले से ही सुख और दुःख के दूर हो जाने के बाद, मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी है और इसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि शामिल है।"

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह एक ऐसा शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

336. अंतरिक्ष प्रश्नों की अनंतता का संकाय
(पांचवीं ध्यान/समाधि अवस्था)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति, अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति।" अब अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघ) की धारणाओं के लुप्त होने से, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देकर, यह जानते हुए कि "अंतरिक्ष अनंत है," एक भिक्षु अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही अंतरिक्ष की अनंतता की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर... मैंने अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब धारणा (सन्ना संस. संग्या) और ध्यान (मानसिकारा) रूपों के साथ मुझ पर हावी हो गए।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति के प्रति आलसी (पमादा) न हो। अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में अपने मन को स्थिर करो, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में अपने मन को एकाग्र करो, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में अपने मन को समाधि (तत्त्व) में ले जाओ।' फिर, एक बार, रूपों की धारणाओं से पूर्ण रूप से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) की धारणाओं के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैंने अंतरिक्ष की अनंतता की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

337. चेतना के अनंतता से संबंधित प्रश्न (Vinnanancayatanapanha sans. Vigyan-anant-ayatana-prashn)
(छठी ध्यान/समाधि अवस्था)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "चेतना की अनंतता की शक्ति (विन्नान संस्कृत: विज्ञान), चेतना की अनंतता की शक्ति।" तो चेतना की अनंतता की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, अनंतता के स्थान की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि "चेतना अनंत है," एक भिक्षु चेतना की अनंतता की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही चेतना की अनंतता की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से पूर्णतः परे जाकर, यह जानते हुए कि 'चेतना अनंत है,' मैंने अनंत चेतना की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब अनंत अंतरिक्ष की शक्ति के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) और मन-क्रिया (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, अनंत चेतना की शक्ति के प्रति आलसी (पमादा) न हो। अनंत चेतना की शक्ति में अपने मन को स्थिर करो, अनंत चेतना की शक्ति में अपने मन को एकाग्र करो, अनंत चेतना की शक्ति में अपने मन को समाधि (तत्त्व) में ले जाओ।' फिर, एक बार बाद में, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना अनंत है,' मैंने अनंत चेतना की अनुभूति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

338. शून्यता की क्षमता
(सातवीं ध्यान/समाधि अवस्था)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "शून्यता की शक्ति, शून्यता की शक्ति।" अब शून्यता की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह समझ में आया: 'यहाँ, चेतना की अनंतता (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति को पूरी तरह से पार करके, यह जानते हुए कि
"कुछ भी नहीं है," एक भिक्षु शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही शून्यता की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, चेतना की अनंतता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, मैंने शून्यता की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब चेतना की अनंतता की क्षमता के साथ-साथ अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) और मन-क्रिया (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, शून्यता की क्षमता के प्रति आलसी (पमादा) न हो। शून्यता की क्षमता में अपने मन को स्थिर करो, शून्यता की क्षमता में अपने मन को एकाग्र करो, शून्यता की क्षमता में अपने मन को समाधि (सम्मोहन) में डालो।' फिर, एक बार फिर, चेतना की अनंतता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, मैंने शून्यता की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया।"

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह एक ऐसा शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है', तो यह बात मेरे बारे में सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

339. न तो-धारणा-न-गैर-धारणा की क्षमता (नेव-सन्न-न-सन्न-अयतन-पन्हा संस। नैव-संज्ञ-न-संग्य-अायतन-प्रश्न)
(आठवीं ध्यान/समाधि अवस्था)

... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "न-बोध-न-बोध की शक्ति, न-बोध-न-बोध की शक्ति।" तो अब यह न-बोध-न-बोध की शक्ति क्या है?'

"तब, मित्रों, मुझे यह बात समझ में आई: 'यहाँ, शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करके, एक भिक्षु न-बोध-न-बोध की शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे ही न-बोध-न-बोध की शक्ति कहते हैं।'

"फिर, मित्रों, शून्यता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, मैंने न-बोध-न-बोध की शक्ति में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब शून्यता की शक्ति के साथ-साथ बोध और मन-क्रिया (मानसिकारा) ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, न-बोध-न-बोध की शक्ति के विषय में आलसी (पमादा) न बनो। न-बोध-न-बोध की शक्ति में अपने मन को स्थिर करो, न-बोध-न-बोध की शक्ति में अपने मन को एकाग्र करो, न-बोध-न-बोध की शक्ति में अपने मन को समाधि में ले जाओ।' फिर, एक बार, शून्यता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, मैंने न-बोध-न-अवलोकन की क्षमता में प्रवेश किया और उसमें निवास किया। इसे न-बोध-न-अवलोकन की क्षमता कहते हैं।

"मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है', तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

340. अनिमित्त (अनिमित्त)
(नौवीं ध्यान/समाधि अवस्था - अंतिम निर्वाण)
... "यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था, अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था।" अब अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था क्या है?' 280

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, सभी निमित्त कारकों पर ध्यान न देने से, एक भिक्षु अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे अकारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था कहा जाता है।'

"फिर, मित्रों, सभी कारणों (निमित्त) पर ध्यान न देकर, मैं अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश कर गया और उसमें विलीन हो गया। जब मैं उसमें विलीन था, मेरी चेतना (विन्नान, विज्ञान) निमित्त कारणों के साथ-साथ चलती रही। 281

"फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति आलसी (पमादा) न बनो। अपने मन को अनिमित्त समाधि अवस्था में स्थिर करो, अनिमित्त समाधि अवस्था में अपने मन को एकाग्र करो, अनिमित्त समाधि अवस्था में अपने मन को समाधि में लीन करो। फिर, बाद में, सभी कारणों (निमित्त) पर ध्यान न देकर, मैं अनिमित्त समाधि अवस्था में प्रवेश कर गया और उसमें लीन रहा। "

मित्रों, यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।"

---

341. सक्कसुत्तम (सं. शक्र/इंद्र)
I. शरण और शुभ गंतव्य (सुगति)
एक बार पूज्य महामोग्गलाना सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तभी, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को तेजी से फैलाता या समेटता है, पूज्य महामोग्गलाना जेतवन से लुप्त हो गए और तावतिंसा देवताओं के बीच प्रकट हुए। तब देवताओं के स्वामी, इंद्र, पाँच सौ देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

“हे देवों के स्वामी, बुद्ध की शरण लेना उत्तम है। बुद्ध की शरण लेने के कारण, शरीर के क्षरण के बाद, कुछ प्राणी स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेते हैं। हे देवों के स्वामी, धर्म (मार्ग, नियम) की शरण लेना उत्तम है। धर्म की शरण लेने के कारण, शरीर के क्षरण के बाद, कुछ प्राणी स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेते हैं। हे देवों के स्वामी, संघ (भाईचारा) की शरण लेना उत्तम है। संघ की शरण लेने के कारण, शरीर के क्षरण के बाद, कुछ प्राणी स्वर्गलोक में एक शुभ स्थान (सुगति) पर पुनर्जन्म लेते हैं।”

"हे महामोग्गलाना जी, बुद्ध की शरण लेना... धम्म की शरण लेना... संघ की शरण लेना अच्छा है। संघ की शरण लेने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के क्षरण के बाद मृत्यु के समय एक शुभ स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

तब देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं... सात सौ देवताओं... आठ सौ देवताओं... अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। 282 पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(संवाद ठीक ऊपर जैसा ही है।)

II. विश्वास और शुभ स्थान (सुगति)

तब देवताओं के स्वामी सक्का, पाँच सौ देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

"हे देवों के स्वामी, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है, जैसा कि इस प्रकार है: 283 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, भाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवों और मनुष्यों के शिक्षक हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

हे देवों के स्वामी, धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखना सर्वथा: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) ने भली-भांति की है, यह प्रत्यक्ष रूप से दृश्यमान है, तात्कालिक है, दर्शन के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। धम्म में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के बाद एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

हे देवों के स्वामी, संघ में दृढ़ विश्वास रखना सर्वथा: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है, सीधे मार्ग का अनुसरण करता है, सच्चे मार्ग का अनुसरण करता है, उचित मार्ग का अनुसरण करता है। अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य, आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंटों के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है। संघ में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, एक शुभ गंतव्य (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"हे देवों के स्वामी, हे शुभ, वह है जो श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का सृजित रूप है, जो अटूट, अक्षत, निष्कलंक, निर्मल, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अपंग, समाधि की अवस्था की ओर ले जाने वाला है।" "हे मोग्गलाना, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना...

धम्म में दृढ़ विश्वास रखना... संघ में दृढ़ विश्वास रखना... और श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का अटूट पालन करना... समाधि की अवस्था की ओर ले जाता है।" "वरिष्ठों को प्रिय गुणों के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

तब देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं, सात सौ देवताओं, आठ सौ देवताओं और अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(जैसा ऊपर बताया गया है।)

III. शरण और दिव्य लाभ

तब देवताओं के स्वामी सक्का, पाँच सौ देवताओं (देवदूतों) के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

हे देवों के स्वामी, बुद्ध की शरण लेना उत्तम है। बुद्ध की शरण लेने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद कुछ प्राणी एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। वे दस प्रकार से अन्य देवों से श्रेष्ठ होते हैं: दिव्य आयु, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य प्रसिद्धि, दिव्य प्रभुत्व और दिव्य रूप, ध्वनि, सुगंध, स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुओं में। हे

देवों के स्वामी, धम्म (मार्ग, नियम) की शरण लेना उत्तम है... संघ (भाईचारा) की शरण लेना उत्तम है। संघ की शरण लेने के कारण... और दिव्य रूप, ध्वनि, सुगंध, स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुओं में। हे

श्री मोग्गलाना, बुद्ध की शरण लेना उत्तम है... धम्म की शरण लेना उत्तम है... संघ की शरण लेना उत्तम है। संघ की शरण लेने के कारण... और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में।

फिर देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं... सात सौ देवताओं... आठ सौ देवताओं... अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(जैसा ऊपर है।)

IV. विश्वास और दिव्य लाभ

फिर देवताओं के स्वामी सक्का, पाँच सौ देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

"हे देवताओं के स्वामी, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है: भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, 'प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' बुद्ध में अटूट विश्वास रखने के कारण, कुछ प्राणी शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। वे दस प्रकार से अन्य देवताओं से श्रेष्ठ होते हैं: दिव्य आयु, दिव्य सौंदर्य, दिव्य सुख, दिव्य प्रसिद्धि, दिव्य प्रभुत्व और दिव्य रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्शनीय वस्तुओं में।

हे देवों के स्वामी, धम्म में दृढ़ विश्वास रखना उत्तम है... संघ में दृढ़ विश्वास रखना उत्तम है... हे देवों के स्वामी, श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का अटूट धारण रखना उत्तम है... जो समाधि की अवस्था की ओर ले जाता है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों के धारण के कारण... और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में निपुणता प्राप्त करने के कारण।

"हे श्री मोग्गलाना, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना... धम्म में दृढ़ विश्वास रखना... संघ में दृढ़ विश्वास रखना... श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का अटूट पालन करना... समाधि की अवस्था की ओर ले जाता है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, कुछ प्राणी यहाँ एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। वे दस मामलों में अन्य देवताओं से श्रेष्ठ होते हैं: दिव्य जीवनकाल में, दिव्य सौंदर्य में, दिव्य सुख में, दिव्य प्रसिद्धि में, दिव्य प्रभुत्व में और दिव्य रूपों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों और स्पर्शनीय वस्तुओं में।"

तब देवताओं के स्वामी सक्का, छह सौ देवताओं, सात सौ देवताओं, आठ सौ देवताओं और अस्सी हजार देवताओं के साथ पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब पूज्य महामोग्गलाना ने उनसे कहा:

(जैसा ऊपर बताया गया है।)

---

342. कनाडा
फिर चंदन, एक युवा देव (देवदूत)...

फिर सुयम, एक युवा देव...

फिर संतुसिता, एक युवा देव...

फिर सुनीमिता, एक युवा देव...

फिर वासवत्ती, एक युवा देव...

(इसका विस्तृत वर्णन अनुच्छेद 341 में दिए गए विवरण के अनुसार किया जाएगा)

अध्याय 7: चित्त से संबंधित प्रवचन (चित्तसम्युत्त) {सम्युत्त-41}
343. बंधन (संयोजन)
एक बार कई वरिष्ठ भिक्षु जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में ठहरे हुए थे।

उस समय, जब वरिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके मंडप में एकत्रित हुए और साथ बैठे थे, तभी यह चर्चा शुरू हुई:
"मित्रों, 'बंधन' और 'बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म': क्या ये धर्म अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, या अर्थ में एक हैं और अभिव्यक्ति में भिन्न हैं?"

कुछ वरिष्ठ भिक्षुओं ने उत्तर दिया: "मित्रों, 'बंधन' और 'बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म' अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं।" लेकिन कुछ अन्य वरिष्ठ भिक्षुओं ने उत्तर दिया:
"मित्रों, 'बंधन' और 'बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म' अर्थ में एक हैं और अभिव्यक्ति में भिन्न हैं।"

उसी समय, गृहस्थ चित्त किसी कार्य से मिगापथका आए थे। 285 तब गृहस्थ चित्त ने सुना: "कहा जाता है कि कई वरिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके मंडप में एकत्रित हुए और साथ बैठे थे, तभी यह चर्चा शुरू हुई..." तब गृहस्थ चित्त उन वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "मैंने सुना है, आदरणीय महोदय, कि जब कई वरिष्ठ भिक्षु एक साथ बैठे थे, तब यह चर्चा शुरू हुई:
'मित्रों, "बंधन" और "बंधन करने वाले धर्म": क्या ये बातें अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, या अर्थ में एक हैं और केवल अभिव्यक्ति में भिन्न हैं?'"

"हाँ, गृहस्थ।"

"आदरणीय महोदय, 'बंधन' और 'बंधन करने वाले धर्म' अर्थ और वाक्यांश दोनों में भिन्न हैं। मैं इसके लिए एक उपमा दूंगा, क्योंकि यहां कुछ बुद्धिमान लोग उपमा के माध्यम से कथन का अर्थ समझते हैं।

मान लीजिए, आदरणीय महोदय, एक काले बैल और एक सफेद बैल को एक ही जुए से जोता गया है। 286 क्या यह कहना सही होगा कि: 'काला बैल सफेद बैल का बंधन है; सफेद बैल काले बैल का बंधन है'?"

"नहीं, गृहस्थ।" काला बैल सफेद बैल का बंधन नहीं है और न ही सफेद बैल काले बैल का बंधन है, बल्कि वह एकमात्र लगाम या जुआ है जिससे दोनों एक साथ जुड़े हुए हैं: वही बंधन है। "

इसी प्रकार, मित्र, आँख रूपों का बंधन नहीं है और न ही रूप आँख का बंधन हैं, बल्कि दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं। कान ध्वनियों का बंधन नहीं है... नाक गंधों का बंधन नहीं है... जीभ स्वादों का बंधन नहीं है... शरीर स्पर्शनीय वस्तुओं का बंधन नहीं है..." मन, मानसिक घटनाओं (धम्म) का बंधन नहीं है और न ही मानसिक घटनाएं (धम्म) मन का बंधन हैं, बल्कि इन दोनों पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाली इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) ही बंधन हैं।

"यह आपके लिए लाभ है, हे गृहस्थ, यह आपके लिए उत्तम लाभ है, क्योंकि आपके पास बुद्ध के गहन वचन को समझने के लिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की दृष्टि है।"

---

344. इसिदत्ता (1)

एक बार मच्छिकासंडा में जंगली आम के बाग में कई वरिष्ठ भिक्षु निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त उन वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, कल का भोजन मुझसे ग्रहण करने की कृपा करें।"

वरिष्ठ भिक्षुओं ने मौन रहकर सहमति दे दी। तब गृहस्थ चित्त ने यह जानकर कि वरिष्ठ भिक्षुओं ने सहमति दे दी है, अपने स्थान से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

रात्रि बीत जाने पर, सुबह वरिष्ठ भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए, अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लिए और गृहस्थ चित्त के निवास पर गए। वहाँ वे निर्धारित स्थानों पर बैठ गए। तब गृहस्थ चित्त ने वरिष्ठ भिक्षुओं के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और आदरणीय मुख्य भिक्षु से कहा,

“आदरणीय भिक्षु, कहा जाता है, ‘धातुओं की विविधता, तत्वों की विविधता।’ हे आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किस प्रकार किया है?” 287

यह सुनकर आदरणीय मुख्य भिक्षु मौन रहे। गृहस्थ चित्त ने दूसरी और तीसरी बार भी यही प्रश्न पूछा, और दूसरी और तीसरी बार भी आदरणीय मुख्य भिक्षु मौन रहे। 288

उस समय आदरणीय इसिदत्त उस संघ में सबसे कनिष्ठ भिक्षु थे। 289 तब आदरणीय इसिदत्त ने आदरणीय मुख्य भिक्षु से कहा, “हे आदरणीय भिक्षु, मुझे चित्त के प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति दीजिए।”

“उत्तर दीजिए, मित्र इसिदत्त।”

"अब, गृहस्थ, क्या आप इस प्रकार पूछ रहे हैं: 'आदरणीय वृहद, कहा जाता है, 'तत्वों की विविधता, तत्वों की विविधता।' आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन किस प्रकार किया है?'"

"जी, आदरणीय महोदय।"

"गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों (धातु) की इस विविधता का वर्णन इस प्रकार किया है: नेत्र तत्व, रूप तत्व, नेत्र-चेतना तत्व... (इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, स्पर्श, मन के लिए)... मन तत्व, मानसिक-घटना (धम्म) तत्व, मन-चेतना तत्व। गृहस्थ, भगवान (बुद्ध) ने तत्वों की विविधता का वर्णन इसी प्रकार किया है।"

तब गृहस्थ चित्त, आदरणीय इसिदत्त के वचनों से प्रसन्न होकर, अपने हाथों से वृहद भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसकर तृप्त किया। जब वरिष्ठ भिक्षुओं ने भोजन समाप्त कर लिया और अपने प्याले रख दिए, 290 तो वे अपने स्थानों से उठे और चले गए।

तब आदरणीय मुख्य भिक्षु ने आदरणीय इसिदत्ता से कहा:
"यह अच्छा है, मित्र इसिदत्ता, कि इस प्रश्न का उत्तर आपको सूझा। मुझे उत्तर सूझा नहीं। इसलिए, मित्र इसिदत्ता, जब भी कभी ऐसा ही कोई प्रश्न उठे, तो आप उसका उत्तर अवश्य दें।" " 291

---

345. इसिदत्ता (2)
(पिछली सूत्र की तरह ही, आगे:)

तब गृहस्थ चित्त वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उनके बगल में बैठ गए और आदरणीय मुख्य भिक्षु से कहा,

“आदरणीय भिक्षु, संसार में अनेक मत हैं: ‘संसार शाश्वत है’ या ‘संसार शाश्वत नहीं है’; ‘संसार सीमित है’ या ‘संसार अनंत है’; ‘आत्मा और शरीर एक ही हैं’ या ‘आत्मा एक है, शरीर दूसरा’; ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं’ या ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते’ या ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी’ या ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं’ - ये और ब्रह्मजाल में वर्णित बासठ मत भी हैं। 292 अब ये मत कब विद्यमान होते हैं? ये मत कब अस्तित्वहीन होते हैं?”

यह सुनकर आदरणीय प्रधान भिक्षु मौन रहे। गृहस्थ चित्त ने दूसरी और तीसरी बार वही प्रश्न पूछा, और दूसरी और तीसरी बार भी आदरणीय प्रधान भिक्षु मौन रहे।

उस समय आदरणीय इसिदत्त उस संघ में सबसे कनिष्ठ भिक्षु थे। तब आदरणीय इसिदत्त ने आदरणीय प्रधान भिक्षु से कहा, "हे आदरणीय भिक्षु, मुझे गृहस्थ चित्त के प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति दीजिए।"

"उत्तर दीजिए, मित्र इसिदत्त।"

"अब, गृहस्थ, क्या आप इस प्रकार पूछ रहे हैं: 'हे आदरणीय भिक्षु, संसार में अनेक मत उत्पन्न होते हैं: 'संसार शाश्वत है'... - ये और ब्रह्मजाल (सूत्र DN1) में वर्णित बासठ सैद्धांतिक मत। अब ये मत तब उत्पन्न होते हैं जब अस्तित्व में कोई चीज होती है? जब अस्तित्वहीन चीज होती है तो ये मत तब उत्पन्न नहीं होते?'" "

जी, आदरणीय महोदय।"

"गृहस्थ, संसार में उत्पन्न होने वाले विभिन्न मतों के विषय में, 'संसार शाश्वत है'... - ये और ब्रह्मजाल में वर्णित बासठ सैद्धांतिक मत: जब शरीर-सन्दुत्व का मत (सक्कय-दिष्ठी) होता है, तब ये मत उत्पन्न होते हैं; जब शरीर-सन्दुत्व का मत नहीं होता, तब ये मत उत्पन्न नहीं होते।" "

परन्तु, आदरणीय महोदय, शरीर-सन्दुत्व का मत कैसे उत्पन्न होता है?"

"हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ पुरुषों का अनादर करता है और उनके धर्म (मार्ग, नियम) में अकुशल और अनुशासनहीन है, जो अच्छे व्यक्तियों का अनादर करता है और उनके धर्म में अकुशल और अनुशासनहीन है, वह रूप को आत्मा मानता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, या रूप को आत्मा में मानता है, या आत्मा को रूप में मानता है। वह वेदना को आत्मा मानता है... संज्ञा (संस्कृत) को आत्मा मानता है... संस्कार (संज्ञा) को आत्मा मानता है... चेतना (संस्कृत) को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, या चेतना को आत्मा में मानता है, या आत्मा को चेतना में मानता है।" "इसी तरह से शरीर-पहचान का दृष्टिकोण अस्तित्व में आता है।"

"और, आदरणीय महोदय, शरीर-पहचान का दृष्टिकोण अस्तित्व में क्यों नहीं आता?"

"हे गृहस्थ, यहाँ, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, जो अच्छे व्यक्तियों का आदर करता है और उनके धर्म में निपुण एवं अनुशासित है, वह रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में मानता है, न ही आत्मा को रूप में मानता है। वह वेदना को आत्मा नहीं मानता... न ही बोध को आत्मा मानता है... न ही संस्कार को आत्मा मानता है... न ही चेतना को आत्मा में मानता है... न ही आत्मा को चेतना में मानता है। इसी प्रकार शरीर-बोध का दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं होता।"

"आदरणीय महोदय, गुरु इसिदत्त कहाँ से आते हैं?"

"मैं अवंती से आता हूँ, गृहस्थ।"

"आदरणीय महोदय, अवंती के एक कुलवासी हैं जिनका नाम इसिदत्त है, जो हमारे एक अदृश्य मित्र हैं, जिन्होंने दीक्षा प्राप्त कर ली है। क्या आप उनसे कभी मिले हैं?"

"जी हाँ, गृहस्थ।"

“हे पूज्यवर, वह आदरणीय भिक्षु अब कहाँ निवास कर रहे हैं?”

यह सुनकर आदरणीय इसिदत्ता मौन रहे।

“क्या वे स्वामी इसिदत्ता हैं?”

“जी हाँ, गृहस्थ।”

“तो स्वामी इसिदत्ता मच्छिकासंडा के रमणीय जंगली आम के बाग में आनंदित हों। मैं स्वामी इसिदत्ता को वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ उपलब्ध कराने में तत्पर रहूँगा।”

“यह तो बहुत अच्छा कहा, गृहस्थ।”

तब चित्त, आदरणीय इसिदत्ता के वचनों से प्रसन्न होकर, अपने हाथों से वरिष्ठ भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसकर उन्हें तृप्त किया। जब वरिष्ठ भिक्षुओं ने भोजन कर लिया और अपने प्याले रख दिए, तो वे अपने स्थानों से उठे और चले गए।

तब आदरणीय प्रधान बुजुर्ग ने आदरणीय इसिदत्ता से कहा:
"हे मित्र इसिदत्ता, यह अच्छी बात है कि इस प्रश्न का उत्तर आपको सूझ गया। मुझे तो उत्तर सूझ ही नहीं पाया। इसलिए, हे मित्र इसिदत्ता, भविष्य में जब भी ऐसा ही कोई प्रश्न उठे, तो आप उसका उत्तर अवश्य दें।"

तब आदरणीय इसिदत्ता ने अपना कमरा व्यवस्थित किया और कुंड और वस्त्र लेकर मच्चिकासंडा से चले गए। जब वे मच्चिकासंडा से गए, तो वे हमेशा के लिए चले गए और फिर कभी वापस नहीं लौटे। 293

---

346. महाका का चमत्कार (महाकापतिहार्य सं. महक-प्रतिहार्य)
एक बार मच्चिकासंडा में जंगली आम के बाग में कई वरिष्ठ भिक्षु निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त उन वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, कल मेरे गौशाला में मेरे द्वारा भोजन ग्रहण करने की सहमति दें।"

वरिष्ठ भिक्षुओं ने मौन रहकर सहमति दे दी। तब गृहस्थ चित्त ने यह जानकर कि वरिष्ठ भिक्षुओं ने सहमति दे दी है, अपने स्थान से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

रात्रि बीत जाने पर, सुबह वरिष्ठ भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए, अपने कुंड और वस्त्र लिए और गृहस्थ चित्त की गौशाला में गए। वहाँ वे निर्धारित आसनों पर बैठ गए।

तब गृहस्थ चित्त ने अपने हाथों से घी से बने स्वादिष्ट दूध-चावल से वरिष्ठ भिक्षुओं को भोजन कराया और उन्हें तृप्त किया। जब वरिष्ठ भिक्षुओं ने भोजन कर लिया और अपने प्याले रख दिए, तो वे अपने आसनों से उठे और चले गए।

तब गृहस्थ चित्त ने कहा, "बचा हुआ दान कर दो," और वे वरिष्ठ भिक्षुओं के पीछे-पीछे चल दिए। उस समय भीषण गर्मी थी, और वरिष्ठ भिक्षु ऐसे चल रहे थे मानो भोजन के कारण उनके शरीर पिघल रहे हों।

उस समय पूज्य महाक उस संघ में सबसे कनिष्ठ भिक्षु थे। तब पूज्य महाक ने पूज्य वरिष्ठ भिक्षु से कहा, "हे पूज्य, यदि ठंडी हवा चले, बादलों का आवरण बन जाए और हल्की बारिश हो, तो अच्छा होगा।"

"यह अच्छा होगा, मित्र।"

तब पूज्य महाक ने आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि ठंडी हवा चली, बादलों का आवरण बन गया और हल्की बारिश होने लगी।

तब गृहस्थ चित्त के मन में यह विचार आया, “इस संघ के सबसे कनिष्ठ भिक्षु में भी इतनी आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य है!”

फिर जब पूज्य महाका मठ में पहुँचे, तो उन्होंने पूज्य मुख्य भिक्षु से कहा, “क्या इतना काफी है, पूज्य भिक्षु?”

“बस इतना ही काफी है, मित्र महाका। जो किया गया है, वह पर्याप्त है, मित्र महाका, जो अर्पित किया गया है, वह पर्याप्त है।”

तब वरिष्ठ भिक्षु अपने-अपने निवासों पर चले गए और पूज्य महाका भी अपने निवास पर चले गए।

तब गृहस्थ चित्त पूज्य महाका के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “हे पूज्यवर, यदि गुरु महाका मुझे आध्यात्मिक शक्ति का कोई अलौकिक चमत्कार दिखाएँ तो अच्छा होगा।”

“तो, गृहस्थ, अपनी चादर बरामदे पर बिछाएँ और उस पर घास का एक गट्ठा बिखेर दें।”

"जी हां, आदरणीय महोदय," गृहस्वामी चित्त ने उत्तर दिया, और उसने अपना लबादा बरामदे पर फैला दिया और उस पर घास का एक गट्ठा बिखेर दिया।

फिर, जब वह अपने घर में प्रवेश कर कुंडी लगा चुके थे, तब पूज्य महाका ने आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि कुंडी के छेद और दरवाजे की दरार से एक लौ निकली और घास को जला दिया, लेकिन उनके वस्त्र को नहीं। 295 गृहस्थ चित्त ने अपना वस्त्र झाड़ा और भयभीत होकर एक तरफ खड़े हो गए।

तब पूज्य महाका अपने घर से बाहर आए और गृहस्थ चित्त से बोले: "क्या इतना काफी है, गृहस्थ?"

"बस इतना ही काफी है, पूज्य महाका। जो किया गया है, वह पर्याप्त है, पूज्य महाका, जो अर्पित किया गया है, वह पर्याप्त है। स्वामी महाका मच्छिकासंडा के रमणीय जंगली आम के बाग में आनंदित हों। मैं स्वामी महाका को वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री प्रदान करने में तत्पर रहूंगा।"

"यह तो बहुत अच्छा कहा, गृहस्थ।"

तब पूज्य महाका ने अपना आवास व्यवस्थित किया और कुंड और वस्त्र लेकर मच्छिकासंडा से प्रस्थान किया। जब उन्होंने मच्छिकासंडा छोड़ा, तो वे हमेशा के लिए चले गए और फिर कभी वापस नहीं लौटे।

---

347. कामाभू (1)
एक बार पूज्य कामाभू जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त पूज्य कामाभू के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य कामाभू ने उनसे कहा,

“हे गृहस्थ, यह कहा गया है:

‘दोषरहित चक्र और सफेद चंदवा वाला एक तीली वाला रथ सरपट दौड़ता है। इसे आते हुए देखो, यह निर्मल है। धारा को काटा गया है, बिना किसी बंधन के।’ 296 हे

गृहस्थ, इस संक्षिप्त कथन का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?”

“क्या यह भगवान (बुद्ध) ने कहा है, पूज्यवर?”

“जी हाँ, गृहस्थ।”

“तो कृपया एक क्षण रुकिए, पूज्यवर, मैं इसके अर्थ पर विचार कर लूँ।”

फिर, एक क्षण के मौन के बाद, गृहस्थ चित्त ने पूज्य कामाभू से कहा:

“‘दोषरहित’: हे पूज्यवर, यह सद्गुणों का प्रतीक है।” 'सफेद शामियाना': यह मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) का प्रतीक है। 'एक तीली': यह ध्यान का प्रतीक है। 'घुमावदार रथ': यह आगे बढ़ने और लौटने का प्रतीक है। 'रथ': यह शरीर का प्रतीक है जो चार महान

तत्वों (धातु) से बना है, माता-पिता से उत्पन्न हुआ है, चावल और दलिया से निर्मित है, अनित्यता के अधीन है, घिसने और नष्ट होने के अधीन है, टूटने और बिखरने के अधीन है।

"हे पूज्यवर, कामवासना (राग) कष्ट है; घृणा (दोष/द्वेष) कष्ट है; मोह (मोह) कष्ट है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उनके लिए ये त्याग दिए गए हैं, जड़ से काट दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिए गए हैं, मिटा दिए गए हैं ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। इसलिए जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसे 'कष्टमुक्त' कहा जाता है।" 'आने वाला' अरहंत के लिए एक पदनाम है।

"'धारा': हे पूज्यवर, यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का पदनाम है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए यह त्याग दिया जाता है, जड़ से काट दिया जाता है, ताड़ के ठूंठ के समान मिटा दिया जाता है, ताकि यह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो। इसलिए जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसे 'धारा विच्छेदित' कहा जाता है।

" हे पूज्यवर, कामवासना (राग) बंधन है; घृणा (दोष/द्वेष) बंधन है; मोह (मोह) बंधन है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए ये त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ के समान मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। इसलिए जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसे 'बंधन से मुक्त' कहा जाता है।

"इस प्रकार, आदरणीय महोदय, जब भगवान (बुद्ध) ने कहा:

'दोषरहित पहिए और सफेद चंदवा के साथ, एक
तीली वाला रथ चल रहा है।
इसे आते हुए देखो, विपत्ति रहित,
नदी कटी हुई है, बंधन से मुक्त होकर

ही मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का विस्तृत अर्थ समझ पाता हूँ।

"यह आपके लिए लाभ है, हे गृहस्थ, यह आपके लिए उत्तम लाभ है, क्योंकि आपके पास बुद्ध के गहन वचन को समझने के लिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की दृष्टि है।"

---

348. कामाभू (2)
एक बार पूज्य कामाभू जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त पूज्य कामाभू के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "पूज्यवर, संस्कार कितने प्रकार के होते हैं?" 297

"हे गृहस्थ, तीन प्रकार के संस्कार होते हैं: शारीरिक संस्कार, मौखिक संस्कार और मानसिक संस्कार।" 298

"जी, पूज्यवर," गृहस्थ चित्त ने कहा। तब, पूज्य कामभू के कथन से प्रसन्न और प्रसन्न होकर, उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, पूज्यवर, शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या है? मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या है? मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) क्या है?"

"श्वास लेना और श्वास छोड़ना, हे गृहस्थ, शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं; विचार और परीक्षण मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं; बोध (सन्ना संस. संग्या) और संवेदना (वेदना) मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं।"

"अच्छा, पूज्यवर," गृहस्थ चित्त ने कहा। फिर... उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, आदरणीय महोदय, श्वास लेना और श्वास छोड़ना शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) क्यों हैं? विचार और परीक्षण मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) क्यों हैं? बोध और वेदना मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) क्यों हैं?"

"गृहस्थ, श्वास लेना और श्वास छोड़ना शारीरिक क्रियाएं हैं, ये धर्म (गुण, नियम) शरीर पर निर्भर हैं; इसीलिए श्वास लेना और श्वास छोड़ना शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं। पहले मनन और चिंतन किया जाता है, फिर वाणी निकलती है; इसीलिए चिंतन और

चिंतन वाणी-आधार (व्यवहार-आधार) हैं। बोध और वेदना मानसिक क्रियाएं हैं, ये धर्म मन पर निर्भर हैं; इसीलिए बोध और वेदना मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं।"

यह कहते हुए, "परमेश्वर, आदरणीय महोदय,"... फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परमेश्वर, बोध और वेदना के निरोध (निरोध) की प्राप्ति कैसे होती है?" 299

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु (सन्यासी) बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर रहा होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता: 'मैं बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त करूँगा', या 'मैं बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर रहा हूँ', या 'मैंने बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर ली है'; [294] बल्कि उसका मन पहले से ही इस प्रकार विकसित हो चुका होता है कि वह उसे ऐसी अवस्था तक ले जाता है।" 300

“हे आदरणीय महोदय,” कहते हुए उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: “हे आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) को प्राप्त कर रहा होता है, तो उसमें सबसे पहले कौन सा संस्कार समाप्त होता है: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आदत), मौखिक संस्कार (व्यवहार-आदत), या मानसिक संस्कार (व्यवहार-आदत)?”

“गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) को प्राप्त कर रहा होता है, तो सबसे पहले मौखिक संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) समाप्त होता है, उसके बाद शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आदत), और उसके बाद मानसिक संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त होता है।” 301

"हे आदरणीय महोदय," कहते हुए... उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "हे आदरणीय महोदय, जो व्यक्ति मर चुका है और जो भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर चुका है, उनमें क्या अंतर है?"

गृहस्थ, जो व्यक्ति मर चुका है, उसके शरीर के संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, वाणी के संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, मानसिक संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं; उसकी प्राण शक्ति समाप्त हो चुकी है, उसकी शारीरिक ऊष्मा विलीन हो चुकी है, और उसकी इंद्रियाँ पूर्णतः निष्क्रिय हो चुकी हैं। जिस भिक्षु ने बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) प्राप्त कर ली है, उसके शरीर के संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, वाणी के संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं, मानसिक संस्कार (व्यवहार) समाप्त हो चुके हैं; परन्तु उसकी प्राण शक्ति समाप्त नहीं होती, उसकी शारीरिक ऊष्मा विलीन नहीं होती, और उसकी इंद्रियाँ शांत रहती हैं। 302 यही अंतर है एक मृत व्यक्ति और एक जीवित व्यक्ति में। "वह चला गया है, और एक भिक्षु जिसने बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति प्राप्त कर ली है।"

यह कहते हुए, "परमेश्वर,"... फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परमेश्वर, बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से कैसे उद्भव होता है?"

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध (सन्ना संस. संग्या) और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव कर रहा होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता: 'मैं बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव करूँगा', या 'मैं बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव कर रहा हूँ', या 'मैं बोध और संवेदना (वेदना) की समाप्ति से उद्भव कर चुका हूँ'; बल्कि उसका मन पहले से ही इस प्रकार विकसित होता है कि वह उसे ऐसी अवस्था तक ले जाता है।" 303

"हे आदरणीय महोदय," कहते हुए... उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "हे आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आ रहा होता है, तो उसमें सबसे पहले कौन सा उत्पन्न होता है: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आदत)?" क्या यह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) है, या मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन)?

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से उभर रहा होता है, तो सर्वप्रथम मानसिक संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं, उसके बाद देहीय संस्कार (व्यवहार-आदत) और उसके बाद वाणी संबंधी संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं।" 304

"हे आदरणीय," कहते हुए उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से उभर चुका होता है, तो उसे कितने प्रकार के स्पर्श (फस/स्पर्श) स्पर्श करते हैं?"

"गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आता है, तो उसे तीन प्रकार के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) प्राप्त होते हैं: शून्यता का संपर्क (फस्सा/स्पर्श), अनिमित्त का संपर्क (फस्सा/स्पर्श), और अनिर्देशित संपर्क (फस्सा/स्पर्श)।" 305 "

हे आदरणीय महोदय," कहकर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "हे आदरणीय महोदय, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आता है, तो उसका मन किस ओर झुकता है, ढलान बनाता है और प्रवृत्त होता है?" "

गृहस्थ, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के निरोध (वेदना) की प्राप्ति से बाहर आता है, तो उसका मन एकांत की ओर झुकता है, ढलान बनाता है और प्रवृत्त होता है।" 306

"हे आदरणीय महोदय," चित्त गृहस्थ ने कहा। तब, पूज्य कामभू के कथन से प्रसन्न और प्रसन्न होकर, उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "पूज्यवर, बोध और संवेदना के निवारण (वेदना) की प्राप्ति में कितने धर्म (गुण, नियम) सहायक हैं?" "

जी, गृहस्थ, तुम वह प्रश्न अंत में पूछ रहे हो जो पहले पूछा जाना चाहिए था; परन्तु मैं तुम्हें उत्तर दूंगा। बोध और संवेदना के निवारण (वेदना) की प्राप्ति में दो धर्म सहायक हैं: समभाव (शांति) और विपश्यना (अंतर्दृष्टि ध्यान)।" 307

---

349. गोदात्ता

एक बार पूज्य गोदात्ता जंगली आम के बाग में मच्छिकासंडा में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ चित्त पूज्य गोदात्ता के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य गोदात्ता ने बैठे-बैठे ही उनसे कहा: 308

"गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति), शून्यता से मन की मुक्ति, शून्यता से मन की मुक्ति और अनिमित्त से मन की मुक्ति: क्या ये धर्म (गुण, नियम) अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, या अर्थ में एक ही हैं और अभिव्यक्ति में भिन्न हैं?"

"हे पूज्यवर, एक विधि है जिससे ये धर्म अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं, और एक विधि है जिससे वे अर्थ में एक हैं और केवल अभिव्यक्ति में भिन्न हैं।

और हे पूज्यवर, वह विधि क्या है जिससे ये धर्म अर्थ और अभिव्यक्ति दोनों में भिन्न हैं? यहाँ एक भिक्षु (सन्यासी) प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए, जैसे स्वयं के लिए, वह प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से, विशाल, उच्च, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहता है। वह करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से..." समभाव से परिपूर्ण मन (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) के साथ, वह द्वितीय, तृतीय और चतुर्थांश में निवास करता है। इस प्रकार ऊपर, नीचे, आर-पार और सर्वत्र, और सभी के लिए स्वयं के समान, वह समभाव से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। इसे मन की असीम मुक्ति कहा जाता है। 309

"और हे पूज्यवर, शून्यता द्वारा मन की मुक्ति क्या है? यहाँ, चेतना की अनंतता (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'कुछ भी नहीं है', एक भिक्षु शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। इसे शून्यता द्वारा मन की मुक्ति कहा जाता है। 310

"और हे पूज्यवर, शून्यता द्वारा मन की मुक्ति क्या है? यहां एक भिक्षु, जंगल में जाकर, किसी वृक्ष की तलहटी में या किसी खाली कुटिया में जाकर, सोचता है: 'यह स्वयं से रहित है, न ही स्वयं से संबंधित है।' इसे शून्यता द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) कहा जाता है। 311

"और हे पूज्यवर, मन की अनिमित्त मुक्ति क्या है? यहां, सभी कारणों (निमित्त) से अनभिज्ञ होकर, एक भिक्षु अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। इसे मन की अनिमित्त मुक्ति कहा जाता है। 312

हे पूज्यवर, यही वह विधि है जिससे ये धर्म अर्थ और शब्द-रचना दोनों में भिन्न हैं। 313 और हे पूज्यवर, वह विधि क्या है जिससे ये धर्म अर्थ में एक हैं और केवल शब्द-रचना में भिन्न हैं? हे पूज्यवर

, कामवासना (राग) माप का कारक है, घृणा (दोष/द्वेष) माप का कारक है, मोह (मोह) माप का कारक है। जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके लिए ये त्याग दिए गए हैं, जड़ से काट दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ के समान मिटा दिए गए हैं, ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। मन की जितनी भी असीम मुक्ति हैं, उनमें से अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को प्रमुख घोषित किया गया है। 314 अब मन की वह अविचल मुक्ति कामवासना से रहित है, घृणा (दोष/द्वेष) से रहित है, मोह (मोह) से रहित है।

हे पूज्यवर, कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष), मोह (मोह) - ये सब कुछ हैं। 315 जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उसके ये सब त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों। शून्यता से मन की जितनी भी मुक्ति होती है, उनमें से अविचल मन की मुक्ति को श्रेष्ठ घोषित किया जाता है। अब वह अविचल मन की मुक्ति कामवासना से रहित है, घृणा (दोष/द्वेष), मोह (मोह) से रहित है।

हे पूज्यवर, कामवासना (राग), निमित्त (कारण) उत्पन्न करती है, घृणा (दोष/द्वेष), मोह (मोह) निमित्त (कारण) उत्पन्न करती है। 316 जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो जाते हैं, उनके लिए ये दोष जड़ से समाप्त हो जाते हैं, ताड़ के ठूंठ के समान मिट जाते हैं, इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं कि भविष्य में इनका कोई पुनरुत्पादन न हो। मन की अकारण मुक्ति (अनिमित्त) जिस हद तक होती है, उसमें अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को श्रेष्ठ घोषित किया जाता है। मन की वह अविचल मुक्ति कामवासना (राग) से, द्वेष (दोष/द्वेष) से और मोह (मोह) से रहित होती है।

"हे पूज्यवर, यही वह विधि है जिससे ये धर्म अर्थ में एक हैं, केवल शब्दों में भिन्न हैं।" 317

"हे गृहस्थ, यह आपके लिए लाभ है, हे गृहस्थ, यह आपके लिए उत्तम लाभ है, क्योंकि आपके पास बुद्ध के गहन वचन को देखने वाली प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है।"

---

350. निगंथा नटपुत्त (उर्फ महावीर)

उस अवसर पर निगंथा नटपुत्त अपने कई अनुयायियों के साथ मच्छिकासंडा पहुंचे। 318 गृहस्थ चित्त ने यह सुना और अपने कई अनुयायियों के साथ निगंथा नटपुत्त के पास गए। 319 उन्होंने निगंथा नटपुत्त से अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए। निगंथा नटपुत्त ने उनसे कहा,
"गृहस्थ, क्या आपको तपस्वी गौतम पर विश्वास है जब वे कहते हैं: 'विचार और परीक्षा के बिना समाधि (सम्मोहन) की अवस्था होती है, विचार और परीक्षा का निरोध होता है'?" 320

"इस विषय में, आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) पर विश्वास नहीं करता 321 जब वे कहते हैं: 'विचार और परीक्षा के बिना समाधि (सम्मोहन) की अवस्था होती है, विचार और परीक्षा का अंत होता है।'"

यह सुनकर निगंथ नटपुत्त ने गर्व से 322 अपने अनुयायियों की ओर देखा और कहा: "देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना सीधा है! कितना ईमानदार और खुला! जो यह सोचता है कि विचार और परीक्षा को रोका जा सकता है, वह शायद यह सोचे कि वह हवा को जाल में पकड़ सकता है या गंगा नदी की धारा को अपनी मुट्ठी से रोक सकता है।"

"आप क्या सोचते हैं, आदरणीय महोदय, कौन श्रेष्ठ है: ज्ञान या विश्वास?"

"ज्ञान, गृहस्थ, विश्वास से श्रेष्ठ है।"

"हे पूज्यवर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है। फिर, अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ... फिर, अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होने पर... मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ... फिर, अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख के त्याग के साथ... मैं चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और उसमें निवास करता हूँ। " "हे पूज्यवर, चूंकि

मैं इस प्रकार जानता और देखता हूँ, तो मुझे किस अन्य तपस्वी या ब्राह्मण पर विश्वास करना चाहिए कि बिना चिंतन और परीक्षण के समाधि (सम्मोहन) की अवस्था होती है, चिंतन और परीक्षण का निरोध होता है?"

यह सुनकर निगंथा नटपुत्त ने अपने दल की ओर तिरछी नज़र से देखते हुए कहा, "देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना कुटिल है! कितना कपटी और छलपूर्ण है!"

"अभी-अभी, आदरणीय महोदय, हमने आपको यह कहते हुए समझा: 'देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना सीधा-सादा है! कितना ईमानदार और खुला है!' - लेकिन अब हम आपको यह कहते हुए समझते हैं: 'देखिए, महोदय! यह चित्त गृहस्थ कितना कुटिल है! कितना कपटी और छलपूर्ण है!' यदि आपका पहला कथन सत्य है, आदरणीय महोदय, तो आपका दूसरा कथन असत्य है, जबकि यदि आपका पहला कथन असत्य है, तो आपका बाद वाला कथन सत्य है।

"आदरणीय महोदय, आगे ये दस उचित प्रश्न उठते हैं। जब आप इनका अर्थ समझ लें, तब आप अपने दल सहित मुझे उत्तर दें। 323 एक प्रश्न, एक सारांश, एक उत्तर। दो प्रश्न, दो सारांश, दो उत्तर। तीन... चार... पाँच... छह... सात... आठ... नौ... दस प्रश्न, दस सारांश, दस उत्तर।"

तब गृहस्थ चित्त अपने आसन से उठे और निगंथा नटपुत्त से ये दस उचित प्रश्न पूछे बिना ही चले गए। 324

---

351. नग्न तपस्वी कस्सपा (असेलकस्सपा)

उस अवसर पर, गृहस्थ चित्त के पुराने मित्र और गृहस्थ जीवन में नग्न तपस्वी कस्सपा मच्छिकासंडा में आ गए थे। गृहस्थ चित्त को इसकी सूचना मिली और वे नग्न तपस्वी कस्सपा के पास गए। उन्होंने उनसे अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे आदरणीय कस्सपा, आपको संन्यास लिए हुए कितना समय हो गया है?"

"हे गृहस्थ, मुझे संन्यास लिए हुए तीस वर्ष हो गए हैं।"

"हे आदरणीय, इन तीस वर्षों में क्या आपने ज्ञान और दृष्टि में कोई ऐसी अलौकिक उपलब्धि प्राप्त की है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, या कोई सुखमय निवास?"

"हे गृहस्थ, इन तीस वर्षों में मैंने ज्ञान और दृष्टि में कोई ऐसी अलौकिक उपलब्धि प्राप्त नहीं की है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, न ही कोई सुखमय निवास, बल्कि केवल नग्नता, मुंडा हुआ सिर और बैठने के लिए कंघी का उपयोग किया है।" 326

जब यह कहा गया, तो गृहस्थ चित्त ने उनसे कहा, "यह सचमुच अद्भुत है, महाराज! यह सचमुच आश्चर्यजनक है, महाराज! धर्म (मार्ग, नियम) की कितनी अच्छी व्याख्या की गई है 327 कि तीस वर्षों के बाद भी आपने ज्ञान और दृष्टि में कोई अलौकिक भेद प्राप्त नहीं किया है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, न ही आप सुख-सुविधाओं में रहते हैं, बल्कि केवल नग्न अवस्था में हैं, मुंडा सिर रखते हैं और अपने आसन को साफ करने के लिए केवल कंघी का उपयोग करते हैं।"

"लेकिन, गृहस्थ, आपको गृहस्थ बने हुए कितना समय हो गया है?"

"मेरे मामले में भी, आदरणीय महोदय, तीस वर्ष हो गए हैं।"

"इन तीस वर्षों में, गृहस्थ, क्या आपने ज्ञान और दृष्टि में कोई अलौकिक भेद प्राप्त किया है जो श्रेष्ठों के योग्य हो, या कोई सुख-सुविधाओं में रहने का स्थान प्राप्त किया है?"

"हे पूज्यवर, मैं ऐसा कैसे न करूँ? 328 क्योंकि मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। फिर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने पर, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... फिर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होने पर... तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... फिर, मैं अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख के त्याग से... चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। इसके

अतिरिक्त, यदि मैं भगवान (बुद्ध) से पहले मर जाऊँ, तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी यदि भगवान (बुद्ध) मेरे बारे में यह घोषणा करें: 'ऐसा कोई बंधन नहीं है जिससे चित्त गृहस्थ इस संसार में पुनर्जन्म ले सके।'" 329

जब यह कहा गया, तो नग्न तपस्वी कस्सपा ने गृहस्थ चित्त से कहा, "यह वास्तव में अद्भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! धम्म की व्याख्या कितनी अच्छी तरह से की गई है, कि श्वेत वस्त्र पहने एक गृहस्थ भी श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त कर सकता है।" एक सुखमय निवास।
क्या मुझे इस धम्म और अनुशासन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है, क्या मुझे उच्चतर दीक्षा (उपसंपदा) प्राप्त हो सकती है?

तब गृहस्थ चित्त नग्न तपस्वी कस्सपा को वरिष्ठ भिक्षुओं के पास ले गया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, यह नग्न तपस्वी कस्सपा गृहस्थ जीवन से हमारा पुराना मित्र है। वरिष्ठ भिक्षु इसे दीक्षा (पबज्जा) दें, इसे उच्चतर दीक्षा प्रदान करें।" मैं उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री उपलब्ध कराने में तत्पर रहूंगा।

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने इस धम्म और अनुशासन में दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की, उन्होंने उच्च दीक्षा ग्रहण की। और शीघ्र ही, अपनी उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांत में, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य कस्सपा ने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य कस्सपा उन लोगों में से एक बन गए जो अरहंत।

---

352. बीमारों को देखना (गिलानदासन संस्कृत: गिलानित-दर्शन)
उस समय चित्त गृहस्थ बीमार थे, अत्यंत कष्ट में थे। तब अनेक उद्यान देवता, वन देवता, वृक्ष देवता, औषधीय जड़ी-बूटियों में निवास करने वाले देवता और वन के विशालकाय देवता एकत्रित हुए और चित्त गृहस्थ से बोले, "हे गृहस्थ, यह कामना कीजिए: 'काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला राजा बनूँ!'"

यह सुनकर चित्त गृहस्थ ने उन देवताओं से कहा, "वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है; उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना होगा।"

यह सुनकर चित्त गृहस्थ के मित्रों, साथियों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों ने उनसे कहा, "हे स्वामी, ध्यान में रहें। बकवास न करें।" चित्त ने कहा,

"मैंने ऐसा क्या कह दिया कि आप मुझसे इस प्रकार कह रहे हैं?"

आपने हमसे कहा था: 'वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है, उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना चाहिए।'

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उद्यान देवता, वन देवता, वृक्ष देवता, औषधीय जड़ी-बूटियों में निवास करने वाले देवता और वन के विशालकाय देवता एकत्रित होकर मुझसे बोले: 'हे गृहस्थ, ऐसी कामना करो: "काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला राजा बनूँ!"' और मैंने उनसे कहा: 'वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है; उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना चाहिए।' हे

स्वामी, उन देवताओं को क्या लाभ दिखाई देता है कि वे आपसे ऐसा कहते हैं?

उन देवताओं को यह विचार आता है: 'यह चित्त गृहस्थ गुणी और अच्छे चरित्र का है। यदि वह कामना करे: "काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला राजा बनूँ!" - क्योंकि वह गुणी है, उसकी यह कामना उसकी पवित्रता के कारण सफल होगी। धर्म का राजा उसे धार्मिक भेंट देगा।' 330 इस लाभ को देखकर, वे देवता एकत्रित हुए और बोले: 'हे गृहस्थ, ऐसी कामना करो: "काश मैं भविष्य में चक्र चलाने वाला सम्राट बनूँ!"' और मैंने उनसे कहा: 'वह भी क्षणभंगुर है; वह भी अस्थिर है; उसे भी त्यागकर आगे बढ़ना चाहिए।' "

तो हे गृहस्थ, हमें भी उपदेश दीजिए।"

"अतः, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखेंगे: "भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, भाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

'हम धम्म में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखेंगे: "भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।"

"हम संघ में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखेंगे: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है, सीधे मार्ग का अनुसरण करता है, सच्चे मार्ग का अनुसरण करता है, उचित मार्ग का अनुसरण करता है; अर्थात्, चार युग्म, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।'

'हमारे परिवार में जो कुछ भी दान करने योग्य है, वह सब हम गुणी और अच्छे चरित्र वाले लोगों के साथ निःसंकोच साझा करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

फिर, अपने मित्रों और सहकर्मियों, अपने रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों में बुद्ध, धम्म और संघ में विश्वास जगाकर और उन्हें उदारता का उपदेश देकर, गृहस्थ चित्त का देहांत हो गया।

अध्याय 8: ग्राम प्रधानों से संबंधित प्रवचन (गमानिसामुत्त) {साम्युत्त-42}
353. कनाडा
सावत्थी में। तब ग्राम प्रधान चंदा (क्रोधित) 332 भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचा, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, यहाँ किसी को क्रोधी क्यों माना जाता है? और यहाँ किसी को सौम्य क्यों माना जाता है?" 333

"हे मुखिया, यहाँ किसी ने कामवासना (राग) का त्याग नहीं किया है। क्योंकि उसने कामवासना का त्याग नहीं किया है, इसलिए दूसरे लोग उसे चिढ़ाते हैं। दूसरों से चिढ़कर वह अपना क्रोध प्रकट करता है; उसे क्रोधी माना जाता है। उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग नहीं किया है। क्योंकि उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग नहीं किया है, इसलिए दूसरे लोग उसे चिढ़ाते हैं। दूसरों से चिढ़कर वह अपना क्रोध प्रकट करता है; उसे क्रोधी माना जाता है। उसने मोह (मोह) का त्याग नहीं किया है। क्योंकि उसने मोह (मोह) का त्याग नहीं किया है, इसलिए दूसरे लोग उसे चिढ़ाते हैं। दूसरों से चिढ़कर वह अपना क्रोध प्रकट करता है; उसे क्रोधी माना जाता है।

हे मुखिया, यही कारण है कि यहाँ किसी को क्रोधी माना जाता है।"

"हे मुखिया, यहाँ किसी ने कामवासना का त्याग कर दिया है। क्योंकि उसने कामवासना (राग) का त्याग कर दिया है, इसलिए दूसरे लोग उसे परेशान नहीं करते। दूसरों से परेशान न होने के कारण वह क्रोध प्रकट नहीं करता; इसलिए उसे सौम्य माना जाता है। उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग कर दिया है। क्योंकि उसने द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग कर दिया है, इसलिए दूसरे लोग उसे परेशान नहीं करते। दूसरों से परेशान न होने के कारण वह क्रोध प्रकट नहीं करता; इसलिए उसे सौम्य माना जाता है। उसने मोह (मोह) का त्याग कर दिया है। क्योंकि उसने मोह (मोह) का त्याग कर दिया है, इसलिए दूसरे लोग उसे परेशान नहीं करते। दूसरों से परेशान न होने के कारण वह क्रोध प्रकट नहीं करता; इसलिए उसे सौम्य माना जाता है।

हे मुखिया, यही कारण है कि यहाँ किसी को सौम्य माना जाता है।"

यह सुनकर मुखिया चंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"महान, आदरणीय महोदय! महान, आदरणीय महोदय!" भगवान (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म (मार्ग, नियम) को स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से भगवान (बुद्ध) मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।

---

354. तलपुटा

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब मंडली के मुखिया तलपुता 334 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “आदरणीय महोदय, मैंने पुराने समय के अभिनेताओं के बीच, गुरुओं की परंपरा में, यह कहावत सुनी है: 'यदि कोई अभिनेता रंगमंच या अखाड़े में सत्य और असत्य से लोगों का मनोरंजन करता है, 335 तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह हंसते हुए देवों (देवदूतों) की संगति में पुनर्जन्म लेता है।' इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?”

“बस करो, मुखिया, रहने दो! मुझसे यह मत पूछो!”

दूसरी और तीसरी बार, मंडली के मुखिया तलपुता ने कहा: "आदरणीय महोदय, मैंने पुराने समय के अभिनेताओं के बीच, शिक्षकों की परंपरा में, यह कहते सुना है: ...। इस बारे में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?" "

निश्चित रूप से, मुखिया जी, जब मैं कहता हूँ, 'बस करो, मुखिया जी, इसे छोड़ दो! मुझसे यह मत पूछो!' तो मेरी बात आपको समझ नहीं आ रही है।" लेकिन फिर भी, मैं तुम्हें उत्तर दूंगा। रंगमंच या अखाड़े में, उन प्राणियों के बीच जो अभी तक कामवासना (राग) से मुक्त नहीं हुए हैं, जो कामवासना (राग) के बंधन में बंधे हैं, एक अभिनेता उन्हें उत्तेजक चीजों से मनोरंजन करता है जो उन्हें इच्छाओं के प्रति और भी अधिक उत्तेजित करती हैं। रंगमंच या अखाड़े में, उन प्राणियों के बीच जो अभी तक घृणा (दोष/द्वेष) से मुक्त नहीं हुए हैं, जो घृणा (दोष/द्वेष) के बंधन में बंधे हैं, एक अभिनेता उन्हें क्रोधित करने वाली चीजों से मनोरंजन करता है जो उन्हें घृणा (दोष/द्वेष) के प्रति और भी अधिक उत्तेजित करती हैं। रंगमंच या अखाड़े में, उन प्राणियों के बीच जो अभी तक मोह (मोह) से मुक्त नहीं हुए हैं, जो मोह (मोह) के बंधन में बंधे हैं, एक अभिनेता उन्हें भ्रमित करने वाली चीजों से मनोरंजन करता है जो उन्हें मोह (मोह) के प्रति और भी अधिक उत्तेजित करती हैं।

इस प्रकार, स्वयं मदमस्त और आलसी होकर, दूसरों को मदमस्त और आलसी बनाकर, मृत्यु के बाद शरीर के टूटने पर, वह 'नरक' में पुनर्जन्म लेता है। 'हंसी का।' 337 परन्तु यदि उसका ऐसा मत हो: 'यदि कोई अभिनेता रंगमंच या अखाड़े में सत्य और असत्य से लोगों का मनोरंजन करता है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वह हंसते हुए देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है' - तो यह उसका गलत मत है। मैं कहता हूँ, गलत मत वाले व्यक्ति के लिए दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशुलोक।' 338

यह सुनकर मंडली का मुखिया तलपुता रो पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "तो जब मैंने कहा, 'बस करो, मुखिया, इसे छोड़ दो!', तो क्या तुम मेरी बात समझ नहीं पाए?'" मुझसे यह मत पूछो!

मैं भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार नहीं रो रहा हूँ, बल्कि इसलिए रो रहा हूँ क्योंकि मुझे उन पुराने अभिनेताओं ने लंबे समय से धोखा दिया है, ठगा है और छल किया है जो गुरुओं की परंपरा में थे और कहते थे: 'यदि कोई अभिनेता रंगमंच या अखाड़े में सत्य और झूठ से लोगों का मनोरंजन करता है, तो शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, उनका पुनर्जन्म हंसते हुए देवताओं की संगति में हुआ।

"हे महान, आदरणीय महोदय! हे महान, आदरणीय महोदय! भगवान (बुद्ध) ने धर्म (मार्ग, नियम) को अनेक तरीकों से स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीन लोगों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। हे आदरणीय महोदय, क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त हो सकती है? क्या मुझे उपसंपदा (उच्चतर दीक्षा) प्राप्त हो सकती है?"

तब दल के मुखिया तलपुता ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की, उन्हें उच्चतर दीक्षा प्राप्त हुई। और जल्द ही, उच्चतर दीक्षा के कुछ ही समय बाद... आदरणीय तलपुता अरहंतों में से एक बन गए।

---

355. योधाजीव (सं. युद्धजीवी)

तब प्रधान योद्धाजीव (339) भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, मैंने प्राचीन काल के गुरुओं के वंश में योद्धाओं से यह सुना है: 'जब कोई योद्धा युद्ध में संघर्ष करता है और बल लगाता है, और यदि दूसरे उसे युद्ध में संघर्ष करते हुए मार डालते हैं, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह युद्ध में मारे गए देवों (देवदूतों) के साथ पुनर्जन्म लेता है।' 340 इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?"

"बस करो, प्रधान, रहने दो! मुझसे यह मत पूछो!"

दूसरी और तीसरी बार प्रधान योद्धाजीव ने कहा:
"हे पूज्यवर, मैंने प्राचीन काल के गुरुओं के वंश में योद्धाओं से यह सुना है: ... इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?"

"निश्चित रूप से, मुखिया, जब मैं कहता हूँ, 'बस करो, मुखिया, इसे छोड़ दो! मुझसे यह मत पूछो!' तो मेरी बात आपको समझ नहीं आ रही है। लेकिन फिर भी, मैं आपको उत्तर दूंगा। मुखिया, जब कोई भाड़े का सैनिक युद्ध में संघर्ष करता है और अपना पूरा बल लगाता है, तो उसका मन पहले से ही नीचा, भ्रष्ट और इस विचार से गुमराह होता है: 'इन प्राणियों को मार डाला जाए, उनका वध किया जाए, उन्हें नष्ट कर दिया जाए, या उनका सफाया कर दिया जाए।' यदि दूसरे लोग युद्ध में संघर्ष करते हुए उसे मार डालते हैं और उसका अंत कर देते हैं, तो मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह 'युद्ध में मारे गए लोगों के नरक' में पुनर्जन्म लेता है।" 341 परन्तु यदि उसका ऐसा मत हो कि "जब कोई भाड़े का सैनिक युद्ध में संघर्ष करता है और बल लगाता है, और यदि दूसरे उसे मार डालते हैं, तो मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ वह युद्ध में मारे गए देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है" — तो यह उसका गलत मत है। मैं कहता हूँ, गलत मत रखने वाले व्यक्ति के लिए दो ही गंतव्य हैं: या तो नरक या पशुलोक।"

यह सुनकर प्रधान योद्धाजीव रो पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "तो क्या मेरी बात तुम तक नहीं पहुँची जब मैंने कहा, 'बस करो, मुखिया, इसे छोड़ दो! मुझसे यह मत पूछो!'"

"हे पूज्यवर, मैं भगवान (बुद्ध) की कही बातों के कारण नहीं रो रहा हूँ, बल्कि इसलिए रो रहा हूँ क्योंकि मुझे पुराने समय के उन भाड़े के सैनिकों ने धोखा दिया है, ठगा है और छल किया है, जो गुरुओं की परंपरा में थे और कहते थे: 'भाड़े का सैनिक वह होता है जो युद्ध में संघर्ष करता है और बल लगाता है, यदि दूसरे उसे युद्ध में संघर्ष करते हुए मार डालते हैं, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह युद्ध में मारे गए देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है।'

"हे महान, पूज्यवर!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

356. हत्थारोह
तब हाथी योद्धा हत्थारोह ने भगवान (बुद्ध) के पास जाकर कहा... (पाठ पिछले 355 के समान है, अंत में:) "...जो जीवन के लिए शरण लेने गए हैं।"

---

357. अस्सारोहा (सं. अश्वारोहा)
तब सरदार अस्सारोह, जो एक घुड़सवार योद्धा था, भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचा... और उनसे कहा:

(यह सब 355 में दिए गए कथन के समान है, सिवाय इसके कि इसे घुड़सवार योद्धा (अस्सारोह) के शब्दों में व्यक्त किया गया है, जो युद्ध में प्रयास और परिश्रम करता है।)

---

358. असिबंधकपुत्त
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब मुखिया असिबंधकपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, पश्चिमी क्षेत्र के ब्राह्मण - जो जलपात्र लेकर चलते हैं, जलीय पौधों की माला पहनते हैं, जल में लीन रहते हैं और पवित्र अग्नि की देखभाल करते हैं - कहा जाता है कि वे मृत व्यक्ति को ऊपर की ओर निर्देशित करते हैं, उसका मार्गदर्शन करते हैं और उसे स्वर्ग तक पहुंचाते हैं। 342 परन्तु भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, ऐसा कर सकते हैं कि शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, संपूर्ण विश्व एक शुभ गंतव्य (सुगति), एक स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सके।"

"तो फिर, मुखिया जी, मैं इस विषय पर आपसे प्रश्न करूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। मुखिया जी, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कि यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, यौन दुराचार करता है, झूठ बोलता है, फूट डालता है, कठोर भाषा का प्रयोग करता है, व्यर्थ की बातें करता है, लोभी है, द्वेष से भरा है और गलत मत रखता है। तब लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर एकत्रित होकर प्रार्थना करेगी, स्तुति करेगी और आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करेगी और कहेगी: 'शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु से पहले, यह व्यक्ति स्वर्गलोक में, शुभ स्थान पर पुनर्जन्म ले।' मुखिया जी, आपका क्या विचार है? क्या लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति और आदरपूर्वक प्रणाम करने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, वह व्यक्ति स्वर्गलोक में, शुभ स्थान पर पुनर्जन्म लेगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"मान लीजिए, मुखिया जी, कोई व्यक्ति एक विशाल पत्थर को गहरे तालाब में फेंक दे। फिर लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर इकट्ठा हो जाए, और वे प्रार्थना करें, स्तुति करें और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करें, यह कहते हुए: 'हे अच्छे पत्थर, प्रकट हो! हे अच्छे पत्थर, उठो! हे अच्छे पत्थर, ऊँचे स्थान पर आ जाओ!' मुखिया जी, आप क्या सोचते हैं? क्या लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करने के कारण वह पत्थर प्रकट होगा, उठेगा और ऊँचे स्थान पर आ जाएगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इसी प्रकार, मुखिया जी, यदि कोई व्यक्ति जीवन का नाश करने वाला हो... और गलत विचार रखता हो, तो भले ही लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर इकट्ठा हो जाए... फिर भी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह व्यक्ति दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेगा।"

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है? मान लीजिए कि यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो जीवन के क्षय (खयाल) से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से, फूट डालने वाली वाणी से, कठोर वाणी से, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है, जो लोभी नहीं है, द्वेष रहित है, और सही दृष्टि रखता है। तब लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर एकत्रित हो जाए, और वे प्रार्थना करें, स्तुतिगान करें और आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करें और कहें: 'शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, यह व्यक्ति दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म ले।' मुखिया जी, आपका क्या विचार है? क्या लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति, और उनके आदरपूर्वक प्रणाम करने के कारण, शरीर के टूटने के बाद, वह व्यक्ति दुख की अवस्था में... नरक में पुनर्जन्म लेगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"मान लीजिए, मुखिया जी, एक व्यक्ति घी या तेल से भरे एक बर्तन को गहरे पानी के कुंड में डुबोकर तोड़ देता है। उसके टुकड़े या अंश नीचे डूब जाएंगे, लेकिन घी या तेल ऊपर उठ जाएगा। फिर लोगों की एक बड़ी भीड़ उसके चारों ओर इकट्ठा होकर प्रार्थना करेगी, स्तुति करेगी और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए उसकी परिक्रमा करेगी, और कहेगी: 'हे अच्छे घी या तेल, नीचे डूब जाओ! हे अच्छे घी या तेल, स्थिर हो जाओ! नीचे चले जाओ!' मुखिया जी, आप क्या सोचते हैं? लोगों की उस बड़ी भीड़ की प्रार्थनाओं, उनकी स्तुति और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए परिक्रमा करने के कारण क्या वह घी या तेल नीचे डूबेगा, स्थिर होगा या नीचे जाएगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"इसी प्रकार, हे मुखिया, यदि कोई व्यक्ति जीवन के क्षय (खयाल/क्षय) से दूर रहता है... जो सही दृष्टि रखता है, चाहे उसके चारों ओर बड़ी भीड़ जमा हो जाए... फिर भी, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, वह व्यक्ति एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेगा।"

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

359. खेत की उपमा (खेत्तुपमा)

एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब मुखिया असिबंधकपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, क्या भगवान (बुद्ध) सभी प्राणियों के प्रति दयालु नहीं हैं?"

"जी, मुखिया, तथागत सभी प्राणियों के प्रति दयालु हैं।"

"तो फिर आदरणीय महोदय, ऐसा क्यों है कि भगवान (बुद्ध) कुछ लोगों को धर्म (मार्ग, नियम) का पूर्णतः उपदेश देते हैं, पर दूसरों को उतना पूर्णतः नहीं?"

"तो फिर, मुखिया जी, मैं आपसे इस बारे में प्रश्न पूछूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। आपका क्या विचार है, मुखिया जी? मान लीजिए कि यहाँ एक किसान के पास तीन खेत हैं: एक उत्तम, एक मध्यम गुणवत्ता का और एक निम्न गुणवत्ता का - ऊबड़-खाबड़, खारी और बंजर भूमि वाला। आपका क्या विचार है, मुखिया जी? यदि वह किसान बीज बोना चाहता है, तो वह पहले कहाँ बोएगा: उत्तम खेत में, मध्यम गुणवत्ता वाले खेत में, या निम्न गुणवत्ता वाले खेत में, जो ऊबड़-खाबड़, खारी और बंजर भूमि वाला है?"

"यदि, आदरणीय महोदय, वह किसान बीज बोना चाहता है, तो वह उत्तम खेत में बोएगा। वहाँ बीज बोने के बाद, वह फिर मध्यम गुणवत्ता वाले खेत में बीज बोएगा। वहाँ बीज बोने के बाद, वह निम्न गुणवत्ता वाले खेत में बीज बो भी सकता है और नहीं भी। इसका क्या कारण है? क्योंकि कम से कम उसका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में तो किया जा सकता है।"

"हे मुखिया, जिस प्रकार उत्तम खेत मेरे लिए उत्तम है, उसी प्रकार भिक्षु और भिक्षुणियाँ मेरे लिए हैं। मैं उन्हें उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मुझे अपना द्वीप, अपना आश्रय, अपना रक्षक और अपना शरणस्थल मानते हैं।

"हे मुखिया, जिस प्रकार मध्यम गुणवत्ता का खेत मेरे लिए है, उसी प्रकार पुरुष और स्त्री गृहस्थ अनुयायी मेरे लिए हैं। मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धर्म का उपदेश देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मुझे अपना द्वीप, अपना आश्रय, अपना रक्षक और अपना शरणस्थल मानते हैं।"

"तो, मुखिया, ठीक उसी प्रकार जैसे वह खेत जो उबड़-खाबड़, खारा और खराब है, मेरे लिए तपस्वी, ब्राह्मण और अन्य संप्रदायों के तपस्वी हैं। फिर भी मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धम्म की शिक्षा देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि यदि वे एक वाक्य भी समझ लें, तो इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

"मान लीजिए, मुखिया जी, एक आदमी के पास तीन पानी के बर्तन हैं: एक बिना दरार वाला, जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता; दूसरा बिना दरार वाला, लेकिन जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है; और तीसरा दरार वाला, जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है। मुखिया जी, आप क्या सोचते हैं? यदि वह आदमी पानी जमा करना चाहता है, तो वह उसे पहले कहाँ जमा करेगा: उस बिना दरार वाले बर्तन में जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता; या उस बिना दरार वाले बर्तन में जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है; या उस दरार वाले बर्तन में जिससे पानी रिसकर बाहर निकलता है?"

"यदि, आदरणीय महोदय, वह व्यक्ति जल संग्रहित करना चाहता है, तो वह उसे बिना दरार वाले बर्तन में संग्रहित करेगा, जिससे जल रिसकर बाहर न निकले। वहाँ जल संग्रहित करने के बाद, वह उसे बिना दरार वाले बर्तन में संग्रहित करेगा, जिससे जल रिसकर बाहर निकल जाता है। वहाँ भी संग्रहित करने के बाद, वह शायद दरार वाले बर्तन में संग्रहित करे या न करे, जिससे जल रिसकर बाहर निकल जाता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि कम से कम उसका उपयोग बर्तन धोने के लिए तो किया जा सकता है।"

हे मुखिया, जिस प्रकार बिना दरार वाला घड़ा होता है जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार मेरे भिक्षु और भिक्षुणियाँ हैं। मैं उन्हें उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धम्म की शिक्षा देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मेरे साथ अपने द्वीप, अपने आश्रय, अपने रक्षक और अपनी शरणस्थली के रूप में निवास करते हैं। फिर

, हे मुखिया, जिस प्रकार बिना दरार वाला घड़ा होता है जिससे पानी रिसकर बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार मेरे पुरुष और स्त्री अनुयायी हैं। मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम धम्म की शिक्षा देता हूँ; मैं उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे मुझे अपना द्वीप, अपना आश्रय, अपना रक्षक और अपना शरणस्थल मानते हैं।

"तो, मुखिया, जिस प्रकार पानी का घड़ा दरारों से रिसकर बह जाता है, उसी प्रकार तपस्वी, ब्राह्मण और अन्य संप्रदायों के तपस्वी मेरे लिए हैं। फिर भी मैं उन्हें भी उचित अर्थ और शब्दों के साथ, आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम धम्म का उपदेश देता हूँ; मैं

उन्हें पूर्णतः पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का दर्शन कराता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि यदि वे एक वाक्य भी समझ लें, तो इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होगा।"

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

360. शंखध्वनि (शंखधाम)
एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिका के आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। तब निगंथों के एक गृहस्थ शिष्य, असिबंधकपुत्त, जो मुखिया थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। भगवान (बुद्ध) ने एक तरफ बैठे हुए उनसे कहा,

"हे मुखिया, निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को धम्म (मार्ग, नियम) किस प्रकार सिखाते हैं?"

आदरणीय महोदय, निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को धम्म का उपदेश इस प्रकार देते हैं: 'जो कोई भी जीवन का नाश करता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। जो कोई भी बिना दी हुई वस्तु लेता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। जो कोई भी यौन दुराचार में लिप्त होता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। जो कोई भी झूठ बोलता है, वह दुखमय अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है। मनुष्य अपने सामान्य आचरण के अनुसार पुनर्जन्म की ओर अग्रसर होता है।' आदरणीय महोदय, निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को इसी प्रकार धम्म का उपदेश देते हैं।

"हे मुखिया, यदि ऐसा होता कि व्यक्ति के सामान्य आचरण के कारण ही पुनर्जन्म होता, तो निगंथ नटपुत्त के वचनानुसार कोई भी व्यक्ति दुखमय स्थिति में, नरक में जाने के लिए बाध्य नहीं होता। हे मुखिया, आपका क्या विचार है? जीवन का विनाश करने वाले व्यक्ति के मामले में, यदि एक घटना की तुलना दूसरी घटना से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो कौन सी घटना अधिक बार घटित होती है: जीवन का विनाश करने की घटनाएँ या जीवन का विनाश न करने की घटनाएँ?"

"हे पूज्यवर, जीवन का विनाश करने वाले व्यक्ति के मामले में, यदि एक घटना की तुलना दूसरी घटना से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो जीवन का विनाश करने की घटनाएँ कम ही घटित होती हैं, जबकि जीवन का विनाश न करने की घटनाएँ अधिक होती हैं।"

तो, मुखिया जी, यदि ऐसा होता कि व्यक्ति अपने सामान्य रहन-सहन के तरीके से पुनर्जन्म की ओर अग्रसर होता, तो निगंथा नटपुत्त के वचन के अनुसार कोई भी व्यक्ति दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य नहीं होता। "

आप क्या सोचते हैं, मुखिया जी? उस व्यक्ति के मामले में जो बिना दी हुई वस्तु लेता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है..." जो व्यक्ति झूठ बोलता है, यदि एक अवसर की तुलना दूसरे से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो कौन सा अवसर अधिक बार होता है: वे अवसर जब वह झूठ बोल रहा होता है या वे अवसर जब वह झूठ नहीं बोल रहा होता है?

"हे पूज्यवर, झूठ बोलने वाले व्यक्ति के मामले में, यदि एक अवसर की तुलना दूसरे से की जाए, चाहे दिन हो या रात, तो उसके झूठ बोलने के अवसर कम होते हैं जबकि उसके झूठ न बोलने के अवसर अधिक होते हैं।"

"इसलिए, मुखिया जी, यदि ऐसा होता कि व्यक्ति अपने सामान्य जीवन यापन के तरीके से [पुनर्जन्म की ओर] अग्रसर होता, तो निगंथ नटपुत्त के वचन के अनुसार कोई भी व्यक्ति दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य नहीं होता।"

"हे मुखिया, यहाँ एक शिक्षक का यह मत है: 'जो कोई भी जीवन का नाश करता है... जो कुछ भी उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है वह दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य है, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।' तब एक शिष्य को उस शिक्षक पर पूरा विश्वास होता है। उसके मन में यह विचार आता है: 'मेरे शिक्षक का यह मत है: "जो कोई भी जीवन का नाश करता है वह दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य है, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने भी जीवन का नाश किया है, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य हूँ, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।' इस प्रकार वह ऐसा मत अपना लेता है। यदि वह उस कथन और उस मन की अवस्था को नहीं त्यागता है, और यदि वह उस मत को नहीं छोड़ता है, तो अपने कर्मों के अनुसार वह मानो नरक में डाल दिया जाएगा। 344

"उसके मन में यह विचार आता है: 'मेरे शिक्षक का यह मत है: "जो कोई भी उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है वह दुख की अवस्था में जाने के लिए बाध्य है, वह नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने वह ले लिया है जो मुझे नहीं दिया गया था, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य हूँ।' इस प्रकार वह ऐसा विचार अपना लेता है। यदि वह इस कथन को नहीं छोड़ता... तो वह मानो नरक में ही गिर जाएगा।

उसे यह विचार आता है: 'मेरे गुरु का यह सिद्धांत और विचार है: "जो कोई भी यौन दुराचार में लिप्त होता है, वह दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने यौन दुराचार किया है, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य हूँ।' इस प्रकार वह ऐसा विचार अपना लेता है। यदि वह इस कथन को नहीं छोड़ता... तो वह मानो नरक में ही गिर जाएगा।

उसे यह विचार आता है: 'मेरे गुरु का यह सिद्धांत और विचार है: "जो कोई भी झूठ बोलता है, वह दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य है।" अब मैंने झूठ बोला है, इसलिए मैं भी दुख की अवस्था में, नरक में जाने के लिए बाध्य हूँ।' इस प्रकार वह ऐसा विचार अपना लेता है। यदि वह उस कथन को नहीं त्यागता... तो वह मानो नरक में डाल दिया जाएगा।

"परन्तु हे मुखिया, संसार में तथागत का जन्म होता है, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण, सौभाग्यशाली, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता, देवों और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)। अनेक प्रकार से वे जीवन के क्षय/विनाश की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'जीवन के विनाश से दूर रहो।' वे बिना दी हुई वस्तुएँ लेने की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से दूर रहो।' वे यौन दुराचार की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'यौन दुराचार से दूर रहो।' वे झूठे वचन की निंदा करते हैं और कहते हैं: 'झूठे वचन से दूर रहो।'

तब शिष्य को उस गुरु पर पूरा भरोसा होता है। वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से जीवन के क्षय/विनाश (खय/क्षय) की निंदा और भर्त्सना करते हैं, और कहते हैं: "जीवन के विनाश से दूर रहो।" अब मैंने जीवन का इतना विनाश कर दिया है। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। परन्तु यद्यपि मुझे इस पर खेद है, मेरा यह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता।' ऐसा सोचकर वह जीवन के विनाश का त्याग कर देता है और भविष्य में भी जीवन के विनाश से दूर रहता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; 345 इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से अनचाही वस्तुएँ लेने की निंदा और भर्त्सना करते हैं, और कहते हैं: "अनचाही वस्तुएँ लेने से दूर रहो।" अब मैंने अनचाही वस्तुएँ इतनी मात्रा में ले ली हैं। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। परन्तु यद्यपि मुझे इस बात का खेद है, फिर भी मेरा वह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता। यह सोचकर वह अनचाही वस्तुएँ लेने का त्याग कर देता है और भविष्य में भी अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से यौन दुराचार की आलोचना और निंदा करते हैं, और कहते हैं: "यौन दुराचार से दूर रहो।" अब मैंने इतनी हद तक यौन दुराचार किया है। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। परन्तु यद्यपि मुझे इस बात का खेद है, फिर भी मेरा वह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता।' विचार करने के बाद, वह यौन दुराचार का त्याग करता है और भविष्य में भी यौन दुराचार से दूर रहता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

वह सोचता है: 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से झूठे वचन की आलोचना और निंदा करते हैं, और कहते हैं: "झूठे वचन से दूर रहो।" अब मैंने इतना झूठ बोला है। यह उचित नहीं था; यह अच्छा नहीं था। लेकिन यद्यपि मुझे इस पर पछतावा है, मेरा वह बुरा कर्म निरर्थक नहीं हो सकता।' विचार करने के बाद, वह झूठे वचन का त्याग करता है और भविष्य में भी झूठे वचन से दूर रहता है। इस प्रकार उस बुरे कर्म का त्याग हो जाता है; इस प्रकार उस बुरे कर्म से मुक्ति मिल जाती है।

जीवन के विनाश (खया/क्षय) का त्याग करके, वह जीवन के विनाश से दूर रहता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग करके, वह जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहता है। यौन दुराचार का त्याग करके, वह यौन दुराचार से दूर रहता है। झूठी वाणी का त्याग करके, वह झूठी वाणी से दूर रहता है। विभाजनकारी वाणी का त्याग करके, वह विभाजनकारी वाणी से दूर रहता है। कठोर वाणी का त्याग करके, वह कठोर वाणी से दूर रहता है। व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित है। द्वेष और घृणा (दोष/द्वेष) का त्याग करके, उसका मन द्वेष रहित है। गलत मत का त्याग करके, वह सही मत का है।

फिर, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित नहीं, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसका मन मग्न रहता है। प्रेममयी (मैत्री) से परिपूर्ण, वह द्वितीय, तृतीय और चतुर्थांश में व्याप्त है। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और सर्वत्र, और सभी के लिए अपने समान, वह प्रेममयी (मैत्री) से ओतप्रोत, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से समस्त संसार में विराजमान है। जैसे एक सशक्त शंख बजाने वाला आसानी से चारों दिशाओं में अपना संकेत भेज सकता है, वैसे ही जब प्रेममयी (मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) इस प्रकार विकसित और पोषित की जाती है, तो किया गया कोई भी सीमित कर्म वहाँ नहीं रहता, वहाँ बना नहीं रहता। 346

"वह करुणा से परिपूर्ण मन से, परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से, समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहते हैं, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह समभाव (उपेक्खा) से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहते हैं। जैसे एक शक्तिशाली शंख बजाने वाला आसानी से अपनी ध्वनि चारों दिशाओं में भेज सकता है, वैसे ही जब समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाती है, तो किया गया कोई भी सीमित कर्म वहाँ नहीं रहता, वहाँ बना नहीं रहता।"

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

361. परिवार (कुला)
एक बार भगवान (बुद्ध), भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण करते हुए नालंदा पहुँचे। वे वहाँ पावरिक-अंबावन में ठहरे।

उस समय नालंदा में अकाल पड़ा हुआ था, फसलें सूखकर भूसे में तब्दील हो गई थीं। 347 उस समय निगंथ नटपुत्त अपने कई निगंथ शिष्यों के साथ नालंदा में निवास कर रहे थे। तब निगंथ शिष्यों के मुखिया असिबंधकपुत्त, जो उनके गृहस्थ शिष्य थे, निगंथ नटपुत्त के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब निगंथ नटपुत्त ने उनसे कहा: "आओ, मुखिया, तपस्वी गौतम के सिद्धांत का खंडन करो। तब तुम्हारे बारे में यह अच्छी खबर फैलेगी कि 'मुखिया असिबंधकपुत्त ने इतने शक्तिशाली और बलवान तपस्वी गौतम के सिद्धांत का खंडन किया है।' "

पर हे पूज्यवर, मैं इतने शक्तिशाली और बलवान तपस्वी गौतम के सिद्धांत का खंडन कैसे करूँ?"

"जाओ, मुखिया, तपस्वी गौतम के पास जाओ और उनसे पूछो:
'हे पूज्यवर, क्या भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से परिवार के प्रति सहानुभूति, परिवार की रक्षा और परिवार के प्रति करुणा की प्रशंसा नहीं करते?'" यदि आप इस प्रकार प्रश्न पूछकर तपस्वी गौतम से कहें, 'जी, मुखिया जी, तथागत अनेक प्रकार से परिवारों के प्रति सहानुभूति, परिवारों की रक्षा और उनके प्रति करुणा की प्रशंसा करते हैं,' तो आपको उनसे कहना चाहिए: 'तो फिर, आदरणीय महोदय, अकाल के समय, अभाव के समय, जब फसलें नष्ट होकर भूसे में बदल गई हैं, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ भ्रमण पर क्यों हैं? भगवान (बुद्ध) परिवारों के विनाश, परिवारों पर विपत्ति और परिवारों के खयाल/क्षय के लिए साधना कर रहे हैं।' जब आप तपस्वी गौतम के सामने यह दुविधा रखेंगे, तो वे न तो इसे अस्वीकार कर पाएंगे और न ही स्वीकार पाएंगे। '

जी, आदरणीय महोदय,' आसिबंधकपुत्त मुखिया ने उत्तर दिया। फिर वे अपने आसन से उठे और निगंथ नटपुत्त को अपने दाहिनी ओर बिठाकर उन्हें प्रणाम करने के बाद भगवान (बुद्ध) के पास चले गए। भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले, "आदरणीय महोदय, क्या भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से परिवारों के प्रति सहानुभूति, परिवारों की रक्षा और परिवारों के प्रति करुणा की प्रशंसा नहीं करते?"

"जी, मुखिया, तथागत अनेक प्रकार से परिवारों के प्रति सहानुभूति, परिवारों की रक्षा और परिवारों के प्रति करुणा की प्रशंसा करते हैं।"

"तो फिर, आदरणीय महोदय, अकाल के समय, अभाव के समय, जब फसलें नष्ट होकर भूसे में बदल गई हैं, भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ भ्रमण पर क्यों हैं? भगवान (बुद्ध) परिवारों के विनाश, परिवारों पर विपत्ति और परिवारों के खयाल/क्षय के लिए साधना कर रहे हैं।"

"हे मुखिया, मुझे 91 युग पहले का समय याद है, लेकिन मुझे ऐसा कोई परिवार याद नहीं आता जो केवल पका हुआ भिक्षा भोजन देने मात्र से नष्ट हो गया हो। बल्कि, जितने भी परिवार धनी हैं, जिनके पास बहुत धन-संपत्ति है, प्रचुर मात्रा में सोना-चांदी है, प्रचुर संपत्ति और जीविका के साधन हैं, प्रचुर धन और अनाज है, वे सभी दान देने, सत्यनिष्ठा और आत्म-संयम के कारण ही धनी हुए हैं। 348

"हे मुखिया, परिवारों के विनाश के आठ कारण हैं। परिवार राजा के कारण, या चोरों के कारण, या आग के कारण, या पानी के कारण नष्ट हो जाते हैं; या वे अपना जमा किया हुआ धन नहीं पाते; 349 या कुप्रबंधित उद्यम विफल हो जाते हैं; या परिवार में कोई ऐसा फिजूलखर्ची करने वाला पैदा हो जाता है जो धन को बर्बाद कर देता है; और अनित्यता (अनिच्च संस्कृत अनित्य) आठवां कारण है। ये परिवारों के विनाश के आठ कारण हैं।" लेकिन जब तक परिवारों के विनाश के ये आठ कारण और वजहें मौजूद हैं, अगर कोई मेरे बारे में इस प्रकार कहे: 'भगवान (बुद्ध) परिवारों के विनाश, परिवारों पर विपत्ति और परिवारों के खात्मा के लिए साधना कर रहे हैं', अगर वह इस कथन और इस मानसिकता को नहीं त्यागता, और अगर वह इस विचार को नहीं छोड़ता, तो अपने कर्मों के अनुसार वह मानो नरक में डाल दिया जाएगा।

यह सुनकर मुखिया असिबंधकपुत्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

362. मैनिकुलाका
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय राजा के दल के सदस्य राजमहल में एकत्रित होकर बैठे थे, तभी यह चर्चा हुई:
“शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वियों के लिए सोना और चाँदी जायज़ हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी स्वीकार करते हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी ग्रहण करते हैं।”

उस समय मुखिया मणिकूलक भी सभा में उपस्थित थे। तब मुखिया मणिकूलक ने सभा से कहा: “हे स्वामियों, ऐसा मत कहिए। शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वियों के लिए सोना और चाँदी जायज़ नहीं हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी स्वीकार नहीं करते; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोना और चाँदी ग्रहण नहीं करते। उन्होंने आभूषण और सोना त्याग दिया है; उन्होंने सोना और चाँदी का उपयोग छोड़ दिया है।” 350 और मणिकूलक उस सभा को समझाने में सफल रहा।

तब मणिकूलक भगवान (बुद्ध) के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठकर उसने भगवान (बुद्ध) को सारी घटना बताई और कहा, "हे पूज्यवर, मुझे आशा है कि मैंने जो उत्तर दिया है, वह भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार ही है, न कि मैंने उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत किया है; मैंने धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार ही व्याख्या की है, और मेरे कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता है।"

"हे मुखिया, आपने जब इस प्रकार उत्तर दिया, तो आपने वही कहा जो मैंने कहा था, और आपने मुझे तथ्यों के विपरीत कोई भ्रामक बात कहकर गुमराह नहीं किया; आपने धम्म के अनुसार व्याख्या की, और आपके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं देता। क्योंकि, हे मुखिया, शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वियों के लिए सोना और चांदी जायज़ नहीं हैं; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोने और चांदी को स्वीकार नहीं करते; शाक्य पुत्र के अनुयायी तपस्वी सोने और चांदी को ग्रहण नहीं करते। उन्होंने आभूषण और सोने का त्याग कर दिया है; उन्होंने सोने और चांदी का उपयोग छोड़ दिया है। यदि किसी के लिए सोना और चांदी जायज़ हैं, तो उसके लिए पांच इंद्रिय सुख के बंधन भी जायज़ हैं। यदि किसी के लिए पांच इंद्रिय सुख के बंधन जायज़ हैं, तो आप निश्चित रूप से उसे तपस्वी या शाक्य पुत्र के अनुयायी का चरित्र न रखने वाला मान सकते हैं।

"इसके अलावा, हे मुखिया, मैं यह कहता हूँ: 'भूसे की आवश्यकता वाले व्यक्ति को भूसा चाहिए; लकड़ी की आवश्यकता वाले व्यक्ति को लकड़ी चाहिए; जिसे गाड़ी की आवश्यकता हो, वह गाड़ी की तलाश कर सकता है; जिसे कामगार की आवश्यकता हो, वह कामगार की तलाश कर सकता है। लेकिन मैं यह नहीं कहता कि सोने और चांदी को प्राप्त करने या हासिल करने का कोई तरीका है।

---

363. भद्रक
एक बार भगवान (बुद्ध) मल्लियनों के उरुवेलकप्पा नामक नगर में निवास कर रहे थे। तब मुखिया भद्रक भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे दुख के उद्भव और निवारण के विषय में उपदेश दें तो अच्छा होगा।" भद्रक ने कहा, "हे मुखिया

, यदि मैं तुम्हें अतीत के संदर्भ में दुख के उद्भव और निवारण के विषय में उपदेश दूं, यह कहते हुए कि 'ऐसा अतीत में हुआ था', तो तुममें भ्रम और अविभ्रम उत्पन्न हो सकता है। और यदि मैं तुम्हें भविष्य के संदर्भ में दुख के उद्भव और निवारण के विषय में उपदेश दूं, यह कहते हुए कि 'ऐसा भविष्य में होगा', तो तुममें भ्रम और अविभ्रम उत्पन्न हो सकता है। इसके बजाय, हे मुखिया, जब मैं यहीं बैठा हूं और तुम वहीं बैठे हो, मैं तुम्हें दुख के उद्भव और निवारण के विषय में उपदेश दूंगा। इसे ध्यानपूर्वक सुनो और मननशील रहो, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," मुखिया भद्रक ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"मुखिया, तुम क्या सोचते हो? क्या उरुवेलकप्पा में ऐसे कोई लोग हैं जिनके कारण तुम्हें मृत्युदंड, कारावास, जुर्माना या निंदा किए जाने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा होगी?" 351

"ऐसे लोग हैं, आदरणीय महोदय।" "

परन्तु क्या उरुवेलकप्पा में ऐसे कोई लोग हैं जिनके कारण तुम्हें ऐसी स्थिति में दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा नहीं होगी?"

"ऐसे लोग हैं, आदरणीय महोदय।"

"मुखिया, इसका क्या कारण है कि उरुवेलकप्पा के कुछ लोगों के संबंध में तुम्हें मृत्युदंड, कारावास, जुर्माना या निंदा किए जाने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा होगी, जबकि दूसरों के संबंध में तुम्हें ऐसा दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा नहीं होगी?"

"उरुवेलकप्पा में वे लोग, आदरणीय महोदय, जिनके प्रति मुझे मृत्युदंड, कारावास, जुर्माना या निंदा किए जाने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी - वे ही लोग हैं जिनके प्रति मेरे मन में इच्छा और आसक्ति है। परन्तु उरुवेलकप्पा में वे लोग जिनके प्रति मेरे मन में दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होगी - वे ही लोग हैं जिनके प्रति मेरे मन में कोई इच्छा और आसक्ति नहीं है।"

"मुखिया, इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष और ज्ञात सिद्धांत के माध्यम से, अतीत और भविष्य पर इस प्रकार विधि लागू करें: 352 'अतीत में जो भी दुःख उत्पन्न हुआ, वह सब इच्छा से उत्पन्न हुआ, इच्छा ही उसका स्रोत थी; क्योंकि इच्छा ही दुःख की जड़ है। भविष्य में जो भी दुःख उत्पन्न होगा, वह सब इच्छा से उत्पन्न होगा, इच्छा ही उसका स्रोत थी; क्योंकि इच्छा ही दुःख की जड़ है।'"

"यह अद्भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! भगवान (बुद्ध) ने कितनी अच्छी तरह कहा है: 'जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब इच्छा से उत्पन्न होता है, क्योंकि इच्छा ही दुख की जड़ है।' 353 पूज्यवर, मेरा एक बेटा है जिसका नाम चिरावासी है, जो एक बाहरी घर में रहता है। मैं सुबह जल्दी उठकर एक आदमी को भेजता हूँ और कहता हूँ, 'जाओ, आदमी, और पता लगाओ कि चिरावासी कैसा है।' जब तक वह आदमी लौटता है, पूज्यवर, मैं परेशान रहता हूँ, यह सोचकर कि 'काश चिरावासी को कोई कष्ट न हुआ हो!' "

आप क्या सोचते हैं, मुखिया? यदि चिरावासी को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो क्या आपमें शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी?"

"पूज्यवर, यदि चिरावासी को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो मेरा जीवन भी अस्त-व्यस्त हो जाएगा, तो मुझमें शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कैसे उत्पन्न नहीं होगी?"

"इस तरह भी, मुखिया जी, इसे समझा जा सकता है: 'जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब इच्छा से उत्पन्न होता है, इच्छा ही उसका स्रोत है; क्योंकि इच्छा ही दुख की जड़ है।'

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है? चिरावासी की माता को देखने या उनके बारे में सुनने से पहले, क्या आपके मन में उनके लिए कोई इच्छा, लगाव या स्नेह था?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"तो क्या, मुखिया जी, उन्हें देखने या उनके बारे में सुनने के कारण ही आपके मन में यह इच्छा, लगाव और स्नेह उत्पन्न हुआ?"

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है?" यदि चिरावासी की माता को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो क्या आपमें शोक, विलाप, पीड़ा

, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होगी? "आदरणीय महोदय, यदि चिरावासी की माता को फाँसी दी जाए, कैद किया जाए, जुर्माना लगाया जाए या निंदा की जाए, तो मेरा जीवन भी अस्त-व्यस्त हो जाएगा, तो मुझमें शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा कैसे उत्पन्न नहीं होगी?"

"इस प्रकार भी, मुखिया, इसे समझा जा सकता है: 'जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब इच्छा से उत्पन्न होता है, इच्छा ही उसका स्रोत है; क्योंकि इच्छा ही दुख की जड़ है।'"

---

364. रसिया
तब मुखिया रसिया भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, मैंने सुना है कि 'संन्यासी गौतम सभी प्रकार की तपस्या की निंदा करते हैं। वे कठोर जीवन जीने वाले किसी भी तपस्वी की स्पष्ट रूप से निंदा और निंदा करते हैं।' हे पूज्यवर, क्या ऐसा कहने वाले लोग भगवान (बुद्ध) के कहे हुए वचन को ही प्रकट करते हैं, न कि उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत करते हैं? क्या वे धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करते हैं ताकि उनके कथन का कोई भी तार्किक परिणाम आलोचना के दायरे में न आए?"

"हे मुखिया, जो इस प्रकार बोलते हैं, वे मेरे कहे हुए को नहीं दोहराते, बल्कि असत्य और झूठ से मेरा गलत अर्थ निकालते हैं।

हे

मुखिया, संन्यासी जीवन में दीक्षित व्यक्ति को दो चरम सीमाओं का पालन नहीं करना चाहिए: इंद्रिय सुखों में सुख की खोज, जो नीच, अश्लील, सांसारिक लोगों का मार्ग, घृणित और लाभहीन है; और आत्म-यातना, जो कष्टदायी, घृणित और लाभहीन है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर न झुकते हुए, तथागत ने मध्य मार्ग को प्राप्त किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। तथागत द्वारा प्राप्त वह मध्य मार्ग क्या है, जो दृष्टि को जन्म देता है... निर्वाण की ओर ले जाता है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।" अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। यह वह मध्य मार्ग है जिसे तथागत ने जागृत किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाता है। 354

II.

"हे मुखिया, संसार में विद्यमान ये तीन व्यक्ति हैं जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हैं। वे तीन कौन हैं? 355

(i) "यहाँ, हे मुखिया, वह व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट नहीं करता, न ही वह इसे साझा करता है और पुण्य कर्म करता है।

(ii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, हिंसा द्वारा अवैध रूप से धन प्राप्त करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह उसे बाँटता नहीं है और पुण्य कर्म नहीं करता है।

(iii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, हिंसा द्वारा अवैध रूप से धन प्राप्त करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, और वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

(iv) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा द्वारा और बिना हिंसा के धन प्राप्त करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता है, न ही वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

"तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह उसे बाँटता नहीं और पुण्य कर्म नहीं करता।

(vi) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, और वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

(vii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता, और न ही वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है।

(viii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की खोज करता है। ऐसा करने के बाद, वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न करता है, परन्तु वह उसे बाँटता नहीं और पुण्य कर्म नहीं करता।

(ix) "तो, मुखिया, यहाँ जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह बिना हिंसा के विधिपूर्वक धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने पर वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट करता है, और वह धन का बंटवारा करता है तथा पुण्य कर्म करता है। परन्तु वह धन से बंधा हुआ, उसके प्रति आसक्त, उसमें अंधाधुंध लीन होकर, उसमें निहित खतरे को न देखते हुए, उससे बचने का मार्ग न समझते हुए, अपने धन का उपयोग करता है।

(x) "तो, मुखिया, यहाँ जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वह बिना हिंसा के विधिपूर्वक धन की प्राप्ति करता है। ऐसा करने पर वह स्वयं को प्रसन्न और संतुष्ट करता है, और वह धन का बंटवारा करता है तथा पुण्य कर्म करता है। और वह धन से बंधा हुआ नहीं, उसके प्रति आसक्त नहीं, उसमें अंधाधुंध लीन नहीं, अपने धन का उपयोग उसमें निहित खतरे को देखते हुए, उससे बचने का मार्ग समझते हुए, अपने धन का उपयोग करता है।

III.

(i) उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता, न ही धन का बंटवारा करता है और न ही पुण्य कर्म करता है, उसकी तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा नहीं करता और न ही पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(ii) "उसमें, मुखिया, जो कामुक सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, परन्तु उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। और किस एक आधार पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह एक आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। कामुक सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है।

(iii) "उसमें, मुखिया, जो कामुक सुखों का आनंद लेता है, अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और उसका बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, उसकी एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। उसकी आलोचना किस एक आधार पर की जा सकती है? 'वह अवैध रूप से, हिंसा द्वारा धन अर्जित करता है' - यही वह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। और उसकी प्रशंसा किन दो आधारों पर की जा सकती है? 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह इसे साझा

करता है और पुण्य कर्म करता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की आलोचना इसी एक आधार पर की जा सकती है और प्रशंसा इन दो आधारों पर की जा सकती है।

(iv) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और जो स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता, न ही धन का बंटवारा करता है और न ही पुण्य कर्म करता है, उसकी एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। उसकी किस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह वह आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। उसकी किन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध तरीके से, हिंसा द्वारा धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं रखता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा नहीं करता और न ही पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।"

(v) "उसमें, मुखिया, वह व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और जो स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, परन्तु उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर प्रशंसा और दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध और बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह अवैध और हिंसा के द्वारा धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन दो आधारों पर प्रशंसा और इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(vi) "उसमें, मुखिया, वह व्यक्ति जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध और अवैध दोनों तरीकों से, हिंसा और जो व्यक्ति हिंसा का प्रयोग किए बिना धन अर्जित करता है, स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, उसे दूसरों के साथ साझा करता है और पुण्य कर्म करता है, उसकी तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह हिंसा का प्रयोग किए बिना विधिपूर्वक धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह धन साझा करता है और पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह हिंसा द्वारा अवैध रूप से धन अर्जित करता है' - यह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है।

(vii) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और जो स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता, न ही धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, उसकी एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह वह आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न नहीं करता' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है और इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है।"

(viii) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, लेकिन उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता, उसकी दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर आलोचना की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह उसका बंटवारा नहीं करता और पुण्य कर्म नहीं करता' - यह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है।

(ix) "उसमें, मुखिया, जो इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और उसका बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है, लेकिन जो उस धन का उपयोग उससे बंध कर, उससे आसक्त होकर करता है, उसमें अंधाधुंध लीन होकर, उसमें निहित खतरे को अनदेखा करते हुए, उससे बचने का रास्ता न समझते हुए - उसकी तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और एक आधार पर आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन अर्जित करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह धन का बंटवारा करता है और पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह धन का उपयोग उससे बंधे हुए, उसके प्रति आसक्त होकर, उसमें अंधाधुंध लीन होकर, उसमें निहित खतरे को अनदेखा करते हुए, उससे बचने का रास्ता न समझते हुए करता है' - यह एक आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले व्यक्ति की इन तीन आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है और इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है।

(x) "हे मुखिया, जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों का आनंद लेता है, वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है, और स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है, और उसे बाँटता है, और पुण्य कर्म करता है, और उस धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करता है - उसकी चार आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। किन चार आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह वैध तरीके से, बिना हिंसा के धन की प्राप्ति करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह स्वयं को सुखी और प्रसन्न रखता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह उसे बाँटता है और पुण्य कर्म करता है' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह उस धन का उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करता है' - यह चौथा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले इस व्यक्ति की इन चार आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है।

IV.

"हे मुखिया, संसार में तीन प्रकार के तपस्वी विद्यमान हैं। वे तीन कौन से हैं?

(i) "हे मुखिया, यहाँ किसी तपस्वी ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, इस विचार से कि
'शायद मैं लाभकारी अवस्था प्राप्त कर सकूँ; शायद मैं ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठजन्य विशिष्टता प्राप्त कर सकूँ।' 356 वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, फिर भी वह लाभकारी अवस्था प्राप्त नहीं कर पाता और न ही ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठजन्य विशिष्टता प्राप्त कर पाता है।"

(ii) "हे मुखिया, फिर किसी कठोर जीवन जीने वाले तपस्वी ने आस्था से प्रेरित होकर दीक्षा ली है... वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, और एक लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, फिर भी वह ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य अलौकिक विशिष्टता को प्राप्त नहीं कर पाता।

(iii) "हे मुखिया, फिर किसी कठोर जीवन जीने वाले तपस्वी ने आस्था से प्रेरित होकर दीक्षा ली है... वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, एक लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, और ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य अलौकिक विशिष्टता को प्राप्त करता है।

V.

(i) "हे मुखिया, वह तपस्वी जो कठोर जीवन व्यतीत करता है और स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, फिर भी लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त नहीं करता या श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करता, उसकी तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है। किन तीन आधारों पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त नहीं करता' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। 'वह श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करता' - यह तीसरा आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। इस तपस्वी की इन तीन आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

(ii) "हे मुखिया, वह तपस्वी जो कठोर जीवन व्यतीत करता है और स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, और लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, फिर भी श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करता, उसकी दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है। किन दो आधारों पर उनकी आलोचना की जा सकती है? 'वे स्वयं को कष्ट और पीड़ा देते हैं' - यह पहला आधार है जिस पर उनकी आलोचना की जा सकती है। 'वे श्रेष्ठ जनों के योग्य ज्ञान और दृष्टि में अलौकिक विशिष्टता प्राप्त नहीं करते' - यह दूसरा आधार है जिस पर उनकी आलोचना की जा सकती है। किस एक आधार पर उनकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वे लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करते हैं' - यह एकमात्र आधार है जिस पर उनकी प्रशंसा की जा सकती है। कठोर जीवन जीने वाले इस तपस्वी की इन दो आधारों पर आलोचना की जा सकती है और इस एक आधार पर प्रशंसा की जा सकती है। [339]

(iii) "हे मुखिया, उसमें कठोर जीवन जीने वाला वह तपस्वी जो स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है, लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है, और ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य असाधारण विशिष्टता प्राप्त करता है, उसकी एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है। किस एक आधार पर उसकी आलोचना की जा सकती है? 'वह स्वयं को कष्ट और पीड़ा देता है' - यह वह आधार है जिस पर उसकी आलोचना की जा सकती है। किन दो आधारों पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है? 'वह लाभकारी (कुशल) अवस्था प्राप्त करता है' - यह पहला आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। 'वह ज्ञान और दृष्टि में श्रेष्ठ व्यक्तियों के योग्य असाधारण विशिष्टता प्राप्त करता है' - यह दूसरा आधार है जिस पर उसकी प्रशंसा की जा सकती है। इस कठोर जीवन जीने वाले तपस्वी की इस एक आधार पर आलोचना की जा सकती है और इन दो आधारों पर प्रशंसा की जा सकती है।

VI.

"हे मुखिया, तीन प्रकार के क्षरण हैं जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं, 357 तात्कालिक हैं, जो देखने के लिए आमंत्रित करते हैं, लागू होते हैं, और जिनका ज्ञानियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है। वे तीन क्या हैं?"

(i) कोई व्यक्ति कामवासना से ग्रस्त है, और कामवासना (राग) के कारण वह स्वयं को, दूसरों को, और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। कामवासना का त्याग करने पर वह न तो स्वयं को, न दूसरों को, और न ही दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, और देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।

(ii) कोई व्यक्ति द्वेष (दोष/द्वेष) से भरा हुआ है, और द्वेष (दोष/द्वेष) के कारण वह स्वयं को, दूसरों को, और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। द्वेष (दोष/द्वेष) का त्याग करने पर वह न तो स्वयं को, न दूसरों को, और न ही दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। यह क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, और देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जा सकता है।

(iii) "कोई व्यक्ति मोह में लीन है, और मोह के कारण वह स्वयं को, दूसरों को, और दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। जब मोह का त्याग हो जाता है, तो वह न तो स्वयं को, न दूसरों को, और न ही दोनों को कष्ट पहुँचाने का इरादा रखता है। मोह का क्षय प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल होता है, और देखने के लिए आमंत्रित करता है, तथा व्यावहारिक है, और बुद्धिमानों द्वारा स्वयं अनुभव किया जा सकता है।

" "हे मुखिया, ये तीन प्रकार के क्षय हैं जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं, तत्काल होते हैं, और देखने के लिए आमंत्रित करते हैं, तथा व्यावहारिक हैं, और बुद्धिमानों द्वारा स्वयं अनुभव किए जा सकते हैं।"

यह सुनकर मुखिया रसिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

365. पटलिया
एक बार भगवान (बुद्ध) कोलियनों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ उत्तरा नामक एक कोलियन नगर था। तब मुखिया पतालिया भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, मैंने सुना है कि 'संन्यासी गौतम जादू-टोना जानते हैं।' 358 हे पूज्यवर, मुझे आशा है कि जो लोग कहते हैं, 'संन्यासी गौतम जादू-टोना जानते हैं,' वे भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार ही व्याख्या करें और उन्हें तथ्यों के विपरीत किसी भी प्रकार से गलत तरीके से प्रस्तुत न करें; कि वे धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करें और उनके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने। क्योंकि हम भगवान (बुद्ध) को गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना चाहते, हे पूज्यवर।"

"हे मुखिया, जो लोग कहते हैं, 'संन्यासी गौतम जादू जानते हैं,' वे मेरे द्वारा कही गई बात को स्पष्ट करें और मुझे तथ्यों के विपरीत गलत तरीके से प्रस्तुत न करें; वे धम्म के अनुसार व्याख्या करते हैं, और उनके कथन का कोई तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं देता।"

"तो, महोदय, हमने उन तपस्वियों और ब्राह्मणों द्वारा कहे गए स्पष्ट सत्य पर विश्वास नहीं किया, जिन्होंने कहा, 'संन्यासी गौतम जादू जानते हैं।' वास्तव में, महोदय, तपस्वी गौतम एक जादूगर हैं!" 359

"हे मुखिया, क्या जो कहता है, 'मैं जादू जानता हूँ,' वह यह भी कहता है,
'मैं एक जादूगर हूँ'?"

"ऐसा ही है, भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है, सौभाग्यशाली (सुगतो)!"

"तो फिर, हे मुखिया, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न करूँगा। आप जैसा उचित समझें वैसा उत्तर दें।

I.

(i) "आप क्या सोचते हैं, हे मुखिया?" क्या आप कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों को जानते हैं? 360

"जी जी, मैं जानता हूँ।"

"क्या विचार है, मुखिया जी? कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों का काम क्या है?"

"उनका काम, जी जी, कोलियनों के लिए चोरों को पकड़ना और कोलियनों के संदेश पहुँचाना है।"

"क्या विचार है, मुखिया जी? क्या आप जानते हैं कि कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिक गुणी हैं या अनैतिक?"

"मैं जानता हूँ, जी जी, कि वे अनैतिक हैं, बुरे चरित्र के हैं। उन्हें संसार के अनैतिक, बुरे चरित्र वालों में गिना जाना चाहिए।"

"क्या कोई सही कह रहा होगा, मुखिया जी, यदि कोई कहे:
'पटालिया मुखिया कोलियनों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों को जानता है, जो अनैतिक, बुरे चरित्र के हैं।'" "क्या मुखिया पटलिया भी अनैतिक और बुरे चरित्र का है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। मैं कोलियनों के उन भाड़े के सैनिकों से बिल्कुल अलग हूँ जिनके सिर पर झुके हुए पगड़ीनुमा वस्त्र होते हैं। मेरा चरित्र उनसे बिल्कुल भिन्न है।"

"हे मुखिया, यदि आपके बारे में यह कहा जा सकता है कि 'पटालिया मुखिया कोलियों के झुके हुए सिर वाले भाड़े के सैनिकों को जानता है, जो अनैतिक और बुरे चरित्र के हैं, परन्तु पटालिया मुखिया अनैतिक या बुरे चरित्र का नहीं है,' तो तथागत के बारे में यह क्यों नहीं कहा जा सकता: 'तथागत जादू जानते हैं, परन्तु तथागत जादूगर नहीं हैं'? हे मुखिया, मैं जादू और जादू के परिणाम को समझता हूँ, और मैं यह भी समझता हूँ कि कैसे एक जादूगर, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

(ii) हे मुखिया, मैं जीवन के विनाश और जीवन के विनाश के परिणाम को समझता हूँ, और मैं यह भी समझता हूँ कि कैसे जीवन का विनाश करने वाला, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

"मैं समझता हूँ, मुखिया, जो नहीं दिया गया है उसे लेना... यौन दुराचार... झूठ बोलना... फूट डालने वाला बोलना... कठोर बोलना... [343]... व्यर्थ की बातें... लोभ... दुर्भावना और घृणा (दोष/द्वेष)... गलत मत और गलत मत का परिणाम, और मैं समझता हूँ कि गलत मत रखने वाला व्यक्ति, शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।

II.

"हे मुखिया, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण ऐसे सिद्धांत और मत रखते हैं कि: 'जो कोई भी जीवन का नाश करता है, उसे इसी जीवन में पीड़ा और दुःख का सामना करना पड़ता है। जो कोई भी जो नहीं दिया गया है उसे लेता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है, उसे इसी जीवन में पीड़ा और दुःख का सामना करना पड़ता है।'"

(i) "यहाँ कोई व्यक्ति, मुखिया, मालाओं से सजा हुआ, नहाया हुआ और संवारा हुआ दिखाई देता है, जिसके बाल और दाढ़ी छंटे हुए हैं, और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो। लोग उसके बारे में किसी से पूछते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने ऐसा क्या किया है कि इसे मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो?' [344] वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने राजा के शत्रु पर हमला किया और उसकी जान ले ली। राजा उससे प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कार दिया। इसीलिए इस व्यक्ति को मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो।'

(ii) "फिर, मुखिया, यहाँ कोई व्यक्ति दिखाई देता है जिसके हाथ एक मजबूत रस्सी से पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, उसे ढोल की अशुभ थाप के साथ गली-गली, चौक-चौक घुमाया जा रहा है, और फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर कलम कर दिया जाता है। वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महाराज, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है कि उसके हाथ पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं... और उसे शहर के दक्षिण में सिर कलम करके मार डाला गया है?' वे उत्तर देते हैं: 'महाराज, इस आदमी ने, जो राजा का शत्रु है, एक पुरुष या स्त्री की जान ली है। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर उसे यह दंड दिया है।' '
"आप क्या सोचते हैं, मुखिया जी, क्या आपने कभी ऐसा मामला देखा या सुना है?"

"मैंने यह देखा है, आदरणीय महोदय, और मैंने इसके बारे में सुना है, और मैं इसके बारे में [फिर से] सुनूंगा।"

"इसमें, मुखिया जी, जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इस तरह का सिद्धांत और विचार रखते हैं, कहते हैं: 'जो कोई भी जीवन को नष्ट करता है, उसे यहीं और अभी दर्द और दुख का अनुभव होता है,' तो क्या वे सच बोलते हैं या झूठ?"

"झूठ, आदरणीय महोदय।"

"क्या जो लोग खोखली झूठ बोलते हैं वे अच्छे हैं या बुरे?"

"अनैतिक, आदरणीय महोदय।"

"क्या जो लोग बुरे और बुरे चरित्र के हैं वे गलत काम कर रहे हैं या सही?"

"गलत काम कर रहे हैं, आदरणीय महोदय।"

"जो लोग गलत काम कर रहे हैं वे गलत विचार रखते हैं या सही?"

"गलत विचार, आदरणीय महोदय।"

"क्या गलत सोच रखने वालों पर भरोसा करना सही है?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

(iii) "तो, मुखिया, यहाँ कोई माला पहने और सजे-धजे, नहाए-धोए, बाल और दाढ़ी कटवाए, औरतों के साथ ऐसे सेक्सुअल प्लेज़र ले रहा है जैसे वह कोई राजा हो। वे उसके बारे में किसी से पूछते हैं: 'सर, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है, कि इसे माला पहनाई गई है और सजाया गया है... औरतों के साथ ऐसे सेक्सुअल प्लेज़र ले रहा है जैसे वह कोई राजा हो?' वे जवाब देते हैं: 'सर, इस आदमी ने राजा के दुश्मन पर हमला किया और एक रत्न चुरा लिया। राजा उससे खुश हुआ और उसे इनाम दिया। इसीलिए इस आदमी को माला पहनाई गई है और सजाया गया है... औरतों के साथ ऐसे सेक्सुअल प्लेज़र ले रहा है जैसे वह कोई राजा हो।'

(iv) "फिर, मुखिया, यहाँ कोई दिखता है जिसके हाथ पीछे एक मज़बूत रस्सी से कसकर बंधे हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, उसे ढोल की डरावनी धुन पर गली-गली, चौक-चौराहे घुमाया जा रहा है, और फिर दक्षिणी गेट से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दिया जाता है। वे उसके बारे में किसी से पूछते हैं: 'साहब, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है, कि उसके हाथ पीछे कसकर बंधे हुए हैं... शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दिया गया है?' वे जवाब देते हैं: 'साहब, यह आदमी, राजा का दुश्मन, किसी गाँव या जंगल से कुछ चुराता था, उसने चोरी की थी। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर ऐसी सज़ा दी।'

"आपको क्या लगता है, मुखिया, क्या आपने कभी ऐसा मामला देखा या सुना है?"

"मैंने यह देखा है, आदरणीय सर, और मैंने इसके बारे में सुना है, और मैं इसके बारे में [फिर से] सुनूंगा।"

"इसमें, मुखिया जी, जब वे साधु और ब्राह्मण जो इस तरह का सिद्धांत और नज़रिया रखते हैं, कहते हैं: 'जो कोई भी वह चीज़ लेता है जो उसे नहीं दी जाती, उसे यहीं और अभी दर्द और दुख होता है,' तो वे सच बोलते हैं या झूठ?... क्या गलत नज़रिया रखने वालों पर भरोसा करना सही है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

(v) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति मालाओं से सजा हुआ, नहाया हुआ और संवारा हुआ दिखाई देता है, जिसके बाल और दाढ़ी छंटे हुए हैं, और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो। लोग उससे पूछते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने ऐसा क्या किया है कि इसे मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो?' उत्तर मिलता है: 'महोदय, इस व्यक्ति ने राजा के शत्रु की पत्नियों को बहकाया था। राजा उससे प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कार दिया। इसीलिए इस व्यक्ति को मालाओं से सजाया गया है... और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो।'

(vi) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति दिखाई देता है जिसके हाथ एक मजबूत रस्सी से कसकर पीछे बंधे हुए हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, और उसे ढोल की अशुभ थाप के साथ गली-गली, चौक-चौक घुमाया जा रहा है, और फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर कलम कर दिया जाता है।" वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महोदय, इस आदमी ने ऐसा क्या किया है कि उसके हाथ पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं... और उसे शहर के दक्षिण में सिर कलम करके मार डाला गया है?' वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस आदमी ने अच्छे परिवारों की महिलाओं और लड़कियों को बहकाया। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर उसे यह दंड दिया।'

"मुखिया, आपका क्या विचार है, क्या आपने कभी ऐसा मामला देखा या सुना है?"

"मैंने इसे देखा है, आदरणीय महोदय, और मैंने इसके बारे में सुना भी है, और मैं इसके बारे में [फिर से] सुनूंगा।"

"तो, मुखिया, जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इस तरह का सिद्धांत और मत रखते हैं, कहते हैं: 'जो कोई भी यौन दुराचार में लिप्त होता है, उसे यहीं और अभी पीड़ा और दुख का अनुभव होता है,' तो क्या वे सच कहते हैं या झूठ?... क्या गलत मत रखने वालों पर भरोसा करना उचित है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

(vii) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति मालाओं से सजा हुआ, नहाया हुआ और संवारा हुआ दिखाई देता है, जिसके बाल और दाढ़ी छंटे हुए हैं, और वह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो। वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने ऐसा क्या किया है कि इसे मालाओं से सजाया गया है... और यह स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो?' वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने झूठे वादों से राजा का मनोरंजन किया। राजा उससे प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कार दिया। इसीलिए यह व्यक्ति मालाओं से सजा हुआ है और स्त्रियों के साथ कामुक सुखों का आनंद ले रहा है मानो वह कोई राजा हो।'

(viii) "फिर, मुखिया, यहाँ एक व्यक्ति है जिसके हाथ एक मजबूत रस्सी से कसकर पीछे बंधे हुए हैं, उसका सिर मुंडा हुआ है, उसे ढोल की अशुभ थाप के साथ गली-गली, चौक-चौक घुमाया जा रहा है, और फिर उसे दक्षिणी द्वार से बाहर ले जाकर शहर के दक्षिण में उसका सिर कलम कर दिया जाता है।" वे किसी से उसके बारे में पूछते हैं: 'महोदय, इस आदमी ने क्या किया है कि उसके हाथ पीछे की ओर कसकर बंधे हुए हैं... और उसे शहर के दक्षिण में सिर कलम करके मार डाला गया है?' वे उत्तर देते हैं: 'महोदय, इस व्यक्ति ने झूठे वादों से एक गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र का विनाश कर दिया है। इसीलिए शासकों ने उसे गिरफ्तार करवाकर ऐसा दंड दिया।

"मुखिया जी, आपका क्या विचार है? क्या आपने कभी ऐसा कोई मामला देखा या सुना है?"

"मैंने इसे देखा है, आदरणीय महोदय, इसके बारे में सुना भी है, और आगे भी सुनूंगा।" "

तो, मुखिया जी, जब वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इस प्रकार का सिद्धांत और मत रखते हैं, कहते हैं: 'झूठ बोलने वाला कोई भी व्यक्ति यहीं और अभी कष्ट और पीड़ा भोगता है,' तो क्या वे सत्य बोलते हैं या असत्य? ... क्या गलत मत रखने वालों पर विश्वास करना उचित है?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।

III.

"यह अद्भुत है, आदरणीय महोदय! यह आश्चर्यजनक है, आदरणीय महोदय! मेरे पास एक विश्रामगृह है जिसमें पलंग, आसन, जलपात्र और तेल का दीपक है। जब कोई तपस्वी या ब्राह्मण वहां रहने आता है, तो मैं अपनी सामर्थ्य और क्षमता के अनुसार उसके साथ विश्राम करता हूं। अतीत में, आदरणीय महोदय, चार शिक्षक - अलग-अलग मतों, अलग-अलग मान्यताओं और अलग-अलग प्राथमिकताओं वाले - उस विश्रामगृह में रहने आए थे।

(i) एक शिक्षक का यह मत और मत था: 361 'दान, भेंट, दान में दी गई कोई वस्तु नहीं है; अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं है; न यह संसार है, न दूसरा संसार; न माता है, न पिता; न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; न संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले कोई तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दूसरों को उनका ज्ञान कराते हैं।'

(ii) एक शिक्षक का यह मत और मत था: 'दान, भेंट और दान में दी गई वस्तुएँ हैं; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिणाम है; यह संसार और दूसरा संसार है; माता और पिता हैं; स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले तपस्वी और ब्राह्मण हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दूसरों को उनका ज्ञान कराते हैं।'

(iii) एक शिक्षक का यह मत और मत था: 362 'जब कोई व्यक्ति स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं अंगभंग करता है या दूसरों से करवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं यातना देता है या दूसरों से यातना दिलवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं दुःख देता है या दूसरों से दुःख दिलवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं अत्याचार करता है या दूसरों से अत्याचार करवाता है, जब कोई व्यक्ति स्वयं डराता है या दूसरों से डराता है, जब कोई व्यक्ति जीवन नष्ट करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, घरों में सेंध लगाता है, धन लूटता है, सेंधमारी करता है, राजमार्गों पर घात लगाता है, दूसरे की पत्नी को बहकाता है, झूठ बोलता है - तो ऐसा करने वाले से कोई बुराई नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति तेज धार वाले पहिये से इस पृथ्वी के सभी जीवों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो इससे न तो कोई बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम होगा। यदि कोई व्यक्ति गंगा के दक्षिणी तट पर हत्या और वध करता हुआ, स्वयं अंगभंग करता हुआ और दूसरों से अंगभंग करवाता हुआ, स्वयं यातना देता हुआ और दूसरों से यातना दिलवाता हुआ जाए, तो इससे न तो कोई

बुराई होगी और न ही बुराई का कोई परिणाम होगा। यदि कोई गंगा के उत्तरी तट पर दान देता और दूसरों से दान करवाता, भेंट चढ़ाता और दूसरों से भेंट चढ़ाता रहे, तो इससे न तो पुण्य प्राप्त होगा और न ही पुण्य का फल। दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्मसंयम से, सत्य बोलने से, न तो पुण्य प्राप्त होता है और न ही पुण्य का फल।

(iv) एक शिक्षक का यह मत था: 'जब कोई स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई स्वयं अंग-भंग करता है या दूसरों से अंग-भंग करवाता है ... [350] ... तो करने वाले द्वारा बुराई की जाती है। यदि कोई तेज धार वाले पहिये से इस पृथ्वी के जीवों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो इससे बुराई होगी और बुराई का फल भी होगा। यदि कोई गंगा के दक्षिणी किनारे पर हत्या और वध करता हुआ, अंग-भंग करता हुआ और दूसरों को अंग-भंग करवाता हुआ, यातना देता हुआ और दूसरों को यातना देता हुआ पाए, तो इससे बुराई और बुराई का फल मिलेगा। यदि कोई गंगा के उत्तरी किनारे पर दान देता हुआ और दूसरों से दान करवाता हुआ, भेंट चढ़ाता हुआ और दूसरों से भेंट चढ़ाता हुआ पाए, तो इससे पुण्य और पुण्य का फल मिलेगा। दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्म-संयम से, सत्य बोलने से पुण्य और पुण्य प्राप्त होता है। "हे

पूज्यवर, मेरे मन में यह व्याकुलता और संदेह उत्पन्न हुआ कि इन आदरणीय तपस्वियों और ब्राह्मणों में से कौन सत्य बोलता है और कौन असत्य?" "

हे मुखिया, आपका व्याकुल होना उचित है, आपका संदेह होना उचित है। आपके मन में एक जटिल विषय को लेकर संदेह उत्पन्न हुआ है।"

मुझे भगवान (बुद्ध) पर इस प्रकार भरोसा है: 'भगवान (बुद्ध) मुझे धम्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाने में सक्षम हैं कि मैं इस उलझन की स्थिति से बाहर निकल सकूँ।'

IV.

"हे मुखिया, धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उसमें समाधि अवस्था प्राप्त कर लें, तो आप इस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं। 363 और हे मुखिया, धम्म की समाधि अवस्था क्या है?

(i) "हे मुखिया, इसमें, जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) का त्याग करके, श्रेष्ठ शिष्य जीवन के विनाश से दूर रहता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग करके, वह जो नहीं दिया गया है उसे लेने से दूर रहता है। यौन दुराचार का त्याग करके, वह यौन दुराचार से दूर रहता है। झूठी वाणी का त्याग करके, वह झूठी वाणी से दूर रहता है। विभाजनकारी वाणी का त्याग करके, वह विभाजनकारी वाणी से दूर रहता है। कठोर वाणी का त्याग करके, वह कठोर वाणी से दूर रहता है। व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित होता है।" द्वेष और द्वेष का त्याग करने के कारण, उसका मन द्वेष रहित हो जाता है। गलत मत का त्याग करने के कारण, वह सही मत का अनुयायी बन जाता है।

"तो, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो लोभ रहित, द्वेष रहित, संशय रहित, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - प्रेममय (मैत्री) मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए, जैसे स्वयं के लिए, वह प्रेममय (मैत्री) मन से विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है।
वह सोचता है: 'इस गुरु का ऐसा सिद्धांत और मत है: "कुछ भी दान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता... संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक का अनुभव किया है, उन्हें दूसरों को ज्ञात नहीं कराते।" यदि इस अच्छे गुरु का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या बलवान। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ ही मेरा पुनर्जन्म एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में होगा। [जैसे ही वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यह धम्म (मार्ग, नियम) की समाधि (सम्मोहन) अवस्था है। यदि आप उसमें समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।

(ii) "तब, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित न होकर, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), सदा ध्यानमग्न रहता है - प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) से परिपूर्ण मन के साथ एक दिशा में व्याप्त रहता है..." बिना दुर्भावना के।

वह सोचता है: इस गुरु का यह मत और मत है: "दान किया जाता है, अर्पित किया जाता है... संसार में ऐसे तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो सही ढंग से जीवन व्यतीत करते हैं और अभ्यास करते हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दूसरों को भी इसके बारे में बताते हैं।" यदि इस अच्छे गुरु की बात सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह कमजोर हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर मेरा पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में होगा। [जैसा वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) का जन्म होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। सुखी व्यक्ति का मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यह धम्म की समाधि (सम्मोहन) अवस्था है। यदि आप उसमें समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था को त्याग सकते हैं।

(iii) "तो, मुखिया जी, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो लोभ रहित, द्वेष रहित, शांत, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न है - प्रेम और करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त है... बिना द्वेष के।

वह सोचता है: 'इस गुरु का यह मत है: "जब कोई कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है... दान देकर, स्वयं को वश में करके, आत्म-संयम से, सत्य बोलकर, तो न तो पुण्य प्राप्त होता है और न ही पुण्य का कोई फल मिलता है।" यदि इस अच्छे गुरु का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, मैं एक अच्छे स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लूँगा।' [जैसे ही वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। सुखी व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।

(iv) "तब, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित न होकर, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - प्रेममय (मैत्री) से ओतप्रोत मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है ...... बिना द्वेष के।

उन्होंने इस प्रकार सोचा: 'इस शिक्षक का यह सिद्धांत और मत है: "जब कोई व्यक्ति स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है... दान देकर, स्वयं को वश में करके, आत्म-संयम से, सत्य बोलकर, तो पुण्य प्राप्त होता है और पुण्य का फल मिलता है।" यदि इस अच्छे शिक्षक का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर मेरा पुनर्जन्म एक शुभ स्थान (सुगति), स्वर्गलोक में होगा।' [जब वह ऐसा सोचता है] तो प्रसन्नता उत्पन्न होती है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रफुल्लित होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

"हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।"

V.

(i) "तो, मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, संशय रहित, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न है - करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है... परोपकारी आनंद से भरे मन से... समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) से भरे मन से,

इसी प्रकार दूसरी दिशा, तीसरी दिशा और चौथी दिशा में। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, वह समभाव से भरे, विशाल, उदात्त, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित मन से संपूर्ण संसार में व्याप्त रहता है। "वह इस प्रकार

सोचता है: 'इस गुरु का ऐसा सिद्धांत और मत है: "कुछ भी दान नहीं किया जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता... संसार में सही ढंग से रहने और अभ्यास करने वाले कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण, जिन्होंने दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक को स्वयं जान लिया है, कुछ भी दान नहीं करते, कुछ भी अर्पित नहीं करते... कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण जो इस संसार में रहते और सही ढंग से अभ्यास करते हैं, वे किसी को कुछ भी दान नहीं करते, कुछ भी अर्पित नहीं करते... कोई भी तपस्वी और ब्राह्मण जो इस संसार और परलोक को स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा जान लेते हैं, वे ऐसा नहीं करते उन्हें दूसरों को ज्ञात कराओ। ... हे मुखिया, यह धम्म की समाधि अवस्था है। यदि तुम उसमें समाधि अवस्था प्राप्त कर लो, तो तुम उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हो।

(ii)-(iv) "तब, हे मुखिया, वह श्रेष्ठ शिष्य - जो इस प्रकार लोभ रहित, द्वेष रहित, भ्रमित न होकर, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), सदा ध्यानमग्न (सतिमा) है - करुणा से भरे मन से एक दिशा में व्याप्त रहता है ... परोपकारी आनंद से भरे मन से ... समभाव (उपेक्खा) से भरे मन से ... बिना द्वेष के।

वह सोचता है: 'इस शिक्षक का सिद्धांत और मत यह है: "दान किया जाता है, अर्पित किया जाता है... संसार में ऐसे तपस्वी और ब्राह्मण हैं जो सही ढंग से जीवन व्यतीत करते हैं और अभ्यास करते हैं, जिन्होंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इस संसार और परलोक का अनुभव किया है और दूसरों को भी इसके बारे में बताते हैं।" ... हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की स्थिति से बाहर निकल सकते हैं।

वह सोचता है: 'इस शिक्षक का सिद्धांत और मत यह है: "जब कोई व्यक्ति कर्म करता है या दूसरों से कर्म करवाता है... [357] ... दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्म-संयम से, सत्य बोलने से, कोई दिव्य पुण्य नहीं मिलता और न ही दिव्य पुण्य का कोई परिणाम होता है।" ... हे मुखिया, यही धम्म की समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि (सम्मोहन) की स्थिति प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की स्थिति से बाहर निकल सकते हैं।

वह सोचता है: 'इस गुरु का यह मत है: "जब कोई स्वयं कार्य करता है या दूसरों से कार्य करवाता है, जब कोई स्वयं को चोट पहुँचाता है या दूसरों से चोट पहुँचाता है... दान देने से, स्वयं को वश में करने से, आत्म-संयम से, सत्य बोलने से पुण्य प्राप्त होता है और पुण्य का फल भी मिलता है।" यदि इस अच्छे गुरु का वचन सत्य है, तो मेरे लिए यह निर्विवाद है कि मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह कमजोर हो या दृढ़। दोनों ही दृष्टियों से मैंने सौभाग्य प्राप्त किया है: क्योंकि मैं शरीर, वाणी और मन से संयमित हूँ, और क्योंकि शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, मैं एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लूँगा।' [जैसे ही वह सोचता है] प्रसन्नता का जन्म होता है। जब व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो परमानंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से प्रसन्न होता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। सुखी व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है।

“हे मुखिया, यह धर्म (मार्ग, नियम) पर आधारित समाधि अवस्था है। यदि आप उस अवस्था में समाधि प्राप्त कर लें, तो आप उस उलझन की अवस्था से मुक्त हो सकते हैं।”

यह सुनकर मुखिया पटलिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
“महान, आदरणीय महोदय!... आज से भगवान (बुद्ध) मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।”

अध्याय 9: अप्रतिबंधित पर संबंधित प्रवचन (असंखतसम्युत्त) {सम्युत्त-43}
(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)
366. शरीर निर्देशित ध्यान (कायगतसति सं. कायागत-स्मृति)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, असंखत क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही असंखत कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान: यही असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाया है। हे भिक्षुओं, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा और कल्याण की इच्छा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। हे भिक्षुओं, ये वृक्षों के चरण हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं।" भिक्षुओं, ध्यान करो, (पमादा में) आलसी मत बनो, अन्यथा पश्चात में पछताओगे। यही हमारा तुम्हें निर्देश है।

---

367. शांति-समथ और अंतर्दृष्टि-विपश्यना ध्यान (समथ-विपश्यना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, असंखत क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही असंखत कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? समभाव और विपश्यना (ध्यान): यही असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है। ...(बाकी अनुच्छेद 366 में दिए गए अनुसार है)

---

368. विचार और परीक्षण के साथ
... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असीम अवस्था की ओर ले जाता है? विचार और चिंतन सहित समाधि; केवल चिंतन सहित, बिना विचार के समाधि; बिना विचार और चिंतन के समाधि: 367 यही असीम अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...."

---

369. शून्यता समाधि/समाधि (सुन्नतसमाधि सं. शून्यता-समाधि)
... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो अनासक्ति (असंखत) की ओर ले जाता है? शून्य समाधि (सम्मोहन) अवस्था, अनिमित्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था, दिशाहीन समाधि (सम्मोहन) अवस्था: 368 यही अनासक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...."

---

370. ध्यान की स्थापना 369 (सतीपत्थन सं. स्मृति-प्रस्थान)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? ध्यान के चार प्रतिष्ठान..."

---

371. सही प्रयास (समप्पधना)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? चार उचित प्रयास..."

---

372. आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंग (इद्धिपाद सं. रिद्धिपाद)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखत) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के चार अंग..."

---

373. आध्यात्मिक शक्तियाँ (इंद्रिय)
भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? पाँच आध्यात्मिक शक्तियाँ...

---

374. शक्तियाँ (बाला)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? पाँच शक्तियाँ...."

---

375. आत्मज्ञान के कारक (बोझंगा बिना बोधयांग)
... "और हे भिक्षुओं, अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? ज्ञानोदय के सात कारक..."

---

376. अष्टांगिक पथ (मग्गंगा सं. मार्गांग)
... "भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असंखत (असंखत) की ओर ले जाता है? आर्य अष्टांगिक मार्ग: यही असंख्यत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

अतः, भिक्षुओं, मैंने तुम्हें असंख्यत और असंख्यत की ओर ले जाने वाले मार्ग का उपदेश दिया है... यही हमारा तुम्हारे लिए उपदेश है।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय
377. असन्खता
i. शांति (समथा/समभाव)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"और, भिक्षुओं, असंखत क्या है? काम (राग) का नाश (खयाल), द्वेष (दोष/समभाव) का नाश (नश) और मोह (मोह) का नाश (नश) - यही असंखत कहलाता है।

"और, भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? शांति (समथा/समभाव) - यही असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...

"इस प्रकार, भिक्षुओं, मैंने तुम्हें असंखत और असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाया है... यही हमारा तुम्हें उपदेश है।"

ii. अंतर्दृष्टि (विपश्यना ध्यान)

... "और, भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है?" अंतर्दृष्टि (विपश्यना ध्यान): इसे ही अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

iii-viii. समाधि

(iii) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था (असंखत) की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? विचार और परीक्षा सहित समाधि (सम्मोहन): इसे ही अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(iv) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? केवल परीक्षा सहित, बिना विचार के समाधि (सम्मोहन)...."

(v) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? बिना विचार और परीक्षा के समाधि (सम्मोहन)...."

(vi) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? शून्यता समाधि (सम्मोहन) अवस्था...."

(vii) ... "और हे भिक्षुओं, अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है?" अनिमित्त समाधि अवस्था (सम्मोहन)..."

(viii) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? अनिर्देशित समाधि अवस्था: इसे ही बिना शर्त की ओर ले जाने वाला मार्ग कहते हैं..."

ix-xii. ध्यान के चार प्रतिष्ठान

(ix) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए: इसे ही बिना शर्त की ओर ले जाने वाला मार्ग कहते हैं..."

(x) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु वेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर, वेदनाओं को ध्यान से देखता है, वह अत्यंत उत्साही, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है...."

(xi) ... “और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असीम अवस्था की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु मन पर ध्यानमग्न होकर, वेदनाओं को ध्यान से देखता है, वह अत्यंत उत्साही, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होता है, संसार के प्रति लोभ और असंतोष को दूर करके..."

(xii) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्गत की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, प्रसत्तात्मक रूप से, पूर्णत: निर्गत: निर्गत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है...."

xiii-xvi. चार उचित प्रयास

(xiii) . . . "और हे भिक्षुओं, असंखत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है: इसे ही असंख्यत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(14) ... "और हे भिक्षुओं, असंख्यत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (शक्ति) जगाता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है...."

(15) . . . "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है...."

(16) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो बिना शर्त की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की निरंतरता, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है: इसे ही बिना शर्त की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है ..."

17-20 आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के चार अंग

(17) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है: इसे पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(18) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो प्रयास के वीर्य (वीर्य) और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है..."

(19) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो मन और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है...."

(xx) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो अन्वेषण और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है: इसे ही अप्रतिबंधित अवस्था की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है..."

xxi-xxv. पाँच आध्यात्मिक क्षमताएँ

(xxi) . . . "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो अनासक्ति (असंखता) की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु विश्वास की शक्ति विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है: इसे ही अनासक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(22-25) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो अनासक्ति की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु ऊर्जा-शक्ति की शक्ति विकसित करता है... ध्यान की शक्ति... समाधि (सम्मोहन) की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है: इसे ही अनासक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...." 26-30

। पाँच शक्तियाँ

(26) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु विश्वास की शक्ति विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है: इसे पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(27-30) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु ऊर्जावान शक्ति विकसित करता है... ध्यान की शक्ति... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है: इसे पूर्णत: निर्तमन की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

31-37। ज्ञानोदय के सात कारक

(31) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्वात की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है: इसे निर्वात की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

(xxxii-xxxvii) "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो असीमता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु धम्मविचय (अवस्थाओं के भेदभाव) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) के ज्ञान तत्व को... पीति/प्रीति (आनंद) के ज्ञान तत्व को... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व को... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व को... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित है, मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है: इसे असीमता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...."

38-16 आर्य अष्टांगिक मार्ग

(xxxviii) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है: इसे निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा जाता है...." [368]

(xxxix-xlv) ... "और हे भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है जो पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही इरादे... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही ध्यान... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है: यही पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग कहलाता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने तुम्हें पूर्णत: निर्धनता और पूर्णत: निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाया है। हे भिक्षुओं, जो कुछ भी एक करुणामय गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा से, उनके कल्याण की कामना करते हुए करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। हे भिक्षुओं, ये वृक्षों के चरण हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं।" भिक्षुओं, ध्यान करो, (पमादा में) आलसी मत बनो, अन्यथा पश्चात में पछताओगे। यही हमारा तुम्हें निर्देश है।

---

378. अनिच्छुक 370 (एनाटॉमी)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें उदासीनता और उदासीनता की ओर ले जाने वाले मार्ग का उपदेश दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, उदासीनता क्या है?..."

(इसका विस्तृत वर्णन अनुच्छेद 377 में किया जाएगा।) 371

379-408 दोषमुक्त, इत्यादि (अनासवदी)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें दोषमुक्त जीवन और दोषमुक्त जीवन की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, मैं तुम्हें सत्य और सत्य की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा... मैं तुम्हें सुदूर तट... सूक्ष्म... जिसे देखना अत्यंत कठिन है... अमर... स्थिर... अविनाशी... अप्रकट... इंद्रियों द्वारा अप्रभावित... शांत... अमर अवस्था (निर्वाण)... उदात्त... शुभ... सुरक्षित... तृष्णा का विनाश... अद्‌भुत... विस्मयकारी... रोगमुक्त... रोगमुक्त अवस्था... निर्वाण... निर्विकार... वैराग्य... पवित्रता... स्वतंत्रता... असंलग्न... द्वीप... आश्रय... शरण... शरण...

---

409. गंतव्य (परायण)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें गंतव्य और गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, गंतव्य क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही गंतव्य कहलाता है। और हे भिक्षुओं, गंतव्य

तक पहुँचने का मार्ग क्या है? शरीर पर केंद्रित सती ध्यान: यही गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग कहलाता है।

इस प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने तुम्हें गंतव्य और गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग सिखाया है। हे भिक्षुओं, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा और कल्याण की इच्छा से करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। हे भिक्षुओं, ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, ये खाली कुटियाएँ हैं। हे भिक्षुओं, ध्यान करो, आलसी (पमादा) मत बनो, अन्यथा तुम्हें बाद में पछतावा होगा। यह हमारा आपको निर्देश है।

(प्रत्येक का विस्तृत विवरण अनुच्छेद 377 में दिया गया है)

अध्याय 10: अघोषित पर संबंधित प्रवचन (अभ्यकतसम्युत्त) {सम्युत्त-44}
410. खेमा
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय भिक्षुणी खेमा (373) कोसलवासियों के बीच भ्रमण करते हुए सावत्थी और साकेत के बीच स्थित तोरणवत्थु में निवास कर रही थीं। तब कोसल के राजा प्रसेनजीत साकेत से सावत्थी की यात्रा करते हुए एक रात्रि के लिए तोरणवत्थु में ठहरे। तब कोसल के राजा प्रसेनजीत ने एक व्यक्ति से कहा, "हे जन, जाकर पता लगाओ कि तोरणवत्थु में कोई ऐसा तपस्वी या ब्राह्मण है जिससे मैं आज मिल सकूँ।"

"जी प्रभु," उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, परन्तु उसने तोरणवत्थु की पूरी परिक्रमा की, पर उसे वहाँ कोई ऐसा तपस्वी या ब्राह्मण नहीं मिला जिससे राजा प्रसेनजीत मिल सकें। उस व्यक्ति ने तोरणवत्थु में निवास करने वाली भिक्षुणी खेमा को देखा, इसलिए वह राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) के पास गया और उनसे कहा,

"हे प्रभु, तोरणवत्थु में कोई तपस्वी या ब्राह्मण नहीं है, जिनसे आप मिल सकें। परन्तु, हे प्रभु, वहाँ खेमा नाम की भिक्षुणी हैं, जो भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध की शिष्या हैं। अब इस पूजनीय भिक्षुणी के बारे में यह सुप्रसिद्धि फैली हुई है कि 'वह बुद्धिमान, कुशल, ज्ञानी, निपुण वक्ता और प्रतिभाशाली हैं।' हे प्रभु, उनसे मिलें।"

तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) भिक्षुणी खेमा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्य भिक्षुणी, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?" 374

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं'।"

"तो, पूज्य देवी, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?"

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते'।" "

तो फिर, पूज्य देवी, तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते, ऐसा कैसे हो सकता है?"

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते'।"

"तो फिर, पूज्य देवी, क्या तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते?"

"हे महाराज, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते'।"

"यह कैसे हो सकता है, पूज्य देवी? जब पूछा जाता है, 'यह कैसे हो सकता है, पूज्य देवी, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?'" ...और जब पूछा जाता है, 'तो, पूज्यवर, क्या तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्वहीन या अस्तित्वहीन हैं?' - तो हर बार आप कहती हैं: 'महाराज, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा नहीं कहा है।' तो फिर, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा ऐसा न कहे जाने का कारण क्या है?

"तो फिर, हे महाराज, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न पूछूंगी। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। आपका क्या विचार है, हे महाराज? क्या आपके पास कोई लेखाकार, कैलकुलेटर या गणितज्ञ है जो गंगा नदी में रेत के कणों को इस प्रकार गिन सके: 'रेत के इतने कण हैं,' या 'रेत के इतने सौ कण हैं,' या 'रेत के इतने हज़ार कण हैं,' या 'रेत के इतने लाखों कण हैं'?"

"नहीं, आदरणीय देवी।"

"तो फिर, हे महाराज, क्या आपके पास कोई लेखाकार, कैलकुलेटर या गणितज्ञ है जो विशाल सागर में पानी को इस प्रकार गिन सके: 'पानी के इतने गैलन हैं,' या 'पानी के इतने सैकड़ों गैलन हैं,' या 'पानी के इतने हज़ार गैलन हैं,' या 'पानी के इतने लाखों गैलन हैं'?"

"नहीं, आदरणीय देवी। इसका कारण क्या है? क्योंकि विशाल सागर गहरा है, अथाह है, और उसकी गहराई को मापना कठिन है।"

"इसी प्रकार, हे महान राजा, तथागत का वर्णन करने के लिए जिस रूप का प्रयोग किया जाता है, उसे तथागत ने जड़ से काट दिया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, मिटा दिया है ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो सके। हे महान राजा, तथागत रूप-परिकल्पना से मुक्त हैं; वे गहरे, असीम और विशाल सागर के समान अगम्य हैं। तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं, यह कथन लागू नहीं होता; तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते, यह कथन लागू नहीं होता; तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी, यह कथन लागू नहीं होता; तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं, यह कथन लागू नहीं होता।

वह वेदना जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जाता है... वह अनुभूति जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जाता है... वे संस्कार (आक्रामक व्यवहार)" जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जा सकता है... वह चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) जिसके द्वारा तथागत का वर्णन किया जा सकता है, तथागत द्वारा त्याग दी गई है, जड़ से काट दी गई है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दी गई है, मिटा दी गई है ताकि वह भविष्य में उत्पन्न न हो सके। हे महान राजा, तथागत चेतना के संदर्भ में गणना से मुक्त हैं; वे गहरे, असीम, विशाल सागर के समान अगम्य हैं। 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व है' लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व नहीं है' लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी है' लागू नहीं होता; 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नहीं होते' यह कथन लागू नहीं होता।

तब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित), भिक्षुणी खेमा के कथन से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए प्रस्थान किया।

फिर, एक बाद के अवसर पर... कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। "वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर, तथागत मृत्यु के बाद कैसे विद्यमान रहते हैं?"

"हे महाराज, मैंने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं।'"

(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार, नीचे दिए गए कथन के अनुसार:)

"हे महाराज, मैंने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते।'"

"हे पूज्यवर, यह कैसे हो सकता है? जब पूछा जाता है, 'हे पूज्यवर, तथागत मृत्यु के बाद कैसे विद्यमान रहते हैं?' ... और जब पूछा जाता है, 'तो फिर, हे पूज्यवर, तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते?' - हर बार आप कहते हैं: 'हे महाराज, मैंने यह नहीं कहा है।' तो फिर, हे पूज्यवर, इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने यह बात नहीं कही है?"

"तो फिर, हे महाराज, मैं आपसे इसी विषय पर प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। आपका क्या विचार है, हे महाराज? क्या आपके पास कोई लेखाकार, कैलकुलेटर या गणितज्ञ है... (ऊपर दिए गए कथनों के अनुसार ही आगे भी)... हे महाराज, तथागत चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के संदर्भ में गणना से मुक्त (विमुक्त) हैं: वे गहरे, असीम और विशाल सागर के समान अगम्य हैं। 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व है' यह कथन लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व नहीं है' यह कथन लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व भी है और नहीं भी' यह कथन लागू नहीं होता; 'मृत्यु के बाद तथागत का अस्तित्व न तो है और न ही नहीं है' यह कथन लागू नहीं होता।"

"यह अद्भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, और उनमें कोई भिन्नता नहीं है, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में। 377 एक बार, पूज्यवर, मैंने भिक्षुणी खेमा से संपर्क किया और उनसे इस विषय के बारे में पूछा। पूज्य भिक्षुणी ने मुझे इस विषय को ठीक उसी शब्दों और वाक्यांशों में समझाया, जैसे भगवान (बुद्ध) ने प्रयुक्त किए थे। यह अद्भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में उनमें कोई भिन्नता नहीं है। अब, पूज्यवर, हमें जाना होगा। हम व्यस्त हैं और हमारे पास बहुत काम है।"

"तो, महाराज, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

तब कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर [380] अपने आसन से उठे, उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

---

411. अनुराधा
(पिछले 410 के समान)

---

412. सारिपुत्त और कोथिता (1)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र सारिपुत्त, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?"

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं'।"

(जैसा कि पिछले सूत्र में है:)

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते हैं'।"

"यह कैसे हो सकता है, मित्र? जब पूछा जाता है, 'मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?'" ...और जब पूछा जाता है, 'तो, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान?' - हर बार आप कहते हैं: 'मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा नहीं कहा है।' तो फिर, मित्र, इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने ऐसा नहीं कहा है? "

'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं': मित्र, यह रूप से जुड़ाव है। 378 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं होते': यह रूप से जुड़ाव है। तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और नहीं भी होते हैं': यह रूप से जुड़ाव है। तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान: यह रूप से जुड़ाव है।

"'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं': मित्र, यह संवेदना (वेदना) से जुड़ाव है... अनुभूति (संज्ञा) से जुड़ाव है... संशय (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन) से जुड़ाव है... चेतना (विज्ञान) से जुड़ाव है।" 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में नहीं रहते': यह चेतना से जुड़ा एक विचार है। 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी रहते': यह चेतना से जुड़ा एक विचार है। 'तथागत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते': यह चेतना से जुड़ा एक विचार है।

"हे मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है।"

---

413. सारिपुत्त और कोथिता (2)
(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार:)

"अब, मित्र, इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया?"

"मित्र, जो व्यक्ति रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता, जो उसके उद्‌गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानता और नहीं देखता, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी,' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं हैं।'" जो व्यक्ति वेदना (संवेदना) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता... जो व्यक्ति संज्ञा (संज्ञा) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता... जो व्यक्ति संशय (आक्रामक व्यवहार) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता... जो व्यक्ति चेतना (विज्ञान) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और नहीं देखता, जो व्यक्ति उसके उद्‌गम, उसके अंत और उसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानता और नहीं देखता, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

लेकिन, मित्र, जो व्यक्ति (ध्यान में) रूप... वेदना (संवेदना)... को जानता और देखता है... धारणा... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार)... चेतना, जैसा कि वह वास्तव में है, जो इसके उद्‌गम, इसके अंत और इसके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को जानता और देखता है (ध्यान में), वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं।'

"यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसे घोषित नहीं किया है।"

---

414. सारिपुत्त और कोथिता (3)
(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार:)

"मित्र, अब इसका कारण क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसकी घोषणा नहीं की?"

"मित्र, वह व्यक्ति जो रूप के प्रति कामवासना (राग) से रहित नहीं है, जो रूप के प्रति इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) से रहित नहीं है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और विद्यमान नहीं भी हैं,' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'" वह व्यक्ति जो वेदना (इंद्रियों) की वासना से रहित नहीं है... जो संवेदना (बोध) की वासना से रहित नहीं है... जो संस्कार (आक्रामक व्यवहार) की वासना से रहित नहीं है... जो चेतना (विन्नान (विज्ञान) की वासना से रहित नहीं है... जो चेतना के लिए इच्छा, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा (तन्हा (तृष्णा)) से रहित नहीं है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

लेकिन, मित्र, जो रूप के प्रति वासना से रहित है... जो वेदना के प्रति वासना से रहित है... जो बोध के प्रति वासना से रहित है... जो संस्कार के प्रति वासना से रहित है... जो चेतना के प्रति वासना, स्नेह, प्यास, जुनून और तृष्णा से रहित है, वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं।' मित्र

, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसे घोषित नहीं किया है।

415. सारिपुत्त और कोथिता (4)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकोत्थिता के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकोत्थिता का अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे मित्र कोत्थिता, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?"

(ऊपर दिए गए सभी कथनों के अनुसार:)

"हे मित्र, इसका कारण और तर्क क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है?

" स्कंध (संस्कृत: स्कंध) में आनंद:

"मित्र, जो रूप में आनंद लेता है, रूप में प्रसन्न होता है, रूप में आनंदित होता है, और रूप के निरासण (निरोध) को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही निरासन्न हैं।' जो वेदना में आनंद लेता है ... जो चेतना में आनंद लेता है (संस्कृत: संज्ञा) ... जो संशय में आनंद लेता है (संज्ञा) ... जो चेतना के निरासन () में आनंद लेता है, चेतना में आनंदित होता है, चेतना में आनंदित होता है, और चेतना के निरासण को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही निरासन्न हैं।'"

लेकिन, मित्र, जो रूप में आनंद नहीं लेता... जो वेदना में आनंद नहीं लेता... जो बोध में आनंद नहीं लेता... जो संस्कार में आनंद नहीं लेता... जो चेतना में आनंद नहीं लेता, जो चेतना में प्रसन्न नहीं होता, जो चेतना में आनंद नहीं लेता, और जो चेतना के वास्तविक अंत को जानता और देखता है (ध्यान में), वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

ii. अस्तित्व में आनंद (भावो)

"लेकिन, मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसका उल्लेख न करने का कोई और तरीका हो सकता है?"

"ऐसा हो सकता है, मित्र। वह व्यक्ति जो अस्तित्व में आनंदित होता है (भावो), जो अस्तित्व में प्रसन्न होता है (नंदी/आनंद), जो अस्तित्व में आनंद मनाता है, और जो अस्तित्व के वास्तविक अंत को न तो जानता है और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते।'"

लेकिन, मित्र, जो अस्तित्व में आनंद नहीं लेता, जो अस्तित्व में प्रसन्न नहीं होता, जो अस्तित्व में आनंद नहीं मनाता, और जो अस्तित्व के वास्तविक अंत को जानता है और (ध्यान में) जानता है, वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'

"मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसकी घोषणा नहीं की है।"

iii. आसक्ति में आनंद (उपदान संस्कृत: आसक्ति)

"लेकिन, मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसकी घोषणा न किए जाने की व्याख्या करने का कोई और तरीका हो सकता है?"

"हो सकता है, मित्र।" जो व्यक्ति आसक्ति में आनंदित होता है, आसक्ति में प्रसन्न होता है, आसक्ति में आनंद लेता है, और आसक्ति के वास्तविक अंत को न तो जानता है और न ही देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं।'

परन्तु, मित्र, जो व्यक्ति आसक्ति में आनंदित नहीं होता, आसक्ति में आनंद नहीं लेता, आसक्ति में आनंद नहीं लेता, और जो आसक्ति के वास्तविक अंत को (ध्यान में) जानता और देखता है, वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं।'

"मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख नहीं किया है।"

iv. तृष्णा में आनंद (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)

"पर मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसका उल्लेख न किए जाने की व्याख्या करने का कोई और तरीका हो सकता है?"

"हो सकता है, मित्र। जो तृष्णा में आनंद लेता है, जो तृष्णा में प्रसन्न होता है, जो तृष्णा में आनंदित होता है, और जो तृष्णा के निवारण को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानता और न देखता है, वही सोचता है: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ...या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान नहीं हैं।'"

लेकिन, मित्र, जो तृष्णा में आनंद नहीं लेता, जो तृष्णा में प्रसन्न नहीं होता, जो तृष्णा में प्रसन्न नहीं होता, और जो तृष्णा के निवारण को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है (ध्यान में), वह यह नहीं सोचता: 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही विद्यमान हैं।'

"मित्र, यही कारण है कि भगवान (बुद्ध) ने इसकी घोषणा नहीं की है।"

v. कोई और विधि?

"लेकिन, मित्र, क्या भगवान (बुद्ध) द्वारा इसकी घोषणा न किए जाने की व्याख्या करने की कोई और विधि हो सकती है?"

"अब, मित्र सारिपुत्त, आपको इसमें कुछ और क्यों चाहिए? मित्र सारिपुत्त, जब कोई भिक्षु तृष्णा के विनाश (खयाल/क्षय) द्वारा मुक्त (विमुक्त) हो जाता है, उसका वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है।" 379

---

416. मोग्गलाना

तब तपस्वी वच्छगोत्ता पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य महामोग्गलाना से बोले,

“हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार शाश्वत है?”

“वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि संसार शाश्वत है।”

“तो हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार शाश्वत नहीं है?”

“वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि संसार शाश्वत नहीं है।” “

तो फिर हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार सीमित है?”

“वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि संसार सीमित है।”

“तो हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार अनंत है?”

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह भी घोषित नहीं किया है कि 'संसार अनंत है।'"

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित नहीं किया है कि 'आत्मा और शरीर एक ही हैं।'"

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या आत्मा एक है और शरीर दूसरी?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने यह भी घोषित नहीं किया है कि 'आत्मा एक है और शरीर दूसरी।'" "

तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?" "वच्छा

, भगवान (बुद्ध) ने यह घोषित नहीं किया है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं।'"

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?"

"वच्चा, भगवान (बुद्ध) ने भी यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में नहीं रहते।' " "

तो फिर कैसे, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते?"

"वच्चा, भगवान (बुद्ध) ने भी यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते।' "

"तो फिर, गुरु मोग्गलाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते?"

"वच्छा, भगवान (बुद्ध) ने भी यह घोषित नहीं किया है: 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं।' "

हे गुरु मोग्गलाना, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान होते हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं होते' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और विद्यमान नहीं भी होते'?" या फिर 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविद्यित रहते हैं'? और इसका कारण क्या है कि जब तपस्वी गौतम से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?

"वच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी आँख को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' वे कान...नाक...जीभ...शरीर...मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है'...या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविद्यित।' परन्तु, वच्छा, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, आँख को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' वे कान...मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते।"

तब तपस्वी वच्छागत अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) से अभिवादन किया और उनसे कहा:

"हे गौतम, क्या संसार शाश्वत है?"

(ऊपर से नीचे तक सब कुछ:)

"वच्छा, मैंने भी यह नहीं कहा है: तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर होते हैं।"

"हे गौतम, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर होते हैं'? और इसका क्या कारण है कि जब तपस्वी गौतम से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?"

"वच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी आँख ... मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं: 'संसार शाश्वत है' ... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर होते हैं।'" लेकिन, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, वाच्छ, आँख... मन को इस प्रकार देखते हैं: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते। "

यह अद्भुत है, हे गुरु गौतम! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु गौतम! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, और उनमें कोई विचलन नहीं है, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में। अभी, हे गुरु गौतम, मैंने तपस्वी मोग्गलाना से संपर्क किया और उनसे इस विषय के बारे में पूछा। तपस्वी मोग्गलाना ने मुझे इस विषय को ठीक उन्हीं शब्दों और वाक्यांशों में समझाया जिनका प्रयोग गुरु गौतम ने किया था। यह अद्भुत है, हे गुरु गौतम! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु गौतम! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार मेल खाते हैं और एक दूसरे से सहमत हैं, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में।"

---

417. वच्छगोत्ता
तब तपस्वी वच्छगोत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले,

“हे गौतम जी, क्या संसार शाश्वत है?”... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)

“हे गौतम जी, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे ‘संसार शाश्वत है’... या ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविभाज्य’। और इसका क्या कारण है कि जब गौतम जी से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?”

वाच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी रूप को आत्मा मानते हैं, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मानते हैं, या रूप को आत्मा में समाहित मानते हैं, या आत्मा को रूप में समाहित मानते हैं। वे वेदना को आत्मा मानते हैं... अनुभूति को आत्मा मानते हैं... संशय को आत्मा मानते हैं... चेतना को आत्मा मानते हैं, या आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानते हैं, या चेतना को आत्मा में समाहित मानते हैं, या आत्मा को चेतना में समाहित मानते हैं। इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे: 'संसार शाश्वत है'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही अविभाज्य।' परन्तु, वाच्छा, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, रूप को आत्मा नहीं मानते... या आत्मा को चेतना में समाहित नहीं मानते। इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते।

तब तपस्वी वच्छगोत्ता अपने आसन से उठे और पूज्य महामोग्गलाना के पास गए। उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को प्रणाम किया और उनसे कहा,

“हे गुरु मोग्गलाना, क्या संसार शाश्वत है?”

(जैसा ऊपर लिखा है वैसा ही नीचे भी लिखा है:)

“वच्छ, भगवान (बुद्ध) ने भी यह नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर’।”

“हे गुरु मोग्गलाना, इसका क्या कारण है कि जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे: ‘संसार शाश्वत है’... या ‘तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही नश्वर’? और इसका क्या कारण है कि जब तपस्वी गौतम से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते?”

वाच्छा, अन्य संप्रदायों के तपस्वी रूप को आत्मा मानते हैं... या चेतना में समाहित आत्मा को। इसलिए, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर देते हैं जैसे: 'संसार शाश्वत है'... या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही

अवतरण करते हैं।' परन्तु, वाच्छा, तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, रूप को आत्मा नहीं मानते... या चेतना में समाहित आत्मा को। इसलिए, जब तथागत से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, तो वे ऐसे उत्तर नहीं देते।

"यह अद्‌भुत है, हे गुरु मोग्गलाना! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु मोग्गलाना! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार एक दूसरे से मेल खाते हैं और सहमत हैं, और उनमें कोई भिन्नता नहीं है, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में। अभी-अभी, हे गुरु मोग्गलाना, मैंने तपस्वी गौतम से संपर्क किया और उनसे इस विषय के बारे में पूछा। तपस्वी गौतम ने मुझे इस विषय को ठीक उसी शब्दों और वाक्यांशों में समझाया, जैसे हे गुरु मोग्गलाना ने समझाया था। यह अद्‌भुत है, हे गुरु मोग्गलाना! यह आश्चर्यजनक है, हे गुरु मोग्गलाना! गुरु और शिष्य दोनों के अर्थ और शब्दार्थ किस प्रकार एक दूसरे से मेल खाते हैं और सहमत हैं, अर्थात् मुख्य विषय के संबंध में।"

---

418. वाद-विवाद हॉल (कुथुहलसाला)
तब तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास पहुंचे और उनसे अभिवादन का आदान-प्रदान किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने के बाद, वह एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हाल के दिनों में, गुरु गौतम, कई तपस्वी, ब्राह्मण और विभिन्न संप्रदायों के तपस्वी विमर्श कक्ष में एकत्रित हुए थे और एक साथ बैठे थे, तभी उनके बीच यह चर्चा हुई: 380 यह पुराण कस्सपा - एक संप्रदाय के नेता, एक समूह के नेता, एक समूह के शिक्षक, कई लोगों द्वारा पवित्र माने जाने वाले प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु - अपने दिवंगत शिष्य के पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार करते हैं: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" और एक ऐसे शिष्य के मामले में जो सर्वोच्च प्रकार का व्यक्ति था, एक सर्वोच्च व्यक्ति था, जिसने सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त की थी, जब वह शिष्य दिवंगत हो जाता है तो वह उसके पुनर्जन्म की घोषणा भी इस प्रकार करते हैं: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" यह मक्खली गोसला ... यह निगंथ नटपुत्त ... यह संजय बेलत्थिपुत्त ... यह पकुधा कच्चायना... यह अजित केशकंबली... जब वह शिष्य देहांत हो जाता है, तो वह उसके पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार करता है: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" यह तपस्वी गौतम - एक संप्रदाय के नेता, एक समूह के नेता, एक समूह के शिक्षक, अनेक लोगों द्वारा पवित्र माने जाने वाले प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु - देहांत हो चुके शिष्य के पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार करते हैं: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" परन्तु जो शिष्य सर्वोच्च प्रकार का, सर्वोच्च व्यक्ति, सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर चुका हो, उसके देहांत होने पर वह उसके पुनर्जन्म की घोषणा इस प्रकार नहीं करता: "उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ, उसका पुनर्जन्म वहाँ हुआ।" बल्कि, वह उसके बारे में घोषणा करता है: "उसने तृष्णा का नाश किया, बंधन तोड़ा, और अहंकार को पूर्णतः तोड़कर दुखों का अंत किया।" "

मुझमें व्याकुलता थी।" गुरु गौतम, संदेह उत्पन्न हुआ:
'संन्यासी गौतम के धम्म (मार्ग, नियम) को कैसे समझा जाए?' '

हे वच्छ, तुम्हारा व्याकुल होना उचित है, तुम्हारा संदेह होना उचित है। तुम्हारे मन में एक पेचीदा विषय को लेकर संदेह उत्पन्न हुआ है। मैं घोषणा करता हूँ, वच्छ, ईंधन से जलने वाले का पुनर्जन्म होता है, ईंधन रहित का नहीं। जैसे आग ईंधन से जलती है, ईंधन के बिना नहीं, वैसे ही, वच्छ, मैं घोषणा करता हूँ कि ईंधन से जलने वाले का पुनर्जन्म होता है, ईंधन रहित का नहीं।' 381

'हे गुरु गौतम, जब कोई ज्वाला हवा से उड़कर कुछ दूरी तक जाती है, तो गुरु गौतम उस समय उसका ईंधन किसे मानते हैं?'

'जब, वच्छ, कोई ज्वाला हवा से उड़कर कुछ दूरी तक जाती है, तो मैं घोषणा करता हूँ कि वह हवा से जलती है। क्योंकि उस समय हवा ही उसका ईंधन होती है।'

"और, हे गौतम गुरु, जब कोई प्राणी इस शरीर को त्याग देता है, परन्तु अभी तक दूसरे शरीर में पुनर्जन्म नहीं लेता, तो उस समय गुरु गौतम उसके लिए किस प्रकार का ईंधन घोषित करते हैं?"

"हे वच्छ, जब कोई प्राणी इस शरीर को त्याग देता है, परन्तु अभी तक दूसरे शरीर में पुनर्जन्म नहीं लेता, तो मैं घोषित करता हूँ कि वह तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से संचालित होता है। 382 क्योंकि उस समय तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ही उसका ईंधन है।"

---

419. आनंद (क्या आत्मा का अस्तित्व है?)
तब तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे कहा:

"अब क्या है? गुरु गौतम, क्या आत्मा है?"

यह सुनकर भगवान (बुद्ध) चुप रहे।

"तो, गुरु गौतम, क्या आत्मा नहीं है?"

दूसरी बार भी भगवान (बुद्ध) चुप रहे।

तब तपस्वी वच्छगोत्ता अपने आसन से उठे और चले गए। फिर, तपस्वी वच्छगोत्ता के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, जब तपस्वी वच्छगोत्ता ने भगवान (बुद्ध) से प्रश्न किया, तो उन्होंने उत्तर क्यों नहीं दिया?"

"यदि, आनंद, जब तपस्वी वच्छगोत्ता ने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा है?'" यदि मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा है,' तो यह उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का पक्ष लेना होता जो शाश्वतवादी हैं। और यदि, जब उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा नहीं है?' तो मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा नहीं है,' तो यह उन तपस्वियों और ब्राह्मणों का पक्ष लेना होता जो विनाशवादी हैं।

"आनंद, यदि जब तपस्वी वच्छगोत्त ने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा है?' तो मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा है,' तो क्या यह मेरे द्वारा इस ज्ञान के उद्भव के अनुरूप होता कि 'सभी घटनाएँ (धम्म) अनात्म हैं'?" 384

"नहीं, पूज्यवर।"

"और यदि, जब उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या आत्मा नहीं है?' तो मैंने उत्तर दिया होता, 'आत्मा नहीं है,' तो तपस्वी वच्छगोत्त, जो पहले से ही भ्रमित थे, और भी अधिक भ्रमित हो जाते, यह सोचते हुए, 'ऐसा लगता है कि जो आत्मा मेरे पास पहले थी, वह अब विद्यमान नहीं है।'" 388

---

420. सभ्य कच्चाना

एक बार पूज्य सबिया कच्चाना नाटिका में ईंट के भवन में रह रहे थे। तब तपस्वी वच्छगोत्ता पूज्य सबिया कच्चाना के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले,

“हे गुरु कच्चाना, क्या तथागत मृत्यु के बाद भी विद्यमान रहते हैं?”

(पहले से अंत तक सभी के लिए यही क्रम लागू होता है:)

“तो फिर, हे गुरु कच्चाना, इसका कारण और तर्क क्या है कि भगवान (बुद्ध) ने इसका उल्लेख क्यों नहीं किया?”

"वच्चा, उन्हें 'रूप से युक्त' या 'रूपहीन' या 'बोधक' या 'अविवेकपूर्ण' या 'न तो बोधक और न ही अविवेकपूर्ण' कहने का कारण क्या है? यदि वह कारण पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाए, तो उन्हें 'रूप से युक्त' या 'रूपहीन' या 'बोधक' या 'अविवेकपूर्ण' या 'न तो बोधक और न ही अविवेकपूर्ण' कैसे कहा जा सकता है?"

"हे गुरु कच्चाना, आपको निकले हुए कितना समय हो गया है?"

"ज्यादा समय नहीं, मित्र। तीन वर्ष।"

"हे मित्र, जिसने इतने कम समय में इतना कुछ प्राप्त किया है, उसने वास्तव में बहुत कुछ प्राप्त किया है, 386 उस व्यक्ति की तो बात ही क्या जिसने इससे भी अधिक प्राप्त किया है!"

संयुत्त निकाय का छह इंद्रिय बोध का ग्रंथ (सलायतनवग्ग) पूरा हो चुका है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन5-महावग्गा-वेर2-भाग1

SN5-महान पुस्तक-भाग1
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का पांचवा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)
इस खंड में बड़े आकार के सूत्र संकलित हैं, इसलिए इसे महावग्ग कहा जाता है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
1: अज्ञान क्या है?
2: अच्छी संगति और ब्रह्मचर्य सफलता की ओर ले जाते हैं?
5, 6: ब्रह्मचर्य क्यों आवश्यक है? यह एक साधन है।
8: भगवान बुद्ध द्वारा समझाया गया अष्टांगिक मार्ग - सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था।
12: संवेदनाओं के प्रकार (वेदना)
39-48: ब्रह्मचर्य क्या है (पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन) और इसके लाभ: अष्टांगिक मार्ग
कुछ स्पष्टीकरण- 161: खोज (एसाना);162: भेदभाव (विधा);163: अपवित्रता (असव);164: अस्तित्व (भाव);165: पीड़ा (दुक्ख);166: बांझपन (खिला);167: दाग (माला);168: परेशानियां (निघा);169: संवेदनाएं(वेदना);170-171: लालसा,प्यास (तन्हा);172: बाढ़ (ओघा);173। बांड (योग);174. चिपकना(उपादान);175. गांठें (गंथा सं. ग्रंथी);176. अंतर्निहित-प्रवृत्ति (अनुसया);177. कामुक आनंद की डोरियाँ (कामगुण);178: बाधाएँ (निवारण);179: चिपकने के अधीन एकत्रीकरण (उपदानकखंड);180: निचली बेड़ियाँ (ओरंभगिया);181: ऊँची बेड़ियाँ (उद्धमभगिया);214: उपक्किलेसा;215: अनुपक्किलेसा; 216: अयोनिसोमंसिकारा,
183, 232: बाधाओं के साथ-साथ ज्ञानोदय के कारकों के लिए पोषक तत्व

183-184: ज्ञानोदय के सात कारक (संबोज्जंग)
219-221: बाधाएँ
224: मृत्यु के स्वामी मारा (शैतान) को कैसे कुचलें
234,236: मन की अवस्थाएँ
238-257: वैराग्य और समाप्ति कैसे विकसित करें..
367-368: ध्यान के संबंध में व्याख्याएँ : 367 सम्पजानो ; 368 सती
369: धम्म (मार्ग, नियम) संक्षेप में - चार प्रकार के सतीपठन (ध्यान की स्थापना)
375: स्वयं को अपना शरणस्थल बनाओ (स्वयं में ध्यान करो)
384, 409, 527: ब्रह्मा इस बात का समर्थन करते हैं कि बुद्ध द्वारा सिखाया गया मार्ग ही बाढ़ पार करने का एकमात्र मार्ग है
471: जागृत व्यक्तियों की पाँच शक्तियाँ, श्रद्धा (विश्वास), ऊर्जा (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन), प्रबोध (अंतर्दृष्टि)
476: जो समझते हैं (जैसा कि 471 में है) उन्हें तपस्वी और ब्राह्मण कहा जाता है
479-480: 471 की व्याख्या पाँच शक्तियों की
526: सतर्कता (अप्पमदा) बहुत महत्वपूर्ण है

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN4) अगला (SN5-भाग 2) >>>>

अंतर्वस्तु

1.1.3.323. मार्ग (1) (पतिपदा1 सं. प्रतिपदा)
1.1.3.424. मार्ग (2) (पतिपदा 2 सं. प्रतिपदा)
1.1.3.525. निम्न पुरुष (1) (असप्पुरिषा1 सं. असत्पुरुष)
1.1.3.626. निम्न पुरुष (2) (असप्पुरिषा2 सं. असत्पुरुष)
1.1.3.727. घड़ा (कुंभ)
1.1.3.828. समाधि (सम्मोहन) अवस्था
1.1.3.929. वेदना
1.1.3.1030. उत्तिया
1.1.4(iv) अभ्यास अनुभाग (पतिपट्टिवग्गो)
1.1.4.131. अभ्यास (1) (पतिपत्ती1)
1.1.4.232. अभ्यास (2) (पतिपट्टी2)
1.1.4.333. उपेक्षित (विराद्ध)
1.1.4.434. आगे बढ़ना (परंगमा)
1.1.4.535. वैराग्य (1) (समन्ना1 सं. श्रामण्य)
1.1.4.636. वैराग्य (2) (समन्ना2 सं. श्रामण्य)
1.1.4.737. ब्राह्मणत्व (1) (ब्राह्मन्ना1 सं. ब्राह्मण्य)
1.1.4.838. ब्राह्मणत्व (2) (ब्राह्मण्ण2 सं. ब्राह्मण्य)
1.1.4.939. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (1) (ब्रह्मचर्य1)
1.1.4.1040. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (2) (ब्रह्मचर्य2)
1.1.5(v) अन्य संप्रदायों के तपस्वी धारा 30 (अन्नतित्तियपेय्यलावग्गो)
1.1.5.141. कामवासना का लुप्त होना (रागवीरगा)
1.1.5.242-48. बंधनों का त्याग, इत्यादि (संयोजनप्पहनादि)
1.1.6(vi) सूर्य पुनरावृति श्रृंखला (सुरियापेय्यलावग्गो)
1.1.6.149. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.6.250.-55 सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.6.356 (1) अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस. कल्याण-मित्र)
1.1.6.457-62. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.7(vii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (1)
1.1.7.163. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.7.264-69. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.7.370. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.7.471-76. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.8(viii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (2)
1.1.8.177. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.8.278-83. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.8.384. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
1.1.8.485-90 सद्‌गुण आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
1.1.9(ix) प्रथम गंगा पुनरावृति श्रृंखला 34
1.1.9.191. पूर्व की ओर झुका हुआ (1) (पैसिननिन्ना)
1.1.9.292-96. पूर्व की ओर झुका हुआ (2-6) (पैसिननिन्ना)
1.1.9.397-102. सागर (समुद्दानिन्ना)
1.1.10(x) दूसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.1.10.1103-108 (6) पूर्व की ओर झुका हुआ + 109-114 महासागर
1.1.11(xi) तीसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.1.11.1115-220 पूर्व की ओर झुका हुआ + 121-126 महासागर
1.1.12(xii) चौथी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.1.12.1127-132 पूर्व की ओर झुकाव + 133-138 महासागर
1.1.13(xiii) सतर्कता धारा 36 (अप्पमदा-पय्याला-वाग्गो)

1.2.5.5226. प्रबुद्ध-व्यावहारिक (पन्नवंता सं. प्रज्ञा-वंत)
1.2.5.6227. गरीब (दलिद्दा सं. दरिद्र)
1.2.5.7228. समृद्ध
1.2.5.8229. सूर्य (आदित्य के बिना)
1.2.5.9230. आंतरिक कारक (अज्जट्टिकंगा)
1.2.5.10231. बाह्य कारक (बहिरंगा)
1.2.6(vi) चर्चाएँ (सकच्चावग्गो)
1.2.6.1232. पोषण (आहार)
1.2.6.2233. व्याख्या की विधि (परियया)
1.2.6.3234. अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)
1.2.6.4235. प्रेम और करुणा (मेट्टासहगत) के साथ
1.2.6.5236. संगरवा
1.2.6.6237. अभया
1.2.7(vii) अंदर-बाहर श्वास ध्यान (अनापानवग्गो सं. अन-अपान-वर्ग)
1.2.7.1238. कंकाल-अधिनियम-परिणाम
1.2.7.2239. कृमिग्रस्त (पुलावक)
1.2.7.3240. द लिविड (विनिलाका)
1.2.7.4241. द फिशर्ड (विचिडका)
1.2.7.5242. फूला हुआ (उद्धुमतक)
1.2.7.6243. प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटा संस मैत्री)
1.2.7.7244. करुणा
1.2.7.8245. परोपकारी आनंद (मुदिता)
1.2.7.9246. समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)
1.2.7.10247. श्वास ध्यान (अनापान)
1.2.8(viii) समाप्ति 119 (निरोध)
1.2.8.1248. अपवित्रता (असुभा)
1.2.8.2249. मृत्यु (मरना)
1.2.8.3250. भोजन के प्रति अरुचि (अहरेपटिकुला)
1.2.8.4251. अनभिराती (अनाभिराती)
1.2.8.5252. अनित्यता (अनिका सं. अनित्य)
1.2.8.6253. दुख (दुक्खा)
1.2.8.7254. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
1.2.8.8255. परित्याग (पहाना)
1.2.8.9256. वैराग्य (विराग)
1.2.8.10257. निरोध (समाप्ति)
1.2.9(ix) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
1.2.9.1258-269. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि।
1.2.10(x) सतर्कता अनुभाग (अप्पामादावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
1.2.10.1270-279. तथागत, इत्यादि।
1.2.11(xi) कठोर कर्म अनुभाग (बालकरणीयवग्गो)
1.2.11.1280-291. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
1.2.12(xii) खोज अनुभाग (एसानावाग्गो)
1.2.12.1292-301. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
1.2.13(xiii) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
1.2.13.1302-310. बाढ़, आदि (ओघा)
1.2.13.2311. उच्चतर बंधन (उद्धमभागीय)
1.2.14(xiv) गंगा पुनरावृति श्रृंखला
1.2.14.1312-323. गंगा नदी - पूर्व दिशा की ओर

1.2.15(xv) सतर्कता अनुभाग (पुना-अप्पमदा-वाग्गो)
1.2.15.1324-333. तथागत, इत्यादि।
1.2.16(xvi) कठोर कर्म (पुनबलकारनिया)
1.2.16.1334-345. कठिन, इत्यादि (पुनाबलादी)
1.2.17(xvii) खोज (पुनैसनवग्गो)
1.2.17.1346-356. खोज आदि (पुणेसन)
1.2.18(xviii) बाढ़ खंड (पुनाओघवाग्गो)
1.2.18.1357-365. बाढ़, आदि (पुनाओघाड़ी)
1.2.18.2366. उच्चतर बेड़ियाँ
1.3अध्याय 3: ध्यान की स्थापना पर संबंधित प्रवचन (सतिपट्टनसाम्युत्त) {साम्युत्त-47}
1.3.1(i) अम्बापाली
1.3.1.1367. अंबपाली (संपजानो के संबंध में पूर्ण बोध (संपजन्ना))
1.3.1.2368. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
1.3.1.3369. एक भिक्षु
1.3.1.4370. साला में
1.3.1.5371. हानिकारक वस्तुओं का ढेर (अकुसलारसी)
1.3.1.6372. बाज़ (सकुनाग्घी)
1.3.1.7373. बंदर (मक्काटा सं. मार्कट)
1.3.1.8374. रसोइया (सूद)
1.3.1.9375. बीमारी (गिलाना)
1.3.1.10376. भिक्षुणियों का निवास स्थान
1.3.2(ii) नालंदा
1.3.2.1377. एक महान पुरुष (महापुरुष)
1.3.2.2378. नालंदा
1.3.2.3379. कुंडा
1.3.2.4380. उक्कासेला
1.3.2.5381. बहिया
1.3.2.6382. उत्तिया
1.3.2.7383. नोबल (आरिया, आर्या का संक्षिप्त रूप)
1.3.2.8384. ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)
1.3.2.9385. सेडाका
1.3.2.10386. देश की सबसे खूबसूरत लड़की
1.3.3(iii) सद्‌गुण और अवधि (सिलात्थितिवग्गो)
1.3.3.1387. सदाचार (सिला बिना शील)
1.3.3.2388. लोंड एंड्योरिंग (सिराथिति सं. सिरास्थयी)
1.3.3.3389. हानि (परिहाना सं. परिहानी)
1.3.3.4390. सरल संस्करण (शुद्ध)
1.3.3.5391. एक निश्चित ब्राह्मण (अन्नतारब्राह्मण सं. अन्यत्तार-ब्राह्मण)
1.3.3.6392. आंशिक रूप से (पदेसा)
1.3.3.7393. सम्पूर्ण (समत्त बिना समस्त)
1.3.3.8394. लोक (विश्व)
1.3.3.9395. सिरिवद्धा
1.3.3.10396. मनदिन्ना
1.3.4(iv) पहले अनसुना (अननुसुता सं. अनुश्रुत)
1.3.4.1397. अनसुना (अननुस्सुत संस्कृत अननुश्रुत)
1.3.4.2398. वैराग्य (विराग)
1.3.4.3399. उपेक्षित (विराद्ध)
1.3.4.4400. विकास (भाविता)

1.3.4.5401. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
1.3.4.6402. अंतिम ज्ञान (अन्न संस्कृत: अनन्य-ज्ञान)
1.3.4.7403. इच्छा (चंदा)
1.3.4.8404. पूर्ण समझ (परिण्णा सं. परिपूर्ण-ज्ञानत्व)
1.3.4.9405. विकास (भावना)
1.3.4.10406. विश्लेषण (विभंग)
1.3.5(v) मृत्युहीन अवस्था (अमतावग्गा सं. अमृत-वर्ग)
1.3.5.1407. अमरता (अमता सान. अमृत)
1.3.5.2408. उत्पत्ति (समुदय)
1.3.5.3409. पथ (मग्गा सास. मार्ग)
1.3.5.4410. ध्यानमग्न (सती संस्कृत स्मृति)
1.3.5.5411. लाभकारी का ढेर (कुशलरासी सं. कुशल-राशि)
1.3.5.6412. पतिमोक्ख का संयम (पतिमोक्खसंवर)
1.3.5.7413. कदाचार (दुकारिता सं. दश-चरित्र)
1.3.5.8414. मित्र (Mitta sans. Mitra)
1.3.5.9415. संवेदनाएँ (वेदना)
1.3.5.10416. अपवित्रताएँ (असव सं. आश्रव)
1.3.6(vi) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालवग्गो)
1.3.6.1417-428. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि (गंगानाडियादी)
1.3.7(vii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
1.3.7.1429-438. तथागत, इत्यादि।
1.3.8(viii) कठोर कर्म (बलकारनिया)
1.3.8.1439-450. कठिन, इत्यादि (बलादी)
1.3.9(ix) खोज (एसानावग्गो)
1.3.9.1451-460. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
1.3.10(x) बाढ़ (ओघवाग्गो संस. ओघा-वर्ग)
1.3.10.1461-470. उच्चतर बंधन (उद्धमभागियादि)
1.4अध्याय 4: इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (इंद्रियसाम्युत्त) {साम्युत्त-48}
1.4.1(i) सरल संस्करण (शुद्धिकावग्गो सं. शुद्धि-वर्ग)
1.4.1.1471. सरल संस्करण (शुद्धिका सं. शुद्धि)
1.4.1.2472. स्ट्रीम-एंटरर (1) (सोतापन्ना1 सं. स्रोत-पैन)
1.4.1.3473. स्ट्रीम-एंटरर (2) (सोटापन्ना2 सान. स्ट्रोत-पान)
1.4.1.4474. अरिहंत (1) (सं. अरिहंत1)
1.4.1.5475. अरिहंत (2) (सं. अरिहंत2)
1.4.1.6476. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.4.1.7477. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.4.1.8478. देखा जाना (दत्ताब्बा सं. दृष्टव्य)
1.4.1.9479 विश्लेषण (1) (विभंग1)
1.4.1.10480. विश्लेषण (2) (विभंग2)
1.4.2(ii) नरम (मुदुतरवग्गो सं. मृदुतर-वर्ग)
1.4.2.1481. प्राप्ति (पतिलाभा सं. प्रति-लाभ)
1.4.2.2482. संक्षेप में (1) (संखित्त1 सं. संक्षिप्त)
1.4.2.3483. संक्षेप में (2) (संखित्त2 सं. संक्षिप्त)
1.4.2.4484. संक्षेप में (3) (संखित्त3 सं. संक्षिप्त)
1.4.2.5485. विस्तार से (1) (विठ्ठरा1 सं. विस्तार)
1.4.2.6486. विस्तार से (2) (विठ्ठरा2 सं. विस्तार)
1.4.2.7487. विस्तार से (3) (विठ्ठरा3 सं. विस्तार)
1.4.2.8488. अभ्यास करना (पतिपन्ना सं. प्रतिपन्ना)

1.4.2.9489. सुसज्जित (संपन्ना)
1.4.2.10490. अपवित्रताओं का नाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
1.4.3(iii) छह संकाय (चलिनरियावग्गो)
1.4.3.1491. पुनाभव का नवीकृत कारण (पुनब्भव)
1.4.3.2492. जीवन शक्ति (जीवितिन्द्रिय)
1.4.3.3493. अंतिम ज्ञान का संकाय (अनिंद्रिय)
1.4.3.4494. एक बीज बोने वाला (एकबिजी)
1.4.3.5495. सरल संस्करण (शुद्धका)
1.4.3.6496. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
1.4.3.7497. अरहंत
1.4.3.8498. संबुद्ध
1.4.3.9499. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.4.3.10500. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.4.4(iv) सुख की इंद्रिय (सुखिंद्रिय)
1.4.4.1501. सरल संस्करण (शुद्धिका)
1.4.4.2502. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
1.4.4.3503. अरहंत
1.4.4.4504. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
1.4.4.5505. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.4.4.6506. विश्लेषण (1) (विभंग1)
1.4.4.7507. विश्लेषण (2) (विभंग2)
1.4.4.8508. विश्लेषण (3) (विभंग3)
1.4.4.9509. अग्नि-लाठियों की उपमा (कत्थोपमा सं. काष्ठ-उपमा)
1.4.4.10510. अनियमित क्रम (उप्पतिपतिका)
1.4.5(v) बुढ़ापा (जरा)
1.4.5.1511. वृद्धावस्था के अधीन (जरधम्म)
1.4.5.2512. ब्राह्मण (उन्नभब्राह्मण)
1.4.5.3513. सकेता
1.4.5.4514. पूर्वी गेटहाउस (पब्बाकोत्थका सं. पूर्व-कोष्ठक)
1.4.5.5515. पूर्वी पार्क (1) (पुब्बारामा1 सं. पूर्व-अरामा)
1.4.5.6516. पूर्वी पार्क (2) (पब्बाराम2 संस्कृत पूर्व-राम)
1.4.5.7517. पूर्वी पार्क (3) (पुब्बारामा3 सं. पूर्व-अरामा)
1.4.5.8518. पूर्वी पार्क (4) (पब्बाराम4 संस्कृत पूर्व-राम)
1.4.5.9519. पिंडोलाभरद्वाज
1.4.5.10520. अपाना में
1.4.6(vi) सूअर की गुफा खंड (सुकरखाटावग्गो)
1.4.6.1521. साला
1.4.6.2522. मल्लिकाएँ
1.4.6.3523. एक प्रशिक्षु (शिष्य के बिना)
1.4.6.4524. पदचिह्न (पाड़ा)
1.4.6.5525. हार्टवुड (सारा)
1.4.6.6526. स्थापित (पतितिता सं. प्रतिष्ठा)
1.4.6.7527. ब्रह्म सहमपति
1.4.6.8528. सूअर की गुफा (सुकरखाता)
1.4.6.9529. उत्पन्न होना (1) (उप्पदा1)
1.4.6.10530. उत्पन्न होना (2) (उप्पदा2)
1.4.7(vii) ज्ञानोदय अनुभाग के लिए अनुकूल (बोधिपक्खियावग्गो सं. बोधि-पक्ष-वर्ग)
1.4.7.1531. बंधन (संयोजन)

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: मार्ग पर संबंधित प्रवचन (मग्गसाम्युत्त) {साम्युत्त-45}

(i) अज्ञान खंड (अविज्जवग्गो सं. अविद्या-वर्ग)

1. अज्ञान (संस्कृत: अविद्या)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

“भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं में प्रवेश का अग्रदूत है, जिसके साथ लज्जा और कुकर्म का भय भी जुड़ा रहता है। 1 अज्ञान में डूबे मूर्ख व्यक्ति के लिए गलत दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। गलत

दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए गलत इरादे उत्पन्न होते हैं। गलत इरादे वाले व्यक्ति के लिए गलत वाणी उत्पन्न होती है। गलत वाणी वाले व्यक्ति के लिए गलत कर्म उत्पन्न होते हैं। गलत कर्म वाले व्यक्ति के लिए गलत आजीविका उत्पन्न होती है। गलत आजीविका वाले व्यक्ति के लिए गलत प्रयास उत्पन्न होते हैं। गलत प्रयास वाले व्यक्ति के लिए गलत ध्यान (सती) उत्पन्न होता है। गलत ध्यान वाले व्यक्ति के लिए गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था उत्पन्न होती है।

भिक्षुओं, सच्चा ज्ञान लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं में प्रवेश का अग्रदूत है, जिसके साथ लज्जा और कुकर्म का भय भी जुड़ा रहता है। 2 सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर चुके बुद्धिमान व्यक्ति के लिए सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए सही इरादे उत्पन्न होते हैं। सही इरादे वाले व्यक्ति के लिए सही वाणी उत्पन्न होती है। सही वाणी वाले व्यक्ति के लिए सही कर्म उत्पन्न होते हैं। सही कर्म वाले व्यक्ति के लिए सही आजीविका उत्पन्न होती है। सही आजीविका वाले व्यक्ति के लिए सही प्रयास उत्पन्न होते हैं। सही प्रयास वाले व्यक्ति के लिए सही ध्यान (सती) उत्पन्न होता है। सही ध्यान वाले व्यक्ति के लिए सही समाधि (सन्यास) अवस्था उत्पन्न होती है।" 3

---

2. आधा पवित्र जीवन (उपद्ध)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शाक्यों के बीच रह रहे थे, जहाँ नागरक नाम का एक नगर था। 4 तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, यह ब्रह्मचर्य जीवन का आधा भाग है, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छी संगति।" 5

"ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, आनंद, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ, अच्छा सहचर्य। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा। 6

"और, आनंद, एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी, अच्छा सहचर्य हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। 7 वह सही इरादे... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही ध्यान... सती... विकसित करता है।" सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, मोक्ष की ओर ले जाती है। आनंद, इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसके पास एक अच्छा मित्र, एक अच्छा साथी, एक अच्छा सहचर है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

हे आनंद, इस विधि से भी यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन किस प्रकार उत्तम मित्रता, उत्तम संगति और उत्तम सहचर्य है: हे आनंद, मुझ पर मित्रवत विश्वास रखने से पुनर्जन्म के अधीन प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं; वृद्धावस्था के अधीन प्राणी वृद्धावस्था से मुक्त हो जाते हैं; मृत्यु के अधीन प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अधीन प्राणी दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाते हैं। हे आनंद, इस विधि से यह समझा जा सकता है कि संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन किस प्रकार उत्तम मित्रता, उत्तम संगति और उत्तम सहचर्य है।

---

3. सारिपुत्त
सावत्थी में। तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छा सौहार्द।" 8

"वाह, वाह, सारिपुत्त! यही संपूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन है, सारिपुत्त, अर्थात् अच्छी मित्रता, अच्छा साथ और अच्छा सौहार्द। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी या अच्छा सौहार्द होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन करेगा।

और सारिपुत्त, एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र, अच्छा साथी या अच्छा सौहार्द हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन कैसे करता है?"

(शेष भाग पिछले सूत्र के समान है।)

4. जानूसोनी ब्राह्मण

सावत्थी में। फिर, सुबह के समय, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। पूज्य आनंद ने ब्राह्मण जानूसोनी को घोड़ियों द्वारा खींचे जा रहे एक पूर्णतः श्वेत रथ में सावत्थी से प्रस्थान करते देखा। 9 रथ में जुते घोड़े श्वेत थे, उसके आभूषण श्वेत थे, रथ श्वेत था, उसकी गद्दी श्वेत थी, लगाम, अंकुश और चंदोबा श्वेत थे, उसकी पगड़ी, वस्त्र और चप्पलें श्वेत थीं, और उसे एक श्वेत चहचहाहट से हवा दी जा रही थी। यह देखकर लोगों ने कहा, "हे महाराज, यह वाहन वास्तव में दिव्य है! यह वास्तव में एक दिव्य वाहन प्रतीत होता है!" 10

फिर, जब पूज्य आनंद श्रावस्ती में भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, “

हे पूज्यवर, आज सुबह मैंने वस्त्र धारण किया और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर श्रावस्ती में भिक्षा मांगने गया। मैंने ब्राह्मण जनुस्सोनी को घोड़ियों द्वारा खींचे गए एक श्वेत रथ में श्रावस्ती से प्रस्थान करते देखा... लोगों ने यह देखकर कहा, 'हे प्रभु, यह वाहन वास्तव में दिव्य है! यह तो सचमुच एक दिव्य वाहन प्रतीत होता है!' क्या इस धर्म (मार्ग, नियम) या अनुशासन में किसी दिव्य वाहन का उल्लेख करना संभव

है?” “हाँ, आनंद,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। “यह इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का नाम है: 'दिव्य वाहन', 'धर्म का वाहन' और 'युद्ध में अद्वितीय विजय'।”

"आनंद, जब सही दृष्टि विकसित और पोषित होती है, तो उसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण होता है। सही अभिकल्पना... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जब विकसित और पोषित होती है, [6] तो उसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण होता है।

" "इस प्रकार, आनंद, यह समझा जा सकता है कि यह आर्य अष्टांगिक मार्ग का नाम कैसे है: 'दिव्य वाहन', 'धम्म का वाहन' और 'युद्ध में अतुलनीय विजय'।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"इसके विश्वास और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के गुण
हमेशा समान रूप से एक साथ जुड़े रहते हैं।" 11
लज्जा इसका ध्रुव है, मन इसका बंधन है, और
ध्यान (सती) इसका सतर्क सारथी है।

“रथ का आभूषण सद्गुण (शील) है,
इसका धुरा ध्यान है, और इसके पहिए बल (वीर्य) हैं;
समभाव (उपेक्खा) भार को संतुलित रखता है, और
इच्छाहीनता इसका आवरण है।

“सद्भावना, अहिंसा और एकांत:
ये रथ के शस्त्र हैं, और
सहनशीलता इसका कवच और ढाल है, 13
जैसे-जैसे यह बंधन से मुक्ति की ओर बढ़ता है।

"यह दिव्य वाहन, जो अतुलनीय है,
अपने भीतर से ही उत्पन्न होता है। 14
ज्ञानी लोग इसी वाहन में बैठकर संसार से विदा होते हैं।"
अंततः जीत उन्हीं की होगी।

5. किसलिए? (किमत्थिया)

सावत्थी में, कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए। एक तरफ बैठे हुए, उन भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"हे पूज्यवर, अन्य संप्रदायों के तपस्वी हमसे पूछते हैं: 'मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का क्या उद्देश्य है?' हे पूज्यवर, जब हमसे ऐसा पूछा जाता है, तो हम उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देते हैं: 'मित्रों, दुखों को पूर्ण रूप से समझने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है।' हे पूज्यवर, हमें आशा है कि जब हम ऐसा उत्तर देते हैं, तो हम भगवान (बुद्ध) के कहे अनुसार ही बोलते हैं और उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करते; कि हम धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार व्याख्या करते हैं, और हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता।"

भिक्षुओं, जब आप इस प्रकार उत्तर देते हैं, तो आप वही कहते हैं जो मैंने कहा है, न कि मुझे तथ्यों के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत करते हैं; आप धम्म के अनुसार व्याख्या करते हैं, और आपके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनता। क्योंकि, भिक्षुओं, मेरे अधीन ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) दुख के पूर्ण ज्ञान के लिए ही व्यतीत किया जाता है।

यदि, भिक्षुओं, अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'लेकिन, मित्रों, क्या इस दुख के पूर्ण ज्ञान का कोई मार्ग है?' -तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हाँ, मित्रों, इस दुख के पूर्ण ज्ञान का मार्ग है।'

"भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है, वह तरीका क्या है जिससे इस दुख को पूरी तरह समझा जा सकता है? वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (साम्राज्य 8 देखें)। यही मार्ग है, यही तरीका है जिससे इस दुख को पूरी तरह समझा जा सकता है।

भिक्षुओं, इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

---

6. एक निश्चित भिक्खु (1) (अन्नताराभिक्खु1)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया। एक तरफ बैठकर, उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' हे पूज्यवर, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है? पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है?" "हे भिक्षु

, यह अष्टमार्ग ही पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। [8] काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष/मोह) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अंतिम लक्ष्य है।"

---

7. एक निश्चित भिक्खु (2) (अन्नताराभिक्खु2)
“हे पूज्यवर, कहा जाता है, ‘राग का निवारण, द्वेष का निवारण, मोह का निवारण।’ हे पूज्यवर, यह किसका नाम है?”

“हे भिक्षु, यह निर्वाण के तत्व (धातु) का नाम है: राग का निवारण, द्वेष का निवारण, मोह का निवारण। इस प्रकार विकारों के विनाश की बात की जाती है।” 15

यह सुनकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
“हे पूज्यवर, कहा जाता है, ‘अमरता, अमरता।’ हे पूज्यवर, अमरता क्या है? अमरता की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है?”

"काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष/द्वेष) का नाश, मोह (मोह) का नाश: यही अमर अवस्था कहलाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग अमर अवस्था की ओर ले जाता है; अर्थात् सही दृष्टि (जैसा कि 8 में है)... सही समाधि अवस्था।"

---

8. विश्लेषण (विभंग) - नोबेल अष्टांगिक मार्ग
(आर्य अष्टांगिक मार्ग: 1. सही दृष्टिकोण 2. सही इरादा 3. सही वाणी 4. सही कर्म 5. सही आजीविका 6. सही प्रयास 7. सही ध्यान (सती) 8. सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था) सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं आपको आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दूंगा और उसका विश्लेषण करूंगा। इसे ध्यान से सुनें और सचेत रहें, मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही जीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। 16

"हे भिक्षुओं, सही दृष्टि क्या है? दुख का ज्ञान, दुख के कारण का ज्ञान, दुख के निवारण (निरोध) का ज्ञान, दुख निवारण के मार्ग का ज्ञान: इसे सही दृष्टि कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, सही संकल्प क्या है? त्याग का संकल्प, द्वेष न करने का संकल्प, अहिंसा का संकल्प: इसे सही संकल्प कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, सही वाणी क्या है? झूठे वचनों से परहेज, फूट डालने वाले वचनों से परहेज, कठोर वचनों से परहेज, व्यर्थ की बातों से परहेज: यही सही वचन कहलाता है।

"और हे भिक्षुओं, सही कर्म क्या है? जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) से परहेज, बिना दी हुई वस्तु न लेने से परहेज, यौन दुराचार से परहेज: यही सही कर्म कहलाता है।

"और हे भिक्षुओं, सही आजीविका क्या है? यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य गलत आजीविका छोड़कर सही आजीविका कमाता है: यही सही आजीविका कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, सही प्रयास (सम्मवयामो संस्कृत: सम्यक-व्यायम्) क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। वह उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है। ... वह अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है। ... वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (शक्ति) को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। इसे ही सही प्रयास कहते हैं।

भिक्षुओं, सही ध्यान (सती) क्या है? भिक्षुओं, यहाँ, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह मन को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह धर्मों को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इसे ही सही ध्यान (सती) कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, सही समाधि अवस्था (सम्मासमाधि, संस्कृत सम्यक-समाधि) क्या है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो विचार और चिंतन से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होता है। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकत्वमय (एकोदिभावम) से युक्त होता है, विचार और चिंतन से रहित होता है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। आनंद (पीति/प्रीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और ध्यानमग्न होकर, पूर्णतः बोधगम्य (संपजनो) होकर, शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न (सतिमा) और सुख में रहने वाला है।' सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही प्रसन्नता और अप्रसन्नता के दूर हो जाने के बाद, वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक, और जिसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सति) का शुद्धिकरण शामिल है। इसे सही समाधि अवस्था कहा जाता है।

---

9. स्पाइक (सुका)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चावल या जौ की बाली गलत दिशा में हो (रक्त निकालने के लिए) और उस पर हाथ या पैर से दबाव डाला जाए। क्या वह हाथ या पैर को भेदकर रक्त निकाल सकती है? यह असंभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली गलत दिशा में है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, क्या यह असंभव है कि कोई भिक्षु गलत दृष्टि से, गलत मार्ग विकास से अज्ञान को भेदकर, सच्चे ज्ञान को जागृत करके निर्वाण प्राप्त कर ले? इसका कारण क्या है? क्योंकि उसकी दृष्टि गलत दिशा में है।

" "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चावल या जौ की बाली सही दिशा में हो (रक्त निकालने के लिए) और उस पर हाथ या पैर से दबाव डाला जाए। क्या यह हाथ या पैर को भेदकर रक्त निकाल सकती है? यह संभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली सही दिशा में है।" इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, सही दृष्टि से चलने वाला और मार्ग का सही ढंग से अनुसरण करने वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर सच्चे ज्ञान को जागृत कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसकी दृष्टि सही दिशा में निर्देशित है।

और भिक्षु ऐसा कैसे करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होती है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार सही दृष्टि से चलने वाला और मार्ग का सही ढंग से अनुसरण करने वाला भिक्षु अज्ञान को भेदकर सच्चे ज्ञान को जागृत करता है और निर्वाण प्राप्त करता है।

---

10. नंदिया
श्रावस्ती में, तपस्वी नंदीय भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा, "हे गौतम गुरु, कितने धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से निर्वाण प्राप्त होता है, निर्वाण ही उनका गंतव्य है, निर्वाण ही उनका अंतिम लक्ष्य है?"

"नंदीय, इन आठ धर्मों का विकास और अभ्यास करने से निर्वाण प्राप्त होता है, निर्वाण ही उनका गंतव्य है, निर्वाण ही उनका अंतिम लक्ष्य है। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही अभिकल्पना, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (देखें SN5.8)। इन आठ धर्मों का विकास और अभ्यास करने से निर्वाण प्राप्त होता है, निर्वाण ही उनका गंतव्य है, निर्वाण ही उनका अंतिम लक्ष्य है।"

यह सुनकर तपस्वी नंदीय ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

(ii) निवास (विहारवग्गो)
11. निवास (1) (विहार1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं आधे महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता/चाहती हूँ। मेरे पास भिक्षा लाने वाले के अलावा कोई भी न आए।" 18

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भगवान (बुद्ध) के पास भिक्षा लाने वाले के अलावा कोई नहीं आया।

फिर, जब आधा महीना बीत गया, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैं उस स्थान के एक भाग में निवास कर रहा हूँ जहाँ मैं पूर्णतः प्रबुद्ध होने के बाद निवास करता था। 19 मैंने इस प्रकार समझा है: ज्ञात (वेद्यितम्) है गलत दृष्टिकोण कारण के रूप में, और ज्ञात है सही दृष्टिकोण कारण के रूप में... ज्ञात है गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था कारण के रूप में, और ज्ञात है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था कारण के रूप में। ज्ञात है इच्छा कारण के रूप में, ज्ञात है विचार कारण के रूप में, और ज्ञात है अनुभूति (संज्ञा संस. संग्या) कारण के रूप में। 20

'जब इच्छा शांत नहीं होती, और विचार शांत नहीं होते, और अनुभूति शांत नहीं होती, तो वह कारण के रूप में ज्ञात होता है। [जब इच्छा शांत हो जाती है, और विचार शांत नहीं होते, और अनुभूति शांत नहीं होती, तो वह कारण के रूप में ज्ञात होता है। जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और अनुभूतियाँ शांत नहीं होतीं, तो उसे ही कारण कहा जाता है। जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और अनुभूतियाँ शांत हो जाती हैं, तो उसे ही कारण कहा जाता है। अभी तक प्राप्त न हुए लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास किया जाता है। जब वह अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो उसे भी कारण कहा जाता है।

---

12. निवास (2) (विहार2)

सावत्थी में, “भिक्षुओं, मैं तीन महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता/चाहती हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।”

“जी, पूज्यवर,” उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भगवान (बुद्ध) के पास केवल वही व्यक्ति आया जो उन्हें भिक्षा प्रदान करे।

फिर, जब वे तीन महीने बीत गए, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मैं उस स्थान के एक भाग में निवास कर रहा हूँ जहाँ मैं पूर्णतः प्रबुद्ध होने के बाद निवास करता था। मैंने इस प्रकार समझा है: ज्ञात (वेद्यितम्) है गलत दृष्टिकोण कारण के रूप में, और गलत दृष्टिकोण का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही दृष्टिकोण कारण के रूप में, और सही दृष्टिकोण का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था कारण के रूप में, और गलत समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है इच्छा कारण के रूप में, और इच्छा का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है विचार कारण के रूप में, और विचार का निवारण कारण के रूप में। ज्ञात (वेद्यितम्) है अनुभूति (सन्ना संस. संज्ञा) कारण के रूप में, और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का निवारण कारण के रूप में। कारण के रूप में बोध।

"जब इच्छा शांत नहीं होती, विचार शांत नहीं होते, और बोध शांत नहीं होते, तब उसे कारण के रूप में जाना जाता है। [जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत नहीं होते, और बोध शांत नहीं होते, तब उसे कारण के रूप में जाना जाता है। जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और बोध शांत नहीं होते, तब उसे कारण के रूप में जाना जाता है।] जब इच्छा शांत हो जाती है, विचार शांत हो जाते हैं, और बोध शांत हो जाते हैं, तब भी उसे कारण के रूप में जाना जाता है। अभी तक प्राप्त न हुए को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। जब वह अवस्था प्राप्त हो जाती है, तब भी उसे कारण के रूप में जाना जाता है।"

---

13. एक प्रशिक्षु (सेक्खा बिना शिष्य)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया। एक तरफ बैठकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"हे पूज्यवर, कहते हैं, 'एक प्रशिक्षु, एक प्रशिक्षु।' प्रशिक्षु किस प्रकार होता है?" भगवान ने उत्तर दिया,

"हे भिक्षु, प्रशिक्षु का सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था धारण करने से ही प्रशिक्षु कहलाता है।"

---

14. उदय (1) (उप्पदा1 सं. उत्पद)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो यदि प्रकट न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना प्रकट नहीं हो सकते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

15. उदय (2) (उप्पदा2 सं. उत्पद)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

16. शुद्धिकृत (1) (परिशुद्ध1)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), शुद्ध, निर्मल, उप्त्व रहित, यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं होते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

17. शुद्धिकृत (2) (परिशुद्ध2)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये आठ धर्म (गुण, नियम), शुद्ध, निर्मल, उप्त्व रहित, यदि उत्पन्न न हों तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। ये आठ धर्म..."

---

18. द कॉक्स पार्क (1) (कुक्कुटारामा1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य आनंद और पूज्य भद्दा पाटलिपुत्त के मुर्गे के उद्यान में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य भद्दा एकांतवास से बाहर आए, पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से बोले,

"मित्र आनंद, कहते हैं, 'अपवित्र जीवन, अपवित्र जीवन'। मित्र, अपवित्र जीवन क्या है?"

"वाह, वाह, मित्र भद्दा! मित्र भद्दा, आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी सूझबूझ उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न प्रशंसनीय है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, कहते हैं, "अपवित्र जीवन, अपवित्र जीवन"। मित्र, अपवित्र जीवन क्या है?"

"जी, मित्र।"

"हे मित्र, यह अष्टांगिक मार्ग ही अपवित्र जीवन है; अर्थात् गलत दृष्टिकोण, गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान (सती) और गलत समाधि अवस्था।"

---

19. द कॉक्स पार्क (2) (कुक्कुटारामा2)
पाटलिपुत्त में। "मित्र आनंद, कहा जाता है, 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है और इसका अंतिम लक्ष्य क्या है?"

"वाह, वाह, मित्र भद्दा! मित्र भद्दा, आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी चतुराई उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न अच्छा है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, कहा जाता है, "पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है और इसका अंतिम लक्ष्य क्या है?" "

जी, मित्र।"

"हे मित्र, यह अष्टमार्ग ही ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष/मोह) का नाश, मोह (मोह) का नाश: हे मित्र, यही ब्रह्मचर्य के पवित्र जीवन का अंतिम लक्ष्य है।"

---

20. द कॉक्स पार्क (3) (कुक्कुटारामा3)
पाटलिपुत्त में। "मित्र आनंद, कहा जाता है, 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन।' तो मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अनुयायी कौन है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है?"
"वाह, वाह, मित्र भद्दा! मित्र भद्दा, आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी चतुराई उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न सराहनीय है। आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, ऐसा कहा जाता है, "पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य), पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य)।" मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन क्या है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) का अनुयायी कौन है, और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) का अंतिम लक्ष्य क्या है?
"जी, मित्र।"

"मित्र, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था। जो इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को धारण करता है, उसे पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य जीवन) का पालन करने वाला कहा जाता है।" वासना (राग) का विनाश (खाय \ क्षय), घृणा (दोसा\द्वेष) का विनाश (खाय \ क्षय), भ्रम (मोह) का विनाश (खाय \ क्षय): यह, मित्र, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) का अंतिम लक्ष्य है।

(iii) गलतता अनुभाग (मिकचट्टावागो)
21. गलत होना (मिच्चात्ता)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सही और गलत का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, गलत क्या है? यह है: गलत दृष्टिकोण... गलत समाधि अवस्था। इसे गलत कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, सही क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण... सही समाधि अवस्था। इसे सही कहते हैं।"

---

22. हानिकारक राज्य (अकुशलधम्म सं. अकुशल-धर्म)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) और लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं का ज्ञान दूंगा। ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ क्या हैं? वे हैं: गलत दृष्टि (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था। इन्हें हानिकारक (अकुशल) अवस्थाएँ कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) अवस्थाएँ क्या हैं? वे हैं: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इन्हें लाभकारी (कुशल) अवस्थाएँ कहा जाता है।"

---

23. मार्ग (1) (पतिपदा1 सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत मार्ग और सही मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, गलत मार्ग क्या है? यह है: गलत दृष्टिकोण (जैसा कि 1 में है)... गलत समाधि अवस्था। इसे गलत मार्ग कहते हैं।

और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8)। इसे सही मार्ग कहते हैं।"

---

24. मार्ग (2) (पतिपदा 2 सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में। भिक्षुओं, चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, मैं कुटिल मार्ग की प्रशंसा नहीं करता। चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, कुटिल मार्ग का अभ्यास करने वाला कुटिल मार्ग अपनाने के कारण वह लाभकारी धम्म (कुशल) की विधि को प्राप्त नहीं कर पाता। 24 और हे भिक्षुओं, कुटिल मार्ग क्या है? यह है: कुटिल दृष्टिकोण (जैसा कि 1 में है)... कुटिल समाधि अवस्था। इसे कुटिल मार्ग कहते हैं। चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, कुटिल मार्ग का अभ्यास करने वाला कुटिल मार्ग अपनाने के कारण वह लाभकारी धम्म (कुशल) की विधि को प्राप्त नहीं कर पाता।

भिक्षुओं, चाहे वह गृहस्थ हो या दीक्षित, मैं कुटिल मार्ग का अभ्यास करने वाले कुटिल मार्ग की प्रशंसा करता हूँ। सही मार्ग। चाहे कोई गृहस्थ हो या दीक्षित (पबज्जित), जो सही ढंग से अभ्यास कर रहा हो, सही मार्ग का अनुसरण करने से उसे लाभकारी (कुशल) धम्म की विधि प्राप्त होती है। और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इसे ही सही मार्ग कहते हैं। चाहे कोई गृहस्थ हो या दीक्षित (पबज्जित), जो सही ढंग से अभ्यास कर रहा हो, सही मार्ग का अनुसरण करने से उसे लाभकारी (कुशल) धम्म की विधि प्राप्त होती है।

---

25. निम्न पुरुष (1) (असप्पुरिषा1 सं. असत्पुरुष)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें निम्न और श्रेष्ठ व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, निम्न व्यक्ति क्या है? वह व्यक्ति जिसका दृष्टिकोण, इरादा, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, सती ध्यान और समाधि की अवस्था गलत है, उसे निम्न व्यक्ति कहते हैं। और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ व्यक्ति क्या है?

वह व्यक्ति जिसका दृष्टिकोण, इरादा, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, ध्यान और समाधि की अवस्था सही है, उसे श्रेष्ठ व्यक्ति कहते हैं।"

---

26. निम्न पुरुष (2) (असप्पुरिषा2 सं. असत्पुरुष)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें निम्न व्यक्ति और निम्न व्यक्ति से भी बदतर व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। मैं तुम्हें श्रेष्ठ व्यक्ति और श्रेष्ठ व्यक्ति से भी श्रेष्ठ व्यक्ति के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, निम्न व्यक्ति कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण गलत है (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था में है। इसे निम्न व्यक्ति कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, निम्न व्यक्ति से भी बदतर व्यक्ति कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण गलत है (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था, गलत ज्ञान, गलत मुक्ति। 25 इसे निम्न व्यक्ति से भी बदतर व्यक्ति कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ व्यक्ति कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण सही है, सही इरादा सही है, सही वाणी सही है, सही कर्म सही है, सही आजीविका सही है, सही प्रयास सही है, सही ध्यान (सती) सही है, सही समाधि अवस्था सही है (देखें SN5.8)। इसे श्रेष्ठ व्यक्ति कहते हैं।"

और हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ व्यक्ति से श्रेष्ठ कौन है? यहाँ वह व्यक्ति है जिसका दृष्टिकोण सही है... सही समाधि अवस्था, सही ज्ञान, सही मुक्ति (विमुक्ति)। यही वह व्यक्ति कहलाता है जो श्रेष्ठ व्यक्ति से श्रेष्ठ है।

---

27. घड़ा (कुंभ)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, जैसे बिना सहारे का घड़ा आसानी से गिर जाता है, जबकि सहारे वाला घड़ा गिराना मुश्किल होता है, वैसे ही बिना सहारे का मन आसानी से गिर जाता है, जबकि सहारे वाले मन को गिराना मुश्किल होता है।

और हे भिक्षुओं, मन का आधार क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। यही मन का आधार है।

भिक्षुओं, जैसे बिना सहारे का घड़ा आसानी से गिर जाता है, वैसे ही बिना सहारे का मन गिराना मुश्किल होता है।"

---

28. समाधि (सम्मोहन) अवस्था

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें समाधि की श्रेष्ठ अवस्था, उसके आधार और सहायक तत्वों सहित सिखाऊंगा। 26 ध्यान से सुनो...

"और हे भिक्षुओं, समाधि की श्रेष्ठ अवस्था, उसके आधार और सहायक तत्व क्या हैं? वे हैं: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही जीविका, सही प्रयास और सही ध्यान (सती)। इन सात तत्वों से युक्त मन की एकाग्रता को ही समाधि की श्रेष्ठ अवस्था कहा जाता है, 'उसके आधार और सहायक तत्वों सहित'।"

---

29. वेदना

सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये कौन सी तीन हैं? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना, और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना। ये तीन वेदनाएँ हैं।

भिक्षुओं, इन तीनों वेदनाओं की पूर्ण समझ प्राप्त करने के लिए अष्टमार्ग का अनुसरण करना चाहिए। अष्टमार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इन तीनों वेदनाओं की पूर्ण समझ प्राप्त करने के लिए अष्टमार्ग का अनुसरण करना चाहिए।"

---

30. उत्तिया

सावत्थी में। तब पूज्य उत्तिया भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान (बुद्ध) ने इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र बताए हैं। लेकिन वे पाँच सूत्र क्या हैं?'

"जी, जी, उत्तिया! ये पाँच सूत्र मैंने बताए हैं। वे पाँच क्या हैं? आँखों से दिखाई देने वाले रूप जो आकर्षक, प्यारे, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाले और उत्तेजक हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने

वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुएँ जो आकर्षक, प्यारी, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजक हैं। ये पाँच सूत्र मैंने बताए हैं।

"आर्यमय अष्टांगिक मार्ग।" उत्तिया मार्ग का विकास इंद्रिय सुख के इन पाँच बंधनों को त्यागने के लिए किया जाता है। और आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इंद्रिय सुख के इन पाँच बंधनों को त्यागने के लिए किया जाता है।

(iv) अभ्यास अनुभाग (पतिपट्टिवग्गो)
31. अभ्यास (1) (पतिपत्ती1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत और सही अभ्यास सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, गलत अभ्यास क्या है? यह है: गलत दृष्टिकोण (जैसा कि अध्याय 1 में है)... गलत समाधि अवस्था। इसे गलत अभ्यास कहते हैं।

और भिक्षुओं, सही अभ्यास क्या है? यह है: सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे सही अभ्यास कहते हैं।"

---

32. अभ्यास (2) (पतिपट्टी2)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत तरीके से अभ्यास करने वाले और सही तरीके से अभ्यास करने वाले के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

"और, भिक्षुओं, गलत तरीके से अभ्यास करने वाला कौन है? यहाँ व्यक्ति का दृष्टिकोण गलत है... समाधि की अवस्था गलत है। इसे गलत तरीके से अभ्यास करने वाला कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, सही तरीके से अभ्यास करने वाला कौन है? यहाँ व्यक्ति का दृष्टिकोण सही है, इरादा सही है, वाणी सही है, कर्म सही है, आजीविका सही है, प्रयास सही है, ध्यान (सती) सही है, समाधि की अवस्था सही है (देखें SN5.8)। इसे सही तरीके से अभ्यास करने वाला कहते हैं।" 27

---

33. उपेक्षित (विराद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जिन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग का त्याग किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले आर्य मार्ग का त्याग किया है। जिन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले आर्य मार्ग का अनुसरण किया है।

और हे भिक्षुओं, आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यह है: सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। जिन्होंने इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का त्याग किया है... जिन्होंने इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले आर्य मार्ग का अनुसरण किया है।"

---

34. आगे बढ़ना (परंगमा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, इन आठ धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से निकट तट से दूर तट तक जाने की प्रेरणा मिलती है। वे आठ कौन से हैं? सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इन आठ धर्मों का विकास और अभ्यास करने से निकट तट से दूर तट तक जाने की प्रेरणा मिलती है।" 29

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"मनुष्यों में बहुत कम लोग हैं

जो दूर तट तक जाते हैं।
बाकी लोग तो बस
किनारे पर इधर-उधर भागते रहते हैं।

जब धर्म (मार्ग, नियम) की सही व्याख्या की जाती है,
तो जो लोग धर्म के अनुसार अभ्यास करते हैं,
वे ही
मृत्यु के उस क्षेत्र से परे जाते हैं जिसे पार करना इतना कठिन है। "

अंधकारमय गुणों को त्यागकर,
ज्ञानी व्यक्ति को प्रकाशमय गुणों का विकास करना चाहिए।
गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आकर,
जहाँ ध्यान में आनंद लेना कठिन हो

, वहाँ एकांत में उसे ध्यान में आनंद की खोज करनी चाहिए।
इंद्रिय सुखों को त्यागकर,
कुछ भी न रखते हुए, ज्ञानी व्यक्ति को
मानसिक विकारों से स्वयं को शुद्ध करना चाहिए।

जिनके मन
ज्ञान के कारकों में अच्छी तरह विकसित हैं, जो अनासक्ति के माध्यम से आसक्ति के त्याग में ध्यान में
आनंद पाते हैं : वे विकारमुक्त प्रकाशमान व्यक्ति संसार में पूर्णतः विसर्जित हो जाते हैं।

---

35. वैराग्य (1) (समन्ना1 सं. श्रामण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें वैराग्य और उसके फल सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वैराग्य क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे ही वैराग्य कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, वैराग्य के फल क्या हैं? सोतपत्ति (सात जन्मों में निर्वाण), एक जन्म में निर्वाण (सकदागामी), अनागमी (इस जीवन में निर्वाण), अरहंतत्व (पहले से ही प्राप्त निर्वाण)। इन्हें ही वैराग्य के फल कहते हैं।"

---

36. वैराग्य (2) (समन्ना2 सं. श्रामण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें वैराग्य और वैराग्य के उद्देश्य के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, वैराग्य क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही वैराग्य कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, वैराग्य का उद्देश्य क्या है? काम (राग) का नाश (खयाय/क्षय), घृणा (दोष/द्वेष) का नाश (खयाय/क्षय), मोह (मोह) का नाश (खयाय/क्षय)।
यही वैराग्य का उद्देश्य कहलाता है।"

---

37. ब्राह्मणत्व (1) (ब्राह्मन्ना1 सं. ब्राह्मण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणत्व के फल सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे ही ब्राह्मणत्व कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व के फल क्या हैं? (जैसा कि 35 में है) सोतापत्ति का फल, एक बार पुनर्जन्म का फल, अनजन्म का फल, अरहंतत्व का फल। इन्हें ही ब्राह्मणत्व के फल कहते हैं।"

---

38. ब्राह्मणत्व (2) (ब्राह्मण्ण2 सं. ब्राह्मण्य)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही ब्राह्मणत्व कहलाता है।

और हे भिक्षुओं, ब्राह्मणत्व का लक्ष्य क्या है? काम (राग) का नाश, घृणा (दोष/द्वेष) का नाश, मोह (मोह) का नाश। यही ब्राह्मणत्व का लक्ष्य कहलाता है।"

---

39. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (1) (ब्रह्मचर्य1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्रह्मचर्य जीवन और उसके फल सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)। इसे ब्रह्मचर्य जीवन कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन के फल क्या हैं? (जैसा कि 35 में है) सोतापत्ति का फल, एक बार पुनर्जन्म का फल, अनजन्म का फल, अरहंतत्व का फल।" इन्हें ब्रह्मचर्य जीवन के फल कहा जाता है।

---

40. पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (2) (ब्रह्मचर्य2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ब्रह्मचर्य जीवन और उसके उद्देश्य के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। इसे ही ब्रह्मचर्य जीवन कहते हैं।

" और हे भिक्षुओं, ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य क्या है? काम (राग) का नाश, द्वेष (दोष) का नाश, मोह (मोह) का नाश। इसे ही ब्रह्मचर्य जीवन का उद्देश्य कहते हैं।

(v) अन्य संप्रदायों के तपस्वी धारा 30 (अन्नतित्तियपेय्यलावग्गो)
41. कामवासना का लुप्त होना (रागवीरगा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'हे मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?' - तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन कामवासना (राग) के नाश के लिए व्यतीत किया जाता है।'

"फिर, भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'लेकिन, हे मित्रों, क्या कामवासना के नाश का कोई मार्ग है?' - तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, कामवासना के नाश का मार्ग है।'"

"भिक्षुओं, वह कौन सा मार्ग है, वह कौन सा तरीका है जिससे कामवासना दूर होती है? वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही वह मार्ग है, यही वह तरीका है जिससे कामवासना दूर होती है। भिक्षुओं,

इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

42-48. बंधनों का त्याग, इत्यादि (संयोजनप्पहनादि)

भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'हे मित्रों, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?'
- तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'हे मित्रों, बंधनों के त्याग के लिए... अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) के उन्मूलन के लिए... मार्ग के पूर्ण ज्ञान के लिए... दोषों के नाश (खय/क्षय) के लिए... सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति के लिए... ज्ञान और दृष्टि के लिए... आसक्ति रहित अंतिम निर्वाण (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के लिए भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।'

"तो, भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'लेकिन, मित्रों, क्या आसक्ति रहित (उपदान संस्कृत: आसक्ति) अंतिम निर्वाण प्राप्त करने का कोई मार्ग है?' - तो इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: मित्रों, आसक्ति रहित (उपदान संस्कृत: आसक्ति) अंतिम निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग है।'

"भिक्षुओं, वह मार्ग क्या है, वह तरीका क्या है जिससे आसक्ति रहित होकर परम निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है? वह है आर्य अष्टांगिक मार्ग; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था। यही मार्ग है, यही तरीका है जिससे आसक्ति रहित होकर परम निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है।

भिक्षुओं, इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।"

(vi) सूर्य पुनरावृति श्रृंखला (सुरियापेय्यलावग्गो)

(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित

49. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। 32 जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा। और

एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष में परिपक्व होती है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

50.-55 सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)

भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग के उदय का अग्रदूत है, अर्थात् सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... जागरूकता (अप्पमदा) में सिद्धि... ध्यान (योनिषे) में सिद्धि। 33 जब कोई भिक्षु ध्यान (योनिषे) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और जो भिक्षु ध्यान (योनिषे) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान में निपुण भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

---

56 (1) अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस. कल्याण-मित्र)

भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण करना है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण करना है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसका कोई अच्छा मित्र हो, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

57-62. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)

भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग के उदय का अग्रदूत है, अर्थात् सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... जागरूकता (अप्पमदा) में सिद्धि... ध्यान (मानसिकारा) में सिद्धि। जब एक भिक्षु ध्यान (मानसिकारा) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और जो भिक्षु ध्यान (मानसिकारा) में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान (योनिसो) में निपुण भिक्षु मानसिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(vii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (1)

(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित

63. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक होता है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो यह अपेक्षित है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

" और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

64-69. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)

भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... जागरूकता (अप्पमदा) में सिद्धि... ध्यान (योनिसो) में सिद्धि... (जैसा कि 63 में है)... वह सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

---

70. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक होता है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का अच्छा मित्र होता है, तो यह अपेक्षित है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

" और एक भिक्षु जिसका अच्छा मित्र हो, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

71-76. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) आर्य अष्टांगिक मार्ग के उद्भव में अत्यंत सहायक है। वह एक धर्म (गुण, नियम) क्या है? सद्गुण (शील) में सिद्धि... इच्छा (इच्छा) में सिद्धि... आत्म (स्वयं) में सिद्धि... दृष्टि (दृष्टि) में सिद्धि... अप्पमदा (सचेतनता) में सिद्धि... ध्यान (योनि) में सिद्धि... (जैसा कि 70 में बताया गया है)... वह सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य काम (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान (योनि) में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(viii) एक धम्म (गुण, नियम) पुनरावृत्ति श्रृंखला (2)
(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित

---

77. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण/नियम) नहीं दिखता जिसके द्वारा अजन्मा आर्य अष्टांगिक मार्ग उत्पन्न होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग विकास द्वारा इतनी प्रभावी ढंग से सिद्ध होता है, जितना कि यह: अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

78-83. सदाचार आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) दिखाई नहीं देता जिसके द्वारा अजन्मे आर्य अष्टांगिक मार्ग का उद्भव होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग विकास द्वारा इतनी प्रभावी ढंग से सिद्ध होता है जितना कि इस धर्म के द्वारा: शील में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... अप्पमदा में सिद्धि... ध्यान में सिद्धि...
(जैसा कि 77 में है)... वह सही समाधि अवस्था प्राप्त करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होती है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

---

84. अच्छा मित्र (कल्याणमित्र संस्कृत: कल्याण-मित्र)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) नहीं दिखता जिसके द्वारा अजन्मा आर्य अष्टांगिक मार्ग उत्पन्न होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग विकास द्वारा इतनी प्रभावी ढंग से सिद्ध होता है, जितना कि यह: अच्छी मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र है, वह आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। वह सही

समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र होता है, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

85-90 सद्‌गुण आदि में सिद्धि (सिलसम्पदादि सं. शील-सम्पदा-आदि)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) दिखाई नहीं देता जिसके द्वारा अजन्मे आर्य अष्टांगिक मार्ग का उद्‌भव होता है और प्रकट आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इतनी प्रभावी ढंग से होता है जितना कि इस धर्म के द्वारा: शील में सिद्धि... इच्छा में सिद्धि... आत्म में सिद्धि... दृष्टि में सिद्धि... अप्पमद में सिद्धि... ध्यान में सिद्धि...

(जैसा कि अनुच्छेद 84 में है)... इससे वह सही समाधि अवस्था प्राप्त करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य राग, द्वेष और मोह का निवारण है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान में सिद्धि प्राप्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ix) प्रथम गंगा पुनरावृति श्रृंखला 34
(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित

---

91. पूर्व की ओर झुका हुआ (1) (पैसिननिन्ना)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, उसी प्रकार जो भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है। और हे भिक्षुओं , एक भिक्षु

अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कैसे करता है जिससे वह निर्वाण की ओर झुकता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है (जैसा कि 8 में है)। वह सही समाधि अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

92-96. पूर्व की ओर झुका हुआ (2-6) (पैसिननिन्ना)
"भिक्षुओं, जिस प्रकार यमुना नदी... अचिरवती नदी... सरभु नदी... माही नदी... और जितनी भी बड़ी नदियाँ हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु, माही - सभी पूर्व दिशा की ओर झुकती हैं, उसी प्रकार जो भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।"
(अनुच्छेद 91 के अनुसार पूर्ण।)

97-102. सागर (समुद्दानिन्ना)
"भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी... और जितनी भी बड़ी नदियाँ हैं... वे सभी समुद्र की ओर झुकती हैं, उसी प्रकार जो भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास और विकास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।"

(अनुच्छेद 91-96 के अनुसार पूर्ण।)

(x) दूसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(ii) कामुकता (राग) के संस्करण को हटाना

103-108 (6) पूर्व की ओर झुका हुआ + 109-114 महासागर

(इस संस्करण में 103-108, 91-96 के समान हैं, और 109-114, 97-102 के समान हैं, सिवाय निम्नलिखित परिवर्तन के:)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण विकसित करता है और उसका अभ्यास करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है।"

(xi) तीसरी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(iii) अमरता की अवस्था इसके मूल स्वरूप के रूप में

115-220 पूर्व की ओर झुका हुआ + 121-126 महासागर

(इस संस्करण में 115-120, 91-96 के समान हैं, और 121-126, 97-102 के समान हैं, सिवाय निम्नलिखित परिवर्तन के:)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित और पोषित करता है, जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, गंतव्य अमरता है, अंतिम लक्ष्य अमरता है।"35

(xii) चौथी गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(iv) निर्वाण संस्करण की ओर झुकाव

127-132 पूर्व की ओर झुकाव + 133-138 महासागर

(इस संस्करण में 127-132, 91-96 के समान हैं, और 133-138, 97-102 के समान हैं, सिवाय निम्नलिखित परिवर्तन के:)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित और पोषित करता है, जो निर्वाण की ओर अग्रसर, ढलान और झुकाव रखती है।"

(xiii) सतर्कता धारा 36 (अप्पमदा-पय्याला-वाग्गो)
139. तथागत
(i) एकांतवास संस्करण पर आधारित,

सावत्थी में: "भिक्षुओं, चाहे कितने भी प्राणी हों - चाहे वे बिना पैरों वाले हों, दो पैरों वाले हों, चार पैरों वाले हों या अनेक पैरों वाले हों, चाहे वे सजीव हों या निराकार, चाहे वे बोधगम्य हों, अपज्ञेय हों या न बोधगम्य हों - तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, उनमें श्रेष्ठ घोषित किए गए हैं। इसी प्रकार, चाहे कितनी भी लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाएँ हों, वे सभी सजगता (अप्पमदा) में निहित हैं, सजगता की ओर अभिसरित होती हैं, और सजगता उनमें श्रेष्ठ घोषित की गई है। 37 जब कोई भिक्षु सजग होता है, तो उससे आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, एक सजग भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है?" यहां भिक्षु, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होते हैं। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक जागरूक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(ii) कामवासना (राग) का निवारण

... "यहाँ, भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है ... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है...."

(iii) अमरता को आधार मानते हुए

... "यहाँ, भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है ... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, गंतव्य अमरता है और अंतिम लक्ष्य अमरता है।"

(iv) निर्वाण संस्करण की ओर झुकाव

... "यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है ... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जो निर्वाण की ओर झुकती, ढलान बनाती और प्रवृत्त होती है...."

(नोट: नीचे दिए गए प्रत्येक सूत्र, 140-148, की व्याख्या उपरोक्त सूत्र 139 में वर्णित चार प्रकार की विधि के अनुसार की जानी है।)

---

140. पदचिह्न (पाड़ा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी जीवित प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित हो जाते हैं और हाथी का पदचिह्न उनमें सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, अर्थात् आकार के लिहाज से, उसी प्रकार सभी लाभकारी (कुशल) अवस्थाएँ सजगता (अप्पमदा) में निहित होती हैं, सजगता पर केंद्रित होती हैं और सजगता उनमें सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। जब कोई भिक्षु सजग होता है, तो उससे आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करने की अपेक्षा की जाती है। (जैसा कि 8 में है)

---

141. रूफ पीक (कुटा)
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार शिखर वाले भवन की सभी कड़ियाँ छत के शिखर की ओर झुकती हैं, ढलान बनाती हैं, और शिखर पर आकर मिलती हैं, और छत के शिखर को उनका मुख्य भाग घोषित किया जाता है, उसी प्रकार (जैसा कि 140 में है)"38

---

142. जड़ें
"भिक्षुओं (साधुओं) को, जिस प्रकार सभी सुगंधित जड़ों में काली ओरिस को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

143. हार्टवुड
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार सभी सुगंधित लकड़ियों में लाल चंदन को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

144. चमेली
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार सभी सुगंधित फूलों में चमेली को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

145. सम्राट
"भिक्षु (साधु), जिस प्रकार सभी छोटे राजकुमार चक्र घुमाने वाले राजा के अधीन होते हैं, और चक्र घुमाने वाले राजा को उनका मुखिया घोषित किया जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

146. चंद्रमा (कैंडिमा बिना कैंड्रामा)
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार सभी तारों की चमक चंद्रमा की चमक के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होती, और चंद्रमा की चमक को उनकी प्रमुख चमक घोषित किया जाता है, उसी प्रकार ...(जैसा कि 140 में है)"

---

147. सूर्य
भिक्षुओं, जैसे शरद ऋतु में, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित होता है, सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ते हुए अपनी चमक, किरणों और विकिरण से अंतरिक्ष से समस्त अंधकार को दूर कर देता है, ठीक उसी प्रकार...

---

148. कपड़ा
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी बुने हुए वस्त्रों में कसीयन वस्त्र श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार सभी लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाएँ सजगता में निहित होती हैं, सजगता पर केंद्रित होती हैं, और सजगता ही उनमें श्रेष्ठ है। जब कोई भिक्षु सजग होता है, तो उससे आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, एक सजग भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सता) अवस्था का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक जागरूक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(xiv) कठोर कर्म (बलकारनिया)
(प्रत्येक सूत्र की व्याख्या उसी चार प्रकार की विधि के अनुसार की जानी है।)
149. कठोर (बाला)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी कठिन कर्म पृथ्वी पर आधारित और पृथ्वी से जुड़े होते हैं, उसी प्रकार, शील पर आधारित और सद्‌गुण से जुड़े भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करते हैं।

और हे भिक्षुओं, सद्‌गुण पर आधारित और सद्‌गुण से जुड़े भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास कैसे करते हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था का विकास करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होती है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार, सद्‌गुण पर आधारित और सद्‌गुण से जुड़े भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करते हैं।"

---

150. बीज (बीजा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी प्रकार के बीज और पौधे पृथ्वी पर आधारित होकर बढ़ते, विकसित होते और फैलते हैं, उसी प्रकार, शील के आधार पर, भिक्षु अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करते हैं और इस प्रकार लाभकारी अवस्थाओं में वृद्धि और विस्तार प्राप्त करते हैं। भिक्षु ऐसा

कैसे करते हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होते हैं। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों से स्थापित होकर, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, और इस प्रकार लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि, विकास और विस्तार प्राप्त करता है।

---

151. नागा
"हिमालय पर्वतों के राजा नागों पर आधारित भिक्षु अपने शरीर का पोषण करते हैं और बल प्राप्त करते हैं। 39 जब वे अपने शरीर का पोषण कर लेते हैं और बल प्राप्त कर लेते हैं, तब वे सरोवरों में प्रवेश करते हैं। सरोवरों से वे झीलों में, फिर धाराओं में, फिर नदियों में और अंत में सागर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे महानता और शरीर की विशालता प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार, शील पर आधारित भिक्षु, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करते हैं, और इस प्रकार वे लाभकारी अवस्थाओं में महानता और विशालता प्राप्त करते हैं।

"और एक भिक्षु ऐसा कैसे करता है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्‌गुणों पर आधारित, सद्‌गुणों से स्थापित होकर, आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, और इस प्रकार लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में महानता और विस्तार प्राप्त करता है।

---

152. वृक्ष (रुक्खा)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक वृक्ष पूर्व दिशा की ओर झुका हुआ है। यदि उसे जड़ से काट दिया जाए, तो वह किस दिशा में गिरेगा?" [48]

"जिस भी दिशा में वह झुका हुआ है, हे पूज्यवर, उसी दिशा में गिरेगा।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन-पोषण करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

" "और एक भिक्षु ऐसा कैसे करता है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

---

153. घड़ा (कुंभ)
भिक्षुओं, जिस प्रकार उल्टा किया हुआ घड़ा अपना पानी गिरा देता है और वापस नहीं लेता, उसी प्रकार जो भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, वह अकुशल (अशुभ) अवस्थाओं का त्याग कर देता है और उन्हें वापस नहीं लेता।

और भिक्षु ऐसा कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सन्यास) अवस्था का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है ताकि वह अकुशल (अशुभ) अवस्थाओं का त्याग कर देता है और उन्हें वापस नहीं लेता।

---

154. स्पाइक (सुका)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि धान या जौ की बाली सही दिशा में रखी हो और उस पर हाथ या पैर से दबाव डाला जाए। यह संभव है कि वह हाथ या पैर को भेदकर रक्त निकाल दे। इसका कारण क्या है? क्योंकि बाली सही दिशा में रखी है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, सही दृष्टि और मार्ग के सही विकास वाले भिक्षु अज्ञान को भेदकर, सच्चे ज्ञान को जागृत करके निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उनकी दृष्टि सही दिशा में है।

और भिक्षु ऐसा कैसे करते हैं? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि अवस्था विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होती है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होते हैं।

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु उचित दृष्टि से, मार्ग के उचित विकास के साथ, अज्ञान को भेदता है, सच्चे ज्ञान को जागृत करता है और निर्वाण को प्राप्त करता है।"

---

155. आकाश (अकासा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार आकाश में विभिन्न प्रकार की हवाएँ चलती हैं - पूर्वी हवाएँ, पश्चिमी हवाएँ, उत्तरी हवाएँ, दक्षिणी हवाएँ, धूल भरी हवाएँ और धूल रहित हवाएँ, ठंडी हवाएँ और गर्म हवाएँ, हल्की हवाएँ और तेज़ हवाएँ - उसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तो उसके लिए ध्यान के चार प्रतिष्ठान (सती) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं; चार सही प्रयास विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं; आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि) विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं; पाँच आध्यात्मिक क्षमताएँ विकास द्वारा पूर्ण हो जाती हैं; पाँच शक्तियाँ विकास द्वारा पूर्ण हो जाती हैं; ज्ञान के सात कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

और यह कैसे होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और (जैसा कि 8 में है) सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार जब एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तब उसके लिए ध्यान के चार आधार... ज्ञानोदय के सात कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

---

156. वर्षा बादल (1) (मेघा1)
भिक्षुओं, जैसे ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब धूल और गंदगी का ढेर उमड़ता है, तो असमय आने वाला एक बड़ा वर्षा बादल उसे तितर-बितर कर देता है और वहीं शांत कर देता है; ठीक उसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, तो जब भी कोई बुरी और हानिकारक अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, तो वह उन्हें वहीं तितर-बितर कर देता है और शांत कर देता है।

और ऐसा क्यों होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। [51] हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, ताकि जब भी अकुशल (हानिकारक) अवस्थाएँ उत्पन्न हों, तो वह उन्हें तुरंत दूर कर दे और उनका निवारण कर दे।

157. वर्षा बादल (2) (मेघा2)
भिक्षुओं, जैसे जब कोई बड़ा वर्षा बादल उठता है, तो तेज हवा उसे तितर-बितर कर शांत कर देती है; उसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, तो जब भी कोई बुरी (अकुशल) अवस्था उत्पन्न होती है, तो वह उसे तितर-बितर करने के लिए प्रार्थना करता है।

और ऐसा क्यों होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (ध्यान) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है ताकि जब भी कोई बुरी (अकुशल) अवस्था उत्पन्न हो, तो वह उसे तितर-बितर करने के लिए प्रार्थना करे।

158. जहाज (नवा)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक समुद्री जहाज है जिसके रस्सियाँ छह महीने तक पानी में रहने के कारण घिस चुकी हैं। 41 शीत ऋतु में उसे सूखी ज़मीन पर खींचा जाता है और हवा व धूप से उसकी रस्सियाँ और भी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। बारिश के बादल से भीगने पर रस्सियाँ आसानी से टूटकर सड़ जाती हैं। ठीक इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है, तो उसके बंधन आसानी से टूटकर सड़ जाते हैं।

"ऐसा क्यों होता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है।" भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे उसके बंधन आसानी से टूटकर नष्ट हो जाते हैं।

159. अतिथि गृह (अगांटुका)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक अतिथिगृह है। 42 पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से लोग आकर वहाँ ठहरते हैं; क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेस और शुद्ध आकर वहाँ ठहरते हैं। इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तो वह दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा उन धर्मों (गुणों, नियमों) को पूर्णतः समझ लेता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए; वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का त्याग करता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा त्यागा जाना चाहिए; वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का अहसास करता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा अहसास किया जाना चाहिए; वह दिव्य ज्ञान (अभिन) द्वारा उन धर्मों का विकास करता है जिनका दिव्य ज्ञान द्वारा विकास किया जाना चाहिए।

और हे भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए? यह कहा जाना चाहिए: पाँच स्कंध (खंड संस्कृत) आसक्ति (उपादान संस्कृत आसक्ति) के अधीन हैं। कौन से पाँच? आसक्ति के अधीन शरीर-रूप स्कंध (खंड संस्कृत) है, (इसी प्रकार) संवेदना (वेदना), अनुभूति (संज्ञा संस्कृत), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) और चेतना (विज्ञान संस्कृत) (जैसा कि खंड 56 में है) आसक्ति के अधीन हैं। ये वे धर्म हैं जिन्हें दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा पूर्णतः समझा जा सकता है।

भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान द्वारा किन धर्मों का त्याग करना चाहिए? अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) और अस्तित्व (भावो) के लिए तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)। ये वे धर्म हैं जिनका त्याग दिव्य ज्ञान द्वारा करना चाहिए।

भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान द्वारा किन धर्मों का अनुभव करना चाहिए? सच्चा ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)। ये वे धर्म हैं जिनका अनुभव दिव्य ज्ञान द्वारा करना चाहिए।

भिक्षुओं, दिव्य ज्ञान द्वारा विकसित किए जाने वाले धर्म क्या हैं? समभाव और अंतर्दृष्टि। ये वे धर्म हैं जो दिव्य ज्ञान द्वारा विकसित किए जाने हैं।

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, तो वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों को पूर्णतः समझ लेता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए... वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का विकास करता है जिनका विकास दिव्य ज्ञान द्वारा किया जाना चाहिए? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष

की अवस्था में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों को पूर्णतः समझ पाता है जिन्हें दिव्य ज्ञान द्वारा पूर्णतः समझा जाना चाहिए... वह दिव्य ज्ञान द्वारा उन धर्मों का विकास करता है जिनका दिव्य ज्ञान द्वारा विकास किया जाना चाहिए।

---

160. नदी (नाडी)
"मान लीजिए, भिक्षुओं, कि जब गंगा नदी पूर्व की ओर ढलानदार होती है, तो लोगों की एक बड़ी भीड़ फावड़ा और टोकरी लेकर यह सोचकर आती है: 'हम इस गंगा नदी को पश्चिम की ओर ढलानदार बना देंगे।' 43 भिक्षुओं, क्या आपको लगता है कि लोगों की वह बड़ी भीड़ गंगा नदी को पश्चिम की ओर ढलानदार बना पाएगी?"

"नहीं, पूज्यवर। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी पूर्व की ओर ढलानदार है, और इसे पश्चिम की ओर ढलानदार बनाना आसान नहीं है। लोगों की वह बड़ी भीड़ केवल थकान और कष्ट ही पाएगी।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं, यह कहते हुए: 'हे श्रेष्ठ, इन भगवा वस्त्रों को अपने ऊपर क्यों बोझ बनने दें? मुंडा सिर और भिक्षापात्र लेकर क्यों भटकते हैं? आइए, निम्न लोक में लौटकर धन का आनंद लें और पुण्य कर्म करें।' वास्तव में, हे भिक्षुओं, जब वह भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कर रहा होता है, तो उसके लिए साधना छोड़कर निम्न लोक में लौटना असंभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसका मन एकांत की ओर झुका हुआ है। अतः उसके लिए निम्न लोक में लौटना असंभव है।

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास कैसे करता है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और (जैसा कि 8 में है) सही समाधि (संत) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास और अभ्यास करता है।

(xv) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
161. खोज (एसाना)
सावत्थी में

(i. दिव्य ज्ञान (अभिन्न))

"भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, और ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य) के पवित्र जीवन की खोज। 44 ये तीन खोजें हैं। इन तीनों खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित किया जाना चाहिए।

" "यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और (जैसा कि 8 में है) सही समाधि (सता) अवस्था विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। इन तीनों खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए यह आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित किया जाना चाहिए।"

... "यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। ...

"यह कौन सा आर्य अष्टांगिक मार्ग है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, गंतव्य (अमरता) है और अंतिम लक्ष्य (अमरता) है।" ... "यह कौन सा

आर्य अष्टांगिक मार्ग है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि विकसित करता है... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था, जो निर्वाण की ओर झुकती, ढलान बनाती और प्रवृत्त होती है।" इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए

किया जाना है।

निम्नलिखित उप-खंडों (ii-iv) में से प्रत्येक को दिव्य ज्ञान पर उप-खंड में अपनाई गई विधि के अनुसार विस्तृत किया जाना है।

(ii. पूर्ण बोध)

"भिक्षुओं, ये तीन खोज हैं। वे तीन क्या हैं? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोज हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन खोजों के पूर्ण बोध के लिए किया जाना है।"

(iii. पूर्ण विनाश)

"भिक्षुओं, ये तीन खोज हैं। वे तीन क्या हैं? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोज हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन खोजों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के लिए किया जाना है।"...

(iv. त्याग)

"भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य) जीवन की खोज। ये तीन खोजें हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीनों खोजों के त्याग के लिए किया जाना है।"...

(नोट: निम्नलिखित प्रत्येक सूत्र की व्याख्या इस सूत्र 161 में प्रयुक्त चार प्रकार की विधि के अनुसार की जानी है।)

---

162. भेदभाव (विधा)
भिक्षुओं, ये तीन भेद हैं। कौन से तीन? 'मैं श्रेष्ठ हूँ', 'मैं समतुल्य हूँ' और 'मैं हीन हूँ'। ये तीन भेद हैं। इन तीनों भेदों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग

विकसित किया जाना चाहिए। "यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षु, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (संध्या 5.8 देखें) विकसित करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होते हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को इन तीनों भेदों के दिव्य ज्ञान के लिए विकसित किया जाना चाहिए... ताकि इनका त्याग किया जा सके।"

---

163. अशुद्धियाँ (आसव)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार के दोष हैं। कौन से तीन? कामुकता का दोष, भाव का दोष और अज्ञान का दोष। ये तीन दोष हैं। इन तीनों दोषों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

164. अस्तित्व (भाव)
भिक्षुओं, तीन प्रकार के भाव होते हैं। वे कौन से तीन हैं? इंद्रिय-मंडल का भाव, सजीव सत्व का भाव और निराकार सत्व का भाव। ये तीन प्रकार के भाव हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण इन तीनों प्रकार के भावों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और उनका त्याग करने के लिए किया जाना चाहिए।

---

165. दुख (दुख)
भिक्षुओं, तीन प्रकार के दुख होते हैं। वे कौन से तीन प्रकार हैं? दर्द के कारण दुख, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के कारण दुख, और परिवर्तन के कारण दुख। 45 ये तीन प्रकार के दुख हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण इन तीनों प्रकार के दुखों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए, और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

166. बांझपन (खिला)

भिक्षुओं, तीन प्रकार की बांझपन होती है। कौन सी तीन? कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष), और मोह (मोह)। ये तीन प्रकार की बांझपन हैं। इन तीनों प्रकार की बांझपन का दिव्य ज्ञान (अभिन) प्राप्त करने, इन्हें पूरी तरह समझने, इनका पूर्ण विनाश करने और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

167. दाग (माला)
भिक्षुओं, ये तीन दोष हैं। कौन से तीन? कामवासना (राग) का दोष, द्वेष (दोष/द्वेष) का दोष और मोह (मोह) का दोष। ये तीन दोष हैं। इन तीनों दोषों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण नाश (क्षय/अत्याचार) के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

168. परेशानियाँ (निघा)
भिक्षुओं, तीन प्रकार के कष्ट होते हैं। वे कौन से तीन हैं? कामवासना (राग), द्वेष (दोष/द्वेष), और मोह (मोह)। ये तीन प्रकार के कष्ट हैं। इन तीनों प्रकार के कष्टों का दिव्य ज्ञान (अभिन) प्राप्त करने, इन्हें पूरी तरह समझने, इनका पूर्ण विनाश करने और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

169. संवेदनाएँ (वेदना)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये कौन सी तीन हैं? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना और न कष्टदायक, न सुखदायक वेदना। ये तीन वेदनाएँ हैं। इन तीनों वेदनाओं के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

---

170. लालसा (तन्हा)
भिक्षुओं, तीन प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा और मृत्यु की तृष्णा। ये तीन प्रकार की तृष्णाएँ हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण इन तीनों प्रकार की तृष्णाओं के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए। आर्य

अष्टांगिक मार्ग क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीन प्रकार की तृष्णाओं (तन्हा संस. तृष्णा) के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

---

171. प्यास (ताशिना सं. तृष्णा)
भिक्षुओं, तीन प्रकार की प्यास होती है। कौन सी तीन? इंद्रिय सुखों की प्यास, अस्तित्व की प्यास (भावो), और मृत्यु की प्यास। ये तीन प्रकार की प्यास हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीनों प्रकार की प्यासों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए। आर्य

अष्टांगिक मार्ग क्या है? भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन तीनों प्रकार की प्यासों के दिव्य ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (क्षय/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

(xvi) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
सावत्थी में।
172. बाढ़ (ओघा)
भिक्षुओं, ये चार प्रकार की बाढ़ें हैं। कौन सी चार? कामुकता की बाढ़, अस्तित्व की बाढ़ (भावो), विचारों की बाढ़ और अज्ञान की बाढ़ (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)। ये चार प्रकार की बाढ़ें हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चारों प्रकार की बाढ़ों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

173. बंधन (योग)
भिक्षुओं, ये चार बंधन हैं। कौन से चार? कामुकता का बंधन, अस्तित्व का बंधन (भावो), दृष्टियों का बंधन और अज्ञान का बंधन (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)। ये चार बंधन हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चारों बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

174. आसक्ति (उपादान)
भिक्षुओं, ये चार प्रकार के आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) क्या हैं? कौन से चार? इंद्रिय सुख से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और व्रतों से आसक्ति, और आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। ये चार प्रकार की आसक्ति हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चारों प्रकार की आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के दिव्य ज्ञान (अभिन्य) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

175. गांठें (गंथा सं. ग्रंथी)
भिक्षुओं, ये चार गांठें हैं। कौन सी चार? लोभ की शारीरिक गांठ, द्वेष की शारीरिक गांठ, नियमों और प्रतिज्ञाओं की विकृत समझ की शारीरिक गांठ, और सत्य के हठधर्मी दावे का पालन करने की शारीरिक गांठ। 47 ये चार गांठें हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन चार गांठों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना है।

---

176. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)
भिक्षुओं, ये सात मूल प्रवृत्तियाँ (अनुसय) हैं। कौन सी सात? काम (राग) की ओर मूल प्रवृत्ति (अनुसय, संस्कृत: अनुषय), घृणा की ओर मूल प्रवृत्ति, विचारों की ओर मूल प्रवृत्ति, संदेह की ओर मूल प्रवृत्ति, अहंकार की ओर मूल प्रवृत्ति, अस्तित्व की लालसा (भावो) की ओर मूल प्रवृत्ति, और अज्ञान की ओर मूल प्रवृत्ति (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या)। ये सात मूल प्रवृत्तियाँ हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन सात मूल प्रवृत्तियों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

177. कामुक सुख की डोरियाँ (कामागुना)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। ये पाँच कौन सी हैं? आँखों से दिखाई देने वाले रूप जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाले और उत्तेजक होते हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वस्तुएँ जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक रूप से लुभाने वाली और उत्तेजक होती हैं। ये पाँच इंद्रिय सुख की डोरियाँ हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच इंद्रिय सुख की डोरियों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

178. अवरोध (निवारण)
भिक्षुओं, ये पाँच बाधाएँ हैं। कौन सी पाँच? कामुक इच्छा की बाधा, द्वेष की बाधा, आलस्य और सुस्ती की बाधा, बेचैनी और पश्चाताप की बाधा, और संदेह की बाधा। ये पाँच बाधाएँ हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच बाधाओं के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

179. आसक्ति के अधीन समुच्चय (उपदानक्खन्ध)
भिक्षुओं, ये पाँच स्कंध (कन्ध संस्कृत: स्कन्ध) हैं जो आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के अधीन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप (आसक्ति के अधीन), संवेदना (आसक्ति के अधीन), अनुभूति (संज्ञा संस्कृत: आसक्ति के अधीन), संस्कार (आक्रामक व्यवहार) (आसक्ति के अधीन), चेतना (आसक्ति के अधीन)। ये पाँच स्कन्ध (आसक्ति के अधीन) हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच स्कन्ध (आसक्ति के अधीन) के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के लिए और इनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

180. निचले बंधन (ओरंभागिया)
भिक्षुओं, ये पाँच निम्न बंधन हैं। 49 वे पाँच कौन से हैं? शरीर-बोध (सक्कय-दित्थी), संदेह, नियमों और व्रतों की विकृत समझ, कामुक इच्छा, द्वेष। ये पाँच निम्न बंधन हैं। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच निम्न बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खयाय/क्षय) के लिए, और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

---

181. उच्चतर बंधन (उद्धमभागीय)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्च कोटि के बंधन हैं। 50 वे पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्च कोटि के बंधन हैं। इन पाँच उच्च कोटि के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित किया जाना चाहिए।

"यह आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती) और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (जैसा कि 8 में है) विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है।" इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। कौन से पाँच?... ... इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का विकास इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (क्षय) के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

"यह कौन सा आर्य अष्टांगिक मार्ग है?" हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि अवस्था (देखें SN5.8) विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है... जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, जिसका गंतव्य (मृत्युस्थल) अमरता है और जिसका अंतिम लक्ष्य (मृत्युस्थल) अमरता है... जो निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को इन पाँच उच्च बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए विकसित किया जाना चाहिए।

अध्याय 2: ज्ञानोदय के कारकों पर संबंधित प्रवचन (बोज्झंगसाम्युत्त) {साम्युत्त-46}
(i) पर्वतीय भाग (पब्बतवाग्गो)
182. हिमालय (हिमवंता)
सावत्थी में, "भिक्षु (साधु), पर्वतों के राजा हिमालय, नागों पर आधारित होकर अपने शरीर का पोषण करते हैं और बल प्राप्त करते हैं। 51 जब वे अपने शरीर का पोषण कर लेते हैं और बल प्राप्त कर लेते हैं, तो वे सरोवरों में प्रवेश करते हैं। सरोवरों से वे झीलों में, फिर धाराओं में, फिर नदियों में और अंत में सागर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे महानता और शरीर की विशालता प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार, भिक्षु, सद्गुणों पर आधारित होकर, सद्गुणों में स्थापित होकर, ज्ञान के सात कारकों का विकास और संवर्धन करते हैं, और इस प्रकार वे लाभकारी अवस्थाओं में महानता और विशालता प्राप्त करते हैं। 52

"और सद्गुणों पर आधारित होकर, सद्गुणों में स्थापित भिक्षु ज्ञान के सात कारकों का विकास कैसे करते हैं?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होता है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह वीर्य शक्ति (वीर्य) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होता है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह आनंद (पीति) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित होता है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।
वह एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है।
वह समाधि (सम्मोहन) की अवस्था को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है।
वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है।
हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्गुणों पर आधारित, सद्गुणों से स्थापित होकर, ज्ञान के सात तत्वों को विकसित करता है, और इस प्रकार लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में महानता और विस्तार प्राप्त करता है।

---

183. शरीर का स्वरूप (काया)
(पाँच बाधाएँ और सात ज्ञानोदय कारक)

(i. बाधाओं के लिए पोषक तत्व)

श्रावस्ती में: "भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर, पोषक तत्वों से पोषित होकर, पोषक तत्वों पर निर्भर रहता है और पोषक तत्वों के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार पाँच बाधाएँ, पोषक तत्वों से पोषित होकर, पोषक तत्वों पर निर्भर होकर ही रह सकती हैं और पोषक तत्वों के बिना नहीं रह सकतीं। 53

"और हे भिक्षुओं, अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषक तत्व क्या है? हे भिक्षुओं, सौंदर्य का संकेत (निमित्त, कारण) है: 54 बार-बार उस पर ध्यान न करने से अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषक तत्व प्राप्त होता है।"

हे भिक्षुओं, अजन्मी दुर्भावना के उत्पन्न होने और उत्पन्न दुर्भावना के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, अप्रियता का संकेत (निमित्त, कारण) है: बार-बार उस पर ध्यान न देने से अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती है और उत्पन्न दुर्भावना बढ़ती और फैलती है। हे भिक्षुओं, अजन्मी

आलस्य और सुस्ती के उत्पन्न होने और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, असंतोष, सुस्ती, आलस्यपूर्ण अंगड़ाई, भोजन के बाद उनींदापन, मन की सुस्ती है: बार-बार ध्यान न देने से अजन्मी आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होती है और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती बढ़ती और फैलती है।

भिक्षुओं, अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप के उत्पन्न होने और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, मन की अस्थिरता है: 57 इस पर बार-बार ध्यानहीन चेतना (मानसिकारा) करने से अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण होता है।

भिक्षुओं, अजन्मे संदेह के उत्पन्न होने और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, संदेह के आधार धर्म (गुण, नियम) हैं: उन पर बार-बार ध्यानहीन चेतना (मानसिकारा) करने से अजन्मे संदेह उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण होता है।

"हे भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहता है और पोषण के बिना जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार पाँच बाधाएँ भी पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहकर पोषण के बिना जीवित नहीं रह सकतीं।

(ii. ज्ञान के कारकों के लिए पोषण)"

भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहता है और पोषण के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार ज्ञान के सात तत्व भी पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहते हैं और पोषण के बिना नहीं रह सकते।

और हे भिक्षुओं, ध्यान के अजन्मे ज्ञान तत्व (सती) के उत्पन्न होने और उत्पन्न ज्ञान तत्व (सती) के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने का पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो ध्यान के ज्ञान तत्व का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान करना (मानसिकारा) अजन्मे ज्ञान तत्व (सती) के उत्पन्न होने और उत्पन्न ज्ञान तत्व (सती) के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने का पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे धम्मविचय तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) और हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ, निम्न और उच्च अवस्थाएँ, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ और उनके प्रतिरूप हैं: 59 इन सभी का बार-बार ध्यान करना अजन्मे धम्मविचय तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है। भिक्षुओं, ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव

और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? ऊर्जा-शक्ति के उत्पन्न ज्ञानोदय कारक का विकास? हे भिक्षुओं, उत्तेजना का तत्व (धातु), प्रयास का तत्व (धातु), परिश्रम का तत्व (धातु) मौजूद हैं: 60 उन्हें बार-बार ध्यानपूर्ण जागरूकता (मानसिकारा) देना ऊर्जा-शक्ति के अप्रकट ज्ञानोदय कारक के उदय और उत्पन्न ऊर्जा-शक्ति कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे आनंदमय प्रबोध (पीति/प्रीति) के उद्भव और प्रकट आनंदमय प्रबोध के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो आनंदमय प्रबोध का आधार हैं: उन पर बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करने से अजन्मे आनंदमय प्रबोध (पीति/प्रीति) का उद्भव होता है और प्रकट आनंदमय प्रबोध (पीति/प्रीति) के विकास द्वारा उसकी पूर्णता प्राप्त होती है।

भिक्षुओं, अजन्मे शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के उद्भव और विकसित शांति तत्व के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, शरीर की शांति और मन की शांति (पासद्धि/प्रशब्धि) है: 61 उन्हें बार-बार ध्यानपूर्ण चेतना (मानसिकारा) प्रदान करना अजन्मे शांति तत्व के उद्भव और विकसित शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उद्भव और विकसित समाधि (सम्मोहन) अवस्था के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, शांति (समथा/समभाव) का कारण (निमित्त) और अविघटन का कारण (निमित्त) मौजूद हैं: 62 उन्हें बार-बार ध्यानपूर्ण जागरूकता (मानसिकारा) देना समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अ-उत्पन्न ज्ञान कारक के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उत्पन्न ज्ञान कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान करना (मानसिकारा) समभाव (उपेक्खा) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और उसके विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।

भिक्षुओं, जिस प्रकार यह शरीर पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहता है और पोषण के बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार ये सात ज्ञान तत्व भी पोषण से पोषित होकर पोषण पर निर्भर रहते हैं और पोषण के बिना नहीं रह सकते।

---

184. सद्गुण (शील) - ज्ञानोदय के सात कारक

सात ज्ञानोदय कारक (संबोज्जंग)
"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो सद्गुणों में निपुण (शील-संपन्न), समाधि अवस्था में निपुण (सम्मोहन) हैं, ज्ञान में निपुण (नाना) हैं, मुक्ति में निपुण (विमुक्ति सं. विमुक्ति) हैं, मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि में निपुण (विमुक्ति-नाना-दस्सन) हैं: मैं कहता हूँ कि उन भिक्षुओं के दर्शन मात्र ही आशीर्वाद हैं; उनका श्रवण करना... उनके पास जाना... उनकी सेवा करना... उनका स्मरण करना... उनके पीछे दीक्षा लेना (पबज्जा) भी सहायक है, मैं कहता हूँ। इसका कारण क्या है? क्योंकि जब कोई ऐसे भिक्षुओं से धम्म (मार्ग, नियम) सुनता है तो वह दो प्रकार के वैराग्यों - शरीर और मन के वैराग्य - द्वारा निवास करता है। इस प्रकार वैराग्य में निवास करते हुए, वह उस धम्म का अभ्यास करता है और उस पर चिंतन भी करता है।

1. ध्यान (सती) ज्ञानोदय कारक (सती-संबोज्जंगो) : "जब भी (यस्मिम) समय (समये), भिक्षु (भिक्षु), इस प्रकार विमुख (वुपकत्थो) निवास करने वाला (विहारन्तो) भिक्षु (भिक्षु) उस धम्म (मार्ग) का अभ्यास (अनुस्सरति) करता है और उस पर चिंतन (अनु-वितक्केति) करता है, उस (तस्मिम) अवसर (समये) पर भिक्षु में ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक (संबोजंगो) जागृत (अरद्धो) होता है; उस (तस्मिम) अवसर (समये) पर भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक (संबोजंग) का अहसास (भवेति) करता है; उस अवसर पर ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक (संबोजंग) का अहसास (भावना) भिक्षु में पूर्णता (परिपुरिम) की ओर अग्रसर (गच्छति) होता है।" अतः, उस धम्म (मार्ग) में ध्यान करते हुए (विहारन्तो), ध्यान करते हुए (सतो), प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसका परीक्षण (पविचिनाति), उस पर ध्यान लगाते हुए (पविचराति), उसका भली-भांति अध्ययन (परिविमांसामपज्जति) करना।
(नोट: इसका अर्थ है किसी अधिकृत स्रोत जैसे www.dhamma.org आदि से ध्यान विधि, जैसे विपश्यना, समाथा आदि सीखना, फिर उसे दैनिक अभ्यास में तथा सभी भावों और इच्छाओं के दौरान लागू करना; अच्छे या बुरे भावों के अंतर्निहित कारण-प्रभाव संबंधों को समझना और अंततः ध्यान से उन्हें शांत करना; फिर जागरूकता के संलयन/पृथक्करण का अनुभव करना और मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर शुद्ध प्रकाश (पन्ना) को महसूस करना, जो पुराने समय के कांच के दीपक की लौ के समान है)। 2. विवेक

और ज्ञान का कारक (धम्मविचय-संबोज्जंगो) जब भी कोई भिक्षु उस धम्म (मार्ग) पर ध्यान (सतो) लगाते हुए, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उसका अध्ययन करता है, उस पर मनन करता है और उसका गहन विश्लेषण करता है, तब उस भिक्षु में धम्मविचय का ज्ञान जागृत होता है; उस समय वह धम्मविचय के ज्ञान का अनुभव करता है; उस समय धम्मविचय के ज्ञान की अनुभूति उसमें पूर्ण होती है। जब वह प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उस धम्म का अध्ययन करता है, उस पर मनन करता है और उसका गहन विश्लेषण करता है, तब उसकी ऊर्जा शक्ति निरंतर जागृत होती है। (नोट

(1 से जारी): भावनाओं के शांत होने और जागृत होने के बाद...) प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि [मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर], अब इसका उपयोग अच्छे और बुरे भावों को समझने/पहचानने के लिए किया जाता है। वास्तव में, मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर की प्रबुद्धता के अलावा सभी संवेदनाएँ और अवस्थाएँ बुरी हैं और उन्हें शांत करने की आवश्यकता है।

3. ऊर्जा शक्ति (वीर्य)/प्रयास ज्ञान कारक (वीर्य-संबोज्झंगो) : "जब भी कोई भिक्षु उस धम्म के लिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उसका अध्ययन करता है, उस पर ध्यान देता है, उसकी जाँच करता है, उसकी ऊर्जा शक्ति (वीर्य) बिना शिथिल हुए जागृत होती है, उस अवसर पर भिक्षु द्वारा ऊर्जा शक्ति का ज्ञान कारक जागृत होता है; उस अवसर पर भिक्षु ऊर्जा शक्ति के ज्ञान कारक को अनुभव (भवेति) करता है; उस अवसर पर भिक्षु में ऊर्जा-शक्ति के ज्ञानोदय कारक की अनुभूति (भावना) पूर्णतया सिद्ध हो जाती है। इसके बाद, जागृत ऊर्जा शक्ति के साथ, आनंद का विकास होने लगता है। (नोट (2 से जारी): सही और गलत भावनाओं और इच्छाओं को संवेदनाओं द्वारा जानने के बाद, बुरी भावनाओं को दूर करने के लिए, उन्हें लुप्त होते देखने के लिए प्रयास और दृढ़ता की आवश्यकता होती है, जिससे आगे चलकर परमानंद का मार्ग प्रशस्त होता है।)

4. परमानंद (पीति/प्रीति) ज्ञान का कारक (पीति-संबोज्झंगो) : "जब भी भिक्षुओं के भीतर उनकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत होती है, तो उनमें आध्यात्मिक परमानंद (पीति) उत्पन्न होता है; उस अवसर पर भिक्षु द्वारा परमानंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान के कारक को जागृत किया जाता है; उस अवसर पर भिक्षु परमानंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान के कारक का अहसास (भावति) करते हैं; उस अवसर पर भिक्षु में परमानंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान के कारक का अहसास (भावना) पूर्ण हो जाता है। आध्यात्मिक परमानंद के उत्पन्न होने के साथ, शरीर और मन का शांत होना संभव हो जाता है।" (नोट) (3 से जारी): जब ध्यान का अभ्यास दृढ़ता से प्रतिदिन और लंबे समय तक किया जाता है, तो आनंद की अनुभूति होती है जो आगे चलकर शांति की ओर ले जाती है।

5. शांति-ज्ञानोदय कारक (पसाद्धि-संबोज्जंगो) भिक्षुओं, जब भी किसी भिक्षु के भीतर शरीर और मन शांत हो जाते हैं (पसद्धि, संस्कृत: प्रशब्धि), उस समय भिक्षु में शांति का प्रबुद्ध तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु शांति के प्रबुद्ध तत्व का अनुभव करता है; उस समय शांति के प्रबुद्ध तत्व की अनुभूति पूर्ण हो जाती है। शांत शरीर और सुखी मन के साथ, अगली समाधि संभव हो जाती है। (नोट (4 से जारी): जब ध्यान में आनंद का अनुभव होता है, जो सुखी अवस्था की ओर ले जाता है, तो व्यक्ति उसका आनंद लेता है और शरीर और मन से शांत हो जाता है और भीतर की ओर केंद्रित हो जाता है।)

6. आत्म-अवशोषक समाधि (समाधि-संबोज्झंगो) प्रबुद्ध तत्व जब भी किसी भिक्षु का शरीर शांत और मन (चित्त) प्रसन्न हो, तो वह समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में (9 समाधि अवस्थाओं में से किसी एक में) प्रवेश करता है। उस समय, भिक्षु में समाधि की आत्म-मग्न अवस्था का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय, भिक्षु समाधि की आत्म-मग्न अवस्था के ज्ञानोदय तत्व का अहसास (भावेति) होता है; उस समय, समाधि की आत्म-मग्न अवस्था के ज्ञानोदय तत्व का अहसास (भावना) भिक्षु में पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

7. समभाव-संबोध कारक (उपेक्खा-संबोधा) : "जब भी कोई भिक्षु समाधि अवस्था में होता है, तो वह अंतर्मुखी हो जाता है, उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा, उपेक्ष) का ज्ञान जागृत होता है; उस समय भिक्षु समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक का अहसास (भावेति) करता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक की अनुभूति (भावना) पूर्ण हो जाती है।
(नोट (6 से जारी): समाधि अवस्था विकसित होने के बाद, उस अवस्था में हमेशा के लिए अटके रहने की आवश्यकता नहीं है, इसके बाद, आगे बढ़ने के लिए, समाधि की आनंदमय अवस्था को न पसंद करने और न नापसंद करने का समभाव (उपेक्खा) विकसित करना आवश्यक है और फिर..." समाधि अवस्था इन नौ अवस्थाओं में से अगली, उससे भी उच्च अवस्था में परिवर्तित हो जाएगी। अंतिम अवस्था में निर्वाण प्राप्त होता है।

ज्ञानोदय के लाभ:

"भिक्षुओं, जब ज्ञानोदय के इन सात कारकों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो सात फल और लाभ प्राप्त होते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?

1. व्यक्ति को इसी जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

2. यदि व्यक्ति को इसी जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है,
तो उसे मृत्यु के समय अंतिम ज्ञान प्राप्त होता है।

3. यदि व्यक्ति को इसी जीवन में या
मृत्यु के समय भी अंतिम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तो पांचों का पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) हो जाता है।
निम्न बंधनों से मुक्त होकर व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेता है। 65

4. "यदि व्यक्ति इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले ...
या इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

5. "यदि व्यक्ति इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले - ...
या निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह
निर्वाण प्राप्त कर लेता है बिना किसी प्रयास के।

6. यदि कोई इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले...
या बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह परिश्रमपूर्वक निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

7. यदि कोई इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले...
या परिश्रमपूर्वक निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो
पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ वह
अकनित्थ लोक की ओर धारा के विपरीत दिशा में प्रवृत्त हो जाता है।

हे भिक्षुओं, जब ज्ञान के सात कारकों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाए, तो इन सात फलों और लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।

---

185. वस्त्र (वत्थ सं. वस्त्र)
एक बार पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में स्थित अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

उन्होंने उत्तर दिया: "मित्रों।" आदरणीय सारिपुत्त ने कहा:

"मित्रों, ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक हैं। कौन से सात? ध्यान (सती), अवस्थाओं का विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा)। ये ज्ञान प्राप्ति के सात कारक हैं। 66

"इन सात कारकों में से जिसमें मैं सुबह के समय ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं सुबह के समय उस कारक में ध्यान लगाता हूँ। जिसमें मैं दोपहर के समय ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं दोपहर के समय उस कारक में ध्यान लगाता हूँ। जिसमें मैं शाम के समय ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं शाम के समय उस कारक में ध्यान लगाता हूँ।"

"मित्रों, यदि मेरे मन में यह विचार आए, '[यह] ध्यान का ज्ञानोदय तत्व है,' तो मेरे मन में यह विचार आता है, 'यह असीम है'; मेरे मन में यह विचार आता है, 'यह पूर्णतः सिद्ध है।' जब तक यह बना रहता है, मैं समझता हूँ, 'यह बना रहता है।' यदि यह मुझमें क्षीण हो जाता है, तो मैं समझता हूँ, 'यह मुझमें किसी विशेष कारण से क्षीण हुआ है।' ...
(इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व के लिए... ऊर्जावान शक्ति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय तत्व के लिए जैसा कि 182-184 में है)
"मित्रों, यदि मेरे मन में यह विचार आए, '[यह] समता (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व है,' तो मेरे मन में यह विचार आता है, 'यह असीम है'; मुझे यह ख्याल आता है, 'यह पूरी तरह से परिपूर्ण हो गया है।' जब तक यह बना रहता है, मैं समझता हूँ, 'यह बना रहता है।' लेकिन अगर यह मुझमें कम हो जाता है, तो मैं समझता हूँ, 'यह मुझमें किसी खास कारण से कम हो गया है।'

"मान लीजिए, मित्रों, एक राजा या राजमंत्री के पास अलग-अलग रंगों के कपड़ों से भरी अलमारी है। सुबह वह जो भी सूट पहनना चाहेगा, वह सुबह पहनेगा। दोपहर में वह जो भी सूट पहनना चाहेगा, वह दोपहर में पहनेगा। शाम को वह जो भी सूट पहनना चाहेगा, वह शाम को पहनेगा। इसी तरह, मित्रों, ज्ञान के इन सात कारकों में से जिस भी कारक में मैं सुबह... दोपहर में... शाम को ध्यान लगाना चाहता हूँ, मैं शाम को उसी कारक में ध्यान लगाता हूँ।

"यदि, मित्रों, मुझे यह ख्याल आता है, "[इसे] ध्यान का ज्ञानोदय कारक मान लें"... (ऊपर जैसा ही)... मैं समझता हूँ, "यह मुझमें किसी विशेष कारण से कम हो गया है।" (ऊपर जैसा ही दोहराया गया)

---

186. भिक्षु (भिक्खु सं. भिक्षु)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'ज्ञान के कारक, ज्ञान के कारक।' इन्हें किस अर्थ में ज्ञान के कारक कहा जाता है?"

"भिक्षु, ये ज्ञानोदय की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञानोदय के कारक कहा जाता है। यहाँ, भिक्षु, व्यक्ति ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता के ज्ञानोदय कारक... पीति प्रीति के ज्ञानोदय कारक... शांति के ज्ञानोदय कारक... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। इन सात ज्ञानोदय कारकों के विकास के दौरान, व्यक्ति का मन... विमुत्त (संस्कृत: विमुक्त) कामुकता के दोष से, भाव के दोष से, अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। जब यह मुक्त हो जाता है, तब यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' व्यक्ति समझता है:
'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत हो चुका है, जो करना था वह हो चुका है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।' हे भिक्षु, ये ज्ञान की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञान के कारक कहा जाता है। (देखें 184)

---

187. कुंडलिया
एक बार भगवान (बुद्ध) साकेत में अंजनवन के हिरण उद्यान (मिगदाये) में निवास कर रहे थे। तब तपस्वी कुंडलिया भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले,

“गुरु गौतम, मैं मठों के आसपास रहता हूँ और सभाओं में जाता हूँ। भोजन के बाद, जब मैं नाश्ता कर लेता हूँ, तो मेरी आदत है कि मैं उद्यान-उद्यान-उद्यान में घूमता हूँ। वहाँ मैं कुछ तपस्वियों और ब्राह्मणों को अपने-अपने मतों को बचाने और दूसरों के मतों की निंदा करने के लिए चर्चा में लगे देखता हूँ। 67 परन्तु गुरु गौतम किस लाभ के लिए जीते हैं?”

“कुंडलिया, तथागत सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति) के लाभ और फल के लिए जीते हैं।” 68

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म (गुण, नियम) हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है?"

"ज्ञान के सात कारक, कुंडलिया, जिनका विकास और अभ्यास करने से सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।"

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से ज्ञान के सात कारक पूर्ण होते हैं?"

"ध्यान की चार अवस्थाएँ (सती), कुंडलिया, जिनका विकास और अभ्यास करने से ज्ञान के सात कारक पूर्ण होते हैं।"

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से ध्यान की चार अवस्थाएँ पूर्ण होती हैं?"

"तीन प्रकार के अच्छे आचरण, कुंडलिया, जिनका विकास और अभ्यास करने से ध्यान की चार अवस्थाएँ पूर्ण होती हैं।"

"परन्तु, गुरु गौतम, वे कौन से धर्म हैं जिनका विकास और अभ्यास करने से तीन प्रकार के अच्छे आचरण पूर्ण होते हैं?"

"कुंडली, जब इंद्रियों पर संयम विकसित और पोषित किया जाता है, तो यह तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को पूर्ण करता है।

और हे कुंडली, इंद्रियों पर संयम कैसे विकसित और पोषित किया जाता है जिससे यह तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को पूर्ण करता है? हे कुंडली, जब कोई भिक्षु किसी मनभावन रूप को दृष्टि से देखता है, तो वह उसकी लालसा नहीं करता, न ही उससे उत्तेजित होता है, और न ही उसके प्रति कामवासना (राग) उत्पन्न करता है। उसका शरीर स्थिर और मन स्थिर होता है, वह अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है। परन्तु जब वह किसी अप्रिय रूप को दृष्टि से देखता है, तो वह उससे भयभीत नहीं होता, न ही डरता है, न ही निराश होता है, और उसके मन में कोई दुर्भावना नहीं होती। 69 उसका शरीर स्थिर और मन स्थिर होता है, अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है।

"इसके अलावा, कुंडलिया, जब किसी सुखद ध्वनि को कान से सुनता है... किसी सुखद गंध को नाक से सूंघता है... किसी सुखद स्वाद को जीभ से महसूस करता है... किसी सुखद स्पर्श वस्तु को शरीर से स्पर्श करता है... किसी सुखद मानसिक घटना को मन से अनुभव करता है, तो भिक्षु उसकी लालसा नहीं करता, न ही उससे उत्तेजित होता है, न ही उसके प्रति वासना उत्पन्न करता है। परन्तु किसी अप्रिय मानसिक घटना को मन से अनुभव करने पर भी वह उससे भयभीत नहीं होता, न ही डरता है, न ही निराश होता है, और न ही उसके मन में कोई दुर्भावना होती है। उसका शरीर स्थिर होता है और उसका मन स्थिर होता है, वह अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है।

"जब, कुंडलिया, किसी रूप को आँख से देखने के बाद, भिक्षु का शरीर स्थिर होता है और उसका मन स्थिर होता है, वह अंतर्मन से शांत और मुक्त होता है, सुखद और अप्रिय दोनों रूपों के संबंध में; जब कोई भिक्षु कान से ध्वनि सुनता है, नाक से गंध सूंघता है, जीभ से स्वाद का अनुभव करता है, शरीर से किसी वस्तु को स्पर्श करता है, मन से किसी मानसिक घटना को समझता है, तो उसका शरीर और मन स्थिर होता है, वह आंतरिक रूप से शांत और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की मानसिक घटनाओं (धर्म) के संबंध में पूर्णतः मुक्त होता है, तब उसकी इंद्रियों पर नियंत्रण इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाता है कि वह तीनों प्रकार के अच्छे आचरण को पूरा करता है।

और हे कुंडलिया, तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे ध्यान के चारों सिद्धांतों को पूरा करें? हे कुंडलिया, यहाँ भिक्षु शारीरिक दुराचार का त्याग करके अच्छे शारीरिक आचरण का विकास करता है; मौखिक दुराचार का त्याग करके अच्छे मौखिक आचरण का विकास करता है; मानसिक दुराचार का त्याग करके अच्छे मानसिक आचरण का विकास करता है। इसी प्रकार तीनों प्रकार के अच्छे आचरणों को विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे ध्यान के चारों सिद्धांतों को पूरा करें।

और हे कुंडलिया, ध्यान के चारों सिद्धांत कैसे विकसित और पोषित किए जाते हैं ताकि वे ज्ञान के सात कारकों को पूरा करें? हे कुंडलिया, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजानो) और ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह ध्यानमग्न होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धर्म) पर घटनाओं पर ध्यान लगाते हैं, वे पूर्णतः संबोधक (संपजानो) और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। इसी प्रकार ध्यान के चारों चरणों का विकास और संवर्धन होता है, जिससे ज्ञानोदय के सात कारक पूर्ण होते हैं।

"और हे कुंडलिया, ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन कैसे किया जाता है ताकि वे सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण कर सकें? यहाँ, हे कुंडलिया, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है... (इसी प्रकार अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए देखें 182-184)... वह समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (सरोध) पर आधारित है।" मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्वता। इसी प्रकार ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन होता है, जिससे सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।" (जैसा कि 184 में है)

यह सुनकर तपस्वी कुंडलिया ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने कई प्रकार से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे उलटी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर रहे हों, भटके हुए को रास्ता दिखा रहे हों, या दृष्टिहीन लोगों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों। मैं गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण में आए हुए एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

188. नुकीला घर (कुटागारा)

"भिक्षुओं, जिस प्रकार किसी ऊंचे भवन की सभी कड़ियाँ छत की चोटी की ओर झुकी होती हैं, उसी प्रकार जब कोई भिक्षु ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास करता है, तो वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और ऐसा कैसे होता है?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य शक्ति के ज्ञानोदय तत्व, पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके। (देखें 182-184)

---

189. उपवन
एक बार पूज्य उपवना और पूज्य सारिपुत्त, घोसीता उद्यान के कोसंबी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य उपवना के पास पहुँचे। उन्होंने उपवना का अभिवादन किया और जब अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र उपवना, क्या कोई भिक्षु स्वयं जान सकता है कि 'ध्यान (योनिसो) के द्वारा मैंने ज्ञान के सातों कारकों को इस प्रकार पूर्णतः सिद्ध कर लिया है कि वे सुखमय जीवन की ओर ले जाते हैं'?"

"हे सारिपुत्त, एक भिक्षु इसे स्वयं जान सकता है। हे मित्र, जब ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को जागृत किया जाता है, तो भिक्षु समझता है: 'मेरा मन पूर्णतः मुक्त (विमुत्त, विमुक्त) है; मैंने आलस्य और सुस्ती को जड़ से उखाड़ फेंका है और बेचैनी और पश्चाताप को पूरी तरह से दूर कर दिया है। मेरी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो गई है। मैं इसे एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में मानता हूँ, न कि सुस्ती से।' ... जब समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को जागृत किया जाता है, तो वह समझता है: 'मेरा मन पूर्णतः मुक्त है; मैंने आलस्य और सुस्ती को जड़ से उखाड़ फेंका है और बेचैनी और पश्चाताप को पूरी तरह से दूर कर दिया है। मेरी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो गई है। मैं इसे एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में मानता हूँ, न कि सुस्ती से।'

"हे मित्र, इसी प्रकार एक भिक्षु स्वयं जान सकता है:
'ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के द्वारा मैंने ज्ञानोदय के सातों कारकों को इस प्रकार पूर्णतः सिद्ध कर लिया है कि वे सुखमय जीवन की ओर ले जाते हैं।'" (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है)

---

190. उदय (1) (उप्पन्ना सं. उत्पन्न)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकते। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक... (इसी प्रकार धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) का ज्ञानोदय कारक... वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) का ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति (आनंद) का ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। (देखें 182-184) ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकते।

---

191. उत्पन्न होना (2)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक... (इसी प्रकार धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) का ज्ञानोदय कारक... वीर्य (ऊर्जावान) का ज्ञानोदय कारक... आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। (देखें 182-184) ज्ञानोदय के ये सात कारक, यदि विकसित और पोषित किए जाएं, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं होते।

(ii) तृतीय खंड (गिलानवाग्गो)
192. जीवित प्राणी (पण सं. प्राणि)

"भिक्षुओं, सभी जीवित प्राणी जो चारों मुद्राओं में धारण करते हैं - कभी चलते हैं, कभी खड़े होते हैं, कभी बैठते हैं, कभी लेटते हैं - वे सभी पृथ्वी पर आधारित और पृथ्वी से जुड़े हुए चारों मुद्राओं में धारण करते हैं। उसी प्रकार, सद्गुण (शील) पर आधारित और सद्गुण से जुड़े हुए, एक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है।

और वह ऐसा कैसे करता है?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य शक्ति के ज्ञानोदय तत्व, पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्गुणों पर आधारित, सद्गुणों में स्थापित होकर, ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन करता है। (देखें 182-184)

---

193. सूर्य की उपमा (1) (सूर्यउपमा1 सं. सूर्य-उपमा)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह ज्ञान के सात कारकों, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य के ज्ञानोदय तत्व, पीति, प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञान तत्व, प्रशब्धि और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन करता है। (देखें 182-184)

---

194. सूर्य की उपमा (2) (सूर्यउपमा 2 सं. सूर्य-उपमा)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह ज्ञान के सात कारकों, अर्थात् ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के उदय का अग्रदूत है। जब एक भिक्षु ध्यानमग्नता (मानसिकारा) में निपुण हो जाता है, तो उससे ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करने की अपेक्षा की जाती है। और

जो भिक्षु ध्यानमग्नता (मानसिकारा) में निपुण हो जाता है, वह ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य शक्ति के ज्ञानोदय तत्व, पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व और समाधि की अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है।) वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार ध्यान (योनिसो) में निपुण भिक्षु ज्ञानोदय के सात कारकों का विकास और संवर्धन करता है। (देखें 182-184)

---

195. आईएलएल (1) (गिलाना1 संस ग्लानी)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। 70 उस समय पूज्य महाकस्सपा पिप्पली गुफा में बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। शाम को भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और पूज्य महाकस्सपा से कहा,

"मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हैं, कस्सपा, मुझे आशा है कि आप ठीक हो रहे हैं। मुझे आशा है कि आपकी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, न कि उनका बढ़ना।"

"पूज्यवर, मैं स्वस्थ नहीं हूँ, मैं ठीक नहीं हो रहा हूँ। मुझमें तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, न कि उनका कम होना।"

"हे कस्सपा, मैंने ज्ञान प्राप्ति के इन सात कारकों का सही वर्णन किया है; इनका विकास और अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। वे कौन से सात कारक हैं? मैंने ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का सही वर्णन किया है; इसका विकास और

अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति (आनंद) के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाधि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का सही वर्णन किया है; (देखें) 182-184) जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान (अभिन्न), ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। हे कस्सपा, मैंने ज्ञानोदय के इन सात कारकों का सही वर्णन किया है; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। "

निश्चित रूप से, हे भगवान (बुद्ध), ये ज्ञानोदय के कारक हैं! निश्चित रूप से, हे सौभाग्यशाली (सुगतो), ये ज्ञानोदय के कारक हैं!"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न हुए और प्रसन्न हुए। और पूज्य महाकस्सपा उस बीमारी से ठीक हो गए। 71 इस प्रकार पूज्य महाकस्सपा अपनी बीमारी से ठीक हो गए।

---

196. आईएलएल (2) (गिलाना2 सं. ग्लानी)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उसी समय पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत पर बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। तब, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे... (ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार, केवल नामों में परिवर्तन है)... इस प्रकार पूज्य महामोग्गलाना अपनी बीमारी से ठीक हो गए। [81]

---

197. आईएलएल (3) (गिलाना3 सं. ग्लानी)
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान (बुद्ध) बीमार थे, अत्यंत कष्ट में थे। तब पूज्य महाचुंडा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य महाचुंडा से कहा,

"हे चुंडा, ज्ञान प्राप्ति के मंत्रों का पाठ करो।"

हे पूज्यवर, ज्ञानोदय के इन सात कारकों का भगवान (बुद्ध) द्वारा सही वर्णन किया गया है; इनका विकास और अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक भगवान (बुद्ध) द्वारा सही वर्णन किया गया है; इसका विकास और अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता के ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाधि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्ष) के ज्ञानोदय कारक का भगवान द्वारा सही वर्णन किया गया है।) (बुद्ध); (देखें 182-184) जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। हे पूज्यवर, आत्मज्ञान के इन सात कारकों का भगवान (बुद्ध) ने सही वर्णन किया है; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। "

हे चुंडा, ये निश्चित रूप से आत्मज्ञान के कारक हैं! हे चुंडा, ये निश्चित रूप से आत्मज्ञान के कारक हैं!"

पूज्य महाचुंडा ने यही कहा। गुरु ने इसकी पुष्टि की। और भगवान (बुद्ध) उस बीमारी से ठीक हो गए। इस प्रकार भगवान (बुद्ध) अपनी बीमारी से मुक्त हो गए।

---

198. गोइंग बियॉन्ड (परंगमा सं. परगम्य)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाते हैं। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीर्य के ज्ञानोदय कारक... पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक (देखें 182-184)... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाते हैं। (184 के समान)

(इस सूत्र से जुड़े श्लोक ऊपर 197 में दिए गए श्लोकों के समान हैं।)

---

199. उपेक्षित (विराद्ध)

"भिक्षुओं, जिन्होंने ज्ञानोदय के सात कारकों की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ज्ञानोदय के सात कारकों का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

वे सात कारक कौन से हैं? ध्यान का ज्ञानोदय कारक, धम्मविचय का ज्ञानोदय कारक, वीर्य का ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति का ज्ञानोदय कारक, शांति का ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक, और समभाव का ज्ञानोदय कारक... (देखें 182-184)

"भिक्षुओं, जिन्होंने इन सात कारकों की उपेक्षा की है... जिन्होंने ज्ञानोदय के इन सात कारकों का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।"

---

200. कुलीन या शाही (अरिया सं. आर्य)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होते हैं; ये उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाते हैं। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञानोदय कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक, समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक... उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (उपेक्षय) की ओर ले जाते हैं। (देखें 182-184)

---

201. निबिदा
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के इन सात कारकों को विकसित और पोषित करने से पूर्ण घृणा (निब्बिद), वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की प्राप्ति होती है। ये सात कारक कौन से हैं? ध्यान (सती), धम्मविचय, ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति), शांति (पसाधि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक... निर्वाण की ओर ले जाते हैं। (देखें 182-184)

(iii) उदयी
202. आत्मज्ञान के लिए (बोधया)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया। एक तरफ बैठकर उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'ज्ञान के कारक, ज्ञान के कारक।' इन्हें किस अर्थ में ज्ञान के कारक कहा जाता है?"

"भिक्षु, ये ज्ञानोदय की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञानोदय के कारक कहा जाता है। यहाँ, भिक्षु, व्यक्ति ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता के ज्ञानोदय कारक... आनंद के ज्ञानोदय कारक (पीति/प्रीति)... शांति के ज्ञानोदय कारक (पसाधि/प्रशब्धि)... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए भी यही बात लागू होती है।) व्यक्ति समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। ये सभी ज्ञानोदय की ओर ले जाते हैं, भिक्षु, इसलिए इन्हें ज्ञानोदय के कारक कहा जाता है।" ज्ञानोदय।" (देखें 182-184)

---

203. जागृति के लिए एक शिक्षण (बोज्जंगदेसाना सं. बोधयांग-देशना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान प्राप्ति के सात कारक सिखाऊंगा
। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के सात कारक क्या हैं?
ध्यान (सती), अवस्थाओं का विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा)। ये ज्ञान प्राप्ति के सात कारक हैं। (देखें 182-184)

---

204. एक आधार (थानिया)
भिक्षुओं द्वारा, उन धर्मों (गुणों, नियमों) पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो इंद्रिय-संबंधी (काम/यौन) वासना (राग) का आधार हैं, अनपेक्षित इंद्रिय-संबंधी इच्छा उत्पन्न होती है और उत्पन्न होती है और फैलती है। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने

(मानसिकारा करने) से जो द्वेष का आधार हैं, अनपेक्षित द्वेष उत्पन्न होता है और उत्पन्न होती है और फैलती है। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो आलस्य और सुस्ती का आधार हैं, अनपेक्षित आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होती है और उत्पन्न होती है और फैलती है। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो बेचैनी और पश्चाताप का आधार हैं, अनपेक्षित बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होते हैं और फैलते हैं। उन धर्मों पर बार-बार ध्यान लगाने (मानसिकारा करने) से जो संदेह का आधार हैं, अनपेक्षित संदेह उत्पन्न होता है और उत्पन्न होता है और फैलता है।

भिक्षुओं, ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक के आधार धम्मों पर बार-बार ध्यान (मानसिकारा) देने से, ध्यान का अजन्मा ज्ञानोदय कारक उत्पन्न होता है और उत्पन्न ज्ञानोदय कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक के आधार धम्मों पर बार-बार ध्यान (मानसिकारा) देने से, समता (उपेक्खा) का अजन्मा ज्ञानोदय कारक उत्पन्न होता है और उत्पन्न ज्ञानोदय कारक पूर्ण हो जाता है। विकास द्वारा।" (देखें 182-184)

---

205. अध्यात्मिक जागरूकता (अयोनिसोमंसिकारा)
भिक्षुओं, जब कोई ध्यानहीन (अयोनिसो) मनसिकारा करता है, तो अजन्मी कामुक (यौन) इच्छा उत्पन्न होती है और उत्पन्न कामुक इच्छा बढ़ती और फैलती है; जब कोई ध्यानहीन मनसिकारा करता है, तो अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती है और उत्पन्न दुर्भावना बढ़ती और फैलती है; जब कोई ध्यानहीन मनसिकारा करता है, तो अजन्मी बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप बढ़ते और फैलते हैं; जब कोई ध्यानहीन मनसिकारा करता है, तो अजन्मी शंका उत्पन्न होती है और उत्पन्न शंका बढ़ती और फैलती है। साथ ही, ध्यान का अजन्मा ज्ञान तत्व (सती) उत्पन्न नहीं होता और ध्यान का उत्पन्न ज्ञान तत्व (समाधि) समाप्त हो जाता है... समता का अजन्मा ज्ञान तत्व (उपेक्खा) उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न ज्ञान तत्व (समाधि) समभाव (उपेक्खा) समाप्त हो जाता है।

"जब कोई ध्यानपूर्ण (योनिसो) चेतना (मानसिकारा) करता है, हे भिक्षुओं, तो अनवजह कामुक इच्छा उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न हुई कामुक इच्छा का त्याग हो जाता है। जब कोई ध्यानपूर्ण चेतना करता है, तो अनवजह दुर्भावना... आलस्य और सुस्ती... बेचैनी और पश्चाताप... संदेह उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न हुआ संदेह का त्याग हो जाता है।" इसके अलावा, ध्यान का अजन्मा ज्ञान तत्व उत्पन्न होता है और विकास द्वारा ध्यान का प्रकट ज्ञान तत्व पूर्ण हो जाता है (इसी प्रकार, धम्मविचय के ज्ञान तत्व, वीरता के ज्ञान तत्व, परमानंद के ज्ञान तत्व, शांति के ज्ञान तत्व, प्रशब्धि के ज्ञान तत्व, समाधि की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए भी यही बात लागू होती है)। समभाव का अजन्मा ज्ञान तत्व उत्पन्न होता है और विकास द्वारा समभाव का प्रकट ज्ञान तत्व पूर्ण हो जाता है (देखें 182-184)।

---

206. अपरिहानिया (न हारना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें सात धर्म सिखाऊंगा जो हानि का कारण नहीं बनते। 72 ध्यान से सुनो...

“और हे भिक्षुओं, वे सात धर्म क्या हैं जो हानि का कारण नहीं बनते? वे हैं: ज्ञान के सात कारक। कौन से सात? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक। ये वे सात धर्म हैं जो हानि का कारण नहीं बनते।” (देखें 182-184)

---

207. तृष्णा का नाश (तनखखाय सं. तृष्णा-क्षय)
"भिक्षुओं, तृष्णा के नाश (तन्हा संस. तृष्णा) की ओर ले जाने वाले मार्ग और तरीके का विकास करो। और तृष्णा के नाश की ओर ले जाने वाला मार्ग और तरीका क्या है? यह है: ज्ञान के सात कारक। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक।" (देखें 182-184)

यह सुनकर, पूज्य उदय ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"पूज्यवर, ज्ञान के सात कारकों का विकास और संवर्धन कैसे किया जाता है ताकि वे तृष्णा के नाश की ओर ले जाएं?"

"यहाँ, उदयि, एक भिक्षु (सन्यासी) ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है। जब वह ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है,

जो एकांत पर आधारित है... द्वेष रहित, तो तृष्णा का त्याग हो जाता है। तृष्णा के त्याग से कर्म का त्याग हो जाता है। कर्म के त्याग से दुख का त्याग हो जाता है...

(इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व के लिए... वीरता के ज्ञानोदय तत्व के लिए... आनंद के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन अवस्था)।

"वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है। जब वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत पर आधारित है... बिना द्वेष के, तो तृष्णा का त्याग हो जाता है। तृष्णा के त्याग से कर्म का त्याग हो जाता है। कर्म के त्याग से दुख का त्याग हो जाता है। (देखें 182-184)

"इस प्रकार, उदयि, तृष्णा के विनाश (खयाय/क्षय) के साथ कर्म का विनाश होता है; कर्म के विनाश के साथ दुख का विनाश होता है।"

---

208. तृष्णा की समाप्ति (तन्हा-निरोध सं. तृष्णा-निरोध)
भिक्षुओं, तृष्णा के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का विकास करो। और तृष्णा के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? यह है: ज्ञान के सात कारक। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक। और भिक्षुओं

, यह कैसे संभव है कि ज्ञान के सात कारक, जब विकसित और अभ्यास किए जाते हैं, तो तृष्णा के निवारण (तृष्णा) की ओर ले जाते हैं?

"यहाँ, भिक्षु ध्यान के ज्ञान तत्व, धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) के ज्ञान तत्व, (इसी प्रकार ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) की अवस्था) के ज्ञान तत्व, और समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व का विकास करते हैं, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होते हैं। (देखें 182-184) जब ज्ञान के सातों कारकों का इस प्रकार विकास और संवर्धन किया जाता है, तभी वे तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) के निरोध की ओर ले जाते हैं।"

---

209. प्रवेश में भाग लेना (निब्बेधभागिया)
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञानोदय का मार्ग सिखाऊंगा। 73 ध्यान से सुनो....

"और हे भिक्षुओं, ज्ञानोदय का मार्ग क्या है? वह है: ज्ञानोदय के सात कारक। वे सात कौन से हैं?" ध्यान का ज्ञानोदय कारक (सती), अवस्थाओं के विवेक का ज्ञानोदय कारक (धम्मविचाय), ऊर्जा शक्ति का ज्ञानोदय कारक (वीर्य), परमानंद का ज्ञानोदय कारक (पीति/प्रीति), शांति का ज्ञानोदय कारक (पसद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानोदय कारक, समभाव का ज्ञानोदय कारक (उपेक्खा)।" (देखें 182-184)

यह सुनकर पूज्य उदय ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"पूज्यवर, ज्ञानोदय के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे बोधगम्यता की ओर ले जाएं?"

"यहाँ, उदय, एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है।" ध्यान की प्रबुद्धता से विकसित मन के साथ, वह लोभ (राग) के उस समूह में प्रवेश करता है और उसे विखंडित करता है जिसमें वह पहले कभी प्रवेश नहीं कर पाया था; वह घृणा (दोष/द्वेष) के उस समूह में प्रवेश करता है और उसे विखंडित करता है जिसमें वह पहले कभी प्रवेश नहीं कर पाया था; वह मोह के उस विशाल समूह को भेदता और विखंडित करता है जिसे उसने पहले कभी भेदा या विखंडित नहीं किया था...

वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है; जो विशाल, उदात्त, असीम और द्वेष रहित है। समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित कर चुके मन से वह राग के उस विशाल समूह को भेदता और विखंडित करता है... द्वेष के उस विशाल समूह को भेदता और विखंडित करता है जिसे उसने पहले कभी भेदा या विखंडित नहीं किया था। (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है)

"हे उदयी, जब ज्ञान के सात कारक इस प्रकार विकसित और पोषित होते हैं, तभी वे भेदन की ओर ले जाते हैं।"

210. एक धम्म (एकधम्म सं. एक-धर्म)
भिक्षुओं, मुझे ऐसा कोई दूसरा धर्म (गुण, नियम) नहीं दिखता जो विकसित और अभ्यास करने पर उन धर्मों (गुणों, नियमों) के त्याग की ओर ले जाए जो बंधनकारी हैं, सिवाय इसके: ज्ञान के सात कारक। वे कौन से सात कारक हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, और समभाव का ज्ञान कारक। (जैसा कि 184 में है)

"और हे भिक्षुओं, ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाता है ताकि वे बंधनकारी धर्मों के त्याग की ओर ले जाएं?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। (इसी प्रकार अन्य भिक्षु भी) वह समभाव के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। जब ज्ञानोदय के सातों कारक इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तभी वे बंधनकारी धर्मों के त्याग की ओर ले जाते हैं।

भिक्षुओं, वे कौन से धर्म हैं जो बंधन उत्पन्न करते हैं? आँख एक धर्म है जो बंधन उत्पन्न करता है; यहीं से ये बंधन, बेड़ियाँ और जकड़न उत्पन्न होती हैं। कान एक धर्म है जो बंधन उत्पन्न करता है (नाक, जीभ, स्वाद आदि के लिए भी यही बात लागू होती है)। मन एक धर्म है जो बंधन उत्पन्न करता है; यहीं से ये बंधन, बेड़ियाँ और जकड़न उत्पन्न होती हैं। इन्हें ही बंधन उत्पन्न करने वाले धर्म कहा जाता है।

211. उदयी
एक बार भगवान (बुद्ध) शुम्भों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शुम्भों का एक नगर था जिसका नाम सेदक था। तब पूज्य उदयि भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है कि भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरी भक्ति और श्रद्धा, तथा लज्जा और अपराध के भय ने मुझे कितना सहारा दिया है। क्योंकि हे पूज्यवर, अतीत में जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे धम्म (मार्ग, नियम) या संघ (भाईचारा) की अधिक चिंता नहीं थी। परन्तु जब मैंने भगवान (बुद्ध) के प्रति अपनी भक्ति और श्रद्धा, तथा लज्जा और अपराध के भय पर विचार किया, तब मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला गया। भगवान (बुद्ध) ने मुझे धम्म इस प्रकार सिखाया: 'रूप ऐसा है, उत्पत्ति ऐसी है, क्षय ऐसा है; वेदना ऐसी है... बोध ऐसा है... संस्कार ऐसे हैं... चेतना ऐसी है, उत्पत्ति ऐसी है, इसका बीत जाना।'

"फिर, पूज्यवर, जब मैं पांच स्कंधों (खंड संस्कृत: स्कंध) के आरोहण और हानि के साथ एक खाली कुटिया में रह रहा था, जो आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) के अधीन थे, तब मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख है'; मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख का मूल है'; मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण (निरोध) है'; मैंने प्रत्यक्ष रूप से जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' पूज्यवर, मैंने धम्म में प्रवेश कर लिया है और वह मार्ग प्राप्त कर लिया है, जिसे विकसित और पोषित करने पर, उचित मार्ग पर रहते हुए, मैं ऐसी अवस्था में पहुँच जाऊँगा कि मैं समझ जाऊँगा:
'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

मैंने ध्यान (सती) का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसे विकसित और पोषित करने पर, उचित मार्ग पर रहते हुए, मैं ऐसी अवस्था में पहुँच जाऊँगा कि मैं समझ जाऊँगा: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था का कोई अस्तित्व नहीं है।' (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञान के लिए... वीरता के ज्ञान के लिए... आनंद के ज्ञान के लिए... शांति के ज्ञान के लिए... समाधि की अवस्था के लिए)। मैंने समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसे विकसित और पोषित करने पर, उचित मार्ग पर रहते हुए, मैं ऐसी अवस्था में पहुँच जाऊँगा कि मैं समझ जाऊँगा: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है... इस अवस्था का कोई अस्तित्व नहीं है।' इस अवस्था के लिए अब और नहीं।' (देखें 182-184)

"यह, आदरणीय महोदय, वह मार्ग है जो मैंने प्राप्त किया है, जो..." मुझे आगे ले जाएगा... ऐसी स्थिति तक कि मैं समझ सकूंगा:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है... इस अवस्था का अब कोई महत्व नहीं है।"

"अच्छा, अच्छा, उदयि! सचमुच, उदयि, यही वह मार्ग है जो तुमने प्राप्त किया है, और जब तुम इसे विकसित और पोषित कर लोगे, तो यह तुम्हें उचित मार्ग पर रहते हुए ऐसी अवस्था की ओर ले जाएगा कि तुम समझ जाओगे: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था का अब कोई महत्व नहीं है।'"

(iv) द हिंडरेंसेस सेक्शन (निवारणावग्गो)

212. लाभकारी (1) (कुसल1 सं. कुशल)

भिक्षुओं, जो भी लाभकारी अवस्थाएँ हैं (कुशल, संस्कृत: कुशल), लाभकारी अवस्थाओं का अनुभव करने वाली अवस्थाएँ, लाभकारी अवस्थाओं से संबंधित अवस्थाएँ, सभी जागरूकता में निहित हैं (अप्पमदा), जागरूकता में अभिसरित होती हैं, और जागरूकता को उनमें प्रमुख घोषित किया गया है। जब कोई भिक्षु जागरूक होता है, तो उससे ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, एक जागरूक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु ध्यान (सती), अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा शक्ति (वीर्य), परमानंद (पीति/प्रीति), शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) अवस्था और समभाव (उपेक्खा) का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक जागरूक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास करता है। (जैसा कि 184 में है)

---

213. लाभकारी (2) (कुसल2 सं. कुशल)

भिक्षुओं, सभी लाभकारी अवस्थाएँ (कुशल, संस्कृत: कुशल), लाभकारी अवस्थाओं में भाग लेना, लाभकारी अवस्थाओं से संबंधित होना, ये सभी ध्यान (योनिसो) में निहित हैं, ध्यान (मानसिकारा) में अभिसरित होती हैं और ध्यान (मानसिकारा) को उनमें प्रमुख घोषित किया गया है। जब कोई भिक्षु ध्यान (योनिसो) में निपुण हो जाता है, तो उससे ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करने की अपेक्षा की जाती है।

और हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) में निपुण भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को कैसे विकसित और पोषित करता है?... (पिछली 212 की तरह ही।)

---

214. भ्रष्टाचार (उपकिलेसा)

भिक्षुओं, सोने में ये पाँच प्रकार के दोष (उपकिलेष) होते हैं, जिनसे दूषित होने पर सोना न तो लचीला होता है, न ही उपयोग में आसान होता है, न ही चमकदार होता है, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। वे पाँच कौन से दोष हैं? लोहा सोने का दोष (उपकिलेष) है, जिससे दूषित होने पर सोना न तो लचीला होता है, न ही उपयोग में आसान होता है, न ही चमकदार होता है, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। तांबा सोने का दोष (उपकिलेष) है... टिन सोने का दोष (उपकिलेष) है... सीसा सोने का दोष (उपकिलेष) है... चांदी सोने का दोष (उपकिलेष) है... ये सोने के पाँच दोष (उपकिलेष) हैं, जिनसे दूषित होने पर सोना न तो लचीला होता है, न ही उपयोग में आसान होता है, न ही चमकदार होता है, बल्कि भंगुर और काम के लिए अनुपयुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, मन में ये पाँच प्रकार के दोष (उपकिलेष) होते हैं, जिनसे दूषित होने पर मन न तो लचीला होता है और न ही न तो लचीला, न ही तेजस्वी, बल्कि भंगुर और विकारों के नाश के लिए समाधि (सम्मोहन) अवस्था में उचित रूप से न होना। वे पाँच क्या हैं? कामुक इच्छा मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है, जिससे दूषित मन न तो लचीला होता है, न ही लचीला, न ही तेजस्वी, बल्कि भंगुर और विकारों के नाश के लिए समाधि (सम्मोहन) अवस्था में उचित रूप से न होना। [द्वेष मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है... आलस्य और सुस्ती मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है... बेचैनी और पश्चाताप मन का एक भ्रष्टाचार (उपकिलेष) है...] संदेह मन का एक विकार (उपकिलेसा) है....] 78 ये मन के पाँच विकार (उपकिलेसा) हैं, जिनसे दूषित मन न तो लचीला होता है, न ही सुगम और न ही तेजस्वी, बल्कि भंगुर और विकारों के नाश के लिए समाधि (तल्लीनता) की सही अवस्था में नहीं होता।

---

215. अनुपक्किलेसा

भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक मन की बाधाओं, अवरोधों और विकारों से मुक्ति हैं; इनका विकास और अभ्यास करने से सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति होती है। वे सात कौन से हैं? भिक्षुओं, ध्यान (सती) का ज्ञान कारक बाधाओं से मुक्ति है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञान कारक... वीरता के ज्ञान कारक... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान कारक... शांति (पसाधि/प्रशब्धि) के ज्ञान कारक... समाधि (सम्मोहन) के ज्ञान कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक मन की बाधाओं, अवरोधों और विकारों से मुक्ति हैं; इनका विकास और अभ्यास करने से सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति होती है।) सच्चे ज्ञान और

मुक्ति का फल। ज्ञानोदय के ये सात कारक मन की बाधाओं, अवरोधों और विकारों से मुक्ति हैं; जब इनका विकास और पोषण किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। (जैसा कि 184 में है)

---

216. अध्यात्मिक जागरूकता (अयोनिसोमंसिकारा)
भिक्षुओं, जब कोई ध्यानहीन अवस्था में (मानसिकारा में) होता है, तो अजन्मी कामुक इच्छा उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है; अजन्मी दुर्भावना उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है; अजन्मी आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होती है और बढ़ती और फैलती है; अजन्मी बेचैनी और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं और बढ़ते और फैलते हैं; अजन्मा संदेह उत्पन्न होता है और बढ़ता और फैलता है।

---

217. ध्यान संबंधी जागरूकता (योनिसोमनसिकारा)
भिक्षुओं, जब कोई ध्यानमग्न अवस्था (मानसिकारा) में होता है, तो ध्यान का अजन्मा ज्ञान तत्व (सती) उत्पन्न होता है और ध्यान का उत्पन्न ज्ञान तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के ज्ञान तत्व... वीरता के ज्ञान तत्व... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान तत्व... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए भी यही बात लागू होती है)। समभाव (उपेक्खा) का अजन्मा ज्ञान तत्व उत्पन्न होता है और समभाव (उपेक्खा) का उत्पन्न ज्ञान तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है। (देखें 182-184)

---

218. ज्ञानोदय (बोधि)
भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो विकास की ओर ले जाते हैं, हानि की ओर नहीं। वे सात कौन से हैं?

ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा शक्ति (वीर्य) का ज्ञानोदय कारक, परमानंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक, और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक। ज्ञानोदय के ये सात कारक, जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो विकास की ओर ले जाते हैं, हानि की ओर नहीं। (जैसा कि 184 में है)

---

219. अवरोध/अड़चनें (अवरोधन)
भिक्षुओं, मन में ये पाँच अवरोध, बाधाएँ और दोष (उपकिलेसा) हैं, जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करते हैं। ये पाँच क्या हैं? कामुक इच्छा एक अवरोध, बाधा और दोष (उपकिलेसा) है, जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करती है। द्वेष एक अवरोध है... आलस्य और सुस्ती एक अवरोध है... बेचैनी और पश्चाताप एक अवरोध है... संदेह एक अवरोध है... जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करता है। ये मन के पाँच अवरोध, बाधाएँ और दोष (उपकिलेसा) हैं, जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करते हैं।

भिक्षुओं, ज्ञानोदय के ये सात कारक हैं जो मन के अवरोध, बाधा और दोष नहीं हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। वे सात कौन से हैं?
ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक एक अवरोधहीनता है.....
(इसी प्रकार अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए।)
समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक एक अवरोधहीनता है (देखें 182-184)।
ये ज्ञानोदय के सात कारक हैं जो मन के अवरोधहीन, बाधाहीन और विकृतियों से मुक्त हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं।"

हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य उत्सुकतापूर्वक धम्म (मार्ग, नियम) सुनता है, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है, और अपना पूरा मन उसमें लगाता है, तब उसमें पाँच बाधाएँ नहीं होतीं; उस समय ज्ञानोदय के सात कारक विकास द्वारा पूर्ण हो जाते हैं।

पाँच बाधाएँ
"और वे पाँच बाधाएँ कौन सी हैं जो उस समय नहीं होतीं?
1. उस समय कामुक इच्छा की बाधा नहीं होती;
2. द्वेष की बाधा...
3. आलस्य और सुस्ती की बाधा...

4. बेचैनी और पश्चाताप की बाधा...
5. उस समय संदेह की बाधा नहीं होती।
ये पाँच बाधाएँ हैं जो उस समय नहीं होतीं।"

और वे सात कारक कौन से हैं जो उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होते हैं? ध्यान का कारक उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का कारक... वीरता (वीर्य) का कारक... परमानंद का कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का कारक... समाधि (सम्मोहन) का कारक)... समभाव (उपेक्खा) का कारक उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होता है। ये वे सात कारक हैं जो उस अवसर पर विकास द्वारा पूर्ण होते हैं।

"हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य उत्सुकतापूर्वक धम्म सुनता है, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है, और अपना पूरा मन उसमें लगाता है, तो उस समय उसमें ये पाँच बाधाएँ नहीं होतीं; उस अवसर पर ज्ञानोदय के ये सात कारक विकास के माध्यम से पूर्णता की ओर अग्रसर होते हैं।"

---

220. वृक्ष (रुक्खा)
भिक्षुओं, कुछ विशाल वृक्ष होते हैं जिनके बीज छोटे और तने विशाल होते हैं, वे अन्य वृक्षों को घेरे रहते हैं, और जिन वृक्षों को वे घेरते हैं वे झुक जाते हैं, मुड़ जाते हैं और फट जाते हैं। और वे विशाल वृक्ष कौन से हैं जिनके बीज छोटे और तने विशाल होते हैं? असत्थ, बरगद, पिलक्ख, उदुम्बर, कच्छक और कपित्थन: ये वे विशाल वृक्ष हैं जिनके बीज छोटे और तने विशाल होते हैं, वे अन्य वृक्षों को घेरे रहते हैं, और जिन वृक्षों को वे घेरते हैं वे झुक जाते हैं, मुड़ जाते हैं और फट जाते हैं। 81 इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब यहाँ कोई कुलवासी इंद्रिय सुखों को त्यागकर गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में प्रवेश करता है, तो वह उन्हीं इंद्रिय सुखों के कारण, या उनसे भी बदतर अन्य सुखों के कारण झुक जाता है, मुड़ जाता है और फट जाता है।

ये पाँच, भिक्षुओं, अवरोध, बाधाएँ, मन को घेरने वाले और मन को कमजोर करने वाले हैं। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न)। वे पाँच क्या हैं? कामुक इच्छा एक अवरोध है, मन को घेरने वाली एक बाधा है, जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करती है। द्वेष... आलस्य और सुस्ती... बेचैनी और पश्चाताप... संदेह एक अवरोध है... जो पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करता है। ये पाँच अवरोध हैं, बाधाएँ हैं, जो मन को घेरती हैं और पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को कमजोर करती हैं।

भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक मन को अवरुद्ध नहीं करते, बाधा नहीं डालते और घेरे में नहीं लाते; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। कौन से सात? ध्यान (सती) का ज्ञान प्राप्ति कारक अवरोध नहीं है... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान प्राप्ति कारक अवरोध नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है)... ज्ञान प्राप्ति के ये सात कारक मन को अवरुद्ध नहीं करते, बाधा नहीं डालते और घेरे में नहीं लाते; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं।

---

221. अवरोध (निवारण)
भिक्षुओं, ये पाँच बाधाएँ अंधत्व उत्पन्न करती हैं, दृष्टिहीनता और ज्ञान की कमी का कारण बनती हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) के लिए हानिकारक हैं, कष्ट की ओर ले जाती हैं और निर्वाण से दूर ले जाती हैं। ये पाँच कौन सी हैं? कामुक इच्छा की बाधा अंधत्व उत्पन्न करती है... द्वेष की बाधा... आलस्य और सुस्ती की बाधा... बेचैनी और पश्चाताप की बाधा... संदेह की बाधा अंधत्व उत्पन्न करती है... निर्वाण से दूर ले जाती है। ये पाँच बाधाएँ अंधत्व उत्पन्न करती हैं, दृष्टिहीनता और ज्ञान की कमी का कारण बनती हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) के लिए हानिकारक हैं, कष्ट की ओर ले जाती हैं और निर्वाण से दूर ले जाती हैं।

भिक्षुओं, ज्ञान के ये सात कारक दृष्टि उत्पन्न करते हैं, ज्ञान उत्पन्न करते हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) के विकास को बढ़ावा देते हैं, कष्ट से मुक्त करते हैं और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। ये सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक दृष्टि उत्पन्न करता है... (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञानोदय कारक... आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञानोदय कारक)... समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक निर्वाण की ओर ले जाने वाली दृष्टि उत्पन्न करता है। (जैसा कि अनुच्छेद 184 में है) ज्ञानोदय के ये सात कारक दृष्टि उत्पन्न करते हैं, ज्ञान उत्पन्न करते हैं, प्रज्वलित अंतर्दृष्टि (पन्न) के विकास को बढ़ावा देते हैं, विक्षिप्तता से मुक्त करते हैं और निर्वाण की ओर ले जाते हैं।

(v) व्हील-टर्निंग मोनार्क सेक्शन (कैक्कवट्टीवागो संस। चक्रवर्ती-वर्ग)

222. भेदभाव (विधा)

सावत्थी में। भिक्षुओं, अतीत में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने तीन भेदों का त्याग किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास किया था। भविष्य में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण तीन भेदों का त्याग करेंगे, वे सभी ऐसा इसलिए करेंगे क्योंकि उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास किया होगा। वर्तमान में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण तीन भेदों का त्याग करेंगे, वे सभी ऐसा इसलिए करेंगे क्योंकि उन्होंने ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास किया होगा। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, परमानंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक। (देखें 182-184) अतीत के ब्राह्मण... भविष्य के ब्राह्मण... वर्तमान के ब्राह्मण तीनों भेदों का त्याग इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने ज्ञानोदय के इन सात कारकों को विकसित और पोषित किया है।

---

223. चक्रवर्ती सम्राट (चक्रवर्ती)

भिक्षुओं, चक्र घुमाते हुए सम्राट के प्रकट होने के साथ ही सात रत्न प्रकट होते हैं। वे कौन से सात रत्न हैं? चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, रत्न रत्न, स्त्री रत्न, प्रबंधक रत्न और सेनापति रत्न प्रकट होते हैं। 83

"तथागत, भिक्षुओं, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ ही ज्ञान के कारकों के सात रत्न प्रकट होते हैं। वे कौन से सात रत्न हैं? ध्यान (सती) के ज्ञान कारक रत्न प्रकट होते हैं।" (इसी प्रकार, धम्मविचय (अवस्थाओं के भेद) के ज्ञानोदय कारक के लिए... वीरता (ऊर्जावान शक्ति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... पीति/प्रीति (आनंद) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए)... समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का रत्न (देखें 182-184)। तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति के प्रकट होने के साथ ही, ज्ञानोदय के इन सात रत्नों का प्रकटीकरण होता है।

---

224. मारा (सं. मृत्युदेव या कामदेव)

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें शैतान की सेना को पराजित करने का मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो...

और हे भिक्षुओं, शैतान की सेना को पराजित करने का मार्ग क्या है? यह ज्ञान के सात कारक हैं। वे सात कौन से हैं? ध्यान (सती) का ज्ञान कारक, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान कारक, ऊर्जा शक्ति (वीर्य) का ज्ञान कारक, आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञान कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञान कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था का ज्ञान कारक, और समभाव (उपेक्खा) का ज्ञान कारक।"

---

225. अप्रकाशित (दुप्पन्ना सं. दुष्-प्रज्ञा)

फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया और
उनसे बोला,

"हे पूज्यवर, लोग कहते हैं, 'अज्ञानी मंदबुद्धि।' हे पूज्यवर, किसी को 'अज्ञानी मंदबुद्धि' क्यों कहा जाता है?" भगवान ने जवाब दिया, "भिक्षुओं

, क्योंकि किसी ने ज्ञान के सात गुणों को विकसित और पोषित नहीं किया है, इसलिए उसे 'अज्ञानी मंदबुद्धि' कहा जाता है।" वे सात कौन से हैं? ध्यान का ज्ञानोदय कारक (सती), अवस्थाओं के विवेक का ज्ञानोदय कारक (धम्मविचय), ऊर्जा की शक्ति का ज्ञानोदय कारक (वीर्य), परमानंद का ज्ञानोदय कारक (पीति/प्रीति), शांति का ज्ञानोदय कारक (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि की अवस्था का ज्ञानोदय कारक और समभाव का ज्ञानोदय कारक (उपेक्खा)। (देखें 182-184) इन सात ज्ञानोदय कारकों को विकसित और पोषित न करने के कारण ही व्यक्ति को 'अज्ञानी मंदबुद्धि' कहा जाता है।

---

226. प्रबुद्ध-व्यावहारिक (पन्नवंता सं. प्रज्ञा-वंत)

"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान (पन्नवंत) और सजग (अप्पमदा), प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान और सजग।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार किसी को 'प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान और सजग' कहा जाता है?"

"भिक्षुओं, ज्ञानोदय के सात कारकों को विकसित और पोषित करने के कारण ही किसी को 'प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टिवान और सजग' कहा जाता है। वे सात कारक कौन से हैं?" (जैसा कि पिछले प्रश्न क्रमांक 225 में है)

227. गरीब (दलिद्दा सं. दरिद्र)
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'गरीब, गरीब।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार से कोई 'गरीब' कहलाता है?"

"भिक्षुओं, जो व्यक्ति ज्ञान के सात कारकों का विकास और अभ्यास नहीं करता, उसे 'गरीब' कहा जाता है। वे कौन से सात कारक हैं?" (जैसा कि 184 में और जैसा कि पिछले प्रश्न में है)

228. समृद्ध
"आदरणीय महोदय, कहा जाता है, 'समृद्ध, समृद्ध।' आदरणीय महोदय, किस प्रकार से कोई 'समृद्ध' कहलाता है?"

"भिक्षुओं, सात ज्ञान के कारकों को विकसित और पोषित करने के कारण ही कोई 'समृद्ध' कहलाता है। वे कौन से सात कारक हैं?" (जैसा कि 225 में है)

229. सूर्य (आदित्य के बिना)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षु के लिए यह ज्ञान के सात गुणों, अर्थात् अच्छी मित्रता के उदय का अग्रदूत है। जब किसी भिक्षु का कोई अच्छा मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह ज्ञान के सात गुणों का विकास और अभ्यास करेगा।

और एक भिक्षु जिसका कोई अच्छा मित्र हो, वह ज्ञान के सात गुणों का विकास और अभ्यास कैसे करता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक, वीर्य के ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक, शांति के ज्ञानोदय कारक, प्रशब्धि के ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) के ज्ञानोदय कारक के लिए भी यही बात लागू होती है)। वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है (जैसा कि 184 में है), जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। इसी प्रकार एक भिक्षु, जिसका एक अच्छा मित्र होता है, ज्ञानोदय के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है।

230. आंतरिक कारक (अज्जट्टिकंगा)
भिक्षुओं, आंतरिक कारकों के संदर्भ में, मुझे ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मनसिकारा) के अलावा कोई अन्य कारक इतना सहायक नहीं दिखता जितना यह। जब कोई भिक्षु ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मनसिकारा) में निपुण हो जाता है, तो यह अपेक्षित है कि वह ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करेगा। (कारक 184 के अनुसार)

231. बाह्य कारक (बहिरंगा)
भिक्षुओं, बाह्य कारकों के संदर्भ में, मुझे सात ज्ञानोदय गुणों के विकास में इससे अधिक सहायक कोई अन्य कारक नहीं दिखता: उत्तम मित्रता। जब किसी भिक्षु का कोई उत्तम मित्र होता है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह सात ज्ञानोदय गुणों का विकास और संवर्धन करेगा। (कारक 184 के अनुसार)

(vi) चर्चाएँ (सकच्च्यावग्गो)
232. पोषण (आहार)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान प्राप्ति के पाँच अवरोधों और सात कारकों के संबंध में पोषण और अपोष सिखाऊँगा। ध्यान से सुनो...

(i. अवरोधों के लिए पोषण) 84

"और हे भिक्षुओं, अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, सौंदर्य का कारण (निमित्त) है: उस पर बार-बार ध्यानहीन (अयोनिसो) ध्यान (मानसिकारा) देना अजन्मी कामुक इच्छा के उत्पन्न होने और उत्पन्न कामुक इच्छा के बढ़ने और विस्तार के लिए पोषण है।"

भिक्षुओं, अजन्मी दुर्भावना के उत्पन्न होने और उत्पन्न दुर्भावना के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, घृणा उत्पन्न करने वाला निमित्त है: बार-बार उसका ध्यान न लगाकर मनसिकारा करना अजन्मी दुर्भावना के उत्पन्न होने और उत्पन्न दुर्भावना के बढ़ने और फैलने का पोषण है। भिक्षुओं, अजन्मी

आलस्य और सुस्ती के उत्पन्न होने और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, असंतोष, सुस्ती, आलस्य, भोजन के बाद की नींद, मन की सुस्ती है: बार-बार उनका ध्यान न लगाकर मनसिकारा करना अजन्मी आलस्य और सुस्ती के उत्पन्न होने और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती के बढ़ने और फैलने का पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप के उत्पन्न होने और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, मन की अस्थिरता है: इस पर बार-बार ध्यानहीन (अयोनिसो) ध्यान (मानसिकारा) देना अजन्मे बेचैनी और पश्चाताप के उत्पन्न होने और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप के बढ़ने और फैलने का पोषण है।

भिक्षुओं, अजन्मे संदेह के उत्पन्न होने और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण क्या है? भिक्षुओं, संदेह के आधार धर्म (गुण, नियम) हैं: उन पर बार-बार ध्यानहीन (अयोनिसो) ध्यान (मानसिकारा) देना अजन्मे संदेह के उत्पन्न होने और उत्पन्न संदेह के बढ़ने और फैलने का पोषण है।

(ii. ज्ञानोदय के कारकों के लिए पोषक तत्व)

"हे भिक्षुओं, ध्यान (सती) के अजन्मे ज्ञानोदय कारक के उद्भव और प्रकट ध्यान के ज्ञानोदय कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषक तत्व क्या है? हे भिक्षुओं, ऐसे धर्म हैं जो ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा करना ही ध्यान के अजन्मे ज्ञानोदय कारक के उद्भव और प्रकट ध्यान के ज्ञानोदय कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषक तत्व है। 8"

"हे भिक्षुओं, अजन्मे धम्मविचय ज्ञान के उत्पन्न होने और उत्पन्न धम्मविचय ज्ञान के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) और हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ, निम्न और उच्च अवस्थाएँ, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ और उनके विपरीत अवस्थाएँ हैं: इन सभी का बार-बार ध्यान करना (योनिसो) और मानसिक चिंतन करना ही अजन्मे धम्मविचय ज्ञान के उत्पन्न होने और उत्पन्न धम्मविचय ज्ञान के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण है। 86

"हे भिक्षुओं, अजन्मे वीर्य-शक्ति ज्ञान के उत्पन्न होने और..." क्या जागृत ऊर्जा-शक्ति के प्रबुद्धता कारक के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त होती है? हे भिक्षुओं, उत्तेजना का तत्व (धातु), प्रयास का तत्व (धातु), परिश्रम का तत्व (धातु) मौजूद हैं: इन तत्वों को बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता प्रदान करना ही "अपरिवर्तित ऊर्जा-शक्ति के प्रबुद्धता कारक के उदय और जागृत ऊर्जा-शक्ति के प्रबुद्धता कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है।" 87

"और हे भिक्षुओं, अपरिवर्तित आनंद (पीति/प्रीति) के प्रबुद्धता कारक के उदय और जागृत आनंद के प्रबुद्धता कारक के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है?" भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो आनंद के प्रबुद्धता कारक का आधार हैं: उन पर बार-बार ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा करना, आनंद के अजन्मे प्रबुद्धता कारक के उदय और विकसित प्रबुद्धता कारक (पीति/प्रीति) के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण प्रदान करता है। 88

"हे भिक्षुओं, अजन्मे शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के उद्भव और विकसित शांति तत्व के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, शरीर की शांति और मन की शांति (पासद्धि/प्रशब्धि) है: उन्हें बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता प्रदान करना ही अजन्मे शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के उद्भव और विकसित शांति तत्व (पासद्धि/प्रशब्धि) के विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण है।" 89

"हे भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रकट ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है? हे भिक्षुओं, शांति (समथा/समभाव) का कारण (निमित्त) और अनावृतता का कारण (निमित्त) हैं: उन्हें बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता प्रदान करना समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रकट ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण है। 90

"हे भिक्षुओं, समता (उपेक्खा) के अजन्मे ज्ञान तत्व के उद्भव और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रकट ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता के लिए पोषण क्या है?" समभाव (उपेक्खा)? हे भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का आधार हैं: उनका बार-बार ध्यान (योनिसो) और मानसिकाध्य अभ्यास कराना, समभाव (उपेक्खा) के अजन्मे ज्ञानोदय कारक के उद्भव और उसके विकास द्वारा उसकी पूर्णता के लिए पोषण प्रदान करता है। 91

(iii. बाधाओं का क्षीणन) 92

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणन है जो अजन्मी कामुक इच्छा को उत्पन्न होने से और उत्पन्न कामुक इच्छा को बढ़ने और फैलने से रोकता है? हे भिक्षुओं, वह है अपवित्रता का कारण (निमित्त): बार-बार उस पर ध्यान (योनिषो) केंद्रित करना ही वह क्षीणन है जो अजन्मी कामुक इच्छा को उत्पन्न होने से और उत्पन्न कामुक इच्छा को बढ़ने और फैलने से रोकता है। 93

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणन है जो अजन्मी दुर्भावना को उत्पन्न होने से और उत्पन्न दुर्भावना को बढ़ने और फैलने से रोकता है?" भिक्षुओं, प्रेम और करुणा के द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) होती है: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करने से अनवजह दुर्भावना उत्पन्न होने से रुकती है और उत्पन्न दुर्भावना को बढ़ने और फैलने से रोकती है। 94

"और, भिक्षुओं, वह कौन सा पोषण है जो अनवजह आलस्य और सुस्ती को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती को बढ़ने और फैलने से रोकता है? भिक्षुओं, उत्तेजना, प्रयास और परिश्रम के तत्व होते हैं: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करने से अनवजह आलस्य और सुस्ती उत्पन्न होने से रुकती है और उत्पन्न आलस्य और सुस्ती को बढ़ने और फैलने से रोकती है। 95

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा पोषण है जो अनवजह बेचैनी और पश्चाताप को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप को बढ़ने और फैलने से रोकता है? हे भिक्षुओं, मन की शांति है: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करना ही वह पोषण है जो अनवजह बेचैनी और पश्चाताप को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न बेचैनी और पश्चाताप को बढ़ने और फैलने से रोकता है। 96

और हे भिक्षुओं, वह कौन सा पोषण है जो अनवजह संदेह को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न संदेह को बढ़ने और फैलने से रोकता है? हे भिक्षुओं, लाभकारी (कुसल) और हानिकारक (अकुसल, संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ, निम्न और उच्च अवस्थाएँ, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ और उनके विपरीत अवस्थाएँ हैं: बार-बार ध्यानमग्नता (मानसिकारा) करना ही वह पोषण है जो अनवजह संदेह को उत्पन्न होने से रोकता है और उत्पन्न संदेह को बढ़ने और फैलने से रोकता है। 97

(iv. ज्ञान के कारकों का क्षीण होना)

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणता है जो ध्यान (सती) के अजन्मे ज्ञान कारक को उत्पन्न होने से और ध्यान के उत्पन्न ज्ञान कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है? हे भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो ध्यान के ज्ञान कारक का आधार हैं: बार-बार विचारमुक्त न होना (अमनसिकारा) वह क्षीणता है जो ध्यान के अजन्मे ज्ञान कारक को उत्पन्न होने से और ध्यान के उत्पन्न ज्ञान कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है।

"हे भिक्षुओं, वह कौन सा क्षीणता है जो अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के अजन्मे ज्ञान कारक को उत्पन्न होने से और अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के उत्पन्न ज्ञान कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है?" भिक्षुओं, लाभकारी (कुशल) और हानिकारक (अकुशल, संस्कृत: अकुशल) अवस्थाएँ होती हैं, निंदनीय और निर्दोष अवस्थाएँ होती हैं, निम्न और उच्च अवस्थाएँ होती हैं, अंधकारमय और प्रकाशमय अवस्थाएँ होती हैं और उनके विपरीत अवस्थाएँ भी होती हैं: बार-बार विचारमुक्त (अमंसिकारा) न होना वह अपोत्पाद है जो अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से रोकता है और अवस्थाओं के भेदभाव (धम्मविचय) के विकसित ज्ञान तत्व को पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपंगता है जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से और उत्पन्न ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है? भिक्षुओं, उत्तेजना का तत्व है, प्रयास का तत्व है, परिश्रम का तत्व है: बार-बार विचार-मुक्त (अमनसिकारा) न होना ही वह अपंगता है जो ऊर्जा-शक्ति के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से और उत्पन्न ज्ञान तत्व के विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपंगता है जो आनंद के अजन्मे ज्ञान तत्व (पीति/प्रीति) को उत्पन्न होने से और उत्पन्न आनंद के ज्ञान तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकती है? भिक्षुओं, कुछ धर्म हैं जो आनंद के ज्ञान तत्व का आधार हैं: बार-बार विचारमुक्त न होना (अमंसिकारा) वह अपंगता है जो आनंद के अजन्मे ज्ञान तत्व को उत्पन्न होने से और उत्पन्न आनंद के ज्ञान तत्व (पीति/प्रीति) को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकती है।

भिक्षुओं, वह कौन सी अपंगता है जो शांति के अजन्मे ज्ञान तत्व (पसाद्धि/प्रशब्धि) को उत्पन्न होने से और उत्पन्न शांति के ज्ञान तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकती है? भिक्षुओं, शरीर की शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) और मन की शांति दोनों ही हैं: बार-बार विचार-मुक्त (अमनसिकारा) न होना वह अपोत्पादन है जो शांति के अजन्मे ज्ञान तत्व को जागृत होने से रोकता है और शांति के जागृत ज्ञान तत्व (पसाद्धि/प्रशब्धि) को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपोत्पत्ति कारक है जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अपोत्पत्ति तत्व को उत्पन्न होने से और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उत्पन्न हुए अपोत्पत्ति तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है? भिक्षुओं, शांति (समथा/समभाव) का कारण (निमित्त) है, अनासक्ति का कारण (निमित्त) है: बार-बार विचारमुक्त (अमानसिकरा) न होना ही वह अपोत्पत्ति कारक है जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के अपोत्पत्ति तत्व को उत्पन्न होने से और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के उत्पन्न हुए अपोत्पत्ति तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अपोत्पत्ति कारक है जो समभाव (उपेक्खा) के अपोत्पत्ति तत्व को उत्पन्न होने से और समभाव (उपेक्खा) अवस्था के उत्पन्न हुए अपोत्पत्ति तत्व को विकास द्वारा पूर्णता तक पहुँचने से रोकता है? भिक्षुओं, कुछ धर्म (गुण, नियम) हैं जो समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक का आधार हैं: बार-बार विचार-मुक्त (अमानसिक) न होना वह अपुष्टता है जो समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को उत्पन्न होने से रोकती है और उत्पन्न समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकास द्वारा पूर्णता प्राप्त करने से रोकती है।

---

233. व्याख्या की विधि (परियया)
फिर सुबह, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। चलो दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में चलते हैं।"

तब वे भिक्षु दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उनसे कहा: "मित्रों, तपस्वी गौतम अपने शिष्यों को धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हैं: 'आओ, भिक्षुओं, मन की उन पाँच बाधाओं (उपकिलेषों) का त्याग करो जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करती हैं, और ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करो।'" हम भी अपने शिष्यों को धम्म की शिक्षा इस प्रकार देते हैं: 'आओ, मित्रों, मन की उन पाँच बाधाओं (उपकिलेष) का त्याग करो जो प्रबोध (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को दुर्बल करती हैं, और ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करो।' तो मित्रों, यहाँ तपस्वी गौतम और हमारे बीच क्या अंतर, क्या भिन्नता, क्या भेद है, अर्थात् एक धम्म शिक्षा और दूसरी धम्म शिक्षा के संबंध में, एक शिक्षण विधि और दूसरी शिक्षण विधि के संबंध में?' 98

तब उन भिक्षुओं ने उन तपस्वियों के कथन से न तो प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उसका खंडन किया। प्रसन्नता व्यक्त किए बिना, खंडन किए बिना, वे अपने स्थान से उठे और यह सोचते हुए चले गए, "हम इस कथन का अर्थ भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में जानेंगे।"

फिर, जब वे भिक्षु सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और उन्होंने उन तपस्वियों और अपने बीच हुई पूरी चर्चा उन्हें बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, जब दूसरे संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार बोलते हैं, तो उनसे पूछा जाना चाहिए: 'मित्रों, क्या व्याख्या की कोई ऐसी विधि है जिससे पाँच बाधाएँ दस हो जाएँ और ज्ञान के सात कारक चौदह हो जाएँ?'" इस प्रकार पूछे जाने पर, वे तपस्वी उत्तर नहीं दे पाएंगे, बल्कि वे परेशान हो जाएंगे। इसका कारण क्या होगा? क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा। हे भिक्षुओं, इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, मैं किसी को भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट करते हुए नहीं देखता, सिवाय तथागत या तथागत के शिष्य या उनसे सुनने वाले के।

(i. पाँच दस हो जाते हैं)

"और हे भिक्षुओं, वह व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा पाँच बाधाएँ दस हो जाती हैं?

आंतरिक इंद्रिय भोगने की जो भी इच्छा होती है, वह बाधा होती है; बाह्य इंद्रिय भोगने की जो भी इच्छा होती है, वह भी बाधा होती है। 99 इस प्रकार, जिसे संक्षेप में इंद्रिय भोगने की बाधा कहा गया है, वह दस हो जाती है, इस व्याख्या विधि द्वारा, दो प्रकार से।

आंतरिक के प्रति जो भी दुर्भावना है, वह बाधा है; बाहरी के प्रति जो भी दुर्भावना है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, दुर्भावना की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

आलस्य की बाधा है, वह बाधा है; सुस्ती की सुस्ती है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, आलस्य और सुस्ती की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

बेचैनी की बाधा है, वह बाधा है; पश्चाताप की भावना है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, बेचैनी और पश्चाताप की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

आंतरिक के बारे में जो भी संदेह है, वह बाधा है; बाहरी के बारे में जो भी संदेह है, वह भी बाधा है। इस प्रकार, संदेह की बाधा के रूप में संक्षेप में वर्णित बात, व्याख्या की इस विधि से दो भागों में बँट जाती है।

(ii. सात चौदह हो जाते हैं)

"और हे भिक्षुओं, वह व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा ज्ञान के सात कारक चौदह हो जाते हैं?

जो भी आंतरिक धर्मों (गुणों, नियमों) का ध्यान (सति) किया जाता है, वह ध्यान का ज्ञान कारक है; जो भी बाह्य धर्मों का ध्यान किया जाता है, वह भी ध्यान का ज्ञान कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में ध्यान का ज्ञान कारक कहा जाता है, वह इस व्याख्या विधि द्वारा दुगुना हो जाता है।"

जब भी कोई प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से आंतरिक रूप से धर्मों का भेद करता है, उनका परीक्षण करता है, उनकी जांच करता है, तो वह अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक है; जब भी कोई प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से बाह्य रूप से धर्मों का भेद करता है, उनका परीक्षण करता है, उनकी जांच करता है, तो वह भी अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में अवस्थाओं के भेद (धम्मविचय) का ज्ञानोदय कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में विभाजित हो जाता है।

शरीर में जो भी ऊर्जा (वीर्य) होती है, वह ऊर्जा-शक्ति का ज्ञानोदय कारक है; मानसिक ऊर्जा में जो भी ऊर्जा होती है, वह भी ऊर्जा-शक्ति का ज्ञानोदय कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में ऊर्जा-शक्ति का ज्ञानोदय कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में विभाजित हो जाता है।

"जो भी आनंद (पीति/प्रीति) विचार और विश्लेषण के साथ होता है, वह आनंद का ज्ञानवर्धक कारक है; जो भी आनंद बिना विचार और विश्लेषण के होता है, वह भी आनंद का ज्ञानवर्धक कारक है। 101 इस प्रकार, जिसे संक्षेप में आनंद (पीति/प्रीति) का ज्ञानवर्धक कारक कहा गया है, वह व्याख्या की इस विधि से दो गुना हो जाता है।"

शरीर की जो भी शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) होती है, वही शांति का ज्ञानवर्धक कारक है; मन की जो भी शांति होती है, वही शांति का ज्ञानवर्धक कारक है। 102 इस प्रकार, जिसे संक्षेप में शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का ज्ञानवर्धक कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में बँट जाता है। विचार

और चिंतन के साथ जो भी समाधि (सम्मोहन) अवस्था होती है, वही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानवर्धक कारक है; विचार और चिंतन के बिना जो भी समाधि (सम्मोहन) अवस्था होती है, वही समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानवर्धक कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में समाधि (सम्मोहन) अवस्था का ज्ञानवर्धक कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दो भागों में बँट जाता है।

"आंतरिक धर्मों के प्रति जो समभाव (उपेक्खा) होता है, वही समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक है; बाह्य धर्मों (गुणों, नियमों) के प्रति जो समभाव (उपेक्खा) होता है, वही समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक है। इस प्रकार, जिसे संक्षेप में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय कारक कहा गया है, वह इस व्याख्या विधि से दुगुना हो जाता है।

भिक्षुओं, यह व्याख्या की वह विधि है जिसके द्वारा ज्ञानोदय के सात कारक चौदह हो जाते हैं।"

---

234. अग्नि (अग्गी संस्कृत अग्नि)
फिर, सुबह के समय, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया ... (जैसा कि 233 से आगे तक है:) ... 104 [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार बोलते हैं, तो उनसे पूछा जाना चाहिए: 'मित्रों, जब मन सुस्त हो जाता है, तो उस समय ज्ञान के किन कारकों को विकसित करना असमय है, और किन कारकों को विकसित करना उचित है? फिर, मित्रों, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो उस समय ज्ञान के किन कारकों को विकसित करना असमय है, और किन कारकों को विकसित करना उचित है?' इस प्रकार पूछे जाने पर, वे तपस्वी उत्तर नहीं दे पाएंगे, बल्कि वे परेशान हो जाएंगे। इसका कारण क्या है? क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं है। हे भिक्षुओं, इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, मैं किसी को भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट करते हुए नहीं देखता, सिवाय तथागत या तथागत के शिष्य या उनसे सुनने वाले के।

(i. सुस्त मन: असमय)

“हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व और समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करना असमय है। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मन सुस्त है और उसे धर्मों (गुणों, नियमों) से जागृत करना कठिन है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति छोटी सी आग को प्रज्वलित करना चाहता है। यदि वह उसमें गीली घास, गीला गोबर और गीली लकड़ी डाले, उस पर पानी छिड़के और मिट्टी बिखेर दे, तो क्या वह उस छोटी सी आग को प्रज्वलित कर पाएगा?"

"नहीं, आदरणीय।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना असमय होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन सुस्त है और इन धर्मों से उसे जागृत करना कठिन है।

(ii. सुस्त मन: उपयुक्त)

"हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय), ऊर्जा (वीर्य) और आनंद (पीति/प्रीति) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना उपयुक्त होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन सुस्त है और इन धर्मों से उसे जागृत करना आसान है।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति छोटी सी आग को भड़काना चाहता है। यदि वह उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डाले, उस पर फूँके और उस पर मिट्टी न डाले, तो क्या वह छोटी सी आग को भड़का पाएगा?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब मन सुस्त हो जाता है, तो धम्मविचाय (अवस्थाओं के भेदभाव), ऊर्जा-शक्ति और आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान का विकास करना उचित होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन सुस्त है और इन धर्मों से उसे जागृत करना आसान है।

(iii. उत्तेजित मन: असमय)

"हे भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो धम्मविचाय (अवस्थाओं के भेदभाव), ऊर्जा-शक्ति और आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान का विकास करना असमय होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षुओं, मन उत्तेजित है और इन धर्मों से उसे शांत करना कठिन है।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति एक बड़ी आग बुझाना चाहता है। यदि वह उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डाले, उस पर फूँके, और उस पर मिट्टी न डाले, तो क्या वह उस बड़ी आग को बुझा पाएगा?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक), वीर्य (ऊर्जावान शक्ति) और पीति/प्रीति (आनंद) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना असमय होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, मन उत्तेजित होता है और इन धर्मों से उसे शांत करना कठिन होता है।

(iv. उत्तेजित मन: समयोचित)

"भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो शांति (प्रशद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) जैसे ज्ञान तत्वों का विकास करना समयोचित होता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, मन उत्तेजित होता है और इन धर्मों से उसे शांत करना आसान होता है।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति एक बड़ी आग बुझाना चाहता है। यदि वह उसमें गीली घास, गीला गोबर और गीली लकड़ी डाले, उस पर पानी छिड़के और मिट्टी बिखेर दे, तो क्या वह उस बड़ी आग को बुझा पाएगा?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन उत्तेजित हो जाता है, तो शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि), समाधि (सम्मोहन) और समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करना उचित होता है। क्यों? क्योंकि मन उत्तेजित होता है, भिक्षुओं, और इन धर्मों से उसे शांत करना आसान होता है।

" "परन्तु ध्यान (सती), भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, सदा उपयोगी होता है।" 105

---

235. प्रेम और करुणा (मेट्टासहगत) के साथ

एक बार भगवान (बुद्ध) कोलियों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ हलिद्दवासना नामक कोलियों का एक नगर था। 106 फिर, सुबह के समय, कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर हलिद्दवासना में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "हलिद्दवासना में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। चलो दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में चलते हैं।"

तब वे भिक्षु दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उनसे कहा: "मित्रों, तपस्वी गौतम अपने शिष्यों को धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हैं: 'आओ, भिक्षुओं, मन की उन पाँच बाधाओं (उपकिलेसा) का त्याग करो जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करती हैं, और प्रेममयी (मैत्री) से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के प्रति अपने समान, प्रेममयी (मैत्री) से परिपूर्ण मन से, विशाल, उच्च, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। करुणा से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और सभी के प्रति अपने समान, करुणा से परिपूर्ण मन से, विशाल, उच्च, असीम, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। बिना शत्रुता, बिना द्वेष के। परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, परोपकारी आनंद से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम मन से, बिना शत्रुता, बिना द्वेष के, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। समभाव (उपेक्खा) से परिपूर्ण मन से एक दिशा में व्याप्त रहो, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के लिए अपने समान, समभाव (उपेक्खा) से परिपूर्ण, विशाल, उदात्त, असीम मन से, बिना शत्रुता, बिना द्वेष के, संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो।

"मित्रों, हम भी अपने शिष्यों को इस प्रकार धम्म का उपदेश देते हैं:
'आओ, मित्रों, पाँच बाधाओं का त्याग करो... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... परोपकारी आनंद से परिपूर्ण मन से संपूर्ण विश्व में व्याप्त रहो। प्रेममयी करुणा (मेत्तम/मैत्री)... करुणा... परोपकारी आनंद... समभाव (उपेक्खा)... द्वेष रहित। तो मित्रों, तपस्वी गौतम और हमारे बीच, अर्थात् एक धम्म शिक्षा और दूसरी के संबंध में, एक शिक्षण पद्धति और दूसरी के संबंध में, यहाँ क्या अंतर, क्या भिन्नता, क्या भेद है? 107

तब उन भिक्षुओं ने न तो उन तपस्वियों के कथन पर प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उसका खंडन किया। प्रसन्नता व्यक्त किए बिना और खंडन किए बिना, वे अपने स्थानों से उठे और यह सोचते हुए चले गए, "हम इस कथन का अर्थ भगवान (बुद्ध) के समक्ष जानेंगे।"

फिर, जब वे भिक्षु हलिद्दवासना में भिक्षा मांगने के बाद भिक्षा मांगने लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और उन्हें उन तपस्वियों और अपने बीच हुई पूरी चर्चा बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"भिक्षुओं, जब अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस प्रकार बोलते हैं, तो उनसे पूछा जाना चाहिए: 'मित्रों, प्रेम (मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? 108 करुणा द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है?' इस प्रकार पूछे जाने पर वे तपस्वी उत्तर नहीं दे पाएंगे, बल्कि वे क्रोधित हो जाएंगे। इसका कारण क्या होगा? क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर होगा। हे भिक्षुओं, इस संसार में, जहाँ देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, तथागत या उनके शिष्य या उनसे यह प्रश्न सुनने वाले के सिवा कोई भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट नहीं कर सकता।

भिक्षुओं, प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षु, प्रेम और करुणा के साथ सती (ध्यान) के ज्ञान तत्व को विकसित करते हैं... (इसी प्रकार धम्मविचय (अवस्थाओं के विवेक) के ज्ञान तत्व के लिए... वीरता (ऊर्जावान शक्ति) के ज्ञान तत्व के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान तत्व के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए... प्रेम और करुणा के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व के लिए, एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित, परिपक्वता प्राप्त करते हुए। मोक्ष (मुक्ति)। 109 यदि वह चाहे: 'मैं निर्जीव में घृणित को देखते हुए निवास करूं,' तो वह घृणित को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'मैं घृणित में निर्जीव को देखते हुए निवास करूं,' तो वह निर्जीव को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'मैं निर्जीव और घृणित दोनों में घृणित को देखते हुए निवास करूं,' तो वह घृणित को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'घृणित और निर्जीव दोनों में निर्जीव को देखते हुए निवास करूं,' तो वह निर्जीव को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे:
'निर्जीव और घृणित दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध करते हुए निवास करूं,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध करते हुए निवास करता है। संपजानो को समझने से, अन्यथा वह सौंदर्य की मुक्ति (विमोक्ष/विमोक्ष) में प्रवेश करता है और निवास करता है। भिक्षुओं, प्रेम (मैत्री/मेत्त) द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष सौंदर्य ही है, मैं यहाँ उस बुद्धिमान भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

भिक्षुओं, करुणा द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत में विमुक्ति) कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षु करुणा के साथ ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करते हैं (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व के लिए... वीरता के ज्ञानोदय तत्व के लिए... आनंद के ज्ञानोदय तत्व के लिए... शांति के ज्ञानोदय तत्व के लिए... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय तत्व के लिए)... एकांत, वैराग्य और समाप्ति पर आधारित करुणा के साथ समभाव के ज्ञानोदय तत्व के लिए, जो मोक्ष में परिपक्व होता है। यदि वह चाहें: 'क्या मैं यह अनुभव करते हुए निवास कर सकता हूँ...' 'अविकर्षणहीन में घृणास्पद,' वह उसमें घृणास्पद को अनुभव करते हुए निवास करता है... यदि वह चाहे: 'अविकर्षणहीन और घृणास्पद दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए निवास करूँ,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए उसमें निवास करता है। अन्यथा, रूपों की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) की धारणाओं के लुप्त होने से, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है,' वह अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करता है और निवास करता है। भिक्षुओं, करुणा द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति है, मैं यहाँ उस ज्ञानी भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

भिक्षुओं, परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु परोपकारी आनंद के साथ ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व, वीर्य के ज्ञानोदय तत्व, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय तत्व, शांति के ज्ञानोदय तत्व, प्रशब्धि के ज्ञानोदय तत्व, समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय तत्व और परोपकारी आनंद के साथ समता के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है)। यदि वह चाहे: 'क्या मैं घृणास्पद को देखते हुए निवास कर सकता हूँ?' वह घृणास्पद को अनुभव करते हुए भी, 'अघृणित' में निवास करता है... यदि वह चाहे: 'अघृणित और घृणास्पद दोनों से बचकर, समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर निवास करूँ,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर उसमें निवास करता है। या फिर, अनंत अंतरिक्ष की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, यह जानते हुए कि 'चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) अनंत है,' वह चेतना की अनंत शक्ति में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है। भिक्षुओं, परोपकारी आनंद द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष चेतना की अनंत शक्ति है, मैं यहाँ उस ज्ञानी भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति संस्कृत) कैसे विकसित होती है? इसका गंतव्य, इसकी पराकाष्ठा, इसका फल, इसका अंतिम लक्ष्य क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु समभाव (उपेक्खा) के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञान तत्व के लिए... वीरता (वीर्य) के ज्ञान तत्व के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञान तत्व के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञान तत्व के लिए... समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञान तत्व के लिए... समभाव (उपेक्खा) के साथ समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व के लिए, एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित, परिपक्वता प्राप्त करते हुए। मोक्ष (मुक्ति)। यदि वह चाहे: 'मैं निर्जीव में निर्जीव को देखते हुए निवास करूं,' तो वह निर्जीव को देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'निर्जीव और निर्जीव दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) निवास करूं,' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) निवास करता है। या फिर, चेतना की अनंतता की शक्ति को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का ज्ञान प्राप्त करके, वह शून्यता की शक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है। भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा) द्वारा मन की मुक्ति का चरमोत्कर्ष शून्यता की शक्ति है, मैं यहाँ उस ज्ञानी भिक्षु के लिए कहता हूँ जिसने उच्चतर मुक्ति प्राप्त नहीं की है।

---

236. संगरवा

श्रावस्ती में, 112 तब ब्राह्मण संगरव भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से कहा,

"गुरु गौतम, इसका क्या कारण है कि कभी-कभी लंबे समय तक जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे ही नहीं गए? इसका क्या कारण है कि कभी-कभी लंबे समय तक न जपे गए भजन भी मन में आ जाते हैं, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे ही गए हैं?"

(i. भजन मन में क्यों नहीं लौटते?)

"ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति काम (राग) की वासना में ग्रस्त मन से रहता है, काम (राग) से अभिभूत होता है, और उसे यह समझ नहीं आता कि वास्तव में उत्पन्न काम (राग) से मुक्ति का मार्ग क्या है, 113 उस समय वह न तो अपने भले को जान पाता है और न ही देख पाता है (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) कि वास्तव में उसका भला क्या है, न दूसरों का भला क्या है, और न ही दोनों का भला क्या है। तब तो वे भजन भी जो लंबे समय से गाए जा रहे हैं, मन में नहीं लौटते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो गाए ही नहीं गए हैं।

"मान लीजिए, ब्राह्मण, एक कटोरे में लाख, हल्दी, नीला या लाल रंग मिला हुआ पानी है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा कि वह वास्तव में क्या है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति कामवासना (राग) में ग्रस्त मन से रहता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति द्वेष से ग्रस्त मन से रहता है, द्वेष से अभिभूत होता है, और उसे यह समझ नहीं आता कि वास्तव में उत्पन्न द्वेष से मुक्ति का मार्ग क्या है, उस समय वह (ध्यान में) न तो अपने भले को जान पाता है, न दूसरों के भले को, न दोनों के भले को। तब तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक कटोरा पानी आग पर गर्म हो रहा है, जिसमें बुलबुले उठ रहे हैं और पानी उबल रहा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा जैसा वह वास्तव में है। इसी

प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई द्वेष से ग्रस्त मन के साथ रहता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो कभी जपे ही नहीं गए।

"हे ब्राह्मण, जब कोई आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त मन से रहता है, आलस्य और सुस्ती से अभिभूत होता है, और उसे यह समझ नहीं आता कि वास्तव में आलस्य और सुस्ती से मुक्ति का मार्ग क्या है, तो उस समय वह न तो अपने भले को जान पाता है और न ही दूसरों के भले को, और न ही दोनों के भले को। तब तो वे भजन भी मन में नहीं आते जिनका पाठ नहीं किया गया है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है।

मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक पानी का कटोरा है जो जलीय पौधों और शैवाल से ढका हुआ है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा जैसा वह वास्तव में है। ठीक उसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त मन से रहता है... उस समय तो वे भजन भी मन में नहीं आते जिनका पाठ किया गया है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है।"

"हे ब्राह्मण, जब मन बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त हो, बेचैनी और पश्चाताप से अभिभूत हो, और उसे यह समझ न आए कि वास्तव में बेचैनी और पश्चाताप से मुक्ति का मार्ग क्या है, तो उस समय वह (ध्यान में) न तो अपने भले को जान पाता है, न दूसरों के भले को, न दोनों के भले को। तब तो वे भजन भी जो लंबे समय से जपे जा रहे हैं, मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो नहीं जपे गए हैं।

"मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक कटोरा पानी हवा से हिल रहा है, लहरें उठ रही हैं, घूम रही हैं, छोटी-छोटी तरंगें बन रही हैं। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा जैसा वह वास्तव में है।" इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब मन बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त रहता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

"हे ब्राह्मण, जब मन संदेह से ग्रस्त रहता है, संदेह से अभिभूत रहता है, और उत्पन्न संदेह से मुक्ति का वास्तविक मार्ग नहीं समझ पाता, उस समय ध्यान में न तो व्यक्ति अपने भले को जान पाता है, न दूसरों के भले को, न दोनों के भले को। तब तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

"मान लीजिए, हे ब्राह्मण, अंधेरे में एक मटमैला, गंदा, मैला पानी का कटोरा रखा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में न तो जान पाएगा और न ही देख पाएगा। हे ब्राह्मण, जब मन संदेह से ग्रस्त होता है... उस समय तो लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जो जपे नहीं गए।

हे ब्राह्मण, यही कारण है कि लंबे समय से जपे गए भजन भी मन में नहीं आते। उन लोगों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ नहीं किया गया है।

(ii. भजन मन में बार-बार क्यों आते हैं?)

"ब्राह्मण, जब मन काम (राग) से ग्रस्त न हो, काम (राग) से अभिभूत न हो, और उत्पन्न काम (राग) से मुक्ति का सही अर्थ समझ ले, तब ध्यान में वह अपने भले, दूसरों के भले और दोनों के भले को सही रूप में जान और देख पाता है। तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, पहले पढ़े गए भजनों की तो बात ही छोड़िए।

मान लीजिए, ब्राह्मण, एक कटोरा ऐसा जल है जिसमें लाख, हल्दी, नीला या लाल रंग नहीं मिला है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे सही रूप में देख और जान पाएगा।" इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब किसी का मन इंद्रिय-संबंधी (काम/यौन) वासना (राग) से ग्रस्त नहीं होता है... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन

भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है। "मान लीजिए, हे ब्राह्मण,

एक कटोरा पानी है जिसे आग पर गर्म नहीं किया गया है, न ही उसमें बुलबुले उठ रहे हैं, न ही वह उबल रहा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे वैसे ही देखेगा जैसा वह वास्तव में है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब किसी का मन इंद्रिय-संबंधी (द्वेष) से ग्रस्त नहीं होता है... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, जब मन आलस्य और सुस्ती से मुक्त रहता है... तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

मान लीजिए, हे ब्राह्मण, एक कटोरा पानी का है जो जलीय पौधों और शैवालों से ढका नहीं है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे वैसे ही देखेगा जैसा वह वास्तव में है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब मन आलस्य और सुस्ती से मुक्त रहता है... तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, जब मन बेचैनी और पश्चाताप से मुक्त रहता है... तब तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, मान लीजिए एक कटोरा पानी से भरा है जो हवा से हिलता नहीं, उसमें कोई लहर नहीं उठती, कोई भंवर नहीं बनता, कोई छोटी-छोटी तरंगें नहीं बनतीं। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे वैसे ही देखेगा जैसा वह वास्तव में है। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त नहीं होता... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, जब कोई ऐसे मन से रहता है जो संदेह से ग्रस्त नहीं होता... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं हुआ है, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ हो चुका है।

हे ब्राह्मण, मान लीजिए कि प्रकाश में एक साफ, निर्मल और निर्मल जल का कटोरा रखा है। यदि कोई अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसमें अपने चेहरे का प्रतिबिंब देखे, तो वह उसे उसके वास्तविक स्वरूप में देख और जान लेगा। इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, जब कोई व्यक्ति संदेह से मुक्त मन से रहता है... उस समय तो वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं किया गया हो, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ किया जा चुका हो। हे ब्राह्मण,

यही कारण है कि वे भजन भी मन में आ जाते हैं जिनका पाठ लंबे समय से नहीं किया गया हो, उन भजनों की तो बात ही छोड़िए जिनका पाठ किया जा चुका हो।

"हे ब्राह्मण, ज्ञानोदय के ये सात कारक मन के अवरोधों, बाधाओं और विकारों से मुक्त हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। कौन से सात? ध्यान (सती) का ज्ञानोदय कारक अवरोधों से मुक्त है... (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक... वीरता (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक... समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक अवरोधों से मुक्त हैं... ज्ञानोदय के ये सात कारक मन के अवरोधों, बाधाओं और विकारों से मुक्त हैं; जब इनका विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं..." सच्चे ज्ञान और मुक्ति के फल की प्राप्ति।" (देखें 182-184)

यह सुनकर ब्राह्मण संगरव ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

237. अभया
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। तब राजकुमार अभय भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 114

“आदरणीय महोदय, पुराण कस्सप कहते हैं: 'ज्ञान और दृष्टि की कमी का कोई कारण नहीं है; ज्ञान और दृष्टि की कमी का कोई कारण नहीं है। ज्ञान और दृष्टि का कोई कारण नहीं है; ज्ञान और दृष्टि का कोई कारण नहीं है।' 115 इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं?” “

हे राजकुमार, ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण है; ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण है। ज्ञान और दृष्टि का कारण है; ज्ञान और दृष्टि का कारण है।”

(i. ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण)

“परन्तु, आदरणीय महोदय, ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण क्या है? ज्ञान और दृष्टि की कमी का कारण कैसे है?”

"हे राजकुमार, जब किसी का मन कामुक (काम/यौन) वासना (राग) से ग्रस्त हो, कामुक (काम/यौन) वासना (राग) से अभिभूत हो, और वह (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) इस प्रकार उत्पन्न कामुक (काम/यौन) वासना (राग) से मुक्ति का मार्ग न तो जान पाए और न ही देख पाए: यह ज्ञान और दृष्टि के अभाव का कारण है; इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का अभाव कारण बनता है।

"हे राजकुमार, जब किसी का मन द्वेष से ग्रस्त हो... आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त हो... बेचैनी और पश्चाताप से ग्रस्त हो... संदेह से ग्रस्त हो, संदेह से अभिभूत हो, और वह (ध्यान में) इस प्रकार उत्पन्न संदेह से मुक्ति का मार्ग न तो जान पाए और न ही देख पाए: यह भी ज्ञान और दृष्टि के अभाव का कारण है।" इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का अभाव भी कारण से होता है। "

हे पूज्यवर, इस धम्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या क्या है?"

"हे राजकुमार, इन्हें बाधाएँ कहते हैं।"

"निश्चित रूप से ये बाधाएँ हैं, हे भगवान (बुद्ध)! निश्चित रूप से ये बाधाएँ हैं, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! एक बाधा से भी पराजित व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं जान और देख सकता, पाँच बाधाओं से पराजित व्यक्ति की तो बात ही क्या है?

(ii. ज्ञान और दृष्टि का कारण)

"परन्तु, हे पूज्यवर, ज्ञान और दृष्टि का कारण क्या है? ज्ञान और दृष्टि का कारण कैसे होता है?"

"हे राजकुमार, यहाँ एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित कर चुके मन से वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है (ध्यान में)। यही ज्ञान और दृष्टि का कारण है; इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का संबंध कारण से होता है..."

"पुनः, राजकुमार, एक भिक्षु समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और संयम पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित कर चुके मन से वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानता और देखता है (ध्यान में)। यह भी ज्ञान और दृष्टि का एक कारण है। इसी प्रकार ज्ञान और दृष्टि का संबंध कारण से होता है।"

"हे आदरणीय महोदय, इस धम्म व्याख्या को क्या कहते हैं?"

"हे राजकुमार, इन्हें ज्ञान के कारक कहते हैं।"

"निःसंदेह ये ज्ञानोदय के कारक हैं। हे भगवान (बुद्ध)! निश्चय ही ये ज्ञानोदय के कारक हैं। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! ज्ञानोदय का एक भी कारक रखने वाला व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जान और देख सकता है, सातों ज्ञानोदय कारकों को रखने वाले की तो बात ही क्या है। गिद्ध शिखर पर्वत पर चढ़ने से मुझे जो शारीरिक और मानसिक थकान हुई थी, वह दूर हो गई है। मैंने धम्म का मार्ग प्रशस्त कर लिया है।" 116

(vii) अंदर-बाहर श्वास ध्यान (अनापानवग्गो सं. अन-अपान-वर्ग)
238. कंकाल-अधिनियम-परिणाम
(i. अत्यधिक फलदायी)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित और पोषित की जाती है, तो यह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक होती है। 117

"और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित की जाती है ताकि यह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक हो? यहाँ, हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कंकाल की अनुभूति के साथ ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित कंकाल की अनुभूति के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, मोक्ष (मुक्ति/मोक्ष) में परिपक्व होता है।" इसी प्रकार कंकाल की धारणा विकसित और पोषित होती है, जिससे यह बहुत फलदायी और लाभदायक होती है।"

(ii. दो फलों में से एक)

"भिक्षुओं, जब कंकाल की धारणा विकसित और पोषित हो जाती है, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत आसक्ति) का अवशेष हो, तो पुनर्जन्म न होने की अवस्था।

और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि दो फलों में से एक की प्राप्ति हो सके: या तो इसी जीवन में परम ज्ञान, या यदि आसक्ति का कोई अंश शेष रहे तो पुनर्जन्म रहित अवस्था? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु कंकाल की अनुभूति के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित कंकाल की अनुभूति के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। इसी प्रकार कंकाल की अनुभूति को विकसित और पोषित किया जाता है ताकि दो फलों में से एक की प्राप्ति हो सके: या तो इसी जीवन में परम ज्ञान, या यदि आसक्ति का कोई अंश शेष रहे तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।

(iii. परम कल्याण)

"भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, तो यह परम कल्याण की ओर ले जाती है।

और भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित होती है जिससे यह परम कल्याण की ओर ले जाती है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु कंकाल की अनुभूति के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित कंकाल की अनुभूति के साथ समता (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जो मोक्ष में परिपक्व होता है। इसी प्रकार कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित होती है जिससे यह परम कल्याण की ओर ले जाती है।"

(iv. बंधन से सुरक्षा)

"भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, तो यह बंधन से परम कल्याण की ओर ले जाती है।

और भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति कैसे विकसित और पोषित होती है जिससे यह बंधन से परम कल्याण की ओर ले जाती है?..."
(उपरोक्त सभी बातें समान हैं।)

(क्रिया: तात्कालिकता की भावना)

भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो इससे अत्यधिक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है।

और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है जिससे अत्यधिक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न हो?... (ऊपर दिए गए अनुसार)

(छठी विधि: आराम से निवास करना)

भिक्षुओं, जब कंकाल की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो इससे अत्यधिक आराम से निवास करने की अनुभूति होती है।

और हे भिक्षुओं, कंकाल की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है जिससे अत्यधिक आराम से निवास करने की अनुभूति हो?...
(ऊपर दिए गए अनुसार)

(निम्नलिखित प्रत्येक सूत्र, 239-257, को 238 की छह गुना विधि के अनुसार विस्तृत किया जाना है)

---

239. कृमिग्रस्त (पुलावक)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब कृमिग्रस्त शव की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित हो जाती है..."

---

240. द लिविड (विनिलाका)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब किसी सड़े हुए शव की अनुभूति (सन्ना संज्ञा) विकसित हो जाती है..."

---

241. द फिशर्ड (विचिडका)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब किसी फटे हुए शव की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित हो जाती है..."

---

242. फूला हुआ (उद्धुमतक)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब फूले हुए शव की अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) विकसित हो जाती है..."

---

243. प्रेमपूर्ण दयालुता (मेटा संस मैत्री)
"भिक्खुओं, जब दयालुता (मेत्ता\मैत्री) विकसित होती है..."

---

244. करुणा
"भिक्षुओं में जब करुणा विकसित हो जाती है..."

---

245. परोपकारी आनंद (मुदिता)
"भिक्षुओं में जब परोपकारी आनंद विकसित हो जाता है..."

---

246. समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) में जब समभाव (उपेक्खा) विकसित हो जाता है..."

---

247. श्वास ध्यान (अनापान)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब श्वास की सती साधना विकसित हो जाती है..."

(viii) समाप्ति 119 (निरोध)
248. अपवित्रता (असुभा)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब बेईमानी की धारणा (सन्न संस. संग्या) ..."

---

249. मृत्यु (मरना)
"भिक्खुओं, जब मृत्यु की धारणा (सन्न संस. संज्ञा) ..."

---

250. भोजन के प्रति अरुचि (अहरेपटिकुला)
"भिक्षुओं को जब भोजन की अरुचि का अहसास होता है..."

---

251. अनभिराती (अनाभिराती)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब उन्हें समस्त
संसार में आनंदहीनता की अनुभूति होती है..."

---

252. अनित्यता (अनिका सं. अनित्य)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब अनित्यता (अनिच्च संस. अनित्य) की धारणा (सन्ना सं. संज्ञ) ..."

---

253. दुख (दुक्खा)
"भिक्षुओं (सन्यासियों), जब अनित्य में दुख की अनुभूति (सन्ना संज्ञा) होती है..."

---

254. अनात्म (अनत्ता सं. अनात्म)
भिक्षुओं को जब दुख में अनात्म की अनुभूति होती है (सन्ना संज्ञा),

---

255. परित्याग (पहाना)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब परित्याग की धारणा (सन्न संस. संज्ञा)...

---

256. वैराग्य (विराग)
"भिक्खुओं (भिक्षुओं), जब वैराग्य की धारणा (सन्न संस. संज्ञा)...

---

257. निरोध (समाप्ति)
(i. अत्यधिक फलदायी)

"भिक्षुओं, जब निरोध की अनुभूति विकसित और पोषित हो जाती है, तो वह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक होती है।

और हे भिक्षुओं, निरोध की अनुभूति को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वह अत्यधिक फलदायी और लाभदायक हो?" यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो निश्चिंतता की अनुभूति के साथ होता है (इसी प्रकार, अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) के ज्ञानोदय कारक के लिए... ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के ज्ञानोदय कारक के लिए... आनंद (पीति/प्रीति) के ज्ञानोदय कारक के लिए... शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक के लिए... समाधि (सम्मोहन) अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए)... वह एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित, निश्चिंतता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो मुक्ति (मोक्ष/मोक्ष) में परिपक्व होता है। इसी प्रकार निश्चिंतता का ज्ञान विकसित और पोषित होता है, जिससे महान फल और लाभ प्राप्त होता है। (देखें 182-184)

(ii. दो फलों में से एक)

"भिक्षुओं, जब निश्चिंतता का ज्ञान विकसित और पोषित हो जाता है, तो दो फलों में से एक की प्राप्ति होती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) शेष हो, तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।

"और भिक्षुओं, निश्चिंतता का ज्ञान कैसे विकसित होता है... (जैसा कि पहले बताया गया है)?"

(iii-vi. महान लाभ, आदि)

"भिक्षुओं, जब निश्चिंतता का ज्ञान विकसित और पोषित हो जाता है, तो यह महान लाभ की ओर ले जाता है... बंधन से महान सुरक्षा की ओर... एक महान तात्कालिकता की भावना की ओर... महान आराम में निवास की ओर।"

और यह ऐसा कैसे करता है?" यहां, भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय कारक को विकसित करते हैं, जो निश्चिंतता की अनुभूति के साथ होता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक, ऊर्जा-शक्ति के ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक, शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) के ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की ज्ञानोदय अवस्था के लिए भी यही बात लागू होती है)। वे एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित समता (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करते हैं, जो निश्चिंतता की अनुभूति के साथ होता है और मोक्ष की प्राप्ति में

परिपक्व होता है। इसी प्रकार निश्चिंतता की अनुभूति विकसित और पोषित होती है, जिससे महान लाभ, बंधन से महान सुरक्षा, महान तत्परता की भावना और महान आराम में निवास प्राप्त होता है। (देखें 182-184)

(ix) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
258-269. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि।
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार होकर बहती है, उसी प्रकार ज्ञान के सात गुणों को विकसित और पोषित करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर ढलानदार होकर बढ़ता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु ज्ञान के सात गुणों को कैसे विकसित और पोषित करता है जिससे वह निर्वाण की ओर ढलानदार होकर बढ़ता है? यहां, भिक्षुओं, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है (इसी प्रकार धम्मविचय के ज्ञानोदय कारक, वीर्य के ज्ञानोदय कारक, पीति/प्रीति के ज्ञानोदय कारक, शांति के ज्ञानोदय कारक, प्रशब्धि के ज्ञानोदय कारक, समाधि (सम्मोहन) की अवस्था के ज्ञानोदय कारक के लिए)... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष में परिपक्व होता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु ज्ञान के सात कारकों को विकसित और पोषित करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले सूत्रों के समानांतर ही की जानी है।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं:
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(x) सतर्कता अनुभाग (अप्पामादावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
270-279. तथागत, इत्यादि।
"भिक्षुओं, चाहे कितने भी प्राणी हों - चाहे वे बिना पैरों वाले हों, दो पैरों वाले हों, चार पैरों वाले हों या अनेक पैरों वाले हों - ..."

(पूर्व में बताए गए ज्ञान के कारकों के समानांतर आगे विस्तार से बताया जाएगा)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही वस्त्र दसवें रूप में।"

(xi) कठोर कर्म अनुभाग (बालकरणीयवग्गो)
280-291. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
"भिक्षुओं (साधुओं), जैसे-जैसे कोई भी कठिन कर्म किए जाते हैं...

(पिछले वाले के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा) 136

कठिन, बीज, और नाग,
वृक्ष, घड़ा, बाली,

आकाश, और बादलों पर दो।

जहाज, अतिथिगृह, और नदी।"

(xii) खोज अनुभाग (एसानावाग्गो)
292-301. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुखों की खोज, अस्तित्व (भावो) की खोज, ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य) के पवित्र जीवन की खोज...

(पिछली खोजों के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा)

खोजें, भेद, दोष,
अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख,

बांझपन, कलंक और कष्ट,
वेदना, तृष्णा और प्यास।

(xiii) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
302-310. बाढ़, आदि (ओघा)
भिक्षुओं, ये चार प्रकार की जलधाराएँ हैं। कौन सी चार? कामुकता की जलधारा, अस्तित्व की जलधारा (भावो), विचारों की जलधारा, अज्ञान की जलधारा (अविज्जा सान. अविद्या)...

(पिछली व्याख्याओं के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी)

---

311. उच्चतर बंधन (उद्धमभागीय)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए ज्ञान के सात कारकों का विकास करना आवश्यक है। ये

सात कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञान कारक का विकास करता है... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होता है। ज्ञानोदय के इन सात कारकों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)
, गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

इंद्रिय सुख की डोरियाँ, अवरोध,
समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(xiv) गंगा पुनरावृति श्रृंखला
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

312-323. गंगा नदी - पूर्व दिशा की ओर
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलान पर बहती है, उसी प्रकार भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

और वह ऐसा कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है। इसी प्रकार भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(कामवासना आदि के निवारण को अंतिम लक्ष्य बनाकर ज्ञान तत्वों के बारे में विस्तार से बताया जाएगा।)

पूर्व दिशा की ओर ढलान के बारे में छह
और सागर की ओर ढलान के बारे में छह।

ये दो छह मिलकर बारह बनाते हैं:
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(xv) सतर्कता अनुभाग (पुना-अप्पमदा-वाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

324-333. तथागत, इत्यादि।
(ज्ञानोदय के उन कारकों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाएगा जिनका
अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी,
जड़ें, हृदय की लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही वस्त्र दसवें स्थान पर।

(xvi) कठोर कर्म (पुनबलकारनिया)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

334-345. कठिन, इत्यादि (पुनाबलादी)
(ज्ञानोदय के उन कारकों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाएगा जिनका
अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

परिश्रम, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, कील।

आकाश और बादलों पर दो,
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(xvii) खोज (पुनैसनवग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
346-356. खोज आदि (पुणेसन)
(ज्ञानोदय के उन कारकों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाएगा जिनका
अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

खोज, भेद, दोष।

अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(xviii) बाढ़ खंड (पुनाओघवाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
357-365. बाढ़, आदि (पुनाओघाड़ी)
(इसका विस्तृत विवरण उन ज्ञानोदय कारकों के माध्यम से दिया जाएगा जिनका अंतिम लक्ष्य कामवासना आदि का निवारण करना है।)

---

366. उच्चतर बेड़ियाँ
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविज्जा)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और इनके त्याग के लिए ज्ञान के सात कारकों का विकास करना आवश्यक है। ये

सात कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु ध्यान (सती) के ज्ञान कारक का विकास करता है... वह समभाव (उपेक्खा) के ज्ञान कारक का विकास करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य वासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है... जिसका आधार (निर्वाण) अमरता है, जिसका गंतव्य अमरता है, जिसका अंतिम लक्ष्य अमरता है... जो निर्वाण की ओर झुकता, ढलान बनाता और ढलान बनाता है। हे भिक्षुओं, ज्ञान के इन सात कारकों को इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए विकसित किया जाना चाहिए। 121

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, बाधाएँ।
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 3: ध्यान की स्थापना पर संबंधित प्रवचन (सतिपट्ठनसाम्युत्त) {साम्युत्त-47}
(i) अम्बापाली
367. अंबपाली (संपजानो के संबंध में पूर्ण बोध (संपजन्ना))
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वेशाली में अंबपाली के उपवन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!" 122

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और अप्रसन्नता के निवारण, विधि की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति, अर्थात् ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) के लिए एक मार्ग है। 123 वे चार अवस्थाएँ क्या हैं?

"यहाँ, भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यान में निवास करता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजानो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।" 124 वह व्यक्ति वेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर, अत्यंत सत्त्वपूर्ण, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यानमग्न रहता है। वह मन पर ध्यानमग्न होकर, अत्यंत सत्त्वपूर्ण, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यानमग्न रहता है। वह धर्मों पर ध्यानमग्न होकर, अत्यंत सत्त्वपूर्ण, पूर्णतः संबोधित और ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यानमग्न रहता है।

"हे भिक्षुओं, यही प्राणियों के शुद्धिकरण, दु:ख और विलाप पर विजय, पीड़ा और अप्रसन्नता के निवारण, विधि की प्राप्ति और निर्वाण की प्राप्ति का एकमार्ग है, अर्थात् ध्यान के चार चरणों की प्राप्ति का।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। वे भिक्षु प्रसन्न होकर भगवान (बुद्ध) के कथन से आनंदित हुए।

---

368. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
एक बार भगवान (बुद्ध) वेशाली में अंबपाली के उपवन में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, एक भिक्षु को ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः ज्ञानवान (संपजनो) रहना चाहिए: यही हमारा आपको निर्देश है। 125

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कैसे ध्यानमग्न होता है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर (कयानुपसी) पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहता है, उत्साही, पूर्णतः ज्ञानवान (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह वेदना में वेदना (संवेदना) पर ध्यानमग्न रहता है..." मन में मन... घटनाओं में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोध रखने वाला (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यानमग्न होता है।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु वह है जो आगे बढ़ते और लौटते समय; आगे और पीछे देखते समय; अंगों को सिकोड़ते और फैलाते समय; वस्त्र धारण करते और ग्रहण-पात्र धारण करते समय; भोजन करते, पीते, चबाते और चखते समय; शौच करते और मूत्र त्यागते समय; चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय पूर्ण बोध के साथ कार्य करता है। इसी प्रकार एक भिक्षु पूर्ण बोध का अभ्यास करता है। हे

भिक्षुओं, एक भिक्षु को ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्ण बोध (संपजन्न) अवस्था में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

---

369. एक भिक्षु
(चौथे सती-पठन/प्रतिष्ठा पर, अर्थात् काया, वेदना, चित्त और धम्म का त्रिविध तरीके से ध्यान करना - आंतरिक, बाह्य और दोनों आंतरिक+बाह्य) एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:

"आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें, तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर सकूँ।"

"यहाँ कुछ नासमझ लोग मुझसे इसी तरह निवेदन करते हैं, परन्तु जब उन्हें धम्म का उपदेश दिया जाता है, तो वे केवल मेरे पीछे-पीछे चलने का ही मन बनाते हैं।" 126

"भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें! सौभाग्यशाली (सुगतो) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें! शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का अर्थ समझ सकूँ; शायद मैं भगवान (बुद्ध) के कथन का उत्तराधिकारी बन सकूँ।" "

तो फिर, भिक्षु, लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं के आरंभिक बिंदु को शुद्ध करो। और लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभिक बिंदु क्या है? शुद्ध सद्‌गुण (शील) और सीधा दृष्टिकोण। 127 तब, भिक्षु, जब तुम्हारा सद्‌गुण शुद्ध हो जाए और तुम्हारा दृष्टिकोण सीधा हो जाए, सद्‌गुण पर आधारित, सद्‌गुण पर स्थापित, तो तुम्हें ध्यान (सती) के चार आधारों को त्रिविध तरीके से विकसित करना चाहिए।

" "वे चार कौन से हैं?" (1) हे भिक्षु, शरीर में शरीर का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हुए (अनुपसी) (i) आंतरिक रूप से (अज्जतम्), उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहो। शरीर में शरीर का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हुए (ii) बाह्य रूप से (बहिद्ध), उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के

प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहो। शरीर में शरीर का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हुए (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहो। 128

"(2) संवेदनाओं (वेदना) पर ध्यानपूर्वक (अनुपस्सी) चिंतन करो (i) आंतरिक रूप से ... (ii) बाह्य रूप से ... (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए।

(3) मन पर ध्यानपूर्वक (i) आंतरिक रूप से ... (ii) बाह्य रूप से ... (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए।

(4) धर्म की घटनाओं पर ध्यानपूर्वक चिंतन करते हुए (अनुपस्सी), (i) आंतरिक रूप से... (ii) बाह्य रूप से... (iii) आंतरिक और बाह्य रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"हे भिक्षु, जब तुम सद्गुणों पर आधारित, सद्गुणों में स्थापित, इन चारों ध्यान अवस्थाओं को इस प्रकार त्रिविध रूप से विकसित करते हो, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रख सकते हो, हानि की नहीं।"

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने स्थान से उठा और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए प्रस्थान किया।

फिर, एकांतवास में रहकर, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, उस भिक्षु ने दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना:
"पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन गए।

---

370. साला में
एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलवासियों के बीच ब्राह्मणों के गाँव साला में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो नवदीक्षित हैं, जिन्होंने अभी-अभी दीक्षा ली है, जो हाल ही में इस धर्म और अनुशासन में आए हैं, उन्हें ध्यान (सती) के चार प्रतिष्ठानों (पत्थाना/प्रतिष्ठान) के विकास में निर्देश, स्थिर और स्थापित किया जाना चाहिए। वे चार कौन से हैं?

'आओ, मित्रों, शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान (अनुपसी) में रहो, उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए, एकाग्र, निर्मल मन से, समाधि (सम्मोहन) अवस्था में, एकाग्र मन से, ताकि शरीर को उसके वास्तविक स्वरूप में जान सको। वेदनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए, संवेदनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने के लिए, उन पर ध्यान केंद्रित करें। मन को ध्यानपूर्वक देखते हुए, मन पर ध्यान केंद्रित करें, ताकि मन को उसके वास्तविक स्वरूप में जान सकें। धर्मों को ध्यानपूर्वक देखते हुए, धर्मों पर ध्यान केंद्रित करें, ताकि धर्मों को उनके वास्तविक स्वरूप में जान सकें।

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से पूर्ण मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं: वे भी शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), एकाग्र, निर्मल मन से, समाधि अवस्था में, एकाग्र मन से, शरीर को उसके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं। वे भी संवेदनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए ... संवेदनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं। वे भी मन को ध्यानपूर्वक देखते हुए ... मन को उसके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं। वे भी घटनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए ... घटनाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः समझने के लिए ध्यानमग्न रहते हैं।

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है और अंतिम ज्ञान द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गए हैं: वे भी शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं, उत्साही, पूर्णतः बोधशील, एकाग्र, निर्मल मन से समाधि

अवस्था में, एकाग्रचित्त मन से, शरीर से विरक्त। वे भी संवेदनाओं को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं... संवेदनाओं से विरक्त। वे भी मन को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं... मन से विरक्त। वे भी घटनाओं को देखते हुए ध्यानमग्न रहते हैं... घटनाओं से विरक्त।

"भिक्षुओं, वे भिक्षु जो नवदीक्षित हैं, जिन्हें दीक्षा लिए हुए अभी कुछ ही समय हुआ है, जो हाल ही में इस धम्म और अनुशासन में आए हैं, उन्हें ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों (पत्थाना/प्रतिष्ठान) के विकास में आपके द्वारा निर्देश, स्थिरीकरण और सुदृढ़ीकरण किया जाना चाहिए।"

---

371. हानिकारक वस्तुओं का ढेर (अकुसलारसी)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यदि किसी को 'हानिकारक (अकुशल) का ढेर' कहना हो, तो वह पाँच बाधाओं के बारे में ही कहेगा। क्योंकि यह संपूर्ण हानिकारक (अकुशल) का ढेर है, अर्थात् पाँच बाधाओं का। वे पाँच कौन सी हैं? कामुक इच्छा की बाधा, द्वेष की बाधा, आलस्य और सुस्ती की बाधा, बेचैनी और पश्चाताप की बाधा, संदेह की बाधा। यदि किसी को 'हानिकारक (अकुशल) का ढेर' कहना हो, तो वह इन्हीं पाँच बाधाओं के बारे में कहेगा। क्योंकि यह संपूर्ण हानिकारक (अकुशल) का ढेर है, अर्थात् पाँच बाधाओं का।

यदि, भिक्षुओं, किसी को 'लाभदायक (कुशल) का ढेर' कहना हो, तो वह चार स्थापनाओं के बारे में कहेगा।" ध्यान (सती) के बारे में यह कहना उचित है। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) का संपूर्ण संग्रह है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह वेदना में वेदना, मन में मन, और धर्म में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहता है। 129 यदि किसी चीज को 'लाभकारी (कुशल) का संग्रह' कहा जाए, तो वह इन चार ध्यान प्रतिष्ठानों के बारे में ही कहना उचित है। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) चीजों का पूरा ढेर है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान।

---

372. बाज़ (सकुनाग्घी)
भिक्षुओं, एक बार एक बाज़ अचानक झपटा और एक बटेर को पकड़ लिया। 130 तब, जब बाज़ बटेर को ले जा रहा था, तो उसने विलाप किया: 'हम कितने दुर्भाग्यशाली थे, कितने कम पुण्य वाले! हम अपने क्षेत्र से भटककर दूसरों के क्षेत्र में आ गए। अगर आज हम अपने क्षेत्र में, अपने पैतृक क्षेत्र में ही रहते, तो यह बाज़ मुझसे लड़ाई में टिक नहीं पाता।' - 'पर तुम्हारा अपना क्षेत्र क्या है, बटेर, तुम्हारा पैतृक क्षेत्र क्या है?' - 'मिट्टी के ढेलों से ढका हुआ नया जोता हुआ खेत।'

तब बाज़ ने अपनी शक्ति पर विश्वास रखते हुए, अपनी शक्ति का घमंड न करते हुए, 131 बटेर को मोक्ष की अवस्था में छोड़ते हुए कहा: 'अब जाओ, बटेर, पर वहाँ भी तुम मुझसे बच नहीं पाओगे।'

"फिर, भिक्षुओं, बटेर मिट्टी के ढेलों से ढके एक नए जोते हुए खेत में गई। एक बड़े ढेले पर चढ़कर वह वहाँ खड़ी हो गई और बाज़ को संबोधित करते हुए बोली, 'आओ, मुझे पकड़ो, बाज़! आओ, मुझे पकड़ो, बाज़!'

"तब बाज़, अपनी शक्ति पर आश्वस्त होकर, अपनी शक्ति का घमंड न करते हुए, अपने दोनों पंख समेटकर अचानक बटेर पर झपटी। लेकिन जब बटेर को पता चला, 'बाज़ पास आ गई है,' तो वह उस ढेले के अंदर घुस गई, और बाज़ ने वहीं पर उसकी छाती को चूर-चूर कर दिया। ठीक ऐसा ही होता है, भिक्षुओं, जब कोई अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में प्रवेश करता है।"

अत: हे भिक्षुओं, अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में न जाओ। जो अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में जाते हैं, उन पर शैतान का कब्ज़ा हो जाता है; शैतान उन्हें अपने वश में कर लेता है। 132

“और वह क्या है जो भिक्षु का अपना क्षेत्र नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है? वह है इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ। वे पाँच कौन सी हैं? आँखों से दिखाई देने वाले वे रूप जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली गंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा स्पर्शित वे वस्तुएँ जो आकर्षक, सुंदर, मनभावन, सुखद, कामुक और उत्तेजक हैं। ये इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ हैं। यही वह है जो भिक्षु का अपना क्षेत्र नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है।”

"भिक्षुओं, अपने-अपने क्षेत्र में, अपने-अपने पैतृक क्षेत्र में विचरण करो। जो लोग अपने-अपने क्षेत्र में, अपने-अपने पैतृक क्षेत्र में विचरण करते हैं, उन तक मारा नहीं पहुंच पाएगा; मारा उन पर हावी नहीं हो पाएगा।"

और भिक्षु का क्षेत्र, उसका अपना पैतृक क्षेत्र क्या है? यह ध्यान के चार प्रतिष्ठान (सति) हैं। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। वे वेदना में वेदना को देखते हुए, मन में मन को देखते हुए, और धम्म में धम्म को देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। यही भिक्षु का क्षेत्र है, उसका अपना पैतृक क्षेत्र है।

---

373. बंदर (मक्काटा सं. मार्कट)
"भिक्षुओं, हिमालय में, जो पर्वतों का राजा है, ऐसे ऊबड़-खाबड़ और पथरीले इलाके हैं जहाँ न तो बंदर जा सकते हैं और न ही मनुष्य; ऐसे भी ऊबड़-खाबड़ और पथरीले इलाके हैं जहाँ बंदर जा सकते हैं लेकिन मनुष्य नहीं; ऐसे भी समतल और रमणीय क्षेत्र हैं जहाँ बंदर और मनुष्य दोनों जा सकते हैं। वहाँ, बंदरों के रास्तों पर, शिकारी बंदरों को पकड़ने के लिए तारकोल के जाल बिछाते हैं।

जो बंदर बचकाने और लापरवाह नहीं होते, वे तारकोल को देखकर दूर से ही बच निकलते हैं। परन्तु जो बंदर बचकाना और लापरवाह होता है, वह तारकोल के पास जाकर उसे हाथ से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है। 'मैं अपना हाथ छुड़ा लूँगा' सोचकर वह दूसरे हाथ से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है। 'मैं दोनों हाथ छुड़ा लूँगा' सोचकर वह पैर से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है। 'मैं दोनों हाथ और पैर छुड़ा लूँगा' सोचकर वह दूसरे पैर से पकड़ लेता है; वह वहीं फँस जाता है।" यह सोचकर कि 'मैं अपने दोनों हाथ-पैर मुक्त कर लूँगा', वह अपना थूथन उस पर लगाता है; वह वहीं फँस जाता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, वह बंदर, पाँचों बिंदुओं से फँसा हुआ, वहाँ चीखता पड़ा है। उस पर विपत्ति और विपत्ति आई है और शिकारी उसके साथ जो चाहे कर सकता है। शिकारी उसे भाले से मारता है, उसी लकड़ी के टुकड़े से बाँध देता है, 133 और जहाँ चाहे चला जाता है। भिक्षुओं, यही होता है जब कोई अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में चला जाता है।

"इसलिए, भिक्षुओं, अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में न जाओ। जो लोग अपने क्षेत्र से बाहर निकलकर दूसरों के क्षेत्र में चले जाते हैं, उन पर मारा (शैतान) का अधिकार हो जाता है; मारा उन पर अपना अधिकार जमा लेता है।

और वह क्या है जो भिक्षु का अपना स्थान नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है? वह है इंद्रिय सुख की पाँच डोरियाँ... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... यही वह है जो भिक्षु का अपना स्थान नहीं बल्कि दूसरों का क्षेत्र है। हे

भिक्षुओं, अपने ही स्थान पर, अपने ही पैतृक क्षेत्र में विचरण करो। जो अपने ही स्थान पर, अपने ही पैतृक क्षेत्र में विचरण करते हैं, उन तक मारा नहीं पहुँच पाएगा; मारा उन पर हावी नहीं हो पाएगा।

और भिक्षु का आश्रय स्थल, उसका पैतृक क्षेत्र क्या है? यह ध्यान के चार प्रतिष्ठान (सती) हैं। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। वह संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। यही भिक्षु का आश्रय स्थल है, उसका पैतृक क्षेत्र है।

---

374. रसोइया (सूद)
(i. अयोग्य रसोइया)

"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया किसी राजा या राजमंत्री को तरह-तरह के व्यंजन परोसता है: खट्टा, कड़वा, तीखा, मीठा, चटपटा, हल्का, नमकीन, और बेस्वाद।

वह नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया अपने स्वामी की पसंद को नहीं समझ पाता: 134 'आज मेरे स्वामी को यह व्यंजन पसंद आया, या उन्होंने यह व्यंजन उठाया, या उन्होंने यह व्यंजन अधिक खाया, या उन्होंने इसकी प्रशंसा की; या आज मेरे स्वामी को खट्टा व्यंजन पसंद आया, या उन्होंने खट्टा व्यंजन उठाया, या उन्होंने खट्टा व्यंजन अधिक खाया, या उन्होंने इसकी प्रशंसा की; या कड़वे व्यंजन... या चटपटे व्यंजन... या मीठे व्यंजन... या चटपटे व्यंजन... या हल्के व्यंजन... या नमकीन व्यंजन... या बेस्वाद व्यंजन मेरे स्वामी को पसंद आया... या उन्होंने बेस्वाद व्यंजन की प्रशंसा की।'

वह नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया वस्त्र, वेतन और बोनस जैसे उपहार प्राप्त नहीं करता। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन रसोइया अपने स्वामी की पसंद को नहीं पहचानता।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई नासमझ, अयोग्य और अनुभवहीन भिक्षु शरीर में शरीर को ध्यान से देख रहा है, वह पूरी तरह से संवेदनशील और ध्यानमग्न है, उसने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। जब वह शरीर में शरीर को ध्यान से देख रहा होता है, तो उसका मन समाधि अवस्था में नहीं जाता, उसके विकार (उपकिलेष) दूर नहीं होते, और वह उस निमित्त (निमित्त) को नहीं पहचानता। 135 वह ध्यान में लीन होकर संवेदनाओं (वेदना) को देखता है... मन में मन... घटनाओं (धम्म) को घटनाओं (धम्म) में, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न (सतिमा) होता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। जब वह ध्यान में लीन होकर घटनाओं (धम्म) को देखता है, तो उसका मन समाधि अवस्था में नहीं जाता, उसके विकार (उपकिलेसा) नहीं छूटते, और वह निमित्त (निमित्त) का ग्रहण नहीं करता।

वह अपरिपक्व, अकुशल भिक्षु इस जीवन में सुखी निवास प्राप्त नहीं कर पाता, न ही उसे सती ध्यान और संपजन्न की पूर्ण समझ प्राप्त होती है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, वह अपरिपक्व, अकुशल भिक्षु अपने मन के निमित्त (संकेत) को नहीं पहचान पाता।

(ii. कुशल रसोइया)

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बुद्धिमान, कुशल रसोइया किसी राजा या राजमंत्री को विभिन्न प्रकार के व्यंजन परोसता है: खट्टा, कड़वा, तीखा, मीठा, चटपटा, हल्का, नमकीन, सादा। 136

वह बुद्धिमान, कुशल रसोइया अपने स्वामी की पसंद को पहचान लेता है: 'आज यह व्यंजन मेरे स्वामी को पसंद आया... या उन्होंने सादे व्यंजन की प्रशंसा की।'

वह बुद्धिमान, कुशल और निपुण रसोइया वस्त्र, वेतन और बोनस जैसे उपहार प्राप्त करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि वह बुद्धिमान, कुशल और निपुण रसोइया अपने स्वामी की पसंद को पहचान लेता है।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई बुद्धिमान, कुशल और निपुण भिक्षु शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी) बैठा है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजानो) और ध्यानमग्न (सतिमा) है, उसने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। जब वह शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए (अनुपसी) बैठा होता है, तो उसका मन समाधि अवस्था में चला जाता है, उसके विकार (उपकिलेसा) त्याग जाते हैं, और वह उस निमित्त (निमित्त) को पहचान लेता है। वह ध्यानमग्न होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धम्म) पर घटनाओं पर ध्यान लगाते हैं, वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होते हैं। जब वे ध्यानमग्न होकर घटनाओं (धम्म) पर ध्यान लगाते हैं, तो उनका मन समाधि अवस्था में चला जाता है, उनके विकार (उपकिलेष) त्याग जाते हैं, और वे निमित्त (कारण) को ग्रहण कर लेते हैं।

"वह बुद्धिमान, योग्य और कुशल भिक्षु इसी जीवन में सुखद निवास प्राप्त करता है, और वह ध्यान और पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) प्राप्त करता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, वह बुद्धिमान, योग्य और कुशल भिक्षु अपने मन के निमित्त (कारण) को ग्रहण कर लेता है।"

---

375. बीमारी (गिलाना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 137 एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में बेलुवागमक में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"आओ, भिक्षुओं, जहाँ भी वैशाली के आसपास तुम्हारे मित्र, परिचित और घनिष्ठ मित्र हों, वहाँ वर्षावास में प्रवेश करो। मैं स्वयं यहीं बेलुवागमक में वर्षावास में प्रवेश करूँगा।"

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और वे वैशाली के आसपास जहाँ भी उनके मित्र, परिचित और घनिष्ठ मित्र थे, वहाँ वर्षावास में प्रवेश कर गए, जबकि भगवान (बुद्ध) ने वहीं बेलुवागमक में वर्षावास में प्रवेश किया।

फिर, जब भगवान (बुद्ध) ने वर्षावास में प्रवेश किया, तो उन्हें एक गंभीर बीमारी हो गई और मृत्यु के समान भयानक पीड़ा ने उन्हें घेर लिया। परन्तु भगवान (बुद्ध) ने ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजनो) होकर, बिना विचलित हुए, उन्हें सहन किया। तब भगवान (बुद्ध) के मन में यह विचार आया: "अपने सेवकों को संबोधित किए बिना और भिक्षु संघ से विदा लिए बिना अंतिम निर्वाण प्राप्त करना मेरे लिए उचित नहीं है। इसलिए, मैं अपनी ऊर्जा से इस रोग को वश में कर लूँ और संकल्पमय जीवन का निश्चय करके जीवित रहूँ।" 138 तब भगवान (बुद्ध) ने अपनी ऊर्जा से उस रोग को वश में कर लिया और संकल्पमय जीवन का निश्चय करके जीवित रहे। फिर भगवान

(बुद्ध) उस रोग से ठीक हो गए। ठीक होने के तुरंत बाद, वे अपने निवास से बाहर आए और निवास के पीछे छाया में तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यह अत्यंत प्रसन्नता है कि भगवान (बुद्ध) स्वस्थ हैं, यह अत्यंत प्रसन्नता है कि वे ठीक हो गए हैं! 139 परन्तु हे पूज्यवर, जब भगवान (बुद्ध) बीमार थे, तो मेरा शरीर मानो नशे में था, मैं भ्रमित हो गया था, मुझे शिक्षाएँ स्पष्ट नहीं थीं। फिर भी, मुझे इस बात से इतनी तसल्ली मिली कि भगवान (बुद्ध) भिक्षु संघ के विषय में कुछ घोषणा किए बिना अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करेंगे।"

आनंद, भिक्षु संघ अब मुझसे क्या अपेक्षा रखता है? मैंने धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश दिया है, आनंद, भीतर और बाहर के बीच कोई भेद किए बिना। तथागत शिक्षाओं के मामले में किसी भी प्रकार से कठोर शिक्षक नहीं हैं। आनंद, यदि कोई सोचता है, 'मैं भिक्षु संघ का कार्यभार संभालूंगा' या 'भिक्षु संघ मेरे मार्गदर्शन में है', तो भिक्षु संघ के विषय में घोषणा करना उसका कर्तव्य है। लेकिन आनंद, तथागत के मन में यह विचार नहीं आता कि 'मैं भिक्षु संघ का कार्यभार संभालूंगा' या 'भिक्षु संघ मेरे मार्गदर्शन में है', तो तथागत भिक्षु संघ के विषय में घोषणा क्यों करेंगे? अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, आनंद, उम्र का बोझ मुझ पर है, जीवन के अंतिम पड़ाव पर आ गया हूँ। मेरी आयु अब अस्सी वर्ष की हो रही है। जैसे कोई पुरानी गाड़ी पट्टियों के संयोजन से चलती रहती है, 141 वैसे ही लगता है तथागत का शरीर पट्टियों के संयोजन से चलता रहता है।

हे आनंद, जब भी तथागत सभी निमित्त कारणों का अनासक्ति भाव रखकर और कुछ वेदनाओं का निरोध करके, अनिमित्त समाधि अवस्था में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं, उस समय तथागत का शरीर अधिक सुखी होता है। इसलिए, हे आनंद, अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, स्वयं में ही निवास करो; धम्म (मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में स्थित प्रकाश) को ही अपना द्वीप मानकर, धम्म को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, कैसे निवास करता है? हे आनंद, एक भिक्षु कैसे अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, धम्म को ही अपना द्वीप मानकर, धम्म को ही अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, निवास करता है? यहाँ, हे आनंद, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो) होकर ध्यान में निवास करता है। ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह (शुरुआत में) संवेदनाओं (वेदना) पर ध्यान लगाते हुए, मन में मन... (अंत में) घटनाओं (धम्म) पर ध्यान लगाते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजानो, भीतर और बाहर दोनों, अर्थात् मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर का प्रकाश और बाह्य शरीर भी), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"हे आनंद, वे भिक्षु, चाहे अभी हों या मेरे जाने के बाद, जो स्वयं को अपना द्वीप मानकर, स्वयं को अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, धम्म (मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर का प्रकाश) को अपना द्वीप मानकर, धम्म को अपना आश्रय मानकर, किसी अन्य आश्रय के बिना, निवास करते हैं - हे आनंद, मेरे लिए वे ही भिक्षु प्रशिक्षण के प्रति सबसे अधिक तत्पर होंगे।" 143

---

376. भिक्षुणियों का निवास स्थान

फिर सुबह पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र धारण करके भिक्षुणियों के कक्ष में जाकर निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब कई भिक्षुणियां पूज्य आनंद के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और उनसे कहा,

“हे पूज्य आनंद, यहाँ कई भिक्षुणियां हैं जो सती ध्यान की चार अवस्थाओं में सजग रहकर उत्तरोत्तर उच्चतर स्तर की साधना प्राप्त कर रही हैं।”

“जी हाँ, बहनों, जी हाँ! यह किसी से भी अपेक्षित है, बहनों - चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी - जो ध्यान की चार अवस्थाओं में सजग रहकर साधना करता है, वह उत्तरोत्तर उच्चतर स्तर की साधना प्राप्त करेगा।”

तब पूज्य आनंद ने उन भिक्षुणियों को धर्म के उपदेश से प्रेरित और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए। फिर पूज्य आनंद श्रावस्ती में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ हुआ था, वह सब बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"ऐसा ही है, आनंद, ऐसा ही है! आनंद, जो भी भिक्षु हो या भिक्षुणी, ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) में अच्छी तरह से स्थापित मन से रहता है, उससे उत्तरोत्तर उच्चतर स्तर की विशिष्टता प्राप्त करने की अपेक्षा की जा सकती है।

"वे चार अवस्थाएँ कौन सी हैं? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।" जब भिक्षु शरीर में शरीर का ध्यान करते हुए चिंतन कर रहा होता है, तो शरीर के कारण उसमें या तो शरीर में बुखार उत्पन्न होता है, या मन में सुस्ती आती है, या मन बाहरी विचारों में भटक जाता है। तब भिक्षु को अपना मन किसी प्रेरक कारण (निमित्त) की ओर लगाना चाहिए। 145 जब वह अपना मन किसी प्रेरक कारण (निमित्त) की ओर लगाता है, तो प्रसन्नता उत्पन्न होती है। प्रसन्न होने पर उसे परमानंद (पीति/प्रीति) प्राप्त होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से ऊपर उठता है, तो शरीर शांत हो जाता है। शरीर में शांत व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में चला जाता है। वह सोचता है: 'जिस उद्देश्य के लिए मैंने अपना मन लगाया था, वह पूरा हो गया है। अब मैं इसे वापस ले लूँ।' 146 अतः वह मन को वापस ले लेता है और न तो सोचता है और न ही जाँच करता है। वह समझता है: 'बिना विचार और जाँच के, आंतरिक ध्यान में लीन होकर, मैं प्रसन्न हूँ।' 147

"फिर, एक भिक्षु ध्यान में लीन होकर वेदनाओं पर ध्यान लगाता है... मन में मन... घटनाओं पर धम्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। जब वह घटनाओं पर ध्यान लगाता है, तो घटनाओं के आधार पर उसमें या तो शरीर में बुखार उत्पन्न होता है, या मन में सुस्ती आती है, या मन बाहरी रूप से विचलित हो जाता है। तब उस भिक्षु को अपना मन किसी प्रेरक कारण की ओर लगाना चाहिए। जब वह अपना मन किसी प्रेरक कारण की ओर लगाता है... तो वह समझता है: 'बिना विचार और परीक्षण के, आंतरिक रूप से ध्यानमग्न होकर, मैं प्रसन्न हूँ।' आनंद

, इसी प्रकार दिशा द्वारा विकास होता है।" 148

"और हे आनंद, बिना दिशा के विकास कैसे संभव है? अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है: 'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त), दिशाहीन है।' 149 तब वह आगे समझता है: 'मैं शरीर में शरीर पर ध्यानपूर्वक (अनुपस्सी) रहता हूँ, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा); मैं प्रसन्न हूँ।'

अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है:
'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त, दिशाहीन है।' तब वह आगे समझता है: 'मैं संवेदनाओं में (वेदनाओं पर) ध्यानपूर्वक (अनुपस्सी) रहता हूँ, उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजनो), ध्यानमग्न; मैं प्रसन्न हूँ।'

"अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है:
'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त है, दिशाहीन है।' तब वह आगे समझता है: 'मैं मन में मन को देखते हुए (अनुपस्सी) ध्यानमग्न रहता हूँ, उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न; मैं प्रसन्न हूँ।'

"अपने मन को बाह्य रूप से निर्देशित न करते हुए, एक भिक्षु समझता है:
'मेरा मन बाह्य रूप से निर्देशित नहीं है।' तब वह समझता है: 'यह आगे और पीछे दोनों ओर अप्रतिबंधित है, मुक्त है, दिशाहीन है।' तब वह आगे समझता है: 'मैं घटनाओं में घटनाओं (धम्म) को देखते हुए (संपजानो), उत्साही, पूर्णतः बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहता हूँ; मैं प्रसन्न हूँ।'

"आनंद, इसी तरह बिना दिशा के विकास होता है।

इस प्रकार, आनंद, मैंने दिशा सहित विकास सिखाया है, मैंने बिना दिशा के विकास सिखाया है। आनंद, जो कुछ भी एक दयालु गुरु को अपने शिष्यों के प्रति करुणा से, उनके कल्याण की कामना करते हुए करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। ये वृक्षों की शाखाएँ हैं, आनंद, ये खाली झोपड़ियाँ हैं। ध्यान करो, आनंद।" आलसी मत बनो, वरना बाद में पछताओगे। यही हमारी तुम्हें सलाह है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए।

(ii) नालंदा

377. एक महान पुरुष (महापुरुष)

सावत्थी में। तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, कहते हैं, 'महान पुरुष, महान पुरुष।' 150 पूज्यवर, किस प्रकार कोई व्यक्ति महान पुरुष होता है?"

"मैं कहता हूँ, सारिपुत्त, मुक्त मन से ही कोई व्यक्ति महान पुरुष होता है। मुक्त मन के बिना, मैं कहता हूँ, कोई व्यक्ति महान पुरुष नहीं होता।

" "और सारिपुत्त, मुक्त मन कैसे प्राप्त होता है? यहाँ, सारिपुत्त, एक भिक्षु शरीर में शरीर को निहारते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।" जब वह शरीर में शरीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए लीन रहता है, तो मन वैराग्यमय हो जाता है और अनासक्ति के कारण वह दोषों से मुक्त हो जाता है।

"वह वेदनाओं को ध्यानपूर्वक देखते हुए, मन को ध्यानपूर्वक देखते हुए, धम्म को ध्यानपूर्वक देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर लीन रहता है। जब वह धम्म को ध्यानपूर्वक देखते हुए लीन रहता है, तो मन वैराग्यमय हो जाता है और अनासक्ति के कारण वह दोषों से मुक्त हो जाता है।

"इस प्रकार, सारिपुत्त, व्यक्ति का मन मुक्त (विमुक्त, संस्कृतः विमुक्त) होता है। मैं कहता हूँ, सारिपुत्त, मुक्त मन वाला व्यक्ति महान पुरुष होता है। मैं कहता हूँ, मुक्त मन के बिना व्यक्ति महान पुरुष नहीं होता।"

---

378. नालंदा

एक बार भगवान (बुद्ध) नालंदा में पावारिक-आम के बाग (पावारिक-अंबावन) में निवास कर रहे थे। 151 तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, मुझे भगवान (बुद्ध) पर इतना विश्वास है कि मेरा मानना है कि ज्ञान के मामले में भगवान (बुद्ध) से अधिक ज्ञानी कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण न कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है।" "सारिपुत्त

, तुम्हारा यह प्रखर वचन वास्तव में महान है; तुमने एक निश्चित, स्पष्ट सिंह की दहाड़ लगाई है: 152 'पूज्यवर, मुझे भगवान (बुद्ध) पर इतना विश्वास है कि मेरा मानना है कि ज्ञान के मामले में भगवान (बुद्ध) से अधिक ज्ञानी कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण न कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है।' क्या अब, सारिपुत्त, आपने अपने मन में उन सभी अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्धों के मन को समाहित कर लिया है, जो अतीत में प्रकट हुए और इस प्रकार जानते थे:
'वे भगवान (बुद्ध) ऐसे गुणों (शील), ऐसे गुणों (पन्न) या ऐसी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) या ऐसे निवासों, या ऐसी मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) के थे'? 153

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो, सारिपुत्त, क्या आपने अपने मन में उन सभी अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्धों के मन को समाहित कर लिया है, जो भविष्य में प्रकट होंगे और इस प्रकार जानेंगे: 'वे भगवान (बुद्ध) ऐसे गुणों (या ऐसे गुणों) या ऐसी पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) या ऐसे निवासों, या ऐसी मुक्ति के होंगे'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो, सारिपुत्त, क्या आपने मेरे मन को - जो इस समय अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हूँ - अपने ज्ञान में समाहित कर लिया है और यह जान लिया है कि 'भगवान (बुद्ध) ऐसे गुणों, ऐसी अंतर्दृष्टि, ऐसे निवासों और ऐसी मुक्ति के स्वामी हैं'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"सारिपुत्त, जब आपको अतीत, भविष्य और वर्तमान के अरहंतों, पूर्णतः प्रबुद्धों के मन का ज्ञान नहीं है, तो आप यह उदात्त, गर्जनापूर्ण कथन क्यों करते हैं और इस निश्चित, स्पष्ट सिंह की गर्जना क्यों करते हैं: 'पूज्यवरवर, मुझे भगवान (बुद्ध) पर इतना विश्वास है कि मेरा मानना है कि ज्ञान के विषय में भगवान (बुद्ध) से अधिक ज्ञानी कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण न कभी हुआ है, न कभी होगा और न ही वर्तमान में है'?"

"हे पूज्यवर, मुझे अतीत, भविष्य और वर्तमान के पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंतों के मन का कोई ज्ञान नहीं है, परन्तु मैंने धम्म (मार्ग, नियम) से अनुमान लगाकर यह समझा है। 154 मान लीजिए, हे पूज्यवर, एक राजा का एक सीमावर्ती नगर था जिसमें मजबूत प्राचीरें, दीवारें और मेहराब थे तथा केवल एक ही द्वार था। वहाँ तैनात द्वारपाल बुद्धिमान, सक्षम और समझदार होगा; ऐसा व्यक्ति जो अजनबियों को बाहर रखे और परिचितों को प्रवेश दे। नगर के चारों ओर बने मार्ग पर चलते समय उसे दीवारों में एक भी ऐसी दरार या छेद दिखाई नहीं देगा जो एक बिल्ली के निकलने के लिए भी काफी बड़ा हो। वह सोच सकता है:
'इस नगर में जो भी बड़े प्राणी प्रवेश करते हैं या बाहर जाते हैं, वे सभी इसी एक द्वार से प्रवेश करते हैं और बाहर जाते हैं।

' इसी प्रकार, हे पूज्यवर, मैंने धम्म से अनुमान लगाकर यह समझा है: अतीत में जितने भी पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत हुए, उन सभी बुद्धों ने सबसे पहले पाँचों नियमों का त्याग किया था। 155 हे पूज्यवर, भविष्य में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध होंगे, वे सभी भगवान (बुद्ध) सर्वप्रथम मन की पाँच बाधाओं, विकारों (उपकिलेसा) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) को कमजोर करने वाले कारकों का त्याग करेंगे; और फिर, ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) में अपने मन को सुस्थापित करके, वे प्रबुद्धता के सात कारकों को सही ढंग से विकसित करेंगे; और इस प्रकार वे अतुलनीय पूर्ण प्रबुद्धता को प्राप्त करेंगे। और, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध), जो वर्तमान में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, ने सर्वप्रथम मन की पाँच बाधाओं, विकारों (उपकिलेष) और प्रबोधन (ज्ञान) को कमजोर करने वाले कारकों का त्याग किया; और फिर, ध्यान की चार अवस्थाओं में अच्छी तरह से स्थापित होकर, उन्होंने ज्ञान के सात कारकों को सही ढंग से विकसित किया; और इस प्रकार वे अतुलनीय पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं। "

अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! इसलिए, सारिपुत्त, आपको भिक्षुओं और भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को इस धम्म व्याख्या को बार-बार सुनाना चाहिए। भले ही कुछ नासमझ लोगों को तथागत के विषय में भ्रम या अपवित्रता हो, इस धम्म व्याख्या को सुनकर तथागत के विषय में उनकी भ्रम या अपवित्रता दूर हो जाएगी।" 156

---

379. कुंडा
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। 157 उस समय पूज्य सारिपुत्त मगधियों के बीच नलकगम में रह रहे थे - वे बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार थे - और नवोदित चुंडा उनका सेवक था। 158 तब, उस बीमारी के कारण, पूज्य सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया।

नवोदित चुंडा, पूज्य सारिपुत्त का कुंड और वस्त्र लेकर सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में गया। वहाँ उसने पूज्य आनंद के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया है। यह उनका कुंड और वस्त्र है।"

"मित्र चुंडा, हमें इस समाचार के बारे में भगवान (बुद्ध) से मिलना चाहिए। आओ, मित्र चुंडा, हम भगवान (बुद्ध) के पास चलते हैं और उन्हें यह बात बताते हैं।"

"जी, आदरणीय," नवोदित चुंडा ने उत्तर दिया।

तब आदरणीय आनंद और नवोदित चुंडा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। आदरणीय आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "हे आदरणीय, यह नवोदित चुंडा कहता है कि आदरणीय सारिपुत्त ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है, और यह उनका कुंड और वस्त्र है। आदरणीय, जब से मैंने यह सुना है कि आदरणीय सारिपुत्त ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है, मेरा शरीर ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी नशे में हो, मैं भ्रमित हो गया हूँ, और शिक्षाएँ अब मुझे स्पष्ट नहीं हैं।" 159

"आनंद, जब सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया, तो क्या उन्होंने तुम्हारे गुणों (शील) का सार (खंड संस्कृत) छीन लिया, या तुम्हारी समाधि अवस्था (सम्मोहन) का सार, या तुम्हारी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) का सार, या तुम्हारी मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत संस्कृत) का सार, या मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि का सार?" 160

"नहीं, उन्होंने नहीं छीना, पूज्यवर। लेकिन मेरे लिए पूज्य सारिपुत्त एक सलाहकार और परामर्शदाता थे, जिन्होंने मुझे शिक्षा दी, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। 161 वे धम्म (मार्ग, नियम) का अविचलित उपदेश देते थे; वे ब्रह्मचर्य जीवन में अपने भाइयों के सहायक थे। हम पूज्य सारिपुत्त द्वारा दिए गए धम्म के पोषण, धम्म के धन और धम्म की सहायता को याद करते हैं।"

लेकिन क्या मैंने पहले ही यह घोषणा नहीं की है, आनंद, कि हमें उन सभी से अलग होना पड़ेगा जो हमें प्रिय और प्रिय हैं? आनंद, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, वह संबद्ध (संक्षिप्त) और विघटन के अधीन होकर भी विघटित न हो!'? यह असंभव है। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी विशाल वृक्ष की सबसे बड़ी शाखा उसे तोड़ दे, जिसमें हृदय की लकड़ी हो: उसी प्रकार, आनंद, हृदय की लकड़ी से युक्त महान भिक्षु संघ में, सारिपुत्त ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया है। आनंद, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, वह संबद्ध (संक्षिप्त) और विघटन के अधीन होकर भी विघटित न हो!'? यह असंभव है।

इसलिए, हे आनंद, अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना, धम्म को ही अपना द्वीप मानकर, धम्म को ही अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना निवास करो... (जैसा कि पहले कहा गया है)... हे आनंद, वे भिक्षु, चाहे अभी हों या मेरे जाने के बाद, जो अपने आप को ही अपना द्वीप मानकर, अपने आप को ही अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना निवास करते हैं; जो धम्म को अपना द्वीप मानकर, धम्म को अपना आश्रय मानकर, किसी और आश्रय के बिना निवास करते हैं - हे आनंद, मेरे लिए वे ही भिक्षु प्रशिक्षण के प्रति सबसे अधिक उत्सुक होंगे।

---

380. उक्कासेला

एक बार भगवान (बुद्ध) गंगा नदी के तट पर उक्काचेला में वज्जियों के बीच एक विशाल भिक्षु संघ के साथ निवास कर रहे थे, सारिपुत्त और मोग्गलाना के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद। 162 उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षु संघ के बीच खुले में बैठे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने मौन भिक्षु संघ का अवलोकन करते हुए भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, सारिपुत्त और मोग्गलाना के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद अब यह सभा मुझे खाली प्रतीत होती है। यह सभा मेरे लिए [पहले] खाली नहीं थी, 163 और मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं थी कि सारिपुत्त और मोग्गलाना कहाँ निवास कर रहे थे।

अतीत में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष प्रकट हुए, उनके भी सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान ही श्रेष्ठ शिष्य थे, जैसे मेरे थे।" भविष्य में जो अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष उत्पन्न होंगे, उनके भी सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान ही श्रेष्ठ शिष्य होंगे।

"हे भिक्षुओं, शिष्यों के लिए यह अद्‌भुत है, यह आश्चर्यजनक है कि वे गुरु के निर्देशों का पालन करेंगे और उनकी नसीहतों का अनुपालन करेंगे, वे चारों सभाओं के प्रिय और प्रशंसनीय होंगे, उनका आदर और सम्मान किया जाएगा। 164 हे भिक्षुओं, तथागत के लिए यह अद्‌भुत है, यह आश्चर्यजनक है कि जब शिष्यों की ऐसी जोड़ी को परम निर्वाण प्राप्त हो जाता है, तो तथागत को कोई दुःख या विलाप नहीं होता।

"हे भिक्षुओं, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, जो संक्षिप्त (संक्षिप्त) है और विघटन के अधीन है, वह विघटित न हो!'? यह असंभव है।" यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी विशाल वृक्ष की सबसे बड़ी शाखाएँ उसे तोड़कर अलग कर दें: ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, उस महान भिक्षु संघ में, जो हृदय से युक्त है, सारिपुत्त और मोग्गलाना ने अंतिम निर्वाण प्राप्त किया है। हे भिक्षुओं, यहाँ यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है: 'जो जन्म लेता है, जो संबद्ध (संक्षिप्त) है और जो विघटन के अधीन है, वह विघटित न हो!'? यह असंभव है।

इसलिए, हे भिक्षुओं, अपने भीतर ही अपना द्वीप मानकर निवास करो, अपने आप को ही अपना आश्रय बनाओ, किसी और का आश्रय न लो; धम्म को ही अपना द्वीप मानकर निवास करो, धम्म को ही अपना आश्रय बनाओ, किसी और का आश्रय न लो... (जैसा कि ऊपर अनुच्छेद 375 में है)... वे भिक्षु, चाहे अभी हों या मेरे जाने के बाद, जो अपने भीतर ही अपना द्वीप मानकर निवास करते हैं, अपने आप

को ही अपना आश्रय बनाते हैं, किसी और का आश्रय नहीं लेते; धम्म को अपना द्वीप मानकर निवास करते हैं, धम्म को ही अपना आश्रय बनाते हैं, किसी और का आश्रय नहीं लेते - मेरे लिए वे ही भिक्षु प्रशिक्षण के प्रति सबसे अधिक उत्सुक होंगे।

---

381. बहिया
सावत्थी में। तब पूज्य बाहिया भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांत, सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"तो फिर, बाहिया, लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं के आरंभिक बिंदु को शुद्ध करो। 165 और लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभिक बिंदु क्या है? शुद्ध सद्गुण (शील) और सीधा दृष्टिकोण। तब, बाहिया, जब आपका सद्गुण शुद्ध हो जाए और आपका दृष्टिकोण सीधा हो जाए, सद्गुण पर आधारित, सद्गुण पर स्थापित, तो आपको ध्यान (सती) के चार आधारों को विकसित करना चाहिए।

" "वे चार कौन से हैं?" हे बाहिया, यहाँ शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में विलीन रहो, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में विलीन रहो (जैसा कि 369 में है)।

“हे बाहिया, जब तुम सद्गुणों पर आधारित, सद्गुणों पर स्थापित होकर ध्यान की इन चारों अवस्थाओं को इस प्रकार विकसित करोगे, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रखोगे, हानि की नहीं।” तब

पूज्य बाहिया, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर, प्रस्थान किया। फिर, एकांतवास में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य बाहिया ने दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करते हुए, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त किया और उसमें निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन की ओर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई महत्व नहीं है।" और पूज्य बाहिया अरहंतों में से एक बन गए।

---

382. उत्तिया
सावत्थी में। तब पूज्य उत्तिया भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे... (जैसा कि पिछले सूत्र में है, आगे तक): ...

"हे उत्तिया, जब तुम सद्गुणों पर आधारित होकर, सद्गुणों में स्थिर होकर, ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सति) को इस प्रकार विकसित करोगे, तो तुम मृत्युलोक से परे हो जाओगे।"

तब पूज्य उत्तिया, भगवान (बुद्ध) के वचनों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे... (जैसा कि पिछले सूत्र में है) ... और पूज्य उत्तिया अरहंतों में से एक बन गए।

---

383. नोबल (आरिया, आर्या का संक्षिप्त रूप)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होती हैं; ये अभ्यास करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाती हैं। वे चार कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्ण रूप से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्ण रूप से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होती हैं; ये अभ्यास करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (संपजनो) की ओर ले जाती हैं।

---

384. ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)

एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरी चराने वाले के बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। फिर, जब भगवान (बुद्ध) एकांतवास में थे, तब उनके मन में यह विचार आया: “यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय, पीड़ा और अप्रसन्नता के निवारण, विधि की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति, अर्थात् ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का एक ही मार्ग है। वे चार अवस्थाएँ क्या हैं? यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। वह वेदनाओं में वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है... मन में मन... धर्मों में धर्मों को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। यही प्राणियों के शुद्धिकरण का एक ही मार्ग है।” ...अर्थात्, ध्यान के चार प्रतिष्ठान।"

तब ब्रह्मा सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही शीघ्रता से ब्रह्मालोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। 166 उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, अपने जुड़े हुए हाथों से भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: "हे भगवान (बुद्ध)! हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय महोदय, प्राणियों के शुद्धिकरण का यही एक मार्ग है... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)...अर्थात्, ध्यान के चार प्रतिष्ठान।"

ब्रह्मा सहमपति ने यही कहा। यह कहकर उन्होंने आगे कहा:

"पुनर्जन्म के विनाश (खयाल/क्षय) के द्रष्टा,
करुणामय, उस एक मार्ग को जानते हैं

जिससे होकर उन्होंने अतीत में बाढ़ पार की थी,
जिससे होकर वे अब भी पार करेंगे।"

---

385. सेडाका

एक बार भगवान (बुद्ध) शुम्भों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ शुम्भों का एक नगर था जिसका नाम सेदक था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, एक बार एक कलाबाज ने अपना बाँस का खंभा खड़ा किया और अपने शिष्य मेदकथालिका से कहा: 167 'आओ, प्रिय मेदकथालिका, बाँस के खंभे पर चढ़ो और मेरे कंधों पर खड़े हो जाओ।' 'जी, गुरुजी' कहकर शिष्य मेदकथालिका बाँस के खंभे पर चढ़ गया और गुरुजी के कंधों पर खड़ा हो गया। तब कलाबाज ने शिष्य मेदकथालिका से कहा: 'तुम मेरी रक्षा करो, प्रिय मेदकथालिका, और मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इस प्रकार एक दूसरे की रक्षा करते हुए, हम अपने कौशल का प्रदर्शन करेंगे, अपना शुल्क लेंगे और बाँस के खंभे से सुरक्षित नीचे उतरेंगे।' यह सुनकर शिष्य मेदकथालिका ने उत्तर दिया: 'गुरुजी, यह तरीका सही नहीं है। आप स्वयं अपनी रक्षा करें, गुरुजी, और मैं स्वयं अपनी रक्षा करूँगा। इस प्रकार, हम दोनों स्वयं की रक्षा करते हुए अपने कौशल का प्रदर्शन करेंगे, अपना शुल्क लेंगे और बांस के खंभे से सुरक्षित उतर जाएँगे।' 168

"यही तरीका है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। "यह ठीक वैसा ही है जैसा शिष्य मेदकथालिका ने गुरुजी से कहा था। 'मैं स्वयं की रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान (सती) का अभ्यास किया जाना चाहिए। 'मैं दूसरों की रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान का अभ्यास किया जाना चाहिए। स्वयं की रक्षा करके, भिक्षुओं, हम दूसरों की रक्षा करते हैं; दूसरों की रक्षा करके, हम स्वयं की रक्षा करते हैं।"

"और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि स्वयं की रक्षा करके दूसरों की रक्षा की जा सकती है? ध्यान के चार चरणों के अभ्यास, विकास और साधना द्वारा। इसी प्रकार स्वयं की रक्षा करके दूसरों की रक्षा की जा सकती है। 169

"और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि दूसरों की रक्षा करके स्वयं की रक्षा की जा सकती है? धैर्य, अहिंसा, प्रेम (मैत्री) और सहानुभूति द्वारा। इसी प्रकार दूसरों की रक्षा करके स्वयं की रक्षा की जा सकती है। 170

'मैं अपनी रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान के पुण्य गुणों का अभ्यास किया जाना चाहिए। 'मैं दूसरों की रक्षा करूँगा,' भिक्षुओं: इस प्रकार ध्यान के सती चरणों का अभ्यास किया जाना चाहिए। स्वयं की रक्षा करके, भिक्षुओं, दूसरों की रक्षा की जाती है; दूसरों की रक्षा करके, स्वयं की रक्षा की जाती है।"

---

386. देश की सबसे खूबसूरत लड़की
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) शुम्भों के बीच रह रहे थे, जहाँ शुम्भों का एक नगर था जिसका नाम सेदक था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा: 171

"भिक्षुओं, मान लो कि 'इस देश की सबसे सुंदर कन्या! इस देश की सबसे सुंदर कन्या!' सुनकर लोगों की एक बड़ी भीड़ एकत्रित हो जाए। अब वह देश की सबसे सुंदर कन्या सुंदर नृत्य करे और सुंदर गायन करे। 'इस देश की सबसे सुंदर कन्या नृत्य कर रही है! इस देश की सबसे सुंदर कन्या गा रही है!' सुनकर लोगों की और भी बड़ी भीड़ जमा हो जाती। 172 फिर एक आदमी आता, जो जीना चाहता, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता और दुख से विमुख रहता। कोई उससे कहता: 'हे भले आदमी, तुम्हें इस तेल से लबालब भरे कटोरे को भीड़ और देश की सबसे सुंदर लड़की के बीच लेकर चलना होगा। एक तलवार लिए आदमी तुम्हारे ठीक पीछे आएगा, और जहाँ कहीं भी थोड़ा सा भी तेल गिरेगा, वह वहीं तुम्हारा सिर काट देगा।'

"भिक्षुओं, क्या वह आदमी तेल के कटोरे पर ध्यान देना छोड़कर आलस्य के कारण अपना ध्यान बाहर की ओर लगाएगा?"

"नहीं, आदरणीय।"

"भिक्षुओं, मैंने यह उपमा एक अर्थ समझाने के लिए गढ़ी है। इसका अर्थ यह है: 'तेल से लबालब भरा कटोरा': यह शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) का प्रतीक है।" अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम शरीर पर केंद्रित ध्यान का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें स्वयं को प्रशिक्षित करेंगे और इसे पूर्णतः सिद्ध करेंगे।' इस प्रकार, भिक्षुओं, आपको अभ्यास करना चाहिए।

(iii) सद्गुण और अवधि (सिलात्थितिवग्गो)
387. सदाचार (सिला बिना शील)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य आनंद और पूज्य भद्दा पाटलिपुत्त में मुर्गे के उद्यान में रह रहे थे। शाम को पूज्य भद्दा एकांतवास से बाहर आए, पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा: 173

“मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित लाभकारी गुणों के बारे में उन्होंने क्या कहा है?”

“वाह, वाह, मित्र भद्दा! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी चतुराई उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न अच्छा है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित लाभकारी गुणों के बारे में उन्होंने क्या कहा है?'”

“जी, मित्र।”

भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित वे लाभकारी (कुशल) गुण उन्होंने ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) के विकास के उद्देश्य से बताए थे। वे चार अवस्थाएँ कौन सी हैं? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न (सतिमा) होता है, और उसने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया होता है।

भगवान (बुद्ध) द्वारा वर्णित वे गुण उन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं के विकास के उद्देश्य से बताए थे।

---

388. लोंड एंड्योरिंग (सिराथिति सं. सिरास्थयी)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे पूज्य भद्दा ने पूज्य आनंद से कहा:

"मित्र आनंद, तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म (मार्ग, नियम) लंबे समय तक क्यों नहीं टिकता? और तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों बना रहता है?"

"बहुत खूब, मित्र भद्दा! आपकी बुद्धि उत्कृष्ट है, आपकी समझ उत्कृष्ट है, आपका प्रश्न अच्छा है। क्योंकि आपने मुझसे पूछा है: 'मित्र आनंद, तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों नहीं टिकता? और तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों बना रहता है?'"

"जी, मित्र।"

"मित्र, ऐसा इसलिए है क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान (सति) विकसित और पोषित नहीं होते, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म लंबे समय तक नहीं टिकता। और ऐसा इसलिए है क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान विकसित और पोषित होते हैं, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म लंबे समय तक टिकता है। वे चार कौन से हैं? मित्र, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यान में लीन रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर (जैसा कि 369 में है)।

"इन चारों प्रतिष्ठान (सति) के विकसित और पोषित न होने के कारण ही तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म लंबे समय तक नहीं टिकता।" और ध्यान की इन चार अवस्थाओं के विकास और संवर्धन के कारण ही तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी सच्चा धम्म लंबे समय तक कायम रहता है।

---

389. हानि (परिहाना सं. परिहानी)
(ऊपर दिए गए कथन के अनुसार:)

"मित्र आनंद, सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) के लुप्त होने का कारण क्या है? और सच्चे धम्म में न लुप्त होने का कारण क्या है?" ...

"मित्र, जब ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सति) विकसित और पोषित नहीं होतीं, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है। और जब ध्यान की ये चार अवस्थाएँ विकसित और पोषित होती हैं, तब सच्चा धम्म लुप्त नहीं होता।"

---

390. सरल संस्करण (शुद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सति) हैं। वे चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। [174] वह संवेदनाओं में वेदना को देखते हुए ध्यान में रहता है... मन में मन को... घटनाओं में धर्म को देखते हुए, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजनो), ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। ये ध्यान की चार अवस्थाएँ हैं।"

---

391. एक निश्चित ब्राह्मण (अन्नतारब्राह्मण सं. अन्यत्तार-ब्राह्मण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और भगवान (बुद्ध) से कहा,

"गुरु गौतम, तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म (मार्ग, नियम) लंबे समय तक क्यों नहीं टिकता? और तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धर्म लंबे समय तक क्यों टिका रहता है?"

"हे ब्राह्मण, क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान (सती) विकसित और पोषित नहीं होते, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म दीर्घस्थायी नहीं रहता। और क्योंकि ध्यान के चारों प्रतिष्ठान विकसित और पोषित होते हैं, इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म दीर्घस्थायी रहता है। वे चार कौन से हैं? ...(जैसा कि 388 में है) ... क्योंकि ध्यान के ये चारों प्रतिष्ठान विकसित और पोषित नहीं होते ... इसलिए तथागत के अंतिम निर्वाण प्राप्त करने के बाद सच्चा धम्म दीर्घस्थायी रहता है।"

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
'महान, गुरु गौतम! ... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।'

---

392. आंशिक रूप से (पदेसा)
एक बार पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महामोग्गलाना और पूज्य अनुराधा साकेत में कंदकिवन नामक काँटेदार वन में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना एकांतवास से बाहर आए, पूज्य अनुराधा के पास पहुँचे और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा,

"मित्र अनुराधा, कहते हैं, 'एक प्रशिक्षु, एक प्रशिक्षु।' मित्र, किस अर्थ में कोई प्रशिक्षु होता है?"

"मित्र, क्योंकि व्यक्ति ने ध्यान के चार गुणों (सति) को आंशिक रूप से विकसित कर लिया है, इसलिए वह प्रशिक्षु है। वे चार गुण क्या हैं? यहाँ, मित्रों, एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म का अवलोकन करते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। क्योंकि व्यक्ति ने ध्यान के इन चार गुणों को आंशिक रूप से विकसित कर लिया है, इसलिए वह प्रशिक्षु है।"

---

393. सम्पूर्ण (समत्त बिना समस्त)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"मित्र अनुराधा, कहा जाता है, 'प्रशिक्षण से परे, प्रशिक्षण से परे।' मित्र, प्रशिक्षण से परे कौन होता है?"

"मित्र, क्योंकि जिसने ध्यान के चारों गुणों (सति) को पूर्णतः विकसित कर लिया है, वही प्रशिक्षण से परे है। वे चार गुण कौन से हैं?... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... क्योंकि जिसने ध्यान के इन चारों गुणों को पूर्णतः विकसित कर लिया है, वही प्रशिक्षण से परे है।"

---

394. लोक (विश्व)
वही दृश्य। एक तरफ बैठे हुए, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराद्ध से कहा:

"पूज्य अनुराद्ध ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्र, क्योंकि मैंने ध्यान के चार चरणों (सति) का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए मैंने दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त की है। वे चार चरण कौन से हैं? मित्र, मैं यहाँ शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतिम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता हूँ। मित्र, क्योंकि मैंने ध्यान के इन चार चरणों का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए मैं इस हजार रूपों वाले संसार को प्रत्यक्ष रूप से जानता हूँ।" 174

---

395. सिरिवड्ढा
एक बार पूज्य आनंद राजगृह में, बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय गृहस्थ श्रीवद्ध गंभीर रूप से बीमार थे। तब गृहस्थ श्रीवद्ध ने एक व्यक्ति से कहा,

"हे जन, आदरणीय आनंद के पास आओ, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और कहो:
'हे प्रभु, गृहस्थ श्रीवद्ध गंभीर रूप से बीमार हैं; वे परम पूज्य आनंद के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।' फिर कहो: 'हे प्रभु, यदि परम पूज्य आनंद दया भाव से गृहस्थ श्रीवद्ध के निवास पर आएं तो अच्छा होगा।'"

"जी, स्वामी," उस व्यक्ति ने उत्तर दिया और पूज्य आनंद के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अपना संदेश दिया। आदरणीय आनंद ने मौन रहकर सहमति दी।

फिर सुबह, आदरणीय आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर गृहस्थ श्रीवद्ध के निवास पर गए। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और गृहस्थ श्रीवद्ध से बोले, "आशा है आप स्वस्थ हैं, गृहस्थ, आप ठीक हो रहे हैं। आशा है आपकी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनकी कमी ही ध्यान देने योग्य है, न कि उनका बढ़ना।" श्रीवद्ध ने कहा, "

मैं स्वस्थ नहीं हूँ, आदरणीय, मैं ठीक नहीं हो रहा हूँ। मेरी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदनाएँ) बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनकी वृद्धि ही ध्यान देने योग्य है, न कि उनका कम होना।"

"तो फिर, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार साधना करनी चाहिए: 'मैं शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा) होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहूंगा। मैं वेदना में वेदना को देखते हुए, मन में मन को देखते हुए, धर्म में धर्म को देखते हुए, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहूंगा।' तुम्हें इसी प्रकार साधना करनी चाहिए।"

हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाई गई ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सति) के विषय में, ये धर्म (गुण, नियम) मुझमें विद्यमान हैं और मैं इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करता हूँ। हे पूज्यवर, मैं शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर निवास करता हूँ। और भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाई गई इन पाँच निम्न बंधनों के विषय में, मैं अपने भीतर इनमें से किसी का भी त्याग नहीं देखता। हे गृहस्थ

, यह आपके लिए लाभ है! हे गृहस्थ, आपने पुनर्जन्म न लेने के फल की घोषणा की है।

---

396. मनदिन्ना
वही परिस्थिति। उस समय गृहस्थ मनदिन्ना बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ था। तब गृहस्थ मनदिन्ना ने एक व्यक्ति से इस प्रकार कहा:

"आओ, हे सज्जन" ... (जैसा ऊपर है) ...

"हे आदरणीय महोदय, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी स्थिति सुधर नहीं रही है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनकी वृद्धि ही स्पष्ट है, उनकी कमी नहीं। परन्तु, हे आदरणीय महोदय, जब मैं ऐसी पीड़ादायक संवेदना (वेदना) से प्रभावित होता हूँ, तो मैं शरीर में शरीर ... संवेदनाओं में संवेदनाएँ (वेदना) ... मन में मन ... घटनाओं में धर्म (धर्म) पर ध्यान केंद्रित करता हूँ, पूरी तरह से संवेदनशील (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। और भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए इन पाँच निम्न बंधनों में से, मुझे अपने भीतर इनमें से कोई भी बंधन अछूता नहीं दिखाई देता।"

"यह आपके लिए लाभ है, गृहस्थ! यह आपके लिए अच्छा लाभ है, गृहस्थ! आपने पुनर्जन्म न लेने के फल (अनगामी) की घोषणा की है।"

(iv) पहले अनसुना (अननुसुता सं. अनुश्रुत)
397. अनसुना (अननुस्सुत संस्कृत अननुश्रुत)
सावत्थी में। "यह शरीर में शरीर का ध्यान (कायनुपस्सना) है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (गुणों, नियमों) के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ। 175

"'शरीर में शरीर का ध्यान (कायनुपस्सना) विकसित किया जाना है' ... 'शरीर में शरीर का ध्यान (कायनुपस्सना) विकसित हो चुका है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि), सच्चा ज्ञान" और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"यह संवेदनाओं में संवेदनाओं का ध्यान (वेदनानुपस्सना) है" ...

"'यह मन में मन का ध्यान (चित्तनुपस्सना) है'...

'यह घटनाओं में धम्म का ध्यान (धम्मनुपस्सना) है'

इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धम्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'घटनाओं में घटनाओं का ध्यान (धम्मनुपस्सना) विकसित किया जाना है'... 'घटनाओं में घटनाओं का ध्यान (धम्मनुपस्सना) विकसित हो चुका है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धम्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

---

398. वैराग्य (विराग)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो पूर्ण घृणा (निबिद्धा), वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाती हैं। वे

चार अवस्थाएँ क्या हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यान में लीन रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। हे भिक्षुओं,

ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो पूर्ण घृणा, वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाती हैं।

---

399. उपेक्षित (विराद्ध)
भिक्षुओं, जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है। वे

चार कौन सी हैं?... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जिन्होंने उपेक्षा की है... जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

---

400. विकास (भाविता)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सती) जब विकसित और अभ्यासित की जाती हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाती हैं। वे चार कौन सी हैं? ... (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... ध्यान की ये चार अवस्थाएँ जब विकसित और अभ्यासित की जाती हैं, तो निकट तट से दूर तट तक ले जाती हैं।

---

401. ध्यान (सती संस्कृत स्मृति)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, भिक्षु को ध्यान (सतो) में लीन और पूर्णतः संबोध (संपजानो) करते हुए रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु किस प्रकार ध्यान (सतिमा) करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, का ध्यान करते हुए, पूरी तरह संबोध (संपजानो) करते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु ध्यानमग्न होता है।"

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पूर्ण बोध (संपजन्न) कैसे प्राप्त करता है? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए संवेदनाएँ (वेदना) उत्पन्न होते ही समझी जाती हैं, बनी रहती हैं और समाप्त हो जाती हैं। विचार उत्पन्न होते ही समझे जाते हैं, बने रहते हैं और समाप्त हो जाते हैं। धारणाएँ उत्पन्न होते ही समझी जाती हैं, बनी रहती हैं और समाप्त हो जाती हैं। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पूर्ण बोध प्राप्त करता है। 176

"हे भिक्षुओं, एक भिक्षु को ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्ण बोध (संपजन्न) अवस्था में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।"

---

402. अंतिम ज्ञान (अन्न संस्कृत: अनन्य-ज्ञान)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ हैं। ये चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यान केंद्रित करते हुए, पूरी तरह से संबोधित, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता है। हे

भिक्षुओं, जब ध्यान की इन चारों अवस्थाओं का विकास और अभ्यास हो जाता है, तो दो में से एक फल प्राप्त होता है: या तो इसी जीवन में परम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) शेष रहती है, तो पुनर्जन्म न लेने की अवस्था।

---

403. इच्छा (चंदा)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ हैं। वे कौन सी चार अवस्थाएँ हैं? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न (सतिमा) होता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। जब वह इस प्रकार शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, तो शरीर के प्रति उसकी जो भी इच्छा होती है, वह त्याग जाती है। इच्छा के त्याग से ही अमरता (निर्वाण) प्राप्त होती है।

वह वेदनाओं में वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है... मन में मन... घटनाओं में धर्म... संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। जब वह घटनाओं में धर्म को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, तो घटनाओं के प्रति उसकी जो भी इच्छा होती है, वह त्याग जाती है। इच्छाओं का त्याग करने से ही अमरता की अवस्था प्राप्त होती है।

---

404. पूर्ण समझ (परिण्णा सं. परिपूर्ण-ज्ञानत्व)
भिक्षुओं, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ हैं (सती)। ये चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न (सतीमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। इस प्रकार शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान करने से शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर, निर्वाण की अवस्था प्राप्त होती है।

वह वेदनाओं में वेदनाओं को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है... मन में मन... धर्मों में धर्म... संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इस प्रकार धर्मों में धर्मों को देखते हुए ध्यान करने से धर्मों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। क्योंकि धर्म की घटनाओं को पूरी तरह से समझ लिया गया है, इसलिए अमरता की अवस्था प्राप्त हो जाती है।"

---

405. विकास (भावना)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ध्यान के चार गुणों (सती) के विकास का उपदेश दूंगा। ध्यान से सुनो...

भिक्षुओं, ध्यान के चार गुण क्या हैं? भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। वह वेदना में वेदना, मन में मन, और धर्म में धर्म, वेदना में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न रहता है और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। भिक्षुओं, यही ध्यान के चार गुण हैं।

---

406. विश्लेषण (विभंग)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ध्यान की स्थापना (सती) सिखाऊंगा, 177 ध्यान की स्थापना और उसके विकास के बारे में, और ध्यान की स्थापना के विकास के मार्ग के बारे में। ध्यान से सुनो...

और भिक्षुओं, ध्यान की स्थापना क्या है? भिक्षुओं, यहाँ, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में रहता है, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह संवेदनाओं में वेदना को देखते हुए ध्यान में रहता है... मन में मन को... घटनाओं में धर्म को देखते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इसे ही ध्यान की स्थापना कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, ध्यान की स्थापना का विकास क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर के पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर की उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः बोधशील (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। 178 वह संवेदनाओं (वेदना) की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है... वह मन की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है... वह घटनाओं (धम्म) की उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह घटनाओं (धम्म) के पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह घटनाओं (धम्म) की उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः संपजानो (समझदार), सतिमा (ध्यानशील), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त। इसे ध्यान की स्थापना का विकास कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, ध्यान की स्थापना के विकास का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान और सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (जैसा कि ऊपर सूत्र 8 में है)। इसे ध्यान की स्थापना के विकास का मार्ग कहा जाता है।"

(v) मृत्युहीन अवस्था (अमतावग्गा सं. अमृत-वर्ग)
407. अमरता (अमता सान. अमृत)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, अपने मन को सती (चारों) ध्यान में अच्छी तरह से स्थापित करके ध्यान करें। अमरता (निर्वाण) को अपने से दूर न होने दें। 179

"किन चार में? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान (अनुपसी) में रहता है... संवेदनाओं में वेदना... मन में मन... घटनाओं में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। भिक्षुओं, अपने मन को ध्यान की इन चार अवस्थाओं में अच्छी तरह से स्थापित करके ध्यान करें। अमरता को अपने से दूर न होने दें।"

---

408. उत्पत्ति (समुदय)
भिक्षुओं, मैं तुम्हें ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) की उत्पत्ति और क्षय के बारे में सिखाऊंगा। 180 ध्यान से सुनो।

"और हे भिक्षुओं, शरीर की उत्पत्ति क्या है? पोषण की उत्पत्ति के साथ शरीर की उत्पत्ति होती है। पोषण के निरोध (अवरोध) होने के साथ शरीर का क्षय होता है।

इंद्रियों के स्पर्श (संपर्क) की उत्पत्ति के साथ संवेदना की उत्पत्ति होती है। स्पर्श (संपर्क) के समाप्त होने के साथ संवेदना का क्षय होता है।

मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) की उत्पत्ति के साथ चेतना की उत्पत्ति होती है। मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने के साथ चेतना का क्षय (पारलौकिकता) होता है। 181

"मनसिकारा की उत्पत्ति के साथ ही धम्म की उत्पत्ति होती है। मनसिकारा के समाप्त होने के साथ ही धम्म की घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं।" 182

---

409. पथ (मग्गा सास. मार्ग)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 183

"भिक्षुओं, एक बार पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद, मैं उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बकरियों के बरगद के वृक्ष के नीचे निवास कर रहा था। तब, जब मैं एकांत में अकेला था, मेरे मन में यह विचार आया: 'यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय प्राप्त करने का एक ही मार्ग है ... (जैसा कि 384 में है) ... अर्थात्, ध्यान की चार अवस्थाएँ (सती)।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में आए विचार को स्वयं ब्रह्म (प्रधान देवदूत) सहमपति ने अपने मन से जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या सटाता है, उसी शीघ्रता से ब्रह्मलोक से विलीन होकर मेरे समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए अपने जुड़े हुए हाथ मेरी ओर बढ़ाए और मुझसे कहा: 'ऐसा ही है। हे भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है। हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय गुरु, प्राणियों के शुद्धिकरण का यही एक मार्ग है...अर्थात ध्यान के चार केंद्र। "

यह, भिक्षुओं, ब्रह्मा सहमपति का कथन है। यह कहकर उन्होंने आगे कहा:

"'पुनर्जन्म के विनाश (खयाल/क्षय) के द्रष्टा,
करुणामय, उस एक मार्ग को जानते हैं

जिससे अतीत में उन्होंने बाढ़ पार की थी।
जिससे वे अब भी पार करेंगे।'"

410. ध्यानमग्न (सती संस्कृत स्मृति)
भिक्षुओं, भिक्षु को सतो ध्यान में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु कैसे सतीमा में रहता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर रहता है। वह वेदना में वेदना, मन में मन, और धर्म में धर्म को देखते हुए, पूरी तरह से संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न होकर रहता है, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर रहता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु ध्यानमग्न होता है।

"भिक्षुओं, भिक्षु को ध्यानमग्न अवस्था में रहना चाहिए। यही हमारा आपको निर्देश है।"

411. लाभकारी का ढेर (कुशलरासी सं. कुशल-राशि)
भिक्षुओं, यदि किसी चीज़ को 'लाभदायक (कुशल संस्कृत कुशल) का ढेर' कहा जाए, तो यह चार ध्यान (सती) के बारे में ही कहा जा सकता है। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) का एक संपूर्ण ढेर है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान। वे चार कौन से हैं?

"यहाँ, भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यान लगाते हुए (अनुपसी) रहते हैं, वे उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।"

भिक्षुओं, यदि किसी चीज को 'लाभदायक (कुशल) का ढेर' कहा जाए, तो यह बात इन चार ध्यान प्रतिष्ठानों के बारे में कहना उचित होगा। क्योंकि यह लाभकारी (कुशल) का संपूर्ण ढेर है, अर्थात् ध्यान के चार प्रतिष्ठान।

412. पतिमोक्ख का संयम (पतिमोक्खसंवर)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"तो फिर, हे भिक्षु, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के आरंभ को शुद्ध करो। लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभ क्या है? हे भिक्षु, यहाँ पतिमोक्ख के संयम से बंधे रहो, अच्छे आचरण और उचित शरण में निपुण होकर, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो। प्रशिक्षण नियमों को ग्रहण करके, उनका अभ्यास करो। हे भिक्षु, जब तुम पतिमोक्ख के संयम से बंधे रहो... छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो, तब, सद्‌गुण (शील) पर आधारित होकर, सद्‌गुण पर स्थापित होकर, ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का विकास करो।

" "वे चार कौन सी हैं?" हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, कर्म में कर्म, जगत के प्रति सजग, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतिम भाव से संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न रहता है।

“हे भिक्षु, जब तुम सद्‌गुणों पर आधारित होकर, सद्‌गुणों से स्थापित होकर, ध्यान की इन चारों अवस्थाओं को इस प्रकार विकसित करते हो, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रख सकते हो, हानि की नहीं।”

तब वह भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न और आनंदित होकर अपने आसन से उठ खड़ा हुआ... और वह भिक्षु अरहंतों में से एक हो गया।

413. कदाचार (दुकारिता सं. दश-चरित्र)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म का उपदेश दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ रह सकूँ।"

"तो फिर, हे भिक्षु, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के आरंभ को शुद्ध करो। लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं का आरंभ क्या है? हे भिक्षु, शारीरिक दुराचार का त्याग करके, अच्छे शारीरिक आचरण का विकास करो। मौखिक दुराचार का त्याग करके, अच्छे

मौखिक आचरण का विकास करो। मानसिक दुराचार का त्याग करके, अच्छे मानसिक आचरण का विकास करो। हे भिक्षु, जब शारीरिक दुराचार का त्याग करके... आपने अच्छे मानसिक आचरण का विकास कर लिया हो, तब, सद्‌गुण (शील) पर आधारित, सद्‌गुण पर स्थापित होकर, ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) का विकास करो।

" वे चार अवस्थाएँ कौन सी हैं? हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, प्रवणता में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित, ध्यानमग्न, सतीम भाव से संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता है।

“हे भिक्षु, जब तुम सद्‌गुणों पर आधारित होकर, सद्‌गुणों से स्थापित होकर, ध्यान की इन चारों अवस्थाओं को इस प्रकार विकसित करते हो, तब चाहे दिन हो या रात, तुम केवल लाभकारी अवस्थाओं में वृद्धि की ही आशा रख सकते हो, हानि की नहीं।”

तब वह भिक्षु अरहंतों में से एक बन जाता है।

---

414. मित्र (Mitta sans. Mitra)
"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो आपको ध्यान देने योग्य समझते हैं - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सती - उन्हें ध्यान के चार चरणों (सती) के विकास में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।

वे चार चरण कौन से हैं? हे भिक्षु, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए, वेदना में वेदना को देखते हुए, मन में धम्म को देखते हुए, पूरी तरह से संवेदनशील और ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है।

"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है... उन्हें ध्यान के इन चार चरणों के विकास में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।"

---

415. संवेदनाएँ (वेदना)
भिक्षुओं, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। ये तीन कौन सी हैं? सुखदायक वेदना, कष्टदायक वेदना, और न कष्टदायक न सुखदायक वेदना। ये तीन वेदनाएँ हैं। इन तीनों वेदनाओं को पूर्ण रूप से समझने के लिए सती ध्यान की चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है। ये

चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, एक भिक्षु शरीर में शरीर, संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, पर ध्यान लगाते हुए, उत्साही, पूर्ण रूप से संपजनो, ध्यानमग्न, सतीम, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यान लगाता है। हे भिक्षुओं

, इन तीनों वेदनाओं को पूर्ण रूप से समझने के लिए ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

---

416. अपवित्रताएँ (असव सं. आश्रव)
भिक्षुओं, ये तीन दोष हैं। कौन से तीन? कामुकता का दोष, अस्तित्व का दोष (भावो), अज्ञान का दोष (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)। ये तीन दोष हैं। इन तीनों दोषों को पूर्ण रूप से समझने के लिए ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) का विकास करना आवश्यक है।

कौन सी चार अवस्थाएँ? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर, संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, कर्मों में धर्म, कर्मों में धर्म का ध्यान करते हुए, उत्साही, पूर्ण रूप से संबोधक, ध्यानमग्न, सतिम भाव से विमुख होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान की इन

चार अवस्थाओं (सतिमा) का विकास करता है। हे भिक्षुओं, इन तीनों दोषों को पूर्ण रूप से समझने के लिए ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास करना आवश्यक है।

(vi) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालवग्गो)
417-428. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि (गंगानाडियादी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर झुकती है, उसी प्रकार ध्यान के चार गुणों (सती) को विकसित और पोषित करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु ध्यान के चार गुणों को कैसे विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुके? हे भिक्षुओं, भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यान में लीन होकर, पूर्णतः संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान करता है। भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यान के चार चरणों का विकास और अभ्यास करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(इस अध्याय के शेष सूत्रों का भी पिछले अध्याय के समानांतर ही वर्णन किया जाना है।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(vii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
429-438. तथागत, इत्यादि।
(पहले बताए गए सती ध्यान के सिद्धांतों के समानांतर विस्तार से समझाया जाएगा)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही दसवें भाग के रूप में वस्त्र।

(viii) कठोर कर्म (बलकारनिया)
439-450. कठिन, इत्यादि (बलादी)
(पिछली व्याख्या के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा)

परिश्रम, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो,
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(ix) खोज (एसानावग्गो)
451-460. खोजें, इत्यादि (एसानादी)
(पिछली व्याख्या के समानांतर विस्तार से बताया जाएगा)

खोज, भेद, दोष।
अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास। 185

(x) बाढ़ (ओघवाग्गो संस. ओघा-वर्ग)

461-470. उच्चतर बंधन (उद्धमभागियादि)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति कामवासना (राग), निराकार के प्रति कामवासना (अहंकार), बेचैनी (अविज्जा), अविद्या (अज्ञान)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए, और इनका त्याग करने के लिए, सती की चार अवस्थाओं का विकास करना चाहिए।

ये चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान (अनुपसी) में रहता है, उत्साही, पूर्ण रूप से समझने वाला (संपजानो), ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। वह ध्यान में लीन होकर संवेदनाओं (वेदना) पर, मन पर मन पर, और घटनाओं (धम्म) पर घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। वे अत्यंत उत्साही, गहन बोध रखने वाले और ध्यानमग्न होते हैं, तथा संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। ध्यान की इन चार अवस्थाओं का विकास इन पाँच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान, उनके पूर्ण ज्ञान, उनके पूर्ण विनाश और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

बाढ़, बंधन, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

इंद्रिय सुख की डोरियाँ, अवरोध।
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(ध्यान की अवस्थाओं पर संबंधित प्रवचनों का विस्तृत वर्णन मार्ग पर संबंधित प्रवचनों के समान ही किया जाना है। 186)

अध्याय 4: इंद्रियों पर संबंधित प्रवचन (इंद्रियसाम्युत्त) {साम्युत्त-48}
(i) सरल संस्करण (शुद्धिकावग्गो सं. शुद्धि-वर्ग)
471. सरल संस्करण (शुद्धिका सं. शुद्धि)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।" 187

---

472. स्ट्रीम-एंटरर (1) (सोतापन्ना1 सं. स्रोत-पैन)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति (वीर्य), ध्यान की शक्ति (सती), समाधि की शक्ति (सत्त्व), और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्न)।

भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन पाँचों शक्तियों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न नामक श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है, जो परलोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।

---

473. स्ट्रीम-एंटरर (2) (सोटापन्ना2 सान. स्ट्रोत-पान)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन पाँच शक्तियों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्ना नामक श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है, जो परलोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।

---

474. अरिहंत (1) (सं. अरिहंत1)
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

" "हे भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के तरीके को उनके वास्तविक स्वरूप में समझकर, अनासक्ति के द्वारा भिक्षु मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है, तब वह अरहंत भिक्षु कहलाता है,

जिसके दोष नष्ट हो गए हों, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया हो, जो करना आवश्यक था वह किया हो, बोझ उतार दिया हो, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया हो, अस्तित्व के बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया हो, और अंतिम ज्ञान द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गया हो।" 189

---

475. अरिहंत (2) (सं. अरिहंत2)
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

जब भिक्षु इन पाँच शक्तियों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख (अस्वाद), खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेते हैं, और अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाते हैं, तब उन्हें अरहंत भिक्षु कहा जाता है... वह जो अंतिम ज्ञान के द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गया हो।"

---

476. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्न)।

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन पाँच शक्तियों के संदर्भ में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उससे बचने के मार्ग को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) द्वारा इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।"

लेकिन, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

477. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो आस्था की शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। परन्तु भिक्षुओं

, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन बातों को समझते हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं। ब्राह्मणत्व का लक्ष्य।"

---

478. देखा जाना (दत्ताब्बा सं. द्रष्टव्य)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति (जैसा कि 471 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति।

और भिक्षुओं, विश्वास की शक्ति कहाँ देखी जाती है? विश्वास की शक्ति यहाँ सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के चार कारकों में देखी जाती है। 191

भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति कहाँ देखी जाती है? ऊर्जा-शक्ति की शक्ति यहाँ चार सही प्रयासों में देखी जाती है। 192

भिक्षुओं, ध्यान (सती) की शक्ति कहाँ देखी जाती है? ध्यान की शक्ति यहाँ ध्यान के चार प्रतिष्ठानों में देखी जाती है।

भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) की क्षमता कहाँ पाई जाती है? समाधि (सम्मोहन) की क्षमता यहाँ चारों ध्यान अवस्थाओं में पाई जाती है।

भिक्षुओं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता कहाँ पाई जाती है? प्रदीप्त अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता यहाँ चारों आर्य सत्यों में पाई जाती है। भिक्षुओं, ये पाँच क्षमताएँ हैं।

---

479 विश्लेषण (1) (विभंग1)

भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति।

और भिक्षुओं, आस्था की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य आस्थावान व्यक्ति है, जो तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।

"और हे भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के त्याग और लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए जागृत ऊर्जा-शक्ति से युक्त रहता है; वह बलवान है, परिश्रम में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की साधना के दायित्व से विमुख नहीं होता। इसे ऊर्जा-शक्ति की शक्ति कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति की शक्ति क्या है? ध्यान (सती)? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य ध्यानमग्न (सतीमा) अवस्था में है, सर्वोच्च ध्यान और विवेक से परिपूर्ण है, वह जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है। इसे ध्यान की शक्ति कहते हैं। 193

"और हे भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, मोक्ष को लक्ष्य बनाकर। 194 इसे समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य अंतर्दृष्टिवान है; वह उद्भव और क्षय की ओर निर्देशित पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से परिपूर्ण है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है, जिससे दुख का पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) होता है। 195 इसे पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये पाँच क्षमताएँ हैं।" 196

---

480. विश्लेषण (2) (विभंग2)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा की शक्ति (वीर्य), ध्यान की शक्ति (सती), समाधि की शक्ति (सता) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)।

और भिक्षुओं, विश्वास की शक्ति क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य आस्थावान व्यक्ति है, जो तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।

' और हे भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के त्याग और लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए जागृत ऊर्जा-शक्ति से युक्त रहता है; वह बलवान है, प्रयास में दृढ़ है, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं की खेती के दायित्व से विमुख नहीं होता। वह अजन्मी हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है... वह ऊर्जा का उपयोग करते हुए, मन लगाकर प्रयास करता है। वह उत्पन्न हुई अकुशल अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। वह अप्राप्त लाभकारी अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न हुई लाभकारी अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। इसे ऊर्जा का गुण कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, ध्यान का गुण क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ श्रेष्ठ शिष्य ध्यानमग्न (सतीमा) होता है, सर्वोच्च ध्यान और विवेक से युक्त होता है, वह जो बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को याद रखता है और उनका स्मरण करता है।" वह शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है। वह अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। इसे ध्यान की क्षमता कहते हैं।

भिक्षुओं, समाधि की अवस्था क्या है? भिक्षुओं, यहाँ, श्रेष्ठ शिष्य समाधि की अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, मोक्ष को अपना लक्ष्य बनाकर। इंद्रिय सुखों से विरक्त, अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और

उसमें निवास करता है, जो विचार और परीक्षण से युक्त होता है, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। विचार और परीक्षण के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता से युक्त होता है, विचार और परीक्षण से रहित होता है, और समाधि की अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होता है। आनंद के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में निवास करता है और ध्यानमग्न तथा पूर्णतः बोध से परिपूर्ण होकर, आनंद का अनुभव करता है। शरीर को त्यागकर, वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न (सतिमा) और सुख में रहने वाला है।' सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही सुख और अप्रसन्नता के दूर हो जाने के बाद, वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि को समाधि (सम्मोहन) कहता है।

"और हे भिक्षुओं, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता क्या है? हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है; वह उद्भव और क्षय की दिशा में निर्देशित प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) रखता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी है, और दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) की ओर ले जाती है। वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है।' वह यथार्थ को समझता है:
'यह दुख का मूल है।' वह इसे यथार्थ रूप से समझते हैं:
'यही दुखों का निवारण (निरोध) है।' वह इसे यथार्थ रूप से समझते हैं:
'यही दुखों के निवारण का मार्ग है।' इसे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति कहा जाता है।

"भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं।"

(ii) नरम (मुदुतरवग्गो सं. मृदुतर-वर्ग)
481. प्राप्ति (पतिलाभा सं. प्रति-लाभ)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति।

और भिक्षुओं, आस्था की शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य आस्थावान व्यक्ति है, जो तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: 'भगवान (बुद्ध)... (जैसा कि 480 में है)... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध, भगवान (बुद्ध)।' इसे आस्था की शक्ति कहते हैं।

और भिक्षुओं, वीरता (वीर्य) की शक्ति क्या है? वह शक्ति जो चार सही प्रयासों के आधार पर प्राप्त होती है। इसे शक्ति की शक्ति कहते हैं।

और भिक्षुओं, सती (ध्यान) की शक्ति क्या है? वह ध्यान जो ध्यान के चार आधारों पर प्राप्त होता है। इसे ध्यान की शक्ति कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, मोक्ष को लक्ष्य बनाकर। इसे समाधि (सम्मोहन) की शक्ति कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य अंतर्दृष्टिवान होता है; वह उद्भव और क्षय की दिशा में निर्देशित पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से युक्त होता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होता है, दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाता है। इसे पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति कहते हैं।

"ये, भिक्षुओं, पाँच शक्तियाँ हैं।"

---

482. संक्षेप में (1) (संखित्त1 सं. संक्षिप्त)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म रहित है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो सोतापन्ना (धारा में प्रवेश करने वाला) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो धम्म का अनुयायी है; यदि और भी कमजोर हैं, तो आस्था का अनुयायी है। 198

483. संक्षेप में (2) (संखित्त2 सं. संक्षिप्त)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि ये शक्तियाँ इससे कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म न लेने वाला ... एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) ... धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना) ... धम्म का अनुयायी ... आस्था का अनुयायी है।

इस प्रकार, भिक्षुओं, शक्तियों में अंतर के कारण फलों में अंतर होता है; फलों में अंतर के कारण व्यक्तियों में अंतर होता है।

484. संक्षेप में (3) (संखित्त3 सं. संक्षिप्त)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह... एक अनुयायी है।

अतः, भिक्षुओं, जो इन्हें पूर्णतः सक्रिय करता है, वह पूर्णतः सफल होता है; जो इन्हें आंशिक रूप से सक्रिय करता है, वह आंशिक रूप से सफल होता है। भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ निष्फल नहीं हैं, ऐसा मैं कहता हूँ। 200

485. विस्तार से (1) (विट्ठरा1 सं. विस्तार)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्ना)। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह अंतराल में निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो निर्वाण पहुँचते ही प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो प्रयास के साथ निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो सोतापन्ना (धारा में प्रवेश करने वाला) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो धम्म का अनुयायी है; यदि और भी कमजोर हैं, तो आस्था का अनुयायी है।

486. विस्तार से (2) (विट्ठरा2 सं. विस्तार)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह निर्वाण प्राप्त करने वाला है (जैसा कि 485 में है)... यदि और भी कमजोर हैं, तो वह आस्था का अनुयायी है।

इस प्रकार, भिक्षुओं, शक्तियों में अंतर के कारण फलों में अंतर होता है; फलों में अंतर के कारण व्यक्तियों में अंतर होता है।

487. विस्तार से (3) (विट्ठरा3 सं. विस्तार)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह निर्वाण प्राप्त करने वाला है (जैसा कि 485 में है) ... यदि और भी कमजोर हैं, तो वह आस्था का अनुयायी है।

इस प्रकार, भिक्षुओं, जो इन्हें पूर्णतः सक्रिय करता है, वह पूर्णतः सफल होता है; जो इन्हें आंशिक रूप से सक्रिय करता है, वह आंशिक रूप से सफल होता है। भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ निष्फल नहीं हैं, ऐसा मैं कहता हूँ।

488. अभ्यास करना (पतिपन्ना सं. प्रतिपन्ना)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह अरहंतत्व के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म न लेने वाला (अनगामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह पुनर्जन्म न लेने के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह एक बार पुनर्जन्म लेने के फल की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है (सकदागामी); यदि और भी कमजोर हैं, तो वह सोतापन्न (धारा में प्रवेश करने वाला) है; यदि फिर भी दुर्बल हो, तो व्यक्ति सोतापत्ति (धारा-प्रवेश के फल) की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर रहा है।

"परन्तु, भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि जिसमें ये पाँचों शक्तियाँ पूर्णतः अनुपस्थित हों, वह 'अजनबी' है, जो सांसारिकों के गुट में खड़ा है।" 202

---

489. सुसज्जित (संपन्ना)
फिर एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'जो इंद्रियों से परिपूर्ण है, वही इंद्रियों से परिपूर्ण है।' 203 हे पूज्यवर, इंद्रियों से परिपूर्ण होने का क्या तरीका है?"

"हे भिक्षु, भिक्षु विश्वास की इंद्रिय विकसित करता है, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है। वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की इंद्रिय विकसित करता है... ध्यान (सती) की इंद्रिय... समाधि (सम्मोहन) की इंद्रिय... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की इंद्रिय, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है। हे

भिक्षु, इसी प्रकार इंद्रियों से परिपूर्ण होना संभव है।"

---

490. अपवित्रताओं का नाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, इन्हीं पाँच शक्तियों को विकसित और पोषित करके, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, और दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करते हैं।

(iii) छह संकाय (चलिनरियावग्गो)
491. पुनाभव का नवीकृत कारण (पुनब्भव)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति।

भिक्षुओं, जब तक मुझे इन पाँच शक्तियों के उद्‌भव और क्षय, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), संकट और उससे मुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

"मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

---

492. जीवन शक्ति (जीवितिन्द्रिय)
"भिक्षुओं, ये तीन शक्तियाँ हैं। कौन सी तीन? स्त्रीत्व शक्ति, पुरुषत्व शक्ति और जीवन शक्ति। ये तीन शक्तियाँ हैं।" 205

---

493. अंतिम ज्ञान का संकाय (अनिंद्रिय)
भिक्षुओं, ये तीन शक्तियाँ हैं। कौन सी तीन? 'मैं अभी तक अज्ञात को जानूँगा' की शक्ति, अंतिम ज्ञान की शक्ति, और अंतिम ज्ञान से संपन्न व्यक्ति की शक्ति। ये तीन शक्तियाँ हैं। 206

---

494. एक बीज बोने वाला (एकबिजी)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जिसने इन पाँच शक्तियों को पूर्ण कर लिया है, वह अरहंत है। यदि वे इससे कमजोर हैं, तो वह अंतराल में निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो निर्वाण पहुँचते ही निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला है; [205] यदि और भी कमजोर हैं, तो प्रयास सहित निर्वाण प्राप्त करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो वह अकनित्थ लोक की ओर अग्रसर है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है; यदि और भी कमजोर हैं, तो एक बीज बोने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो कुल-कुल का पालन करने वाला है; यदि और भी कमजोर हैं, तो सात जन्मों का पालन करने वाला है; यदि फिर भी कमजोर हो, तो धम्म (मार्ग, कानून) का अनुयायी; यदि फिर भी कमजोर हो, तो आस्था का अनुयायी।" 207

---

495. सरल संस्करण (शुद्धका)
"भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। ये छह इंद्रियाँ हैं।" 208

---

496. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इन छह इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न कहलाता है, जो परलोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानता है।

---

497. अरहंत
"भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

जब भिक्षु इन छह इंद्रियों के सांसारिक सुख (अस्सदो संस्कृत: अस्वाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को समझ लेते हैं और अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाते हैं, तब उन्हें अरहंत भिक्षु कहा जाता है, जिनके दोष नष्ट हो जाते हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गए हैं।"

---

498. संबुद्ध
भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

भिक्षुओं, जब तक मुझे इन छह इंद्रियों के उद्‌भव और क्षय, सांसारिक सुख, भय और उनसे मुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था, तब तक मैंने इस संसार में, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, पूर्णतम ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं किया। परन्तु जब मुझे इन सब का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तब मैंने इस संसार में, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, पूर्णतम ज्ञान प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति अविचल है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।'

---

499. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
भिक्षुओं, ये छह इंद्रियाँ हैं। कौन सी छह? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन।

जो तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, इन छह इंद्रियों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।

लेकिन, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

500. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
"जो तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, नेत्र शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो कान शक्ति (कान, नाक, जीभ और शरीर शक्ति के लिए भी यही बात लागू होती है) और मन शक्ति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दैवीय ज्ञान से इसका अनुभव करके इसी जीवन में वैराग्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर पाते और उसमें निवास नहीं कर पाते।

परन्तु, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 499 में है)... वे इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर पाते और उसमें निवास कर पाते हैं।"

(iv) सुख की इंद्रिय (सुखिंद्रिय)
501. सरल संस्करण (शुद्धिका)
"भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुख, प्रसन्नता, अप्रसन्नता और समभाव। ये पाँच इंद्रियाँ हैं।" 210

---

502. धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्ना)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुःख, आनंद, दुःख और समभाव।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इन पाँच इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उनसे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है, तब वह सोतापन्न कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानता है।

---

503. अरहंत
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच इंद्रियाँ? सुख, दुःख, आनंद, दुःख और समभाव। हे

भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु इन पाँच इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के तरीके को उसके वास्तविक स्वरूप में समझ लेता है और अनासक्ति के द्वारा मुक्त हो जाता है, तब वह अरहंत भिक्षु कहलाता है, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों को पूरी तरह से तोड़ दिया है, और अंतिम ज्ञान द्वारा पूर्णतः मुक्त हो गया है।

---

504. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच इंद्रियाँ? सुख, दुःख, आनंद, दुःख और समभाव।

हे भिक्षुओं, जो इन पाँच इंद्रियों के सांसारिक सुख, खतरे और उससे बचने के तरीकों को नहीं समझते (जैसा कि अनुच्छेद 499 में है), वे इसी जीवन में वैराग्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते। परन्तु हे

भिक्षुओं, जो इन इंद्रियों को समझते हैं, वे इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

---

505. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
"वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो आनंद की अनुभूति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो आनंद की अनुभूति, दर्द की अनुभूति, अप्रसन्नता की अनुभूति, समभाव की अनुभूति, उसके उद्गम, उसके निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते... वे इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर पाते और उसमें निवास नहीं कर पाते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन बातों को समझते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 499 में है)... इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर पाते हैं और उसमें निवास कर पाते हैं।"

---

506. विश्लेषण (1) (विभंग1)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुख, आनंद, दुःख और समभाव।

भिक्षुओं, सुख क्या है? शरीर में जो भी सुख हो, जो भी शारीरिक आराम हो, इंद्रियों के स्पर्श से जो भी सुखदायक आराम महसूस हो, भिक्षुओं, उसे सुख कहते हैं। भिक्षुओं, दुख क्या है

? शरीर में जो भी दर्द हो, जो भी शारीरिक असुविधा हो, इंद्रियों के स्पर्श से जो भी कष्टदायक असुविधा महसूस हो, भिक्षुओं, उसे दुख कहते हैं।

भिक्षुओं, आनंद क्या है? जो भी मानसिक सुख है, जो भी मानसिक शांति है, मन के संपर्क (विचार से मन का संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से जो सुखद शांति (वेद्यितम्) प्राप्त होती है, हे भिक्षुओं, उसे आनंद की शक्ति कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, दुःख की शक्ति क्या है? जो भी मानसिक पीड़ा है, जो भी मानसिक बेचैनी है, मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से जो कष्टदायक बेचैनी (वेद्यितम्) प्राप्त होती है, हे भिक्षुओं, उसे दुःख की शक्ति कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, समभाव (उपेक्खा) की शक्ति क्या है? जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से अनुभव किया जाता है (वेद्यितम्), जो न तो सुखदायक है और न ही कष्टदायक, हे भिक्षुओं, उसे समभाव (उपेक्खा) की शक्ति कहते हैं। 212

हे भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं।

---

507. विश्लेषण (2) (विभंग2)
(पूर्ववर्ती सूत्र 506 के समान, लेकिन अंतिम दो अनुच्छेदों में परिवर्तन के साथ) "भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख इंद्रिय, दुख इंद्रिय, आनंद इंद्रिय, अप्रसन्नता इंद्रिय और समभाव इंद्रिय।

"और, भिक्षुओं, सुख इंद्रिय क्या है? जो भी शारीरिक सुख है, जो भी शारीरिक आराम है, 211 शरीर के संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से स्पर्श) से अनुभव किया गया सुखद आराम: इसे, भिक्षुओं, सुख इंद्रिय कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, दुख इंद्रिय क्या है? जो भी शारीरिक पीड़ा है, जो भी शारीरिक असुविधा है, शरीर के संपर्क (संवेदियों का स्पर्श) से अनुभव किया गया कष्टदायक असुविधा: इसे, भिक्षुओं, दुख इंद्रिय कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, आनंद इंद्रिय क्या है? भिक्षुओं, मन के संपर्क से प्राप्त होने वाला सुखदायक विश्राम, आनंद की अनुभूति (वेद्यितम्), यही आनंद की अनुभूति कहलाती है। भिक्षुओं, दुःख की अनुभूति

क्या है? मन के संपर्क से प्राप्त होने वाला कष्टदायक बेचैनी, दुःख की अनुभूति (वेद्यितम्), यही दुःख की अनुभूति कहलाती है। भिक्षुओं, समभाव की अनुभूति क्या है? शारीरिक

और मानसिक रूप से प्राप्त होने वाली कोई भी अनुभूति जो न तो सुखदायक हो और न ही कष्टदायक, यही समभाव की अनुभूति कहलाती है। 212

"इसमें, हे भिक्षुओं, सुख और आनंद की इंद्रियों को सुखद अनुभूति के रूप में देखा जाना चाहिए। दुख और दुःख की इंद्रियों को दुखदायी अनुभूति के रूप में देखा जाना चाहिए। समभाव (उपेक्खा) की इंद्रियों को न तो दुखदायी और न ही सुखद अनुभूति के रूप में देखा जाना चाहिए।

हे भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं।"

---

508. विश्लेषण (3) (विभंग3)
(पूर्ववर्ती सूत्र 506 के समान ही, लेकिन अंतिम दो अनुच्छेदों में परिवर्तन के साथ) "भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? सुख इंद्रिय, दुःख इंद्रिय, आनंद इंद्रिय, दुःख इंद्रिय और समभाव इंद्रिय।

" "और, भिक्षुओं, सुख इंद्रिय क्या है? जो भी शारीरिक सुख है, जो भी शारीरिक आराम है, जो भी सुखदायक आराम (इंद्रियों का किसी वस्तु से संपर्क) से अनुभव किया जाता है: इसे ही सुख इंद्रिय कहते हैं।"

भिक्षुओं, पीड़ा की अनुभूति क्या है? शरीर में जो भी पीड़ा हो, जो भी शारीरिक कष्ट हो, शरीर के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से जो भी पीड़ादायक असुविधा (वेद्यितम्) महसूस हो, उसे ही पीड़ा की अनुभूति कहते हैं। भिक्षुओं

, आनंद की अनुभूति क्या है? मन में जो भी मानसिक सुख हो, जो भी मानसिक शांति हो, मन के संपर्क (मन और विचार का संपर्क; फस्सा/स्पर्श) से जो भी सुखद शांति (वेद्यितम्) महसूस हो, उसे ही आनंद की अनुभूति कहते हैं।

भिक्षुओं, अप्रसन्नता की अनुभूति क्या है? मन में जो भी मानसिक पीड़ा हो, जो भी मानसिक कष्ट हो, मन के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से जो भी पीड़ादायक असुविधा (वेद्यितम्) महसूस हो, उसे ही अप्रसन्नता की अनुभूति कहते हैं।

भिक्षुओं, समभाव की अनुभूति क्या है? जो भी इंद्रिय बोध (वेद्यितम्) होता है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, जो न तो सुखदायी होता है और न ही दुखदायी: भिक्षुओं, इसे समभाव (उपेक्खा) कहा जाता है। 212

"इसमें, भिक्षुओं, सुख और आनंद (सोमनस्स) को सुखदायी इंद्रिय के रूप में देखा जाना चाहिए। दुख और दुःख को दुखदायी इंद्रिय के रूप में देखा जाना चाहिए। समभाव (उपेक्खा) को न तो दुखदायी और न ही सुखदायी इंद्रिय के रूप में देखा जाना चाहिए।

इस प्रकार, भिक्षुओं, व्याख्या की विधि के अनुसार, ये पाँच इंद्रियाँ, जो पहले पाँच थीं, तीन हो जाती हैं; और जो पहले तीन थीं, वे पाँच हो जाती हैं।"

---

509. अग्नि-लाठियों की उपमा (कत्थोपमा सं. काष्ठ-उपमा)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ (इन्द्रियानी) हैं। कौन सी पाँच? सुख, दुख, आनंद, दुःख और समभाव।

भिक्षुओं, किसी सुखद अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श से सुख उत्पन्न होता है। सुख की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं सुख की अवस्था में हूँ।' वह समझता है: 'सुखद अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श के समाप्त होने पर, उस सुखद अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श से उत्पन्न सुख भी समाप्त हो जाता है।' भिक्षुओं

, किसी कष्टदायक अनुभव के लिए इंद्रियों के स्पर्श से दुख उत्पन्न होता है। कष्ट की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं कष्ट की अवस्था में हूँ।' यह समझा जाता है: 'कष्टदायी अनुभव किए जाने वाले उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुई पीड़ा की अनुभूति शांत हो जाती है।'

हे भिक्षुओं, आनंदमय अनुभव किए जाने वाले सोमनस्सा (फस्सा/स्पर्श) के कारण आनंद की अनुभूति उत्पन्न होती है। आनंद की अवस्था में होने पर, व्यक्ति समझता है: 'मैं आनंद की अवस्था में हूँ।' यह समझा जाता है: 'कष्टदायी अनुभव किए जाने वाले उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुई आनंद की अनुभूति शांत हो जाती है।'

हे भिक्षुओं, अप्रसन्नता का अनुभव किए जाने वाले स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के कारण अप्रसन्नता की अनुभूति उत्पन्न होती है। अप्रसन्नता की अवस्था में होने पर, व्यक्ति समझता है: 'मैं अप्रसन्नता की अवस्था में हूँ।'
यह समझा जाता है: 'उस अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, जो अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुआ था, वह भी समाप्त हो जाता है।' भिक्षुओं

, समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) के कारण उत्पन्न होने वाले अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से समभाव (उपेक्खा) की भावना उत्पन्न होती है। समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में होने पर, व्यक्ति समझता है: 'मैं समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में हूँ।' यह समझा जाता है:

'उस अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, जो अप्रिय संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण उत्पन्न हुआ था, वह भी समाप्त हो जाता है।'

भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के आपस में टकराने और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और आग निकलती है, परन्तु जब लकड़ियों को अलग करके रख दिया जाता है तो उत्पन्न ऊष्मा शांत हो जाती है; उसी प्रकार, सुखद अनुभव के लिए स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के आधार पर आनंद की अनुभूति उत्पन्न होती है। आनंद की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं आनंद की अवस्था में हूँ।' वह समझता है (पजनति): 'सुखद अनुभव के लिए स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, उस स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के आधार पर उत्पन्न हुई आनंद की अनुभूति भी समाप्त हो जाती है।'
(इसी प्रकार)... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे पीड़ादायक अनुभव किया जाता है... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे आनंददायक अनुभव किया जाता है... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे अप्रसन्नता के साथ अनुभव किया जाता है... एक स्पर्श (संपर्क) जिसे समभाव (उपेक्खा) के साथ अनुभव किया जाता है, समभाव (उपेक्खा) की क्षमता उत्पन्न होती है। समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में होने पर व्यक्ति समझता है: 'मैं समभाव (उपेक्खा) की अवस्था में हूँ।' व्यक्ति समझता है: 'उस समभाव (उपेक्खा) के समाप्त होने के साथ ही, उस समभाव (उपेक्खा) के कारण उत्पन्न हुई समभाव (उपेक्खा) की क्षमता समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है।'

---

510. अनियमित क्रम (उप्पतिपतिका)
भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रियाँ हैं। कौन सी पाँच? पीड़ा इंद्री, अप्रसन्नता इंद्री, प्रसन्नता इंद्री, आनंद इंद्री और समभाव इंद्री।

(i. पीड़ा इंद्री)

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सचेत (अपमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर ध्यान करता है, तब उसमें पीड़ा इंद्री उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह पीड़ा इंद्री उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण है (अनिवार्य व्यवहार), एक कारण है। 215 बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण (अनिवार्य व्यवहार), बिना कारण के इस पीड़ा इंद्री का उत्पन्न होना असंभव है।' वह पीड़ा इंद्री को समझता है; वह पीड़ा इंद्री के उद्गम को समझता है; वह पीड़ा इंद्री के निरोध को समझता है; और वह समझता है कि उत्पन्न पीड़ा इंद्री कहाँ बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है।

और उत्पन्न हुई पीड़ा की अनुभूति कहाँ पर पूरी तरह समाप्त हो जाती है? 216 हे भिक्षुओं, यहाँ पर, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, एक भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) के साथ विचार और परीक्षा से युक्त होता है। और यहीं पर उत्पन्न हुई पीड़ा की अनुभूति पूरी तरह समाप्त हो जाती है। 217 हे

भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहते हैं जिसने पीड़ा की अनुभूति के समाप्त होने को समझ लिया है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है

(ii. अप्रसन्नता की भावना)

"हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ मन से ध्यान लगाता है, तो उसमें अप्रसन्नता की भावना उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: मुझमें यह अप्रसन्नता की भावना उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार, एक स्रोत, एक कारण संधार (व्यवहार-स्थिति), एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण संधार (व्यवहार-स्थिति), बिना कारण के अप्रसन्नता की भावना का उत्पन्न होना असंभव है।" वह अप्रसन्नता की भावना को समझता है; वह अप्रसन्नता की भावना के उद्गम को समझता है; वह अप्रसन्नता की भावना के निवारण को समझता है; और वह समझता है कि उत्पन्न अप्रसन्नता की भावना कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है।

"और उत्पन्न अप्रसन्नता की भावना कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है?" विचार और परीक्षा के शांत होने पर, भिक्षु द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त होता है, विचार और परीक्षा से रहित होता है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण होता है। और यहीं पर उत्पन्न अप्रसन्नता का भाव पूरी तरह समाप्त हो जाता है। 219

"हे भिक्षुओं, इसे अप्रसन्नता के भाव के समाप्त होने को समझने वाला भिक्षु कहा जाता है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।

(iii. आनंद का भाव)

"यहाँ, भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान में रहता है, तो उसमें आनंद की अनुभूति उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह आनंद की अनुभूति उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण है, एक अभिकारक संक्रिया (व्यवहार-अनुकूलन) है, एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण के, बिना कारण के इस आनंद की अनुभूति का उत्पन्न होना असंभव है।' वह आनंद की अनुभूति को समझता है; वह आनंद की अनुभूति के उद्‌गम को समझता है; वह आनंद की अनुभूति के समापन को समझता है; और वह यह भी समझता है कि उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है।

और उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती है? आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त हो जाने के साथ, भिक्षु समभाव में रहता है और ध्यानमग्न (सतिमा) तथा पूर्णतः संबोधित (संपजानो) होकर शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव वाला, ध्यानमग्न और सुखी निवास करने वाला है।' और यहीं पर उत्पन्न आनंद भाव पूरी तरह समाप्त हो जाता है। 220

"हे भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहते हैं जिसने आनंद भाव के समाप्त होने को समझ लिया है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।

(iv. आनंद भाव)

"हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान करता है, तब उसमें आनंद भाव उत्पन्न होता है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह आनंद भाव उत्पन्न हुआ है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण संक्रिया (व्यवहार-निर्धारण), एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण संक्रिया (अनिवार्य-व्यवहार-निर्धारण), बिना कारण के उस आनंद भाव का उत्पन्न होना असंभव है।' वह आनंद भाव को समझता है; वह आनंद भाव के उद्‌गम को समझता है; वह आनंद की अनुभूति के समाप्त होने को समझता है; और वह यह भी समझता है कि उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

"और उत्पन्न आनंद की अनुभूति कहाँ पर पूरी तरह समाप्त हो जाती है? सुख और दुःख के त्याग के साथ, और उससे पहले सुख और दुःख के समाप्त हो जाने के साथ, भिक्षु चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्खा संस्कृत: उपेक्षा) द्वारा ध्यान (सती) का शुद्धिकरण शामिल है। और यहीं पर उत्पन्न आनंद की अनुभूति पूरी तरह समाप्त हो जाती है। 221

"हे भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहते हैं जिसने आनंद की अनुभूति के समाप्त होने को समझ लिया है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।

(v. समभाव (उपेक्खा) की अनुभूति)

"हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ ध्यान करता है, तो उसमें समभाव (उपेक्खा) की क्षमता उत्पन्न होती है। वह इस प्रकार समझता है: 'मुझमें यह समभाव (उपेक्खा) की क्षमता उत्पन्न हुई है। इसका एक आधार है, एक स्रोत है, एक कारण है, एक कारण है। बिना आधार, बिना स्रोत, बिना कारण (अनिवार्य व्यवहार) और बिना कारण के इस समभाव (उपेक्खा) की क्षमता का उत्पन्न होना असंभव है।" वह समभाव (उपेक्खा) को समझता है; वह समभाव (उपेक्खा) के उद्‌गम को समझता है; वह समभाव (उपेक्खा) के समापन को समझता है; और वह यह भी समझता है कि उत्पन्न समभाव (उपेक्खा) कहाँ पर समाप्त हो जाता है।

"और उत्पन्न समभाव (उपेक्खा) कहाँ पर समाप्त हो जाता है? हे भिक्षुओं, यहाँ पर, न-बोध-न-बोध की क्षमता को पूर्णतः पार करके, भिक्षु (भिक्षु) बोध (सन्न संस. संग्य) के समापन (निरोदम) का अनुभव करता है और उसमें निवास करता है। और यहीं पर उत्पन्न समभाव (उपेक्खा) समाप्त हो जाता है।

हे भिक्षुओं, इसे समभाव (उपेक्खा) के समापन को समझने वाला भिक्षु कहा जाता है। वह अपने मन को तदनुसार निर्देशित करता है।"

(v) बुढ़ापा (जरा)

511. वृद्धावस्था के अधीन (जरधम्म)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में पूर्वी उद्यान में मिगारा की माता के महल में निवास कर रहे थे। उस समय भगवान बुद्ध संध्याकाल में एकांतवास से बाहर आए और सूर्य की अंतिम किरणों में अपनी पीठ सेंक रहे थे।

तब पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास गए। उनके पास पहुँचकर प्रणाम करते हुए और उनके अंगों की मालिश करते हुए उन्होंने कहा, "हे पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है! हे पूज्यवर! भगवान बुद्ध का रंग अब शुद्ध और तेजस्वी नहीं रहा, उनके अंग शिथिल और झुर्रीदार हो गए हैं, उनका शरीर झुका हुआ है, और उनकी इंद्रियों में कुछ परिवर्तन दिखाई देता है - आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर की इंद्रियों में।" 222

"ऐसा ही है, आनंद! यौवन में बुढ़ापा आता है; स्वास्थ्य में बीमारी आती है; और जीवित रहते मृत्यु आती है। रंगत निर्मल और तेजस्वी नहीं रहती, अंग शिथिल और झुर्रीदार हो जाते हैं, शरीर झुक जाता है, और इंद्रियों में कुछ परिवर्तन आ जाता है - नेत्र शक्ति में... शरीर शक्ति में।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"धिक्कार है तुम पर, धिक्कार है बुढ़ापे पर।
बुढ़ापा जो सुंदरता को फीका कर देता है! बढ़ती उम्र के नीचे

सुंदर कठपुतली का कितना कुछ
कुचला गया है।

जो सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है,
उसकी भी मंजिल मृत्यु ही है।

मृत्यु रास्ते में किसी को नहीं छोड़ती
, बल्कि सब कुछ कुचलते हुए आती है।" 224

512. ब्राह्मण (उन्नभब्राह्मण)

सावत्थी में, ब्राह्मण उन्नाभा भगवान (बुद्ध) के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) से बोले,

"हे गुरु गौतम, इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं; ये एक-दूसरे के क्षेत्र और ठिकाने का अनुभव नहीं करतीं। वे पाँच कौन सी हैं? आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। 225 हे गुरु गौतम, क्योंकि इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं, और ये एक-दूसरे के क्षेत्र और ठिकाने का अनुभव नहीं करतीं, तो फिर ये किसका सहारा लेती हैं? और वह क्या है जो इनके क्षेत्र और ठिकाने का अनुभव करता है?"

"ब्राह्मण, इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं; ये एक-दूसरे के क्षेत्रों और ठिकानों का अनुभव नहीं करतीं। वे पाँच कौन सी हैं? आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। अब, ब्राह्मण, इन पाँचों इंद्रियों के अलग-अलग क्षेत्र और अलग-अलग ठिकाने हैं, और ये एक-दूसरे के क्षेत्रों और ठिकानों का अनुभव नहीं करतीं - ये मन का सहारा लेती हैं, और मन इनके क्षेत्रों और ठिकानों का अनुभव करता है।" 226

"पर, गुरु गौतम, मन किसका सहारा लेता है?"

"मन, ब्राह्मण, ध्यान (सती) का सहारा लेता है। " "

पर, गुरु गौतम, ध्यान किसका सहारा लेता है?" "

ध्यान (सती), ब्राह्मण, मुक्ति (विमुक्ति) का सहारा लेता है।" 227

"पर, गुरु गौतम, मुक्ति किसका सहारा लेती है?"

"मुक्ति, ब्राह्मण, निर्वाण का सहारा लेती है।"

"पर, गुरु गौतम, निर्वाण किसका सहारा लेता है?"

"हे ब्राह्मण, आप प्रश्न पूछने की सीमा से परे चले गए हैं। आप प्रश्न पूछने की सीमा को समझ नहीं पाए। क्योंकि, हे ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन निर्वाण को आधार, निर्वाण को गंतव्य और निर्वाण को अंतिम लक्ष्य मानकर व्यतीत किया जाता है।" 228

तब भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न होकर ब्राह्मण उन्नाभा अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, जिसके बाद वे उन्हें अपने दाहिनी ओर रखकर विदा हुए।

फिर, ब्राह्मण उन्नाभा के विदा होने के कुछ ही समय बाद, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक नुकीली छत वाले घर या हॉल में, पूर्व दिशा की ओर मुख वाली खिड़की के सामने, सूर्य उदय हो रहा है। जब उसकी किरणें खिड़की से प्रवेश करती हैं, तो वे कहाँ ठहरेंगी?"

"हे आदरणीय, पश्चिमी दीवार पर।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, ब्राह्मण उन्नाभा ने तथागत में ऐसी आस्था प्राप्त की है जो स्थिर, गहरी जड़ें जमा चुकी, दृढ़ और अटल है। इसे किसी तपस्वी, ब्राह्मण, देव (देवदूत), मार (शैतान), ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा हटाया नहीं जा सकता। यदि, हे भिक्षुओं, यदि ब्राह्मण उन्नाभा की इस समय मृत्यु हो जाए, तो ऐसा कोई बंधन नहीं है जिससे वह पुनः इस संसार में आ सके। 229

---

513. सकेता

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) साकेत में अंजनवन में, मृग उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, क्या कोई ऐसी व्याख्या विधि है जिससे पाँचों इंद्रियाँ पाँच शक्तियाँ बन जाएँ और पाँचों शक्तियाँ पाँच इंद्रियाँ बन जाएँ?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" ...

"भिक्षुओं, व्याख्या की एक विधि है, जिसके द्वारा पाँच शक्तियाँ पाँच सामर्थ्य बन जाती हैं और पाँच शक्तियाँ पाँच शक्तियाँ बन जाती हैं। और वह व्याख्या विधि क्या है? जो विश्वास की शक्ति है, वही विश्वास की शक्ति है; जो विश्वास की शक्ति है, वही विश्वास की शक्ति है। 230 जो वीरता (वीर्य) की शक्ति है, वही वीरता (वीर्य) की शक्ति है; जो वीरता (वीर्य) की शक्ति है, वही वीरता (वीर्य) की शक्ति है। जो ध्यान (सती) की शक्ति है, वही ध्यान (ध्यान) की शक्ति है; जो ध्यान (ध्यान) की शक्ति है, वही ध्यान (ध्यान) की शक्ति है। समाधि (सम्मोहन) अवस्था समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति है; जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की शक्ति है, वही समाधि (सम्मोहन) अवस्था की क्षमता है। जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता है, वही पन्न (पन्न) की शक्ति है; जो पन्न (पन्न) की शक्ति है, वही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की क्षमता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक नदी है जो पूर्व की ओर तिरछी, ढलानदार और झुकी हुई है, जिसके बीच में एक द्वीप है। व्याख्या की एक विधि है जिसके द्वारा उस नदी को एक धारा माना जा सकता है, लेकिन व्याख्या की एक विधि है जिसके द्वारा उसे दो धाराओं वाली माना जा सकता है।

और वह व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा उस नदी को एक धारा माना जा सकता है? द्वीप के पूर्व और पश्चिम के जल को ध्यान में रखते हुए - यही वह व्याख्या विधि है जिसके द्वारा उस नदी को एक धारा माना जा सकता है। और वह

व्याख्या विधि क्या है जिसके द्वारा उस नदी को दो धाराएँ माना जा सकता है? द्वीप के उत्तर और दक्षिण के जल को ध्यान में रखते हुए - यही वह व्याख्या विधि है जिसके द्वारा उस नदी को दो धाराएँ माना जा सकता है।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो आस्था की शक्ति है, वही आस्था की सामर्थ्य है (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... जो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की सामर्थ्य है, वही पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति है।

"भिक्षुओं, इन पांच शक्तियों के विकास और संवर्धन के कारण ही भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

---

514. पूर्वी गेटहाउस (पब्बाकोत्थका सं. पूर्व-कोष्ठक)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में पूर्वी द्वार पर निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,

"सारिपुत्त, क्या तुम्हें विश्वास है कि जब आस्था की शक्ति विकसित और पोषित होती है, तो उसका आधार (निर्वाण) अमरता की अवस्था होती है, उसका गंतव्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है, और उसका अंतिम लक्ष्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है? (इसी प्रकार ऊर्जा (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (तल्ली) के लिए भी)... कि जब प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति विकसित और पोषित होती है, तो उसका आधार (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है, उसका गंतव्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है, और उसका अंतिम लक्ष्य (अवस्था) अमरता की अवस्था होती है।"

आदरणीय महोदय, मैं इस विषय में भगवान (बुद्ध) पर विश्वास नहीं करता: 231 कि विश्वास की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सन्यास))... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता को अपना आधार, अमरता को अपना गंतव्य और अमरता को अपना अंतिम लक्ष्य मानती है। जिन लोगों ने इसे नहीं जाना, देखा, समझा, अनुभव किया और पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से संपर्क नहीं किया है, उन्हें इस विषय में दूसरों पर विश्वास करना होगा: कि विश्वास की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सन्यास))... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता को अपना आधार, अमरता को अपना गंतव्य और अमरता को अपना अंतिम लक्ष्य मानती है। लेकिन जिन लोगों ने इसे जाना, देखा, समझा, अनुभव किया और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से संपर्क किया है, वे इस बारे में बिना किसी उलझन या संदेह के होंगे: कि विश्वास की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) के लिए)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता (अमता संस्कृत: अमृत) इसका आधार, अमरता इसकी मंजिल और अमरता इसका अंतिम लक्ष्य है।

"मैं उनमें से एक हूँ, आदरणीय महोदय, जिन्होंने इसे जाना, देखा, समझा, अनुभव किया और पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से संपर्क किया है।" मुझे इस बात में कोई शंका या असमंजस नहीं है कि आस्था की शक्ति (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) के लिए)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो उसका आधार (निर्वाण) अमरता की अवस्था होती है, अमरता की अवस्था उसका गंतव्य होती है, अमरता की अवस्था उसका अंतिम लक्ष्य होती है।"

"शाबाश, शाबाश सारिपुत्त! जिन्हें यह ज्ञात नहीं है... उन्हें इस बारे में दूसरों पर विश्वास करना होगा... लेकिन जिन्हें यह ज्ञात है... उन्हें इस बारे में कोई उलझन या संदेह नहीं होगा: कि विश्वास की शक्ति... (इसी प्रकार ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) के लिए)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति, जब विकसित और पोषित होती है, तो अमरता ही उसका आधार, अमरता ही उसका गंतव्य और अमरता ही उसका अंतिम लक्ष्य होती है।"

---

515. पूर्वी पार्क (1) (पुब्बारामा1 सं. पूर्व-अरामा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित सावत्थी में, मिगारा की माता के निवास में थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"भिक्षुओं, क्योंकि एक विशेष गुण का विकास और संवर्धन करने से ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है। वह कौन सा गुण है? प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) का गुण। जिस श्रेष्ठ शिष्य के पास पन्न (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) होता है, उससे उत्पन्न विश्वास स्थिर हो जाता है, उससे उत्पन्न ऊर्जा (वीर्य) स्थिर हो जाती है, उससे उत्पन्न ध्यान (सती) स्थिर हो जाता है, उससे उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) अवस्था स्थिर हो जाती है। 232 "भिक्षुओं

, क्योंकि इस एक गुण का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।" अस्तित्व का।

---

516. पूर्वी पार्क (2) (पब्बाराम2 संस्कृत पूर्व-राम)
वही संदर्भ। "भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, एक भिक्षु जिसने
दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"भिक्षुओं, क्योंकि दो शक्तियों का विकास और संवर्धन करने के कारण ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है। वे दो शक्तियाँ कौन सी हैं? महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) और महान मुक्ति (विमुक्ति)। क्योंकि उसकी महान अंतर्दृष्टि (पन्ना) उसकी दृष्टि (पन्ना) है; उसकी महान मुक्ति उसकी समाधि अवस्था (सम्मोहन) की शक्ति है।

भिक्षुओं, क्योंकि इन दो शक्तियों का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'"

---

517. पूर्वी पार्क (3) (पुब्बारामा3 सं. पूर्व-अरामा)
वही संदर्भ। "भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, एक भिक्षु जिसने दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, क्योंकि चार शक्तियों का विकास और संवर्धन करने के कारण ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है। वे चार शक्तियाँ कौन सी हैं? ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति।

" "भिक्षुओं, क्योंकि इन चार शक्तियों का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म (जैसा कि ऊपर बताया गया है) नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।"

---

518. पूर्वी पार्क (4) (पब्बाराम4 संस्कृत पूर्व-राम)
वही संदर्भ। "भिक्षुओं, कितनी इंद्रियों का विकास और अभ्यास करके, एक भिक्षु जिसने दोषों का नाश कर लिया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में और कुछ नहीं है'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."
"भिक्षुओं, क्योंकि पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करने के कारण ही वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति।

भिक्षुओं, क्योंकि इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन किया गया है, इसलिए वह भिक्षु जिसने दोषों का नाश किया है, अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार करता है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म (जैसा कि ऊपर बताया गया है) नष्ट हो गया है... इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'"

---

519. पिंडोलाभरद्वाज
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। उस अवसर पर पूज्य पिंडोल भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की: "मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, पूज्य पिंडोल भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म का नाश हो गया है....' पूज्य पिंडोल भारद्वाज ने किस कारण से अंतिम ज्ञान की घोषणा इस प्रकार की है?"

हे भिक्षुओं, पिंडोला भारद्वाज भिक्षु ने तीन शक्तियों का विकास और संवर्धन करके ही अंतिम ज्ञान की घोषणा की है। वे तीन शक्तियां क्या हैं? सती (ध्यान), समाधि (सम्मोहन) और अंतर्दृष्टि (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि)। इन्हीं तीन शक्तियों के विकास और संवर्धन के कारण भिक्षु पिंडोला भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान की घोषणा की है। हे भिक्षुओं

, ये तीनों शक्तियां किसमें समाप्त होती हैं? ये विनाश (खयाल/क्षय) में समाप्त होती हैं। किसका विनाश? पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का। यह मानते हुए कि वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के विनाश में समाप्त होते हैं, 233 [225] भिक्षु पिंडोला भारद्वाज ने अंतिम ज्ञान इस प्रकार घोषित किया है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।'

---

520. अपाना में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) अंगों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ अपाना नामक अंगनों का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,

"सारिपुत्त, क्या तथागत के प्रति पूर्णतः समर्पित और उन पर पूर्ण विश्वास रखने वाले श्रेष्ठ शिष्य के मन में तथागत या तथागत की शिक्षाओं के बारे में कोई शंका या भ्रम होता है?"

आदरणीय महोदय, तथागत के प्रति पूर्णतः समर्पित और उन पर पूर्ण विश्वास रखने वाला श्रेष्ठ शिष्य तथागत या उनकी शिक्षाओं के विषय में किसी भी प्रकार की दुविधा या संदेह नहीं रखता। यह स्वाभाविक है, आदरणीय महोदय, कि आस्थावान श्रेष्ठ शिष्य हानिकारक अवस्थाओं का त्याग करने और लाभकारी अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए प्रज्वलित ऊर्जा से परिपूर्ण रहेगा; वह बलवान, दृढ़ और लाभकारी अवस्थाओं के संवर्धन के दायित्व से विमुख नहीं होगा। आदरणीय महोदय, उसकी यही ऊर्जा उसकी शक्ति का स्रोत है।

यह स्वाभाविक है, आदरणीय महोदय, कि आस्थावान और प्रज्वलित श्रेष्ठ शिष्य ध्यानमग्न रहेगा, सर्वोच्च ध्यान और विवेक से परिपूर्ण होगा, और बहुत पहले किए और कहे गए कार्यों को भी याद रखेगा। हे पूज्यवर, उनका वह ध्यान ही उनकी ध्यान क्षमता है। हे

पूज्यवर, यह स्वाभाविक है कि आस्थावान, ऊर्जावान और स्थिर ध्यान वाला श्रेष्ठ शिष्य मोक्ष को लक्ष्य बनाकर समाधि अवस्था प्राप्त करेगा। हे पूज्यवर, उनका वह समाधि ही उनकी समाधि क्षमता है। हे पूज्यवर, यह

स्वाभाविक है कि आस्थावान, ऊर्जावान, स्थिर ध्यान वाला और समाधि अवस्था में मन वाला श्रेष्ठ शिष्य यह समझेगा: 'यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं होता।' परन्तु अज्ञान का

पूर्णतः मिट जाना और निरोध होना, अंधकार के समूह का अंत होना: यही शांति की अवस्था है, यही उदात्त अवस्था है, अर्थात् सभी संस्कारों का शांत होना, सभी उपलब्धियों का त्याग, भोग का विनाश, वैराग्य, नित्याग, निर्वाण। हे पूज्यवर, उनकी वह प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि ही उनकी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि है।

और, आदरणीय गुरुदेव, जब कोई शिष्य बार-बार इस प्रकार प्रयास करता है, बार-बार इस प्रकार ध्यान लगाता है, बार-बार समाधि अवस्था में इस प्रकार मन लगाता है, बार-बार प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से इस प्रकार समझता है, तो वह शिष्य पूर्ण विश्वास प्राप्त करता है: 'जिन धर्मों (गुणों, नियमों) के बारे में मैंने पहले केवल सुना था, अब मैं शरीर से उनका संपर्क करके और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उन्हें भेदकर उन्हें देख रहा हूँ।' आदरणीय गुरुदेव, उसका यही विश्वास उसकी आस्था शक्ति है। 234

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! सारिपुत्त, जो शिष्य तथागत के प्रति पूर्णतः समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है, वह तथागत या तथागत की शिक्षाओं के बारे में किसी भी प्रकार की उलझन या संदेह नहीं रखता।"

(बुद्ध तब सारिपुत्त के शिष्य की आस्था शक्तियों के संबंध में दिए गए पूरे कथन को शब्दशः दोहराते हैं।)

(vi) सूअर की गुफा खंड (सुकरखाटावग्गो)

521. साला

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कोसलों के बीच साला नामक ब्राह्मण गाँव में ठहरे हुए थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, जिस प्रकार पशुओं में सिंह, जो पशुओं का राजा है, बल, गति और साहस के मामले में उनका श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) को उनका श्रेष्ठ माना जाता है।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? हे भिक्षुओं, विश्वास की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। वीर्य की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। सती की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञानोदय की ओर ले जाता है। समाधि (सम्मोहन) की अवस्था ज्ञानोदय के लिए अनुकूल है; यह ज्ञानोदय की ओर ले जाती है। पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की अवस्था ज्ञानोदय के लिए अनुकूल है; यह ज्ञानोदय की ओर ले जाती है।

"जिस प्रकार, भिक्षुओं में शेर को उनका प्रमुख घोषित किया गया है, उसी प्रकार ज्ञानोदय के लिए अनुकूल अवस्थाओं में पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) को उनका प्रमुख घोषित किया गया है, अर्थात् ज्ञानोदय की प्राप्ति के लिए।"

---

522. मल्लिकाएँ

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) मल्लिकों के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ उरुवेलकप्पा नामक मल्लिकों का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, जब तक श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, तब तक अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता नहीं होती, अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता नहीं होती। 236 परन्तु जब श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता आ जाती है, तब अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता आ जाती है।

"यह, भिक्षुओं, ठीक वैसे ही है जैसे नुकीली छत वाले घर में: जब तक छत की चोटी को ठीक से स्थापित नहीं किया जाता, तब तक शहतीरों में स्थिरता नहीं होती, तब तक शहतीरों में स्थिरता नहीं होती; लेकिन जब छत की चोटी अपनी जगह पर स्थापित हो जाती है, तब शहतीरों में स्थिरता आ जाती है, तब शहतीरों में दृढ़ता आ जाती है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब तक श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, तब तक अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता नहीं होती, तब तक उनमें दृढ़ता नहीं होती। लेकिन जब श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब अन्य चार इंद्रियों में स्थिरता आ जाती है, तब उनमें दृढ़ता आ जाती है। वे

चार कौन सी इंद्रियां हैं? विश्वास की इंद्री, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती) और समाधि (सम्मोहन) की इंद्री। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से युक्त श्रेष्ठ शिष्य के मामले में, उससे उत्पन्न विश्वास स्थिर हो जाता है; उससे उत्पन्न ऊर्जा-शक्ति स्थिर हो जाती है; उससे उत्पन्न ध्यान स्थिर हो जाता है; उससे उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) की अवस्था स्थिर हो जाती है।

523. एक प्रशिक्षु (शिष्य के बिना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) घोसिता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:

"भिक्षुओं, क्या कोई ऐसी विधि है जिससे एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु अवस्था में रहते हुए, यह समझ सके कि 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ' और एक पारलौकिक भिक्षु, पारलौकिक अवस्था में रहते हुए, यह समझ सके कि 'मैं पारलौकिक हूँ'?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"भिक्षुओं, एक विधि है जिससे एक प्रशिक्षु भिक्षु... यह समझ सके कि 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ' और एक पारलौकिक भिक्षु... यह समझ सके कि 'मैं पारलौकिक हूँ'।"

"और हे भिक्षुओं, वह कौन सी विधि है जिसके द्वारा एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु अवस्था में रहते हुए, यह समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ'?

हे भिक्षुओं, यहाँ एक प्रशिक्षु भिक्षु यथार्थ को समझता है: 'यह दुख है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का मूल है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; वह यथार्थ को समझता है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' यह वह विधि है जिसके द्वारा एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु अवस्था में रहते हुए, यह समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ'।"

"फिर से, भिक्षुओं, एक प्रशिक्षु भिक्षु इस प्रकार विचार करता है:
'क्या यहाँ बाहर कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण है जो भगवान (बुद्ध) के समान वास्तविक, सच्चा और प्रासंगिक धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता हो?' वह इस प्रकार समझता है: 'यहाँ बाहर कोई दूसरा तपस्वी या ब्राह्मण नहीं है जो भगवान (बुद्ध) के समान वास्तविक, सच्चा और प्रासंगिक धर्म का उपदेश देता हो।' यह भी एक ऐसी विधि है जिसके माध्यम से एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु के स्तर पर खड़े होकर, समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ।'"

"फिर से, भिक्षुओं, एक प्रशिक्षु भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों को समझता है - विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना)। वह अभी तक शरीर से संपर्क स्थापित करके, उनके गंतव्य, उनकी पराकाष्ठा, उनके फल, उनके अंतिम लक्ष्य में निवास नहीं करता; बल्कि पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) से उसे भेदकर वह (ध्यान में) देखता है। 238 यह भी एक विधि है जिसके द्वारा एक प्रशिक्षु भिक्षु, प्रशिक्षु के स्तर पर खड़े होकर, समझता है: 'मैं एक प्रशिक्षु हूँ।'"

और हे भिक्षुओं, वह विधि क्या है जिसके द्वारा प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु, प्रशिक्षण से परे स्तर पर स्थित होकर, यह समझता है: 'मैं प्रशिक्षण से परे एक हूँ'? हे भिक्षुओं, प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों को समझता है - आस्था की शक्ति... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति। वह शरीर से संपर्क स्थापित करके, जो उनका गंतव्य, उनकी पराकाष्ठा, उनका फल, उनका अंतिम लक्ष्य है, उसमें प्रवेश करके, और उसे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से भेदकर, वह (ध्यान में) देखता है। यह वह विधि है जिसके द्वारा प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु, प्रशिक्षण से परे स्तर पर स्थित होकर, यह समझता है: 'मैं प्रशिक्षण से परे एक हूँ'।

हे भिक्षुओं, फिर से, प्रशिक्षण से परे एक भिक्षु छह शक्तियों को समझता है - आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। वह समझता है: 'ये छह इंद्रियां पूर्णतः और बिना किसी शेष के समाप्त हो जाएंगी, और कोई अन्य छह इंद्रियां कहीं भी किसी भी रूप में उत्पन्न नहीं होंगी।' यह भी एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रशिक्षण से परे भिक्षु, प्रशिक्षण से परे स्तर पर खड़े होकर, समझता है: 'मैं प्रशिक्षण से परे हूं।'

---

524. पदचिह्न (पाड़ा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी जीवित प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समा जाते हैं, और हाथी के पदचिह्न को उसके आकार के कारण प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के चरणों में, 239 प्रबोधन (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता को प्रमुख माना जाता है, अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के लिए।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के चरण क्या हैं? हे भिक्षुओं, विश्वास की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। वीरता (वीर्य) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। सती (ध्यान) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। समाधि (सम्मोहन) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता ज्ञान प्राप्ति का एक चरण है।

"जिस प्रकार, भिक्षुओं, सभी जीवित प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित हो जाते हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... उसी प्रकार, ज्ञानोदय की ओर ले जाने वाले चरणों में, पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की क्षमता को प्रमुख माना गया है, अर्थात् ज्ञानोदय की प्राप्ति के लिए।"

---

525. हार्टवुड (सारा)
भिक्षुओं, जिस प्रकार सुगंधित वृक्षों में लाल चंदन को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) को प्रमुख माना जाता है।

... "और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि 471, 480 में है) ...पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति..."

---

526. स्थापित (पतितिता सं. प्रतिष्ठा)
भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु एक धर्म में स्थापित हो जाता है, तो उसकी पाँचों इंद्रियाँ पूर्णतः विकसित हो जाती हैं। वह कौन सा धर्म है? अप्पमद (जागरूकता) में।

और हे भिक्षुओं, जागरूकता क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु मन को विकारों और विकारग्रस्त अवस्थाओं से बचाता है। 240 इस प्रकार मन की रक्षा करते हुए, विश्वास की इंद्रिय पूर्ण रूप से विकसित होती है; ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की इंद्रिय... ध्यान (सती) की इंद्रिय... समाधि (सम्मोहन) की इंद्रिय... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की इंद्रिय पूर्ण रूप से विकसित होती है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार जब कोई भिक्षु एक धर्म में स्थापित हो जाता है, तो उसकी पाँचों इंद्रियाँ पूर्णतः विकसित हो जाती हैं।

---

527. ब्रह्म सहमपति
एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के तुरंत बाद उरुवेला में नेरंजारा नदी के किनारे, बरगद के वृक्ष की तलहटी में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में थे, उनके मन में यह विचार आया: "पांचों इंद्रियों का विकास और संवर्धन होने पर, उनका आधार (निर्वाण) ही अमरता है, उनका गंतव्य भी अमरता है, उनका अंतिम लक्ष्य भी अमरता है। वे पांच इंद्रियां कौन सी हैं? विश्वास की इंद्री, वीरता की इंद्री, सती की इंद्री, समाधि की इंद्री और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की इंद्री। इन पांचों इंद्रियों का विकास और संवर्धन होने पर, उनका आधार (निर्वाण) ही अमरता है, उनका गंतव्य भी अमरता है, उनका अंतिम लक्ष्य भी अमरता है।"

तब ब्रह्मा सहमपति ने अपने मन से भगवान (बुद्ध) के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, वैसे ही शीघ्रता से ब्रह्मलोक से विलीन होकर भगवान (बुद्ध) के समक्ष पुनः प्रकट हुए। उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला, अपने जुड़े हुए हाथों से भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा: "ऐसा ही है, हे भगवान! ऐसा ही है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! आदरणीय महोदय, पाँचों इंद्रियों का अंतिम लक्ष्य अमरता है।

आदरणीय महोदय, एक समय मैंने पूर्णतः प्रबुद्ध कस्सपा के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया था। वहाँ वे मुझे भिक्षु सहक के नाम से जानते थे।" हे पूज्यवर, इन्हीं पाँचों इंद्रियों को विकसित और पोषित करके मैंने इंद्रिय सुखों की इच्छा का नाश किया और इस प्रकार, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, मैं ब्रह्मलोक में एक शुभ स्थान (सुगतो) में पुनर्जन्म लिया। वहाँ वे मुझे ब्रह्म सहमपति के नाम से जानते हैं। ऐसा ही है, हे भगवान (बुद्ध)! ऐसा ही है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: कि कैसे ये पाँचों इंद्रियाँ, जब विकसित और पोषित होती हैं, तो अमरता को अपना आधार, अमरता को अपना गंतव्य और अमरता को अपना अंतिम लक्ष्य बनाती हैं।

---

528. सूअर की गुफा (सुकरखाता)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में वराह गुफा में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,

"हे सारिपुत्त, क्या लाभ है यह विचार करते हुए कि जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो गए हों, वह तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण का पालन करे?" 241

“हे पूज्यवर, बंधनों से अतुलनीय सुरक्षा को लाभ मानते हुए, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो गए हों, वह तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण का पालन करे।”

"बहुत खूब, सारिपुत्त! क्योंकि, सारिपुत्त, यह उस भिक्षु के लिए लाभ है जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं और वह तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान का आचरण करता है।

और, सारिपुत्त, वह कौन सा लाभ है जिसके लिए वह भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान का आचरण करने पर बंधनों से अद्वितीय सुरक्षा प्राप्त करता है?" "

हे पूज्यवर, जिस भिक्षु के दोष नष्ट हो चुके हैं, वह आस्था की शक्ति विकसित करता है, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है। वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति... ध्यान (सती) की शक्ति... समाधि (सम्मोहन) की शक्ति... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति विकसित करता है, जो शांति की ओर ले जाती है, जो ज्ञान की ओर ले जाती है।" हे पूज्यवर, यही वह अतुलनीय सुरक्षा है जो एक भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण से प्राप्त करता है। "

वाह, वाह, सारिपुत्त! क्योंकि, सारिपुत्त, यही वह अतुलनीय सुरक्षा है जो एक भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शित करने वाले आचरण से प्राप्त करता है।

और, सारिपुत्त, वह सर्वोच्च सम्मान क्या है जिसके साथ एक भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति आचरण करता है?"

"हे पूज्यवर, यहाँ एक भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, गुरु, धर्म (मार्ग, नियम), संघ (भाईचारा), प्रशिक्षण और समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति आदर और श्रद्धा भाव से निवास करता है। 242 हे पूज्यवर, यही वह सर्वोच्च सम्मान है जिसके साथ एक भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति आचरण करता है।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! क्योंकि, सारिपुत्त, यही वह सर्वोच्च सम्मान है जिसके साथ एक भिक्षु जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, तथागत और तथागत की शिक्षाओं के प्रति आचरण करता है।"

---

529. उत्पन्न होना (1) (उप्पदा1)
सावत्थी में: "भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं। वे पाँच कौन सी शक्तियाँ हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो यदि उत्पन्न न हों तो तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के प्रकट हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं।"

---

530. उत्पन्न होना (2) (उप्पदा2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं। वे पाँच कौन सी शक्तियाँ हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और पोषित हों, तो सौभाग्यशाली (सुगतो) (बुद्ध) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं।"

(vii) ज्ञानोदय अनुभाग के लिए अनुकूल (बोधिपक्खियावग्गो सं. बोधि-पक्ष-वर्ग)
531. बंधन (संयोजन)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो ये बंधनों के त्याग की ओर ले जाती हैं। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान (सती) की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ, यदि विकसित और अभ्यास की गई हों, तो यदि उत्पन्न न हों तो सौभाग्यशाली (सुगतो) (बुद्ध) के अनुशासन के बिना उत्पन्न नहीं हो सकतीं।"

---

532. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)
भिक्षुओं, इन पाँच शक्तियों का विकास और पोषण करने से अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) का उन्मूलन होता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति (पन्न)। ये पाँच शक्तियाँ...

---

533. पूर्ण समझ (परिण्णा सं. परिपूर्ण-ज्ञान)
भिक्षुओं, इन पाँच शक्तियों का विकास और पोषण करने से पाठ्यक्रम की पूर्ण समझ प्राप्त होती है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ...

---

534. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करने से विकारों का नाश होता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति।

इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करने से बंधनों का त्याग होता है, अंतर्निहित प्रवृत्तियों का उन्मूलन होता है, मार्ग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है और विकारों का नाश होता है। वे पाँच शक्तियाँ कौन सी हैं? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति।

---

535. फल (फल1)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो दो में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) शेष रहती है, तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।

---

536. फल (फल 2)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? आस्था की शक्ति (जैसा कि अनुच्छेद 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जब इन पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो सात फल और लाभ प्राप्त होते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?

मनुष्य को इसी जीवन में शीघ्र ही परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यदि वह इसी जीवन में शीघ्र ही परम ज्ञान प्राप्त न करे, तो मृत्यु के समय परम ज्ञान प्राप्त होता है। यदि वह इसी जीवन में या मृत्यु के समय भी परम ज्ञान प्राप्त न करे, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है... मृत्यु के समय ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है... बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त कर लेता है... परिश्रम सहित निर्वाण प्राप्त कर लेता है... और फिर नदी के विपरीत दिशा में अग्रसर होकर अकनित्त लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। हे

भिक्षुओं, जब इन पाँचों शक्तियों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तब इन सात फलों और लाभों की प्राप्ति होती है।

---

537. वृक्ष (1) (रुक्खा 1 सं. वृक्ष)
भिक्षुओं, जिस प्रकार जंबुद्वीप के वृक्षों में गुलाब-सेब का वृक्ष प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्रमुख मानी जाती है।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? हे भिक्षुओं, आस्था की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। (अन्य जैसा कि 531 में है)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की अवस्था ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक है; यह ज्ञान की ओर ले जाती है। हे

भिक्षुओं, जिस प्रकार जंबुद्वीप के वृक्षों में गुलाब-सेब (जमुन) का वृक्ष प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) प्रमुख मानी जाती है।

538. वृक्ष (2) (रुक्खा2 सं. वृक्ष)
भिक्षुओं, जिस प्रकार स्वर्ग में तावतिंसा देवों के वृक्षों में मूंगा वृक्ष (परिच्छत्तक संस्कृत: पारिजात) 243 को प्रमुख बताया गया है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) को प्रमुख बताया गया है।

और हे भिक्षुओं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाएँ क्या हैं? आस्था की शक्ति... (जैसा कि 531 में है)... पन्ना (प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि) की शक्ति... अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के लिए।

539. वृक्ष (3) (रुक्खा3 सं. वृक्ष)
"भिक्षुओं (साधुओं) के लिए, जिस प्रकार असुरों (राक्षसों के लोक) के वृक्षों में चित्तपतली वृक्ष (तुरही पुष्प वृक्ष) 244 को प्रमुख घोषित किया गया है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए अनुकूल अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की क्षमता को प्रमुख घोषित किया गया है ... (जैसा कि ऊपर बताया गया है) ... अर्थात्, ज्ञान प्राप्ति के लिए।"

540. वृक्ष (4) (रुक्ख4 सं. वृक्ष)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) के लिए, जिस प्रकार सुपन्न वृक्षों में कुटसिंबली वृक्ष को प्रमुख माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक अवस्थाओं में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि को प्रमुख माना जाता है... (उपरोक्त सभी)... अर्थात्, ज्ञान प्राप्ति के लिए।"

(viii) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला खंड (गंगापेय्यालवग्गो)
541-552. पूर्व की ओर, आदि (पैसिनाडी सं. पश्चिम-नाडी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और अभ्यास कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुके? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु विश्वास की शक्ति का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होता है। वह ऊर्जा-शक्ति की शक्ति का विकास करता है... सती की शक्ति का... समाधि की शक्ति का... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति का, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।"

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले अध्याय के समानांतर इसी प्रकार की जाएगी।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ix) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
553-564. तथागत, इत्यादि।
(पूर्व 541-552 के समानांतर संकायों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।

दसवें के रूप में वस्त्र सहित।

(x) बलकारणीयवग्गो (बलकारणीयवग्गो)
565-576. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
(पिछली धारा 541-552 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा)

परिश्रमी, बीज और नाग,
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो,
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(xi) खोज (एसानावग्गो)
577-586. खोजें, आदि (एसाना)
(पिछली धारा 541-552 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी)

खोज, भेद, दोष,
अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध दुख,

बांझपन, कलंक और कष्ट।
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(xii) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
587-596. बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)
(पिछले अनुच्छेद 541-552 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी)

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी, अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इन पाँच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु विश्वास की शक्ति का विकास करता है... (जैसा कि 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होती है।"

"इन पांच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए, और इन पांच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, अवरोध,
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(xiii) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)

597-608. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुकता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आस्था की शक्ति का विकास करता है... (जैसा कि 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है।

हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुकता है।

(xiv) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
609-618 तथागत, इत्यादि।
(जैसा कि पिछले 597-608 में था)

(xv) कठोर कर्म धारा (बालकरणीयवग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
619-630 कठिन, इत्यादि।
(जैसा कि पिछले 597-608 में था)

(xvi) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
631-640 खोजें, इत्यादि।
(जैसा कि पिछले 597-608 में था)

(xvii) बाढ़ (ओघावाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
641-650. बाढ़, ऊंचे बंधन आदि (ओघाड़ी)
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और इन पाँच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए। ये

पाँच कौन से हैं? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु आस्था की शक्ति का विकास करता है... (जैसा कि 531 में है)... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति का, जिसका अंतिम लक्ष्य वासना (राग) का निवारण, घृणा (दोष/द्वेष) का निवारण और मोह (मोह) का निवारण है।

इन पाँच आध्यात्मिक शक्तियों का विकास दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और इन पाँच उच्चतर बंधनों के त्याग के लिए किया जाना चाहिए।

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपादान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, बाधाएँ।
स्कंध, निम्न और उच्चतर बंधन।

(इन सभी का विस्तृत वर्णन पाँच इंद्रियों के माध्यम से किया जाएगा, जिनका अंतिम
लक्ष्य कामवासना, घृणा (दोष/द्वेष) और मोहभंग का निवारण करना है।)

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन5-महावग्गा-वेर2-भाग2

SN5-महान पुस्तक-भाग 2
(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] के पाँचवें खंड का निरंतरता है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)
इस पुस्तक में बड़े आकार के सूत्रों का संग्रह है, इसलिए इसे महावग्ग (महान पुस्तक) कहा जाता है।
महत्वपूर्ण सूत्र:
651-662: चार महान प्रयास;
822: बुद्ध ने जीने की इच्छा का त्याग करने का निर्णय लिया;
823: ज्ञानोदय और आध्यात्मिक शक्तियों के चार अंगों पर महत्वपूर्ण सूत्र;
899, 900: ध्यान की चार स्थापनाएँ (सती);
923-934: चार ध्यान;
976: पाँच उच्चतर बंधन;
977: अनापान (श्वास ध्यान);
981, 984: श्वास ध्यान के लाभ;
997: एक कुलीन व्यक्ति के चार गुण (तीन रत्नों में विश्वास और पंचशील सद्गुणों का अभ्यास);
1024: मृत्यु के समय क्या करना चाहिए; बीमारों को सांत्वना।
1071: चार आर्य सत्य
1079, 1080: गलत प्रकार की बातें
1081: महत्वपूर्ण: धम्मचक्कपवत्तना - आर्य अष्टांगिक मार्ग और चार आर्य सत्यों द्वारा धम्मचक्र को गतिमान करना
1100: दुख के बारे में
1101: बुद्ध ने अपने हाथों में कुछ पत्ते लेकर यह दर्शाया है कि उन्होंने केवल इतना ही उपदेश दिया है।
1117, 1118, 1172-1201: मनुष्य का जन्म दुर्लभ है, इसलिए इसका उपयोग मुक्ति के लिए करें (विमुक्ति)।
1119-1131: जो लोग मार्ग का अनुसरण करते हैं और ध्यान करते हैं, उनके पाप बहुत कम रह जाते हैं।
1134-1171: नैतिकता का पालन करने वाले बहुत कम हैं।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< पिछला (SN5-भाग 1) अगला (SN-परिवर्तन) >>>>

अंतर्वस्तु

1.8.3(iii) कोटिगमावग्गो
1.8.3.11091. कोटिगामा (1) 386
1.8.3.21092. कोटिगामा (2) 387
1.8.3.31093. पूर्णतः प्रबुद्ध (सम्मसंबुद्ध)
1.8.3.41094. अरहंत
1.8.3.51095. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
1.8.3.61096. मित्र (Mitta sans. Mitra)
1.8.3.71097. वास्तविक (तथा)
1.8.3.81098. लोक (विश्व)
1.8.3.91099. पूर्णतः समझा जाना (परिन्नेय)
1.8.3.101100. गवमपति
1.8.4(iv) सिम्पापा-वन (सिसापावना) खंड (सिसापावनवग्गो)
1.8.4.11101. सिंसपावन (सिसपवन)
1.8.4.21102. बबूल (खदिरापत्ता)
1.8.4.31103. डंडा (डंड)
1.8.4.41104. कपड़े (सेल)
1.8.4.51105. सौ भाले (सत्तीसत)
1.8.4.61106. प्राणी (पण सं. प्राणि)
1.8.4.71107. सूर्य (1) (सूर्य1 सं. सूर्य)
1.8.4.81108. सूर्य (2) (सूरिया2 सान. सूर्य)
1.8.4.91109. इंद्र का स्तंभ (इंदखिल सं. इंद्र-कील)
1.8.4.101110. तर्क की तलाश (वदत्तिका)
1.8.5(v) अवक्षेप खंड (पापटावग्गो संस. प्रपात-वर्ग)
1.8.5.11111. विश्व के बारे में सोचना (लोकसिंता संस. लोकासिंता)
1.8.5.21112. द प्रिसिपिस (पापट संस. प्रपाट)
1.8.5.31113. महाप्रलय (महापरिलाहा)
1.8.5.41114. नुकीला घर (कुटागारा)
1.8.5.51115. बाल 404 (वाला बिना बाल)
1.8.5.61116. अंधकार (अंधकार)
1.8.5.71117. छेद वाला जुआ (l) 408 (चिग्गलयुगा1)
1.8.5.81118. छेद वाला जुआ (2) (चिग्गलयुगा2)
1.8.5.91119. सिनेरु (1) (सिनेरुपब्बताराज1 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
1.8.5.101120. सिनेरु (2) (सिनेरुपब्बताराज2 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
1.8.6(vi) द ब्रेकथ्रू (अबीसमया)
1.8.6.11121. नाखून 412 (नखसिखा)
1.8.6.21122. तालाब (पोखरानी)
1.8.6.31123. संगम पर जल (1) (संभेज्जा1)
1.8.6.41124. संगम पर जल (2) (संभेज्जा2)
1.8.6.51125. पृथ्वी (1) (महापृथ्वी1 सं. महापृथ्वी)
1.8.6.61126. पृथ्वी (2) (महापथवी2 सं. महापृथ्वी)
1.8.6.71127. महासागर (1) (महासमुद्र1 सं. महासमुद्र)
1.8.6.81128. महासागर (2) (महासमुद्दा2 सं. महासमुद्र)
1.8.6.91129. पर्वत उपमा (1) (पब्बतुपमा1 सं. पर्वत-उपमा)
1.8.6.101130. पर्वत (2) (पब्बतुपमा2 सं. पर्वत-उपमा)
1.8.7(vii) प्रथम कच्चा अनाज पुनरावृति श्रृंखला 413
1.8.7.11131. अन्यत्र (अन्नात्र सं. अत्यन्तर)
1.8.7.21132. बाहरी देश (प्रत्यन्तर के बिना)
1.8.7.31133. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना संस्कृत प्रज्ञा)

1.8.7.41134. मदिरा एवं मादक पेय (सुरमेराया)
1.8.7.51135. जलजनित (ओडाका)
1.8.7.61136. जो माता (मत्तेय्या) का सम्मान करते हैं
1.8.7.71137. जो पिता का आदर करते हैं (पेत्तेय्या)
1.8.7.81138. जो तपस्वियों (समन्ना) का सम्मान करते हैं
1.8.7.91139. जो ब्राह्मणों का आदर करते हैं (ब्राह्मण)
1.8.7.101140. जो बड़ों का सम्मान करते हैं (पकाइका)
1.8.8(viii) दूसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1.8.8.11141. जीवित प्राणियों की हत्या 415 (पनतीपता सं. प्राणि-पता)
1.8.8.21142. जो दिया न गया हो उसे ग्रहण करना (अदिन्नादना)
1.8.8.31143. यौन दुराचार
1.8.8.41144. मिथ्याभाषण (मुसावदा सं. मिथ्या-वाद)
1.8.8.51145. विभाजनकारी भाषण (पेसुन्ना)
1.8.8.61146. कठोर भाषण (फरुसावाका)
1.8.8.71147. व्यर्थ की बातें (संफप्पलापा)
1.8.8.81148. बीज जीवन (बीजागामा)
1.8.8.91149. अनुचित समय (विकलाभोजन)
1.8.8.101150. सुगंध एवं मलहम (गंधविलेपना)
1.8.9(ix) तीसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1.8.9.11151. नृत्य और गायन (नक्कागिता)
1.8.9.21152. उच्च तल (उच्चसायन)
1.8.9.31153. सोना और चांदी (जटरूपराजता)
1.8.9.41154. कच्चा अनाज (अमाकधन्ना)
1.8.9.51155. कच्चा मांस (अमकमंसा)
1.8.9.61156. लड़कियाँ (कुमारिका)
1.8.9.71157. दास (दासिदास)
1.8.9.81158. बकरियाँ और भेड़ें (अजेलाका)
1.8.9.91159. मुर्गी और सूअर (कुक्कुटासुकारा)
1.8.9.101160. हाथी (हत्थिगवस्सा)
1.8.10(x) चौथी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1.8.10.11161. खेत (खेत्तवत्थु)
1.8.10.21162. ख़रीदना और बेचना (कायाविक्कया सं. क्राय-विक्रया)
1.8.10.31163. संदेश (दुतेय्या)
1.8.10.41164. झूठे वजन (तुलकुटा)
1.8.10.51165. रिश्वतखोरी (उकोटाना)
1.8.10.61166-1171. अंग-भंग करना, इत्यादि (छेदनदी)
1.8.11(xi) पाँच गंतव्यों की पुनरावृति श्रृंखला
1.8.11.11172. मनुष्य के रूप में निधन (1) (मनुस्साकुटिनिरया सं. मनुष्य-कुटि-निरया)
1.8.11.21173. मनुष्य के रूप में निधन (2) (मनुसा-कुटी-तिराचना)
1.8.11.31174. मनुष्य के रूप में निधन (3)
1.8.11.41175-1177. मनुष्य के रूप में निधन (मनुसा-कुटी-देवनिराया)
1.8.11.51178-1180. देवों के रूप में निधन (देवकुटिनरायडी)
1.8.11.61181-1183. देवों के रूप में निधन (देवमुनस्सानिरायदी)
1.8.11.71184-1186. नर्क से दूर जाना (निरायमानुस्सानिरयादि)
1.8.11.81187-1189. नर्क से निधन ((निरायदेवनिरयादि)
1.8.11.91190-1192. पशु जगत से विदा होना (तिराच्चनमनुस्सनिरायदी)
1.8.11.101193-1195. पशु जगत से प्रस्थान (तिराच्चनदेवनिरायदी)
1.8.11.111196-1198. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीमनुस्सनिरायदी)

1.8.11.121199-1200. भूतलोक से प्रस्थान (पेट्टिदेवनिरायदी)
1.8.11.131201. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीदेवपेट्टीविसाया)
संयुक्त निकाय:5.महावग्ग-महान पुस्तक-भाग2

नमो तस्स्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 5: सही प्रयासों पर संबंधित प्रवचन (सम्मप्पधनासम्युत्म) {सम्युत-49}
(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला खंड (गंगापेय्यलावग्गो)
651-662. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, ये चार उचित प्रयास हैं। वे चार क्या हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ देखें:
1. एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।
2. वह उत्पन्न हुए हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।
3. वह अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।
4. वह उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है। प्रयास, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन को लगाता है और प्रयास करता है। ये चार सही प्रयास हैं। 245

"भिक्षुओं, जैसे गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, ढलान बनाती है और आगे बढ़ती है, वैसे ही जो भिक्षु चार सही प्रयासों को विकसित और पोषित करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है, ढलान बनाता है और आगे बढ़ता है।"

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु किस प्रकार चार उचित प्रयासों को विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है...

वह अजन्मे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है... वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। ये चार उचित प्रयास हैं
। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु चार उचित प्रयासों को विकसित और पोषित करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके। ढलानें, और निर्वाण की ओर झुकाव।

(इस अध्याय के शेष सूत्र भी पिछले अध्याय 92-102 के समानांतर ही विस्तृत किए जाने हैं।)

पूर्व की ओर झुकी हुई छह ढलानें
और समुद्र की ओर झुकी हुई छह ढलानें।

ये दो छह मिलकर बारह बनाते हैं,
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
663-672. तथागत, इत्यादि।

(पिछली धारा 139-148 के समानांतर चार सही प्रयासों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी,
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
दसवें के रूप में वस्त्र सहित।

(iii) कठोर कर्म अनुभाग (बालकरणीयवग्गो)

673-684. ज़ोरदार, आदि (बालकारनियादि)

भिक्षुओं, जिस प्रकार सभी कठिन कर्म पृथ्वी पर आधारित और पृथ्वी से स्थापित होकर किए जाते हैं, उसी प्रकार शील पर आधारित और सद्‌गुण से स्थापित होकर भिक्षु चारों सही प्रयासों का विकास और अभ्यास करते हैं।

और हे भिक्षुओं, सद्‌गुण पर आधारित और सद्‌गुण से स्थापित होकर भिक्षु चारों सही प्रयासों का विकास और अभ्यास कैसे करते हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करते हैं; वे प्रयास करते हैं, वीर्य शक्ति को जागृत करते हैं, मन लगाते हैं और प्रयास करते हैं। वह उत्पन्न हुई अकुशल (हानिकारक) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है। वह अउत्पन्न लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है। वह उत्पन्न हुई लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। ये चार सही प्रयास हैं।

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, सद्‌गुण पर आधारित, सद्‌गुण पर स्थापित, चार सही प्रयासों का विकास और अभ्यास करता है।"

(पिछले अनुच्छेद 149-160 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

परिश्रम, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथिगृह और नदी।

(iv) खोज (एसाना)

685-694. खोजें, इत्यादि (एसानादी)

भिक्षुओं, ये तीन खोजें हैं। कौन सी तीन? इंद्रिय सुख की खोज, अस्तित्व (भाव) की खोज, और ब्रह्मचर्य जीवन की खोज। ये तीन खोजें हैं। इन तीन खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इनके पूर्ण ज्ञान के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए चार उचित प्रयास विकसित किए जाने चाहिए।

कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव के लिए, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है।

"इन तीन खोजों के दिव्य ज्ञान (अभिन) की प्राप्ति, उनके पूर्ण ज्ञान, उनके पूर्ण विनाश और उनके त्याग के लिए इन चार उचित प्रयासों को विकसित करना आवश्यक है।"

(पिछली धारा 161-170 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

खोज, भेद, दोष।

अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट।
संवेदना (वेदना), लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) और प्यास।

(v) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
695-704. बाढ़, ऊंचे बंधन आदि (ओघाड़ी)
(पिछली धारा 171-179 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए और इनका त्याग करने के लिए चार उचित प्रयास विकसित किए जाने चाहिए।

"ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करते हैं... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव के लिए, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वे प्रयास करते हैं, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करते हैं, मन लगाते हैं और प्रयास करते हैं।"

"इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान की प्राप्ति, उनके पूर्ण बोध, उनके पूर्ण विनाश और उनके त्याग के लिए इन चार उचित प्रयासों को विकसित करना आवश्यक है।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)
, गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

इंद्रिय सुख की डोरियाँ, अवरोध,
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 6: शक्तियों पर संबंधित प्रवचन (बालसम्युत्त) {सम्युत्त-50}
(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
705-716. शक्तियां, इत्यादि (बलादी)
भिक्षुओं, ये पाँच शक्तियाँ हैं। कौन सी पाँच? श्रद्धा की शक्ति, वीरता की शक्ति, सती की शक्ति, समाधि की शक्ति और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की शक्ति। ये पाँच शक्तियाँ हैं।

भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलान पर बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु इन पाँच शक्तियों का विकास और अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर ढलान पर बहता है।

"और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु विश्वास की शक्ति का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति का विकास करता है... ध्यान की शक्ति का... समाधि की शक्ति का... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की अवस्था में परिपक्व होती है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पाँच शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके।"

(इस वचन के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले वचनों के समानांतर इसी प्रकार की जाएगी) 92-102.)

पूर्व की ओर झुके हुए छह
और समुद्र की ओर झुके हुए छह।

ये दो छह मिलकर बारह बनाते हैं,
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
717- 726. तथागत, इत्यादि।
(पूर्व 139-148 के समानांतर शक्तियों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
दसवें के रूप में वस्त्र के साथ।

(iii) बलकारणीयवग्गो (कठिन कर्म)
727-738. कठिन, इत्यादि।
(पिछली धारा 149-160 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा।)

परिश्रमी, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली,

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(iv) खोज (एसानावग्गो)
739-748 खोजें, इत्यादि।
(पिछली धारा 161-170 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

खोज, भेद, दोष।
अस्तित्व के प्रकार (भावो), तीन प्रकार के दुख।

बांझपन, कलंक और कष्ट।
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(v) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
749-758. बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)
(पिछली धारा 171-179 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

"भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी, अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनके पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के लिए, और इनके त्याग के लिए पाँच शक्तियों का विकास किया जाना चाहिए।

"ये पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु विश्वास की शक्ति (जिसे ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (सम्मोहन) भी कहा जाता है, जैसा कि धारा 471, 480 में है), प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का विकास करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध (निरोध) पर आधारित है, और मोक्ष (मुक्ति) में परिपक्व होती है।"

"इन पांच शक्तियों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)
, गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

कामुक सुख की डोरियाँ, अवरोध, स्कंध
(खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

(vi) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
759-770. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि। (पचिनदी संस्कृत: पश्चिम-नदी)
भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार पंच शक्तियों का विकास और साधना करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु पंच शक्तियों का विकास और साधना कैसे करता है जिससे वह निर्वाण की ओर झुकता है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु विश्वास की शक्ति (जिसे ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (जैसा कि 705 में है) भी कहा गया है) और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का विकास करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु पांच शक्तियों का विकास और संवर्धन करता है ताकि वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो सके।"

(vii) सतर्कता अनुभाग
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
771-780 तथागत, इत्यादि।

(viii) कठिन कर्मों की धारा
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
781 - 791 कठिन, इत्यादि।

(ix) खोज अनुभाग (एसानावग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
792-802. खोजें, इत्यादि।

(x) बाढ़ खंड (ओघवाग्गो)
(कामवासना (राग) का निवारण संस्करण)
803-812 बाढ़, उच्चतर बेड़ियाँ आदि (ओघाड़ी)

भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए पाँच शक्तियों का विकास करना आवश्यक है। ये

पाँच कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, विश्वास की शक्ति (जिसे ऊर्जा-शक्ति (वीर्य), ध्यान (सती), समाधि (जैसा कि 705 में है) भी कहा गया है), प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की शक्ति का विकास करते हैं, जिसका अंतिम लक्ष्य वासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण है।

"इन पांच शक्तियों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए और उनके त्याग के लिए किया जाना है।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

कामुक सुख के बंधन, अवरोध,
स्कंध संस्कृत: स्कंध, निम्न और उच्चतर बंधन।

(इन सभी को पांच शक्तियों के माध्यम से विस्तार से समझाया जाना है, जिनका अंतिम लक्ष्य कामवासना (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) का निवारण करना है।)

अध्याय 7: आध्यात्मिक शक्तियों के अंग (इद्धिपादसंयुक्त सं. रिद्धिपाद-संयुक्त) {संयुत्त-51}

(i) कैपलावाग्गो

813. निकटवर्ती तट (अपारा) से

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वे चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। 246 वह ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह मन और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह अन्वेषण और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग, जब विकसित और पोषित होते हैं, तो निकट तट से दूर तट तक जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

---

814. उपेक्षित (विराद्ध)

भिक्षुओं, जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चार इंद्रियों की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का उपयोग किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (रिद्धि) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

वे कौन सी चार इंद्रियां हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, जिन्होंने उपेक्षा की है... जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए इन चार इंद्रियों का उपयोग किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (रिद्धि) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण किया है।

---

815. नोबल

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो श्रेष्ठ और मुक्तिदायक होते हैं; ये उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाते हैं। वे

चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग... उन पर अमल करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश (संस्कार) की ओर ले जाते हैं।

---

816. मोक्ष (निब्बिडा)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित किए जाते हैं, तो पूर्ण मोक्ष, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं। वे

चार कौन से हैं? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय के कारण समाधि अवस्था प्राप्त करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा बल (वीर्य) के कारण समाधि अवस्था प्राप्त करती है... मन के कारण समाधि अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय के कारण समाधि अवस्था। आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग... निर्वाण की ओर ले जाते हैं।

---

817. आध्यात्मिक शक्ति (इद्धिपदेसा सं. रिद्धिपाद)
भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) उत्पन्न की, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न की, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। वर्तमान में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न की है, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। वे

चार इंद्रियां क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण हों... भविष्य में हों... वर्तमान में हों, वे सभी आंशिक रूप से आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) उत्पन्न करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है।"

---

818. सम्पूर्ण (समत्त बिना समस्त)
भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों या ब्राह्मणों ने पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) उत्पन्न की, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जो तपस्वी या ब्राह्मण पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करेंगे, वे सभी ऐसा इसलिए कर पाएंगे क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया होगा। वर्तमान में जो तपस्वी या ब्राह्मण पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है। वे

चार इंद्रियां क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (आदतनता) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, अतीत में, भविष्य में और वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण पूर्णतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।"

---

819. भिक्षु (सं. भिक्षु)
भिक्षुओं, अतीत में जितने भी भिक्षुओं ने दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा इसी जीवन में विमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश किया और निवास किया, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त की और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जितने भी भिक्षु दोषों के नाश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (राश (प्रबुद्ध (प्रबुद्ध (इसा (प्रबुद्ध (प्रबुद्ध (प्रबुद्ध ((प्रबुद्ध ((इसा ((प्रबुद्ध () से ही (s) से मुक्ति (.) से)) से मुक्त मन की मुक्ति, पन्न ())))))))))))) से मुक्त मन की मुक्ति, पन्न ()) में प्रवेश किया और निवास किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति ()) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। वर्तमान में जितने भी भिक्षु दोषों के नाश () द्वारा इसी जीवन में विमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, पन्ना ()) में प्रवेश किया और निवास किया, उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (... अपने लिए दिव्य ज्ञान से युक्त, सभी ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।

"वे चार कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, अतीत में... भविष्य में... वर्तमान में जो भी भिक्षु मन की दोषमुक्त मुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, वे सभी ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।"

---

820. बुद्ध
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं (इद्धि/रिद्धि)। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं। तथागत को अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है।

---

821. ज्ञान (नाना सं. ज्ञान)
"'यह आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है।' इस प्रकार,

भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (गुणों, नियम) के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ। 247

"'इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करने वाली आध्यात्मिक शक्ति के उस आधार को विकसित किया जाना है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

"इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया गया है - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

" "यह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार है जो प्रयास की ऊर्जा (वीर्य) और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया जाना है... विकसित किया जा चुका है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'यह आध्यात्मिक शक्ति का आधार है जो मन और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

"मन और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया जाना है... विकसित हो चुका है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"यह प्रयास के अन्वेषण और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"प्रयास और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया जाना है... विकसित हो चुका है" - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

---

822. तीर्थ (सेतिया सं. चैत्य)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 248 एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए वैशाली में प्रवेश किया। वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो भोजन करने के बाद उन्होंने पूज्य आनंद से कहा,

"आनंद, बैठने के लिए एक कपड़ा ले लो। चलो आज के लिए चपाल मंदिर चलते हैं।"

"जी, पूज्यवर," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया और बैठने के लिए एक कपड़ा लेकर भगवान (बुद्ध) के पीछे-पीछे चल दिए। फिर भगवान (बुद्ध) चपाल मंदिर गए और वहाँ तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा,

“हे आनंद, वैशाली अत्यंत सुंदर है। उदेना मंदिर, गौतमका मंदिर, सत्तम्बा मंदिर, बहुपुत्त मंदिर, सारंददा मंदिर और चपाल मंदिर अत्यंत सुंदर हैं। हे आनंद, जिसने भी आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया हो, उन्हें अपना वाहन बनाया हो, उन्हें आधार बनाया हो, उन्हें स्थिर किया हो, उनमें अभ्यास किया हो और उन्हें पूर्णतः सिद्ध किया हो, वह चाहे तो युगों तक या शेष युगों तक जीवित रह सकता है। हे आनंद, तथागत ने भी आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, उन्हें अपना वाहन बनाया है, उन्हें आधार बनाया है, उन्हें स्थिर किया है, उनमें अभ्यास किया है और उन्हें पूर्णतः सिद्ध किया है। यदि वे चाहें तो तथागत युगों तक या शेष युगों तक जीवित रह सकते हैं।” 249

परन्तु यद्यपि पूज्य आनंद को भगवान (बुद्ध) द्वारा इतना स्पष्ट संकेत दिया गया था, इतना स्पष्ट इशारा दिया गया था, फिर भी वे उसे समझ नहीं पाए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) से यह प्रार्थना नहीं की: “हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) युगों तक जीवित रहें! सौभाग्यशाली (सुगतो) युगों तक जीवित रहें, जनसमूह के कल्याण के लिए, जनसमूह के सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवदूतों और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए।” उनका मन शैतान (मार) के वश में इतना अधिक था। 250

दूसरी बार... तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा: "आनंद, वैशाली बहुत ही मनभावन हैं। हे आनंद, जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और संवर्धन किया है... वे चाहें तो युग भर या शेष युग तक जीवित रह सकते हैं... तथागत चाहें तो युग भर या शेष युग तक जीवित रह सकते हैं।" फिर भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा: "हे आनंद, आप अपनी सुविधानुसार जा सकते हैं।"

परन्तु फिर भी, यद्यपि भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद को इतना स्पष्ट संकेत दिया था, फिर भी वे उसे समझ नहीं पाए... उनका मन मार से इतना ग्रस्त था।

"जी, पूज्यवर," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, और वे अपने आसन से उठे, भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, और अपना दाहिना भाग उनकी ओर करके पास ही एक वृक्ष के चरणों में बैठ गए।

फिर, पूज्य आनंद के जाने के कुछ ही समय बाद, दुष्ट मारा भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:
"पूज्यवर, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! शुभ (शुगत) को अब अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!" यह कथन, पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने कहा: 251 'हे दुष्ट, मैं तब तक अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा जब तक मेरे पास ऐसे भिक्षु (भिक्षु) न हों जो बुद्धिमान, अनुशासित, आत्मविश्वासी, बंधन से मुक्त, विद्वान, धर्म (मार्ग, नियम) के पालनकर्ता हों, धर्म के अनुसार अभ्यास करते हों, उचित तरीके से अभ्यास करते हों, तदनुसार आचरण करते हों; जिन्होंने अपने गुरु के सिद्धांत को सीखा हो और उसकी व्याख्या कर सकें, उसे सिखा सकें, उसका प्रचार कर सकें, उसे स्थापित कर सकें, उसे प्रकट कर सकें, उसका विश्लेषण कर सकें और उसे स्पष्ट कर सकें; जो दूसरों के प्रचलित सिद्धांतों का तर्क सहित पूर्णतः खंडन कर सकें और 'प्रभावी धम्म का उपदेश दो।' 252 परन्तु हे पूज्यवर, इस समय भगवान (बुद्ध) के पास ज्ञानवान भिक्षु शिष्य हैं... जो प्रभावकारी धम्म का उपदेश दे सकते हैं। हे पूज्यवर, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दो! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!

और हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
'हे दुष्ट, मैं तब तक अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा जब तक मेरे पास भिक्षुणी शिष्य न हों... जब तक मेरे पास ज्ञानवान स्त्री शिष्य न हों... जो प्रभावकारी धम्म का उपदेश दे सकें।' लेकिन हे पूज्यवर, वर्तमान में भगवान (बुद्ध) की शिष्याएँ बुद्धिमान, अनुशासित, आत्मविश्वासी, बंधनों से मुक्त, विद्वान, धम्म की समर्थक, धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाली, उचित मार्ग पर चलने वाली और तदनुसार आचरण करने वाली हैं; जिन्होंने अपने गुरु के उपदेशों को सीखा है और उन्हें समझा सकती हैं, सिखा सकती हैं, घोषित कर सकती हैं, स्थापित कर सकती हैं, प्रकट कर सकती हैं, विश्लेषण कर सकती हैं और स्पष्ट कर सकती हैं; जो दूसरों के प्रचलित सिद्धांतों का तर्क सहित पूर्णतः खंडन कर सकती हैं और प्रभावी धम्म का उपदेश दे सकती हैं। हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) अब अंतिम निर्वाण प्राप्त करें! सौभाग्यशाली (शुगतो) अब अंतिम निर्वाण प्राप्त करें! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय है!

और यह कथन हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा कहा गया था।
"हे दुष्ट, जब तक मेरा यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल, समृद्ध, विस्तृत, लोकप्रिय, व्यापक और देवताओं एवं मनुष्यों के बीच सुप्रसिद्ध नहीं हो जाता, तब तक मुझे अंतिम निर्वाण प्राप्त नहीं होगा।" हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) का वह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल, समृद्ध, विस्तृत, लोकप्रिय, व्यापक और देवताओं एवं मनुष्यों के बीच सुप्रसिद्ध हो चुका है। 253 हे पूज्यवर, अब भगवान (बुद्ध) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! अब शुभ (शुगत) को अंतिम निर्वाण प्राप्त होने दें! अब भगवान (बुद्ध) के अंतिम निर्वाण का समय आ गया है!"

यह सुनकर भगवान (बुद्ध) ने दुष्ट मारा से कहा:
"चिंता मत करो, हे दुष्ट। तथागत के अंतिम निर्वाण में अब अधिक समय नहीं लगेगा।" तीन महीने बाद तथागत को अंतिम निर्वाण प्राप्त होगा।

तब भगवान (बुद्ध) ने चपाला मंदिर में ध्यान (सतो) करते हुए और पूर्ण ज्ञान (संपजन्न) के साथ अपने प्राण संस्कार (कारण) का त्याग कर दिया। 254 और जब भगवान (बुद्ध) ने अपने प्राण संस्कार (कारण) का त्याग कर दिया, तब एक भयंकर भूकंप आया, जो भयावह और डरावना था, और गरज से आकाश कांप उठा।

तब, इसका अर्थ समझकर, भगवान (बुद्ध) ने उस अवसर पर यह प्रेरणादायक वाणी कही:

"अतुलनीय और निरंतर अस्तित्व (भावो) की तुलना करते हुए,

ऋषि ने अस्तित्व (भावो) के संस्कार (आधार) का त्याग कर दिया।

भीतर से आनंदित होकर, समाधि (सम्मोहन) अवस्था में, उन्होंने
निरंतर आत्म-अस्तित्व (भावो) को कवच की तरह तोड़ दिया।" 255

(ii) हवेली खंड का हिलना (पसदकम्पनवाग्गो सं. प्रसाद-कम्पन-वर्ग)
823. पहले (पुब्बा सं. पूर्वा)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अब आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के अंगों के विकास का कारण क्या है?' मेरे मन में यह विचार आया: 'यहाँ, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है, यह सोचते हुए:
"इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।" और वह आगे और पीछे के अनुभव में लीन रहता है: "जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में;" "जैसे रात में, वैसे दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है। 256

"वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो प्रयास की ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है, यह सोचते हुए: "इस प्रकार मेरी ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तनावपूर्ण; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।" और वह आगे और पीछे के अनुभव में लीन रहता है: "जैसा पहले, वैसा बाद में; जैसा बाद में, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो प्रयास और चिंतन के मन और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है: "इस प्रकार मेरा मन न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावग्रस्त; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।" और वह आगे और पीछे के बोध में लीन रहता है: "जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से, वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो प्रयास और चिंतन के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है: "इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावग्रस्त; और यह न तो आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।" और वह आगे और पीछे के बोध में लीन रहता है:

"जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।" इस प्रकार, खुले और असीम मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता है: 257 एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है; वह प्रकट होता है और विलीन हो जाता है; वह बिना किसी बाधा के दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार ऐसे चला जाता है मानो अंतरिक्ष में; वह पृथ्वी में ऐसे समाहित होता है और बाहर निकलता है मानो वह जल हो; वह जल पर बिना डूबे ऐसे चलता है मानो वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर वह पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करता है; अपने हाथों से वह इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करता है और सहलाता है; वह ब्रह्मा जगत तक शरीर पर पूर्ण नियंत्रण रखता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु, शुद्ध और मानव से परे दिव्य श्रवण शक्ति से, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनता है। जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, संसार के संकुचन (विनाश) के अनेक युग, संसार के विस्तार के अनेक युग, संसार के संकुचन और विस्तार के अनेक युग। इस प्रकार: "वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मेरे सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरी ऐसी आयु थी; वहाँ से

निकलकर मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मेरे सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरी ऐसी आयु थी; वहां से गुजरकर, मेरा यहां पुनर्जन्म हुआ।" इस प्रकार वह अपने अनेक पिछले निवासों को उनके स्वरूपों और विवरणों के साथ याद करता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंग इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो भिक्षु अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से समाहित करके समझ लेता है। वह कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में, कामवासना रहित मन को कामवासना रहित मन के रूप में, घृणा से ग्रस्त मन को घृणा रहित मन के रूप में, दोष रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में, मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में, मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में, संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित मन के रूप में, उन्नत मन को उन्नत और अधोमुखी मन को अधोमुखी मन के रूप में, श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अपोमुखी मन को अपोमुखी मन के रूप में, और समाधि अवस्था के मन को भी उसी रूप में समझता है। समाधि अवस्था में और समाधि अवस्था से इतर मन को समाधि अवस्था से इतर माना जाता है; मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त माना जाता है।

जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंग इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो भिक्षु, शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, देखता है और वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: "ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद मृत्यु के समय स्वर्गलोक में एक अच्छे गंतव्य (सुगति) में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, देखता है और समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।

"जब आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि) इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

---

824. महान फल (महाफला) का

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होते हैं। और भिक्षुओं, ऐसा कैसे होता है कि आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग, जब विकसित और पोषित होते हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होते हैं?

यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।' और वह आगे और पीछे के बीच इस प्रकार बोध करता है: 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और असीम मन से, वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है।

"वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है। (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों (इद्धि/रिद्धि) को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो भिक्षु विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है... वह शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व प्राप्त करता है... (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करके।"

---

825. इच्छा के कारण समाधि/सम्मोहन (चंदासमाधि)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लेता है, इच्छा के आधार पर मन की एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, 258 तो इसे इच्छा के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था कहा जाता है। वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल संस्कृत अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के त्याग की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। वह अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) अवस्थाओं के उत्पन्न होने की इच्छा उत्पन्न करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा (वीर्य) को जागृत करता है, अपना मन लगाता है और प्रयास करता है। वह उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव की इच्छा उत्पन्न करता है, उनके लिए अक्षय, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। इन्हें प्रयास की परिस्थितियाँ (संस्कार) कहा जाता है। 259 इस प्रकार यह इच्छा और इच्छा के कारण उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रयास की ये परिस्थितियाँ (संस्कार): इसे आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार कहा जाता है जो इच्छा और प्रयास के स्वैच्छिक रूपों के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है।

"यदि, भिक्षुओं, कोई भिक्षु ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) पर आधारित समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करता है, मन की एकाग्रता प्राप्त करता है, तो इसे ऊर्जा-शक्ति के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था कहा जाता है। वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे रहने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की कामना करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। इन्हें परिश्रम का संधार कहा जाता है। अतः यह ऊर्जा-शक्ति और परिश्रम के इस संधार के कारण उत्पन्न समाधि (सम्मोहन) अवस्था को आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार कहा जाता है, जो परिश्रम के संधार के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है। भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लेता है, अन्वेषण के आधार पर मन की एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, तो इसे अन्वेषण के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था कहते हैं। 261 वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे रहने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता के लिए; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और प्रयास करता है। इन्हें प्रयास का संशय (आधार) कहते हैं। इस प्रकार यह अन्वेषण, अन्वेषण के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था और प्रयास का यह संशय: यही उस आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार कहलाता है जो अन्वेषण और प्रयास के संशय के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है।

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त कर लेता है, मन की एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, तो इसे मन के कारण प्राप्त समाधि अवस्था कहते हैं। 260 वह अजन्मे हानिकारक (अकुशल) अवस्थाओं के अजन्मे रहने की इच्छा उत्पन्न करता है... उत्पन्न लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के रखरखाव, उनके क्षय न होने, वृद्धि, विस्तार और विकास द्वारा पूर्णता की कामना करता है; वह प्रयास करता है, ऊर्जा-शक्ति को जागृत करता है, मन लगाता है और परिश्रम करता है। इन्हें परिश्रम का संशय कहते हैं। अतः यह मन, मन के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था और परिश्रम का यह संशय, मन के कारण प्राप्त समाधि (सम्मोहन) अवस्था और परिश्रम के संशय से युक्त आध्यात्मिक शक्ति का आधार कहलाता है।

---

826. मोग्गलाना
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) पूर्वी उद्यान में स्थित श्रावस्ती में मिगारा की माता के भवन में निवास कर रहे थे। उस समय भवन के भूतल पर निवास करने वाले कई भिक्षु बेचैन, अहंकारी, आत्ममुग्ध, कठोर वाणी वाले, बेतरतीब बातों वाले, भ्रमित मन वाले, पूर्ण बोधहीन (संपजन्न), समाधि अवस्था में न रहने वाले, विचलित और अपनी इंद्रियों में शिथिल थे। 262

तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य महामोग्गलाना को यों कहा, "मोग्गलाना, मिगारा माता के भवन के भूतल पर निवास करने वाले तुम्हारे ब्रह्मचर्य बंधुओं में बेचैनी है... उनकी इंद्रियां शिथिल हैं। हे मोग्गलाना, इन भिक्षुओं में परिश्रम की भावना जगाओ।"

“जी, पूज्यवर,” पूज्य महामोग्गलाना ने उत्तर दिया। तब उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा चमत्कार किया कि उन्होंने अपने पैर के अंगूठे से मिगारा माता के भवन को हिलाकर रख दिया। 263 तब वे भिक्षु भयभीत और अचंभित होकर एक तरफ खड़े हो गए और बोले, “यह वास्तव में अद्‌भुत है, महाराज! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है, महाराज! हवा नहीं चल रही है, और मिगारा माता के इस भवन की नींव गहरी है और यह मजबूती से स्थापित है, अचल है, अविचल है; फिर भी यह हिल रहा है, कांप रहा है और थरथरा रहा है।”

तब भगवान (बुद्ध) उन भिक्षुओं के पास गए और उनसे कहा, "भिक्षुओं, तुम क्यों एक तरफ खड़े होकर भयभीत और भयभीत हो रहे हो?"

"यह अद्‌भुत है, पूज्यवर! यह आश्चर्यजनक है, पूज्यवर! हवा नहीं चल रही है, और मिगारा माता का यह महल गहरी नींव से स्थिर और दृढ़ है, अचल और अविचल है; फिर भी यह हिल गया, कांप गया, थरथरा गया।"

"भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने तुममें तत्परता की भावना जगाने की इच्छा से अपने पैर के अंगूठे से मिगारा माता के महल को हिलाया, थरथराया और थरथराया। भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके भिक्षु मोग्गलाना इतने शक्तिशाली और बलवान हो गए हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

तो सुनो, भिक्षुओं... भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे इतने शक्तिशाली और बलवान हो गए हैं। यहाँ, भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति का वह आधार विकसित किया है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है। उन्होंने ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण की है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... प्रयास, चिंतन के अन्वेषण और संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावपूर्ण, और न ही आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा। ... इस प्रकार, खुले और मुक्त मन से उन्होंने प्रकाशमान मन का विकास किया है।

"यह है, भिक्षुओं, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए भिक्षु मोग्गलाना इतने शक्तिशाली और पराक्रमी हो गए हैं।

"भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए वे विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं... वे ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर महारत रखते हैं... 264

"भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए इसी जीवन में वे विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इस जीवन में ही, वे मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करते हैं।"

---

827. ब्राह्मण उन्नाभा

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य आनंद घोसीता उद्यान में कोसंबी में निवास कर रहे थे। तब ब्राह्मण उन्नाभा पूज्य आनंद के पास आए और उनसे अभिवादन किया। 265 अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से बोले, “हे गुरु आनंद, तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन किस उद्देश्य से व्यतीत किया जाता है?”

“हे ब्राह्मण, इच्छाओं का त्याग करने के लिए ही भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया जाता है।”

“परन्तु, हे गुरु आनंद, क्या इस इच्छा का त्याग करने का कोई मार्ग है?”

“हाँ, हे ब्राह्मण, इस इच्छा का त्याग करने का मार्ग है।”

“परन्तु, हे गुरु आनंद, वह मार्ग क्या है, वह मार्ग क्या है जिससे इस इच्छा का त्याग किया जा सकता है?”

"हे ब्राह्मण, यहाँ एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करती है। वह ऊर्जावान शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था का आधार विकसित करता है (जैसा कि 823 में है)। मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... खोज और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। हे ब्राह्मण, यही मार्ग है, यही इच्छा के त्याग का मार्ग है।"

"ऐसी स्थिति में, हे आनंद स्वामी, यह स्थिति अनंत है, समाप्त नहीं हो सकती। 266 इच्छा के माध्यम से ही इच्छा का त्याग करना असंभव है।"

तो फिर, ब्राह्मण, मैं इस विषय पर आपसे प्रश्न करूँगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दें। आपका क्या विचार है, ब्राह्मण, क्या आपके मन में पहले यह इच्छा थी, 'मैं पार्क जाऊँगा,' और पार्क जाने के बाद क्या वह इच्छा शांत हो गई? "

जी हाँ।"

"क्या आपने पहले 'मैं पार्क जाऊँगा' सोचकर ऊर्जा उत्पन्न की थी, और पार्क जाने के बाद क्या वह ऊर्जा शांत हो गई?"

"जी हाँ।"

"क्या आपने पहले 'मैं पार्क जाऊँगा' का मन बना लिया था, और पार्क जाने के बाद क्या वह संकल्प शांत हो गया?"

"जी हाँ।"

"क्या आपने पहले 'क्या मुझे पार्क जाना चाहिए?' के बारे में सोचा था, और पार्क जाने के बाद क्या वह विचार शांत हो गया?"

"जी हाँ।"

"यह बिलकुल वैसा ही है, ब्राह्मण, जैसा कि एक अरहंत भिक्षु के साथ होता है, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिसने पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो गया है। पहले उसके मन में अरहंतत्व की प्राप्ति की इच्छा थी, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह इच्छा शांत हो गई। पहले उसने अरहंतत्व की प्राप्ति के लिए ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न की थी, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह ऊर्जा शांत हो गई। पहले उसने अरहंतत्व प्राप्त करने का मन बना लिया था, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह संकल्प शांत हो गया। पहले उसने अरहंतत्व की प्राप्ति के लिए अन्वेषण किया था, और जब उसने अरहंतत्व प्राप्त किया, तो वह अन्वेषण शांत हो गया। 268

"आप क्या सोचते हैं?" हे ब्राह्मण, विचार करो, ऐसी स्थिति में क्या यह स्थिति समाप्त होने योग्य है या अनंत काल तक चलने वाली है?

"निश्चित रूप से, हे गुरु आनंद, ऐसी स्थिति में, यह स्थिति समाप्त होने योग्य है, अनंत काल तक चलने वाली नहीं। 269 हे महान गुरु आनंद! आज से गुरु आनंद मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

828. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, अतीत में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) से संपन्न हुए, वे सभी इसलिए थे क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था। भविष्य में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति और संवर्धन से संपन्न होंगे, वे सभी इसलिए होंगे क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया होगा। वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति और संवर्धन से संपन्न हैं, वे सभी इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।

" वे चार इंद्रियां कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं जो ऊर्जा-

बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, और प्रयास के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है।

"भिक्षुओं, अतीत में, भविष्य में, और वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से संपन्न हैं, वे सभी इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है।"

---

829. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं (सन्यासियों), अतीत में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मणों ने विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का उपयोग किया, वे इस प्रकार थे कि: एक होकर अनेक हो गए... उन्होंने शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व प्राप्त किया - उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया था।

भविष्य में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करेंगे, वे इस प्रकार होंगे कि: एक होकर अनेक हो जाएंगे... वे शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व प्राप्त करेंगे - उन सभी ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया होगा।"

"वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार कि: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं... वे शरीर से लेकर ब्रह्म जगत तक पराक्रम का अधिकार रखते हैं - वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है। वे

चार इंद्रियां कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है।"

"भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी या ब्राह्मण हों... भविष्य में हों... वर्तमान में हों... वे सभी ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है।"

---

830. एक भिक्षु (सं. भिक्षु अर्थात तपस्वी)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए वह दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करता है।

" "वे चार क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है। वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था..." साधना और परिश्रम के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था।

"भिक्षुओं, क्योंकि भिक्षु ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसलिए वह दोषों के नाश द्वारा इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

---

831. एक शिक्षण (इद्धदिदेसाना सं. रिद्धि-आदि-देसाना)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) "भिक्षुओं, मैं तुम्हें आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि), आध्यात्मिक शक्ति का आधार, आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंगों का विकास और आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंगों के विकास की ओर ले जाने वाला मार्ग सिखाऊंगा।

"और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति क्या है? यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है... वह शरीर से लेकर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक पर अधिकार रखता है। इसे आध्यात्मिक शक्ति कहते हैं।

"और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? यह वह मार्ग और अभ्यास है जो आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने, आध्यात्मिक शक्ति अर्जित करने की ओर ले जाता है। 270 इसे आध्यात्मिक शक्ति का आधार कहते हैं।

"और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के लिए अंगों का विकास क्या है? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था। इसे आध्यात्मिक शक्ति के अंगों का विकास कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के अंगों के विकास का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। इसे आध्यात्मिक शक्ति के अंगों के विकास का मार्ग कहा जाता है।"

---

832. विश्लेषण (विभंग)

भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग (इद्धि/रिद्धि) जब विकसित और पोषित होते हैं, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होते हैं।

और भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे अत्यंत फलदायी और लाभदायक हों?

भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।' और वह आगे और पीछे के बीच इस प्रकार बोध करता है: 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और मुक्त मन से वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

"वह आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... अन्वेषण के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... वह प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(i. इच्छा का आधार के रूप में विश्लेषण)

"और हे भिक्षुओं, वह इच्छा क्या है जो बहुत शिथिल है? यह वह इच्छा है जो आलस्य से ग्रस्त है, आलस्य से जुड़ी है। 271 इसे बहुत शिथिल इच्छा कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, वह इच्छा क्या है जो बहुत तनावपूर्ण है? यह वह इच्छा है जो बेचैनी से ग्रस्त है, बेचैनी से जुड़ी है। इसे बहुत तनावपूर्ण इच्छा कहते हैं।

हे भिक्षुओं, आंतरिक रूप से संकुचित इच्छा क्या है? यह वह इच्छा है जो आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त होती है, आलस्य और सुस्ती से जुड़ी होती है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित इच्छा कहते हैं।

हे भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित इच्छा क्या है? यह वह इच्छा है जो पांच इंद्रिय सुखों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित होती है। इसे बाह्य रूप से विचलित इच्छा कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कैसे 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले' का बोध करते हुए निवास करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु द्वारा 'जैसा पहले' और 'जैसा संग्य' का बोध भली-भांति समझा जाता है, उस पर ध्यान दिया जाता है, उस पर विचार किया जाता है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से भली-भांति भेद किया जाता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु 'जैसा पहले, वैसा बाद; जैसा बाद, वैसा पहले' का बोध करते हुए निवास करता है। 272

और हे भिक्षुओं, भिक्षु 'जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे' कैसे निवास करता है? हे भिक्षुओं, भिक्षु इस शरीर का अवलोकन पैरों के तलवों से ऊपर की ओर, बालों के सिरों से नीचे की ओर, त्वचा से घिरे हुए, अनेक प्रकार की अशुद्धियों से परिपूर्ण रूप में करता है: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, मेसेंटरी, पेट की सामग्री, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, चिकनाई, लार, नाक का पानी, जोड़ों का द्रव और मूत्र हैं।' हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु 'जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे' निवास करता है।

और हे भिक्षुओं, भिक्षु दिन में जैसा, वैसे ही रात में; रात में जैसा, वैसे ही दिन में? हे भिक्षुओं, रात में भिक्षु उसी प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का आधार विकसित करता है, जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, जिस प्रकार वह दिन में आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। या फिर दिन में वह उसी प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है, जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है, जिस प्रकार वह रात में आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। हे भिक्षुओं, इसी प्रकार भिक्षु दिन में जैसा, वैसे ही रात में; रात में जैसा, वैसे ही दिन में रहता है।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु खुले और मुक्त मन से प्रकाशमान मन का विकास कैसे करता है? हे भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु प्रकाश की अनुभूति को भलीभांति समझता है; दिन की अनुभूति को भलीभांति समझता है। 273 हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु खुले और मुक्त मन से प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(ii. ऊर्जा-शक्ति का आधार के रूप में विश्लेषण) हे

भिक्षुओं, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) क्या है जो बहुत शिथिल है? यह ऊर्जा-शक्ति है जो शिथिलता से ग्रस्त है, शिथिलता से जुड़ी है। इसे ही अत्यधिक शिथिल ऊर्जा-शक्ति कहते हैं।

भिक्षुओं, अति तनावग्रस्त ऊर्जा क्या है? यह वह ऊर्जा है जो बेचैनी से ग्रस्त है, बेचैनी से जुड़ी हुई है। इसे अति तनावग्रस्त ऊर्जा कहते हैं।

भिक्षुओं, आंतरिक रूप से संकुचित ऊर्जा क्या है? यह वह ऊर्जा है जो आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त है, आलस्य और सुस्ती से जुड़ी हुई है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित ऊर्जा कहते हैं।

भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित ऊर्जा क्या है? यह वह ऊर्जा है जो पांच इंद्रिय सुखों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित होती है, बार-बार विचलित होती है। इसे बाह्य रूप से विचलित ऊर्जा कहते हैं... (ऊपर दिए गए सभी विवरण के अनुसार)

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु खुले और मुक्त मन से प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(iii. मन का आधार के रूप में विश्लेषण)

"हे भिक्षुओं, वह मन क्या है जो बहुत शिथिल है? वह मन है जो आलस्य से ग्रस्त है, आलस्य से जुड़ा हुआ है। इसे बहुत शिथिल मन कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, वह मन क्या है जो बहुत तनावग्रस्त है? वह मन है जो बेचैनी से ग्रस्त है, बेचैनी से जुड़ा हुआ है। इसे बहुत तनावग्रस्त मन कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, वह मन क्या है जो आंतरिक रूप से संकुचित है? वह मन है जो आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त है, आलस्य और सुस्ती से जुड़ा हुआ है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित मन कहते हैं।"

"और हे भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित मन क्या है? यह वह मन है जो इंद्रिय सुख के पाँच डोरियों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित होता है, बार-बार व्याकुल होता है। इसे बाह्य रूप से विचलित मन कहते हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)...

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, खुले और मुक्त मन से, प्रकाशमान मन का विकास करता है।

(iv. अन्वेषण का विश्लेषण आधार के रूप में)

"और हे भिक्षुओं, अति शिथिल अन्वेषण क्या है? यह वह अन्वेषण है जो आलस्य से युक्त है, आलस्य से जुड़ा है। इसे अति शिथिल अन्वेषण कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, अति तनावपूर्ण अन्वेषण क्या है? यह वह अन्वेषण है जो बेचैनी से युक्त है, बेचैनी से जुड़ा है। इसे अति तनावपूर्ण अन्वेषण कहते हैं।"

"हे भिक्षुओं, आंतरिक रूप से संकुचित ध्यान क्या है? यह आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त ध्यान है, जो आलस्य और सुस्ती से जुड़ा हुआ है। इसे आंतरिक रूप से संकुचित ध्यान कहते हैं।

"हे भिक्षुओं, बाह्य रूप से विचलित ध्यान क्या है? यह पांच इंद्रिय सुखों के कारण बार-बार बाह्य रूप से विचलित, बार-बार विचलित होने वाला ध्यान है। इसे बाह्य रूप से विचलित ध्यान कहते हैं... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)...

"हे भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु, खुले और मुक्त मन से, प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है। हे

भिक्षुओं, जब आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग (इद्धि/रिद्धि) इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाते हैं, तो वे बहुत फलदायी और लाभदायक होते हैं।"

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों को इस प्रकार विकसित और पोषित कर लिया जाता है, तो भिक्षु अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता है: एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है... वह शरीर पर ब्रह्म जगत (प्रधान देवदूत) तक प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है..."

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"

(छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियों का विस्तृत वर्णन [जैसा कि 2.152 में है] किया जाना चाहिए।)

(iii) लोहे की गेंद (अयोगुलवग्गो)

833. पथ (मग्गा संस. मार्ग)

सावत्थी में। "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के अंगों के विकास का मार्ग और अभ्यास क्या है?' मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है ... (जैसा कि 823 में पूर्ण रूप से है) ... जो अन्वेषण और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था धारण करता है.... इस प्रकार, खुले और मुक्त मन से, वह प्रकाश से परिपूर्ण मन विकसित करता है।

"'जब आध्यात्मिक शक्ति के चारों अंगों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो एक भिक्षु विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का उपयोग करता है: एक होकर, वह अनेक हो जाता है; अनेक रूपों में रहकर वह एक हो जाता है... वह ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है...

"'जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के चार अंगों का इस प्रकार विकास और संवर्धन हो जाता है, तो भिक्षु, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव करता है।"'

(छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियों का विस्तृत वर्णन किया जाना चाहिए [जैसा कि 2.152 में है]।)

---

834. लोहे की गेंद (अयोगुलवग्गो)
सावत्थी में। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, क्या भगवान (बुद्ध) को याद है कि वे कभी आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) से मन से बने शरीर के साथ ब्रह्म लोक (प्रधान देवदूत) गए थे?" 274

"मुझे याद है, आनंद, कि मैं आध्यात्मिक शक्ति से मन से बने शरीर के साथ ब्रह्म लोक गया था।"

"परन्तु, पूज्यवर, क्या भगवान (बुद्ध) को याद है कि वे कभी आध्यात्मिक शक्ति से चार महान तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के साथ ब्रह्म लोक गए थे?" 275

"मुझे याद है, आनंद, कि मैं आध्यात्मिक शक्ति से चार महान तत्वों से बने इस शरीर के साथ ब्रह्म लोक गया था।"

"भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति से मन से बने शरीर के साथ ब्रह्मलोक में जा सकते हैं, और वे चार महान तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के साथ आध्यात्मिक शक्ति से ब्रह्मलोक में जाने को याद करते हैं: यह भगवान (बुद्ध) की ओर से अद्भुत और आश्चर्यजनक है, हे पूज्यवर।"

"आनंद, तथागत अद्भुत हैं और अद्भुत गुणों से युक्त हैं; तथागत आश्चर्यजनक हैं और आश्चर्यजनक गुणों से युक्त हैं।

" "आनंद, जब तथागत शरीर को मन में और मन को शरीर में विलीन कर लेते हैं, और जब वे शरीर के संबंध में आनंदमय अनुभूति (सन्ना संस. संग्या) और उत्फुल्लित अनुभूति में प्रवेश करके निवास करते हैं, उस अवसर पर तथागत का शरीर अधिक उत्फुल्लित, लचीला, सुगम और प्रकाशमान हो जाता है।"

हे आनंद, जिस प्रकार दिनभर गर्म करने से लोहे का गोला हल्का, लचीला, सुगम और प्रकाशमान हो जाता है, उसी प्रकार जब तथागत शरीर को मन में और मन को शरीर में समाहित कर लेते हैं, और जब वे शरीर के संबंध में आनंदमय और प्रकाशमान अनुभूति में लीन होकर निवास करते हैं, तब तथागत का शरीर हल्का, लचीला, सुगम और प्रकाशमान हो जाता है।

हे आनंद, जब तथागत शरीर को मन में और मन को शरीर में समाहित कर लेते हैं, और जब वे शरीर के संबंध में आनंदमय और प्रकाशमान अनुभूति में लीन होकर निवास करते हैं, तब तथागत का शरीर सहजता से पृथ्वी से आकाश में उठ उठता है। वे अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं; (जैसा कि 823 में है) वे ब्रह्म जगत तक शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व रखते हैं।

हे आनंद, जिस प्रकार रुई का एक छोटा गुच्छा हल्का होने के कारण हवा से उड़कर सहजता से पृथ्वी से आकाश में उठ जाता है, उसी प्रकार जब तथागत अपने शरीर को मन में और मन को शरीर में विलीन कर लेते हैं, और जब वे आनंदमय और उत्कट अवस्था में शरीर के प्रति लीन होकर चिंतन करते हैं, तब तथागत का शरीर सहजता से पृथ्वी से आकाश में उठ जाता है। वे अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं; ...वे ब्रह्म जगत तक शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व रखते हैं।

---

835. एक भिक्षु (सं. भिक्षु)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, इच्छा और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। वे ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) की

अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं।

भिक्षुओं, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए भिक्षु, दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, इसे स्वयं अनुभव करते हुए। दिव्य ज्ञान (अभिन्न)।" 278

---

836. सरल संस्करण (सं. शुद्धिका)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के ये चार अंग हैं। कौन से चार? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (अनुष्ठान) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को... अन्वेषण और प्रयास के संशय (अनुष्ठान) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं।

---

837. फल (1) (फला1)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। वे ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था... अन्वेषण और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं। (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो दो में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का अवशेष हो, तो पुनर्जन्म न होने की अवस्था।"

---

838. फल (2) (फला2)
भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग हैं (इद्धि/रिद्धि)। ये चार कौन से हैं? यहाँ, भिक्षु, इच्छा और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। वे ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं... अन्वेषण और प्रयास के संभाव्यता (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करते हैं। ये आध्यात्मिक शक्ति के चार अंग हैं। (जैसा कि 823 में है)

"जब, भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति के इन चार अंगों का विकास और संवर्धन हो जाता है, तो सात फल और लाभ प्राप्त हो सकते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?"

"इस जीवन में ही व्यक्ति को परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यदि इस जीवन में ही परम ज्ञान प्राप्त न हो, तो मृत्यु के समय प्राप्त होता है। यदि इस जीवन में न ही मृत्यु के समय परम ज्ञान प्राप्त हो, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) के साथ ही व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेता है... मृत्यु के समय ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है... बिना परिश्रम के निर्वाण प्राप्त कर लेता है... परिश्रम सहित निर्वाण प्राप्त कर लेता है... और फिर नदी के विपरीत दिशा में अग्रसर होकर अकनित्त लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। हे

भिक्षुओं, जब आध्यात्मिक शक्ति के ये चार अंग विकसित और पोषित हो जाते हैं, तब इन सात फलों और लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

---

839. आनंद (1)
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?"

(बुद्ध के उत्तर ठीक वही हैं जो अनुच्छेद 831 में हैं।)

---

840. आनंद (2)
तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?"

(बुद्ध ने अपने ही प्रश्नों का उत्तर ठीक उसी प्रकार दिया है जैसे 831 में दिया था।)

---

841. भिक्षुओं की संख्या (1)
तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
“हे पूज्यवर, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?”

(बुद्ध के उत्तर ठीक वही हैं जो अध्याय 831 में दिए गए हैं।)

---

842. भिक्षुओं की संख्या (2)
(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए... भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "भिक्षुओं, आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) क्या है? आध्यात्मिक शक्ति का आधार क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों का विकास क्या है? आध्यात्मिक शक्ति के लिए इंद्रियों के विकास का मार्ग क्या है?" (बुद्ध ने

अपने ही प्रश्नों का उत्तर ठीक उसी प्रकार दिया है जैसा कि 831 में है।)

---

843. मोग्गलाना
वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि भिक्षु मोग्गलाना ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके इतना शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं... "

भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए वे इतने शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं। वे चार कौन सी हैं? भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है जो इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करता है, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।'"
और वह आगे और पीछे के अनुभवों को समझते हुए इस प्रकार चिंतन करता रहा है:
'जैसा पहले, वैसा बाद में; जैसा बाद में, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन विकसित किया है। उन्होंने ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है (जैसा कि 823 में है)... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... प्रयास के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, यह सोचते हुए:
'इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावपूर्ण; और न ही यह आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।'... इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन विकसित किया है।

"भिक्षुओं, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए इन चार अंगों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए भिक्षु मोग्गलाना इतने शक्तिशाली और पराक्रमी हो गए हैं।"

"भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार कि: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं... वे शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व रखते हैं...

भिक्षुओं, भिक्षु मोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा वे इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं, और दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करते हैं।" 279

---

844. तथागत

(कृपया विवरण 823 के अनुसार भरें) वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि तथागत ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके इतना शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं..."

"तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए चार इंद्रियों (इद्धि/रिद्धि) का विकास और अभ्यास किया है, इसलिए वे इतने शक्तिशाली और बलवान बन गए हैं। वे चार कौन सी हैं? यहाँ, भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है जो इच्छा और प्रयास, चिंतन के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था को धारण करता है। इस प्रकार मेरी इच्छा न तो बहुत शिथिल होगी और न ही बहुत तीव्र; और न ही आंतरिक रूप से संकुचित होगी और न ही बाहरी रूप से विचलित होगी।" और वह आगे और पीछे के अनुभवों को समझते हुए इस प्रकार चिंतन करता रहा है: 'जैसा पहले, वैसा बाद में; जैसा बाद में, वैसा पहले; जैसा नीचे, वैसा ऊपर; जैसा ऊपर, वैसा नीचे; जैसा दिन में, वैसा रात में; जैसा रात में, वैसा दिन में।' इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन का विकास किया है। उन्होंने ऊर्जा-बल (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित किया है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... प्रयास के अन्वेषण और संधारण (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था, यह सोचते हुए: 'इस प्रकार मेरा अन्वेषण न तो बहुत शिथिल होगा और न ही बहुत तनावपूर्ण; और न ही आंतरिक रूप से संकुचित होगा और न ही बाहरी रूप से विचलित होगा।'... इस प्रकार, खुले और असीम मन से उन्होंने प्रकाशमान मन का विकास किया है।

"भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे इतने शक्तिशाली और पराक्रमी हो गए हैं।"

भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार कि: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं... वे शरीर पर ब्रह्म जगत तक प्रभुत्व रखते हैं...

भिक्षुओं, तथागत ने आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार इंद्रियों का विकास और संवर्धन किया है, इसीलिए वे विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, जिसे वे स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से अनुभव करते हैं।

(iv) गंगा पुनरावृत्ति श्रृंखला (गंगापेय्यालावग्गो)

845-856. गंगा नदी - पूर्व की ओर, इत्यादि।

भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व दिशा की ओर ढलानदार और झुकी हुई बहती है, उसी प्रकार जो भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।

और हे भिक्षुओं, एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन कैसे करता है ताकि वह निर्वाण की ओर झुके? हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु इच्छा और प्रयास के संस्कार (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है। वह ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करने वाली आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था... खोज और प्रयास के संस्कार (व्यवहार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार एक भिक्षु आध्यात्मिक शक्ति के लिए चारों इंद्रियों का विकास और संवर्धन करता है, जिससे वह निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।"

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले अध्याय 92-102 के समानांतर इसी प्रकार की जानी है।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के बारे में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(v) सतर्कता अनुभाग (अप्पमदवग्गो सं. अप्रमदवर्ग)
857-866. तथागत, इत्यादि।
(139-148 के समानांतर आध्यात्मिक शक्ति के अंगों के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी,
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली,

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ ही दसवें के रूप में वस्त्र।

(vi) कठोर कर्म (बालकारनियावाग्गो)
867-878. कठिन, इत्यादि।
(149-60 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा।)

परिश्रमी, बीज और नाग,
वृक्ष, घड़ा, बाली,

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(vii) खोज (एसानावग्गो)
879-888. खोज आदि (एसानादी)
(161-170 के समानांतर विस्तृत किया जाएगा।)

खोज, भेद, दोष,
अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध पीड़ा,

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(viii) बाढ़ (ओघावाग्गो)
889-897. बाढ़, आदि।
(इसका विस्तृत विवरण पृष्ठ 171-179 के समानांतर दिया जाएगा।)

---

898. उच्चतर बेड़ियाँ
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति कामवासना (राग), निराकार के प्रति कामवासना (राग), अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविद्या)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने

के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खयाल/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए चार आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) विकसित करनी चाहिए। ये चार कौन से हैं

? यहाँ, भिक्षु, एक भिक्षु उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो इच्छा और प्रयास के संशय (संस्कार) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है। वह उस आध्यात्मिक शक्ति का आधार विकसित करता है जो ऊर्जा (वीर्य) के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है... मन के कारण समाधि (सम्मोहन) अवस्था प्राप्त करती है... जांच और प्रयास के संस्कार (व्यवहार) के कारण समाधि (सम्मोहन) की अवस्था।

"आध्यात्मिक शक्ति के लिए इन चार अंगों को इन पांच उच्च बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन) के लिए, उनके पूर्ण ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण विनाश के लिए, और उनके त्याग के लिए विकसित किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय)।

कामुक सुख की डोरियाँ, बाधाएँ।
स्कंध (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 8: अनुरुद्ध से संबंधित प्रवचन (अनुरुद्धसम्युत्त) {सम्युत्त-52}
(i) अकेला (राहोगतावग्गो)
899. अकेला (1) (रहोगता1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। 280 तब, जब पूज्य अनुराधा एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) की उपेक्षा की है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश (खय/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुख के पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का पालन किया है।"

तब पूज्य महामोग्गलाना ने स्वयं पूज्य अनुराधा के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से पूज्य अनुराधा के समक्ष प्रकट हुए और उनसे कहा:

"हे मित्र अनुराधा, एक भिक्षु ने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का किस हद तक पालन किया है?"

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर में उत्पत्ति के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; 281 वह शरीर में क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर में उत्पत्ति और क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए: वह शरीर में उत्पत्ति के स्वरूप पर

ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर में क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है; वह शरीर में उत्पत्ति और क्षय के स्वरूप पर ध्यानपूर्वक चिंतन करता है - उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए।"

वह शरीर के आंतरिक और बाह्य उद्भव के स्वरूप पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहते हैं; वह शरीर के आंतरिक और बाह्य पतन के स्वरूप पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहते हैं; वह शरीर के आंतरिक और बाह्य उद्भव और पतन के स्वरूप पर ध्यानमग्न (अनुपसी) रहते हैं - उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

यदि वह चाहें: 282 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए रहूँ', तो वह उसमें निर्मल को देखते हुए रहते हैं। यदि वह चाहें: 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए रहूँ', तो वह उसमें निर्मल को देखते हुए रहते हैं। यदि वह चाहें:
'क्या मैं घृणास्पद को निर्घ्य में और घृणास्पद में देखते हुए निवास कर सकता हूँ?' वह घृणास्पद को उसमें देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'क्या मैं निर्घ्य को घृणास्पद में और निर्घ्य में देखते हुए निवास कर सकता हूँ?' वह निर्घ्य को उसमें देखते हुए निवास करता है। यदि वह चाहे: 'निर्घ्य और घृणास्पद दोनों से बचते हुए, क्या मैं समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए निवास कर सकता हूँ?' तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः बोध (संपजानो) करते हुए उसमें निवास करता है।

वह उत्पत्ति के स्वरूप, पतन के स्वरूप, उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर आंतरिक रूप से, बाह्य रूप से, आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की संवेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करते हैं - वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।

यदि उनकी इच्छा हो: 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए चिंतन करूं,' तो वे निर्मल को देखते हुए चिंतन करते हैं। यदि उनकी इच्छा हो: 'निर्मल और निर्मल दोनों से बचते हुए, समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करूं,' तो वे समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करते हैं।

वह उत्पत्ति के स्वरूप, पतन के स्वरूप, उत्पत्ति और पतन के स्वरूप पर आंतरिक रूप से, बाह्य रूप से, आंतरिक और बाह्य रूप से ध्यानमग्न होकर चिंतन करता है - वह पूरी तरह से संबोधित (संपजानो) और ध्यानमग्न (सतिमा) रहता है, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

यदि वह चाहे: 'मैं अप्रतिकूल में घृणित को देखते हुए चिंतन करूं', तो वह उसमें घृणित को देखते हुए चिंतन करता है; यदि वह चाहे: 'अप्रतिकूल और घृणित दोनों से बचते हुए, समभाव से, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) चिंतन करता है', तो वह समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधित (संपजानो) चिंतन करता है।

वह उत्पत्ति के स्वरूप, अवनति के स्वरूप, आंतरिक रूप से धम्म के स्वरूप, बाह्य रूप से धम्म के स्वरूप, आंतरिक और बाह्य दोनों स्वरूपों में उत्पत्ति और अवनति के स्वरूप पर ध्यानमग्न होकर चिंतन करते हैं - वे अत्यंत गंभीर, पूर्णतः संबोधक और ध्यानमग्न रहते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।

यदि उनकी इच्छा हो: 'मैं निर्मल में निर्मल को देखते हुए चिंतन करूं', तो वे निर्मल को देखते हुए चिंतन करते हैं। यदि उनकी इच्छा हो: 'निर्मल और निर्मल दोनों से बचते हुए, मैं समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करूं', तो वे समभाव से, ध्यानमग्न और पूर्णतः संबोधक होकर चिंतन करते हैं।

मित्र, इसी प्रकार से... कि ध्यान (सती) के ये चारों प्रतिष्ठान एक भिक्षु द्वारा स्थापित किए गए हैं।"

---

900. अकेला (2) (रहोगता2)
सावत्थी में, जब पूज्य अनुराधा एकांतवास में थे, तब उनके मन में यह विचार आया: "जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) की उपेक्षा की है, उन्होंने दुखों के पूर्ण नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग की उपेक्षा की है। जिन्होंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का पालन किया है, उन्होंने दुखों के पूर्ण नाश (खयाल) की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग का पालन किया है।"

तब पूज्य महामोग्गलाना ने अपने मन से पूज्य अनुराधा के मन के विचार को जान लिया और जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता या समेटता है, उसी शीघ्रता से पूज्य अनुराधा के समक्ष प्रकट हुए और उनसे कहा:

"हे मित्र अनुराधा, एक भिक्षु ने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का किस हद तक पालन किया है?"

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर के भीतर, शरीर पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) आंतरिक रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहते हैं, और उन्होंने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। वे शरीर के भीतर, शरीर पर ध्यान लगाकर

(अनुपसी) बाहरी रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न रहते हैं, और उन्होंने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। वे शरीर के भीतर, शरीर पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) आंतरिक और बाहरी रूप से, उत्साही, पूर्णतः संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा)

रहते हैं, और उन्होंने संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग दिया है। वे संवेदनाओं पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) आंतरिक रूप से ... संवेदनाओं पर ध्यान लगाकर (वेदना) बाहरी रूप से ... ध्यान लगाकर आंतरिक और बाह्य रूप से वेदनाओं में वेदनाओं में तल्लीन, पूर्णतः संबोध करने वाला (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने वाला।

वह मन में आंतरिक रूप से ध्यान लगाकर मन को निहारते हैं... मन में बाहरी रूप से ध्यान लगाकर मन को निहारते हैं... मन में आंतरिक और बाहरी रूप से ध्यान लगाकर मन को निहारते हैं, वे पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं।

वे ध्यान लगाकर आंतरिक रूप से घटनाओं (धम्म) को निहारते हैं... मन में बाहरी रूप से घटनाओं (धम्म) को निहारते हैं... मन में आंतरिक और बाहरी रूप से घटनाओं (धम्म) को निहारते हैं, वे पूरी तरह से संबोधित (संपजनो) और ध्यानमग्न (सतिमा) होते हैं, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देते हैं। हे

मित्र, इसी प्रकार एक भिक्षु ने ध्यान की इन चार अवस्थाओं का अभ्यास किया है।

---

901. सुतानु
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा सुतनु नदी के किनारे सावत्थी में निवास कर रहे थे। तब कई भिक्षु पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य अनुराधा से कहा:

"पूज्य अनुराधा ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्रों, मैंने ध्यान के चार चरणों (सती) को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। वे चार चरण कौन से हैं? मित्रों, मैं शरीर में शरीर को देखते हुए, पूरी तरह से समझते हुए, ध्यानमग्न होकर (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता हूँ।

मैं वेदनाओं को देखते हुए, मन को देखते हुए, धर्मों को स्पष्ट रूप से समझते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न होकर ध्यान लगाता हूँ।"

"मित्रों, इन चार ध्यान विधियों को विकसित और पोषित करने के कारण ही मैंने दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त की है। इसके अलावा, मित्रों, इन चार ध्यान विधियों को विकसित और पोषित करने के कारण ही मैंने निम्न अवस्था को निम्न के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जाना; मैंने मध्यम अवस्था को मध्यम के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जाना; और मैंने उच्च अवस्था को उच्च के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जाना।" 283

---

902. काँटेदार झाड़ियों का उपवन(1) (कंडाकी1)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना साकेत में कंदकिवन (काँटेदार वन) में निवास कर रहे थे। 284 तब, शाम को, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना एकांतवास से बाहर आए, पूज्य अनुराधा के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए, और पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"मित्र अनुराधा, एक प्रशिक्षु भिक्षु को किन धर्मों (गुणों, नियमों) में प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए?"

"मित्र सारिपुत्त, एक प्रशिक्षु भिक्षु को ध्यान के चार स्थानों (सती) में प्रवेश करना चाहिए और वहीं निवास करना चाहिए। वे चार स्थान कौन से हैं? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म का ध्यान लगाते हुए ध्यान में लीन रहता है, वह उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होता है। एक प्रशिक्षु भिक्षु को ध्यान के इन चार स्थानों में प्रवेश करना चाहिए और वहीं निवास करना चाहिए।"

---

903. थॉर्नबश-ग्रोव (कंडाकिवाना) (2) (कंडाकी2)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) साकेत में। एक तरफ बैठे पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराद्ध से कहा:

"मित्र अनुराद्ध, वे कौन से धर्म (गुण, नियम) हैं जिनमें प्रशिक्षण से परे भिक्षु को प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए?"

"मित्र सारिपुत्त, प्रशिक्षण से परे भिक्षु को ध्यान के चार प्रतिष्ठानों (सती) में प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए। वे चार कौन से हैं? यहाँ, मित्र, भिक्षु शरीर मंश शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न, सतीम, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में निवास करता है। प्रशिक्षण से परे भिक्षु को ध्यान के इन चार प्रतिष्ठानों में प्रवेश करना चाहिए और निवास करना चाहिए।"

---

904. काँटेदार झाड़ियों का उपवन(3) (कंडाकी3)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) साकेत में। एक तरफ बैठे हुए, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"पूज्य अनुराधा ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्र, मैंने ध्यान के चार निरूपणों (सति) का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। वे चार निरूपण कौन से हैं? यहाँ, मित्र, मैं शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, प्रखर, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता से मुक्त होकर ध्यान लगाता हूँ। मित्र, मैंने ध्यान के इन

चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त, मित्र, मैंने ध्यान के इन चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे प्रत्यक्ष रूप से हजार रूपों का ज्ञान प्राप्त हुआ है।" 285

---

905. तृष्णा का नाश (तनखखाय सं. तृष्णा-क्षय)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) सावत्थी में, पूज्य अनुराधा ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्रों!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य अनुराधा ने आगे कहा:

"मित्रों, ध्यान की ये चार अवस्थाएँ (सति), जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का नाश (खयाय/क्षय) करती हैं। वे चार क्या हैं? मित्रों, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म, ध्यान में लीन (अनुपसी) रहता है, वह पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न (सतिमा) रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। ध्यान की ये चार अवस्थाएँ, जब विकसित और अभ्यास की जाती हैं, तो तृष्णा का नाश करती हैं।"

---

906. सलाला-वृक्ष झोपड़ी (सलालागरा)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में एक सलाला वृक्ष की कुटिया में रह रहे थे। वहाँ पूज्य अनुराधा ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया...

"मित्रों, गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है। मान लीजिए कि लोगों का एक बड़ा समूह फावड़ा और टोकरी लेकर आता है, यह सोचकर कि 'हम इस गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका देंगे।' 286 मित्रों, क्या आपको क्या लगता है, क्या लोगों का वह बड़ा समूह गंगा नदी को पश्चिम की ओर झुका पाएगा?" "

नहीं, मित्र। इसका कारण क्या है? क्योंकि गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, और इसे पश्चिम की ओर झुकाना आसान नहीं है। लोगों का वह बड़ा समूह केवल थकान और कष्ट ही पाएगा।"

"इसी प्रकार, मित्रों, जब कोई भिक्षु ध्यान के चार गुणों (सती) का अभ्यास और विकास कर रहा होता है, तो राजा या राजमंत्री, मित्र या सहकर्मी, रिश्तेदार या सगे-संबंधी उसे धन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं, यह कहते हुए: 'हे श्रेष्ठ, इन भगवा वस्त्रों को अपने ऊपर क्यों बोझ बनने दें? मुंडा सिर और भिक्षापात्र लेकर क्यों भटकते हैं? आइए, निम्न लोक में लौटकर धन का आनंद लें और पुण्य कर्म करें।' वास्तव में, मित्रों, जब वह भिक्षु ध्यान के चार गुणों का अभ्यास और विकास कर रहा होता है, तो उसके लिए प्रशिक्षण छोड़कर निम्न लोक में लौटना असंभव है। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसका मन एकांत की ओर झुका हुआ है। अतः उसके लिए प्रशिक्षण छोड़कर निम्न लोक में लौटना असंभव है।

" "और मित्रों, एक भिक्षु ध्यान के चार गुणों का अभ्यास और विकास कैसे करता है?" मित्रों, यहाँ एक भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और घटनाओं में धर्म, अत्यंत ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में लीन रहता है।

"मित्रों, इसी प्रकार एक भिक्षु ध्यान के चारों गुणों का विकास और अभ्यास करता है।"

---

907. अम्बपाली का उपवन (अम्बापालिवन सं. आम्रपाली-वन)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा और पूज्य सारिपुत्त अंबपाली के उपवन में वैशाली में निवास कर रहे थे। फिर, शाम को, पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए... एक तरफ बैठकर, पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा:

"मित्र अनुराधा, आपकी इंद्रियां शांत हैं, आपका रंग शुद्ध और तेजस्वी है। पूज्य अनुराधा आजकल आमतौर पर किस निवास में रहते हैं?"

"अब, मित्र, मैं आमतौर पर ध्यान की चार अवस्थाओं (सती) में सुस्थापित मन से रहता हूँ। वे चार कौन सी हैं? यहाँ, मित्र, मैं शरीर में शरीर को देखते हुए (अनुपसी) ध्यान में रहता हूँ... संवेदनाओं में संवेदनाएँ (वेदना)... मन में मन... घटनाओं में धम्म (धर्म)... उत्साही, पूर्णतः संबोधक, ध्यानमग्न (सतीमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"मित्र, वह भिक्षु (भिक्षु), जो अरहंत है, जिसके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिसने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है, अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो गया है, वह आमतौर पर ध्यान की इन चार अवस्थाओं में सुस्थापित मन से रहता है।"

"यह हमारे लिए लाभ है, मित्र, यह हमारे लिए पूर्णतः लाभ है।" "मित्र, हम उस समय पूज्य अनुराधा की उपस्थिति में ही उपस्थित थे जब उन्होंने इस प्रकार की गर्जनापूर्ण वाणी बोली।"

---

908 गंभीर रूप से बीमार (बल्हगिलाना)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा श्रावस्ती में अंधों के उपवन (अंधवन) में रह रहे थे, वे बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। तब कई भिक्षु पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे कहा:

"पूज्य अनुराधा आमतौर पर किस निवास में रहते हैं ताकि उत्पन्न शारीरिक पीड़ादायक संवेदनाएं (वेदना) उनके मन को व्याकुल न करें?"

"मित्रों, क्योंकि मैं ध्यान की चार अवस्थाओं (सति) में सुस्थापित मन से रहता हूँ, इसलिए उत्पन्न शारीरिक संवेदनाएँ (वेदना) मेरे मन को ग्रस्त नहीं करतीं। वे चार अवस्थाएँ क्या हैं? यहाँ, मित्र, मैं शरीर में शरीर, संवेदनाओं में वेदना, मन में मन, घटनाओं में धर्म, घटनाओं पर गहन ध्यान (अनुपसी) देता हूँ, पूरी तरह से संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न (सतिमा), संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

"मित्रों, क्योंकि मैं ध्यान की इन चार अवस्थाओं में सुस्थापित मन से रहता हूँ, इसलिए उत्पन्न शारीरिक पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मेरे मन को ग्रस्त नहीं करतीं।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय
909. एक हजार कल्प (कप्पासहसा सं. कल्प-सहस्र)
(कृपया विवरण 899 के अनुसार भरें) एक बार पूज्य अनुराधा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब कई भिक्षु पूज्य अनुराधा के पास आए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य अनुराधा से कहा:

"पूज्य अनुराधा ने किन धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करके दिव्य ज्ञान (अभिन्न) की महानता प्राप्त की है?"

"मित्रों, मैंने ध्यान के चार निरूपणों (सति) का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। वे चार निरूपण कौन से हैं? मित्रों, मैं शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, धर्म में धर्म, ध्यानमग्न होकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान लगाता हूँ।

मित्रों, मैंने ध्यान के इन चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे दिव्य ज्ञान की महानता प्राप्त हुई है। मित्रों, मैंने ध्यान के इन चार निरूपणों का विकास और अभ्यास किया है, इसीलिए मुझे हजार युगों (कल्पकल्प) का स्मरण है।"

---

910. आध्यात्मिक शक्ति (इद्धिविधा)
(संख्या 899 के अनुसार)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं को विकसित और पोषित किया है, इसीलिए मैं विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का प्रयोग करता हूँ: एक होकर मैं अनेक हो जाता हूँ; अनेक होकर मैं एक हो जाता हूँ... (संख्या 823 के अनुसार)... मैं ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर प्रभुत्व रखता हूँ।"

---

911. दिव्य कान (दिब्बासोता संस्कृत: दिव्या-स्रोता)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) को विकसित और पोषित किया है, जिसके कारण शुद्ध और मानवीय से श्रेष्ठ दिव्य श्रवण तत्व से मैं दोनों प्रकार की ध्वनियाँ, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन पाता हूँ।"

---

912. मन को समाहित करना (चेतोपरिया)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को समझता हूँ, उन्हें अपने मन से घेरकर। मैं कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में समझता हूँ... एक अमुक्त मन को अमुक्त मन के रूप में समझता हूँ।"

---

913. द पॉसिबल (थाना)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं संभव को संभव और असंभव को असंभव समझता हूँ।" 287

---

914. कम्मा का उपक्रम (कम्मासमादना)
(जैसा कि 899 में है)। "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) की इन चार अवस्थाओं को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं वास्तव में अतीत, भविष्य और वर्तमान कर्म के परिणाम को संभाव्यता और कारण दोनों के माध्यम से समझता हूँ।"

---

915. सर्वत्र नेतृत्व करना (सब्बत्थगामिनी)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं समझता हूं कि
वास्तव में यही वह मार्ग है जो हर जगह ले जाता है।"

---

916. विविध तत्व (नाना-धातु)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं वास्तव में दुनिया को उसके अनेक और विविध तत्वों (धातु) के साथ समझता हूँ।"

---

917. विविध स्वभाव (नानादिमुट्टी)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं प्राणियों के स्वभाव में विविधता को वास्तव में समझता हूँ।"

---

918. संकायों की डिग्रियाँ (इंद्रियपरोपरीअत्ता)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) की इन चार अवस्थाओं को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं अन्य प्राणियों और व्यक्तियों की आध्यात्मिक क्षमताओं में परिपक्वता की डिग्री को वास्तव में समझता हूँ।"

---

919. ध्यान आदि (संस्कृत ध्यान)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) की इन चार स्थापनाओं को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं वास्तव में ध्यान, मुक्ति (विमोक्ष), समाधि (सम्मोहन) अवस्थाओं और उपलब्धियों के संबंध में अशुद्धता, शुद्धि और उद्‌भव को समझता हूँ।"

---

920. विगत निवास (पुब्बेनिवास सं. पूर्व-निवास)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मुझे अपने अनेक पूर्व जन्म याद आते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म (जैसा कि 823 में है)... संसार के संकुचन और विस्तार के अनेक युग... इस प्रकार मुझे अपने अनेक पूर्व जन्म, उनके स्वरूप और विवरणों के साथ याद आते हैं।"

---

921. दिव्य नेत्र (दिब्बाचक्खु संस्कृत: दिव्या-चक्षु)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान (सती) के इन चार प्रतिष्ठानों को विकसित और पोषित किया है, इसलिए मैं दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ... (जैसा कि 823 में है)... और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्म के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।"

---

922. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)
(जैसा कि 899 में है)... "इसके अलावा, मित्रों, मैंने ध्यान की इन चार अवस्थाओं (सती) को विकसित और पोषित किया है, जिसके कारण दोषों के नाश (खया/क्षय) से, इसी जीवन में मैं मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे मैं स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से अनुभव करता हूँ।"

अध्याय 9: झानस/आत्म-अवशोषण (झानसयुत्त) पर संबंधित प्रवचन {संयुत्त-53}
(i) गंगा पुनरावृति श्रृंखला (गंगापेय्यलावग्गो)
923-934. गंगा नदी - पूर्व की ओर, झनादी आदि।
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, ये चार ध्यान अवस्थाएँ हैं। कौन सी चार? हे भिक्षुओं, यहाँ इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो विचार और चिंतन से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। विचार और चिंतन के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभावम) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। आनंद (पीति/प्रीति) के भी लुप्त होने पर, वह समभाव में, ध्यानमग्न होकर और स्पष्ट रूप से समझते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करता है; वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह है समभाव, ध्यानमग्न, सुख में रहने वाला। सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही आनंद और अप्रसन्नता के बीत जाने के बाद, वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, और इसमें समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सती) का शुद्धिकरण शामिल है। ये चार ध्यान हैं। 288

"भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा नदी पूर्व की ओर झुकती है, उसी प्रकार जो भिक्षु चारों ध्यानों का विकास और अभ्यास करता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है।"

हे भिक्षुओं, चार ध्यानों का विकास और अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर कैसे अग्रसर होता है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से विरक्त और अकुशल अवस्थाओं से विरक्त होकर भिक्षु प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार चार ध्यानों का विकास और अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(इस अध्याय के शेष सूत्रों की व्याख्या भी पिछले अध्याय 92-102 के समानांतर इसी प्रकार की जाएगी।)

पूर्व की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र
और सागर की ओर अग्रसर होने के विषय में छह सूत्र।

ये दो छह सूत्र मिलकर बारह सूत्र बनाते हैं।
इस प्रकार उप-अध्याय का पाठ किया जाता है।

(ii) सतर्कता अनुभाग (अप्पामाडावग्गो सं. अप्रमाद-वर्ग)
935-944. तथागत, इत्यादि।
(139-148 के समानांतर ध्यान के माध्यम से विस्तृत किया जाएगा।)

तथागत, पदचिह्न, छत की चोटी।
जड़ें, भीतरी लकड़ी, चमेली।

सम्राट, चंद्रमा और सूर्य।
साथ में वस्त्र दसवें के रूप में।

(iii) बलकारणीयवग्गो (कठिन कर्म)
945-956. ज़ोरदार, आदि (बलकारनिया)
(149-160 के समानांतर विस्तृत विवरण दिया जाएगा।)

परिश्रमी, बीज और नाग।
वृक्ष, घड़ा, बाली।

आकाश और बादलों पर दो।
जहाज, अतिथि गृह और नदी।

(iv) खोज (एसानावग्गो)
957-966 खोजें, आदि (एसाना)
(161-170 के समानांतर विस्तृत व्याख्या की जाएगी।)

खोज, भेद, दोष।
अस्तित्व के प्रकार (भावो), त्रिविध पीड़ा,

बांझपन, कलंक और कष्ट,
संवेदनाएँ (वेदना), लालसा (तन्हा संस्कृत, तृष्णा) और प्यास।

(v) बाढ़ (ओघावाग्गो)
967-975. बाढ़, आदि।
(इसका विस्तृत विवरण पृष्ठ 171-179 के समानांतर दिया जाएगा।)

---

976. उच्चतर बेड़ियाँ
भिक्षुओं, ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। ये पाँच कौन से हैं? रूप के प्रति वासना (राग), निराकार के प्रति वासना, अहंकार, बेचैनी और अज्ञान (अविज्जा)। ये पाँच उच्चतर बंधन हैं। इन पाँचों उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान (अभिन्न) के लिए, इन्हें पूरी तरह समझने के लिए, इनका पूर्ण विनाश (खया/क्षय) करने के लिए और इनका त्याग करने के लिए चार ध्यान अवस्थाओं का विकास करना चाहिए। ये

चार कौन सी हैं? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं (अकुशल संस्कृत) से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है।

"इन चार ध्यानों का विकास इन पांच उच्चतर बंधनों के दिव्य ज्ञान के लिए, उनके पूर्ण बोध के लिए, उनके पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के लिए, और उनके त्याग के लिए किया जाना चाहिए।"

बाढ़, बंधन, आसक्ति के प्रकार (उपदान संस्कृत: आसक्ति),
गांठें और अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ (अनुसय),

कामुक सुख की डोरियाँ, अवरोध,
समूह (खंड संस्कृत: स्कंध), निम्न और उच्चतर बंधन।

अध्याय 10: श्वास संबंधी संबंधित प्रवचन (अनपानसाम्युत्त) {साम्युत्त-54}
(i) एक धम्म (गुणवत्ता, कानून) (एकधम्मवग्गो)
977. एक धम्म (गुणवत्ता, कानून) (एकधम्म)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, एक धर्म (गुण, नियम) जब विकसित और अभ्यास किया जाता है, तो वह बहुत फलदायी और लाभदायक होता है। वह कौन सा धर्म (गुण, नियम) है? श्वास का ध्यान (सती)। और भिक्षुओं, श्वास के ध्यान को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाता है ताकि वह बहुत फलदायी और लाभदायक हो?

"भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है। 289

"लंबी श्वास लेते हुए, वह जानता है: 'मैं लंबी श्वास ले रहा हूँ'; या लंबी श्वास छोड़ते हुए, वह जानता है: 'मैं लंबी श्वास छोड़ रहा हूँ'। छोटी श्वास लेते हुए, वह जानता है: 'मैं छोटी श्वास ले रहा हूँ'; या छोटी श्वास छोड़ते हुए, वह जानता है: 'मैं छोटी श्वास छोड़ रहा हूँ'।" वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संशय (बाध्यकारी व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संशय (व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' 290

"वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (पीति/प्रीति) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (आनंद) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख (खुशी) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'खुशी का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'मानसिक संशय (व्यवहार-अनुकूलन) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संशय (व्यवहार-अनुकूलन) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संखार (व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संखार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' 291

"वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा' - वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' वह इस प्रकार अभ्यास करता है - 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' 292

वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता पर ध्यान करते हुए (अनुपस्सी), मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता पर ध्यान करते हुए (अनित्यता), मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होते हुए पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होते हुए पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध पर ध्यान करते हुए (निरोध पर), मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध पर ध्यान करते हुए,

मैं श्वास त्यागूँगा'। वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'। 293

"हे भिक्षुओं, जब श्वास का ध्यान (सती) इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तभी यह बहुत फलदायी और लाभदायक होता है।"

---

978. आत्मज्ञान के कारक (बोज्झांगा सं. बोधयांग)
भिक्षुओं, श्वास ध्यान (सती) जब विकसित और अभ्यासित किया जाता है, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है। और भिक्षुओं, श्वास ध्यान को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?

भिक्षुओं, यहाँ भिक्षु एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित श्वास ध्यान के साथ ध्यान के ज्ञान तत्व को विकसित करता है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। वह धम्मविचय के ज्ञान तत्व को विकसित करता है... एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित श्वास ध्यान के साथ समभाव की ज्ञान तत्व को विकसित करता है, और मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास ध्यान को विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो।

---

979. सरल संस्करण (शुद्धिका)
भिक्षुओं, श्वास ध्यान (सती) जब विकसित और अभ्यासित किया जाता है, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होता है। और भिक्षुओं, श्वास ध्यान को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष के चरणों में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है... (सभी 977 के अनुसार) ... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।'

"भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास ध्यान को विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो।"

---

980. फल (1) (फला1)
(पिछली सूत्र के समान ही, निम्नलिखित अतिरिक्त के साथ:)

"जब, भिक्षुओं, श्वास की ध्यान (सती) इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाती है, तो दो फलों में से एक की अपेक्षा की जा सकती है: या तो इसी जीवन में अंतिम ज्ञान, या यदि आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) का कोई अवशेष हो, तो पुनर्जन्म रहित अवस्था।"

---

981. फल (2) (फला2)
(979 के सभी कथनों के अनुसार, निम्नलिखित अतिरिक्त कथन के साथ:)

"हे भिक्षुओं, जब श्वास की सती साधना इस प्रकार विकसित और अभ्यासित हो जाती है, तो सात फल और लाभ प्राप्त होते हैं। वे सात फल और लाभ क्या हैं?

"इसी जीवन में व्यक्ति को परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

"यदि व्यक्ति को इसी जीवन में या मृत्यु के समय भी परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तो उसे मृत्यु के समय परम ज्ञान प्राप्त होता है।

"यदि व्यक्ति को इसी जीवन में या मृत्यु के समय भी परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तो पांच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खयाल/क्षयाल) के साथ ही वह इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।"

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले... या इस अंतराल में निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले या निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है, बिना किसी प्रयास के।

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले या निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ ही वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है, परिश्रम के साथ।

यदि कोई इस जीवन में शीघ्र ही अंतिम ज्ञान प्राप्त न कर ले... या परिश्रम के साथ निर्वाण प्राप्त न कर ले, तो पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) के साथ ही वह अकनित्त लोक की ओर धारा के विपरीत दिशा में बहने लगता है।

"जब, भिक्षुओं, श्वास की ध्यान (सती) को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तो इन सात फलों और लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

---

982. अरित्था
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, क्या तुम श्वास का ध्यान (सति) करते हो?"

यह सुनकर पूज्य अरित्त ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"पूज्यवर, मैं श्वास का ध्यान करता हूँ।"

"परन्तु, अरित्त, तुम श्वास का ध्यान कैसे करते हो?"

"मैंने भूतकाल के इंद्रिय सुखों की इच्छा का त्याग कर दिया है, पूज्यवर, मैंने भविष्य के इंद्रिय सुखों की इच्छा से मुक्ति पा ली है, और मैंने धर्मों के प्रति घृणा की भावना को आंतरिक और बाह्य रूप से पूर्णतः दूर कर दिया है। मैं ध्यानमग्न होकर श्वास लेता हूँ, ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता हूँ। इसी प्रकार, पूज्यवर, मैं श्वास का ध्यान करता हूँ।" "

यह श्वास का ध्यान है, अरित्त, मैं यह नहीं कहता कि यह नहीं है। परन्तु श्वास का ध्यान कैसे पूर्ण होता है, अरित्त, ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बताऊंगा।" 294

"जी, पूज्यवर," पूज्य अरित्थ ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"और अरित्थ, श्वास ध्यान का विस्तृत अभ्यास कैसे किया जाता है? अरित्थ, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान मुद्रा में बैठकर, ध्यानमग्न होकर श्वास लेता है और ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास लेता हूँ'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास छोड़ता हूँ'।

"इस प्रकार, अरित्थ, श्वास ध्यान का विस्तृत अभ्यास किया जाता है।"

---

983. महाकप्पिना
सावत्थी के पर्व पर, उस अवसर पर पूज्य महाकप्पिना भगवान (बुद्ध) से कुछ दूरी पर, पाण्डित्यपूर्वक पैर मोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, ध्यान मुद्रा में बैठे हुए थे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें पास ही पाण्डित्यपूर्वक, पैर मोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, ध्यान मुद्रा में बैठे देखा। उन्हें देखकर उन्होंने भिक्षुओं से कहा,

"भिक्षुओं, क्या आप इस भिक्षु के शरीर में कोई कंपन या थरथराहट देखते हैं?"

"पूज्यवर, जब भी हम उस पूज्यवर को देखते हैं, चाहे वह संघ के बीच में बैठे हों या एकांत में अकेले बैठे हों, हम उनके शरीर में कभी कोई कंपन या थरथराहट नहीं देखते।"

भिक्षुओं, वह भिक्षु बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से उस समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है जिसके विकास और साधना से न तो शरीर में कंपन होता है और न ही मन में। और वह कौन सी समाधि अवस्था है जिसके विकास और साधना से न तो शरीर में कंपन होता है और न ही मन में?

भिक्षुओं, श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था का विकास और साधना करने पर शरीर में कंपन नहीं होता और न ही मन में कंपन होता है। और भिक्षुओं, श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था का विकास और साधना कैसे की जाती है जिससे शरीर में कंपन नहीं होता और न ही मन में कंपन होता है?

"देखो, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में जाकर, किसी वृक्ष की छाया में या किसी खाली कुटिया में बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान की मुद्रा में बैठकर, ध्यानमग्न होकर श्वास लेता है और ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास लूंगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास छोड़ूंगा'।

"हे भिक्षुओं, जब श्वास के ध्यान द्वारा समाधि की अवस्था इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाती है, तब शरीर में कोई कंपन या कंपकंपी नहीं होती, न ही मन में कोई कंपन या कंपकंपी होती है।"

---

984. दीपक की उपमा (पादिपोपमा संस्कृत: प्रदीप-उपमा)
भिक्षुओं, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो अत्यंत फलदायी और लाभदायक होती है। और भिक्षुओं, श्वास के ध्यान द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाता है ताकि यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?

"यहाँ, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष के चरणों में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और अपने सामने ध्यान स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेते हुए'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ते हुए'।"

"भिक्षुओं, श्वास ध्यान के द्वारा समाधि अवस्था को इसी प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, जिससे यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक होती है।

मैं भी, भिक्षुओं, अपने ज्ञानोदय से पूर्व, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः ज्ञान प्राप्त नहीं किया था, सामान्यतः इसी निवास में रहता था। इस निवास में रहते हुए न तो मेरा शरीर और न ही मेरी आँखें थकती थीं, और मेरा मन आसक्ति रहित (उपदान संस्कृत: आसक्ति) होने के कारण विकारों से मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो गया था।"

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'न तो मेरा शरीर और न ही मेरी आँखें थकें और मेरा मन आसक्ति से मुक्त होकर (उपदान सं. आसक्ति) दोषों से मुक्त हो जाए,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। 296

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'गृहस्थ जीवन से जुड़ी स्मृतियों और इरादों का त्याग कर दिया जाए,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

इसलिए, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 297 'मैं अप्रिय को अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अप्रिय को अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अप्रिय को अप्रिय और अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अप्रिय को अप्रिय और अप्रिय में देखते हुए निवास करूं', तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'अप्रिय और अप्रिय दोनों से बचते हुए' घृणास्पद, क्या मैं समभाव, ध्यानमग्न (सतिमा) और पूर्णतः बोधगम्य (संपजानो) अवस्था में रह सकता हूँ? श्वास के ध्यान द्वारा इसी समाधि (तंद्रा) अवस्था पर बारीकी से ध्यान दिया जाना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ, जो विचार और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं विचार और परीक्षा के शांत होने पर, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करूँ और उसमें निवास करूँ, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभावम) से युक्त है, विचार और परीक्षा से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होने के साथ, समभाव और ध्यानमग्न (सतिमा) तथा पूर्णतः संबोधित (संपजानो) अवस्था में रहूँ, तो मैं शरीर के साथ सुख का अनुभव करूँ; मैं उस तृतीय ध्यान में प्रवेश करूँ और निवास करूँ जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: "वह समभाव और ध्यानमग्न है, जो सुखी है" - तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं, सुख और दुःख के त्याग के साथ, तथा पहले से ही सुख और दुःख के लुप्त होने के साथ, चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करूँ और निवास करूँ, जो न तो पीड़ादायक है और न ही सुखदायक तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान की शुद्धि को समाधि (सम्मोहन) अवस्था में प्रवेश करूँ और निवास करूँ' - तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं रूपों की धारणाओं से पूर्णतः मुक्त होकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) से मुक्त होकर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह जानते हुए कि "अंतरिक्ष अनंत है," अनंत अंतरिक्ष की शक्ति में प्रवेश कर उसमें निवास करूँ', तो श्वास ध्यान के द्वारा इस समाधि (तल्ली) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं अनंत अंतरिक्ष की शक्ति से पूर्णतः मुक्त होकर, यह जानते हुए कि "चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) अनंत है," अनंत चेतना की शक्ति में प्रवेश कर उसमें निवास करूँ', तो श्वास ध्यान के द्वारा इस समाधि (तल्ली) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं चेतना की अनंतता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, इस ज्ञान के साथ कि "कुछ भी नहीं है," शून्यता की क्षमता में प्रवेश कर उसमें निवास करूँ,' तो श्वास ध्यान के द्वारा इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं शून्यता की क्षमता को पूर्णतः पार करते हुए, 'न तो बोध और न ही अबोध की क्षमता में प्रवेश करो और उसमें निवास करो' श्वास के ध्यान के माध्यम से इसी समाधि (सम्मोहन) अवस्था पर बारीकी से ध्यान देना चाहिए।

अत: भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे: 'मैं न तो बोध और न ही अबोध की शक्ति को पूर्णतः पार करके, बोध और वेदना की निरोध अवस्था में प्रवेश कर सकूँ और उसमें निवास कर सकूँ,' तो श्वास ध्यान द्वारा इसी समाधि अवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

भिक्षुओं, जब श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था इस प्रकार विकसित और पोषित हो जाए, तो यदि उसे कोई सुखद वेदना का अनुभव हो, तो वह समझे: 'यह क्षणिक है'; वह समझे: 'इससे लगाव नहीं रखा जा सकता'; वह समझे: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता'। 298 यदि उसे कोई पीड़ादायक वेदना का अनुभव हो, तो वह समझे: 'यह क्षणिक है'; वह समझे: 'इससे लगाव नहीं रखा जा सकता'; वह समझे: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता'। यदि उसे न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे कोई बंधन नहीं है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जा सकता।'

यदि उसे सुखदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे कष्टदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है; यदि उसे न तो कष्टदायक और न ही सुखदायक अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह उससे विरक्त महसूस करता है।

जब उसे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है।' जब उसे जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव होता है, तो वह समझता है: 'मुझे

जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) का अनुभव हो रहा है।' वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'

"हे भिक्षुओं, जिस प्रकार तेल का दीपक तेल और बाती पर निर्भर होकर जलता है, और तेल और बाती के समाप्त होने पर ईंधन की कमी के कारण बुझ जाता है, उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु को शरीर से समाप्त होने वाली, जीवन से समाप्त होने वाली कोई अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन के समाप्त होने के बाद, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं पर ठंडा हो जाएगा।'"

---

985. वेसाली में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। 299 उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं को अनेक प्रकार से (वैराग्य और वैराग्य के लिए) शरीर की अशुद्धता पर प्रवचन दे रहे थे, अशुद्धता की प्रशंसा कर रहे थे, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा कर रहे थे। 300 (नोट: ब्रह्मचर्य में स्थापित होने, आत्म-प्रशंसा से बचने और विपरीत लिंग के आकर्षण से बचने के लिए, अशुद्धता ध्यान में, शरीर के विभिन्न 32 अशुद्ध तत्वों (धातु) के साथ-साथ सड़ते हुए शव, सड़े हुए शव, कीड़े लगे शव आदि की उपमा पर विचार करना होता है।)

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, मैं आधे महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।" 301

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भिक्षा लाने वाले भिक्षु के सिवा कोई भी भगवान (बुद्ध) के पास नहीं गया।

तब उन भिक्षुओं ने सोचा, "भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से अशुद्धता पर प्रवचन दे रहे थे, अशुद्धता की प्रशंसा कर रहे थे, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा कर रहे थे," और वे अशुद्धता ध्यान के अनेक पहलुओं और कारकों के विकास में लीन हो गए। इस शरीर से घृणा, अपमान और अरुचि के कारण, उन्होंने किसी आक्रमणकारी की तलाश की। एक ही दिन में दस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया, या एक ही दिन में बीस या तीस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया। 302

तब, जब आधा माह बीत गया, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और पूज्य आनंद से कहा,
"आनंद, भिक्षु संघ इतना क्षीण क्यों प्रतीत होता है?" 303

"आदरणीय महोदय, ऐसा इसलिए है क्योंकि [भगवान (बुद्ध) ने अनेक प्रकार से अशुद्धता पर प्रवचन दिया था, अशुद्धता की प्रशंसा की थी, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा की थी, और वे भिक्षु,] 304 यह सोचकर कि 'भगवान (बुद्ध) अनेक प्रकार से अशुद्धता पर प्रवचन दे रहे हैं, अशुद्धता की प्रशंसा कर रहे हैं, अशुद्धता ध्यान के विकास की प्रशंसा कर रहे हैं' अशुद्धता ध्यान के अनेक पहलुओं और कारकों के विकास में लीन हो गए। इस शरीर से घृणा, अपमानित और निराश होकर, उन्होंने एक हमलावर की तलाश की; एक ही दिन में दस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया, या एक ही दिन में बीस या तीस भिक्षुओं ने चाकू का प्रयोग किया। आदरणीय महोदय, यदि भगवान (बुद्ध) कोई अन्य विधि समझाएँ तो यह अच्छा होगा ताकि यह भिक्षु संघ अंतिम ज्ञान में स्थापित हो सके।"

"तो फिर, आनंद, वे सभी भिक्षु जो वैशाली पर आश्रित होकर जीवन यापन कर रहे हैं, सभाघर में एकत्रित हो जाओ।"

"जी, पूज्यवर," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया और वेशाली पर आश्रित सभी भिक्षुओं को सभागृह में एकत्रित किया। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे कहा, "भिक्षु संघ एकत्रित हो गया है, पूज्यवर। भगवान (बुद्ध) अपनी सुविधानुसार आएं।"

तब भगवान (बुद्ध) सभा कक्ष में गए, नियत स्थान पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा प्राप्त यह समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो शांत और उदात्त होती है, एक अमृतमय सुखद निवास स्थान होती है, और यह उत्पन्न होने वाली किसी भी हानिकारक (अकुशल) अवस्था को तुरंत नष्ट कर देती है। 305

"हे भिक्षुओं, जैसे ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में, जब धूल और गंदगी का ढेर उठ खड़ा होता है, तो असमय आने वाला एक बड़ा वर्षा बादल उसे तुरंत नष्ट कर देता है, 306 उसी प्रकार श्वास के ध्यान द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है,

तो शांत और उदात्त होती है, एक अमृतमय सुखद निवास स्थान होती है, और यह उत्पन्न होने वाली किसी भी हानिकारक (अकुशल) अवस्था को तुरंत नष्ट कर देती है। और ऐसा कैसे होता है?"

"हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान की मुद्रा में बैठकर, ध्यानमग्न होकर श्वास लेता है और ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास लूँगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न होकर, मैं श्वास छोड़ूँगा'। हे

भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास के ध्यान द्वारा समाधि की अवस्था विकसित और पोषित होती है, जो शांत और उदात्त होती है, एक अमृतमय सुखद निवास स्थान होती है, और जब भी अकुशल जैसी बुरी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें तुरंत दूर कर देती है।"

---

986. किम्बिला

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) किंबिला के वेलुवन (बांस के वन) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य किंबिला को संबोधित करते हुए कहा, "किंबिला, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (संत) की अवस्था कैसे विकसित और पोषित की जाती है, जिससे यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?"

यह सुनकर पूज्य किंबिला मौन रहे। दूसरी बार... तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य किंबिला को संबोधित करते हुए कहा, "किंबिला, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (संत) की अवस्था कैसे विकसित और पोषित की जाती है, जिससे यह अत्यंत फलदायी और लाभदायक हो?" तीसरी बार पूज्य किंबिला मौन रहे।

जब ऐसा हुआ, तो पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"अब समय आ गया है, हे भगवान! अब समय आ गया है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भगवान (बुद्ध) समाधि अवस्था में श्वास ध्यान करते हुए बोलें। भगवान (बुद्ध) से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो फिर, आनंद, सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्य," पूज्य आनंद ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे आनंद, श्वास ध्यान द्वारा समाधि (सम्मोहन) अवस्था को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाता है ताकि यह महान फलदायी और लाभदायक हो? यहाँ, आनंद, एक भिक्षु, जंगल में, किसी वृक्ष के चरणों में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, और ध्यान को अपने सामने स्थापित करके, वह ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेता है, ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास लेना'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यानमग्न अवस्था में श्वास छोड़ना'।

(i. कायानुपस्सना)

जब भी, 307 आनंद, एक भिक्षु, लंबी साँस लेते समय यह जानता है: 'मैं लंबी साँस लेता हूँ'; या, लंबी साँस छोड़ते समय यह जानता है: 'मैं लंबी साँस छोड़ता हूँ'; छोटी साँस लेते समय यह जानता है: 'मैं छोटी साँस लेता हूँ'; या, छोटी साँस छोड़ते समय यह जानता है: 'मैं छोटी साँस छोड़ता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं साँस लेता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पूरे शरीर का अनुभव करते हुए, मैं साँस छोड़ता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संखार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) को शांत करते हुए, मैं साँस लेता हूँ'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'शारीरिक संखार (व्यवहार-आदत) को शांत करते हुए, मैं साँस छोड़ता हूँ' - उस अवसर पर भिक्षु शरीर में शरीर पर ध्यान-दर्शन (अनुपसी) में लीन रहता है, पूरी तरह से बोध करते हुए (संपजानो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए। क्या कारण? मैं इसे एक विशेष प्रकार का शरीर कहता हूँ, आनंद, अर्थात् श्वास लेना और श्वास छोड़ना। 308 अतः, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु शरीर में शरीर को देखते हुए ध्यान में लीन रहता है, पूरी तरह से संबोधित (संपजनो), ध्यानमग्न, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर।

(ii. वेदनानुपस्सना का ध्यान)

"जब भी, आनंद, एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (पीति/प्रीति) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'आनंद (पीति/प्रीति) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख (सुख) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'सुख (सुख) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास लूँगा/लूँगी'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है:

'मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) का अनुभव करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) को शांत करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, वेदनाओं पर गहन ध्यान (अनुपसी) लगाता है। इसका कारण क्या है? मैं इसे एक विशेष प्रकार की वेदना, आनंद कहता हूँ, अर्थात् श्वास ग्रहण और श्वास त्याग पर गहन ध्यान। 309 अतः, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु वेदनाओं पर ध्यानमग्न होकर, पूरी तरह से संवेदनमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यानमग्न अवस्था में रहता है। (iii

. मन का ध्यान (चित्तनुपस्सना))

"जब भी, आनंद, कोई भिक्षु इस प्रकार साधना करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को प्रसन्न करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को एकाग्र करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार साधना करता है: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' - उस समय भिक्षु मन में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित होकर, ध्यानमग्न अवस्था में रहता है, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर। इसका कारण क्या है? मैं कहता हूँ, आनंद, कि ध्यान से समाधि (सम्मोहन) अवस्था का विकास नहीं होता। जो भ्रमित है और जिसे पूर्ण बोध (संपजन्न) नहीं है, उसके लिए श्वास लेना आवश्यक है। इसलिए, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु मन में मन को देखते हुए, तल्लीन, पूर्ण बोध (संपजन्न), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करके ध्यान लगाता है।

(iv. घटनाओं का ध्यान (धम्मनुपस्सना))

"जब भी, आनंद, कोई भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'अनित्यता (अनित्य संस्कृत अनित्य) पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है:

'अनित्यता (अनित्य संस्कृत) पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होने पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'लुप्त होने पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'निरोध (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा'; जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग (निरोध) पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु घटनाओं (धम्म) पर ध्यान करते हुए, उत्साही, पूर्णतः संबोधक (संपजानो), ध्यानमग्न अवस्था में, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, लीन रहता है। लोभ और अप्रसन्नता के त्याग को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, वह समभाव (उपेक्खा) से निकट दृष्टि से देखता है। 310 इसलिए, आनंद, उस अवसर पर भिक्षु संसार में घटनाओं (धम्म) पर ध्यानपूर्वक, उत्सुकता से, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करके निवास करता है।

"मान लीजिए, आनंद, किसी चौराहे पर मिट्टी का एक बड़ा टीला है। यदि कोई रथ या गाड़ी पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से आए, तो वह उस टीले को समतल कर देगी। 311 इसी प्रकार, आनंद, जब कोई भिक्षु शरीर में शरीर, वेदना में वेदना, मन में मन, और धम्म में धम्म का ध्यान करते हुए ध्यान लगाता है, तो वह अकुशल (हानिकारक) अवस्थाओं को समतल कर देता है।"

(ii) द्वितीय उप-अध्याय (आनंद)

987. इच्छानंगला में

(वर्षा ऋतु में बुद्ध कैसे निवास करते थे) एक बार भगवान (बुद्ध) इच्छानंगला वन में इच्छानंगला में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, मैं तीन महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।"

"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, और भिक्षा प्रदान करने वाले के अलावा कोई भी भगवान (बुद्ध) के पास नहीं आया।

फिर, जब वे तीन महीने बीत गए, तो भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, यदि अन्य संप्रदायों के तपस्वी आपसे पूछें: 'मित्रों, वर्षा ऋतु में भगवान (बुद्ध) सामान्यतः किस निवास में निवास करते थे?'" इस प्रकार पूछे जाने पर, आपको उन तपस्वियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: 'वर्षा ऋतु में निवास के दौरान, मित्रों, भगवान (बुद्ध) सामान्यतः श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सत्त्व) अवस्था में निवास करते थे।'

"यहाँ, भिक्षुओं, मैं ध्यानमग्न होकर श्वास लेता हूँ, ध्यानमग्न होकर श्वास छोड़ता हूँ। लंबी श्वास लेते समय मुझे पता चलता है: 'मैं लंबी श्वास ले रहा हूँ'; लंबी श्वास छोड़ते समय मुझे पता चलता है: 'मैं लंबी श्वास छोड़ रहा हूँ'। छोटी श्वास लेते समय मुझे पता चलता है: 'मैं छोटी श्वास ले रहा हूँ'; छोटी श्वास छोड़ते समय मुझे पता चलता है: 'मैं छोटी श्वास छोड़ रहा हूँ'। मुझे पता है: 'संपूर्ण शरीर का अनुभव करते हुए मैं श्वास लूँगा।'... मुझे पता है: 'त्याग पर ध्यान (अनुपसी) करते हुए, मैं श्वास छोड़ूँगा।' 312

"यदि कोई भिक्षु, सही ढंग से किसी बात के बारे में कह सकता है:
'यह एक श्रेष्ठ निवास है, एक दिव्य निवास है, तथागत का निवास है', तो वह श्वास ध्यान की समाधि अवस्था के बारे में ही सही ढंग से कह सकता है।

भिक्षुओं, वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से अतुलनीय सुरक्षा की आकांक्षा रखते हुए निवास करते हैं: उनके लिए श्वास ध्यान की समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो विकारों के नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाती है।" वे भिक्षु जो अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर दिया है, वे जो अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त हो चुके हैं: उनके लिए श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था, जब विकसित और पोषित की जाती है, तो इसी जीवन में सुखद निवास और ध्यान एवं पूर्ण बोध (संपजन्न) की ओर ले जाती है। 313

"यदि कोई, भिक्षुओं, सही ढंग से किसी बात के बारे में कह सकता है:
'यह एक श्रेष्ठ निवास है, एक दिव्य निवास है, तथागत का निवास है', तो यह श्वास ध्यान द्वारा समाधि अवस्था के बारे में ही सही ढंग से कहा जा सकता है।"

---

988. असमंजस में (कंखेय्या)
एक बार पूज्य लोमसावंगिस निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्यों महानामा पूज्य लोमसावंगिस के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, क्या ऐसा है कि प्रशिक्षु का निवास तथागत के निवास के समान है, या प्रशिक्षु का निवास एक है और तथागत का निवास दूसरा है?"

"हे मित्र महानामा, ऐसा नहीं है कि प्रशिक्षु का निवास तथागत के निवास के समान है; बल्कि, प्रशिक्षु का निवास एक है और तथागत का निवास दूसरा है। मित्र महानामा

, वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं, जिन्होंने अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, जो बंधन से पूर्ण मुक्ति की आकांक्षा रखते हुए निवास करते हैं, वे पाँच बाधाओं का त्याग करके निवास करते हैं। 314 वे पाँच कौन सी हैं? कामुक इच्छा, द्वेष, आलस्य, सुस्ती, बेचैनी, पश्चाताप और संशय जैसी बाधाएँ। वे भिक्षु जो प्रशिक्षु हैं... इन पाँच बाधाओं का त्याग करके निवास करते हैं।

लेकिन, मित्र महानामा, उन अर्हंत भिक्षुओं के लिए, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया है, जो करना आवश्यक था वह किया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य तक पहुँच गए हैं, अस्तित्व के बंधनों (भावो) को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, अंतिम ज्ञान के माध्यम से पूर्णतः मुक्त (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) हो गए हैं, पाँचों अवरोधों का त्याग हो चुका है, उन्हें जड़ से काट दिया गया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया गया है, मिटा दिया गया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों। 315 वे पाँच कौन से अवरोध हैं? कामुक इच्छा, द्वेष, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और पश्चाताप, और संदेह के अवरोध। अर्हंत भिक्षुओं के लिए... इन पाँच

अवरोधों का 86 त्याग हो चुका है, उन्हें जड़ से काट दिया गया है, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया गया है, मिटा दिया गया है ताकि वे भविष्य में फिर से उत्पन्न न हों।

"मित्र महानामा, निम्नलिखित विधि से भी यह समझा जा सकता है कि कैसे एक प्रशिक्षु का निवास एक बात है और तथागत का निवास दूसरी बात।

"एक बार, हे मित्र महानामा, भगवान (बुद्ध) इच्छानंगल वन में इच्छानंगल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 'भिक्षुओं, मैं तीन महीने के लिए एकांतवास में जाना चाहता हूँ। मेरे पास केवल वही व्यक्ति आए जो मुझे भिक्षा प्रदान करे।'

(यहाँ वे पिछले सूत्र की संपूर्ण सामग्री को दोहराते हैं, यहाँ तक कि:)

"'हे भिक्षुओं, यदि कोई सही ढंग से किसी बात के बारे में कह सकता है:
'यह एक श्रेष्ठ निवास है, एक दिव्य निवास है, तथागत का निवास है,' तो यह समाधि (सम्मोहन) अवस्था में श्वास के ध्यान से ही सही ढंग से कहा जा सकता है।'

"इस विधि से, हे मित्र महानामा, यह समझा जा सकता है कि एक प्रशिक्षु का निवास एक बात है और तथागत का निवास दूसरी बात है।"

---

989. आनंद (1)
सावत्थी में, पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, क्या कोई एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने से चार धर्मों (विशेषताओं, नियम) की पूर्ति होती है? और क्या चार धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से सात धर्मों की पूर्ति होती है? और क्या सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से दो धर्मों की पूर्ति होती है?" भगवान ने उत्तर दिया,

"आनंद, एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने से चार धर्मों की पूर्ति होती है; चार धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से सात धर्मों की पूर्ति होती है; और सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने से दो धर्मों की पूर्ति होती है।"

"परन्तु, आदरणीय महोदय, वह कौन सा एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसके विकास और अभ्यास से चारों धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से चार धर्म हैं, जिनके विकास और अभ्यास से सात धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से सात धर्म हैं, जिनके विकास और अभ्यास से दो धर्म पूर्ण होते हैं?"

"आनंद, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सता) ही वह एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसके विकास और अभ्यास से ध्यान के चारों आधार पूर्ण होते हैं। ध्यान के चारों आधार, जब विकसित और विकसित होते हैं, तो ज्ञान के सात कारकों को पूर्ण करते हैं। ज्ञान के सात कारक, जब विकसित और विकसित होते हैं, तो सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण करते हैं।

(i. ध्यान के चारों आधारों को पूर्ण करना)
" "आनंद, श्वास के ध्यान द्वारा समाधि (सता) की अवस्था को कैसे विकसित और विकसित किया जाता है ताकि वह ध्यान के चारों आधारों को पूर्ण करे?" यहां, आनंद नामक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाते हैं। वे अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान मुद्रा में बैठकर, सतीम अवस्था में श्वास लेते हैं और सतीम अवस्था में ही श्वास छोड़ते हैं। वे इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूंगा'; वे इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए, मैं श्वास त्यागूंगा।'

हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु लंबी साँस लेते हुए यह जानता है: 'मैं लंबी साँस लेता हूँ' ... (जैसा कि 986 में है) ... जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है:
'शारीरिक संखार (बाध्यकारी व्यवहार) को शांत करते हुए, मैं साँस छोड़ूँगा' - उस समय भिक्षु शरीर में शरीर पर ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित होकर, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए, चिंतन में लीन रहता है। इसका कारण क्या है? हे आनंद, मैं इसे एक विशेष प्रकार का शरीर कहता हूँ, अर्थात् साँस लेना और साँस छोड़ना। इसलिए, हे आनंद, उस समय भिक्षु

शरीर में शरीर पर ध्यान लगाकर, पूरी तरह से संबोधित होकर, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करते हुए चिंतन में लीन रहता है।

हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करता है: 'पीति/प्रीति का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' ... जब वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'मानसिक संशय (अनिवार्य व्यवहार) को शांत करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु वेदनाओं पर गहन ध्यान लगाते हुए, संवेदनाओं में ध्यान मग्न रहता है, पूर्णतः संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। इसका कारण क्या है? हे आनंद, मैं इसे एक विशेष प्रकार की वेदना कहता हूँ, अर्थात् श्वास ग्रहण और श्वास त्याग पर गहन ध्यान। इसलिए, हे आनंद, उस समय भिक्षु वेदनाओं पर गहन ध्यान लगाते हुए, पूर्णतः संबोध रखते हुए, ध्यानमग्न रहता है, और संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है। हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु वेदनाओं में ध्यान मग्न रहता है, तो वह संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्याग देता है

। भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'मन का अनुभव करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' ... जब वे इस प्रकार अभ्यास करते हैं: 'मन को मुक्त करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु मन में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से समझते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में लीन रहते हैं। इसका कारण क्या है? मैं कहता हूँ, आनंद, कि जो व्यक्ति भ्रमित है और जिसे पूर्ण बोध (संपजन्न) नहीं है, उसके लिए श्वास के ध्यान से समाधि (सम्मोहन) अवस्था का विकास नहीं होता। इसलिए, आनंद, उस समय भिक्षु मन में ध्यान लगाकर, पूरी तरह से समझते हुए, ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर ध्यान में लीन रहते हैं।

"हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु इस प्रकार साधना करता है: 'अनित्यता पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास ग्रहण करूँगा' ... जब वह इस प्रकार साधना करता है:
'त्याग पर ध्यान करते हुए, मैं श्वास त्यागूँगा' - उस समय भिक्षु घटनाओं (धम्म) पर ध्यान करते हुए, प्रखर, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, ध्यानमग्न अवस्था में रहता है। प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से लोभ और अप्रसन्नता के त्याग को देखकर, वह समभाव (उपेक्खा) से निकट दृष्टि से देखता है। अतः, हे आनंद, उस समय भिक्षु घटनाओं (धम्म) पर ध्यान करते हुए, प्रखर, पूर्णतः संबोधित (संपजानो), ध्यानमग्न होकर, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को त्यागकर, ध्यानमग्न अवस्था में रहता है।

"यह है, आनंद, जब श्वास ध्यान द्वारा समाधि (सम्मोहन) अवस्था को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है कि वह ध्यान के चार सिद्धांतों को पूरा करती है।

(ii. ज्ञानोदय के सात कारकों को पूरा करना)

"और आनंद, ध्यान के चार सिद्धांत कैसे विकसित और पोषित किए जाते हैं ताकि वे ज्ञानोदय के सात कारकों को पूरा करें?"

"हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु शरीर में स्थित शरीर पर ध्यान लगाकर (अनुपसी) लीन रहता है, उस समय उस भिक्षु में अविचलित ध्यान स्थापित हो जाता है। 316 हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु में अविचलित ध्यान स्थापित हो जाता है, उस समय उस भिक्षु में ध्यान का ज्ञानोदय तत्व जागृत हो जाता है; उस समय वह भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व का विकास करता है; उस समय ध्यान का ज्ञानोदय तत्व उस भिक्षु में विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

इस प्रकार ध्यान लगाकर (सतो) वह प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से उस धम्म का विवेक निरूपण करता है, उसकी परीक्षा लेता है, उसका अध्ययन करता है।" जब भी आनंद, जो इस प्रकार ध्यान (सतो) करते हुए निवास करने वाला भिक्षु है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से उस धम्म का विवेक करता है, उसकी जांच करता है, उसका अध्ययन करता है, उस अवसर पर भिक्षु में अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान जागृत होता है; उस अवसर पर भिक्षु में अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान विकसित होता है; उस अवसर पर भिक्षु में अवस्थाओं के विवेक (धम्मविचय) का ज्ञान विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जब कोई भिक्षु प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से धम्म का विवेक करता है, उसका परीक्षण करता है, उसकी जांच करता है, तो उसकी ऊर्जा (वीर्य) निरंतर जागृत रहती है। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु की ऊर्जा निरंतर जागृत रहती है क्योंकि वह अंतर्दृष्टि (पन्ना) से धम्म का विवेक करता है, उसका परीक्षण करता है, उसकी जांच करता है, उस समय भिक्षु में ऊर्जा (वीर्य) का प्रबुद्ध तत्व जागृत होता है; उस

समय भिक्षु में ऊर्जा (वीर्य) का प्रबुद्ध तत्व विकसित होता है; उस समय भिक्षु में ऊर्जा-शक्ति का प्रबुद्ध तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जब उसकी ऊर्जा जागृत होती है, तो उसमें निष्पाप (पवित्र) आनंद (पीति/प्रीति) उत्पन्न होता है। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु में, जिसकी ऊर्जा शक्ति जागृत होती है, निष्पाप (पवित्र) आनंद उत्पन्न होता है, उस समय भिक्षु में आनंद का प्रबुद्ध तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु आनंद के प्रबुद्ध तत्व (पीति/प्रीति) का विकास करता है; उस समय भिक्षु में आनंद का प्रबुद्ध तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जिसका मन परमानंद से उन्नत होता है, उसका शरीर और मन दोनों शांत हो जाते हैं। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु का मन परमानंद से उन्नत होता है और उसका शरीर और मन दोनों शांत हो जाते हैं, उस समय भिक्षु में शांति का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु में शांति के ज्ञानोदय तत्व का विकास होता है; उस समय भिक्षु में शांति का ज्ञानोदय तत्व विकसित होकर पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

जिसका शरीर शांत और प्रसन्न होता है, उसका मन समाधि अवस्था में पहुँच जाता है। हे आनंद, जब भी किसी शांत और प्रसन्न शरीर वाले भिक्षु का मन समाधि अवस्था में पहुँचता है, तो उस समय उस भिक्षु में समाधि अवस्था का ज्ञान जागृत होता है; उस समय वह समाधि अवस्था के ज्ञान का विकास करता है; उस समय वह समाधि अवस्था के ज्ञान की पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

वह समाधि अवस्था में लीन मन को समभाव (उपेक्ष संस्कृत: उपेक्षा) से निकट से देखता है। हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु समाधि अवस्था में लीन मन को समभाव (उपेक्खा) से देखता है, उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकसित होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु वेदनाओं पर ध्यान लगाकर, मन पर मन, और धर्म पर ध्यान केंद्रित करता है, तब उस भिक्षु में निर्मल ध्यान स्थापित हो जाता है। हे आनंद, जब भी किसी भिक्षु में निर्मल ध्यान स्थापित हो जाता है, तब उस भिक्षु में ध्यान का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय वह भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व का विकास करता है; उस समय ध्यान का ज्ञानोदय तत्व उस भिक्षु में विकास द्वारा पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

(यह सब ध्यान की प्रथम स्थापना के संदर्भ में ही समझाया जाना चाहिए।)

वह ऐसा व्यक्ति बन जाता है जो समाधि अवस्था में स्थित मन को समभाव से देखता है। हे आनंद, जब भी कोई भिक्षु समाधि अवस्था में स्थित मन को समभाव (उपेक्खा) से ध्यानपूर्वक देखता है, तब उस भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व जागृत होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकसित होता है; उस समय भिक्षु में समभाव (उपेक्खा) का ज्ञानोदय तत्व विकास द्वारा पूर्ण हो जाता है।

हे आनंद, जब ध्यान के चारों तत्व इस प्रकार विकसित और पोषित होते हैं, तभी वे ज्ञानोदय के सात तत्वों को पूर्ण करते हैं।

(iii. सच्चे ज्ञान और मुक्ति की पूर्ति)

हे आनंद, ज्ञानोदय के सात तत्वों को किस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है ताकि वे सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण कर सकें?

"यहाँ, आनंद, एक भिक्षु ध्यान के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है। वह धम्मविचय के ज्ञानोदय तत्व को विकसित करता है... वीरता के ज्ञानोदय तत्व को... पीति प्रीति के ज्ञानोदय तत्व को... शांति के ज्ञानोदय तत्व को... समाधि की अवस्था के ज्ञानोदय तत्व को... समभाव के ज्ञानोदय तत्व को, जो एकांत, वैराग्य और निरोध पर आधारित है, और मोक्ष की प्राप्ति में परिपक्व होता है।

आनंद, जब ज्ञानोदय के सातों तत्व इस प्रकार विकसित और पोषित होते हैं, तभी सच्चा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।"

990. आनंद (2)
तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने पूज्य आनंद से कहा,

"आनंद, क्या कोई एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसके विकास और अभ्यास से चार धर्मों (विशेषताओं, नियम) की पूर्ति होती है? और क्या चार धर्म ऐसे हैं, जिनके विकास और अभ्यास से सात धर्मों की पूर्ति होती है? और क्या सात धर्म ऐसे हैं, जिनके विकास और अभ्यास से दो धर्मों की पूर्ति होती है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"आनंद, एक धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर चार धर्म पूर्ण होते हैं; चार धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर सात धर्म पूर्ण होते हैं; और सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर दो धर्म पूर्ण होते हैं।

" "और आनंद, वह कौन सा धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर चार धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर सात धर्म पूर्ण होते हैं; और वे कौन से सात धर्म हैं, जिनका विकास और अभ्यास करने पर दो धर्म पूर्ण होते हैं?" आनंद, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) ही वह धर्म (गुण, नियम) है, जिसका विकास और अभ्यास करने पर ध्यान के चारों प्रतिष्ठान पूर्ण होते हैं। ध्यान की चारों अवस्थाएँ, जब विकसित और पोषित होती हैं, तो ज्ञान के सात कारकों को पूर्ण करती हैं। ज्ञान के सात कारक, जब विकसित और पोषित होते हैं, तो सच्चे ज्ञान और मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) को पूर्ण करते हैं।

"आनंद, श्वास ध्यान द्वारा समाधि (सम्मोहन) अवस्था को कैसे विकसित और पोषित किया जाता है ताकि यह ध्यान की चारों अवस्थाओं को पूर्ण करे?

" "यहाँ, आनंद, एक भिक्षु, जंगल में जाकर... (जैसा कि पिछले सूत्र में है, आगे भी)... आनंद, जब ज्ञान के सात कारकों को इस प्रकार विकसित और पोषित किया जाता है, तभी वे सच्चे ज्ञान और मुक्ति को पूर्ण करते हैं।"

---

991. भिक्षु (1)
(यह 989 के समान ही है, सिवाय इसके कि आनंद के स्थान पर "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।)

---

992. भिक्षु (2)
(यह 990 के समान ही है, सिवाय इसके कि आनंद के स्थान पर "कई भिक्षु" वार्ताकार हैं।)

---

993. बेड़ियाँ (संयोजनाप्पना सं. संयोग-प्राहन)
"भिक्षुओं (सन्यासियों) को श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में विकसित और अभ्यास करने से बंधनों का त्याग हो जाता है।"

---

994. अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ
"भिक्षुओं (साधुओं) को श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है, जब इसे विकसित और पोषित किया जाता है, तो यह अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) को जड़ से उखाड़ने की ओर ले जाती है।"

---

995. पाठ्यक्रम (अद्धनपरिन्ना)
"भिक्षुओं (साधुओं) को श्वास के ध्यान (सती) द्वारा समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है, जब इसे विकसित और पोषित किया जाता है, तो यह पाठ्यक्रम की पूर्ण समझ की ओर ले जाती है।"

---

996. अशुद्धियों का विनाश (असवक्खय सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, श्वास के ध्यान (सती) द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था, जब विकसित और अभ्यासित की जाती है, तो विकारों के नाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाती है।

और हे भिक्षुओं, श्वास के ध्यान द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था को कैसे विकसित और अभ्यासित किया जाए जिससे बंधनों का त्याग हो, अंतर्निहित प्रवृत्तियों (अनुसय) का उन्मूलन हो, मार्ग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो और विकारों का नाश हो?

"देखो, भिक्षुओं, एक भिक्षु जंगल में, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी खाली कुटिया में जाकर बैठ जाता है। वह अपने पैरों को क्रॉस करके, शरीर को सीधा करके, ध्यान की मुद्रा में बैठकर, सतीमा करते हुए श्वास लेता है और सतीमा करते हुए श्वास छोड़ता है... वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास लूंगा'; वह इस प्रकार अभ्यास करता है: 'त्याग पर ध्यान लगाते हुए, मैं श्वास छोड़ूंगा'।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार श्वास के ध्यान द्वारा समाधि की अवस्था विकसित और पोषित की जाती है, जिससे बंधनों का त्याग, अंतर्निहित प्रवृत्तियों का उन्मूलन, मार्ग का पूर्ण ज्ञान और दोषों का नाश होता है।"

अध्याय 11: धारा-प्रवेश पर संबंधित प्रवचन (सोतापत्तिसम्युत्त) {सम्युत्त-55}
(i) बांस गेट (वेलुद्वारावग्गो)
997. व्हील-टर्निंग मोनार्क (कैक्कवत्तीराजा सं. चक्रवर्ती-राजा)
सावत्थी में। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, यद्यपि एक चक्र-घुलने वाला सम्राट, जिसने चारों महाद्वीपों पर सर्वोच्च संप्रभु शासन किया है, 317 शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, एक अच्छे गंतव्य (सुगती), स्वर्गलोक में, तावतिंसा स्वर्ग के देवों (देवदूतों) की संगति में, और वहाँ नंदनवन (नंदनवन) में, अप्सराओं के दल के साथ, दिव्य इंद्रिय सुख के पाँच डोरों से युक्त होकर, स्वयं का आनंद लेता है, फिर भी, क्योंकि उसमें चार धर्म (गुण, नियम) नहीं हैं, वह नरक, पशुलोक और प्रेतों के लोक से मुक्त नहीं होता है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक से मुक्त नहीं होता है। 318 यद्यपि, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य भिक्षा के ढेर से अपना जीवन यापन करता है और चिथड़े-चिथड़े वस्त्र पहनता है, फिर भी, क्योंकि उसमें..." चार धर्मों से मुक्त होकर, वह नरक, पशुलोक और प्रेतों के लोक से मुक्त हो जाता है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त हो जाता है।

"वे चार क्या हैं? हे भिक्षुओं,
(1) श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 319 भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध (सम्मसंबुद्धो), सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण (विज्जाचरणसंपन्नो), सौभाग्यशाली (सुगतो), जगत के ज्ञाता (लोकविदु), अतुलनीय (अनुत्तरो), वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता (पुरिसदम्मसारथी), देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक (सत्थ देवमनुस्सनम्), प्रबुद्ध (बुद्धो), भगवान (भगवती) हैं।"

(2) "वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह से व्याख्या की गई है (स्वक्खतो), प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है (संदित्थिको), तत्काल उपलब्ध है (अकालिको), देखने के लिए आमंत्रित करता है (एहिपस्सिको), लागू करने योग्य है (ओपनेय्यिको), बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।'

(3) "वह संघ (भाईचारे) में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अभ्यास कर रहा है (सुप्पतिपन्नो), सीधे मार्ग का अभ्यास कर रहा है (उजुप्पतिपन्नो), सच्चे मार्ग का अभ्यास कर रहा है (नयप्पतिपन्नो), उचित मार्ग का अभ्यास कर रहा है (सामिच्चिप्पतिपन्नो); अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान (अहुनेय्यो), आतिथ्य (पहुनेय्यो), भेंट (दक्खिनय्यो), हाथ जोड़कर (आदरपूर्वक) प्रणाम (अंजलिकारणियो) के योग्य है, और संसार के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र (अनुत्तरम पुन्नक्खेतम) है।

(4) "वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों (5 पंचशील - सत्य, अहिंसा, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, नशीले पदार्थों का सेवन न करना) से युक्त है - अटूट, अविभाजित, निष्कलंक, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाला। 320

"उसके पास ये चारों धर्म हैं। और, भिक्षुओं, चारों महाद्वीपों पर प्रभुत्व प्राप्त करने और चारों धर्मों को प्राप्त करने में से, चारों महाद्वीपों पर प्रभुत्व प्राप्त करना, चारों धर्मों को प्राप्त करने के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है।" 321

---

998. ब्रह्मचर्य में दृढ़ (ब्रह्मचरयोगधा)
भिक्षुओं, चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य सोतापन्न कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर स्थिर भाग्य वाला होता है और जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय होता है। 322 "वे

चार क्या हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियमों) में ... संघ में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से अविभाजित है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है (जैसा कि 997 में है)।

"भिक्षुओं, इन चार धर्मों से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य सोतापन्न कहलाता है, जो पाताल लोक से मुक्त होकर स्थिर भाग्य वाला होता है और जिसका लक्ष्य ज्ञानोदय होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। इसके बाद, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जिनके पास आस्था और सद्‌गुण (शील) हैं, जो
धर्म (मार्ग, नियम) के प्रति विश्वास और दृष्टि रखते हैं, वे समय आने पर पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन पर आधारित

सुख (सुख) प्राप्त करते हैं ।" 323

---

999. दिघावु
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय दिघावु नामक गृहस्थ अनुयायी बीमार और विक्षिप्त था। तब दिघावु ने अपने पिता, गृहस्थ ज्योतिका से कहा, "हे गृहस्थ, आइए भगवान (बुद्ध) के पास जाइए, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम कीजिए और कहिए, 'हे आदरणीय महोदय, दिघावु नामक गृहस्थ अनुयायी बीमार और विक्षिप्त है; वह भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करता है।'" फिर कहिए: “हे पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) करुणावश गृहस्थ भक्त दिघावु के निवास पर आएँ तो अच्छा होगा।”

“जी हाँ,” गृहस्थ ज्योतिका ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और अपना संदेश दिया। भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

फिर भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर गृहस्थ भक्त दिघावु के निवास पर गए। वे नियत आसन पर बैठ गए और गृहस्थ भक्त दिघावु से कहा:
“मुझे आशा है कि दिघावु, तुम स्वस्थ हो, तुम्हें लाभ हो रहा है। मुझे आशा है कि तुम्हारी पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही महत्वपूर्ण है, न कि उनका बढ़ना।”

"आदरणीय महोदय, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मेरी हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनका बढ़ना ही स्पष्ट है, कम होना नहीं।"

"इसलिए, दिघावु, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने वाला बनूँगा,
जैसा कि (997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। मैं धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखने वाला बनूँगा ... संघ (भाईचारे) में ... मैं श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करने वाला बनूँगा ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के इन चार कारकों के अनुसार, ये धर्म (गुण, नियम) मुझमें विद्यमान हैं और मैं इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करता हूँ। क्योंकि, आदरणीय महोदय, मुझे बुद्ध में, धर्म में और संघ में दृढ़ विश्वास है। ... मुझमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान हैं, जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।"

अतः, दिघावु, धारा-प्रवेश के इन चार कारकों पर स्थापित होकर, आपको सच्चे ज्ञान से युक्त छह अन्य धर्मों का विकास करना चाहिए। यहाँ, दिघावु, सभी संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) में अनित्यता (अनित्यता) पर ध्यानपूर्वक चिंतन करें, अनित्य में दुख का

अनुभव करें, दुख में अनात्म का अनुभव करें, परित्याग का अनुभव करें, लुप्त होने का अनुभव करें और निरोध का अनुभव करें। 324 इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए सच्चे ज्ञान के इन छह धर्मों के संबंध में, ये धर्म मुझमें विद्यमान हैं और मैं इन्हीं धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करता हूँ। आदरणीय महोदय, मैं सभी संस्कारों में अनित्यता का ध्यान (अनुपस्सी) लगाता हूँ, अनित्य में दुख का अनुभव करता हूँ, दुख में अनात्म का अनुभव करता हूँ, त्याग का अनुभव करता हूँ, क्षीण होने का अनुभव करता हूँ और अंत का अनुभव करता हूँ। परन्तु आदरणीय महोदय, मेरे मन में यह विचार आता है: 'मेरे जाने के बाद, यह गृहस्थ ज्योतिका व्यथित न हो जाए।' "

इस बात की चिंता मत करो, प्रिय दिघावु। आओ, प्रिय दिघावु, भगवान (बुद्ध) जो तुमसे कह रहे हैं, उस पर ध्यान दो।"

तब भगवान (बुद्ध) ने अपने गृहस्थ शिष्य दिघावु को यह उपदेश देकर अपने आसन से उठकर प्रस्थान किया। फिर, भगवान (बुद्ध) के जाने के कुछ ही समय बाद, गृहस्थ शिष्य दिघावु का निधन हो गया।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"आदरणीय, भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षिप्त उपदेश दिए गए दिघावु नामक गृहस्थ शिष्य का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा?"

"भिक्षुओं, गृहस्थ शिष्य दिघावु बुद्धिमान थे। उन्होंने धर्म (मार्ग/नियम) के अनुसार अभ्यास किया और धर्म के कारण मुझे कष्ट नहीं दिया। भिक्षुओं, पांच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के साथ गृहस्थ शिष्य दिघावु स्वतः जन्म लेने वाले हो गए हैं, और उस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त करेंगे।"

1000. सारिपुत्त (1)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य आनंद सावत्थी में जेतवन (जेतवन) में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य आनंद एकांतवास से बाहर आए... एक तरफ बैठकर पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त से कहा:

"मित्र सारिपुत्त, भगवान (बुद्ध) द्वारा जिन लोगों को सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) घोषित किया गया है, वे किन गुणों के कारण पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य मानते हैं?"

"हे मित्र आनंद, चार धर्मों (गुणों, नियमों) के धारण के कारण ही भगवान (बुद्ध) ने लोगों को धारा-प्रवेशक घोषित किया है, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य स्थिर है और जिनका गंतव्य ज्ञान है। वे चार कौन से हैं? (जैसा कि 997 में है) यहाँ, मित्र, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियम) में ... संघ में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।

"हे मित्र, इन्हीं चार धर्मों के धारण के कारण ही भगवान (बुद्ध) ने लोगों को धारा-प्रवेशक घोषित किया है, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य स्थिर है और जिनका गंतव्य ज्ञान है।"

1001. सारिपुत्त (2)
तब पूज्य सारिपुत्त भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"सारिपुत्त, यह कहा जाता है: 'सोतापत्ति का कारक, सोतापत्ति का कारक।' सारिपुत्त, सोतापत्ति का कारक क्या है?" "हे

पूज्यवर, श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति सोतापत्ति का कारक है। सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) को सुनना सोतापत्ति का कारक है। ध्यानमग्नता सोतापत्ति का कारक है। धम्म के अनुसार अभ्यास सोतापत्ति का कारक है।" 325

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! सारिपुत्त, श्रेष्ठ व्यक्तियों का साथ धारा में प्रवेश का कारक है। सच्चे धम्म को सुनना धारा में प्रवेश का कारक है। ध्यानमग्नता (योनिषे) धारा में प्रवेश का कारक है। धम्म के अनुसार अभ्यास धारा में प्रवेश का कारक है।

" "सारिपुत्त, यह कहा गया है: 'धारा, धारा।' अब, सारिपुत्त, धारा क्या है?"

"यह आर्य अष्टांगिक मार्ग, आदरणीय महोदय, धारा है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग धारा है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

"सारिपुत्त, यह कहा गया है: 'धारा में प्रवेश करने वाला (सोतापन्न), धारा में प्रवेश करने वाला।" सारिपुत्त, अब आप समझिए, 'सोतापन्न' किसे कहते हैं?

"हे पूज्यवर, जो इस अष्टमार्ग का अनुसरण करता है, उसे ही 'सोतापन्न' कहते हैं: इस नाम और कुल के पूज्यवर।"

"बहुत खूब, सारिपुत्त! जो इस अष्टमार्ग का अनुसरण करता है, वही 'सोतापन्न' कहलाता है: इस नाम और कुल के पूज्यवर।"

1002. चेम्बरलेन्स (थापति)
सावत्थी में। उस समय कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे थे, यह सोचकर कि "तीन महीने बाद, जब उनका वस्त्र तैयार हो जाएगा, तो भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकलेंगे।"

उसी समय, दरबारी 326 इसिदत्ता और पुराण किसी काम से साधुका में ठहरे हुए थे। उन्होंने सुना, "कहा जाता है कि कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे हैं, यह सोचकर कि तीन महीने बाद, जब उनका वस्त्र तैयार हो जाएगा, तो भगवान (बुद्ध) भ्रमण पर निकलेंगे।"

तब दरबारी इसिदत्ता और पुराण ने एक व्यक्ति को रास्ते में खड़ा कर दिया और उससे कहा, "हे जन, जब तुम भगवान (बुद्ध) को आते हुए देखो, जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, तो हमें सूचित करना।" दो-तीन दिन खड़े रहने के बाद उस व्यक्ति ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते हुए देखा। उन्हें देखकर वह व्यक्ति दरबारी इसिदत्ता और पुराण के पास गया और उनसे कहा, "महोदय, यह भगवान (बुद्ध) आ रहे हैं, जो अरहंत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं। आप अपनी सुविधानुसार आ सकते हैं।"

तब दरबारी इसिदत्ता और पुराण भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनके पीछे-पीछे चलने लगे। फिर भगवान (बुद्ध) मार्ग छोड़कर एक वृक्ष की छाया में गए और उनके लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। दरबारी इसिदत्ता और पुराण ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती से कोसलों के बीच भ्रमण के लिए निकलेंगे, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर दुःख और असंतोष उत्पन्न होता है कि भगवान (बुद्ध) हमसे दूर रहेंगे।" फिर जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती से कोसलों के बीच भ्रमण के लिए निकल पड़े हैं, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर दुःख और अप्रसन्नता उत्पन्न होती है: 'भगवान (बुद्ध) हमसे दूर हैं।'

"आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) कोसलों के बीच से मल्लीय देश के भ्रमण के लिए निकलेंगे... कि वे कोसलों के बीच से मल्लीय देश के भ्रमण के लिए निकल पड़े हैं... कि वे मल्लीयों के बीच से वज्जीय देश के भ्रमण के लिए निकलेंगे..." जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) मल्लियों में से वज्जिया देश की यात्रा पर निकले हैं... जब हम वज्जियाओं में से कसिया देश की यात्रा पर निकलेंगे... जब हम यह सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) कसियाओं में से मगध की यात्रा पर निकले हैं, तो हमारे मन में यह सोचकर अत्यंत दुःख और अप्रसन्नता उत्पन्न होती है:
'भगवान (बुद्ध) हमसे दूर रहेंगे।'

लेकिन, आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच से कसिअन देश की यात्रा पर निकलेंगे, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर उमंग और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट होंगे।' फिर जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) मगधियों के बीच से कसिअन देश की यात्रा पर निकल चुके हैं, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर उमंग और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट हैं।'

इसके अलावा, आदरणीय महोदय, जब हम सुनते हैं कि भगवान (बुद्ध) कसिअनियों के बीच से वज्जिअन देश की यात्रा पर निकलेंगे... कि वे कसिअनियों के बीच से वज्जिअन देश की यात्रा पर निकल चुके हैं... कि वे वज्जिअनियों के बीच से मल्लीय देश की यात्रा पर निकलेंगे... जब हमें पता चलता है कि भगवान वज्जियों में से मल्लियन देश की यात्रा पर निकले हैं... जब हमें पता चलता है कि भगवान मल्लियनों में से कोसल की यात्रा पर निकलेंगे... जब हमें पता चलता है कि भगवान कोसल के लोगों में से सावत्थी की यात्रा पर निकलेंगे, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर अपार हर्ष और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट होंगे।' हे पूज्यवर, जब हम सुनते हैं कि भगवान सावत्थी में, जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे हैं, तो उस अवसर पर हमारे मन में यह सोचकर अपार हर्ष और आनंद उत्पन्न होता है: 'भगवान (बुद्ध) हमारे निकट हैं।'

अतः, गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल भरा मार्ग है। दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। " हे दरबारी, आपके लिए बस सतर्क रहना ही काफी है (अप्पमदा)।"

"आदरणीय महोदय, हम एक और बंधन के अधीन हैं जो पहले वाले से भी अधिक बंधनकारी है और माना जाता है।" "

परन्तु, हे दरबारी, वह दूसरा बंधन क्या है जिसके आप अधीन हैं, जो पहले वाले से भी अधिक बंधनकारी है और माना जाता है?"

"हे दरबारी महोदय, जब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) अपने आनंद उद्यान में भ्रमण करना चाहते हैं, तो उनके हाथियों को तैयार करने के बाद हमें राजा की प्रिय और प्रिय पत्नियों को उनके आसनों पर, एक आगे और एक पीछे, बिठाना होता है। अब, हे दरबारी महोदय, उन महिलाओं की सुगंध एक सुगंधित डिब्बे की तरह होती है जिसे कुछ देर के लिए खोला गया हो; ऐसा ही उन शाही महिलाओं के साथ होता है जो इत्र लगाती हैं। साथ ही, हे दरबारी महोदय, उन महिलाओं का शारीरिक स्पर्श रुई के गुच्छे जैसा होता है; ऐसा ही उन शाही महिलाओं के साथ होता है जिन्हें इतनी कोमलता से पाला-पोसा जाता है।" अब उस अवसर पर, आदरणीय महोदय, हाथियों की रक्षा करनी होगी, उन महिलाओं की रक्षा करनी होगी, और हमारी भी रक्षा करनी होगी, फिर भी हमें उन महिलाओं के प्रति कभी भी कोई दुर्भावना उत्पन्न करने का आशय नहीं है। आदरणीय महोदय, यह वह दूसरा बंधन है जिसके हम अधीन हैं, जो पहले वाले बंधन से भी अधिक कठोर है और कठोर माना जाता है।

इसलिए, हे दरबारियों, गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल का मार्ग है। दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। हे दरबारियों, आपके लिए बस सतर्क रहना ही पर्याप्त है। हे दरबारियों, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियम) से युक्त है, सोतापन्न है, पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर है, और ज्ञान ही उसका गंतव्य है। वे

चार क्या हैं? हे दरबारियों, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारा) में... वह कंजूसी के दाग से मुक्त मन से घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंद लेने वाला, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में आनंद लेने वाला। 327 इन चार धर्मों को धारण करने वाला एक श्रेष्ठ शिष्य धारा-प्रवेशक होता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, नियति में स्थिर होता है, जिसका गंतव्य ज्ञान है।

"चैंबरलेन, आप बुद्ध में... धम्म में... संघ में दृढ़ विश्वास रखते हैं... इसके अलावा, आपके परिवार में जो कुछ भी दान देने योग्य है, उसे आप बिना किसी संकोच के गुणी और अच्छे चरित्र वाले लोगों में बाँट देते हैं। बढ़ई, आप क्या सोचते हैं, कोसलन में कितने लोग आपके समान हैं, अर्थात् दान देने और साझा करने के मामले में?"

"हे पूज्यवर, यह हमारे लिए लाभ की बात है, हे पूज्यवर, कि भगवान (बुद्ध) हमें इतनी अच्छी तरह समझते हैं।"

1003. बांस द्वार के लोग (वेलुडवरेय्या)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ कोसलवासियों के बीच भ्रमण कर रहे थे, जब वे कोसलवासियों के एक ब्राह्मण गाँव में पहुँचे जिसका नाम बैम्बू गेट था। तब बांस द्वार के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: “हे महोदय, ऐसा कहा जाता है कि शाक्य वंश से निकले शाक्य पुत्र तपस्वी गौतम, भिक्षुओं के एक विशाल संघ के साथ कोसल पर्वतमाला में भ्रमण कर रहे थे और बांस द्वार पहुँच गए हैं। अब उस गुरु गौतम के विषय में यह शुभ सूचना फैली है कि भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय गुरु हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। उन्होंने अपने दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इस

संसार को इसके देवताओं (देवदूतों), मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहित, इस पीढ़ी को इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों सहित, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, जान लिया है और इसे दूसरों को भी बता रहे हैं। वे एक ऐसे धर्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देते हैं जो आरंभ में अच्छा है और अंत में भी अच्छा है। मध्य मार्ग, अंत में उत्तम, सही अर्थ और शब्दों के साथ; वे एक पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य जीवन का प्रकटीकरण करते हैं। ऐसे अरहंतों को देखना सुखद है।

फिर बाँस द्वार के वे ब्राह्मण गृहस्थ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। पहुँचकर कुछ ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप करके एक तरफ बैठ गए। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने भगवान (बुद्ध) को अपना नाम और कुल बताया और एक तरफ बैठ गए। कुछ मौन रहे और एक तरफ बैठ गए।

बाँस द्वार के उन ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

“हे गुरु गौतम, हमारी ऐसी इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और आशाएँ हैं: ‘हम बच्चों से भरे घर में निवास करें! हम काशियन चंदन का आनंद लें! हम मालाएँ, सुगंध और लेप धारण करें! हमें सोना और चाँदी प्राप्त हो! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन से हम एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लें!’ हमारी ऐसी इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और आशाएँ हैं, इसलिए हे गुरु गौतम, हमें धम्म का ऐसा उपदेश दें कि हम बच्चों से भरे घर में निवास कर सकें (जैसा कि पहले था) और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन से हम एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लें।” “

मैं तुम्हें, गृहस्थों, अपने लिए उपयुक्त धम्म की व्याख्या सिखाऊँगा। 328 इसे सुनो और ध्यान रखो (मनसिकारो), मैं बोलूँगा।”

"जी जी," बांस द्वार के उन ब्राह्मण गृहस्थों ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

गृहस्थों, धम्म की व्याख्या स्वयं पर कैसे लागू होती है? गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सोचता है: 'मैं वह हूँ जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता; मैं सुख चाहता हूँ और दुख से विमुख हूँ। क्योंकि मैं जीने की इच्छा रखता हूँ और दुख से विमुख हूँ, इसलिए यदि कोई मेरा प्राण ले ले, तो यह मुझे प्रसन्न नहीं करेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे का प्राण ले लूँ - जो जीने की इच्छा रखता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और दुख से विमुख है - तो यह भी उसे प्रसन्न नहीं करेगा। जो मुझे अप्रिय है, वह दूसरे को भी अप्रिय है। मैं दूसरे पर वह कैसे थोप सकता हूँ जो मुझे अप्रिय है?' ऐसा सोचकर वह स्वयं प्राण-क्षय से विरक्त रहता है, दूसरों को प्राण-क्षय से विरक्त रहने का उपदेश देता है और प्राण-क्षय से विरक्त रहने की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह शारीरिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है। 329

"फिर, हे गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सोचता है: 'यदि कोई मुझसे वह ले ले जो मैंने नहीं दिया, अर्थात् चोरी करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे से वह ले लूँ जो उसने नहीं दिया, अर्थात् चोरी करूँ, तो यह भी दूसरे को अप्रिय लगेगा। जो मुझे अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय लगता है। मैं दूसरे पर वह कैसे थोप सकता हूँ जो मुझे अप्रिय लगता है?' ऐसा सोचकर वह स्वयं अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज़ करता है, दूसरों को भी अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज़ करने का निर्देश देता है, और अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज़ की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह शारीरिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

“फिर, हे गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य सोचता है: ‘यदि कोई मेरी पत्नियों के साथ व्यभिचार करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे की पत्नियों के साथ व्यभिचार करूँ, तो यह दूसरे को भी अप्रिय लगेगा। जो मुझे अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय लगता है। मैं दूसरे पर वह कैसे थोप सकता हूँ जो मुझे अप्रिय लगता है?’ ऐसा सोचकर वह स्वयं यौन दुराचार से परहेज़ करता है, दूसरों को भी यौन दुराचार से परहेज़ करने का निर्देश देता है, और यौन दुराचार से परहेज़ की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह शारीरिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

"फिर, गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सोचता है: 'यदि कोई मेरे कल्याण को झूठे वचनों से हानि पहुँचाए, तो यह मुझे प्रसन्न और स्वीकार्य नहीं होगा। अब यदि मैं किसी दूसरे के कल्याण को झूठे वचनों से हानि पहुँचाऊँ, तो यह उसे भी प्रसन्न और स्वीकार्य नहीं होगा। जो मुझे अप्रिय और अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय और अप्रिय लगता है। मैं दूसरे को वह कैसे पीड़ित कर सकता हूँ जो मुझे अप्रिय

और अप्रिय लगता है?' ऐसा सोचकर वह स्वयं झूठे वचनों से दूर रहता है, दूसरों को भी झूठे वचनों से दूर रहने की शिक्षा देता है, और झूठे वचनों से दूर रहने की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह मौखिक आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

"फिर, गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य सोचता है: 'यदि कोई मुझसे कठोर शब्दों में बात करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे से कठोर शब्दों में बात करूँ, तो यह भी उसे अप्रिय लगेगा...' इस प्रकार उसका यह वाणीगत आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।

फिर, गृहस्थों, एक श्रेष्ठ शिष्य सोचता है: 'यदि कोई मुझसे निरर्थक और व्यर्थ की बातों में बात करे, तो यह मुझे अप्रिय लगेगा। अब यदि मैं किसी दूसरे से निरर्थक और व्यर्थ की बातों में बात करूँ, तो यह भी उसे अप्रिय लगेगा। जो मुझे अप्रिय लगता है, वह दूसरे को भी अप्रिय लगता है। मैं दूसरे को वह कष्ट कैसे दे सकता हूँ जो मुझे अप्रिय लगता है?' यह सोचकर वह स्वयं व्यर्थ की बातों से दूर रहता है, दूसरों को भी व्यर्थ की बातों से दूर रहने की शिक्षा देता है, और व्यर्थ की बातों से दूर रहने की प्रशंसा करता है। इस प्रकार उसका यह वाणीगत आचरण तीन प्रकार से शुद्ध हो जाता है।"

"(जैसा कि 997 में है) बुद्ध में उनका दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' [356] उनका धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है ... संघ (भाईचारे) में .... उनमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं, जो अटूट हैं ... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"जब, गृहस्थों, श्रेष्ठ शिष्य इन सात अच्छे गुणों और इन चार वांछनीय अवस्थाओं को धारण कर लेता है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो गया हूँ, पशु जगत से मुक्त हो गया हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो गया हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो गया हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो गया हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो गया हूँ। मैं सोतापन्न हूँ, अब पाताल लोक से बंधा नहीं हूँ, भाग्य में स्थिर हूँ। ज्ञान प्राप्ति ही मेरा लक्ष्य है।

यह सुनकर बाँस द्वार के ब्राह्मण गृहस्थों ने कहा, "हे महान गुरु गौतम!... हम गुरु गौतम, धर्म और भिक्षु संघ की शरण में जाते हैं। आज से भगवान (बुद्ध) हमें जीवन भर के लिए शरण लेने आए गृहस्थ अनुयायियों के रूप में याद रखें।"

1004. ईंटों का हॉल (1) (गिंजकवासथा1)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। 330 एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंट के हॉल में निवास कर रहे थे। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, सलहा नामक भिक्षु का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा? नंदा नामक भिक्षुणी का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा? सुदत्त नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा? सुजाता नामक स्त्री गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका गंतव्य क्या है, उनका भविष्य में पुनर्जन्म क्या होगा?"

"आनंद, भिक्षु सलहा, जिनका निधन हो गया, ने इसी जीवन में विकारों के नाश (खया/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (चेतो-विमुक्ति) में प्रवेश किया और निवास किया, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न-विमुक्ति) द्वारा मुक्ति प्राप्त की, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव किया। भिक्षुणी नंदा, जिनका निधन हो गया, ने पांच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश के साथ स्वतः जन्म लेने वाले बन गए, और इस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त कर लिया। सुदत्त, जिनका निधन हो गया, ने तीन बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) और मोह (मोह) के कम होने के साथ एक बार पुनर्जन्म लेने वाले बन गए, जो इस लोक में केवल एक बार फिर (सकदागामी) आकर दुखों का अंत करेंगे।" 331 सुजाता नाम की जिस स्त्री का निधन हो गया, उसने तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ सोतापण (धारा-प्रवेशक) का दर्जा प्राप्त कर लिया था, वह अब पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य बना चुकी थी।

"आनंद, मनुष्य की मृत्यु होना आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु यदि प्रत्येक बार किसी की मृत्यु होने पर तुम मेरे पास आकर इस विषय पर प्रश्न करो, तो तथागत के लिए यह कष्टदायी होगा। इसलिए, आनंद, मैं तुम्हें धर्म का दर्पण नामक धर्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या सिखाऊंगा, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि वह चाहे, तो स्वयं अपने बारे में यह कह सकता है:
'मैं नरक से मुक्त हो चुका हूं, पशु लोक से मुक्त हो चुका हूं, प्रेतों के लोक से मुक्त हो चुका हूं, दुख के लोक से मुक्त हो चुका हूं, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो चुका हूं, पाताल लोक से मुक्त हो चुका हूं। मैं सोतापण (धारा-प्रवेशक) हूं, अब पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य बना चुका हूं।'

"और हे आनंद, वह धम्म व्याख्या क्या है, धम्म का दर्पण क्या है, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि चाहे तो, स्वयं अपने बारे में इस प्रकार कह सकता है? हे आनंद, यहाँ एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: (जैसा कि 997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धम्म में ... संघ (भाईचारे) में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है..." जिससे समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है।

"आनंद, यही वह धम्म व्याख्या है, धम्म का दर्पण है, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि चाहे तो, स्वयं अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ... मैं सोतापन्न हूँ, अब पाताल लोक से बंधा हुआ नहीं, नियति में स्थिर, और ज्ञान ही मेरा गंतव्य है।"

1005. ईंटों का हॉल (2) (गिंजकवासथा2)
एक तरफ बैठे हुए पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"पूज्यवर, अशोक नामक भिक्षु का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा? अशोक नामक भिक्षुणी का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा? अशोक नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा? अशोक नामक स्त्री गृहस्थ अनुयायी का निधन हो गया है। उनका भविष्य क्या होगा, उनका पुनर्जन्म क्या होगा?"

"आनंद, भिक्षु अशोक, जो अपने सभी दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा इस जीवन में ही मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, विमुक्ति संस्कृत) में प्रवेश किया और निवास किया, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्ति प्राप्त की, और दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से स्वयं इसका अनुभव किया... (बाकी सब पिछले सूत्र 1004 के समान है)...

"आनंद, यह वह धम्म (मार्ग, नियम) व्याख्या है, धम्म का दर्पण है, जिससे सुसज्जित एक श्रेष्ठ शिष्य, यदि वह चाहे, तो स्वयं अपने बारे में यह घोषणा कर सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ... मैं सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) हूँ, अब पाताल लोक से बंधा नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, और ज्ञान ही मेरा गंतव्य है।'"

1006. ईंटों का हॉल (3) (गिंजकवासथा3)
एक तरफ बैठे हुए पूज्य आनंद ने भगवान (बुद्ध) से कहा,

"पूज्यवर, नाटिका में कक्कटा नामक पुरुष अनुयायी की मृत्यु हो गई है। उनका गंतव्य क्या है, उनका अगला जन्म क्या होगा? नाटिका में कलिंग, निकता, कटिसाहा, तुत्था, संतुत्था, भद्दा और सुभद्दा नामक पुरुष अनुयायी की भी मृत्यु हो गई है। उनका गंतव्य क्या है, उनका अगला जन्म क्या होगा?"

"आनंद, जो कक्कटा नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी थे और जिनकी मृत्यु हो गई, पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) से वे स्वतः जन्म लेकर निर्वाण को प्राप्त कर चुके थे, और इस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त कर लिया था। इसी प्रकार कलिंग, निकता, कटिसाहा, तुत्था, संतुत्था, भद्दा और सुभद्दा नामक पुरुष गृहस्थ अनुयायी भी इसी प्रकार

मृत हुए। नाटिका में पचास से अधिक पुरुष गृहस्थ अनुयायी भी पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण नाश (खयाल) से मुक्त होकर स्वतः जन्म लेकर निर्वाण को प्राप्त कर चुके थे, और इस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना वहीं निर्वाण प्राप्त कर लिया था।" नाटिका में मरने वाले नब्बे वर्ष से अधिक आयु के पुरुष गृहस्थ अनुयायी, तीनों बंधनों के पूर्ण नाश और लोभ (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से, एक बार पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) बन गए हैं, जो इस संसार में केवल एक बार फिर आकर दुखों का अंत करेंगे। नाटिका में मरने वाले पाँच सौ छह पुरुष गृहस्थ अनुयायी, तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, सोतापन्न बन गए हैं, जो अब परलोक से बंधे नहीं हैं, और ज्ञानोदय को अपने गंतव्य के रूप में लेकर नियति में स्थिर हो गए हैं। 332

"आनंद, मनुष्य की मृत्यु होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु यदि प्रत्येक बार किसी की मृत्यु होने पर तुम मेरे पास आकर इस विषय पर प्रश्न करो, तो तथागत को कष्ट होगा। इसलिए, आनंद, मैं तुम्हें धर्म का दर्पण नामक धर्म (मार्ग, नियम) की व्याख्या सिखाऊंगा...

" "और आनंद, वह धर्म की व्याख्या, धर्म का दर्पण क्या है...?"

(सूत्र 1004 का शेष भाग)

(ii) हजार गुना राजकारमा उद्यान

1007 हजार भिक्षुणियों का संघ (सहसभिक्खुनीसंघ)

एक बार भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में राज उद्यान में निवास कर रहे थे। तब एक हजार भिक्षुणियों का एक संघ भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया। भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुणियों से कहा:

"भिक्षुणियों, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त है, सोतापन्न है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं है, जिसका भाग्य स्थिर है, और जिसका गंतव्य ज्ञान है। वे चार धर्म कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुणियों, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है... संघ में... उनमें श्रेष्ठ पुरुषों के प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान हैं... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"भिक्षुण शिष्या, हे भिक्षुणियों, जो इन चार धर्मों को धारण करती है, वह धारा में प्रवेश करने वाली है, अधोलोक से मुक्त है, नियति में स्थिर है, और ज्ञानोदय ही उसका गंतव्य है।"

1008. ब्राह्मण

सावत्थी में, "भिक्षुओं, ब्राह्मण 'ऊपर की ओर जाने' नामक एक मार्ग का प्रचार करते हैं। वे शिष्य को इस प्रकार उपदेश देते हैं: 'हे हे जन, सुबह जल्दी उठो और पूर्व दिशा की ओर मुख करके चलो। किसी गड्ढे, चट्टान, पेड़ के ठूंठ, काँटेदार जगह, गाँव के तालाब या गंदे नाले से मत बचो। तुम जहाँ भी गिरोगे, मृत्यु को स्वीकार करोगे। इसलिए, हे जन, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, तुम्हारा पुनर्जन्म एक अच्छे स्थान (सुगति) में, स्वर्गलोक में होगा।

" अब ब्राह्मणों, भिक्षुओं का यह अभ्यास बचकाना (नासमझ) मार्ग है, मूर्खतापूर्ण मार्ग है; यह निर्विरोध, वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जाता। लेकिन मैं, भिक्षुओं, परम पूज्य के अनुशासन में ऊपर की ओर जाने वाले मार्ग की घोषणा करता हूँ, वह मार्ग जो पूर्ण घृणा, वैराग्य, निश्चिंतता, शांति, दिव्य ज्ञान, प्रबुद्धता और निर्वाण की ओर ले जाता है।

"और हे भिक्षुओं, वह ऊपर की ओर जाने वाला मार्ग क्या है, जो पूर्ण घृणा (निब्बिद) ... निर्वाण की ओर ले जाता है? (जैसा कि 997 में है) यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है... संघ (भाईचारा) में... उनमें श्रेष्ठों के प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान हैं... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"यह, भिक्षुओं, ऊपर की ओर जाने वाला वह मार्ग है, जो पूर्ण वैराग्य, वैराग्य, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।"

1009. वरिष्ठ भिक्षु आनंद

एक बार पूज्य आनंद और पूज्य सारिपुत्त सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए, पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य आनंद से कहा,

“मित्र आनंद, कितने धर्मों का त्याग करने और कितने धर्मों का पालन करने के कारण भगवान (बुद्ध) ने लोगों के बारे में कहा है: 'यह सोतापन्न है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं है, जिसका भाग्य निश्चित है और जिसका गंतव्य ज्ञान है'?”

"मित्र, चार धर्मों के त्याग और चार धर्मों के पालन के कारण ही भगवान (बुद्ध) लोगों को ऐसा घोषित करते हैं। वे चार धर्म कौन से हैं?

मित्र, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में बुद्ध के प्रति जो अविश्वास होता है, वह किसी में नहीं होता, जिसके कारण शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद वह दुख के लोक में, बुरे भाग्य में, नरक में पुनर्जन्म लेता है।" और व्यक्ति को बुद्ध में वह दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है जो एक ज्ञानी शिष्य को होता है, जिसके कारण शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे गंतव्य (सुगती), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है: भगवान (बुद्ध) देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। (जैसा कि 997 में है) '

व्यक्ति को धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति वह अविश्वास नहीं होता जो एक अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को होता है, जिसके कारण शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह दुख के लोक में, एक बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। और व्यक्ति को धम्म में वह दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है जो एक ज्ञानी शिष्य को होता है, जिसके कारण शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे गंतव्य (सुगती), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी तरह से व्याख्या की गई है ... जिसे बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना चाहिए।'

"जिस प्रकार का अविश्वास अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में संघ के प्रति होता है, वह उसमें नहीं होता; इसी अविश्वास के कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में होता है। वहीं, जिस प्रकार का दृढ़ विश्वास ज्ञानी शिष्य में होता है, वही उसमें संघ के प्रति होता है; इसी कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्ग लोक में होता है। भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण करता है... संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र है।"

"मित्र, मनुष्य में वह अनैतिकता नहीं होती जो अज्ञानी सांसारिक में पाई जाती है, जिसके कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म दुख के लोक में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में होता है। और मनुष्य में वे गुण होते हैं जो ज्ञानी शिष्य में पाए जाते हैं, जिसके कारण शरीर के क्षोभ के बाद मृत्यु में उसका पुनर्जन्म अच्छे गंतव्य (सुगति) में, स्वर्ग लोक में होता है: वे गुण जो श्रेष्ठों को प्रिय हैं... समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं।

"मित्र, इन्हीं चार धर्मों के त्याग और इन्हीं धर्मों के पालन के कारण भगवान (बुद्ध) ने लोगों के बारे में कहा है: 'यह सोतापन्न है, पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर है, और इसका गंतव्य ज्ञान है।'"

1010. बुरी नियति का भय (1) (दुग्गतिभय1 सं. दुर्गति-भाय)
भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) का पालन करता है, बुरे भाग्य के भय से मुक्त हो जाता है। वे चार धर्म कौन से हैं? यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: (जैसा कि 997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियमों) में ... संघ (भाईचारे) में ... दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है। वह श्रेष्ठ शिष्य जो इन चार धर्मों का पालन करता है, बुरे भाग्य के भय से मुक्त हो जाता है।

1011. बुरी नियति में गिरने का भय (2) (दुग्गतिविनिपताभया)
"भिक्षुओं, चार धर्मों का ज्ञाता श्रेष्ठ शिष्य परलोक के भय से मुक्त हो जाता है। वे चार धर्म कौन से हैं?"

(पिछली सूत्र और 997 में दिए गए विवरण के अनुसार पूर्ण)

1012. मित्र और सहकर्मी (1) (मिट्टामक्का1)
"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो इस बात से अवगत हैं कि आपकी बात सुनी जानी चाहिए - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सगे-संबंधी - आप उन्हें सोतापत्ति (धारा-प्रवेश) के चार कारकों में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।

वे चार कौन से हैं? (जैसा कि 997 में है) आपको उन्हें बुद्ध में दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और स्थापित करना चाहिए, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' आपको उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में ... संघ में ... श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों में, अटूट ... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाले दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और स्थापित करना चाहिए।

जिन पर आपको दया आती है ... आप उन्हें धारा-प्रवेश के इन चार कारकों में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।"

1013. मित्र और सहकर्मी (2) (मिट्टामक्का1)
"भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो इस बात से अवगत हैं कि आपकी बात सुनी जानी चाहिए - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सगे-संबंधी - उन्हें आप सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के चार कारकों) में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और स्थापित करें।

वे चार कौन से हैं? (जैसा कि 997 में है) आपको उन्हें बुद्ध में दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और स्थापित करना चाहिए: भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" "

भिक्षुओं, चार प्रमुख तत्वों (धातु) - पृथ्वी तत्व, जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व - में परिवर्तन हो सकता है, लेकिन बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने वाले श्रेष्ठ शिष्य में परिवर्तन नहीं हो सकता। परिवर्तन यह है कि बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने वाला श्रेष्ठ शिष्य नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म ले। यह असंभव है।

आपको उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में, संघ (भाईचारे) में, श्रेष्ठों को प्रिय गुणों में दृढ़ विश्वास के साथ शिक्षा देनी चाहिए, उन्हें स्थिर करना चाहिए और उन्हें समाधि की अवस्था की ओर ले जाना चाहिए।"

भिक्षुओं, चारों महातत्वों में परिवर्तन हो सकता है... परन्तु उन श्रेष्ठ शिष्यों में परिवर्तन नहीं हो सकता जो श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से युक्त हैं। परिवर्तन यह है कि श्रेष्ठ शिष्य, जो श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से युक्त हैं, नरक, पशुलोक या प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लें। यह असंभव है।

जिन पर आपको दया आती है... उन्हें आप इन चार सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के कारकों में शिक्षा दें, उन्हें स्थिर करें और उन्हें स्थापित करें।

1014. देवों का दर्शन (1) (देवचरिका1)
श्रावस्ती 335 को, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को तेज़ी से फैलाता या समेटता है, वैसे ही पूज्य महामोग्गलाना जेतवन से विलीन हो गए और तावतिंसा देवताओं के बीच प्रकट हुए। तब तावतिंसा स्वर्ग के कई देवता पूज्य महामोग्गलाना के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। पूज्य महामोग्गलाना ने उन देवताओं से कहा:

"हे मित्रों, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है, जैसा कि (997 में) 'भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

"मित्रों, धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखना ... संघ में विश्वास रखना ... श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है। श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का पालन करने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी एक अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।" "हे मोग्गलाना

, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना ... धम्म में विश्वास रखना ... संघ (भाईचारे) में विश्वास रखना ... श्रेष्ठ लोगों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है।" श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्रिय गुणों के कारण, शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, कुछ प्राणी यहाँ एक अच्छे गंतव्य (सुगति), स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।

1015. देवों का दर्शन (2) (देवकारिका2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र 1014 के समान है, सिवाय इसके कि जहाँ कहीं भी "अच्छे गंतव्य (सुगति) में पुनर्जन्म लेते हैं" लिखा है, वर्तमान सूत्र में "अच्छे गंतव्य (सुगति) में पुनर्जन्म ले चुके हैं" लिखा है।)

1016. देवों का दर्शन (3) (देवचरिका3)
फिर, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी मुड़ी हुई भुजा को तेजी से फैलाता है या अपनी फैली हुई भुजा को वापस समेट लेता है, वैसे ही भगवान (बुद्ध) जेतवन से विलीन हो गए और तावतिंसा देवताओं के बीच प्रकट हुए। तब तावतिंसा स्वर्ग के कई देवता भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उन देवताओं से कहा:

"हे मित्रों, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना अच्छा है, जैसा कि (997 में) 'भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखने के कारण, यहाँ कुछ प्राणी सोतापन्न हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य निश्चित है और ज्ञान ही उनका लक्ष्य है।

"हे मित्रों, धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखना ... संघ (भाईचारा) में विश्वास रखना ... श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करने के कारण, यहाँ कुछ प्राणी सोतापन्न हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य निश्चित है और ज्ञान ही उनका लक्ष्य है।" "

हे महोदय, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखना ... धम्म में विश्वास रखना ... संघ में विश्वास रखना ... श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करना ... समाधि (सम्मोहन) की ओर ले जाने वाला अच्छा है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का पालन करने के कारण, यहाँ कुछ प्राणी सोतापन्न हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य निश्चित है और ज्ञान ही उनका लक्ष्य है।"

(iii) सरानिवग्गो

1017. महानामा (1)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु में निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे पूज्यवर, यह कपिलवस्तु समृद्ध, घनी आबादी वाला, भीड़भाड़ वाला और संकरी सड़कों वाला है। 336 संध्या पर, जब मैं भगवान (बुद्ध) या आदरणीय भिक्षुओं के दर्शन के बाद कपिलवस्तु में प्रवेश कर रहा होता हूँ, तो मुझे एक भटका हुआ हाथी, एक भटका हुआ घोड़ा, एक भटका हुआ रथ, एक भटकी हुई गाड़ी और एक भटका हुआ आदमी मिलता है। 337 उस समय, हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) के प्रति मेरा ध्यान (सती) विचलित हो जाता है, धर्म (मार्ग, नियम) के प्रति मेरा ध्यान (सती) विचलित हो जाता है, संघ (भाईचारे) के प्रति मेरा ध्यान (सती) विचलित हो जाता है। तब मेरे मन में यह विचार आता है: 'यदि इस क्षण मेरी मृत्यु हो जाए, तो मेरा गंतव्य क्या होगा, मेरा भविष्य का पुनर्जन्म क्या होगा?'”

“महोदय, भयभीत मत हो! महानामा, भयभीत मत हो! तुम्हारी मृत्यु से मुझे कोई हानि नहीं होगी।” यदि आप बुरे हैं, तो आपकी मृत्यु बुरी नहीं होगी। 338 जब किसी व्यक्ति का मन लंबे समय तक आस्था, सद्गुण (शील), ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सुदृढ़ हो जाता है, तो यहीं कौवे, गिद्ध, बाज, कुत्ते, सियार या विभिन्न प्राणी उसके शरीर को खा जाते हैं, जो रूप से बना होता है, चार महान तत्वों (धातु) से निर्मित होता है, माता-पिता से उत्पन्न होता है, चावल और दलिया से बना होता है, अनित्य (अनित्य) के अधीन होता है, घिसने और मिटने के अधीन होता है, टूटने और बिखरने के अधीन होता है। परन्तु उसका मन, जो लंबे समय तक आस्था, सद्गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से सुदृढ़ हो जाता है - जो ऊपर की ओर जाता है, विशिष्टता की ओर जाता है। 339

"मान लीजिए, महानामा, एक आदमी घी या तेल के बर्तन को पानी के गहरे कुंड में डुबोकर तोड़ देता है। इसके सभी टुकड़े और अंश नीचे डूब जाएंगे, लेकिन वहां का घी या तेल ऊपर उठ जाएगा। ठीक वैसे ही, महानामा, जब किसी व्यक्ति का मन लंबे समय तक आस्था, सद्गुण, ज्ञान, उदारता और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मजबूत होता है, तो यहीं कौवे... या विभिन्न जीव उसके शरीर को खा जाते हैं... लेकिन उसका मन, जो लंबे समय तक आस्था, सद्गुण, ज्ञान, उदारता और अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मजबूत हुआ है - वह ऊपर उठता है, विशिष्टता की ओर जाता है।

"महोदय, डरो मत! महानामा, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी, तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा।"

1018. महानामा (2)

(ऊपर से नीचे तक:)

"महोदय, डरो मत! महानामा, डरो मत! तुम्हारी मृत्यु बुरी नहीं होगी, तुम्हारा अंत बुरा नहीं होगा। एक श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त होता है, वह निर्वाण की ओर झुकता है। वे चार कौन से हैं? यहाँ, महानामा, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धर्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारे) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से अटूट रूप से युक्त है... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।

मान लो, महानामा, एक वृक्ष पूर्व की ओर झुका हुआ है। यदि इसे जड़ से काट दिया जाए, तो यह किस दिशा में गिरेगा? "

जिस भी दिशा में यह झुका हुआ हो, आदरणीय महोदय, उसी दिशा में गिरेगा।"

"उसी प्रकार, हे महानामा, इन चारों धर्मों से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य निर्वाण की ओर झुका हुआ है।"

1019. गोधासक्का

कपिलवस्तु में, महानामा शाक्य ने गोधा शाक्य के पास जाकर उनसे कहा, "हे गोधा, किसी व्यक्ति को सोतापन्न (धारा-प्रवेशक) के रूप में पहचानने के लिए उसमें कितने धर्म (गुण, नियम) होने चाहिए? वह व्यक्ति पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य मानता है।" "हे

महानामा, जब किसी व्यक्ति में तीन धर्म होते हैं, तो मैं उसे सोतापन्न मानता हूँ, वह पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य मानता हूँ।

वे तीन कौन से हैं? यहाँ, महानामा (जैसा कि 997 में है), एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में, धर्म में, संघ में दृढ़ विश्वास रखता है। जब किसी व्यक्ति में ये तीन धर्म होते हैं, तो मैं उसे सोतापन्न मानता हूँ... जिसका गंतव्य ज्ञान प्राप्ति है। लेकिन, महानामा, किसी व्यक्ति को सोतापन्न मानने के लिए उसमें कितने धर्म होने चाहिए?

"हे गोधा, जब किसी व्यक्ति में चारों धर्म होते हैं, तो मैं उसे धारा में प्रवेश करने वाला मानता हूँ... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति है। वे कौन से चार धर्म हैं? यहाँ, गोधा (जैसा कि 997 में है), एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में, धर्म में, संघ में दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से युक्त है, जो अटूट रूप से समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। जब किसी व्यक्ति में ये चारों धर्म होते हैं, तो मैं उसे धारा में प्रवेश करने वाला मानता हूँ... जिसका लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति है।"

"रुको, महानामा! रुको, महानामा! केवल भगवान (बुद्ध) ही जान सकते हैं कि उसमें ये धर्म हैं या नहीं।"

"आओ, गोधा, हमें भगवान (बुद्ध) के पास जाना चाहिए। उनके पास जाकर हम उन्हें इस विषय की सूचना देंगे।"

तब शाक्य महानामा और शाक्य गोधा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब शाक्य महानामा ने उनकी बातचीत का वर्णन करते हुए कहा:

"हे पूज्यवर, धम्म से संबंधित कोई मुद्दा उठ सकता है। भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ दूसरा पक्ष ले सकता है। भगवान (बुद्ध) जो भी पक्ष लेंगे, मैं भी वही पक्ष लूंगा। भगवान (बुद्ध) मुझे ऐसे विश्वासवान व्यक्ति के रूप में याद रखें। 340

"हे पूज्यवर, धम्म से संबंधित कोई मुद्दा उठ सकता है। भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ एवं भिक्षुणी संघ दूसरा पक्ष ले सकते हैं... भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ, भिक्षुणी संघ एवं पुरुष अनुयायी दूसरा पक्ष ले सकते हैं... भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं और भिक्षु संघ, भिक्षुणी संघ, पुरुष अनुयायी एवं स्त्री अनुयायी दूसरा पक्ष ले सकते हैं। भगवान (बुद्ध) जिस भी पक्ष का अनुसरण करेंगे, मैं भी उसी पक्ष का अनुसरण करूंगा। भगवान (बुद्ध) मुझे ऐसे आत्मविश्वासी व्यक्ति के रूप में याद रखें।

"हे पूज्यवर, यहाँ धम्म से संबंधित कोई मुद्दा उठ सकता है। भगवान (बुद्ध) एक पक्ष ले सकते हैं, और भिक्षु संघ, भिक्षुणी संघ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी, स्त्री गृहस्थ अनुयायी, और यह संसार अपने देवों (देवदूतों), मार (शैतान), और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), इस पीढ़ी के तपस्वियों और ब्राह्मणों, देवों और मनुष्यों सहित, दूसरा पक्ष ले सकते हैं। भगवान (बुद्ध) जो भी पक्ष लेंगे, मैं भी वही पक्ष लूँगा। भगवान (बुद्ध) मुझे ऐसे विश्वासवान व्यक्ति के रूप में याद रखें।"

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "हे गोधा, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो आप शाक्य महानामा के बारे में क्या कहेंगे?"

"हे पूज्यवर, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो मैं शाक्य महानामा के बारे में केवल वही कहूँगा जो अच्छा और अनुकूल हो।" 342 [375]

1020. सरनानिसाक्का (1)

कपिलवस्तु में। उस अवसर पर शाक्य शरनानी 343 की मृत्यु हो गई थी, और भगवान (बुद्ध) ने उन्हें परलोक से मुक्त, नियति में स्थिर और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य घोषित किया था। तब अनेक शाक्य एकत्रित होकर इस पर शोक व्यक्त करने लगे, बड़बड़ाने लगे और शिकायत करने लगे, "यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है, महाराज! यह तो सचमुच अद्भुत है, महाराज! अब यहाँ कौन परलोक

(सोतापन्न) नहीं बनना चाहेगा जब भगवान (बुद्ध) ने शाक्य शरनानी को मृत्यु के बाद परलोक घोषित कर दिया है... और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य बताया है? शाक्य शरनानी प्रशिक्षण के लिए बहुत कमजोर थे; उन्होंने मादक पेय पिया था!” 344

तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"महानामा, जब कोई गृहस्थ अनुयायी लंबे समय तक बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) की शरण में रहा हो, तो वह परलोक कैसे जा सकता है? क्योंकि यदि कोई सही ढंग से किसी के बारे में कहे: 'वह एक गृहस्थ अनुयायी था जिसने लंबे समय तक बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली थी,' तो यह बात शाक्य सरकानी के बारे में सही कही जा सकती है। महानामा, शाक्य सरकानी ने लंबे समय तक बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली थी, तो वह परलोक कैसे जा सकता है?

"यहाँ, महानामा, किसी व्यक्ति को बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास है: (जैसा कि 997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' और यही बात धम्म और संघ में भी लागू होती है।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) और तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण हैं, और उन्होंने मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त कर ली है। विकारों के नाश (खया/क्षय) द्वारा इसी जीवन में वे विकारों से मुक्त मन की मुक्ति में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं, अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा प्राप्त मुक्ति में, जिसे वे स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से अनुभव करते हैं। यह व्यक्ति, महानामा, नरक, पशु जगत और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है। 345

"हे महानामा, यहाँ एक व्यक्ति है जिसे बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) और तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) से परिपूर्ण है, फिर भी उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) से वह स्वतः जन्म लेने वाला बन गया है, और उस लोक से पुनर्जन्म लिए बिना ही निर्वाण प्राप्त करने वाला है। हे महानामा, यह व्यक्ति भी नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है।"

"हे महानामा, यहाँ एक व्यक्ति है जिसे बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। तीनों बंधनों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) और लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से, वह एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है, जो इस संसार में केवल एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करेगा। हे महानामा, यह व्यक्ति भी नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक से, बुरे गंतव्यों से, पाताल लोक से मुक्त है।

हे महानामा, यहाँ एक व्यक्ति है जिसे बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास है।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले नहीं हैं, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले हैं, और न ही उन्होंने मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त की है। तीनों बंधनों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के साथ वे सोतापन्ना हैं, अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, नियति में स्थिर हैं, और ज्ञान ही उनका गंतव्य है। यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है।

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास नहीं रखता। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) या तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, और उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। फिर भी, उसमें ये पाँच धम्म (गुण, नियम) हैं: विश्वास की शक्ति, ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) की शक्ति, ध्यान की शक्ति, समाधि (सम्मोहन) की शक्ति, और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। तथागत द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं को वह पर्याप्त अंतर्दृष्टि (पन्न) के साथ मनन करने के बाद स्वीकार करता है। यह व्यक्ति भी, महानामा, न तो नरक में जाता है, न पशु लोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुख के लोक में, न बुरे गंतव्यों में। 346

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ विश्वास नहीं रखता।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले या तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाले नहीं हैं, और उन्होंने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। फिर भी, उनमें ये पाँच धर्म हैं: आस्था की शक्ति... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। और तथागत में उनकी पर्याप्त आस्था है, उनके प्रति पर्याप्त भक्ति है। यह व्यक्ति भी, हे महानामा, न तो नरक में जाता है, न पशुलोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुख के लोक में, न बुरे गंतव्यों में, न पाताल लोक में।

"महानमा, यदि ये महान साल वृक्ष, अच्छी और बुरी बातों को समझ सकते, तो मैं इन्हें सोतापन्ना घोषित करता, जो अब पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानते। तो फिर, शाक्य सरकानी, तो और भी अधिक? महामा, शाक्य सरकानी ने अपनी मृत्यु के समय प्रशिक्षण ग्रहण किया था।" 347

1021. सरनानिसाक्का (2)
कपिलवस्तु में। उस अवसर पर शाक्य सरकानी का निधन हो गया था, और भगवान (बुद्ध) ने उन्हें परलोक से मुक्त, नियति में स्थिर और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य घोषित किया था। तब अनेक शाक्य एकत्रित होकर इस पर शोक व्यक्त करने लगे, बड़बड़ाने लगे और शिकायत करने लगे, "यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है, महाराज! यह तो सचमुच अद्भुत है, महाराज! अब यहाँ कौन परलोक (सोतापन्न) नहीं होगा जब भगवान (बुद्ध) ने शाक्य सरकानी को उनकी मृत्यु के बाद परलोक घोषित कर दिया है... और ज्ञान प्राप्ति को अपना गंतव्य बताया है? शाक्य सरकानी तो प्रशिक्षण पूरा करने में असफल रहे थे!" 348

तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"महानामा, जब कोई गृहस्थ अनुयायी लंबे समय तक बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) की शरण लेता है, तो वह पाताल लोक में कैसे जा सकता है?... महानामा, शाक्य सरकानी ने लंबे समय तक बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली थी, तो वह पाताल लोक में कैसे जा सकता है?
(कृपया 997 और 1020 देखें)
"यहाँ, महानामा, कोई व्यक्ति पूरी तरह से बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है, इस प्रकार: 349 भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" और यही बात धम्म और संघ के संबंध में भी लागू होती है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला, तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला है, और उसने मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) प्राप्त कर ली है। विकारों के नाश (खय/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में वह मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, अंतर्दृष्टि (पन्न) द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, और दिव्य ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करता है। यह व्यक्ति, महानामा, नरक, पशु जगत, प्रेतलोक, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त हो जाता है।

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति पूर्णतः बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है... और यही बात धम्म और संघ के संदर्भ में भी लागू होती है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) और तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण है, फिर भी उसने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। पाँच निम्न बंधनों के पूर्ण विनाश (खय/क्षय) के साथ वह इस जीवन में ही अंतिम ज्ञान प्राप्त करने वाला, या मृत्यु के समय अंतिम ज्ञान प्राप्त करने वाला, या बीच में ही निर्वाण प्राप्त करने वाला, या मृत्यु के पहुँचते ही निर्वाण प्राप्त करने वाला, या बिना प्रयास के निर्वाण प्राप्त करने वाला, या प्रयास सहित निर्वाण प्राप्त करने वाला, या अकनित्थ लोक की ओर धारा के विपरीत दिशा में अग्रसर होने वाला बन गया है। 350 यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों और पाताल लोक से मुक्त है।"

"यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति पूर्णतः बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है... और यही बात धम्म और संघ के संदर्भ में भी लागू होती है। वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। तीनों बंधनों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और लोभ (राग), घृणा (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से, वह एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी) है, जो इस संसार में केवल एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करेगा। यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशुलोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक से मुक्त है।

यहाँ, महानामा, एक व्यक्ति पूर्णतः बुद्ध के प्रति समर्पित है और उन पर पूर्ण विश्वास रखता है... और यही बात धम्म और संघ के संदर्भ में भी लागू होती है।" वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले नहीं हैं, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाले हैं, और उन्होंने मुक्ति प्राप्त नहीं की है। तीनों बंधनों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) के साथ वे धारा-प्रवेशक हैं, अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, नियति में स्थिर हैं, और ज्ञान ही उनका गंतव्य है। यह व्यक्ति भी, महानामा, नरक, पशु लोक और प्रेतों के लोक से मुक्त है, दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, पाताल लोक से मुक्त है।

"यहाँ, महानामा, कोई व्यक्ति बुद्ध के प्रति पूर्णतः समर्पित नहीं है और उन पर पूर्ण विश्वास नहीं रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" और इसी प्रकार धम्म और संघ के संदर्भ में, वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। फिर भी, उसमें ये पाँच धर्म (गुण, नियम) हैं: आस्था की शक्ति... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। तथागत द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं को वह पर्याप्त अंतर्दृष्टि (पन्न) के साथ मनन करने के बाद ग्रहण करता है। यह व्यक्ति भी, महानामा, वह है जो न तो नरक में जाता है, न पशुलोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुख के लोक में, न बुरे गंतव्यों में।

"यहाँ, महानामा, कोई व्यक्ति बुद्ध के प्रति पूर्णतः समर्पित नहीं है और उन पर पूर्ण विश्वास नहीं रखता है... और इसी प्रकार धम्म और संघ के संदर्भ में, वह आनंदमय प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला नहीं है, न ही तीव्र अंतर्दृष्टि (पन्न) वाला है, और उसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है। फिर भी, उसमें ये पाँच धर्म हैं: आस्था की शक्ति... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शक्ति। और उसे तथागत पर पूर्ण विश्वास है, उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा है। यह व्यक्ति भी, महानामा, न तो नरक में जाता है, न पशुलोक में, न प्रेतों के लोक में, न दुखों के लोक में, न बुरे गंतव्यों में, न पाताल लोक में।

"मान लीजिए, महानामा, एक बंजर खेत है, एक खराब ज़मीन है, जहाँ पेड़-पौधों के ठूंठ साफ नहीं किए गए हैं, और वहाँ बोए गए बीज टूट-फूट जाएँ, हवा और धूप से खराब हो जाएँ, बंजर हो जाएँ, ठीक से न बोए जाएँ, और आसमान से पर्याप्त बारिश न हो। क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, हे महानामा, यहाँ एक धम्म की व्याख्या गलत तरीके से की गई है, उसका प्रचार गलत तरीके से किया गया है, वह मुक्तिदायक नहीं है, शांति के लिए अनुकूल नहीं है, और उसका प्रचार एक अपूर्ण व्यक्ति द्वारा किया गया है। मैं कहता हूँ, यह खराब खेत के समान है। और शिष्य उस धम्म में निवास करता है, उसके अनुसार अभ्यास करता है, उचित अभ्यास करता है, और तदनुसार आचरण करता है। मैं कहता हूँ, यह खराब बीज के समान है।

"मान लीजिए, हे महानामा, एक अच्छा खेत है, एक अच्छी जमीन है, ठूंठों से अच्छी तरह साफ की गई है, और वहाँ बोए गए बीज अक्षुण्ण, अक्षुण्ण, हवा और धूप से अप्रभावित, उपजाऊ, सुरक्षित रूप से बोए गए हैं, और आकाश से उचित वर्षा हो रही है। क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"इसी प्रकार, हे महानामा, यहाँ एक धम्म की व्याख्या अच्छी तरह से की गई है, उसका प्रचार अच्छी तरह से किया गया है, वह मुक्तिदायक है, शांति के लिए अनुकूल है, और उसका प्रचार एक पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा किया गया है। मैं कहता हूँ, यह अच्छे खेत के समान है।" और शिष्य उस धम्म में निवास करता है, उसके अनुसार अभ्यास करता है, उचित अभ्यास करता है, और उसी के अनुरूप आचरण करता है। मैं कहता हूँ, यह अच्छे बीज के समान है। तो फिर, शाक्य सरकानी कितना अधिक श्रेष्ठ होगा? महानामा, शाक्य सरकानी वह था जिसने मृत्यु के समय प्रशिक्षण पूर्ण किया।

1022. अनाथपिंडिका (1)
सावत्थी में। उस समय गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार थे। तब उन्होंने एक व्यक्ति से कहा,

“हे जनमानस, आदरणीय सारिपुत्त के पास जाइए, मेरे नाम से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम कीजिए और कहिए:
‘हे जनमानस, गृहस्थ अनाथपिंडिका बीमार हैं, गंभीर रूप से बीमार हैं; वे आदरणीय सारिपुत्त के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं।’ फिर कहिए: ‘हे जनमानस, यदि आदरणीय सारिपुत्त करुणावश गृहस्थ अनाथपिंडिका के निवास पर आएं तो अच्छा होगा।’”

“जी, स्वामी,” उस व्यक्ति ने उत्तर दिया और वह आदरणीय सारिपुत्त के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और अपना संदेश दिया। आदरणीय सारिपुत्त ने मौन रहकर सहमति दी।

फिर सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य आनंद के साथ गृहस्थ अनाथपिंडिका के निवास पर गए। वे निर्धारित आसन पर बैठ गए और गृहस्थ अनाथपिंडिका से बोले, “आशा है आप स्वस्थ हैं, गृहस्थ, आप ठीक हो रहे हैं। आशा है आपकी वेदनाएँ कम हो रही हैं, बढ़ नहीं रही हैं, और यह कि उनका कम होना ही मुख्य बात है, बढ़ना नहीं।” अनाथपिंडिका ने कहा, “मैं

स्वस्थ नहीं हूँ, पूज्यवर, मैं ठीक नहीं हो रहा हूँ। मेरी वेदनाएँ तीव्र हो रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और यह कि उनका बढ़ना ही मुख्य बात है, कम होना नहीं।”

"हे गृहस्थ, बुद्ध के प्रति वह अविश्वास मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण शरीर के क्षत-विक्षत होने पर वह मृत्यु के बाद दुख के लोक में, बुरे भाग्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेता है। और बुद्ध के प्रति तुम्हारा दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: (जैसा कि 997 और 1020 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" जैसे ही तुम अपने भीतर बुद्ध के प्रति इस दृढ़ विश्वास का चिंतन करोगे, तुम्हारे कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

"हे गृहस्थ, धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति वह अविश्वास मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह ... दुख के लोक में ... नरक में पुनर्जन्म लेता है। और धम्म के प्रति तुम्हारा दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) ने अच्छी तरह से की है ... बुद्धिमानों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाना चाहिए।" जब आप अपने भीतर धम्म में दृढ़ विश्वास का विचार करेंगे, तो आपके कष्ट तुरंत दूर हो सकते हैं।

हे गृहस्थ, संघ के प्रति वह अविश्वास मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। और संघ के प्रति तुम्हारा दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहा है... संसार के लिए पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।' अपने मन में संघ के प्रति इस दृढ़ विश्वास का चिंतन करते ही तुम्हारे कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

हे गृहस्थ, वह अनैतिकता मत रखो जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होती है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। और तुममें वे गुण हैं जो श्रेष्ठों को प्रिय हैं, अटूट रूप से समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। अपने मन में उन गुणों का चिंतन करते ही तुम्हारे कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

हे गृहस्थ, आपमें वह गलत दृष्टिकोण नहीं है जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। आपका दृष्टिकोण सही है। जब आप अपने भीतर उस सही दृष्टिकोण का चिंतन करेंगे, तो आपके कष्ट तुरंत दूर हो जाएंगे।

हे गृहस्थ, आपमें वह गलत इरादा, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान, गलत समाधि अवस्था, गलत ज्ञान, गलत मुक्ति (विमुक्ति) नहीं है जो अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में होता है, जिसके कारण वह दुख के लोक में, नरक में जन्म लेता है। आपका इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था, सही ज्ञान और सही मुक्ति है। 351 "जब आप अपने भीतर उस सही मुक्ति का विचार करेंगे, तो आपके कष्ट तुरंत दूर हो जाएँगे।"

तब गृहस्थ अनाथपिंडिका के कष्ट तुरंत दूर हो गए।

फिर गृहस्थ अनाथपिंडिका ने अपने थाले से पूज्य सारिपुत्त और पूज्य आनंद को भोजन परोसा। जब पूज्य सारिपुत्त ने अपना भोजन समाप्त कर लिया और हाथ-काँटा धो लिया, तो गृहस्थ अनाथपिंडिका एक नीची कुर्सी पर एक तरफ बैठ गए, और पूज्य सारिपुत्त ने इन श्लोकों से उनका धन्यवाद किया:

"जब किसी को तथागत में
अटूट और दृढ़ विश्वास होता है,

और उसका आचरण शील पर आधारित होता है, तो वह
श्रेष्ठों का प्रिय और प्रशंसित होता है;

"जब किसी को संघ में विश्वास होता है
और उसका दृष्टिकोण सुधर जाता है,

तो लोग कहते हैं कि वह गरीब नहीं है,
उसका जीवन व्यर्थ नहीं है।

"इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को
बुद्ध की शिक्षाओं को याद करते हुए, विश्वास और सद्गुण के प्रति समर्पित होना चाहिए, धम्म के प्रति विश्वास और दृष्टि के प्रति

समर्पित होना चाहिए ।"

तब पूज्य सारिपुत्त ने गृहस्थ अनाथपिंडिका को इन श्लोकों से धन्यवाद देकर अपने आसन से उठकर प्रस्थान किया।

तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "आनंद, तुम दिन के मध्य में कहाँ से आ रहे हो?"

"पूज्यवर, गृहस्थ अनाथपिंडिका को पूज्य सारिपुत्त ने ऐसा उपदेश दिया है।"

"आनंद, सारिपुत्त बुद्धिमान हैं, सारिपुत्त को महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त है, क्योंकि वे दस गुणों में सोतपत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के चार कारकों का विश्लेषण कर सकते हैं।"

1023. अनाथपिंडिका (2)
(इस सूत्र की शुरुआत पिछले सूत्र की तरह ही है, सिवाय इसके कि अनाथपिंडिका आनंद को आमंत्रित करते हैं, नीचे तक:)

"हे पूज्यवर, मैं सहन नहीं कर पा रहा/रही हूँ, मेरी हालत में सुधार नहीं हो रहा है। तीव्र पीड़ादायक संवेदनाएँ (वेदना) मुझमें बढ़ रही हैं, कम नहीं हो रही हैं, और उनका बढ़ना ही मुख्य कारण है, उनका कम होना नहीं।"

"गृहस्थ, चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए भय, कंपकंपी और मृत्यु का डर है। 352 वे चार क्या हैं?

"यहाँ, गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को बुद्ध के प्रति अविश्वास है, और जब वह अपने भीतर बुद्ध के प्रति उस अविश्वास पर विचार करता है, तो भय, कंपकंपी और मृत्यु का डर उत्पन्न होता है।"

"हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति अविश्वास होता है, और जब वह अपने भीतर धम्म के प्रति उस अविश्वास पर विचार करता है, तो उसे भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।

हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को संघ (भाईचारे) के प्रति अविश्वास होता है, और जब वह अपने भीतर संघ के प्रति उस अविश्वास पर विचार करता है, तो उसे भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।

हे गृहस्थ, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति अनैतिक होता है, और जब वह अपने भीतर उस अनैतिकता पर विचार करता है, तो उसे भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।

इन चारों धर्मों से युक्त अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को भय, घबराहट और मृत्यु का डर सताता है।"

"गृहस्थ, चार धर्मों से युक्त ज्ञानी शिष्य को मृत्यु का कोई भय, कोई घबराहट या डर नहीं होता। वे चार धर्म कौन से हैं?

यहाँ, गृहस्थ, ज्ञानी शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: (जैसा कि 997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। जब वह अपने भीतर बुद्ध में इस दृढ़ विश्वास का विचार करता है, तो उसे मृत्यु का कोई भय, घबराहट या डर नहीं होता।

फिर, गृहस्थ, ज्ञानी शिष्य धर्म में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: धर्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) ने अच्छी तरह से की है ... जिसे ज्ञानी स्वयं अनुभव कर सकते हैं।" जब वह अपने भीतर धम्म में दृढ़ विश्वास का विचार करता है, तो उसे मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।

"हे गृहस्थ, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य संघ में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहा है... संसार के लिए अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र है।" जब वह अपने भीतर संघ में दृढ़ विश्वास का विचार करता है, तो उसे मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।

"हे गृहस्थ, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य में श्रेष्ठों को प्रिय गुण अटूट रूप से विद्यमान रहते हैं... जो समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। जब वह अपने भीतर श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का चिंतन करता है, तो उसे मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।

इन चारों धर्मों से युक्त उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य को मृत्यु का भय, घबराहट या डर नहीं रहता।"

"मैं भयभीत नहीं हूँ, आदरणीय आनंद। मुझे क्यों भयभीत होना चाहिए? क्योंकि, आदरणीय महोदय, मुझे बुद्ध में, धर्म में, संघ में दृढ़ विश्वास है। और जहाँ तक भगवान (बुद्ध) द्वारा गृहस्थों को सिखाए गए इन प्रशिक्षण नियमों का संबंध है, तो मुझे अपने भीतर कोई उल्लंघन नहीं दिखाई देता।" "

यह आपके लिए लाभ है, गृहस्थ! यह आपके लिए उत्तम लाभ है, गृहस्थ! आपने सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) का फल प्रकट किया है।"

1024. भयानक वैमनस्य (1) (भयवेरुपसन्त1)
[या अनाथपिंडिका (3)] (यह सुत्त एसएन2:41 या संयुत्त12:41 के समान है)

1025. भयानक वैमनस्य (2) (भयवेरुपसन्त2)
सावत्थी में, कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए और एक तरफ बैठ गए। जब वे एक तरफ बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

(जैसा कि पिछले सूत्र में है; यह SN2:42 या Samyutta12.42 के समान है)

1026. नंदका लिच्चवी
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। तब लिच्छवियों के मंत्री नंदक भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"नंदक, तुम एक श्रेष्ठ शिष्य हो जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से परिपूर्ण हो, सोतापन्न हो, अब पाताल लोक से बंधे नहीं हो, नियति में स्थिर हो, और ज्ञान ही तुम्हारा लक्ष्य है।" वे चार धर्म कौन से हैं? यहाँ, नंदक (जैसा कि 997 में है), एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखते हुए कहता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' उन्हें धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास है... संघ (भाईचारा) में... उनमें श्रेष्ठ पुरुषों के प्रिय गुण अटूट रूप से मौजूद हैं... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाते हैं। इन चार धर्मों को धारण करने वाला श्रेष्ठ शिष्य धारा-प्रवेशक होता है, जो अब पाताल लोक से बंधा नहीं होता, जिसका भाग्य स्थिर होता है और जिसका गंतव्य ज्ञान होता है।

"इसके अलावा, नंदक, इन चार धर्मों को धारण करने वाला श्रेष्ठ शिष्य दीर्घायु होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह सौंदर्य से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह सुख से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह प्रसिद्धि से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य; वह संप्रभुता से परिपूर्ण होता है, चाहे वह दिव्य हो या मनुष्य। अब मैं यह बात नंदक, किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण से सुने बिना कह रहा हूँ; बल्कि, मैं वही कहता हूँ जो मैंने स्वयं जाना, देखा और समझा है।"

यह सुनकर एक व्यक्ति ने लिच्छवियों के मंत्री नंदका से कहा, "महाराज, आपके स्नान का समय हो गया है।" नंदका

ने कहा, "अब इस बाहरी स्नान की आवश्यकता नहीं है। यह आंतरिक स्नान ही पर्याप्त है, अर्थात् भगवान (बुद्ध) में विश्वास।"

(iv) दिव्य-योग्य धारा की धाराएँ (पुन्नभिसंदवग्गो सं. पुण्य..)
1027. दिव्य पुण्य की धाराएँ (1) (पुन्नभिसन्द1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) धाराएँ हैं, सुख के पोषक तत्व हैं। ये चार कौन सी धाराएँ हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' यह पुण्य की पहली धारा है, लाभकारी (कुशल) धारा है, सुख के पोषक तत्व हैं।"

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है, जैसा कि इस प्रकार है: धम्म का भगवान (बुद्ध) द्वारा सुस्पष्ट वर्णन किया गया है... जिसे ज्ञानी स्वयं अनुभव कर सकते हैं। यह पुण्य का दूसरा स्रोत है...

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य संघ (भाईचारे) में दृढ़ विश्वास रखता है, जैसा कि इस प्रकार है: भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग का अनुसरण कर रहा है... जो संसार के लिए पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है। यह पुण्य का तीसरा स्रोत है...

"हे गृहस्थ, एक दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से परिपूर्ण रहता है, जो अटूट होते हैं... समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। यह पुण्य का चौथा स्रोत है...

"ये पुण्य के चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल) स्रोत, सुख के पोषक तत्व।"

1028. दिव्य पुण्य की धाराएँ (2) (पुन्नभिसन्द2)
भिक्षुओं, पुण्य के ये चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं। ये चार कौन से हैं?

(जैसा कि 997 में पहले तीन के लिए है, चौथा इस प्रकार

है:) "फिर से, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य घर में रहता है, जिसका मन कंजूसी के दाग से मुक्त होता है, जो उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, दान देने और बांटने में आनंदित होता है। यह पुण्य का चौथा स्रोत है।

ये पुण्य के चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं।"

1029. दिव्य पुण्य की धाराएँ (3) (पुन्नभिसन्द3)
भिक्षुओं, पुण्य के ये चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं। ये चार कौन से हैं?

(जैसे पहले तीन के लिए 997)

भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है, उसे उत्पत्ति और मृत्यु से संबंधित प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होती है, जिससे दुख का पूर्ण नाश होता है। यह पुण्य का चौथा स्रोत है...।

ये पुण्य के चार स्रोत हैं, लाभकारी (कुशल) स्रोत हैं, सुख के पोषक तत्व हैं।

1030. दिव्य अवस्थाएँ (1) (देवपद1)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, देवताओं की ये चार दिव्य अवस्थाएँ हैं जो अपवित्र प्राणियों के शुद्धिकरण और उनके शुद्धिकरण के लिए हैं। 353 वे चार क्या हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) ... देवताओं
और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" यह देवताओं की पहली दिव्य अवस्था है...

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य को धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास होता है... संघ (भाईचारा) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से परिपूर्ण होता है, जो उसे समाधि की अवस्था तक ले जाते हैं। यह देवताओं की चौथी दिव्य अवस्था है...

"ये देवताओं की चार दिव्य अवस्थाएँ हैं, जो अशुद्ध प्राणियों के शुद्धिकरण और अशुद्ध प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए हैं।"

1031 दिव्य अवस्थाएँ (2) (देवपद2)
"भिक्षुओं, देवताओं की ये चार दिव्य अवस्थाएँ हैं जो अपवित्र प्राणियों के शुद्धिकरण और उनके शुद्धिकरण के लिए हैं। वे चार कौन सी हैं? 354
(जैसा कि 997 में है)

"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... वह सोचता है: 'देवों की दिव्य अवस्था क्या है?' वह इस प्रकार समझता है: 'मैंने सुना है कि वर्तमान में देवता अहिंसा को सर्वोच्च मानते हैं, और मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। निश्चय ही मैं दिव्य अवस्थाओं में से एक में निवास करता हूँ।' यह देवताओं की पहली दिव्य अवस्था है...

"फिर, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारे) में...

"फिर, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है..." समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हुए। वह सोचता है: 'देवताओं की दिव्य अवस्था क्या है?' वह इस प्रकार समझता है: 'मैंने सुना है कि वर्तमान में देवता अनियंत्रण को सर्वोच्च मानते हैं, और मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करता, चाहे वह दुर्बल हो या दृढ़। निश्चय ही मैं दिव्य अवस्थाओं में से एक में निवास करता हूँ।' यह देवताओं की चौथी दिव्य अवस्था है...

"ये देवताओं की चार दिव्य अवस्थाएँ हैं जो अपवित्र प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए, अपवित्र प्राणियों के पापों के शुद्धिकरण के लिए हैं।"

1032. देवताओं के समान (देवसभाग सं. देव-सा-भाग्य)
भिक्षुओं, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में चार धर्म (गुण, नियम) होते हैं, तो देव प्रसन्न होते हैं और उसकी अपने समान होने की बात करते हैं। वे चार कौन से हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है, इस प्रकार: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' उन देवों (देवदूतों) को, जो यहाँ [मानव जगत में] देह त्याग कर वहाँ [स्वर्गिक जगत में] पुनर्जन्म लेकर बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखते थे, यह विचार आता है: 'चूंकि श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में वही दृढ़ विश्वास रखता है जो हमने वहाँ देह त्याग कर यहाँ पुनर्जन्म लेने पर रखा था, वह देवों के समक्ष आएगा।'

"भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारा) में... वह परम पूज्यों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था के लिए सहायक होते हैं। उन देवताओं को, जो इस मानव जगत में देह त्याग कर स्वर्ग लोक में पुनर्जन्म लेकर परम पूज्यों के प्रिय गुणों को धारण किए हुए थे, यह विचार आता है: 'चूंकि श्रेष्ठ शिष्य में वही गुण हैं जो हममें थे जब हमने वहां देह त्याग कर यहां पुनर्जन्म लिया था, इसलिए वह देवताओं के समक्ष उपस्थित होगा।'

"भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य इन चारों धर्मों को धारण करता है, तो देवता प्रसन्न होते हैं और उसकी अपने साथ समानता की बात करते हैं।"

1033. महानामा
एक बार भगवान (बुद्ध) निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय गुरुदेव, गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार होता है?"

"महानामा, जब कोई बुद्ध, धर्म (मार्ग, नियम) और संघ (भाईचारा) की शरण लेता है, तब वह गृहस्थ अनुयायी होता है।"

"आदरणीय गुरुदेव, गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार सद्गुण (शील) में सिद्ध होता है?"

"महानामा, जब गृहस्थ अनुयायी जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) से, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से, यौन दुराचार से, झूठी वाणी से और मदिरा, मादक पदार्थों और आलस्य (पमाद) का आधार बनने वाले मादक पदार्थों से दूर रहता है, तब वह सद्गुण में सिद्ध होता है।"

"आदरणीय गुरुदेव, गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार आस्था में सिद्ध होता है?"

"यहाँ, महानामा, एक गृहस्थ अनुयायी आस्थावान व्यक्ति होता है। वह तथागत के ज्ञान में इस प्रकार आस्था रखता है: (जैसा कि 997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' इस प्रकार एक गृहस्थ अनुयायी आस्था में सिद्ध होता है।"

"हे आदरणीय महोदय, एक गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार उदारता में सिद्ध होता है?"

"यहाँ, महानामा, एक गृहस्थ अनुयायी कंजूसी के दाग से रहित मन से घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंद लेने वाला, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में आनंद लेने वाला होता है। इस प्रकार एक गृहस्थ अनुयायी उदारता में सिद्ध होता है।"

"हे आदरणीय महोदय, एक गृहस्थ अनुयायी किस प्रकार प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) में सिद्ध होता है?"

"यहाँ, महानामा, एक गृहस्थ अनुयायी ही बुद्धिमान है, वह उत्पत्ति और क्षय के संदर्भ में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त करता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होती है, और दुखों के पूर्ण नाश (खया/क्षय) की ओर ले जाती है। इस प्रकार गृहस्थ अनुयायी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) में सिद्ध हो जाता है।"

1034. वर्षा (वसा सं. वर्षा)
भिक्षुओं, जैसे किसी पर्वत की चोटी पर जब वर्षा की मोटी बूँदें बरसती हैं, तो पानी ढलान से नीचे बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; इनके भरने से तालाब भर जाते हैं; इनके भरने से झीलें भर जाती हैं; इनके भरने से नदियाँ भर जाती हैं; इनके भरने से विशाल सागर भर जाता है; ठीक उसी प्रकार, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, ये धर्म (गुण, नियम) - बुद्ध, धर्म (मार्ग, नियम), संघ (भाईचारा) में दृढ़ विश्वास, और श्रेष्ठों को प्रिय सद्‌गुण - आगे बढ़ते रहते हैं और आगे बढ़कर विकारों के विनाश (खयाल/क्षय) की ओर ले जाते हैं। 357

1035. कालीगोधा
एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु में निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। सुबह, भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर शाक्य स्त्री कालीगोधा के निवास पर गए, जहाँ वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब शाक्य स्त्री कालीगोधा भगवान (बुद्ध) के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"गोधा, एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से परिपूर्ण है, सोतापन्न है, अब पाताल लोक से बंधी नहीं है, नियति में स्थिर है, और उसका गंतव्य ज्ञान है। वे चार क्या हैं?

" यहाँ, गोधा, एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या, बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखती है, इस प्रकार (जैसा कि 997 में है) भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं। वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखती है... संघ (भाईचारा) में (जैसा कि 997 में है)... वह कंजूसी के दाग से मुक्त मन से घर में रहती है, उदार, खुले हाथों वाली, त्याग में आनंदित, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में प्रसन्न होती है।

"हे गोधा, इन चार धर्मों को धारण करने वाली एक श्रेष्ठ स्त्री शिष्या, धारा-प्रवेशित है, अब पाताल लोक से बंधी नहीं है, नियति में स्थिर है, जिसका गंतव्य ज्ञान है।"

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धारा-प्रवेश (सोतापत्ति) के इन चार कारकों के अनुसार, ये धर्म मुझमें विद्यमान हैं, और मैं इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करती हूँ। क्योंकि, आदरणीय महोदय, मुझे बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ में दृढ़ विश्वास है। इसके अलावा, मेरे परिवार में जो कुछ भी दान देने योग्य है, वह सब मैं गुणी और अच्छे चरित्र वाले लोगों में निःसंकोच बाँट देती हूँ।"

"यह आपके लिए लाभ है, गोधा! यह आपके लिए बहुत अच्छा लाभ है, गोधा! आपने धारा-प्रवेश के फल की घोषणा की है।"

1036. नंदिया
एक बार भगवान (बुद्ध) कपिलवस्तु में निग्रोध उद्यान में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। तब शाक्य नंदीय भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"आदरणीय महोदय, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के चार गुण) पूर्णतः अनुपस्थित हों, तो क्या वह श्रेष्ठ शिष्य आलसी (पमादा) होगा?"

"नंदीय, मैं कहता हूँ कि जिसमें सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश के चार गुण) (जैसा कि 997 में है) पूर्णतः अनुपस्थित हों, वह 'पृथ्वीवासी' है, जो सांसारिकों के समूह में है। परन्तु नंदीय, आलसी और सजग (पमादा) शिष्य कैसे श्रेष्ठ होते हैं, इस विषय पर ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बताऊंगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," शाक्य नंदीय ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे नंदीय, आलस्य में रहने वाला (पमादा में) श्रेष्ठ शिष्य कैसे हो सकता है? यहाँ, नंदीय, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है, जैसा कि (997 में है) 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में अपने दृढ़ विश्वास से संतुष्ट होकर, वह दिन में विवेक और रात में एकांतवास के लिए और अधिक प्रयास नहीं करता। जब वह इस प्रकार आलसी अवस्था में रहता है, तो उसे प्रसन्नता नहीं होती। 359 जब प्रसन्नता नहीं होती, तो पीति भी नहीं होती। जब पीति नहीं होती, तो शांति भी नहीं होती। जब शांति नहीं होती, तो वह दुख में लीन रहता है। व्यथित व्यक्ति का मन समाधि अवस्था में नहीं जाता। जब मन समाधि अवस्था में नहीं होता, तो धम्म प्रकट नहीं होते। क्योंकि धम्म प्रकट नहीं होते, इसलिए उसे 'आलस्य में रहने वाला' माना जाता है।

"फिर से, नंदीय, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध, धम्म (मार्ग, नियम) और संघ में दृढ़ विश्वास रखता है (जैसा कि 997 में है)... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों (शील) से परिपूर्ण है, जो अटूट हैं... समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं। श्रेष्ठों को प्रिय उन गुणों (शील) से संतुष्ट होकर, वह दिन में एकांतवास और रात में एकांतवास के लिए और अधिक प्रयास नहीं करता। जब वह इस प्रकार आलसी अवस्था में रहता है, तो उसे कोई आनंद नहीं मिलता... क्योंकि घटनाएँ (धम्म) प्रकट नहीं होतीं, इसलिए उसे 'आलसी अवस्था में रहने वाला' माना जाता है।"

"इस प्रकार, नंदीय, एक श्रेष्ठ शिष्य आलसी अवस्था (पमादा) में रहने वाला होता है।"

"और हे नंदिया, एक श्रेष्ठ शिष्य वह कैसे होता है जो सचेत (अपमदा में) रहता है? यहाँ, नंदिया, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।'" बुद्ध में अपने उस दृढ़ विश्वास से संतुष्ट न होकर, वह दिन में एकांत (विवेक) और रात में एकांतवास (पतिसल्लना) के लिए और अधिक प्रयास करता है। जब वह इस प्रकार सचेत रहता है, तो प्रसन्नता (पमोज्ज संस्कृत: प्रमुदिता) उत्पन्न होती है। प्रसन्न होने पर उसे परमानंद (पीति) प्राप्त होता है। जब मन परमानंद (पीति/प्रीति) से ऊपर उठता है, तो शरीर शांत (पसाद्ध कायो/पसाद्धि) हो जाता है। शरीर से शांत व्यक्ति सुख (सुखम) का अनुभव करता है। प्रसन्न व्यक्ति का मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में चला जाता है। जब मन समाधि (सम्मोहन) अवस्था में होता है, तो घटनाएँ (धम्म) प्रकट होती हैं। क्योंकि घटनाएँ (धम्म) प्रकट होती हैं, इसलिए उसे 'सचेत (अप्पाद में) रहने वाला' माना जाता है।

"नंदिया, एक श्रेष्ठ शिष्य धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है... संघ (भाईचारा) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है... जिससे समाधि (सम्मोहन) की अवस्था प्राप्त होती है। श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से संतुष्ट न होकर वह दिन में विवेक और रात में एकांतवास के लिए और अधिक प्रयास करता है। जब वह इस प्रकार सचेत (अपमदा) अवस्था में रहता है, तो प्रसन्नता (पमोज्ज संस्कृत: प्रमुदिता) उत्पन्न होती है... जैसा कि ऊपर बताया गया है... क्योंकि घटनाएँ (धम्म) प्रकट होती हैं, इसलिए उसे 'सचेत (अपमदा) अवस्था में रहने वाला' माना जाता है।"

"नंदिया, इस प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य सचेत (अपमदा) अवस्था में रहने वाला होता है।"

(v) छंद के साथ दिव्य-योग्यता की धाराएँ (सगाथापुन्नभिसंदा संस। सगाथा-पुण्य..)
1037. दिव्य पुण्य की धाराएँ (1) (अभिसन्द1)
(प्रारंभ 1033 के समान है, आगे इस प्रकार जारी है:)

"जब, भिक्षुओं, किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ (कुशल संस्कृत: कुशल) होती हैं, तो उसके पुण्य का माप इस प्रकार लेना आसान नहीं है: 'उसके पुण्य की धारा, कुशल लाभकारी धारा, सुख का पोषण (बस इतना ही है'; बल्कि, इसे अनगिनत, अथाह, विशाल पुण्य के रूप में गिना जाता है।

"भिक्षुओं, जिस प्रकार विशाल सागर में पानी का माप इस प्रकार लेना आसान नहीं है: 'इतने गैलन पानी है,' या 'इतने सौ गैलन पानी है,' या 'इतने हज़ार गैलन पानी है,' या 'इतने लाखों गैलन पानी है,' बल्कि इसे अनगिनत, "जल का असीम, विशाल भंडार; उसी प्रकार, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ होती हैं... तो उसे भी असीम, असीम, विशाल पुण्य भंडार माना जाता है।" भगवान

(बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे अनेक नदियाँ, जिनका उपयोग जनसमूह करते हैं,
बहती हुई अंततः सागर में मिलती हैं।
जल का विशाल भंडार, असीम सागर,
रत्नों के ढेरों का भयानक भंडार;

उसी प्रकार पुण्य की धाराएँ ज्ञानी पुरुष तक पहुँचती हैं - जो
भोजन, पेय और वस्त्र दाता है,
पलंग, आसन और चादर प्रदान करने वाला है -
जैसे नदियाँ अपना जल समुद्र में ले जाती हैं।"

1038. दिव्य पुण्य की धाराएँ (2) (अभिसन्द2)
भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं... कौन सी चार?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धम्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारा) में...

"फिर, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य कंजूसी के दाग से रहित मन (चित्त) के साथ घर में रहता है, उदार, खुले हाथों वाला, त्याग में आनंद लेने वाला, दान के प्रति समर्पित, दान देने और साझा करने में आनंद लेने वाला।

"ये पुण्य की चार धाराएँ हैं...

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ, लाभकारी (कुशल संस्कृत) धाराएँ होती हैं, तो उसके पुण्य का माप इस प्रकार करना आसान नहीं है: 'उसका पुण्य का प्रवाह, लाभकारी (कुशल) प्रवाह, पोषण इतना ही है। सुख को पुण्य का अथाह भंडार माना जाता है; बल्कि इसे अनगिनत, असीम, विशाल पुण्य भंडार के रूप में गिना जाता है।

"भिक्षुओं, जिस प्रकार गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही नदियों के संगम स्थल पर जल की मात्रा का अनुमान लगाना आसान नहीं है... बल्कि इसे अनगिनत, असीम, विशाल जल भंडार के रूप में गिना जाता है; उसी प्रकार जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य के ये चार स्रोत होते हैं... तो इसे अनगिनत, असीम, विशाल पुण्य भंडार के रूप में गिना जाता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"जिस प्रकार अनेक नदियाँ जनसमूह द्वारा उपयोग की जाती हैं, वे
बहती हुई अंत में सागर में मिल जाती हैं।
जल का विशाल भंडार, असीम सागर।"
रत्नों के ढेरों का भयानक भंडार;

"इस प्रकार पुण्य की धाराएँ ज्ञानी पुरुष तक पहुँचती हैं
- भोजन, पेय और वस्त्र
दाता, पलंग और आसन प्रदान करने वाला 360 -
जैसे नदियाँ अपना जल समुद्र में ले जाती हैं।"
(श्लोक 1037 के समान)

1039. दिव्य पुण्य की धाराएँ (3) (अभिसन्द3)
"भिक्षुओं, पुण्य की ये चार धाराएँ हैं... कौन सी चार?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धम्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारे) में।"

"हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्धिमान होता है, वह उद्भव और क्षय के प्रति निर्देशित प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) रखता है, जो श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी होती है, जिससे दुखों का पूर्ण नाश (खया/क्षय) होता है। यह पुण्य की चौथी धारा है। ...

"ये पुण्य की चार धाराएँ हैं। ...

"हे भिक्षुओं, जब एक श्रेष्ठ शिष्य में पुण्य की ये चार धाराएँ, लाभकारी धाराएँ (कुशल संस्कृत में कुशल) होती हैं, तो उसके पुण्य का मापन इस प्रकार करना आसान नहीं है: 'केवल इतना ही उसका पुण्य है, लाभकारी धारा (कुशल धारा), सुख का पोषण'; बल्कि, इसे अनगिनत, अतुलनीय, विशाल पुण्य के रूप में गिना जाता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जो पुण्य की इच्छा रखता है, वह कुशल अवस्था में स्थापित होकर
निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने का मार्ग विकसित करता है;
जिसने धम्म के सार को प्राप्त कर लिया है।
विनाश में आनंदित होकर भी वह 'मृत्यु का राजा आएगा'
सोचकर नहीं विक्षुब्ध होता है।
" 361

1040. समृद्ध (1) (महाद्धाना1)
भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) का स्वामी है, धनवान और संपत्ति का मालिक कहलाता है। 362 वे चार क्या हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है... धर्म (मार्ग, नियमों) में... संघ (भाईचारे) में... वह श्रेष्ठों को प्रिय गुणों का अटूट भंडार रखता है... जो समाधि (सम्मोहन) की अवस्था की ओर ले जाता है।

वह श्रेष्ठ शिष्य जो इन चार धर्मों का स्वामी है, धनवान और संपत्ति का मालिक कहलाता है।"

1041. धनी (2) (महाद्धाना2)
"भिक्षुओं (साधुओं) के अनुसार, चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त एक श्रेष्ठ शिष्य धनी, अपार संपत्ति वाला और विख्यात कहलाता है। वे चार धर्म कौन से हैं?"

(शेष भाग पिछले 1040 के समान है)

1042. सरल संस्करण (शुद्धका)
भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो चार धर्मों (गुणों, नियमों) से युक्त है, सोतापन्न कहलाता है, पाताल लोक से मुक्त होकर, नियति में स्थिर होकर, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है। वे चार कौन से हैं?
(जैसा कि 997 में है)
"यहाँ, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखता है: 'भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।' वह धर्म (मार्ग, नियमों) ... संघ (भाईचारे) ... में दृढ़ विश्वास रखता है। वह श्रेष्ठों के प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करता है ... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाता है।

भिक्षुओं, वह श्रेष्ठ शिष्य जो इन चार धर्मों से युक्त है, ज्ञानोदय को अपना गंतव्य मानता है।"

1043. नंदिया
कपिलवस्तु में। भगवान (बुद्ध) ने एक तरफ बैठे हुए शाक्य नंदीय से कहा:

(शेष भाग पिछले 1042 के अनुसार है)

1044. भद्दिया
(यह वही पत्र है जो 1042 में शाक्य भादिया को संबोधित था।)

1045. महानामा
(यह वही पत्र है जो 1042 में शाक्य महानामा को संबोधित था।)

1046. अंग (अंग)
भिक्षुओं, सोतापत्ति के लिए ये चार अंग हैं। वे कौन से चार अंग हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों का संगति, सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यानमग्नता (मानसिकारा), और धम्म के अनुसार अभ्यास। ये चार अंग हैं जो सोतापत्ति के लिए आवश्यक हैं।

(vi) प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि वाला (सपन्नवग्गो सं. स-प्रज्ञा-वर्ग)
1047. श्लोकों सहित (सगाथक)
(प्रारंभिक भाग 1042 के समान है)

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा: 364

"जब किसी को तथागत में
अटूट और दृढ़ विश्वास हो,
और उसका आचरण शील पर आधारित हो , तो
वह श्रेष्ठों का प्रिय और प्रशंसित होता है;

"जब किसी को संघ में विश्वास हो
और उसका दृष्टिकोण सुधर गया हो,
तो लोग कहते हैं कि वह गरीब नहीं है,
उसका जीवन व्यर्थ नहीं है।

" "इसलिए प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि वाले व्यक्ति को,
बुद्ध की शिक्षाओं को याद करते हुए,
विश्वास और सद्गुण के प्रति समर्पित होना चाहिए, और
धम्म (मार्ग, नियम) के प्रति विश्वास और दृष्टि के प्रति समर्पित होना चाहिए।"

1048. वन हू स्पेंड द रेन्स (वस्सामवुत्थ सं. वर्षम-उत्तिष्ठ)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उसी समय एक भिक्षु, जो सावत्थी में वर्षा ऋतु बिताकर आए थे, किसी कार्य से कपिलवस्तु पहुंचे। कपिलवस्तु के शाक्यों ने सुना, "सुना है कि एक भिक्षु, जो सावत्थी में वर्षा ऋतु बिताकर आए हैं, कपिलवस्तु पहुंचे हैं।"

तब कपिलवस्तु के शाक्य उस भिक्षु के पास गए और उन्हें प्रणाम किया, फिर एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे पूज्यवर, हमें आशा है कि भगवान (बुद्ध) स्वस्थ और बलवान हैं।"

"हे मित्रों, भगवान (बुद्ध) स्वस्थ और बलवान हैं।"

"हे पूज्यवर, हमें आशा है कि सारिपुत्त और मोग्गलाना भी स्वस्थ और बलवान हैं।"

"सरिपुत्त और मोग्गलाना, मित्रों, स्वस्थ और तंदुरुस्त हैं।

हम आशा करते हैं, पूज्यवर, कि संघ के भिक्षु स्वस्थ और तंदुरुस्त हैं।"

"संघ के भिक्षु, मित्रों, स्वस्थ और तंदुरुस्त हैं।"

"क्या आपने इस वर्षा ऋतु में भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में कुछ सुना और सीखा, पूज्यवर?"

"भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में, मित्रों, मैंने यह सुना और सीखा: 'भिक्षुओं, वे भिक्षु अल्प हैं जो दोषों के नाश (खय/क्षय) द्वारा इसी जीवन में दोषमुक्त मन की मुक्ति (विमुक्ति, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि द्वारा मुक्ति) में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं, दिव्य ज्ञान के साथ इसे स्वयं अनुभव करते हैं।'" वे भिक्षु अधिक संख्या में हैं जिन्होंने पाँच निम्न बंधनों का पूर्ण नाश करके स्वतः जन्म लिया है और इस संसार से पुनर्जन्म लिए बिना ही निर्वाण प्राप्त कर लेंगे।

"इसके अलावा, मित्रों, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा: 'भिक्षुओं, वे भिक्षु अल्प हैं जिन्होंने स्वतः जन्म लिया है...। वे भिक्षु अधिक संख्या में हैं जिन्होंने तीन बंधनों का पूर्ण नाश करके और लोभ (राग), द्वेष (दोष/द्वेष) तथा मोह (मोह) के कम होने से एक बार पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) बन गए हैं और इस संसार में केवल एक बार फिर जन्म लेकर दुखों का अंत करेंगे।'

"इसके अलावा, मित्रों, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा: 'वे भिक्षु अल्प हैं जो ... एक बार पुनर्जन्म लेने वाले (सकदागामी) बन चुके हैं... वे भिक्षु अधिक संख्या में हैं जिन्होंने तीनों बंधनों के पूर्ण नाश के साथ, सोतापन्न (धारा में प्रवेश करने वाले) बन गए हैं, जो अब पाताल लोक से बंधे नहीं हैं, जिनका भाग्य स्थिर है, और जिनका गंतव्य ज्ञान है।'"

1049. धम्मदिन्ना

एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। तब गृहस्थ शिष्य धम्मदिन्ना अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। 365 एक तरफ बैठकर गृहस्थ शिष्य धम्मदिन्ना ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हे पूज्यवर, हमें उपदेश दीजिए और ऐसा उपदेश दीजिए जिससे हमारा कल्याण और सुख दीर्घकालिक रूप से प्राप्त हो।” “

अतः, धम्मदिन्ना, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए:
‘समय-समय पर हम तथागत द्वारा दिए गए उन गहन, गहरे अर्थ वाले, अलौकिक और शून्यता से संबंधित प्रवचनों का अध्ययन करेंगे।’ तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।” 366

“आदरणीय महोदय, हमारे लिए यह आसान नहीं है कि हम बच्चों से भरे घर में रहें, कासियन चंदन का आनंद लें, मालाएँ, सुगंध और मलहम धारण करें, समय-समय पर सोना और चाँदी प्राप्त करें, फिर भी तथागत द्वारा दिए गए उन गहन, अर्थपूर्ण, अलौकिक और शून्यता से संबंधित प्रवचनों में लीन होकर चिंतन करें। जैसा कि हम पाँच साधना नियमों में स्थापित हैं, भगवान (बुद्ध) हमें धम्म (मार्ग, नियम) का और अधिक ज्ञान दें।” “

अतः, धम्मदिन्न, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए:
'हम बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखेंगे... धम्म (मार्ग, नियम) में... संघ (भाईचारे) में... हम श्रेष्ठों को प्रिय गुणों को अटूट रूप से धारण करेंगे... जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।”

"आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए सोतापत्ति (प्रवाह-प्रवेश) के इन चार कारकों के अनुसार, ये धर्म (गुण, नियम) हममें विद्यमान हैं और हम इन धर्मों के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं। क्योंकि, आदरणीय महोदय, हमें बुद्ध, धर्म और संघ में दृढ़ विश्वास है। हम श्रेष्ठों को प्रिय गुणों से परिपूर्ण हैं, जो समाधि की अवस्था की ओर ले जाते हैं।"

"यह आपके लिए लाभ है, धम्मदिन्न! यह आपके लिए उत्तम लाभ है, धम्मदिन्न! आपने प्रवाह-प्रवेश का फल प्रकट किया है।"

1050. बीमार (गिलाना)

एक बार भगवान (बुद्ध) निग्रोध उद्यान में कपिलवस्तु में शाक्यों के बीच निवास कर रहे थे। उस समय कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे थे, यह सोचकर कि "तीन माह बाद, वस्त्र पूर्ण हो जाने पर, भगवान (बुद्ध) यात्रा पर निकलेंगे।"

शाक्य महानामा ने सुना, "कहा जाता है कि कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए वस्त्र बना रहे हैं, यह सोचकर कि तीन माह बाद, वस्त्र पूर्ण हो जाने पर, भगवान (बुद्ध) यात्रा पर निकलेंगे।"

तब शाक्य महानामा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के लिए एक वस्त्र बना रहे हैं... अब मैंने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में यह नहीं सुना और न ही सीखा है कि एक बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार है, उसे दूसरे बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी द्वारा कैसे उपदेश दिया जाना चाहिए

। महानामा, एक बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार है, उसे दूसरे बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी द्वारा चार प्रकार की सांत्वनाओं से सांत्वना दी जानी चाहिए: 'आदरणीय को सांत्वना दी जाए। आपने बुद्ध में इस प्रकार विश्वास की पुष्टि की है: (जैसा कि 997 में है) "भगवान (बुद्ध) ... देवों (देवदूतों) और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।" आपने धम्म (मार्ग, नियम) में विश्वास की पुष्टि की है... संघ में... आपके पास श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं, जो अटूट हैं... समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाते हैं।'

"एक बुद्धिमान गृहस्थ अनुयायी, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार है, को इन चार सांत्वनाओं से सांत्वना देने के बाद, उससे पूछा जाना चाहिए: 'क्या आप अपने माता-पिता के बारे में चिंतित हैं?' यदि वह कहता है: 'हाँ,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'लेकिन, हे महोदय, आप मृत्यु के अधीन हैं। चाहे आप अपने माता-पिता के बारे में चिंतित हों या न हों, आपकी मृत्यु तो निश्चित है। इसलिए कृपया अपने माता-पिता के बारे में अपनी चिंता छोड़ दें।'

"यदि वह कहता है: 'मैंने अपने माता-पिता के बारे में अपनी चिंता छोड़ दी है,' तो उससे पूछा जाना चाहिए: 'क्या आप अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में चिंतित हैं?' यदि वह कहता है: 'हाँ,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'लेकिन, हे महोदय, आप मृत्यु के अधीन हैं। चाहे आप अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में चिंतित हों या न हों, आपकी मृत्यु तो निश्चित है। इसलिए कृपया अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में अपनी चिंता छोड़ दें।'

यदि वह कहे: 'मैंने अपनी पत्नी और बच्चों के बारे में चिंता छोड़ दी है,' तो उससे पूछा जाना चाहिए: 'क्या तुम मानवीय इंद्रिय सुख के पाँच बंधनों के बारे में चिंतित हो?' यदि वह कहे: 'हाँ,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, दिव्य इंद्रिय सुख मानवीय इंद्रिय सुखों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और श्रेष्ठ हैं। इसलिए कृपया अपना मन (चित्त) मानवीय इंद्रिय सुखों से हटाकर चार महान राजाओं के लोक के देवों (देवदूतों) पर केंद्रित करो।'

यदि वह कहे: 'मेरा मन (चित्त) मानवीय इंद्रिय सुखों से हटकर चार महाराजों के लोक के देवताओं पर केंद्रित हो गया है,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, तावतिंसा देवता चार महाराजों के लोक के देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान हैं। अतः कृपया अपना मन चार महाराजों के लोक के देवताओं से हटाकर तावतिंसा देवताओं पर केंद्रित करें।'

यदि वह कहे: 'मेरा मन चार महाराजों के लोक के देवताओं से हटकर तावतिंसा देवताओं पर केंद्रित हो गया है,' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, तावतिंसा देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान यम देवता... तुषिता देवता... निम्मनारति देवता... परनिम्मितवासवत्ती देवता हैं...

मित्र, ब्रह्मा लोक परनिम्मितवासवत्ती देवताओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान है।' अतः कृपया अपना मन परनिमित्तवासवत्ती देवताओं से हटाकर ब्रह्म जगत पर केंद्रित करें। 369

"यदि वह कहता है: 'मेरा मन परनिमित्तवासवत्ती देवताओं से हटाकर ब्रह्म जगत पर केंद्रित हो गया है' तो उसे कहा जाना चाहिए: 'मित्र, ब्रह्म जगत भी अनित्य, अस्थिर और शरीर-सन्दु में समाहित है। अतः कृपया अपना मन ब्रह्म जगत से हटाकर शरीर-सन्दु के निवारण (निरोध) की ओर निर्देशित करें।' 370

"यदि वह कहता है: 'मेरा मन (चित्त) ब्रह्म जगत से हटा लिया गया है; मैंने अपने मन को शरीर-पहचान के अंत की ओर निर्देशित किया है,' तब, महानामा, मैं कहता हूँ कि इस प्रकार मन से मुक्त (विमुक्त) एक गृहस्थ अनुयायी और सौ वर्षों से मन से मुक्त एक भिक्षु (सन्यासी) में कोई अंतर नहीं है, 371 अर्थात्, एक मुक्ति (विमुक्ति) और दूसरी मुक्ति में कोई अंतर नहीं है।" 372

1051. धारा-प्रवेश का फल (सोतापत्तिफला)
भिक्षुओं, इन चार धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से सोतपत्ति (धारा-प्रवेश) का फल प्राप्त होता है। वे चार कौन से हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति, सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यानमग्नता (मानसिकारा), और धर्म के अनुसार अभ्यास। इन चार धर्मों का विकास और अभ्यास करने से सोतपत्ति (धारा-प्रवेश) का फल प्राप्त होता है।

1052. एक बार पुनर्जन्म का फल (सकदागमिफला)
"भिक्षुओं, इन चार धर्मों का विकास और अभ्यास करने से पुनर्जन्म के फल (सकदागामी) की प्राप्ति होती है। वे चार कौन से हैं?..." (जैसा कि ऊपर 1051 में वर्णित है)।

1053. पुनर्जन्म न लेने का फल (अनगामिफल)
(1051 से प्रारंभ करते हुए)
"... पुनर्जन्म न लेने के फल की प्राप्ति की ओर ले जाता है..."

1054. अरहंतशिप का फल (अरहतफला)
(1051 से प्रारंभ करते हुए)
"...अरहंत पद के फल की प्राप्ति की ओर ले जाता है...."

1055. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि की प्राप्ति (पन्नापतिलाभ सं. प्रज्ञा-प्रति-लाभ)
(1051 से प्रारंभ)
"प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की प्राप्ति की ओर ले जाता है...."

1056. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि का विकास (पन्नवुद्धि सं. प्रज्ञा-वृद्धि)
(1051 से प्रारंभ)
"... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के विकास की ओर ले जाता है...."

1057. प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि का विस्तार (पन्नवेपुल्ला सं. प्रज्ञा-विपुला)
(1051 से प्रारंभ करते हुए)
"... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) के विस्तार की ओर ले जाता है...."

(vii) महान प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि खंड (महापन्नवग्गो सं. महा-प्रज्ञा-वर्ग)
1058. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि की महानता (महापन्न संस्कृत: महा-प्रज्ञा)
भिक्षुओं, इन चार धर्मों (गुणों, नियमों) का विकास और अभ्यास करने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की महानता प्राप्त होती है। वे चार कौन से हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति, सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यानमग्नता (मानसिकारा), और धर्म के अनुसार अभ्यास। इन चार धर्मों का विकास और अभ्यास करने से प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की महानता प्राप्त होती है।

1059 - 1070. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की व्यापकता, आदि।
भिक्षुओं, ये चार धर्म (गुण, नियम) जब विकसित और अभ्यास किए जाते हैं, तो प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की व्यापकता की ओर ले जाते हैं... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की विशालता की ओर... प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) की गहराई की ओर... अद्वितीय अंतर्दृष्टि (पन्न) की अवस्था की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की व्यापकता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की प्रचुरता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शीघ्रता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) के उल्लास की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) के आनंद की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की शीघ्रता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की तीक्ष्णता की ओर... अंतर्दृष्टि (पन्न) की भेदनशीलता की ओर। 374 वे चार क्या हैं? श्रेष्ठ व्यक्तियों के साथ संगति, सच्चे धर्म (मार्ग, नियम) का श्रवण, ध्यान (योनिसो), मानसिक जागरूकता, धर्म के अनुसार अभ्यास। ये चार धर्म, जब विकसित और अभ्यास किए जाते हैं, तो अंतर्दृष्टि (पन्न) की भेदनशीलता की ओर ले जाते हैं। अंतर्दृष्टि (पन्ना)।"

अध्याय 12: सत्य पर संबंधित प्रवचन (सच्चसंयुत्त सं. सत्य-संयुक्त) {संयुत्त-56}
(i) आत्म-अवशोषण अनुभाग (समाधिवग्गो)

1071 समाधि (स्व-मग्नता)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, समाधि का अभ्यास करो। समाधि की अवस्था में भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है। 375

"और वह वास्तव में क्या समझता है? वह वास्तव में समझता है: 'यह दुख है।' वह वास्तव में समझता है: 'यह
दुख का मूल है।' वह वास्तव में समझता है: 'यह
दुख का निवारण (निरोध) है।' वह वास्तव में समझता है:
'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

"भिक्षुओं, समाधि का अभ्यास करो। जो भिक्षु स्वयं में लीन होता है, वह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख है।' 376 यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख का मूल है।' यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यही दुखों का निवारण है।' यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यही दुखों के निवारण का मार्ग है।'

1072. एकांतवास (पतिसाला)
भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो (पतिसल्लना)। एकांतवास में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

और वह वास्तव में क्या समझता है? वह वास्तव में समझता है: (जैसा कि 1071 में है) 'यह दुख है।'... 'यह दुख का कारण है।'... 'यह दुख का निवारण (निरोध) है।'... 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

भिक्षुओं, एकांतवास में प्रयास करो। एकांतवास में रहने वाला भिक्षु चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

1073. कुलपुत्र (1) (कुलपुत्त1 सं. कुलपुत्र)
भिक्षुओं, अतीत में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया, उन सभी ने ऐसा चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किया। भविष्य में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया, उन सभी ने ऐसा चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किया। वर्तमान में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया है, उन सभी ने ऐसा चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किया है। वे

चार सत्य कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। जिन कुलवासियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, वे सभी इन चार आर्य सत्यों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने के लिए ही इस मार्ग पर चले हैं।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो कि 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करो कि 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1074 कुल के लोग (2) (कुलपुत्त2 सं. कुलपुत्र)
भिक्षुओं, अतीत में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया और वास्तविकता को समझा, उन सभी ने चार आर्य सत्यों को भी समझा। भविष्य में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया और वास्तविकता को समझा, उन सभी ने चार आर्य सत्यों को समझा। वर्तमान में जिन कुल के अनुयायियों ने गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन को अपनाया और वास्तविकता को समझा, उन सभी ने चार आर्य सत्यों को समझा। वे चार सत्य

कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। जिन कुलियों ने सत्य को जान लिया है... वे सभी सत्य को जान लेंगे... वे सभी इन चार आर्य सत्यों को जान लेंगे।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

1075. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समानब्राह्मण1 सं. श्रमण-ब्राह्मण)
भिक्षुओं, अतीत में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मणों ने वास्तविकता को पूर्णतः समझा, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ गए। भविष्य में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण वास्तविकता को पूर्णतः समझेंगे, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ जाएंगे। वर्तमान में जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण वास्तविकता को पूर्णतः समझ चुके हैं, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ गए हैं। वे

चार सत्य कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। जितने भी तपस्वी या ब्राह्मण वास्तविकता को पूर्णतः समझ चुके हैं... पूर्णतः समझेंगे... पूर्णतः समझ चुके हैं, वे सभी इन चार आर्य सत्यों को भी पूर्णतः समझ गए हैं।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख है।' ...यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यही वह मार्ग है जो दुखों के निवारण की ओर ले जाता है।'

1076. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समानब्राह्मण2 सं. श्रमण-ब्राह्मण)
भिक्षुओं, अतीत में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया, उन सभी ने स्वयं को चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया। भविष्य में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया, उन सभी ने स्वयं को चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया। वर्तमान में जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया है, उन सभी ने स्वयं को चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया है। वे

चार सत्य कौन से हैं? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। जिन भी तपस्वियों या ब्राह्मणों ने स्वयं को ... और भविष्य में ... वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से जागृत दिखाया, उन सभी ने स्वयं को इन चार आर्य सत्यों के पूर्ण स्वरूप में जागृत दिखाया।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख के निवारण का मार्ग है।'

1077. विचार (विटक्का सं. वितर्क)
भिक्षुओं, बुरे और हानिकारक विचार न सोचें; अर्थात् कामुक विचार, दुर्भावना के विचार, हानि पहुँचाने के विचार। क्यों? हे भिक्षुओं, ये विचार लाभकारी नहीं हैं, ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक हैं, [418] और निब्बिदा, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिन, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जाते। हे

भिक्षुओं, जब आप विचार करें, तो आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' क्यों? भिक्षुओं, ये विचार लाभकारी हैं, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित हैं, और घृणा, वैराग्य, निवारण, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाते हैं।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

1078. विचार (सिंटा संस सिंटान)
भिक्षुओं, बुरे और हानिकारक (अकुशल संस्कृत: अकुशल) तरीके से मत सोचो: 377 'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं हैं'। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह विचार लाभकारी नहीं है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निब्बिद (घृणा), वैराग्य, निरोध (निरोध), शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जाता।

जब तुम ऐसा सोचते हो, भिक्षुओं, आपको सोचना चाहिए: (जैसा कि 1071 में है) 'यह दुख है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको सोचना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह विचार लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और निर्धनता, वैराग्य, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

1079. विवादात्मक वार्ता (विग्गाहिककथा)
भिक्षुओं, वाद-विवाद में मत पड़ो, 378 यह कहते हुए: 'तुम इस धम्म (मार्ग, नियम) और अनुशासन को नहीं समझते। मैं इस धम्म और अनुशासन को समझता हूँ। क्या, तुम इस धम्म और अनुशासन को समझते हो! तुम गलत अभ्यास कर रहे हो। मैं सही अभ्यास कर रहा हूँ। जो पहले कहा जाना चाहिए था, वह तुमने बाद में कहा; जो बाद में कहा जाना चाहिए था, वह तुमने पहले कहा। मैं सुसंगत हूँ, तुम असंगत हो। जिस बात पर तुमने इतना समय लगाया, वह उलट गई है। तुम्हारा सिद्धांत खंडित हो गया है। जाओ अपने सिद्धांत को बचाने के लिए, क्योंकि तुम हार गए हो, या यदि संभव हो तो स्वयं को इससे मुक्त करो।' किसलिए? क्योंकि, भिक्षुओं, यह बात लाभकारी नहीं है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित नहीं है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त नहीं होता।

“भिक्षुओं, जब आप बात करें, तो आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख है'; आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको यह कहना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' किसलिए? क्योंकि, भिक्षुओं, यह बात लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निवारण, शांति, अभिज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त होता है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यही दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।'

1080. निरर्थक बातें (तिराच्चनकथा)
भिक्षुओं, विभिन्न प्रकार की व्यर्थ बातों में न लगें, अर्थात् राजाओं, चोरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें; सेनाओं, खतरों और युद्धों के बारे में बातें; भोजन, पेय, वस्त्र और बिस्तरों के बारे में बातें; मालाओं और सुगंधों के बारे में बातें; रिश्तेदारों, वाहनों, गांवों, कस्बों, शहरों और देशों के बारे में बातें; स्त्रियों और वीरों के बारे में बातें
; गली-मोहल्ले की बातें और कुएँ पर की जाने वाली बातें; बीते दिनों में दिवंगत हुए लोगों के बारे में बातें; व्यर्थ की गपशप; संसार और समुद्र के बारे में अटकलें; यह या वह बनने के बारे में बातें। इसका क्या कारण है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह बातें लाभहीन हैं, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक हैं, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण प्राप्त नहीं होता।

भिक्षुओं, जब आप बात करें, तो आपको इन विषयों पर बात करनी चाहिए: 'यह दुख है'; आपको इस बारे में बात करनी चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको इस बारे में बात करनी चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको इस बारे में बात करनी चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह चर्चा लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और विरक्ति, वैराग्य, निवारण, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाती है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'

(ii) धम्म के चक्र को गतिमान करना (धम्मचक्कप्पवत्तनवग्गो)
1081. धम्म चक्र को गतिमान करना (धम्मचक्कप्पवत्तना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पाँच भिक्षुओं के समूह को संबोधित करते हुए कहा,

“भिक्षुओं, संन्यासी जीवन में दीक्षित व्यक्ति को इन दो अतिवादी मार्गों का अनुसरण नहीं करना चाहिए। वे दो कौन से मार्ग हैं? इंद्रिय सुखों में सुख की खोज, जो नीच, सांसारिक लोगों का घिनौना, घृणित और निष्लापपूर्ण मार्ग है; और आत्म-यातना, जो कष्टदायी, घृणित और निष्लापपूर्ण है। तथागत ने इन दोनों अतिवादी मार्गों में से किसी की ओर न झुकते हुए मध्य मार्ग को प्राप्त किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।

और हे भिक्षुओं, तथागत द्वारा प्राप्त वह मध्य मार्ग क्या है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति और दिव्य ज्ञान की ओर ले जाता है?” क्या यह वह मध्य मार्ग है जो ज्ञानोदय से निर्वाण की ओर ले जाता है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि अवस्था। हे भिक्षुओं, यही वह मध्य मार्ग है जिसे तथागत ने जागृत किया है, जो दृष्टि को जन्म देता है, जो ज्ञान को जन्म देता है, जो शांति, दिव्य ज्ञान, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर ले जाता है।

भिक्षुओं, अब यह दुख का आर्य सत्य है: पुनर्जन्म दुख है, वृद्धावस्था दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है; अप्रिय चीजों से जुड़ाव दुख है; सुखद चीजों से वियोग दुख है; इच्छा की प्राप्ति न होना दुख है; संक्षेप में, आसक्ति से ग्रस्त पाँचों स्कंध (कन्ध संस्कृत) दुख हैं।

भिक्षुओं, अब यह दुख के मूल का आर्य सत्य है: यह तृष्णा (तन्हा संस्कृत तृष्णा) है जो नंदी आनंद और राग के साथ पुनर्जन्म की ओर ले जाती है, इधर-उधर सुख की खोज करती है; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा।

"अब, हे भिक्षुओं, यही दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य है: यह उसी तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का पूर्णतः लुप्त होना और निवारण है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव।

अब, हे भिक्षुओं, यही दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य है: यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान, सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें SN5.8)।

'यह दुख का आर्य सत्य है': इस प्रकार, हे भिक्षुओं, धर्मों (गुणों, नियम) के संबंध में, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझना आवश्यक है: इस प्रकार

, हे भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'यह दुख के उद्गम का महान सत्य है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'दुख के उद्गम के इस महान सत्य का त्याग करना चाहिए': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'दुख के उद्गम के इस महान सत्य का त्याग कर दिया गया है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'यह दुख के निवारण (निरोध) का महान सत्य है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'दुखों के निवारण का यह महान सत्य अनुभव किया जाना है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'दुखों के निवारण का यह महान सत्य अनुभव किया जा चुका है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"'यह दुख निवारण मार्ग का महान सत्य है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'दुख निवारण मार्ग के इस महान सत्य का विकास किया जाना है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

'दुख निवारण मार्ग के इस महान सत्य का विकास हो चुका है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पूर्व में अनसुने धर्मों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"हे भिक्षुओं, जब तक इन चार आर्य सत्यों के तीन चरणों और बारह पहलुओं के मेरे ज्ञान और दृष्टि का पूर्णतः इस प्रकार शुद्धिकरण नहीं हुआ था, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति का दावा नहीं किया। परन्तु जब इन चार आर्य सत्यों के तीन चरणों और बारह पहलुओं के मेरे ज्ञान और दृष्टि का पूर्णतः इस प्रकार शुद्धिकरण हुआ, तब मैंने इस संसार में, जिसमें देव, मार और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य विद्यमान हैं, अतुलनीय पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति का दावा किया। मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरे मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) अविचल है। यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है। अब कोई नया जन्म नहीं होगा।'" कारण)।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। पांच भिक्षुओं के समूह को भगवान (बुद्ध) का यह कथन सुनकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। और जब यह प्रवचन चल रहा था, तब पूज्य कोंडन्ना को धम्म (मार्ग, नियम) का निर्मल दर्शन हुआ: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब निरोध के अधीन है।"

और जब भगवान (बुद्ध) ने धम्म (मार्ग, नियम) का चक्र चला दिया, तब पृथ्वी पर रहने वाले देवताओं ने घोषणा की: "बरानासी में, इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में, भगवान (बुद्ध) ने धम्म के इस अद्वितीय चक्र को चला दिया है, जिसे न तो कोई तपस्वी, न ब्राह्मण, न देव (देवदूत), न मार, न ब्रह्मा, न ही संसार में कोई रोक सकता है।" पृथ्वी पर निवास करने वाले देवताओं की घोषणा सुनकर, चार महान राजाओं के राज्य के देवताओं ने घोषणा की: "बरानासी में... इस अद्वितीय धम्म चक्र को भगवान (बुद्ध) द्वारा गतिमान किया गया है, जिसे संसार में कोई भी रोक नहीं सकता।" चार महान राजाओं के राज्य के देवताओं की घोषणा सुनकर, तावतिंसा देव... यम देव... तुषिता देव... निम्मनारति देव... परनिम्मितवासवत्ती देव... ब्रह्मा के समूह के देवताओं ने घोषणा की: "बरानासी में, इसिपताना के मिग्दायी उद्यान में, इस अद्वितीय धम्म चक्र को भगवान (बुद्ध) द्वारा गतिमान किया गया है, जिसे संसार में कोई भी तपस्वी, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या कोई भी रोक नहीं सकता।"

इस प्रकार उसी क्षण, उसी पल, उसी क्षण, यह घोषणा ब्रह्म जगत तक फैल गई, और यह दस हजार प्रकार की विश्व व्यवस्था कांप उठी, हिल उठी और थरथरा उठी, और जगत में एक असीम तेजस्वी प्रकाश प्रकट हुआ जो देवताओं की दिव्य महिमा से भी बढ़कर था।

तब भगवान (बुद्ध) ने यह प्रेरणाप्रद वचन कहा:
"कोंडन्ना सचमुच समझ गए! कोंडन्ना सचमुच समझ गए!" इस प्रकार पूज्य कोंडन्ना को "अन्ना कोंडन्ना - कोंडन्ना जो समझ गए" नाम प्राप्त हुआ।

1082. तथागत का दर्शन
"यह दुख का महान सत्य है: इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों (गुणों, नियम) के संबंध में तथागतों के दर्शन में ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। (जैसा कि 1081 में है)

"दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझना है: इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में तथागतों के दर्शन में ... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

" "दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझ लिया गया है: इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में तथागतों के दर्शन में ... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

" "यह दुख के उद्‌गम का महान सत्य है... दुख के उद्‌गम के इस महान सत्य का त्याग करना है... दुख के उद्‌गम के इस महान सत्य का त्याग कर दिया गया है": इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में तथागतों के दर्शन में ... और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

"'यह दुखों के निवारण (निरोध) का महान सत्य है' ... 'दुखों के निवारण के इस महान सत्य को अनुभव करना है' ... 'दुखों के निवारण के इस महान सत्य को अनुभव कर लिया गया है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में तथागतों की दृष्टि में ज्ञान ... और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

'यह दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य है' ... 'दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के इस महान सत्य को विकसित करना है' ... 'दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग के इस महान सत्य को विकसित कर लिया गया है': इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुने गए धर्मों के विषय में तथागतों की दृष्टि में ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश उत्पन्न हुआ।"

1083. समुच्चय (खंड बिना स्कंध)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।
(जैसा कि 1081 में है)
"और हे भिक्षुओं, दुख का आर्य सत्य क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति से ग्रस्त पाँच स्कंध (खंड संस्कृत) (उपदान संस्कृत) (आसक्ति); अर्थात्, आसक्ति से ग्रस्त रूप (रूप), आसक्ति से ग्रस्त संवेदना (वेदना), आसक्ति से ग्रस्त अनुभूति (संज्ञा), आसक्ति से ग्रस्त संस्कार (संज्ञा), आसक्ति से ग्रस्त संशय (आक्रामक व्यवहार), और आसक्ति से ग्रस्त चेतना (विन्नान संस्कृत) (उपदान संस्कृत) (आसक्ति)।" इसे दुख का आर्य सत्य कहा जाता है

। "हे भिक्षुओं, दुख के कारण का आर्य सत्य क्या है? यह वह तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) है जो नवजन्म (पुनर्जन्म का कारण) की ओर ले जाती है, जिसमें नंदी आनंद और राग शामिल होते हैं, जो इधर-उधर सुख की खोज करते हैं; अर्थात् इंद्रिय सुखों की तृष्णा, अस्तित्व की तृष्णा, मृत्यु की तृष्णा। इसे दुख के कारण का आर्य सत्य कहा जाता है।

" "हे भिक्षुओं, दुख के निवारण का आर्य सत्य क्या है? यह उसी तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) का पूर्णतः लुप्त हो जाना और निवारण है, उसका त्याग और परित्याग, उससे मुक्ति, उस पर निर्भरता का अभाव। इसे दुख के निवारण का आर्य सत्य कहा जाता है।"

भिक्षुओं, दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि अवस्था। इसे ही दुखों के निवारण का मार्ग कहा जाता है।

भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं।

अतः भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुख है।'... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि 'यह दुखों के निवारण का मार्ग है।'

1084. आंतरिक इंद्रिय क्रियाकलाप (अज्जत्तिकायतन)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

और भिक्षुओं, दुख का आर्य सत्य क्या है? यह कहा जाना चाहिए: छह आंतरिक इंद्रिय शक्तियाँ। वे कौन सी हैं? आँख, श्रवण शक्ति, गंध शक्ति, स्वाद शक्ति, स्पर्श शक्ति और मन शक्ति। इसे ही दुख का आर्य सत्य कहा जाता है।

(सूत्र का शेष भाग 1083 के समान है।)

1085. स्मरण (1) (धारणा1)
"भिक्षुओं, क्या आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं?"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं।"

"परन्तु, भिक्षु, आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य कैसे याद हैं?"

"आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित प्रथम आर्य सत्य के रूप में दुख याद है। मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित द्वितीय आर्य सत्य के रूप में दुख का कारण याद है। मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित तृतीय आर्य सत्य के रूप में दुख का निवारण (निरोध) याद है। मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चतुर्थ आर्य सत्य के रूप में दुख के निवारण का मार्ग याद है। इस प्रकार, आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए चार आर्य सत्यों को याद रखते हैं। भिक्षु, दुख मेरे द्वारा सिखाया गया पहला आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। दुख का कारण मेरे द्वारा सिखाया गया दूसरा आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। दुख का निवारण मेरे द्वारा सिखाया गया तीसरा आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। दुख निवारण का मार्ग मेरे द्वारा सिखाया गया चौथा आर्य सत्य है: इसे इस प्रकार याद रखें। इस प्रकार, भिक्षु, मेरे द्वारा सिखाए गए चार आर्य सत्यों को याद रखें।

इसलिए, भिक्षु, यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'"

1086. स्मरण (2) (धारणा2)
“भिक्षुओं, क्या आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं?”

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
“आदरणीय महोदय, मुझे भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं।”

“परन्तु कैसे, भिक्षु, आपको मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्य याद हैं?”

हे पूज्यवर, मुझे दुख याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया पहला आर्य सत्य है। क्योंकि यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण इस प्रकार कहे: 'यह तपस्वी गौतम द्वारा सिखाया गया दुख का पहला आर्य सत्य नहीं है; इस पहले आर्य सत्य को अस्वीकार करके, मैं दुख का एक और पहला आर्य सत्य बताऊंगा' - तो यह असंभव है।

मुझे दुख का कारण याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया दूसरा आर्य सत्य है... मुझे दुख का निवारण (निरोध) याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया तीसरा आर्य सत्य है; मुझे दुख निवारण का मार्ग याद है, जो भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाया गया चौथा आर्य सत्य है। क्योंकि यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण इस प्रकार कहे: 'यह तपस्वी गौतम द्वारा सिखाया गया दुख निवारण का चौथा आर्य सत्य नहीं है; दुख निवारण के इस चौथे आर्य सत्य को अस्वीकार करके, मैं दुख निवारण के एक और चौथे आर्य सत्य का प्रचार करूंगा' - तो यह असंभव है।

"हे पूज्यवर, मैं इसी प्रकार भगवान (बुद्ध) द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्यों का स्मरण करता हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षु! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्यों का स्मरण करते हैं। हे भिक्षु, दुख मेरा पहला आर्य सत्य है; इसे इसी प्रकार स्मरण कीजिए। क्योंकि यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण इस प्रकार कहे... (जैसा ऊपर)... यह तपस्वी गौतम द्वारा उपदेशित दुख निवारण मार्ग का चौथा आर्य सत्य नहीं है; दुख निवारण मार्ग के इस चौथे आर्य सत्य को अस्वीकार करके, मैं दुख निवारण मार्ग का एक और चौथा आर्य सत्य प्रकट करूँगा - यह असंभव है।

" "हे भिक्षु, इसी प्रकार मेरे द्वारा उपदेशित चार आर्य सत्यों का स्मरण कीजिए।"

अतः, हे भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि यह दुख है... (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि यह दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।

1087. अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)
एक तरफ बैठे उस भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, कहा जाता है, 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या), अज्ञान।' हे पूज्यवर, अज्ञान क्या है, और किस प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है?"

"भिक्षु, दुख को न जानना, दुख के कारण को न जानना, दुख के निवारण को न जानना, दुख के निवारण (निरोध) के मार्ग को न जानना: यही अज्ञान कहलाता है, भिक्षु, और इसी प्रकार मनुष्य अज्ञान में लीन हो जाता है।

अतः, भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: दुख के निवारण का मार्ग यही है।"

1088. सच्चा ज्ञान (विज्जा संस्कृत विद्या)
तब एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कहते हैं, 'सच्चा ज्ञान, सच्चा ज्ञान।' हे पूज्यवर, सच्चा ज्ञान क्या है और सच्चे ज्ञान तक कैसे पहुँचा जा सकता है?"

"भिक्षु, दुख का ज्ञान, दुख के कारण का ज्ञान, दुख के निवारण (निरोध) का ज्ञान, दुख के निवारण के मार्ग का ज्ञान: यही सच्चा ज्ञान कहलाता है, भिक्षु, और इसी मार्ग से सच्चे ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।

अतः, भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1089. निहितार्थ (संकासन)
"यह दुख का महान सत्य है: मैंने इसका ज्ञान कराया है। इस कथन, 'यह दुख का महान सत्य है,' में असंख्य सूक्ष्मताएँ, असंख्य विवरण और असंख्य निहितार्थ निहित हैं। 384

"'यह दुख के उद्गम का महान सत्य है' (जैसा कि 1081 में है)। 'यह दुख के निवारण (निरोध) का महान सत्य है' ... 'यह दुख के निवारण के मार्ग का महान सत्य है': मैंने इसका ज्ञान कराया है। इस कथन, 'यह दुख के निवारण के मार्ग का महान सत्य है,' में असंख्य सूक्ष्मताएँ, असंख्य विवरण और असंख्य निहितार्थ निहित हैं।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है (जैसा कि 1071 में है)। यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1090. वास्तविक (तथा)
"भिक्षुओं, ये चार बातें वास्तविक, अचूक हैं, अन्यथा नहीं। 385 वे चार बातें क्या हैं?

(जैसा कि 1071 में है) 'यह दुख है': हे भिक्षुओं, यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं। 'यह दुख का कारण है': यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं। 'यह दुख का निवारण (निरोध) है': यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं। [431] 'यह दुख के निवारण का मार्ग है': यह वास्तविक, अचूक है, अन्यथा नहीं।

"हे भिक्षुओं, ये चार बातें वास्तविक, अचूक हैं, अन्यथा नहीं।

"इसलिए, हे भिक्षु, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

(iii) कोटिगमावग्गो
1091. कोटिगामा (1) 386

(देखें 1071 और 1081) एक बार भगवान (बुद्ध) कोटिगामा में वज्जियों के बीच निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, चार आर्य सत्यों को न समझने और उनमें गहराई से उतरने के कारण ही हम इस संसार के लंबे चक्र में भटकते रहे हैं। वे चार सत्य क्या हैं?

हे भिक्षुओं, दुख के आर्य सत्य को न समझने और उसमें गहराई से उतरने के कारण ही हम इस संसार के लंबे चक्र में भटकते रहे हैं। दुख के कारण, दुख के निवारण (निरोध) के आर्य सत्य, दुख के निवारण के आर्य सत्य, दुख के निवारण के आर्य सत्य, और दुख के निवारण के आर्य सत्य को न समझने और उनमें गहराई से उतरने के कारण ही हम इस संसार के लंबे चक्र में भटकते रहे हैं।"

"हे भिक्षुओं, दुख के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। दुख के कारण के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। दुख के निवारण के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। दुख के निवारण के मार्ग के उस महान सत्य को समझ लिया गया है और उसमें गहरी आस्था प्राप्त कर ली गई है। अस्तित्व (भावो) की लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) का नाश हो गया है; अस्तित्व (भावो) का मार्ग नष्ट हो गया है; अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा: " चार आर्य सत्यों को

उनके वास्तविक स्वरूप में न देखने के कारण , हम अनेक प्रकार के पिछले जन्मों में भटकते रहे । अब इन सत्यों को देख लिया गया है; अस्तित्व (भावो) का मार्ग टूट गया है; दुख का मूल नष्ट हो गया है: अब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं है।"

1092. कोटिगामा (2) 387

"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख है'; जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख का मूल है'; जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो इसे वास्तव में नहीं समझते: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है': इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो इन बातों को समझते हैं: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान से इसका अनुभव करके, इस जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।" इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में निवास करो।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर,
गुरु सुगतो ने आगे कहा:

"जो लोग दुख को नहीं समझते,
जो दुख के मूल को नहीं जानते,
और न ही यह जानते हैं कि दुख
कहाँ समाप्त होता है;
जो उस मार्ग को नहीं जानते

जो दुख के निवारण (उपसमन) की ओर ले जाता है:
वे मन की मुक्ति (विमुक्ति)

और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति से वंचित हैं; वे
अंत करने में असमर्थ हैं।
वे पुनर्जन्म और वृद्धावस्था के चक्र में लगे रहते हैं।"
लेकिन जो लोग दुख को समझते हैं,
जो दुख के मूल कारण को जानते हैं,

और जहाँ दुख पूरी तरह समाप्त हो जाता है,
जहाँ वह बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाता है;

जो उस मार्ग को समझते हैं
जो दुख के निवारण (उपसमन) की ओर ले जाता है:
वे मन की मुक्ति
और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति से संपन्न होते हैं;
अंत करने में सक्षम होने के कारण,
वे पुनर्जन्म और वृद्धावस्था के चक्र में नहीं पड़ते।

1093. पूर्णतः प्रबुद्ध (सम्मसंबुद्ध)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। कौन से चार? (जैसा कि 1071 में है) दुख का आर्य सत्य... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। तथागत को अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध कहा जाता है क्योंकि उन्होंने इन चारों आर्य सत्यों को उनके वास्तविक स्वरूप में पूर्णतः जान लिया है। इसलिए

, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।"

1094. अरहंत
श्रावस्ती में, "भिक्षुओं, अतीत में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ पाए। भविष्य में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाएंगे, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ पाएंगे। वर्तमान में जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए हैं, वे सभी चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ पाए हैं।

" वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। जितने भी अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष, वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए हैं... जो भविष्य में पूरी तरह से समझ पाएंगे... जो वास्तविकता को पूरी तरह से समझ पाए हैं, वे सभी इन चार आर्य सत्यों को भी पूरी तरह से समझ चुके हैं।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1095. अपवित्रताओं का विनाश (असवक्खया सं. आश्रव-क्षय)
भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खयाल/क्षय) उसे प्राप्त होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, विपश्यना ध्यान के संदर्भ में), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। 388 जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में), उसके लिए विकारों का नाश होता है? विकारों का नाश उसे प्राप्त होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख है'; जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख का कारण है'; जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो जानता और देखता है (ध्यान में): 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' जो इस प्रकार जानता है, जो (ध्यान में) इस प्रकार देखता है, उसी के लिए विकारों का नाश होता है।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1096. मित्र (Mitta sans. Mitra)

भिक्षुओं, जिन पर आपको दया आती है और जो आपको अपना मार्गदर्शक समझते हैं - चाहे वे मित्र हों या सहकर्मी, रिश्तेदार हों या सगे-संबंधी - उन्हें शिक्षा दें, उन्हें स्थापित करें और उन्हें चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को समझने में सहायता करें। वे

चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

जिन पर आपको दया आती है... उन्हें शिक्षा दें, उन्हें स्थापित करें और उन्हें इन चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप को समझने में सहायता करें।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करें: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1097. वास्तविक (तथा)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। कौन से चार? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। भिक्षुओं, ये चारों आर्य सत्य वास्तविक और अचूक हैं, अन्यथा नहीं। इसीलिए इन्हें आर्य सत्य कहा जाता है। 389

अतः भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1098. लोक (विश्व)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। ये चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। इस संसार में, जहाँ देव, शैतान और ब्रह्मा विद्यमान हैं, इस पीढ़ी में, जहाँ तपस्वी और ब्राह्मण हैं, देव और मनुष्य हैं, तथागत ही श्रेष्ठ हैं। इसीलिए इन्हें आर्य सत्य कहा जाता है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

1099. पूर्णतः समझा जाना (परिन्नेय)
भिक्षुओं, ये चार आर्य सत्य हैं। कौन से चार? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य। ये चार आर्य सत्य हैं। भिक्षुओं

, इन चार आर्य सत्यों में से एक आर्य सत्य ऐसा है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए; एक आर्य सत्य ऐसा है जिसका त्याग करना चाहिए; एक आर्य सत्य ऐसा है जिसे अनुभव करना चाहिए; और एक आर्य सत्य ऐसा है जिसका विकास करना चाहिए।

हे भिक्षुओं, वह कौन सा आर्य सत्य है जिसे पूर्णतः समझना चाहिए? दुख के आर्य सत्य को पूर्णतः समझना चाहिए; दुख के कारण के आर्य सत्य का त्याग करना चाहिए; दुख के निवारण के आर्य सत्य को जानना चाहिए; दुख के निवारण के आर्य सत्य का विकास करना चाहिए।

अतः, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1100. गवमपति
एक बार कई वरिष्ठ भिक्षु सहजाति में चैत्यों के बीच रह रहे थे। उस समय जब वरिष्ठ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके मंडप में एकत्रित हुए और साथ बैठे थे, तभी यह बातचीत शुरू हुई: "मित्र, क्या जो व्यक्ति (विपश्यना ध्यान में) दुख देखता है, क्या वह दुख के कारण को भी देख पाता है, दुख के निवारण (निरोध) को भी देख पाता है और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी देख पाता है?"

जब यह कहा गया, तो पूज्य गवमपति ने वरिष्ठ भिक्षुओं से कहा: "मित्रों, भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में मैंने यह सुना और सीखा है: 'भिक्षुओं, जो ध्यान में दुख देखता है, वह दुख के कारण को भी देखता है, दुख के निवारण को भी देखता है, और दुख के निवारण के मार्ग को भी देखता है। जो ध्यान में दुख के कारण को देखता है, वह दुख को भी देखता है, दुख के निवारण को भी देखता है, और दुख के निवारण के मार्ग को भी देखता है। जो ध्यान में दुख के निवारण को देखता है, वह दुख को भी देखता है, दुख के कारण को भी देखता है, और दुख के निवारण के मार्ग को भी देखता है।' जो ध्यान में दुख के निवारण के मार्ग को देखता है, वह दुख को भी देखता है, दुख के कारण को भी देखता है, और दुख के निवारण को भी देखता है।" पीड़ा का।" 390

(iv) सिम्पापा-वन (सिसापावना) खंड (सिसापावनवग्गो)

1101. सिंसपावन (सिसपवन)

एक बार भगवान (बुद्ध) कोसंबी में एक सिप्सपवन में निवास कर रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने अपने हाथ में कुछ सिप्सप के पत्ते लेकर भिक्षुओं से कहा, “भिक्षुओं, आप क्या मानते हैं कि अधिक संख्या में कौन हैं: मेरे हाथ में लिए हुए ये कुछ सिप्सप के पत्ते या ऊपर सिप्सपवन में मौजूद पत्ते?”

“आदरणीय, भगवान (बुद्ध) के हाथ में लिए हुए सिप्सप के पत्ते अल्प हैं, परन्तु ऊपर सिप्सपवन में मौजूद पत्ते असंख्य हैं।”

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने प्रत्यक्ष रूप से जो बातें जानी हैं, परन्तु तुम्हें नहीं सिखाई हैं, वे अनेक हैं, जबकि जो बातें सिखाई हैं, वे अल्प हैं। और हे भिक्षुओं, मैंने वे अनेक बातें क्यों नहीं सिखाईं? क्योंकि वे लाभहीन हैं, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक हैं, और निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिन, ज्ञानोदय, निर्वाण की ओर नहीं ले जातीं। अतः मैंने उन्हें नहीं सिखाया।

और हे भिक्षुओं, मैंने क्या सिखाया है? मैंने सिखाया है: 'यह दुख है'; मैंने सिखाया है: 'यह दुख का कारण है'; मैंने सिखाया है: 'यह दुख का निवारण है'; मैंने सिखाया है: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'। और हे भिक्षुओं, मैंने यह क्यों सिखाया है?" क्योंकि यह लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और घृणा, वैराग्य, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। इसलिए मैंने इसका उपदेश दिया है।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।"

1102. बबूल (खदिरापत्ता)

भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के कारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण (निरोध) के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य मार्ग के आर्य सत्य को जाने बिना, मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

जिस प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'बबूल के पत्तों या चीड़ की सुइयों या कुम्हार के पत्तों की टोकरी बनाकर, 391 मैं जल या ताड़ का फल लाऊंगा, 392 यह असंभव होगा; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना... मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

लेकिन, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के महान सत्य को जानकर, वास्तविक दुख के कारण को जानकर, वास्तविक दुख के निवारण को जानकर, वास्तविक दुख के निवारण के मार्ग को जानकर, मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है। जिस

प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'कमल के पत्तों, कीनो के पत्तों या मलुवा के पत्तों की टोकरी बनाकर, मैं जल या ताड़ का फल लाऊंगा,' तो यह संभव है; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के महान सत्य को जानकर... मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है। अतः

, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1103. डंडा (डंड)
भिक्षुओं, जैसे हवा में उछाली गई छड़ी कभी नीचे गिरती है, कभी ऊपर, उसी प्रकार मनुष्य अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते रहते हैं; कभी इस लोक से परलोक जाते हैं, कभी परलोक से इस लोक में आते हैं। 394 इसका कारण क्या है? क्योंकि उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1104. कपड़े (सेल)
"भिक्षुओं, यदि किसी के वस्त्र या सिर में आग लग जाए, तो क्या किया जाना चाहिए?"

"आदरणीय महोदय, यदि किसी के वस्त्र या सिर में आग लग जाए, तो उसे बुझाने के लिए असाधारण इच्छाशक्ति, असाधारण प्रयास, जोश और उत्साह, निरंतर प्रयास और सती ध्यान तथा पूर्ण ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए।" 395

"भिक्षुओं, कोई व्यक्ति अपने धधकते वस्त्रों या सिर को समभाव से देख सकता है, उन पर ध्यान न देते हुए (मानसिकारा), लेकिन जब तक वह चार आर्य सत्यों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझ लेता, तब तक उसे समझने के लिए असाधारण इच्छा, असाधारण प्रयास, जोश और उत्साह, निरंतर लगन और ध्यान एवं पूर्ण बोध का अभ्यास करना चाहिए। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।"

1105. सौ भाले (सत्तीसत)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति सौ वर्ष का हो सकता है। कोई उससे कहे: 'हे जन, सुबह सौ भाले तुम पर बरसेंगे; दोपहर को सौ भाले बरसेंगे; शाम को सौ भाले बरसेंगे। 396 और हे जन, प्रतिदिन तीन सौ भालों से घायल होकर तुम सौ वर्ष का जीवन जीओगे; और फिर सौ वर्ष बीत जाने के बाद तुम चार आर्य सत्यों को प्राप्त करोगे, जिन्हें तुमने पहले प्राप्त नहीं किया था।' भिक्षुओं,

अपने कुल के हित में इस प्रस्ताव को स्वीकार करना उचित है। इसका कारण क्या है? क्योंकि इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है; भालों के प्रहारों, तलवारों के प्रहारों, कुल्हाड़ियों के प्रहारों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं किया जा सकता। और भले ही ऐसा हो, भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि चार आर्य सत्यों की प्राप्ति दुख या अप्रसन्नता के साथ होती है। बल्कि, चार आर्य सत्यों की प्राप्ति केवल सुख और आनंद के साथ होती है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।

1106. प्राणी (पण सं. प्राणि)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति जंबुद्वीप में मौजूद सभी घास, टहनियों, शाखाओं और पत्तों को काटकर एक ढेर में इकट्ठा कर ले। ऐसा करने के बाद, वह समुद्र के बड़े जीवों को बड़े खंभों पर, मध्यम आकार के जीवों को मध्यम आकार के खंभों पर और छोटे जीवों को छोटे खंभों पर टांग दे। फिर भी, भिक्षुओं, जंबुद्वीप की सारी घास, टहनियों, शाखाओं और पत्तों के समाप्त हो जाने के बाद भी समुद्र के स्थूल जीव समाप्त नहीं होंगे। समुद्र के वे छोटे जीव जिन्हें आसानी से खंभों पर नहीं टांगा जा सकता, उनकी संख्या इससे भी अधिक होगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि उनके शरीर अत्यंत सूक्ष्म हैं।

भिक्षुओं, दुख का लोक इतना विशाल है। दृष्टि में सिद्ध पुरुष, जो दुख के उस विशाल तल से मुक्त है, वह वास्तव में समझता है: 'यही दुख है।' (जैसा कि 1071 में है)... 'यही दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।'

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख है,' 'यही दुख का कारण है,' 'यही दुख का निवारण है।'

1107. सूर्य (1) (सूर्य1 सं. सूर्य)
भिक्षुओं, यह सूर्योदय का अग्रदूत है, अर्थात् भोर का। इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक भिक्षु के लिए यह चार आर्य सत्यों के वास्तविक स्वरूप, अर्थात् सही दृष्टि, के ज्ञान का अग्रदूत है। यह अपेक्षित है कि सही दृष्टि वाला भिक्षु इसे यथार्थ रूप में समझेगा: 'यह दुख है।' (जैसा कि 1071 में है)... 'यह दुख के निवारण (निरोध) का मार्ग है।' अतः,

भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।', 'यह दुख का कारण है।', 'यह दुख का निवारण है।'

1108. सूर्य (2) (सूरिया2 सान. सूर्य)
भिक्षुओं, जब तक संसार में सूर्य और चंद्रमा का उदय नहीं होता, तब तक प्रकाश और तेज का कोई प्रकटीकरण नहीं होता; तब तक घोर अंधकार छाया रहता है; दिन-रात का भेद नहीं हो पाता, माह-पखवाड़े का भेद नहीं हो पाता, ऋतुओं और वर्ष का भेद नहीं हो पाता। परन्तु

भिक्षुओं, जब संसार में सूर्य और चंद्रमा का उदय होता है, तब प्रकाश और तेज का प्रकटीकरण होता है; तब न तो घोर अंधकार होता है, न ही घोर अंधकार; तब दिन-रात का भेद हो पाता है, माह-पखवाड़े का भेद हो पाता है, ऋतुओं और वर्ष का भेद हो पाता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब तक संसार में तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष का जन्म नहीं होता, तब तक महान प्रकाश और दीप्ति का प्रकटीकरण नहीं होता, बल्कि घोर अंधकार छा जाता है; तब तक चारों आर्य सत्यों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण या स्पष्टीकरण नहीं होता।

परन्तु, भिक्षुओं, जब संसार में तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष का जन्म होता है, तब महान प्रकाश और दीप्ति का प्रकटीकरण होता है; तब न तो घोर अंधकार छाता है, न ही घोर अंधकार; तब चारों आर्य सत्यों की व्याख्या, अध्यापन, घोषणा, स्थापना, प्रकटीकरण, विश्लेषण और स्पष्टीकरण होता है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य... (जैसा कि 1071 में है)..." दुःख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुःख है', 'यह दुःख का कारण है', 'यह दुःख का निवारण है', यह समझने का प्रयास करो: 'यह दुःख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है'।"

1109. इंद्र का स्तंभ (इंदखिल सं. इंद्र-कील)
"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है' - वे किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखते हुए सोचते हैं: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चित रूप से वही है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।"

"मान लीजिए, भिक्षुओं, रुई का एक हल्का गुच्छा, हवा से उड़कर, समतल जमीन पर आ गिरा। पूर्वी हवा उसे पश्चिम की ओर ले जाती; पश्चिमी हवा उसे पूर्व की ओर ले जाती; उत्तरी हवा उसे दक्षिण की ओर ले जाती; दक्षिणी हवा उसे उत्तर की ओर ले जाती। इसका कारण क्या है? गुच्छे के हल्केपन के कारण।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है' (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखते हुए सोचते हैं: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चित रूप से वही है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।' इसका क्या कारण है? क्योंकि उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है।

"परन्तु, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वास्तव में यह समझते हैं कि 'यह दुख है' (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखते हुए यह नहीं सोचते: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चित रूप से वही है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।'

"मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक लोहे का स्तंभ या इंद्र का स्तंभ 398 था जिसका आधार गहरा था, जो मजबूती से स्थापित था, अचल था, अविचल था। चाहे पूरब, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कितनी भी तेज़ हवा चले, वह स्तंभ नहीं हिलेगा, न ही डगमगाएगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि स्तंभ का आधार गहरा है और वह मज़बूती से जमा हुआ है।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है' को यथावत समझते हैं, वे किसी अन्य तपस्वी या ब्राह्मण के चेहरे की ओर देखकर यह नहीं सोचते: 'यह योग्य व्यक्ति निश्चय ही वह है जो वास्तव में जानता है, जो वास्तव में देखता है (ध्यान में)।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, हे भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को स्पष्ट रूप से देखा है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

"इसलिए, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' "यही दुख का मूल कारण है," "यही दुख का निवारण है," यह समझने का प्रयास करना चाहिए: "यही दुख के निवारण का मार्ग है।"

1110. तर्क की तलाश (वदत्तिका)

भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु सत्य को समझ ले कि 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है', और फिर कोई तपस्वी या ब्राह्मण आए - चाहे वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से हो - तर्क की तलाश में, यह सोचते हुए कि 'मैं उसके तर्क का खंडन करूँगा', तो यह असंभव है कि वह उस भिक्षु को हिला सके, कांप सके या थरथरा सके।

मान लीजिए, भिक्षुओं, 399 सोलह गज लंबा एक पत्थर का स्तंभ है: उसका आठ गज भाग जमीन में धंसा हुआ है, आठ गज भाग जमीन के ऊपर है। भले ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से हवा का एक जोरदार झोंका आए - स्तंभ नहीं हिलेगा, कांपेगा या थरथराएगा। इसका क्या कारण है? क्योंकि इसकी नींव गहरी है और यह दृढ़ता से स्थापित है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु 'यह दुख है' (जैसा कि ऊपर बताया गया है) और 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' को सही-सही समझ ले, और फिर कोई तपस्वी या ब्राह्मण आ जाए... तो यह असंभव है कि वह उस भिक्षु को हिला सके, कांपने पर मजबूर कर सके। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसने चार आर्य सत्यों को स्पष्ट रूप से देखा है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है) और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

(v) अवक्षेप खंड (पापटावग्गो संस. प्रपात-वर्ग)

1111. विश्व के बारे में सोचना (लोकसिंता संस. लोकासिंता)

एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, एक बार एक व्यक्ति राजगृह से निकलकर सुमगधा कमल सरोवर गया, यह सोचकर कि 'मैं संसार का चिंतन करूँगा।' 400 फिर वह सुमगधा कमल सरोवर के किनारे बैठ गया और संसार का चिंतन करने लगा। तब, भिक्षुओं, उस व्यक्ति ने देखा कि चार भागों वाली सेना सरोवर के किनारे एक कमल के डंठल में प्रवेश कर रही है। यह देखकर उसने सोचा: 'मैं पागल हो गया हूँ! मैं विक्षिप्त हो गया हूँ! मैंने कुछ ऐसा देख लिया है जो संसार में विद्यमान नहीं है।'" वह व्यक्ति शहर लौट आया और लोगों की एक बड़ी भीड़ को बताया: 'महोदय, मैं पागल हो गया हूँ! मैं विक्षिप्त हो गया हूँ! मैंने कुछ ऐसा देखा है जो दुनिया में मौजूद नहीं है।'

[उन्होंने उससे कहा:] 'लेकिन, भले आदमी, तुम पागल कैसे हो? तुम विक्षिप्त कैसे हो? और तुमने ऐसा क्या देखा है जो दुनिया में मौजूद नहीं है?'

'देखो, भले आदमी, मैं राजगृह से निकला और सुमगधा कमल तालाब के पास पहुँचा... (जैसा कि ऊपर बताया गया है)... मैंने तालाब के किनारे एक कमल के डंठल में चार टुकड़ियों वाली सेना को प्रवेश करते देखा। इसीलिए मैं पागल हो गया हूँ, इसीलिए मैं विक्षिप्त हो गया हूँ, और यही वह चीज़ है जो मैंने देखी है जो दुनिया में मौजूद नहीं है।'

'ज़रूर तुम पागल हो, भले आदमी! ज़रूर तुम विक्षिप्त हो! और तुमने जो देखा है वह दुनिया में मौजूद नहीं है।'

फिर भी, भिक्षुओं, उस व्यक्ति ने जो देखा वह वास्तव में वास्तविक था, अवास्तविक नहीं। एक बार अतीत में, देव और असुर युद्ध के लिए तैयार हुए थे। उस युद्ध में देव विजयी हुए और असुर पराजित हुए। अपनी पराजय से असुर भयभीत हो गए और कमल के डंठल से होकर असुर नगर में प्रवेश कर गए, जिससे देव आश्चर्यचकित रह गए।

अतः, भिक्षुओं, संसार के बारे में यह सोचकर मत सोचो कि
'संसार शाश्वत है' या 'संसार शाश्वत नहीं है'; या 'संसार सीमित है' या 'संसार अनंत है'; या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी'; या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी हैं और नहीं भी हैं' या 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान हैं और न ही नहीं हैं।' ऐसा क्यों? क्योंकि, भिक्षुओं, यह विचार लाभकारी नहीं है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निब्बिद (घृणा), वैराग्य, निरोध (निरोध), शांति, अभिन (दिव्य ज्ञान), ज्ञानोदय, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है।

भिक्षुओं, जब आप चिंतन करें, तो आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख है'; आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख का कारण है'; आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख का निवारण है'; आपको यह सोचना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह चिंतन लाभकारी है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे घृणा, वैराग्य, निवारण, शांति, दिव्य ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'

1112. द प्रिसिपिस (पापट संस. प्रपाट)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। तब उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "आओ, भिक्षुओं, हम आज के लिए पतिभाना शिखर पर चलें।"

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। तब भगवान (बुद्ध) कई भिक्षुओं के साथ पतिभाना शिखर पर गए। एक भिक्षु ने पतिभाना शिखर के नीचे खड़ी चट्टान को देखकर भगवान (बुद्ध) से कहा, "वह चट्टान वास्तव में खड़ी है, आदरणीय; वह चट्टान अत्यंत भयानक है। लेकिन क्या कोई और चट्टान है, आदरणीय, इससे भी अधिक खड़ी और भयानक?"

"है, भिक्षु।"

"लेकिन कौन सी चट्टान है, आदरणीय, इससे भी अधिक खड़ी और भयानक?"

हे भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख है'; जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का मूल है'; जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो यह नहीं समझते कि वास्तव में क्या है: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में आनंद लेते हैं। ऐसे संस्कारों (व्यवहार) में आनंद लेते हुए, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं। वृद्धावस्था से मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं। ऐसे संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करके वे पुनर्जन्म के चक्र में गिर पड़ते हैं, वृद्धावस्था के चक्र में गिर पड़ते हैं, मृत्यु के चक्र में गिर पड़ते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के चक्र में गिर पड़ते हैं। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते। 402

लेकिन, भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'यही दुख है' ... 'यही दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न नहीं होते। ऐसे संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न न होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों

(व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते। निराशा। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न न होने के कारण, वे पुनर्जन्म के चक्र में नहीं गिरते, न ही वृद्धावस्था के चक्र में, न ही मृत्यु के चक्र में, न ही दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के चक्र में। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हैं; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त हैं।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख है', 'यह दुःख का कारण है', 'यह दुःख का निवारण है', यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख के निवारण का मार्ग है'।

1113. महाप्रलय (महापरिलाहा)
"भिक्षुओं, एक नरक है जिसका नाम है महाप्रलय। वहाँ आँखों से जो भी रूप दिखाई देता है, वह अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं। 403 कानों से जो भी ध्वनि सुनाई देती है... नाक से जो भी गंध आती है... जीभ से जो भी स्वाद मिलता है... शरीर से जो भी स्पर्श होता है... मन से जो भी अनुभव होता है, वह अवांछनीय है, कभी वांछनीय नहीं; अप्रिय है, कभी सुंदर नहीं; अप्रिय है, कभी सुखद नहीं।"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"हे पूज्यवर, वह प्रलय वास्तव में भयानक है; वह प्रलय वास्तव में बहुत भयानक है। लेकिन क्या हे पूज्यवर, उससे भी अधिक भयानक और डरावनी कोई और प्रलय है?"

"है, भिक्षु।"

"लेकिन हे पूज्यवर, वह कौन सी प्रलय है जो उससे भी अधिक भयानक और डरावनी है?"

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है' - वे ऐसे संस्कारों में आनंदित होते हैं जो पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का कारण बनते हैं। ऐसे संस्कारों में आनंदित होकर वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनने वाले संस्कार उत्पन्न करते हैं। वे संस्कार (व्यवहार-आधार) जो दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाते हैं। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार) उत्पन्न करने के कारण, वे पुनर्जन्म की अग्नि में जलते हैं, वृद्धावस्था की अग्नि में जलते हैं, मृत्यु की अग्नि में जलते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की अग्नि में जलते हैं। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते।

लेकिन, भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'यही दुख है' ... 'यही दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न नहीं होते। ऐसे संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न न होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते। निराशा। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न न होने के कारण, वे पुनर्जन्म की अग्नि से, वृद्धावस्था की अग्नि से, मृत्यु की अग्नि से, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की अग्नि से नहीं जलते। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हैं; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त हैं।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख है', 'यह दुःख का कारण है', 'यह दुःख का निवारण है', यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुःख के निवारण का मार्ग है'।"

1114. नुकीला घर (कुटागारा)
भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के कारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निरोध के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य सत्य को जाने बिना, वास्तविक दुख के निवारण के आर्य मार्ग के आर्य सत्य को जाने बिना, मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

जिस प्रकार, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे, 'छत वाले घर की निचली मंजिल बनाए बिना, मैं ऊपरी मंजिल बनाऊंगा', यह असंभव होगा; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'वास्तविक दुख के आर्य सत्य को जाने बिना... मैं दुख का पूर्ण अंत कर दूंगा' - यह असंभव है।

लेकिन, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'मैंने दुख के वास्तविक स्वरूप, दुख के कारण, दुख के निवारण, दुख के निवारण के मार्ग को पूरी तरह से जान लिया है, और इस ज्ञान से मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है। जैसे

, भिक्षुओं, यदि कोई इस प्रकार कहे: 'मैंने शिखर वाले घर की निचली मंजिल बना ली है, तो मैं ऊपरी मंजिल बनाऊंगा', तो यह संभव है; उसी प्रकार, यदि कोई इस प्रकार कहे:
'मैंने दुख के वास्तविक स्वरूप, दुख के वास्तविक स्वरूप को जान लिया है... तो मैं दुख का पूर्णतः अंत कर दूंगा' - तो यह संभव है।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1115. बाल 404 (वाला बिना बाल)
एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए वैशाली में प्रवेश किया। उन्होंने प्रशिक्षण कक्ष में कई लिच्छवी युवकों को धनुर्विद्या का अभ्यास करते देखा। वे एक छोटे से छेद से दूर से तीर चला रहे थे, तीर का अगला सिरा तीर के पिछले हिस्से से टकरा रहा था और उनका निशाना अचूक नहीं हो रहा था। यह देखकर उनके मन में विचार आया, “ये लिच्छवी युवक तो वाकई प्रशिक्षित हैं! ये लिच्छवी युवक तो वाकई कुशल हैं, क्योंकि वे एक छोटे से छेद से दूर से तीर चला रहे हैं, तीर का अगला सिरा तीर के पिछले हिस्से से टकरा रहा है

और उनका निशाना अचूक नहीं हो रहा है।” फिर, वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद जब पूज्य आनंद भिक्षा मांगने के बाद लौट आए, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और जो कुछ उन्होंने देखा था, वह सब बताया।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:] "आनंद, तुम किसे अधिक कठिन और चुनौतीपूर्ण मानते हो: एक बहुत छोटे से छेद से दूर से तीर चलाना, नोक से नोक तक, बिना चूके, या सात भागों में विभाजित बाल के सिरे को तीर की नोक से भेदना?" 406

"हे पूज्यवर, सात भागों में विभाजित बाल के सिरे को तीर की नोक से भेदना अधिक कठिन और चुनौतीपूर्ण है।"

"परन्तु, आनंद, वे लोग इससे भी अधिक कठिन चीज़ को भेदते हैं जो उसे यथार्थ रूप में भेदते हैं: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', जो उसे यथार्थ रूप में भेदते हैं: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।
" "अतः, आनंद, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है।' (जैसा ऊपर बताया गया है)। यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है।'"

1116. अंधकार (अंधकार)
"भिक्षुओं, संसार में ऐसे स्थान हैं, जो अंधकार और उदासी से भरे 407 निर्जन और अथाह क्षेत्र हैं, जहाँ सूर्य और चंद्रमा का इतना शक्तिशाली प्रकाश भी नहीं पहुँचता।"

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा,
"हे पूज्यवर, वह अंधकार वास्तव में बहुत बड़ा है; वह अंधकार वास्तव में बहुत बड़ा है। परन्तु हे पूज्यवर, क्या उससे भी बड़ा और भयानक कोई अंधकार है?"

"है, भिक्षु।"

"परन्तु हे पूज्यवर, वह कौन सा अंधकार है जो उससे भी बड़ा और भयानक है?"

हे भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख है'; जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख का मूल है'; जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख का निवारण (निरोध) है'; जो वास्तव में यह नहीं समझते कि 'यह दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (अनिवार्य व्यवहार) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) में आनंदित होते हैं। ऐसे संस्कारों (व्यवहार) में आनंदित होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार) को उत्पन्न करते हैं। वृद्धावस्था, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करती है, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करती है। ऐसे संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करके वे पुनर्जन्म के अंधकार में गिरते हैं, वृद्धावस्था के अंधकार में गिरते हैं, मृत्यु के अंधकार में गिरते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अंधकार में गिरते हैं। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; मैं कहता हूँ, वे कष्टों से मुक्त नहीं होते।

लेकिन, भिक्षु, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इसे यथार्थ रूप में समझते हैं: 'यही दुख है' ... 'यही दुख के निवारण का मार्ग है' - वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न नहीं होते। ऐसे संस्कारों (व्यवहार-आदतों) में प्रसन्न न होकर, वे पुनर्जन्म की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, वृद्धावस्था की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, मृत्यु की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा की ओर ले जाने वाले संस्कारों (व्यवहार-आदतों) को उत्पन्न नहीं करते। निराशा। ऐसे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न न होने के कारण, वे पुनर्जन्म के अंधकार में नहीं गिरते, न ही वृद्धावस्था के अंधकार में, न ही मृत्यु के अंधकार में, न ही शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा के अंधकार में। वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हैं; शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त हैं।

"अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह पीड़ा है।' ... यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह पीड़ा के निवारण का मार्ग है।'"

1117. छेद वाला जुआ (1) 408 (चिग्गलयुगा1)

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति एक छेद वाला जुआ विशाल सागर में फेंकता है, और वहाँ एक अंधा कछुआ है जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है। भिक्षुओं, क्या वह अंधा कछुआ, जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है, अपनी गर्दन उस एक छेद वाले जुए में डालेगा? "

यदि वह कभी ऐसा करेगा, आदरणीय महोदय, तो यह बहुत लंबे समय के बाद ही होगा।"

मैं कहता हूँ, सौ वर्षों में एक बार सतह पर आने वाला वह अंधा कछुआ, उस एक छेद वाले जुए में अपनी गर्दन जितनी जल्दी डाल लेगा, उतनी जल्दी वह बच्चा (नासमझ) जो एक बार पाताल लोक जा चुका है, मनुष्य अवस्था में वापस नहीं आ पाएगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि यहाँ, भिक्षुओं, धम्म (सही मार्ग) द्वारा निर्देशित कोई आचरण नहीं है, कोई धार्मिक आचरण नहीं है, कोई लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) कर्म नहीं है, कोई पुण्य (पुण्य) कर्म नहीं है। यहाँ परस्पर भक्षण, कमजोरों का भक्षण व्याप्त है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य (जैसा कि 1071 में है)... दुख के निवारण (निरोध) की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है'। उन्हें यह समझाया जाना चाहिए: 'यही वह मार्ग है जो दुखों के निवारण की ओर ले जाता है।'

1118. छेद वाला जुआ (2) (चिग्गलयुगा2)

भिक्षुओं, मान लीजिए कि यह विशाल पृथ्वी जल का एक विशाल पिंड बन गई है, और एक मनुष्य उस पर एक छेद वाला जुआ फेंकता है। एक पूर्वी हवा उसे पश्चिम की ओर धकेलती है; एक पश्चिमी हवा उसे पूर्व की ओर धकेलती है; एक उत्तरी हवा उसे दक्षिण की ओर धकेलती है; एक दक्षिणी हवा उसे उत्तर की ओर धकेलती है। एक अंधा कछुआ है जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, क्या वह अंधा कछुआ, जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है, अपनी गर्दन उस एक छेद वाले जुए में डालेगा? "हे

पूज्यवर, यह संयोग ही होगा कि वह अंधा कछुआ, जो हर सौ साल में एक बार सतह पर आता है, अपनी गर्दन उस एक छेद वाले जुए में डालेगा।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मनुष्य का जन्म संयोगवश ही होता है; संयोगवश ही तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष संसार में प्रकट होते हैं; संयोगवश ही तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म और अनुशासन संसार में प्रकाशमान होते हैं। हे भिक्षुओं, आपने

मनुष्य का जन्म प्राप्त कर लिया है; तथागत, अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष संसार में प्रकट हुए हैं; तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म और अनुशासन संसार में प्रकाशमान हैं।

अतः, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1119. सिनेरु (1) (सिनेरुपब्बताराज1 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति पर्वतों के राजा सिनेरु पर मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ रखता है। 410 भिक्षुओं, आप किसे बड़ा मानते हैं: वहां रखे गए मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ या पर्वतों के राजा सिनेरु?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु बड़े हैं। मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। पर्वतों के राजा सिनेरु की तुलना में, मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका पूर्णतः नष्ट और समाप्त हुआ दुख अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। नष्ट और समाप्त हुए दुख के पूर्व विशाल भंडार की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1120. सिनेरु (2) (सिनेरुपब्बताराज2 सं. सुमेरु-पर्वत-राज)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि पर्वतों के राजा सिनेरु का नाश हो जाए और सात मूंग के दाने शेष रह जाएं। 411 भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: पर्वतों के राजा सिनेरु का वह भाग जो नाश हो गया है या शेष बचे सात मूंग के दाने?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु का वह भाग जो नाश हो गया है, अधिक है। शेष बचे सात मूंग के दाने नगण्य हैं। सिनेरु के नाश होने वाले भाग की तुलना में शेष बचे सात मूंग के दाने अतुलनीय हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका पूर्णतः नष्ट और समाप्त हुआ दुख अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। नष्ट और समाप्त हुए दुख के पूर्व समूह की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

(vi) द ब्रेकथ्रू (अबीसमया)
1121. नाखून 412 (नखसिखा)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं से कहा,

"भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या यह विशाल पृथ्वी?" "आदरणीय महोदय

, विशाल पृथ्वी अधिक है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, वह थोड़ी सी मिट्टी नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका नाश और निवारण किया गया दुख अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। नाश और निवारण किए गए पहले दुख के विशाल भंडार की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख निवारण का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।"

1122. तालाब (पोखरानी)
भिक्षुओं, मान लीजिए एक तालाब पचास योजन लंबा, पचास योजन चौड़ा और पचास योजन गहरा है, जो पानी से भरा हुआ है और इतना भरा है कि एक कौआ भी उसमें से पानी पी सकता है। एक व्यक्ति कुश घास की नोक पर थोड़ा पानी निकालता है। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी या तालाब का पानी? "

आदरणीय महोदय, तालाब का पानी अधिक है। कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है। तालाब के पानी की तुलना में कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1123. संगम पर जल (1) (संभेज्जा1)
"भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ से कोई व्यक्ति दो या तीन बूँद पानी निकालता है। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: निकाली गई ये दो या तीन बूँदें या संगम का जल?"

"आदरणीय महोदय, संगम का जल अधिक है। निकाली गई ये दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। संगम के जल की तुलना में निकाली गई ये दो या तीन बूँदें नगण्य हैं, इनकी तुलना नहीं की जा सकती, ये अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... अतः यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1124. संगम पर जल (2) (संभेज्जा2)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं—अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही—वहाँ उनका सारा जल नष्ट होकर समाप्त हो जाए, सिवाय दो-तीन बूंदों के। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल या शेष बची दो-तीन बूंदें? “

आदरणीय महोदय, संगम पर नष्ट होकर समाप्त हुआ जल अधिक है; शेष बची दो-तीन बूंदें नगण्य हैं। नष्ट होकर समाप्त हुए जल की तुलना में शेष बची दो-तीन बूंदें नगण्य हैं; उनकी गणना नहीं की जा सकती, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।”

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1125. पृथ्वी (1) (महापृथ्वी1 सं. महापृथ्वी)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति विशाल पृथ्वी पर बेर के दाने के आकार की सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें रख दे। भिक्षुओं, आप किसे अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं: वहाँ रखी गई बेर के दाने के आकार की सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें या विशाल पृथ्वी?

आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। बेर के दाने के आकार की सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें तुच्छ हैं। विशाल पृथ्वी की तुलना में, बेर के दाने के आकार की वे सात छोटी-छोटी मिट्टी की गेंदें तुच्छ हैं; उनकी गणना नहीं की जा सकती, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे एक अंश के बराबर भी नहीं हैं।

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1126. पृथ्वी (2) (महापथवी2 सं. महापृथ्वी)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियों को छोड़कर, पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: नष्ट हो चुकी पृथ्वी या शेष बची सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियां? "

आदरणीय महोदय, नष्ट हो चुकी पृथ्वी अधिक है। शेष बची सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं। नष्ट हो चुकी पृथ्वी की तुलना में शेष बची सात छोटी बेर के दाने के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1127. महासागर (1) (महासमुद्र1 सं. महासमुद्र)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति विशाल सागर से दो या तीन बूँदें पानी निकालता है। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: निकाली गई दो या तीन बूँदें या विशाल सागर का जल?

आदरणीय महोदय, विशाल सागर का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें विशाल सागर के जल की तुलना में नगण्य हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।

भिक्षुओं, इसी प्रकार एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 412 में है) यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1128. महासागर (2) (महासमुद्दा2 सं. महासमुद्र)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि विशाल सागर नष्ट होकर समाप्त हो जाए, सिवाय दो-तीन बूंद पानी के। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: विशाल सागर का वह पानी जो नष्ट होकर समाप्त हो गया है या शेष दो-तीन बूंद पानी?

आदरणीय महोदय, विशाल सागर का वह पानी जो नष्ट होकर समाप्त हो गया है, अधिक है। शेष दो-तीन बूंद पानी नगण्य है। नष्ट होकर समाप्त हुए पानी की तुलना में शेष दो-तीन बूंद पानी की गणना नहीं की जा सकती, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1129. पर्वत उपमा (1) (पब्बतुपमा1 सं. पर्वत-उपमा)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आप किसे अधिक महत्व देते हैं: वहाँ रखे गए सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ या हिमालय, जो पर्वतों का राजा है? "

आदरणीय महोदय, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, अधिक महत्व रखता है। सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, की तुलना में सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए... (जैसा कि 412 में है)... इसलिए यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', यह समझने का प्रयास किया जाना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1130. पर्वत (2) (पब्बतुपमा2 सं. पर्वत-उपमा)
भिक्षुओं, मान लीजिए कि हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ को छोड़कर नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आप किसे अधिक मानते हैं: नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग या शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़? "

आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग अधिक है। शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं। नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय के भाग की तुलना में शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं, उनकी तुलना नहीं की जा सकती, वे अंश के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, जो सिद्ध दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, उसका नाश और निवारण किया गया दुख अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। नाश और निवारण किए गए पहले दुख के विशाल भंडार की तुलना में, बाद वाला दुख अकल्पनीय है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। वह ऐसा व्यक्ति है जो इसे यथावत समझता है: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण (निरोध) है', 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

इसलिए, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

(vii) प्रथम कच्चा अनाज पुनरावृति श्रृंखला 413
1131. अन्यत्र (अन्नात्र सं. अत्यन्तर)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं से कहा,

“भिक्षुओं, आप किसे बड़ा मानते हैं: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?”

“आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह विशाल पृथ्वी के सामने तुच्छ है; वह थोड़ी सी मिट्टी नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती; वह अंश के बराबर भी नहीं है।

” “इसी प्रकार, भिक्षुओं, मनुष्य जाति में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु मनुष्य जाति के अलावा अन्यत्र पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अधिक हैं।” 414 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे

चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।

1132. बाहरी देश (प्रत्यन्तर के बिना)
(1131 के समान)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया...

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मध्य लोकों में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु असभ्य बर्बरों के बीच सुदूर लोकों में पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं..."

1133. प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना संस्कृत प्रज्ञा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जिनके पास प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) की श्रेष्ठ दृष्टि होती है। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) में डूबे हुए और भ्रमित हैं..."

1134. मदिरा एवं मादक पेय (सुरमेराया)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मदिरा, मादक पेय और उन मादक पदार्थों से परहेज करते हैं जो आलस्य (पमादा) का आधार हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मदिरा, मादक पेय और उन मादक पदार्थों से परहेज नहीं करते जो आलस्य का आधार हैं...."

1135. जलजनित (ओडाका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, ऊँचे स्थानों पर जन्म लेने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु जल में जन्म लेने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं...."

1136. जो माता (मत्तेय्या) का सम्मान करते हैं
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो अपनी माता का आदर करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अपनी माता का आदर नहीं करते...."

1137. जो पिता का आदर करते हैं (पेत्तेय्या)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पिता का आदर करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अपने पिता का आदर नहीं करते...."।

1138. जो तपस्वियों (समन्ना) का सम्मान करते हैं
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, तपस्वियों का आदर करने वाले प्राणी अल्प हैं, परन्तु तपस्वियों का आदर न करने वाले प्राणी अधिक हैं...."

1139. जो ब्राह्मणों का आदर करते हैं (ब्राह्मण)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, ब्राह्मणों का आदर करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु ब्राह्मणों का आदर न करने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं...."

1140. जो बड़ों का सम्मान करते हैं (पकाइका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, परिवार में बड़ों का आदर करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु परिवार में बड़ों का आदर न करने वाले प्राणी अधिक हैं..."

(viii) दूसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1141. जीवित प्राणियों की हत्या 415 (पनतीपता सं. प्राणि-पता)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो जीवन के विनाश (खयाल/क्षय) से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो जीवन के विनाश से परहेज नहीं करते...."

1142. जो दिया न गया हो उसे ग्रहण करना (अदिन्नादना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो बिना दी गई वस्तुएँ ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो बिना दी गई वस्तुएँ ग्रहण करने से परहेज नहीं करते... ।"

1143. यौन दुराचार
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो यौन दुराचार से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो यौन दुराचार से परहेज नहीं करते...."

1144. मिथ्याभाषण (मुसावदा सं. मिथ्या-वाद)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो झूठी वाणी से विरक्त रहते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो झूठी वाणी से विरक्त नहीं रहते...."

1145. विभाजनकारी भाषण (पेसुन्ना)
"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, विभाजनकारी वाणी से परहेज करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु विभाजनकारी वाणी से परहेज न करने वाले प्राणी अधिक संख्या में हैं..."

1146. कठोर भाषण (फरुसावाका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, कठोर वाणी से परहेज करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु कठोर वाणी से परहेज न करने वाले प्राणी अधिक हैं...."

1147. व्यर्थ की बातें (संफप्पलापा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो व्यर्थ की बातों से विरक्त रहते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो व्यर्थ की बातों से विरक्त नहीं रहते...."

1148. बीज जीवन (बीजागामा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो बीज और वनस्पति को नुकसान पहुँचाने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो बीज और वनस्पति को नुकसान पहुँचाने से परहेज नहीं करते...."

1149. अनुचित समय (विकलाभोजन)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो अनुचित समय पर भोजन करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो अनुचित समय पर भोजन करने से परहेज नहीं करते...."

1150. सुगंध एवं मलहम (गंधविलेपना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो माला धारण करने, सुगंध लगाने और मलहम से खुद को सुशोभित करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते..."

(ix) तीसरी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1151. नृत्य और गायन (नक्कागिता)

(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और अनुचित प्रदर्शनों से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1152. उच्च तल (उच्चसायन)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो ऊंचे और विलासितापूर्ण पलंगों और आसनों से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1153. सोना और चांदी (जटरूपराजता)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो सोना और चांदी ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1154. कच्चा अनाज (अमाकधन्ना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, कच्चे अनाज का सेवन न करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु जो ऐसा नहीं करते, वे अधिक संख्या में हैं...."

1155. कच्चा मांस (अमकमंसा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, कच्चे मांस का सेवन न करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु ऐसे प्राणी अधिक हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1156. लड़कियाँ (कुमारिका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो स्त्रियों और कन्याओं को ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1157. दास (दासिदास)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पुरुष और स्त्री दासों को स्वीकार करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1158. बकरियाँ और भेड़ें (अजेलाका)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो बकरियों और भेड़ों का सेवन नहीं करते। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते। ..."

1159. मुर्गी और सूअर (कुक्कुटासुकारा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मुर्गे और सूअर का मांस ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1160. हाथी (हत्थिगवस्सा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, हाथी, गाय, घोड़े और घोड़ी को ग्रहण करने से परहेज करने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु ऐसे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

(x) चौथी कच्ची अनाज पुनरावृति श्रृंखला
1161. खेत (खेत्तवत्थु)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो खेतों और भूमि को ग्रहण करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा परहेज नहीं करते...."

1162. ख़रीदना और बेचना (कायाविक्कया सं. क्राय-विक्रया)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो खरीद-फरोख्त से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1163. संदेश (दुतेय्या)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो संदेश और कार्य करने से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1164. झूठे वजन (तुलकुटा)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो झूठे बाटों, झूठी धातुओं और झूठे मापों से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो ऐसा नहीं करते...."

1165. रिश्वतखोरी (उकोटाना)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, रिश्वतखोरी, छल और कपट के कुटिल मार्गों से दूर रहने वाले प्राणी अल्प हैं। परन्तु जो इन मार्गों से दूर नहीं रहते, वे अधिक संख्या में हैं..."

1166-1171. अंग-भंग करना, इत्यादि (छेदनदी)
(1131 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो अंग-भंग, हत्या, बंधन, लूटपाट, डकैती और हिंसा से परहेज करते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक हैं जो ऐसा नहीं करते। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है', और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख निवारण का मार्ग है'।"

(xi) पाँच गंतव्यों की पुनरावृति श्रृंखला
1172. मनुष्य के रूप में निधन (1) (मनुस्साकुटिनिरया सं. मनुष्य-कुटि-निरया)
तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं से कहा,

“भिक्षुओं, आप किसे बड़ा मानते हैं: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?”

“आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह नगण्य है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती, वह अंश के बराबर भी नहीं है।”

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्य के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि, हे भिक्षुओं, उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा

है। वे चार सत्य कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

अतः, हे भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख है', 'यह दुख का कारण है', 'यह दुख का निवारण है' और यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यह दुख के निवारण का मार्ग है'।"

1173. मनुष्य के रूप में निधन (2) (मनुसा-कुटी-तिराचना)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्य जगत में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद पशु जगत में पुनर्जन्म लेते हैं...."

1174. मनुष्य के रूप में निधन (3)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1175-1177. मनुष्य के रूप में निधन (मनुसा-कुटी-देवनिराया)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो मनुष्य के रूप में मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1178-1180. देवों के रूप में निधन (देवकुटिनरायडी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद देवों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1181-1183. देवों के रूप में निधन (देवमुनस्सानिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो देवों के रूप में परलोक धारण करने के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1184-1186. नर्क से दूर जाना (निरायमानुस्सानिरयादि)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो नरक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो नरक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं...."

1187-1189. नर्क से निधन ((निरायदेवनिरयादि)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो नरक से मृत्यु के बाद देवों (स्वर्गदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो नरक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशु जगत में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1190-1192. पशु जगत से विदा होना (तिराच्चनमनुस्सनिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1193-1195. पशु जगत से प्रस्थान (तिराच्चनदेवनिरायदी)
(1172 के समान)

... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद देवों (देवदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो पशुलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं। ..."

1196-1198. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीमनुस्सनिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद नरक में ... पशुलोक में ... प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म लेते हैं..."

1199-1200. भूतलोक से प्रस्थान (पेट्टिदेवनिरायदी)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद देवों (स्वर्गदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से मृत्यु के बाद नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

1201. भूतों के लोक से प्रस्थान (पेट्टीदेवपेट्टीविसाया)
(1172 के समान)
... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद देवों (देवदूतों) के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद पशुलोक में पुनर्जन्म लेते हैं।"

... "इसी प्रकार, भिक्षुओं, वे प्राणी अल्प हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद देवों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु वे प्राणी अधिक संख्या में हैं जो प्रेतलोक से देह त्यागने के बाद प्रेतलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उन्होंने चार आर्य सत्यों को नहीं देखा है। वे चार कौन से हैं? दुख का आर्य सत्य, दुख के कारण का आर्य सत्य, दुख के निवारण (निरोध) का आर्य सत्य, और दुख के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य।

" "अतः, भिक्षुओं, यह समझने का प्रयास करना चाहिए: यही दुख है।" यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख का मूल कारण है।' यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख का निवारण है।' यह समझने का प्रयास करना चाहिए: 'यही दुख निवारण का मार्ग है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। प्रसन्न होकर वे भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से आनंदित हुए।

संयुत्त निकाय का महावग्ग पूरा हुआ।

टिपिटका >> सुत्तपिटक >> अंगुत्तरनिकाय >> **संयुक्त निकाय ने**

भिक्कु बी.बोधि के संस्करण और उनके स्पष्टीकरण में परिवर्तन किया।

संबद्ध प्रवचन (साम्युत्त निकाय)

नोट: 1. पाली शब्द के 'c' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'China' में।
2. sans. का अर्थ है संस्कृत भाषा का शब्द।

भिक्कू बी. बोधि के संस्करण में हुए परिवर्तन और उनकी व्याख्याएँ

आभार : भिक्कु बी. बोधि को बहुत-बहुत धन्यवाद कि साम्युत्त निकाय का संपूर्ण अनुवाद अब मानव जाति के लिए उपलब्ध है, जो आधुनिक अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं था, जिसके आधार पर यह प्रयास किया गया है।

परिवर्तन की आवश्यकता : बुद्ध की शिक्षाओं का उद्देश्य शरीर के विकारों को दूर करना, आध्यात्मिक जागृति लाना और इस प्रकार पुनर्जन्म के चक्र को तोड़ना, यानी मुक्ति (निर्वाण/मोक्ष) प्राप्त करना है। पश्चिम में विकसित भाषाओं में ऐसे शब्द बहुत कम हैं जो इस लक्ष्य को पूरा कर सकें, जो शाब्दिक रूप से संसार से परे है, अर्थात् पारलौकिक प्रकृति का है, जबकि भारत और पूर्वी देशों के स्थानीय

शब्द ऐसे शब्दों से समृद्ध हैं। इसलिए, जब पाली पाठ का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद किया जाता है, तो परिणाम उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है। अतः, नीचे दिए गए कुछ शब्दों का प्रयोग/प्रतिस्थापन किया जाता है और कभी-कभी मूल पाली शब्दों को भी शामिल किया जाता है ताकि इसे समझना आसान हो और यह सभी के लिए उपयोगी हो, जिसमें भिक्षु, ध्यान करने वाले और बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करने वाले भी शामिल हैं।

समरूपता बनाए रखने के लिए, इस वेबसाइट (tipitaka.org से) पर उपलब्ध पाली संस्करण पीडीएफ के अनुसार सूत्रों के क्रम संख्या में परिवर्तन किए गए हैं।

परिवर्तनों की तालिका:

पुराना	**परिवर्तन**	**विवरण**
अधिग्रहण	अधिग्रहण (उपाधि)	धन और विशेषताओं दोनों के बारे में
कल्प	aeon(kappa\kalpa)	ब्रह्मांड का जीवनचक्र (विस्तार और संकुचन)
सकल	समुच्चय (खंड सं. स्कंध)	5 नग, रूप (रूप), संवेदनाएं (वेदना), धारणा (सन्न\संज्ञ), स्वैच्छिक कंडीशनिंग (संस्कार) और चेतना (विन्नान\विज्ञान)
मनौती	शमन (उपसमन)	इंद्रियों के लिए प्रयुक्त
असुरों	असुर (राक्षस)	स्वर्गदूतों/देवताओं के विरोधी और हमेशा युद्धरत
ध्यान	सचेत (मानसिकारा)	समान; मन और जागरूकता के संदर्भ में प्रयुक्त
तपस्या	मितव्ययिता (तपा)	तप; भोग-विलास से रहित होकर ध्यानमग्न जीवन व्यतीत करना।
न तो बोध और न ही अबोध का आधार	न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की 8वीं अवस्था
शून्यता का आधार	शून्यता की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की 7वीं अवस्था
चेतना की अनंतता का आधार	चेतना की अनंतता की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की छठी अवस्था
अंतरिक्ष की अनंतता का आधार	अंतरिक्ष की अनंतता की क्षमता	9 से उच्च समाधि (सम्मोहन) की 5वीं अवस्था
सुंदरता	पवित्र (शुभ संस्कृत शुभ)	शुभ का प्रयोग शुभ या पवित्र के लिए किया जाता है।
देखो	देखो	सरलीकरण
भिक्षु	भिक्षु (भिक्षु)	संस्कृत शब्द भिक्षु है; मनुष्यों में सबसे पूजनीय, दान देने के योग्य।
भिक्षुणी	भिक्षुणी (नन)	संस्कृत शब्द भिक्षुणी है; मनुष्यों में सबसे पूजनीय, दान देने के योग्य।
जन्म	पुनर्जन्म	पुनर्जन्म शब्द मृत्यु के बाद की नवीकृत अवस्था के लिए सबसे उपयुक्त है।
हे भगवान!	भगवान बुद्ध)	केवल उपयुक्त शब्द
अंधों का उपवन	अंधावाना	
किनारा	पुनर्जन्म	
ब्रह्मा	ब्रह्मा (प्रधान देवदूत)	देवताओं/देवदूतों से भी ऊँचा
सावधानीपूर्वक सोच	ध्यानमग्न (योनिसो) सचेत (मनसिकारा)	ध्यान में सजगता
लापरवाह सोच	गैर-ध्यानशील (अयोनिसो) ध्यानमग्न (मानसिकारा)	चीजों, लोगों आदि के बारे में सांसारिक सोच।

कामुक (दोस्तों के लिए)	पापी(अमिस)	
समापन	निरोध (समाप्ति)	ध्यान की वह उच्च अवस्था जब इंद्रिय-संवेदनाएं अवरुद्ध होने लगती हैं
स्पष्ट समझ	पूर्ण बोध (संपजन्ना)	समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में बाह्य (शरीर) और आंतरिक (मस्तिष्क और रीढ़) दोनों प्रकार की जागरूकता होती है।
स्पष्ट रूप से समझना	पूरी तरह से समझना (sampajano)	ऊपर की तरह
पकड़	चिपकना(उपादान सं. असक्ति)	सांसारिक सुखों/भावनाओं के लिए
पूरी तरह से शानदार	पूर्ण मोक्ष (परिनिब्बान)	नौवीं समाधि की अंतिम अवस्था
केंद्रित	समाधि अवस्था	ध्यान से संबंधित
एकाग्रता	समाधि (सम्मोहन) अवस्था	ध्यान से संबंधित
स्थिति, कंडीशनिंग	कारण (पक्काया)	पैकाया के लिए
सशर्तता (कारणता)	करणीय संबंध	
वातानुकूलित	वातानुकूलित (संकहत) या कारण (पकाया)	पाली शब्द के अनुसार प्रयुक्त; दुनिया के साथ संवाद करते हुए चरित्र का विकास
स्थितियाँ	कारण या वजहें	पैकाया के लिए
चेतना	चेतना (vinnana sans. vigyan)	जागरूकता से संबंधित
समाप्त	उत्तम (केवली)	संस्कृत शब्द कैवल्य अवस्था है
संपर्क	संपर्क (फस्सा/स्पर्श)	जब इंद्रिय वस्तु इंद्रिय अंग के संपर्क में हो
विचार	ध्यान में देखना (अनुपसी)	ध्यान में समभाव से अवलोकन करना
खतरे पर विचार करना	खतरा देखकर (आदिनाव)	
संतुष्टि पर विचार करना	आनंद देखना (असदो संस. असवद)	सांसारिक सुख बंधन की ओर ले जाता है
चिंतन	ध्यान	ध्यान का वह अभ्यास जिसमें सोचना बंद करके भीतर की घटनाओं का अवलोकन किया जाता है
भ्रष्टाचार	भ्रष्टाचार (उपकिलेसा)	
तीव्र इच्छा	लालसा (तन्हा संस. तृष्णा)	
अमर	निर्वाण (अमर अवस्था)	इसका प्रयोग अमृत के लिए भी किया जाता है।
गिरावट	हानि (परिहानी, हानी के लिए)	पाली शब्द के लिए संशोधित
आनंद	आनंद (नंदी/आनंद)	सांसारिक सुख में
उद्धार	मुक्ति (विमोक्खा\विमोक्ष)	
माया	मोह (भ्रम)	सांसारिक घटनाओं में सत्य के अलावा किसी और चीज का अवलोकन/विश्वास करना

इच्छा	इच्छा (चांद)	सांसारिक सुखों के लिए
विनाश	विनाश (खया/क्षय)	गिरावट के लिए भी प्रयोग किया जाता है
देव, देवता	देव, देवता (भगवान, देवदूत)	उच्चतर लोकों का
धम्म	धम्म (मार्ग)	इस शब्द के अलग-अलग अर्थ भी हो सकते हैं जैसे सत्य, चरित्र, गुण आदि।
(अप्पमादा के लिए) लगन	सतर्कता (अप्पमदा)	सतर्क रहना
प्रत्यक्ष ज्ञान	दिव्य ज्ञान (अभिन)	आध्यात्मिक शक्ति के लिए भी, SN2.152 में व्याख्या की गई है; यहाँ देखें: अभिन्ना
राज्यों के बीच भेदभाव	राज्यों का भेदभाव (धम्मविचय)	घटनाओं को समझना
तत्व	तत्व(धातु)	अर्थात् पृथ्वी (ठोस), द्रव, गैसीय, ऊष्मा और आत्म-जागरूक मन
ऊर्जा	ऊर्जावान शक्ति (वीर्य)	दृढ़ निश्चयी, बहादुर से संबंधित
समभाव	समभाव (उपेक्खा सं. उपेक्षा)	देखी गई चीजों और घटनाओं में लिप्त न होना
उपदेश देना, उपदेश	निर्देश देना, निर्देश	शब्द का सरलीकरण
अस्तित्व	अस्तित्व (भावो); अस्तित्व का कारक (भावो)	निरंतर बदलती दुनिया
गुणगान	प्रशंसा की	शब्द का सरलीकरण
किराया, लाभ	ठहरना, निवास करना; ठहरना, निवास करना	
अनुभूति	वेदना (संवेदना)	उपयोग को सही किया गया
(वेद्यितम के लिए) भावना	जानना (वेद्यितम्)	सुधार
मूर्ख	बचकाना (नासमझ)	'बाला' का अर्थ है बच्चा; कम आपत्तिजनक होने के लिए एक नरम शब्द सुझाया गया है।
धैर्य	ताकत	सरलीकरण
भाग्यशाली व्यक्ति	भाग्यशाली व्यक्ति (सुगातो)	बुद्ध के लिए
उपहार	दान	
देना	दान करना	
आगे बढ़ते हुए	दीक्षा (प्रवेश)	संस्कृत शब्द प्रवर्ज्य
आगे बढ़ गया	आगे बढ़ गया (आरंभ किया, पबज्जित)	संस्कृत शब्द प्रवरज्यित
संतुष्टि	सांसारिक भोग(असादो संस. अस्वद)	'स्वादिष्ट' शब्द से उत्पन्न
महान नायक	महावीर	बुद्ध के लिए
ख़ुशी	सुख	शरीर का
नफरत	घृणा (दोष/द्वेष)	नापसंदगी के लिए, नापसंद करना
नायक	वीर (वीर); महावीर (महावीर)	

पवित्र जीवन	ब्रह्मचर्य जीवन (पवित्र ब्रह्मचर्य)	और इसमें ध्यान भी शामिल है
बेघर	एकांतवासी	तपस्वी जीवन
पहचान	शारीरिक पहचान (सक्काया)	संस्कृत शब्द 'सत्काया', जिसका अर्थ है स्वयं को भौतिक शरीर से जोड़ना।
पहचान दृश्य	शरीर पहचान दृष्टिकोण (सक्काया-दित्थी)	ऊपर जैसा ही, लेकिन इसमें दृढ़ विश्वास होना चाहिए, यानी भौतिकवाद, जो अध्यात्मवाद के विपरीत है।
अज्ञान	अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या)	नहीं जानना
अनस्थिरता	अनित्यता (अनिका सं. अनित्य)	बौद्ध धर्म में भौतिकवाद का केंद्रीय विचार यह है कि सभी भौतिक और इंद्रियों द्वारा अनुभव की जाने वाली घटनाएं क्षणभंगुर हैं, इसलिए उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।
चोट	टकराव (पतिघा)	
अंतर्दृष्टि	अंतर्दृष्टि (विपस्सना ध्यान)	विपश्यना शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है ध्यान की वह मुख्य तकनीक जिसमें समभाव के साथ अवलोकन का उपयोग करके वास्तविक प्रकृति को प्रकट किया जाता है।
कम्मा	कर्म	यह विचार कि कर्म के परिणाम होते हैं, कई जन्मों/जीवनों तक भी व्याप्त है।
मुक्ति	मुक्ति (विमुक्ति सं. विमुक्ति)	मोक्ष के समान
रोशनी	आभा या आलोक	
प्रिय दयालुपना	प्रेममयी दया (मेट्टा/मैत्री)	करुणा, सद्भावना
वासना	वासना (राग)	सांसारिक सुखों का
मारा	मारा (शैतान)	मृत्यु, रोग और साथ ही धन और सांसारिक सुखों के स्वामी।
योग्यता	ईश्वरीय पुण्य	वह दिव्य धन जो मृत्यु के बाद भी बना रहता है, उसका संचय उच्चतर अवस्थाओं अर्थात् स्वर्ग आदि की ओर ले जाता है।
सावधान	ध्यानमग्न (सतिमा)	सती शब्द ध्यान से संबंधित है, यह संस्कृत शब्द स्मृति से उत्पन्न हुआ है।
ध्यानपूर्वक	ध्यान करना (सतो) या ध्यानमग्न (सतो)	सती शब्द का एक अन्य रूप
सचेतन	ध्यान (सती)	बौद्ध धर्म में सती शब्द का अर्थ ध्यान होता है, जो संस्कृत शब्द स्मृति से उत्पन्न हुआ है।
नाम और प्रपत्र	मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)	दोनों के लिए उपयोग किया जाता है क्योंकि वे आपस में जुड़े हुए हैं।
लापरवाही	आलस	पमाडा के लिए, आलसी, सतर्क नहीं
वापस न लौटने वाला	पुनर्जन्म न लेने वाला (अनागामी)	जो व्यक्ति समाधि की उस उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जिसके कारण उसे पृथ्वी लोक में वापस नहीं लौटना पड़ता, बल्कि वह स्वर्ग में जन्म लेता है और फिर निर्वाण प्राप्त करता है।
यज्ञ	दान (भोजन का)	
एक बार लौटने वाला	एक बार पुनर्जन्म लेने वाला (सकदागामी)	जो व्यक्ति समाधि की उस उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जिसके कारण उसे केवल एक बार पृथ्वी लोक में लौटने का अधिकार मिलता है, तब वह महादूतों के बीच जन्म लेता है और फिर निर्वाण प्राप्त करता है।
समन्वय	उपसंपदा (ऑर्डिनेशन)	दीक्षा के बाद

धारणा	धारणा (सन्ना सं. संज्ञा)	घटनाओं की समझ
घटना	घटनाएँ (धम्म)	आंतरिक घटनाओं को समझने के लिए धम्म शब्द का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् अच्छे कर्म शांति की ओर ले जाते हैं।
आनंद और खुशी	खुशी (सुख) और आनंद (सोमनसा)	सुख शारीरिक सुख है और सोमनस्सा मानसिक शांति और स्थिरता है।
प्रसार	6 संवेदी धोखा (पापंका सं. प्रपंच/माया)	
शुद्ध आवास	शुद्ध निवास (शुद्धवास)	एक प्रकार का उच्च स्वर्ग
उत्साह	आनंद (पिति/प्रीति)	ध्यान में आंतरिक आनंद का अनुभव होता है।
मुक्त करना	मुक्ति (मोक्ष/मोक्ष)	मोक्ष का एक अन्य उपयोग
पुनर्जीवित अस्तित्व	नया अस्तित्व (पुनर्जन्म)	पुनर्जन्म बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांतों में से एक है, जिसके अनुसार सभी प्राणी अपने कर्मों के फल के अनुसार पुनर्जन्म लेते हैं।
वापस करना	पुनर्जन्म	पहले जैसा ही
तबदीली	घृणा (निब्बिडा)	सांसारिक घटनाओं से दूर रहकर आंतरिक आध्यात्मिक अवस्था की ओर बढ़ना।
वृद्धि और गिरावट	उदय और पतन (उदय-ब्या)	यह विचार कि सभी भौतिक घटनाएँ परिवर्तनशील हैं; अनिच्छुनित्य के विपरीत है।
त्याग करना	अग्नि अनुष्ठान (यज्ञ)	अग्नि पूजा की प्राचीन प्रथा
सक्का	सक्का (इंद्र)	330 मिलियन देवी-देवताओं के स्वर्ग में विराजमान देवदूतों का राजा।
संघा	संघ (भाईचारा)	भिक्षुओं का
देखता है	देखता है (ध्यान में, passato)	
आत्म अवशोषण	स्वयं में लीन होना (समाधि)	समाधि अवस्था के लिए एक और शब्द
कामुक	कामुक (काम/यौन)	
शांति	शांति (समथा/समभाव)	समभाव के समान
संकेत	कारणवाचक (निमित्त)	सही उपयोग; उन घटनाओं के लिए प्रयुक्त जो (सांसारिक) बंधन का कारण बनती हैं।
चिह्नहीन	अनिमित्त (अकारण)	पिछले के विपरीत
सर ई	भगवान	
मारे गए	मारा गया	
आध्यात्मिक शक्ति	आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि\ऋद्धि)	विशेष आध्यात्मिक क्षमताएँ
आध्यात्मिक (निरामियों के लिए)	निष्पाप (निरामी)	
घोड़ा	घोड़ा	सरलीकरण
कलंक	कलंक	शब्द का सरलीकरण
अध्यापक	शिक्षक (सत्था)	बुद्ध के लिए प्रयुक्त एक अन्य शब्द
दस विश्व प्रणालियाँ	दस विश्व प्रणालियाँ (दश	या अस्तित्व के दस आयाम जिन्हें बुद्ध देख सकते थे

	लोक धातु)	
चीज़, चीज़ें	धम्म (मार्ग, गुण, नियम), धम्म	धम्म शब्द का एक अन्य प्रयोग; अब संशोधित
मैंने ऐसा सुना है	मैंने बुद्ध से यही सुना है (आनंद कहते हैं)।	आनंद बुद्ध के प्रत्येक प्रवचन से पहले 'एव मेई सुतम' वाक्यांश का प्रयोग करते थे।
टाई	जंजीरें, बंधन	
शांति	शांति (पासद्धि\ प्रश्रब्धि)	समाधि (सम्मोहन) की अवस्था उत्पन्न होने से पहले शरीर, भावनाओं और मन की स्थिरता
असंपीड़ित	समाधि (सम्मोहन) की अवस्था में नहीं	
असुविधाजनक	बिना शर्त (असंखता)	वे क्रियाएँ जिनसे चरित्र में कोई बाध्यकारी/परिवर्तन नहीं होता
अंतर्निहित प्रवृत्ति	अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसेति सं. अनुशय)	छिपे हुए इरादों से संबंधित
मन का एकीकरण	मन की विलक्षणता (एकोदिभवम)	अविचल मन
बेकार	हानिकारक (अकुसल सं. अकुशल)	
गायब हो जाने	गिरावट (vaya, khaya के लिए)	
गुण	सद्गुण (शील)	अहिंसा, सत्यवादिता, चोरी न करना, नशा न करना और यौन संबंध से परहेज जैसे नैतिक मूल्यों का पालन करना।
इच्छाशक्ति	संज्ञानात्मक जागरूकता (चेतना)	संसेताना/चेतना के लिए
स्वैच्छिक संरचनाएँ	संखारा (बाध्यकारी व्यवहार कंडीशनिंग)	कर्मों के कारण चरित्र/व्यवहार में परिवर्तन की घटनाएँ
ध्यानपूर्वक विचरण करें	ध्यानमग्न रहना (सती रहना)	
रमता जोगी	तपस्वी	उपयोग में सुधार
पौष्टिक	लाभकारी (कुशल सं. कुशल)	उपयोग को सही किया गया
बुद्धि	प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना)	ध्यान में जो कुछ उत्पन्न होता है, विशेषकर मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के भीतर आत्मज्ञान की अनुभूति, जिसके प्रकट होने से सभी बुरे लक्षण दब जाते हैं (संस्कार)।